दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शकर।
हर हर शकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(सस्करण २,२५,०००)

कूर्मपुराणकी उपादेयता

धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य मोक्षप्रद नृणाम्।
पुराणश्रवण विप्रा कथन च विशेपत ॥
श्रुत्वा चाध्यायमेवैक सर्वपापै प्रमुच्यते।
उपाख्यानमथैक वा ब्रह्मलोके महीयते॥
इद पुराण परम कौर्म कूर्मस्वरूपिणा।
उक्त देवाधिदेवेन श्रद्धातव्य द्विजातिभि ॥ (कूर्मपुराण)

हे विप्रो! (इस) पुराणका सुनना एव विशेपरूपसे इसका कहना मनुष्योको यश, आयु एव मोक्षका दाता, कृतकृत्य करनेवाला तथा पुण्यजनक होता है। इसका एक अध्याय भी सुननेसे समस्त पापोसे मुक्ति मिल जाती है। अथवा (इसका) एक उपाख्यान (सुनने)-से ब्रह्मलोकमे महत्त्व प्राप्त होता है। इस उत्तम कूर्मपुराणको कूर्मरूपधारी देवाधिदेवने कहा है, अत इसपर श्रद्धा करनी चाहिये।

आवश्यक सूचना

सम्पूर्ण कूर्मपुराण एक जिल्दमे करनेकी दृष्टिसे फरवरी मासका अङ्क (परिशिष्टाङ्क) विशेषाङ्कके साथ सलग्न है।

इस अङ्कका मूल्य ८० रु० (सजिल्द ९० रु०)

वार्षिक शुल्क (भारतमें) डाक व्ययसहित ८० रु० (सजिल्द ९० रु०)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

वार्षिक शुल्क (विदेशमें) समुद्री डाकसे US$11 हवाई डाकसे US$22

सस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१- कल्याण'क ७१वे वर्ष सन् १९९७ का यह विशेषाङ्क 'कूर्मपुराणाङ्क' आप लागोकी सेवाम प्रस्तुत है। इसम ४०८ पृष्ठाम पाठ्य सामग्री और ८ पृष्ठाम विषय-सूची आदि है। कई बहुरग चित्र भी दिय गये है। इसी अङ्कम फरवरी माहका अङ्क भी सलग्न किया गया है।

२-जिन ग्राहकास शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्ह विशेषाङ्क तथा फरवरीका अङ्क रजिस्ट्रीद्वारा भेजा जा रहा है और जिनस शुल्क-राशि यथासमय प्राप्त नहीं होगी, उन्ह उपर्युक्त अङ्क ग्राहक-सख्याके क्रमानुसार वी०पी०पी० द्वारा भेजा जायगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी०पी०पी० क द्वारा विशेषाङ्क भेजनमें डाकखर्च आदि अधिक लगत हैं अत वार्षिक शुल्क-राशि मनीआर्डरद्वारा भेजनी चाहिये। 'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ८० ०० (अस्सी रुपय) मात्र है, जो कवल विशेषाङ्कका ही मूल्य हैं। सजिल्द विशेषाङ्कक लिय १० ०० (दस रुपय) अतिरिक्त दय हागा।

३-ग्राहक सज्जन मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-सख्या अवश्य लिख। ग्राहक-सख्या या पुराना ग्राहक न लिखनस आपका नाम नय ग्राहकाम लिखा जा सकता है, जिसस आपकी सवाम 'कूर्मपुराणाङ्क' नयी ग्राहक-सख्याके क्रमम रजिस्ट्रीद्वारा पहुँचगा और पुरानी ग्राहक-सख्याक क्रमस इसकी वी०पी०पी० भी जा सकती है। वी०पी०पी० भेजनकी प्रक्रिया प्रारम्भ होनक बाद जिन ग्राहकाका मनीआर्डर प्राप्त हागा, उनका समयसे समायाजन न हो सकनके कारण हमार न चाहते हुए भी विशेषाङ्क उन्ह वी०पी०पी० द्वारा जा सकता है। एसी परिस्थितिम आप वी०पी०पी० छुड़ाकर किसी अन्य सज्जनका 'कल्याण' का नया ग्राहक बनानकी कृपा कर। एसा करनस आप 'कल्याण को आर्थिक हानिस बचानक साथ कल्याण'के पावन प्रचार-कार्यम सहयागी हाग। एस ग्राहकास मनीआर्डरद्वारा प्राप्त राशि अन्य निर्देश न मिलनतक अगले वर्षक वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। जिन्हान वी०पी०पी० छुड़ाकर दूसरे सज्जनका ग्राहक बना दिया है व हम तत्काल नय ग्राहकका नाम और पता, वी०पी०पी० छुड़ानकी सूचना तथा अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण लिखनकी कृपा कर, जिसस उनक आये मनीआर्डरकी जाँच करवाकर रजिस्ट्रीद्वारा उनका अङ्क तथा नये ग्राहकका अङ्क नियमितरूपस भजा जा सक।

४-इस अङ्कके लिफाफ (कवर)-पर आपकी ग्राहक-सख्या एव पता छपा हुआ है, उस कृपया जाँच ल तथा अपनी ग्राहक-सख्या सावधानीस नोट कर ल। रजिस्टी अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लना चाहिये। पत्र-व्यवहारम *ग्राहक-सख्याका उल्लख नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसक बिना आपके पत्रपर हम समयस कार्यवाही नहीं कर पात हैं।* डाकद्वारा अङ्काक सुरक्षित वितरणम सही पिन-कोड-नम्बर आवश्यक हैं। अत अपन लिफाफ्पर छपा पता जाँच लेव।

५- कल्याण' एव 'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत पत्र तथा मनीआर्डर आदि सम्बन्धित विभागका पृथक्-पृथक् भजन चाहिय।

व्यवस्थापक— कल्याण'-कार्यालय पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

गीताप्रेस गोरखपुर (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन, कलकत्ता) द्वारा सचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रममें बालकोके लिये प्राचीन भारतीय सस्कृति एव वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासका उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजस लगभग ७३ वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यस की गयी थी कि इसम पढनेवाले बालक अपनी सस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध सस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्राप्तकर सच्चरित्र आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श भावी नागरिक बन सक—एतदर्थ भारतीय सस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्र एव प्राचीन आचार-विचारोकी दीक्षाका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। सस्कृतके मुख्य अध्ययनक साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयाकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम चूरू (राजस्थान)-के पतपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोना विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एव मननस मनुष्य लोक-परलोक दोनामें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायम वर्ण-आश्रम जाति अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अत धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोम प्रतिपादित सिद्धान्तो एव विचारासे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्याकी सख्या इस समय लगभग ३० हजार है। इसमें श्रीगीताके छ प्रकारक और श्रीरामचरितमानसक तीन प्रकारक सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागक अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप ध्यान और मूर्तिकी पूजा करनेवाले सदस्योकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एव श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन 'परिचय-पुस्तिका' नि शुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेका कृपा करें एव श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सघ, पत्रालय-स्वर्गाश्रम, पिन-२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश) जनपद-पौड़ी-गढवाल (उ०प्र०)

साधक-सघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता सरलता निष्कपटता सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणाका ग्रहण और असत्य क्रोध लोभ मोह द्वेष हिंसा आदि आसुरी गुणाका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ४९ वर्ष पूर्व 'साधक-सघ' की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी एव एक आवेदन-पत्र' भेजा जाता है सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोको 'साधक-दैनन्दिनी' का वर्तमान मूल्य रु० २ ०० तथा डाकखर्च रु० १ ००—कुल रु० ३ ०० मात्र डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। सघके सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली नि शुल्क मँगवाइये।

पता—सयोजक, 'साधक-सघ' पत्रालय—गीताप्रेस गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनो मङ्गलमय एव दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्राय सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोका समादर है और करोडो मनुष्योंने इनके अनुवादोको भी पढकर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओका प्रबन्ध किया गया है। दोनो ग्रन्थोकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग दस हजार परीक्षार्थियोंके लिये २०० परीक्षा-केन्द्रोकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति पत्रालय—स्वर्गाश्रम पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश) जनपद-पौड़ी-गढवाल (उ० प्र०)

॥ श्रीहरि ॥
'कूर्मपुराणाङ्क' की विषय-सूची

[निबन्ध-सूची]

कूर्मपुराण

(पूर्वविभाग)

(उपरिविभाग)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

मङ्गलाचरण

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

हे सबका भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर! सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वरका श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्रसे ढका हुआ है, आपकी भक्तिरूप सत्यधर्मका अनुष्ठान करनेवाले मुझको अपना दर्शन करानेके लिये उस आवरणको आप हटा लीजिये।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

यदि इस मनुष्य-शरीरमें (परब्रह्मको) जान लिया तब तो बहुत कुशल है, यदि इस शरीरके रहते-रहते (उसे) नहीं जान पाया (तो) महान् विनाश है। (यही सोचकर) बुद्धिमान् पुरुष प्राणी-प्राणीमें (प्राणिमात्रमें) (परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर, इस लोकसे प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

जो योगमायाके पर्देमें छिपा हुआ सर्वव्यापी, सबके हृदयरूप गुहामें स्थित, संसाररूप गहन वनमें रहनेवाला सनातन है, ऐसे उस कठिनतासे देखे जानेवाले परमात्मदेवको शुद्ध बुद्धियुक्त साधक अध्यात्मयोगकी प्राप्तिके द्वारा समझकर हर्ष और शोकको त्याग देता है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्माको समस्त वेदोंका ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्म-ज्ञानविषयक बुद्धिको प्रकट करनेवाले प्रसिद्ध देव परमेश्वरको मैं मोक्षकी इच्छावाला साधक आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूँ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

हे संसारके नेत्रस्वरूप, देवताओंके हितचिन्तक, पूर्वदिशामें उदित होनेवाले निष्पाप तथा शुद्ध-बुद्ध, निरन्तर गतिशील सूर्यदेव! आपके अनुग्रहसे हम लोग सौ वर्षोंतक जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी अविकल दृष्टिशक्ति एवं श्रवण-शक्ति बनी रहे। सौ वर्षोंतक सुस्पष्ट वाक्शक्ति बनी रहे और सौ वर्षोंतक हम सभी इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण शक्तियुक्त होकर अदीन अर्थात् समृद्ध बने रहें और सौ वर्षसे भी अधिक समयतक समृद्धिशाली और सभी शक्तियोंसे सम्पन्न रहें।

शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हमारे लिये (दिन और प्राणके अधिष्ठाता) मित्र देवता कल्याणप्रद हों (तथा) (रात्रि और अपानके अधिष्ठाता) वरुण (भी) कल्याणप्रद हों। (चक्षु और सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता) अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी हों, (बल और भुजाओंके अधिष्ठाता) इन्द्र (तथा) (वाणी और बुद्धिके अधिष्ठाता) बृहस्पति (दोनों) हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों। त्रिविक्रमरूपसे विशाल डगोंवाले विष्णु (जो पैरोंके अधिष्ठाता हैं) हमारे लिये कल्याणकारी हों। (उपर्युक्त सभी देवताओंके आत्मस्वरूप) ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायुदेव! आपको नमस्कार है, आप ही प्रत्यक्ष (प्राणरूपसे प्रतीत होनेवाले) ब्रह्म हैं। (इसलिये मैं) आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा (आप ऋतके अधिष्ठाता हैं, इसलिये मैं आपको) ऋत नामसे पुकारूँगा (आप सत्यके अधिष्ठाता हैं, अतः मैं आपको) सत्य नामसे कहूँगा, वह (सर्वशक्तिमान् परमेश्वर) मेरी रक्षा करे वह वक्ताकी अर्थात् आचार्यकी रक्षा करे रक्षा करें मेरी (और) रक्षा करें मेरे आचार्यकी। भगवान् शान्तिस्वरूप हैं शान्तिस्वरूप हैं, शान्तिस्वरूप हैं।

भगवान् कूर्मका स्तवन

मुनय ऊचु

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने। नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः। माधवाय नमस्तुभ्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥
सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः। नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च॥
ॐ नमो ज्ञानरूपाय परमात्मस्वरूपिणे। आनन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः॥
नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते। पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥
नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते। धर्मज्ञानाधिगम्याय निष्कलाय नमो नमः॥
नमोऽस्तु व्योमतत्त्वाय महायोगेश्वराय च। परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे। नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः॥
नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिंहाय ते नमः। वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः॥
नमोऽस्तु कालरुद्राय कालरूपाय ते नमः। स्वर्गापवर्गदात्रे च नमोऽप्रतिहतात्मने॥
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने। देवानां पतये तुभ्यं देवार्तिशमनाय ते॥

(कूर्मपुराण २। ४४। ५४—६४)

मुनियोंने कहा—कूर्मरूपधारी परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। विश्वरूप नारायण वासुदेव! आपको नमस्कार है। कृष्णको बार-बार नमस्कार है। गोविन्दको बारम्बार नमस्कार है। माधव! आपको नमस्कार है। यज्ञेश्वरको नमस्कार है। हजारों सिरवाले तथा हजारों नेत्रवाले आपको नमस्कार है। हजारों हाथ तथा हजारों चरणवाले आपको नमस्कार है। प्रणवस्वरूप, ज्ञानरूप, परमात्माको नमस्कार है। आनन्दरूप आपको नमस्कार है। आप मायातीतको नमस्कार है। गूढ (रहस्यमय) शरीरवाले आपको नमस्कार है। आप निर्गुणको नमस्कार है। पुराणपुरुष तथा सत्तामात्र स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सांख्य तथा योगरूप आपको नमस्कार है। अद्वितीय (तत्त्वरूप) आपको नमस्कार है। धर्म तथा ज्ञानद्वारा प्राप्त होनेवाले आपको तथा निष्कल आपको बार-बार नमस्कार है। व्योम-तत्त्वरूप महायोगेश्वरको नमस्कार है। पर तथा अवर पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले एवं वेदद्वारा वेद्य आपको नमस्कार है। शुद्ध (निराकार-स्वरूप) आपको नमस्कार है, बुद्ध (ज्ञानस्वरूप) आपको नमस्कार है। योगयुक्त तथा हेतु (अनन्त प्रपञ्चके मूल कारण) रूपको नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है। मायावी (मायाके नियन्ता) वेधा (विश्व-प्रपञ्चके स्रष्टा)-को नमस्कार है। वराहरूप आपको नमस्कार है। नरसिंह-रूपधारी आपको नमस्कार है। वामनरूप आपको नमस्कार है। हृषीकेश (इन्द्रियोंके ईश) आपको नमस्कार है। कालरुद्रको नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करनेवाले और अप्रतिहत आत्मा (शाश्वत अद्वितीय)-को नमस्कार है। योगाधिगम्य योगी और योगदाताको नमस्कार है। देवताओंके स्वामी तथा देवताओंके कष्टका शमन करनेवाले आपको नमस्कार है।

कूर्मपुराणकी महिमा

इय तु सहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता। भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्र सख्यया॥
यत्र धर्मार्थकामाना मोक्षस्य च मुनीश्वरा। माहात्म्यमखिल ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वर॥

(१।१।२३-२४)

'यह ब्राह्मी सहिता चारो वेदोसे अनुमोदित है। इसम श्लोकाकी सख्या छ हजार है। हे मुनीश्वरो! इसमे धर्म, अर्थ, काम एव मोक्षके सम्पूर्ण माहात्म्य एव परमेश्वर-ब्रह्मका ज्ञान होता है।

भूतैर्भव्यैर्भविष्यद्भिश्चरितैरुपबृहितम् । पुराण पुण्यद नृणा मोक्षधर्मानुकीर्तनम्॥

(१।२।२)

भूत, वर्तमान एव भविष्य-कालके चरितो (के समावेश)-से अति विस्तृत मोक्ष एव धर्मका वर्णन करनेवाला यह (कूर्म) पुराण मनुष्योको पुण्य प्रदान करता है।

एतत् पुराण परम भाषित कूर्मरूपिणा। साक्षाद् देवादिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥
य पठेत् सतत मर्त्यो नियमेन समाहित। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥
लिखित्वा चैव यो दद्याद् वैशाखे मासि सुव्रत। विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्य निबोधत॥
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वित। भुक्त्वा च विपुलान् स्वर्गे भोगान् दिव्यान् सुशोभनान्॥
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो विप्राणा जायते कुले। पूर्वसस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥
पठित्वाध्यायमेवैक सर्वपापै प्रमुच्यते। योऽर्थं विचारयेत् सम्यक् स प्राप्नोति पर पदम्॥
अध्येतव्यमिद नित्य विप्रै पर्वणि पर्वणि। श्रोतव्य च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नश। एकत्र चेद परममेतदेवातिरिच्यते॥
धर्मनैपुण्यकामाना ज्ञाननैपुण्यकामिनाम्। इद पुराण मुक्त्वैक नास्त्यन्यत् साधन परम्॥
यथावदत्र भगवान् देवो नारायणो हरि। कथ्यते हि यथा विष्णुर्न तथान्येषु सुव्रता॥
ब्राह्मी पौराणिकी चेय सहिता पापनाशिनी। अत्र तत् परम ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थत॥
तीर्थाना परम तीर्थं तपसा च पर तप। ज्ञानाना परम ज्ञान व्रताना परमं व्रतम्॥

(२।४४।१२२-१३३)

यह श्रेष्ठ (कूर्म) पुराण कूर्मरूपधारी विश्वयोनि साक्षात् देवोके आदिदेव विष्णुद्वारा कहा गया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक इस पुराणको पढता है वह सभी पापोसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठित होता है। जो पुरुष शास्त्रानुसार व्रतनिष्ठ होते हुए इस पुराणको लिखकर वैशाख मासमे वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करता है, उसका पुण्य सुनो—वह सभी पापासे रहित और सभी ऐश्वर्योसे सम्पन्न होते हुए (मृत्युके बाद) स्वर्गमे प्रचुर मात्रामे दिव्य तथा सुन्दर भोगोका उपभोग करता है, तत्पश्चात् स्वर्गसे इस लोकमे आकर ब्राह्मणाके वशमे उत्पन्न होता है और पूर्व सस्कारोकी महिमाके कारण ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेता है। इस (पुराण)-के एक ही अध्यायके पाठ करनेसे सभी पापोसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और जो इसके अर्थपर ठीक-ठीक विचार करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणाको प्रत्येक पर्वपर महापातकाका नाश करनेवाले इस पुराणका नित्य अध्ययन एव श्रवण करना चाहिये। एक ओर सभी इतिहास-पुराणाको (शास्त्रीय विचारणाकी कसौटीपर) रखा जाय और दूसरी ओर अकेले इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको रखा जाय तो यही अपेक्षाकृत अतिशय विशिष्ट सिद्ध होगा। जो व्यक्ति धर्ममें निपुणता प्राप्त करना चाहते हों और जो ज्ञानमे निपुणता प्राप्त करनेके अभिलाषी हो उनके लिये एकमात्र इस पुराणको छोडकर और कोई दूसरा श्रेष्ठ उपाय नहीं है। सुव्रतो! इस पुराणमें जिस प्रकारसे भगवान् हरि नारायण देव विष्णुका कीर्तन हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं है। यह

पौराणिकी ब्राह्मीसंहिता पापोंका नाश करनेवाली है। इसमें परम ब्रह्मका यथार्थरूपमें कीर्तन किया गया है। यह तीर्थोंमें परम तीर्थ, तपोंमें परम तप, ज्ञानोंमें परम ज्ञान और व्रतोंमें परम व्रत है।

> श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयं द्विजातिभिः। यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम्॥
> मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः। श्रोतव्यं चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम्॥
> ज्ञात्वा यथावद् विप्रेन्द्रान् श्रावयेद् भक्तिसंयुतान्। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥
> योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा। स प्रेत्य गत्वा निरयान् शुनां योनिं व्रजत्यधः॥
> नमस्कृत्वा हरिं विष्णुं जगद्योनिं सनातनम्। अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा॥
> इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः॥
> श्रुत्वा नारायणाद् दिव्यां नारदो भगवानृषिः। गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥
> पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः। मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्॥
> ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते। सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्॥
> सनकाद् भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः। अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्॥
> सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवतीसुतः। लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम्॥
> तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्। ऊचिवान् वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने॥
> तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये। पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने॥
> यस्मात् संजायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते। नमस्तस्मै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥
> (२। ४४। १३५—१४८)

द्विजातियोंके श्राद्ध अथवा देवकार्यमें इस ब्राह्मीसंहिता (कूर्मपुराण)-को सुनाना चाहिये। यज्ञकी पूर्णतापर विशेषरूपसे (इसका पाठ करनेसे एवं) श्रवण करनेसे सभी दोषोंसे शुद्धि हो जाती है। मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालोंको विशेषरूपसे वेदके अर्थका विस्तार करनेवाले इस शास्त्रका श्रवण, अध्ययन तथा मनन करना चाहिये। इसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्तकर भक्तियुक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको इसे (सबको) सुनाना चाहिये। इससे वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है। जो (व्यक्ति) श्रद्धारहित तथा अधार्मिक पुरुषको इसका उपदेश देता है, वह परलोकमें जाकर नरकोंका भोग भोगकर पुनः मृत्युलोकमें कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है। 'संसारके मूल कारण सनातन हरि विष्णु तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजीको नमस्कार करके इस शास्त्र (पुराण)-का अध्ययन करना चाहिये'—अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु और पराशरके पुत्र महात्मा विप्रर्षि व्यासकी ऐसी आज्ञा है। नारायणसे इस दिव्य संहिताको सुनकर भगवान् नारद ऋषिने पूर्वकालमें गौतमको इसका उपदेश दिया था और उनसे पराशरको यह (शास्त्र) प्राप्त हुआ। मुनीश्वरो! भगवान् पराशरने भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-रूप चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाले इस पुराणको मुनियोंसे कहा। पूर्वकालमें धीमान् सनक और सनत्कुमारको सभी पापोंका नाश करनेवाले इस शास्त्रका उपदेश ब्रह्माने दिया था। सनकसे योगज्ञानियोंमें श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् देवलने और देवलसे पञ्चशिखने इस उत्तम शास्त्रको प्राप्त किया। सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यास मुनिने सभी अर्थोंका संचय करनेवाले इस श्रेष्ठ पुराणको सनत्कुमारसे प्राप्त किया। उन व्याससे सुनकर मैंने आप लोगोंसे पापोंका नाश करनेवाले इस पुराणको कहा है। आप लोगोंको भी धार्मिक व्यक्तिको (इसका उपदेश) प्रदान करना चाहिये। पराशरके पुत्र सर्वज्ञ गुरु शान्त तथा नारायणस्वरूप महर्षि व्यासको नमस्कार है। जिनसे सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब लीन हो जाता है उन देवताओंके स्वामी कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है।

कूर्मपुराणमें युगधर्म

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

पुराण साहित्यके अनुसार महापुराणोंके परिगणना-क्रममें कूर्मपुराणका पन्द्रहवाँ स्थान है और इसके चार संहिता-भेद हैं जो धर्मादि पुरुषार्थप्रद हैं। जैसा कि कूर्मपुराण (१।१।२१-२२)-के निम्न वचनोंसे ही स्पष्ट हो जाता है—

इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिता।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥

पुरुषार्थकी सिद्धिसे परमेश्वरके समस्त माहात्म्यका ज्ञान एवं ब्रह्मानुभूति होती है। इस पुराणके उपलब्ध एकमात्र ब्राह्मीसंहितामें स्थान-स्थानपर तत्सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं तथा मानव-जीवनको सार्थक करनेसे सम्बन्धित विषयोंका प्रतिपादन सरल शैलीमें किया गया है और साथ ही घोर कलि-कालुष्यसे बचनेके विविध उपाय यहाँ बताये गये हैं।

कृत त्रेता द्वापर और कलि—इन चारों युगोंके प्रभावके सम्बन्धमें इस पुराणमें विस्तृत विवेचन हुआ है। एक समयकी बात है—श्रीनारायणके अवतार श्रीकृष्णके अपने परमपदको चले जानेपर परम धर्मात्मा पार्थ अत्यधिक शोकाकुल हो गये। उसी समय शिष्य-प्रशिष्योंके साथ मार्गमें जाते हुए महर्षि व्यासजीको देखकर वे दण्डवत् प्रणामकर पूछते हैं—आप अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक कहाँ जा रहे हैं भगवन्? आपको आते हुए देखकर मेरा शोक दूर हो गया है। अब मेरा कर्तव्य क्या है? आप आज्ञा दें।

तब महर्षि व्यासजी अर्जुनको लक्ष्य करके लोकोपकारक युगधर्मका निरूपण करते हुए घोर कलियुगके विषयमें कहते हैं—

हे पाण्डुनन्दन! घोर कलियुग प्राप्त हो गया है इसलिये मैं पवित्र वाराणसीपुरीकी ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। इस घोर कलियुगमें समस्त लोग वर्णाश्रमधर्मका परित्यागकर पापाचरण करनेवाले हो जायँगे[1]।' अतः इस कलियुगमें वाराणसीको छोड़कर अन्य कोई दूसरा स्थान नहीं है, जहाँ पापोपशमन हो सके। कृत, त्रेता और द्वापर-युगोंमें सभी मनुष्य धार्मिक और सत्यवादी होते थे। तुम तो लोकमें विख्यात धृतिमान् और लोकप्रिय हो तुम अपने धर्मका पालन करो।

अर्जुनके पुनः प्रश्न करनेपर महर्षिने कहा—'कलियुगमें दानकी श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है, जबकि कृतयुगमें ध्यानकी, त्रेतायुगमें ज्ञानकी तथा द्वापरयुगमें यज्ञकी महत्ता थी[2]।' यद्यपि ब्रह्मा कलियुगके देवता माने जाते हैं, त्रेता और द्वापरके देवता क्रमशः भगवान् रवि और विष्णु हैं तथा कलियुगके देवता भगवान् महेश्वर हैं, तथापि कलियुगमें ये चारों ही देवता पूजे जाते हैं। कृतयुगमें धर्म चार पादोंमें स्थित था त्रेतामें उसके तीन पाद और द्वापरमें दो ही पाद हो गये। अब तो धर्म सत्तामात्रसे त्रिपादहीन होकर स्थित है।

कृतयुगमें प्रजा सदा संतृप्त तथा आनन्दोपभोग करनेवाली थी। किसी बातकी कमी नहीं थी। समान आयु और सुखके कारण सब शोकरहित थे तथा ध्याननिष्ठ, तपोनिष्ठ, महादेवपरायण और संतुष्टान्तरङ्ग वे लोग निष्कामभाववाले थे—

ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः॥
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।
(१।२७।२३-२४)

राग-लोभात्मक भावोंके उदयसे मनुष्योंके जीवनक्रममें अन्तर आ गया तो ब्रह्माने ब्राह्मणोंके हितार्थ क्षत्रियोंकी सृष्टि की और वर्णाश्रम-व्यवस्था भी की—

ससर्ज क्षत्रियान् ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय च॥
वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान् प्रभुः।
(१।२७।४७-४८)

द्वापरमें पशुहिंसा-विवर्जित यज्ञका प्रवर्तन किया गया। मनुष्योंके मतभेद बुद्धि एवं उनके राग-लोभादिको दृष्टिमें रखकर वेदोंका चतुर्धा विभाजन तथा ब्राह्मण आरण्यक एवं कल्पसूत्रादि कर्म-विधायक ग्रन्थोंकी रचना हुई तथा इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रोंका भी उदय हुआ। युगधर्मके कर्तव्याकर्तव्य-निर्धारणमें ये ही आर्यसाहित्य प्रामाणिक आधार हैं। अतिवृष्टि और मरण-जैसे उपद्रव होने तथा

१-इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन। ततो गच्छामि देवस्य वाराणसीं महापुरीम्॥
अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्तिनः। भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिताः॥ (१।२७।८-९)
२-आद्यं कृतयुगं प्राक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः। तृतीयं द्वापरं पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे॥ (१।२७।१६-१७)

मन-वाणी एव कर्मजन्य दोपके कारण मनुष्योमे स्वभावत दु खसे बचनेका विचार उत्पन्न होता है और वैराग्यका मार्ग प्रशस्त होता है। वैराग्यसे दोपदर्शन होनेपर ज्ञान-प्राप्तिकी सम्भावना सहज-रूपमे हो जाती है। फलस्वरूप व्यक्तिका आध्यात्मिक उत्कर्ष हो जाता है।

परतु कलियुगमें इसके विपरीत मनुष्योंकी धार्मिक वृत्तिमें क्रमश ह्रास होता गया। कूर्मपुराण (१। २८। २-३)-के अनुसार इसका स्पष्ट प्रत्यक्ष हो जाता है—

कलौ प्रमारको रोग सतत क्षुद्भय तथा।
अनावृष्टिभय घोर देशाना च विपर्यय ॥
अधार्मिका अनाचारा महाकोपाल्पचेतस ।
अनृत वदन्ति ते लुब्धास्तिष्ये जाता सुदु प्रजा ॥

रोग, क्षुद्भय, अनावृष्टि, दुराचार, लोभ, मोह असत्यभाषण आदिके कारण इस युगके लोग 'सत्प्रजा' कहलाने योग्य नहीं है। विप्राके कर्मदोपके परिणामस्वरूप प्रजामे भय उत्पन्न होता है। वे अपने विहित कर्मोका परित्यागकर अल्पबुद्धिवाले हो जाते हैं। और भी—

शूद्राणा मन्त्रयौनैश्च सम्बन्धो ब्राह्मणै सह।
भविष्यति कलौ तस्मिञ्शयनासनभोजनै ॥
राजान शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति च।
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेते नरेश्वर॥
(१। २८। ६-७)

स्नान, होम जप, देवाराधन और अन्य कर्मोसे भ्रष्ट हो जानेके कारण ब्राह्मणोंकी दु स्थिति होती है। लोग उनकी ही नहीं, देवताओकी तथा आम्नाय-धर्मशास्त्र-पुराणोंकी भी निन्दा करते हैं। अवैदिक कर्मका आचरण करते हैं, अपने धर्ममे रुचि नहीं रखते। ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट होते हैं और समाजमे अधार्मिकाचरणका बोलबाला हो जाता है। वेदविक्रय और तीर्थविक्रय करनेवाले भी हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अल्पबुद्धिवाले लोग आसनस्थ द्विजोंका सदैव अपमान किया करते हैं। अन्य लोगोकी सेवाके लिये विवश द्विजाकी स्थिति शोचनीय होती है। वेदाध्ययन-परम्परामे क्षति आ जाती है। अपनेको यति, ज्ञानी कहने-कहलानेवाले लोगोकी सख्या अधिक हो जाती है। लौकिक गानका आधिक्य और वामाचारका प्राबल्य हो जाता है। अज्ञान-तमसाविष्ट लोग महादेवकी निन्दा करते हैं और कलियुगान्तमे वृथाधर्मका आचरण करते हैं। पाखडियाकी सख्या बढ जाती है।

इस प्रकार विविध दोपासे परिपूर्ण कलियुगम रहनेवालाके लिये इनसे बचनेके क्या उपाय हैं? इस युगके लोग कैसे पुरुपार्थकी साधना कर सकते हैं और कैसे मोक्षकी प्राप्ति कर सकते हैं? इन सभी प्रश्नोके सम्यक् समाधान-हेतु 'कलौ रुद्रो महादेव लोकानामीश्वर पर '—इस वचनको आधृत कर हमें उन्हीं महादेवकी शरणमें जाना चाहिये, क्योंकि भगवान् नीललोहित भक्तोंके हितके लिये, श्रौत-स्मार्त-प्रतिष्ठार्थ अवतार ग्रहण कर ब्रह्मज्ञानका (कूर्म० १। २८। ३४-३५ मे) उपदेश देते हैं—

सर्ववेदान्तसार हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥
ये त विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारत ।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परम पदम्॥

भगवान्से उपदिष्ट वेद-निर्देशित उस वेदान्तसारको ग्रहण करके म्लान-हृदय लोग कलिके दोपोसे दूर हो सकते हैं और परमपदको प्राप्त कर सकते हैं। अनेक दोपोसे परिपूर्ण होनेपर भी इस कलियुगका यह एक महान् गुण है कि इस युगमे अनायास ही महत्पुण्य प्राप्त हो जाता है—

अनायासेन सुमहत्पुण्यमाप्नोति मानव ।
अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेष महान् गुण ॥
(१। २८। ३६)

अत प्राणिमात्रको युगधर्मरूप स्वधर्माचरणके द्वारा इस कलियुगमे दोप-निवारणके लिये प्रयत्न करना चाहिये, क्याकि शास्त्रविहित युगधर्मोके आचरणसे व्यक्ति परमपद-मोक्षका अधिकारी हो जाता है। कलियुगमे रुद्र-नमस्कारसे जो फलकी प्राप्ति होती है वह अन्य देवोके नमस्कारसे प्राप्तव्य नहीं। अतएव परमपदकी इच्छा करनेवालोको चाहिये कि वे परमेश्वरम ऐकान्तिक भक्ति रख तथा उनकी ही शरणमे जायँ। जो लोग परमेश्वरका अर्चन नहीं करते, उनके द्वारा किये गये दान, तप और यज्ञ भी सार्थक नहीं होते। इसलिये परमेश्वर ही सदा सेव्य हैं, वरेण्य हैं—

तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देव महेश्वरम्।
समाश्रयेद्विरूपाक्ष यदीच्छेत् परम पदम्॥
(१। २८। ४१)

'कृष्णद्वैपायन साक्षाद् विष्णुरेव सनातन ' कहनेसे भगवान् व्यास महर्पिके उपदेशका सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। (कूर्म० १। २८। ४३ मे वर्णित) उन्हींके शब्दाम हम महादेवकी स्तुति कर अपनेको धन्य मान सकते हैं—

नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिना गुरवे नम ॥

कूर्मपुराण और सनातनधर्म

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

पुराण सनातन वैदिक धर्मके उद्घाटक हैं। इनमें देश, काल तथा परिस्थितिके अनुसार सामान्य जन-बोधकताको लक्ष्यमें रखकर वेदोक्त गूढ सिद्धान्त कथा-कहानीकी सरल, सुबोध शैलीमें मनिरूपित हैं। प्रत्येक पुराण पृथक्-पृथक् नामासे मूलत सच्चिदानन्दघन परमेश्वरकी आराधनाको ही केन्द्रमें रखकर विलिखित है। मत्स्यपुराणके अनुसार तो समाप्तिके प्रलयके समय मनुकी नौकामें जगत्की पुन सृष्टि-हेतु जो बीजभूत वस्तुएँ सुरक्षितकर रखी गयीं उनमें पुराण मुख्य थे, यथा—

> एक स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परंतप।
> सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वित ॥
> नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषि ।
> भवो वेदा पुराणानि विद्याभि सर्वतोवृतम्॥
>
> (मत्स्यपुराण २। १२-१३)

जिस प्रकार मत्स्यपुराण मत्स्यावतारी भवभयहारी मधुकैटभविदारी त्रैलोक्यधारी साक्षात् प्रभु विष्णुके अवतार भगवान् महामत्स्यके मुखारविन्दसे नि सृत पियूषवाक् है, उसी प्रकार ९५ अध्यायों एव छ हजार श्लोकोंमें विभक्त कूर्मपुराण भी वैष्णव राजा इन्द्रद्युम्नको सम्बोधितकर कूर्मावतारधारी लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त उपदेश-संग्रह है। नारदपुराणके अनुसार कूर्मपुराणमें पहले ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी कुल चार संहिताएँ थीं जिनमें १७ से १८ हजारतक श्लोक थे किंतु आज मात्र छ हजार श्लोकों-वाली ब्राह्मीसंहिता ही उपलब्ध होती है जिसके पूर्वविभागमें ५१ एव उत्तर (उपरि) विभागमें ४४ अध्याय हैं—

> ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिता।
> चतस्र संहिता पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥
> इय तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मता।
> भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥
>
> (पुराणविमर्श पृ० १५९)

सर्ग प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एव वंशानुचरित पुराणके इन पाँचो लक्षणोंसे पूर्णतया समन्वित तथा अनेक प्राचीन पुराणोंसे भी प्राचीन पुराणके रूपमें स्वीकृत और प्रयाग वाराणसीप्रभृति तीर्थों गङ्गा-यमुना आदि नदियों कृत्तिवासेश्वर, कपर्दीश्वर मध्यमेश्वर एव आदित्य-प्रभृति देवताओं पर्वतों लोकपालों केतुमालादि वर्षों तथा प्लक्ष-पुष्कर एव जम्बूद्वीप इत्यादि भूभागोंके विस्तृत विवेचनोंसे आपूरित कूर्मपुराणकी सर्वपापविनाशिनी, निर्मल, निष्कलुष ज्ञानसरिता भगवान् विश्वयोनिसे प्रकट होकर राजा इन्द्रद्युम्नकी मोक्षप्राप्ति वर्णाश्रमधर्म, कालविवरण, पृथिवी-उद्धार, विश्वसृष्टि, रुद्रसृष्टि, पद्मोद्भव-प्रादुर्भाव, दक्षवनार, देवी-माहात्म्य, दक्षकन्या-वंश, स्वायम्भुव-वंश, कश्यपादि ऋषि इक्ष्वाकु-सोम जयध्वज-राजा यदु तथा युगवंश, त्रिविक्रमचरित, लिङ्गोत्पत्ति, श्रीकृष्ण-चरित्र तथा पार्थके व्यासदर्शन-प्रभृति विषयोंसे सम्पृक्त चिन्तन-बिन्दुओं (घाटों)-को कृतार्थ करती हुई ईश्वरगीता आध्यात्मिक ज्ञानसागरमें पर्यवसित हो जाती है।

ईश्वरगीताका आकार व्यासगीतासे छोटा है, क्योंकि ईश्वरगीता ऋषि-व्यास-संवाद शुद्ध परमात्मस्वरूप योग, प्रकृति-पुरुष शिव और पशु-पाश-विमोक्षादि विषयोंके विवेचनसे मण्डित कुल ११ अध्यायोंमें समाविष्ट है। जबकि व्यासगीता कर्म सदाचार, धर्म, भक्ष्याभक्ष्य-मीमांसा भोजनादि-प्रकार श्राद्ध कल्प, दान प्रायश्चित्त विविध तीर्थमाहात्म्य नर्मदा नदी, देवदारुवन तथा चतुर्विध प्रलयादि विषयोंके वर्णनोंसे समन्वित है।

कूर्मपुराणके अन्तर्गत प्राप्त विशिष्टताएँ अपने-आपमें अद्भुत और अद्वितीय हैं, क्योंकि इसमें मानव-जीवनके विकास तथा सकुशल निर्वाहके लिये असंख्य शाश्वत जीवन-मूल्य संगृहीत हैं। इस संदर्भमें यह कहना अतिशयोक्ति-पूर्ण न होगा कि विज्ञान और पुराणकी तुलना करनेपर विज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंका विज्ञान *अधिक प्रामाणिक सिद्ध* होता है। यहाँ ब्रह्मचर्यसे लेकर संन्यासपर्यन्त चारों आश्रमों *एव चारों वर्णोंके धर्मोंकी विस्तृत समीक्षा की गयी है।* नित्यकर्म संध्योपासन तथा अग्निहोत्र-प्रभृति वर्ण्यविषयोंका *सर्वाङ्गीण चित्रण* तो यहाँ दृष्टिगोचर होता ही है, साथ-साथ उन सबका ज्ञान भी प्राप्त होता है। इन सभी विषयोंके उपस्थापनका लक्ष्य है—समूचे मानव-समाजका सनातन-धर्मकी पद्धतिसे वर्णाश्रम-व्यवस्थाके अनुरूप जीवन-यापनकी प्रेरणा देना। वस्तुत यदि समाज कूर्मपुराणमें निरूपित सिद्धान्तोंके अनुसार आचरण आरम्भ कर दे तो राष्ट्रकी सारी समस्याएँ स्वत सुलझ जायँगी।

सृष्टिकी स्वाभाविकता, पर्वत, सूर्य-चन्द्र तथा कलियुगके भावी स्वरूपके साङ्गोपाङ्ग-निदर्शक होनेके साथ-साथ कूर्मपुराण साम्प्रदायिक एकताका निर्विवाद सदेशवाहक है, क्योंकि यह वह पुराण है, जिसमे शैवो तथा वैष्णवोमे कोई विवाद दृष्टिगोचर नहीं होता। विद्वानोके अनुसार यद्यपि कूर्मपुराण एक शैवपुराण है, फिर भी इसमे शिव तथा विष्णुमें अभेद स्वीकारते हुए कहा गया है कि—

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिन ।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति॥

× × ×

तथेत्युक्त्वा महादेव पुनर्विष्णुमभाषत।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्॥
मन्मय त्वन्मय चैव सर्वमेतन्न सशय ।
भवान् सोमस्त्वह सूर्यो भवान् रात्रिरह दिनम्॥
भवान् प्रकृतिरव्यक्तमह पुरुष एव च।

(कूर्मपुराण १। ९। ८६ ८२—८४)

अर्थात् जो ब्रह्मवादी योगीजन हैं, वे हम दोनोको एकीभावसे देखा करते हैं। हे विश्वात्मन्! आपका आश्रय ग्रहण किये बिना योगी मुझे नहीं प्राप्त करेगा। भगवान् शिवने विष्णुजीसे कहा कि आप समस्त कार्योके करनेवाले हैं और मैं उनका अधिदैवत हूँ। (ससारका) सब कुछ नि सदेहरूपसे मेरा और आपका ही स्वरूप है। यदि आप सोम हैं तो मैं सूर्य हूँ, आप रात्रि हैं तो मैं दिन और आप अव्यक्त हैं तो मैं पुरुप हूँ।

ठीक इसी आशयका वर्णन ईश्वरगीतामे भी देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कूर्मपुराणमे अद्वैत वेदान्तके सिद्धान्तोका भी बहुधा उल्लेख है, जैसे-ब्रह्मस्वरूपके निरूपण-प्रसगमें-'अणोरणीयान् महतो महीयान्' एव 'वेदाहमेत पुरुष महान्तमादित्यवर्णं पुरुष पुरस्तात्' आदि उपनिषद्-वाक्योंका कूर्मपुराणमे ज्यो-का-त्यो प्रयोग दिखायी पडता है।

कूर्मपुराणके वर्ण्यविपयोका सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेपर प्रतीत होता है कि पुराणकारको केवल अध्यात्म, सृष्टि एव वश-वर्णनकी चिन्ता ही नहीं, बल्कि उन्हे पर्यावरणकी दृष्टिसे समाजके मानसिक एव बाह्य स्वच्छता तथा स्वास्थ्य-रक्षाका भी ध्यान था। इसीलिये उन्होने कूर्मपुराणम स्नान, भोजन शौच स्पर्शास्पर्श शयन आहार-विहार, सद्व्यवहार, सत्य और अहिसाका पालन उच्च विचार पाप-पुण्य एव मनोभावोकी शुद्धताके सम्बन्धमे स्थान-स्थानपर गम्भीर चर्चाएँ की हैं, जिससे समाजके बाह्य और आभ्यन्तर दोनो पक्षोमे शुचिता आ जाय। इसी कारण यहाँ क्रोध,मोह, मद, लोभ, दम्भ, निन्दा तथा ईर्ष्या-द्वेपादिका विरोध और सौहार्द, सहयोग, त्याग, दान एव परोपकारादिको पुण्यप्रद होनेका समर्थन किया गया है तथा गायत्री-मन्त्रके जपको द्विजत्वका प्रधान चिह्न स्वीकारते हुए ब्राह्मणके लिये गायत्रीकी महिमाको पूर्णत प्रतिष्ठित किया गया है। यथा—

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्या पर जप्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते॥

(कूर्मपुराण २। १४। ५६)

अर्थात् लोकपावनी गायत्री वेदाकी जननी है तथा द्विजके लिये गायत्रीके जपसे बढकर अन्य कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त भगवान्‌के सगुण और निर्गुण उपासनाके पारस्परिक मतभेदोका परिहार करते हुए कहा गया है—

गीयते सर्वशक्त्यात्मा शूलपाणिर्महेश्वर ॥
एनमेके वदन्त्यग्नि नारायणमथापरे।
इन्द्रमेके परे विश्वान् ब्रह्माणमपरे जगु ॥
ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणा सर्वे देवास्तथर्षय ।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिता ॥

(कूर्मपुराण २। ४४। ३५-३७)

अर्थात् समस्त देवशक्तियाँ वस्तुत एक ही हैं। अपनी भावना और बुद्धिके अनुसार उसी एक शक्तिको कोई अग्नि कहता है, कोई नारायण, कोई इन्द्र, विश्वेदेव या ब्रह्मा कहता है, किंतु ये सभी देवता और ऋषि एक ही भगवान् रुद्रके भेद हैं।

इस प्रकार सनातन वैदिक धर्म, भारतीय सनातन सस्कृति राष्ट्रियता एव परम्परा तथा भारतीय पुराण-विज्ञानके उद्वाहक कूर्मपुराणका हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशन न केवल पुण्यप्रद है, अपितु सनातन वैदिक धर्म दर्शन तथा सस्कृतिके प्रचार-प्रसारम अभूतपूर्व योगदान भी है। कहना न होगा कि ऐसे पवित्र कार्योंको ही सनातनधर्मके प्रति समर्पण—प्रणिपात कहा जाता है। मै इस परम पावन कार्यके लिये सम्पादक एव सम्पादक-मण्डलको आशीर्वाद देते हुए भगवान् द्वारकाधीश तथा चन्द्रमौलीश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इन्ह ऐस सत्कार्योंके लिये सतत प्रेरणा और शुभ अवसर प्रदान करत रह।

श्रीकूर्मपुराणोपक्रम-निरूपण

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

[१] पुराण-परिचय—'इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च प्रकीर्तितम्'—इस सीतोपनिषद्के अनुसार इतिहास और पुराण (वेदोके) उपाङ्ग हैं। इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही वेदोके अर्थका विस्तार और समर्थन करना चाहिये। जो इतिहास और पुराणोसे अनभिज्ञ है, उससे वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार कर देगा—'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामय प्रहरिष्यति॥' (महाभारत, आदिपर्व १। २६७-२६८)।

श्रीरोमहर्षण सूत और शौनक महर्षिके सवादके माध्यमसे कूर्मपुराणकी अभिव्यक्ति हुई है। इतिहास और पुराणका अध्ययन करनेके लिये सूतजी भगवान् व्यासके शरणागत हुए। कथा सुनते और सुनाते समय सूतजीकी वाणी हर्षित हो जाती थी तथा उनके सभी रोम आनन्दोद्रेकसे उत्फुल्ल हो जाते थे, अत स्वय श्रीव्यासदेवने सूतजीका नाम 'रोमहर्षण' रखा। स्वायम्भुव-यज्ञमे भगवान् पुरुषोत्तमके अशसे क्षात्रतेजसम्पन्न इन्द्र और ब्राह्मतेजसम्पन्न बृहस्पति-सम्बन्धी चरुके साकर्यसे पुराणसहिताके व्याख्यानके लिये रोमहर्षण सूतजी युगादिमे प्रादुर्भूत हुए।

नैमिषारण्यमे शौनकादि महर्षियोंके पूछनेपर सूतशिरोमणि श्रीरोमहर्षणजीने कहा—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित दिव्या पुण्या प्रासगिकी कथा ॥
(पूर्वविभाग १। २५)

'सर्ग, प्रतिसर्ग, वश मन्वन्तर और वशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं, इनमे दिव्य एव पवित्र प्रासगिक कथाओका सुन्दर समन्वय हुआ है।'

ब्रह्म पद्म विष्णु, शिव भागवत भविष्य नारद मार्कण्डेय अग्नि ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द वामन कूर्म मत्स्य गरुड और वायु—ये अठारह पुराण हैं। अन्यान्य उपपुराण भी मुनिपुङ्गव व्यासके द्वारा निगदित हैं। यह पद्रहवाँ कूर्मपुराण ब्राह्मी भागवती, सौरी और वैष्णवी—इन चार सहिताओमें उपनिबद्ध है। ये चारो सहिताएँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टयको देनेवाली हैं। अठारह हजार श्लोकोंसे मण्डित इस कूर्मपुराणकी ब्राह्मीसहितामें छ हजार श्लोकोका सनिवेश है।

[२] पुराणोपक्रम—पूर्व समयमें अमृत-प्राप्तिके लिये दैत्य और दानवोके सहित देवताओने मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीरसागरका मन्थन किया। देवताओके हितकी कामनासे कूर्मरूपी जनार्दनने मथानीरूप मन्दर पर्वतको धारण किया। स्वय अव्ययात्मा पुरुषोत्तम विष्णुके कूर्मावतारका दर्शन कर इन्द्रादि देवोंके सहित देवर्षि नारदादि परम प्रमुदित हुए। उनके देखते-देखते सर्वशक्तिसमुद्भूता पराशक्तिस्वरूपा महामाया श्रीलक्ष्मीजीका आविर्भाव हुआ। जन्मान्तरमे इन्द्रद्युम्न नामक प्रसिद्ध राजर्षि भगवान्के अनुग्रहसे द्विजेश्वर हुए। द्विजेश्वर इन्द्रद्युम्नके पूछनेपर विष्णुचिह्नाङ्किता महामायाने कहा—

न मा पश्यन्ति मुनयो देवा शक्रपुरोगमा ।
नारायणात्मिका चैका मायाह तन्मया परा॥
न मे नारायणाद् भेदो विद्यते हि विचारत ।
तन्मयाह पर ब्रह्म स विष्णु परमेश्वर ॥
येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रय परमेश्वरम्।
ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषा प्रभवाम्यहम्॥
तस्मादनादिनिधन कर्मयोगपरायण ।
ज्ञानेनाराधयानन्त ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥
(पूर्वविभाग १। ५७—६०)

'इन्द्रादि देव और मुनिगण भी मुझ एक नारायणस्वरूपा देवीको नहीं जानते। मैं नारायणमयी महामाया हूँ। वस्तुत मेरा नारायणसे भेद नहीं है। मैं तन्मयी हूँ। वे विष्णु परमेश्वर हैं। जो भूतोंके परमाश्रय उन परमेश्वरकी कर्मयोग और ज्ञानयोगसे अर्चा करते हैं मैं उनके प्रति प्रवृत्त नहीं होती, वे ही मुझ दुरत्यय मायाको तर जाते हैं। इसलिये तुम उन्हीं परात्पर प्रभुकी कर्म और ज्ञानयोगसे आराधना करो तुम

मोक्षको प्राप्त करोगे।'

देवीके कहनेपर इन्द्रद्युम्नने भगवान् विष्णुकी आराधना की। उनपर प्रसन्न होकर पीताम्बरधर गरुडध्वज परात्पर पुरुषोत्तम प्रकट हो गये। ब्राह्मणदेवने उनकी स्तुति की। भूतात्मा भूतभावन भगवान्‌ने दोनों हाथोंसे उनका स्पर्श किया। स्पर्शमात्ररूप भगवत्प्रसादसे इन्द्रद्युम्नको परमानन्द-सिद्धिप्रद ब्रह्मैकविषयक विज्ञान उत्पन्न हो गया। पुनः ब्राह्मणके पूछनेपर सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये श्रीहरिने कहा—

वर्णाश्रमाचारवता पुंसा देवो महेश्वरः।
ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा॥
विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम्।
प्रवृत्तिं चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत्॥
सर्वसङ्गान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत्।
अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्॥

(पूर्वविभाग १। ८५—८७)

'वर्णाश्रमाचारयुक्त पुरुषके लिये देव महेश्वर ज्ञान और भक्तियोगसे पूजनीय हैं, किसी और प्रकारसे नहीं। उस परम तत्त्वको तथा कार्यकारणरूप विभूतिको जानकर और मेरी प्रवृत्तिको भी जानकर मोक्षार्थी ईश्वरकी अर्चना करे। जगत्‌को मायामय जानकर, आसक्तिका परित्याग कर आत्माकी अद्वितीयताकी भावना करो। भावकी परिपक्वताके फलस्वरूप परमेश्वरका साक्षात्कार करोगे।'

पुनः कूर्मरूप श्रीहरिने कहा—अद्वितीय अव्ययात्मा परात्पर परब्रह्म तत्त्व है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसका नित्यैश्वर्य ही विभूति है। जगत् कार्य है। अव्यक्त कारण है। सर्वभूतोंका अन्तर्यामी परमेश्वर शुद्धाक्षर मैं ही हूँ। सृष्टि-स्थिति-संहार ही मेरी प्रवृत्ति है। हे द्विज! इस तथ्यको भलीभाँति जानकर तुम कर्मयोगके द्वारा परमेश्वरकी समर्चना करो।

भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार इन्द्रद्युम्न भावपूर्ण हृदयसे भगवान्‌की आराधना कर उसके अमोघ प्रभावसे पुत्रादिके स्नेहको विच्छिन्न कर संन्यासी हो गये। उन्होंने उस परम योगको भी प्राप्त कर लिया जो कि ब्रह्मात्मतत्त्वको एकत्वविज्ञानरूप है।

कालान्तरमें ऋषियोंके पूछनेपर कूर्मरूप जनार्दनने कहा—मैंने महासर्गके आरम्भमें देवशिरोमणि ब्रह्माकी रचना की। ब्रह्माने ब्राह्मणादि वर्णोंकी सृष्टि की। ऋक्, यजु, साम और अथर्व-संज्ञक चतुर्वेद ब्रह्माके सहज रूप हैं। अनादि, अनन्त, नित्य, अव्ययशक्तिस्वरूपा यह दिव्या वाग्देवी स्वयम्भू ब्रह्माके द्वारा वेदमयी होकर स्फुरित हुईं। इसीसे सभी प्रवृत्तियोंकी सिद्धि होती है। वेदार्थनिष्ठ मुनियोंने तदनुरूप जिन मन्वादि स्मृतियोंकी रचना की, उन्हींका वेदज्ञ मनीषियोंको अनुसरण करना चाहिये। मुनियोंके द्वारा स्मृत धर्मको ही परम धर्म समझना चाहिये। जो भी मनमाने विचारसे रचित वेदबाह्य स्मृतियाँ हैं, वे सब निष्फल हैं, क्योंकि उनके द्वारा निरूपित कर्मोंकी गति निःश्रेयसप्रद नहीं है। अतएव तमोनिष्ठ स्मृतियोंका दूरसे ही त्याग उचित है—

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च।
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया॥
अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

(पूर्वविभाग २। २६-२७, ३०)

मन्वादि स्मृतियोंमें यजन, याजन, दान देना, दान लेना, अध्ययन और अध्यापन—ये छः कर्म ब्राह्मणोंके कहे गये हैं। दान देना, अध्ययन करना और यज्ञ करना—ये क्षत्रिय-वैश्यके कर्म कहे गये हैं। दण्ड और युद्ध क्षत्रियके धर्म हैं। कृषि वैश्यका कर्म है। द्विजातियोंकी शुश्रूषा ही शूद्रोंका धर्म है। अग्निक्रिया और अतिथियोंकी शुश्रूषा, यज्ञ, दान, देवार्चन—ये गृहस्थके धर्म हैं। होम, फल-मूलसेवन, स्वाध्याय, तप, शास्त्रानुसार बलिवैश्वादि—ये वानप्रस्थके धर्म हैं। भिक्षाशन, मौन, तप, ध्यान, ज्ञान और वैराग्य संन्यासीके धर्म हैं। भिक्षाचर्या, गुरु-शुश्रूषा, स्वाध्याय, संध्या, हवन—ये ब्रह्मचारियोंके कर्म हैं।

वर्णाश्रमियोंको स्वधर्म-संरक्षणको सदैव तत्परतासे

पालन करना चाहिये, क्योंकि धर्मसे ही अर्थ, काम एव मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतएव धर्मका ही समाश्रयण करना चाहिये—

धर्मात् सजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्म समाश्रयेत्॥
(पूर्वविभाग २। ५२)

यह भी ध्यान रहे कि वैदिक कर्म दो प्रकारके होते हैं—'प्रवृत्त और निवृत्त'। ज्ञानपूर्वक किया गया कर्म निवृत्त है तथा उससे भिन्न किया गया कर्म प्रवृत्त कहलाता है। निवृत्तका सेवन करनेवाला पुरुष परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये ज्ञान-विज्ञानादि निवृत्त कर्म ही ससेवनीय हैं, अन्यथा पुन ससरण सुनिश्चित है।—

प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकम्।
ज्ञानपूर्वं निवृत्त स्यात् प्रवृत्त यदतोऽन्यथा॥
निवृत्त सेवमानस्तु याति तत् परम पदम्।
तस्मान्निवृत्त ससेव्यमन्यथा ससरेत् पुन ॥
(पूर्वविभाग २। ६१-६२)

क्षमा, दम, दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव, असूया, तीर्थानुसरण, सत्य, सतोष, आस्तिक्य, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवद्विजपूजन, अहिसा प्रिय भाषण अपैशुन्य, अकलह—ये चारों वर्णोंके सामान्य धर्म हैं।

क्रियाशील ब्राह्मणोका प्राजापत्य स्थान (विराट्लोक) है। सग्राममे पलायन न करनेवाले क्षत्रियाका ऐन्द्र स्थान है। स्वकर्मरत वैश्याका मारुत स्थान है। सेवाशील शूद्रोका गान्धर्व स्थान है। गृहस्थोंका प्राजापत्य स्थान है। वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक है। ब्रह्मचारियोंका स्थान ऊर्ध्वरेता ऋषियोंका लोक है। ऊर्ध्वरेता सन्यासियोका हैरण्यगर्भ लोक है। योगियोंका परमाक्षर परव्योम अमृत स्थान है। वह आनन्दस्वरूप ऐश्वरधाम है। वह काष्ठा और परा गति है, जिसे प्राप्तकर पुनरावर्तन नहीं होता।

परब्रह्म परमात्मा ही रज सत्त्वतमोगुणके योगसे क्रमश ब्रह्मा विष्णु और महेश-सना धारण करते हैं। ये त्रिदेव लीलापूर्वक परस्पर अनुरक्त हैं आश्रित हैं तथा अन्योन्यप्रणत भी हैं—

तिस्रस्तु मूर्तय प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
रज सत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मन ॥
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविन ।
अन्योन्य प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वरा ॥
(पूर्वविभाग २। ८९-९०)

ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूपसे प्रयोजनवशात् एक ही परमेश्वर माने गये हैं, अतएव सर्वप्रयत्नसे इन वन्दनीयोकी वन्दना और पूजनीयोकी पूजा करनी चाहिये। यदि मोक्ष नामक अव्यय पदको शीघ्र पाना चाहे तो वर्णाश्रमप्रयुक्त धर्मसे प्रीतिभावपूर्वक यावज्जीवन प्रतिज्ञापूर्वक इनकी पूजा करे—

तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वर पर ।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनू कार्यवशात् प्रभो ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्या पूज्या प्रयत्नत ।
यदीच्छेदचिरात् स्थान यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥
वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसयुत ।
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीव प्रतिज्ञया॥
(पूर्वविभाग २। ९५—९७)

श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप त्रिदेवोंकी प्रसन्नताके लिये उनके उपासकोको भालपर तिलक भी धारण करना चाहिये। जो ब्रह्मतेजोमय शुक्ल सूर्यमण्डल है, उसीका सूचक ललाटमे बिन्दुरूप तिलक है। जगद्बीज अनादि भूतादिका आत्मा परमेष्ठी ब्रह्माकी प्रसन्नताके लिये उपासक भक्त उसे धारण करे अर्थात् भालपर ब्रह्ममूर्तिको प्रतिष्ठित करे।

वैष्णवोंको गन्ध-वारिके द्वारा ललाटमें सदा शूल (ऊर्ध्वपुण्ड्र) धारण करना चाहिये। शिवभक्ता (शैवा)-को श्वेत भस्मसे ललाटमे ऊपर, मध्य और अधोभागसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र और त्रिपुण्ड्र दोनों ही ऊर्ध्व और तिर्यग्भावमे स्थित ब्रह्मविष्णुशिवात्मक त्रिगुणात्मक त्रिशूल हैं। ब्रह्माजिनामु यावज्जीवन समाहितचित्तसे इन त्रिदेवाकी यज्ञ दान तप और जपके द्वारा आराधना करे।

ऋषियोंके पूछनेपर पुन कूर्मरूप श्रीहरिने कहा—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति (सन्यासी)—ये चार आश्रमी हैं। ब्राह्मण चाहे तो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थाश्रममे ही क्यो न हो अथवा अध, पगु, दरिद्र ही क्यों न हो, विरक्त होनेपर सन्यास ले ले। सबके लिये सन्यासमे वैराग्यका विधान है। जो बिना वैराग्यके ही सन्यासकी इच्छा करता है वह पतित होता है—

सर्वेषामेव वैराग्य सन्यासाय विधीयते।
पतत्येवाविरक्तो य सन्यासं कर्तुमिच्छति॥

(पूर्वविभाग ३। ११)

नित्य ही न्यायोपार्जित धनवाला, शान्त, ब्रह्मविद्यापरायण, स्वधर्मपालक व्यक्ति ब्रह्मसाक्षात्कार करनेमे समर्थ होता है। कर्मासक्ति तथा फलासक्तिका त्यागकर ब्रह्मार्पणबुद्धिसे प्रसन्नतापूर्वक कर्मोंको करता हुआ मुमुक्षु परमपदको प्राप्त करता है। देय (देने योग्य द्रव्य) ब्रह्मके द्वारा दिया जाता है, ब्रह्ममे समर्पित किया जाता है, ब्रह्म ही दिया जाता है, यही परम ब्रह्मार्पण है। मैं कर्ता नहीं हूँ। यह सब ब्रह्मके द्वारा ही किया जाता है। इसीको तत्त्वदर्शी ऋषियोने ब्रह्मार्पण कहा है। 'शाश्वत प्रभु इस कार्यसे प्रमुदित हो' इस बुद्धिसे जो सतत कर्म करता है, यह परम ब्रह्मार्पण है। अथवा कर्मोंके फलका सन्यास परमेश्वरके प्रति करना ही उत्तम ब्रह्मार्पण है। यदि नियत कार्यको (निश्चित करणीयको) नियमपूर्वक सगरहित होकर विवेकपूर्वक सम्पादित किया जाय तो वह भी मोक्षप्रद होता है। अतएव भले ही कोई अविद्वान् ही क्यो न हो, परतु वह यदि सभी प्रकारके प्रयत्नोसे कर्माश्रित फलका त्यागकर कर्मोको करता रहे तो कालक्रमसे अवश्य ही परमपदको प्राप्त कर लेता है। निष्काम-कर्मसे ऐहिक और पौर्विक (इस जन्ममें और पूर्व-जन्ममे किया गया) पाप क्षीण होता है, मन प्रसन्न होता है और व्यक्ति ब्रह्मविद् होता है। ज्ञानसहित कर्मसे सम्यक् योग तथा दोषवर्जित ज्ञान उत्पन्न होता है। अतएव जिस-किसी आश्रममे प्रतिष्ठित व्यक्ति ईश्वरतुष्ट्यर्थ प्रयत्नपूर्वक शास्त्रविहित कर्मोको अवश्य करे। भगवदर्थ स्वाश्रमोचित कर्मोंके फलस्वरूप नैष्कर्म्यसिद्धि सुलभ होती है। महेश्वरके प्रसादसे नैष्कर्म्यरूप परम ज्ञान सम्प्राप्त कर एकाकी निर्मम शान्त व्यक्ति जीवनकालमे ही विमुक्त हो जाता है। वह ज्ञानके अमोघ प्रभावसे नित्यानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमेश्वरको प्राप्त करता है।

तत्वज्ञानका स्वरूप इस प्रकार है—आत्मा अद्वितीय सच्चिदानन्द है। वह जगत्का अधिष्ठानात्मक उपादान है। उसकी शक्ति माया है। मायासहित मायिक प्रपञ्च उसमे भ्रान्तिमात्र है। मायाशक्ति अपने कार्योसहित उसे सत्य सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। घटोत्पादिनी शक्ति घटोंसहित मृत्तिकाको सत्यापित करनेमे सर्वथा असमर्थ है, यह दृष्टान्त है। जिस प्रकार विभु घटाकाश महाकाश है और घटगत महाकाश घटाकाश है, उसी प्रकार विभु प्रत्यगात्मा परमात्मा (ब्रह्म) है और साक्षादपरोक्ष परमात्मा प्रत्यगात्मा है। आत्मा और ब्रह्ममे लक्षणसाम्यसे ऐक्य है।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

(कठ० १। २। २)

श्रेय और प्रेय—ये दोनो ही मनुष्यके सामने आते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य उन दोनोके स्वरूपपर भलीभाँति विचार करके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है (और) वह श्रेष्ठबुद्धि मनुष्य परम कल्याणके साधनको ही भोग-साधनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है (परतु) मदबुद्धिवाला मनुष्य लौकिक योग-क्षेमकी इच्छासे भोगोके साधनरूप प्रेयको अपनाता है।

कूर्मपुराणोक्त प्राकृत सर्ग और प्रतिसञ्चर

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

प्राकृत सर्गको तत्त्वचिन्तकोंने प्रकृति, अव्यक्त तथा मायानामसे प्रथित जगत्कारणको सदसदात्मक माना है। प्रधान त्रिगुणात्मक है। सत्त्व, रजस्, तमस्—ये तीन गुण हैं। महाप्रलयमें गुणसाम्यको प्राप्त प्रधान (तत्त्व स्व-स्वरूपभूत) परब्रह्म परमात्माके समाश्रित—उनसे तादात्म्यापन्न होकर स्थित था। इसीको प्राकृत प्रलय, ब्राह्मी रात्रि आदि नामोंसे अभिहित किया गया है। 'अहः सृष्टिरुदाहृता' (कूर्म० १।४।११)-के अनुसार 'सृष्टि' दिन और 'प्रलय' रात्रि है।

परमेश्वर स्वयं अनादि होते हुए भी जगत्के आदिकारण हैं। निशान्त (प्रलयान्त)-में योगबलसे उन्होंने स्वयंसे एकीभूत पुरुष तादात्म्यापन्न प्रकृतिको क्षुब्ध किया। जैसे मद अथवा वसन्त ऋतुकी वायु नर-नारियोंको क्षुब्ध करते हैं, वैसे ही मायापति महेश्वरने निजशक्तिभूता प्रकृतिको क्षुब्ध किया। वस्तुतः क्षोभक और क्षोभ्य दोनों परमात्मा ही हैं। वही अपनी प्रधानतासे क्षोभक और अपनी उपाधि प्रकृतिकी प्रधानतासे क्षोभ्य (क्षुब्ध होने योग्य) होते हैं। परमेश्वराधिष्ठित प्रधानसे पुरुष एवं प्रधानरूप 'महत्' प्रादुर्भूत हुआ। महान्, आत्मा मति ब्रह्मा प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर प्रज्ञा, धृति, स्मृति संविद् आदि नामोंसे महत्तत्त्व अभिहित किया जाता है—

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत् स्मृतम्॥

(पूर्वविभाग ४। १७)

महत्से वैकारिक, तैजस (राजस) और तामस त्रिविध अहङ्कार उत्पन्न हुआ। वैकारिक (सात्त्विक) अहंसे इन्द्रियानुग्राहक देवोंके सहित मन उत्पन्न हुआ। तैजस अहंसे ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ समुत्पन्न हुईं। तामस अहंसे शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। शब्दादि पञ्चतन्मात्राओंसे आकाशादि पञ्चभूत (पञ्चीकृत पञ्चभूत) समुत्पन्न हुए। आकाशमें शब्द गुण है। वायुमें शब्द स्पर्श दो गुण हैं। तेजमें शब्द स्पर्श और रूप तीन गुण हैं। जलमें शब्द स्पर्श रूप और रस चार गुण हैं। पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच गुण हैं। उपादानकारणकी अपेक्षा कार्यमें क्रमिक विशेषता और उपादेय कार्यकी अपेक्षा उपादानकारणमें क्रमिक निर्विशेषता मान्य है। महत्, अहम् शब्दादितन्मात्र और आकाशादिभूत पुरुषाधिष्ठित होनेसे तथा अव्यक्तानुग्रहसे ब्रह्माण्डके उत्पादक होते हैं। अभिप्राय यह है कि महत्से पृथ्वीपर्यन्त तेईस तत्त्वोंमें (नाम-रूपादि गुणोंके भेदसे) पृथक्-पृथक् शक्तियाँ हैं। यही कारण है कि ये परस्पर पूर्णतया मिले बिना जगत्की रचना नहीं कर सके। इसलिये एक-दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त प्रकृतिके ये सभी विकार पुरुषसे अधिष्ठित होकर, परस्पर संयुक्त होकर प्रधानके अनुग्रहसे अण्डकी उत्पत्ति करते हैं। जलके बुलबुलेके समान क्रमशः महदादि तत्त्वोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जलपर स्थित महान् अण्ड ब्रह्मरूप ब्रह्माका अत्युत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तरूप जगत्पति क्षेत्रसंज्ञक ब्रह्मा व्यक्तरूपमें स्वयं ही विराजमान हुए। वही प्रथम शरीरी और पुरुष कहे जाते हैं। वे प्राणियोंके आदिकर्ता ब्रह्माजी सर्गके प्रारम्भमें समुत्पन्न हुए। जिनको पुरुष, हंस, प्रधानसे परतः स्थित, हिरण्यगर्भ कपिल छन्दोमूर्ति और सनातन कहा जाता है—

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥
यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात् परतः स्थितम्।
हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्तिं सनातनम्॥

(पूर्वविभाग ४। ३७-३८)

उन महात्मा हिरण्यगर्भका सुमेरु उल्व (गर्भको ढकनेवाली झिल्ली), अन्य पर्वत जरायु (गर्भाशय) तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था। उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित तथा सूर्य-चन्द्रादि ग्रहगणके सहित समस्त लोक एवं

देव-असुर और मनुष्यादि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दस-दसगुना अधिक जल, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् अहकारसे आवृत है तथा भूतादि महत्तत्त्वसे आवृत हैं। इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त (प्रधान)-से आवृत है। इस प्रकार जैसे नारियलके फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोसे ढका रहता है, वैसे ही यह अण्ड इन सात आवरणोसे घिरा है। उनम स्थित हुए स्वय विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुणका आश्रय लेकर इस ससारकी रचनामे प्रवृत्त होते हैं। रचना हो जानेपर सत्त्वगुणविशिष्ट अतुलपराक्रमी भगवान् विष्णु उसका कल्पान्तपर्यन्त युग-युगमे पालन करते हैं। पुन कल्पका अन्त होनेपर अतिदारुण तम -प्रधान रुद्ररूप धारण करके जनार्दन विष्णु ही समस्त भूतोका सक्षय कर जगत्को जलमय करके शेषशय्यापर शयन करते हैं। जगनेपर ब्रह्मारूप होकर वे पुन जगत्की रचना करते हैं। वे एक ही भगवान् जगत्की सृष्टि, स्थिति और सहृतिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन सज्ञाओंको धारण करते हैं।

जगत्स्रष्टा ब्रह्मा तीना कालमे त्रिगुणात्मक होनेसे एक कहे जाते हैं। आदि होनेसे आदिदेव, अजात होनेसे अज प्रजापालक होनेसे प्रजापति, देवामे महान् होनेसे महादेव, बृहत् होनेसे ब्रह्मा, पर होनेसे परमेश्वर कहे जाते हैं। वशी होनेसे ईश्वर, सर्वव्यापक होनेसे ऋषि और सर्वहर होनेसे हरि कहे जाते हैं। अनुत्पन्न और पूर्व होनेसे स्वयम्भू कहे जाते हैं। नरो (जीवो)-के अयन होनेसे नारायण, ससारके हरण करनेवाले होनेसे हर, विभु होनेसे विष्णु कहे जाते हैं। सभी पदार्थोंका विशिष्ट ज्ञान होनेसे भगवान् कहे जाते हैं, अवन अर्थात् सबकी रक्षा करनेके कारण ओम् कहे जाते हैं। सभी पदार्थोंका विज्ञान होनेसे सर्वज्ञ, सर्वमय होनेसे सर्व कहे जाते हैं। निर्मल होनेसे शिव और सर्वगत होनेसे विभु कहे जाते हैं। सर्वदु खोसे त्राण देनेवाले होनेसे तारक कहे जाते हैं।

प्रतिसञ्चर—नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक—ये चार प्रकारके प्रतिसञ्चर (प्रलय) कहे गये हैं। प्राणियोका जो नित्य ही क्षय देखा जाता है, वह 'नित्य प्रलय' है। ब्रह्माजीकी सुषुप्तिके निमित्तसे त्रिलोकीका नाश ब्राह्म प्रलय अथवा 'नैमित्तिक प्रलय' कहा जाता है। पृथ्वीसे महत्पर्यन्त तेईस तत्त्वोंके सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नाश अर्थात् सर्गक्रमसे विपरीतक्रमद्वारा प्रकृतिमें लय 'प्राकृत प्रलय' अथवा प्राकृत प्रतिसर्ग कहा जाता है। ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्व-विज्ञानसे होनेवाला कैवल्य मोक्षरूप निर्वाण 'आत्यन्तिक प्रलय' है। प्रलय, प्रतिसञ्चर और प्रतिसर्गका एक ही अर्थ है।

कूर्मरूपी श्रीमन्नारायण विश्वका कल्याण करें

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

वेदार्थका उपबृहण करनेवाले मत्स्य-कूर्मादि अठारह पुराण हैं। पुराणोके सर्ग, प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर और वशानुचरित—ये पाँच लक्षण कहे गये हैं। विष्णुरूप महर्षि वेदव्यासने इन पुराणोके द्वारा ससारका बहुत उपकार किया है।

दैवी सम्पदाके अभिवर्धक आस्तिक ग्रन्थोके प्रकाशन-हेतु सकल्पबद्ध सस्था 'गीताप्रेस' अपनी पत्रिका 'कल्याण'के विशेषाङ्करूपमे इस वर्ष 'कूर्मपुराण'का प्रकाशन कर रही है—इस विषयको जानकर अपार प्रसन्नता हुई।

जगत्के उद्धारके लिये और ईश्वरके सृष्टि, पालन, सहार निग्रह एव अनुग्रह आदि पञ्चकृत्य-नियमोके पालनके लिये कूर्मरूपमें अवतीर्ण भगवान् श्रीमन्नारायण इस विशेषाङ्कके प्रकाशनद्वारा विश्वका परम कल्याण करेगे, हम ऐसी आशा करते हैं।

सांस्कृतिक निधि—पुराण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शास्त्रोमे पुराणोंकी बडी महिमा है। उन्हे साक्षात् श्रीहरिका रूप बतलाया गया है। जिस प्रकार भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश प्रदान करनेके लिये सूर्यका विग्रह धारण करके जगत्में विचर रहे है, उसी प्रकार वे सबके हृदयमे प्रकाश करनेके लिये इस जगत्म पुराणोका रूप धारण करके मनुष्योके हृदयमे विचर रहे हैं। अत पुराण परम पवित्र हैं—

यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरि ।
सर्वेषा जगतामेव हरिरालोकहत्तवे॥
तथैवान्त प्रकाशाय पुराणावयवो हरि ।
विचरेदिह भूतेषु पुराण पावन परम्॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२। ६०-६१)

जिस प्रकार त्रैवर्णिकोके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'पुराण शृणुयान्नित्यम् (पद्म० स्वर्ग० ६२। ५८)। पुराणामे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारा पुरुषार्थोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है तथा चाराका एक दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतम लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृत ॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभि ॥

(१। २। ९-१०)

'धर्म तो अपवर्ग-(मोक्ष या भगवत्प्राप्ति-) का साधक है। धन प्राप्त कर लेना ही उसका प्रयोजन नहीं है। धनका भी अन्तिम साध्य है धर्म न कि भोगोका संग्रह। यदि धनसे लौकिक भोगकी ही प्राप्ति हुई तो यह लाभकी बात नहीं मानी गयी है। भोगसंग्रहका भी प्रयोजन सदा इन्द्रियोको तृप्त करते रहना ही नहीं है, अपितु जितनेसे जीवन-निर्वाह हो सके उतना ही आवश्यक है। जीवक जीवनका भी मुख्य प्रयोजन भगवत्तत्त्वको जाननेकी सच्ची अभिलाषा ही है न कि यज्ञादि कर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि सुखोकी प्राप्ति।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्प्रीति भी पुराणोके श्रवणसे सहजमे ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमे लिखा है—

तस्माद्यदि हरे प्रीतेरुत्पादे धीयते मति ।
श्रोतव्यमनिश पुम्भि पुराण कृष्णरूपिण ॥

(स्वर्ग० ६२। ६२)

'इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेमे अपनी बुद्धिको लगाना हो तो सभी मनुष्योको निरन्तर श्रीकृष्णरूपधारी भगवान्‌के स्वरूपभूत पुराणोका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं, उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। पद्मपुराणमे लिखा है—

'पुराण सर्वशास्त्राणा प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम्।'

(पद्म० सृष्टि० १। ४५)

इनका विस्तार सौ करोड (एक अरब) श्लोकोका माना गया है—'शतकोटिप्रविस्तरम्।' उसी प्रसगमे यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्योंकी आयु कम हो जाती है और इतने बडे पुराणोका श्रवण और पठन एक जीवनमे उनके लिये असम्भव हो जाता है, तब पुराणोका सक्षेप करनेके लिये स्वय सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ भगवान् ही प्रत्येक द्वापरयुगमे व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हे अठारह भागोमे बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोका यह सक्षिप्त सस्करण ही भूलोकमे प्रकाशित होता है। कहते हैं कि स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोका विस्तृत पुराण विद्यमान है—

कालेनाग्रहण दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभु ।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्।

(पद्म० सृष्टि० १। ५१—५३)

इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोके रचयिता नहीं, अपितु सक्षेपक अथवा सग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—'इतिहासपुराण पञ्चम वेदाना वेदम्' (छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनाको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत, जिनकी इतिहास सज्ञा है, क्रमश महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोकी अपेक्षा अर्वाचीन ही है। इस प्रकार पुराणोकी पुराणता—सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरा सिद्ध हो जाती है। इसलिये हमारे यहाँ वेदोके बाद पुराणोका ही सबस अधिक सम्मान है, बल्कि कही-कहीं तो उन्हे वेदासे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमे ही लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज ॥
पुराण च विजानाति य स तस्माद्विचक्षण ।

(सृष्टि० २। ५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गो एव उपनिषदोसहित चारो वेदोका ज्ञान रखता है, उससे भी बडा विद्वान् वह है, जो पुराणोका विशेष ज्ञाता है।'

यहाँ श्रद्धालुओके मनमे स्वाभाविक ही यह शका हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोमे वेदोकी अपेक्षा भी पुराणाके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यो बतलाया है। इस शकाका समाधान दो प्रकारसे किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रियापदापर विचार करनेसे यह शका निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनम वेदोके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोमे विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोम जो कुछ है, वह वेदोका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशाम पुराणोका विशिष्ट ज्ञान वेदोका ही विशिष्ट ज्ञान है आर वेदोका विशिष्ट ज्ञान वेदाके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोमे सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोमे विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदो-(उपनिषदो-) मे विशद वर्णन मिलता है, परतु सगुण-साकार-तत्त्वका बहुत ही सक्षेपसे कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामे जहाँ पुराणोके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनो तत्त्वोका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोके सामान्य ज्ञाताका प्राय निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी सगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोकी जो महिमा शास्त्रोमे वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमे आ जाती है।

पुराण अठारह हैं। उनके नाम ये हैं—१-ब्रह्मपुराण, २-पद्मपुराण, ३-विष्णुपुराण, ४-शिवपुराण ५-श्रीमद्भागवत-पुराण, ६-नारदीयपुराण, ७-मार्कण्डेयपुराण, ८-अग्निपुराण, ९-भविष्यपुराण, १०-ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११-नृसिहपुराण, १२-वाराहपुराण, १३-स्कन्दपुराण, १४-वामनपुराण, १५-कूर्मपुराण, १६-मत्स्यपुराण, १७-गरुडपुराण और १८-ब्रह्माण्डपुराण। कहते हैं कि जो प्रतिदिन इन अठारहो पुराणाका नाम लेता तथा प्रतिदिन तीनों समय इस नामावलीका जप करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। पुराण भगवान्‌की वाङ्मयी मूति है।

मनारथाना न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षै ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथानामुत्पत्तय सन्ति पुनर्नवानाम्॥

(विष्णुपुराण ४। २। ११६)

इन मनोरथाकी तो हजारा-लाखा वर्षोम भी समाप्ति नहीं हो सकती। उनमसे यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरथाकी उत्पत्ति हो जाती है।

कूर्मपुराणोक्त ईश्वरगीता

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

कूर्मरूप श्रीहरिके द्वारा उपदिष्ट दिव्य ज्ञानसे युक्त कूर्मपुराण मनोरम है। इसके उपरिविभागमें शौनकादि महर्षियोंके सम्मुख स्वय श्रीकृष्णद्वैपायनने प्रकट होकर सूतश्रेष्ठ रोमहर्षणकी प्रार्थनापर जिस अद्‌भुत ज्ञानका उपदेश किया है, वह 'ईश्वरगीता' नामसे प्रसिद्ध है। उसीके कुछ चुने हुए तथ्य प्रस्तुत किये जाते हैं। सनत्कुमारादिके प्रति महेश्वर महादेवका उपदेश होनसे इसे 'ईश्वरगीता' कहा गया है।

आत्मा केवल, शुद्ध, सनातन, सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसीसे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश सम्भव है। वह पृथ्वी आदि पञ्चभूत तथा देहेन्द्रियप्राणान्त करण समस्त अनात्म वस्तुओसे अतीत है। जैसे परस्पर विलक्षण प्रकाश और तमम सम्बन्ध सगत नहीं छाया और आतपमे सम्बन्ध सम्भव नहीं, वैस ही प्रपञ्च और पुरुष (परमात्मा)-म सम्बन्ध सम्भव नहीं—

यथा प्रकाशतमसो सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदैक्य न सम्बन्ध प्रपञ्चपरमात्मनो ॥
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ।
तद्वत् प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थत ॥
(उपरिविभाग २। १०-११)

तथापि मैं कर्ता, सुखी, दु खी, कृश एव स्थूल हूँ—इस प्रकारकी जो मति है, वह अहकारकृत होनेसे आत्मामे आरोपित है। निर्विकार, निरञ्जन आत्मा त्रिगुणमयी प्रकृतिके सगत होकर अनात्मामे आत्मविज्ञान आरोपित कर सुख-दु खरूप ससारको प्राप्त होता है। राग-द्वेषादि दोष तथा शुभाशुभ कर्मोंमे प्रवृत्ति भ्रान्तिमूलक ही है। इसी कारण आत्माको विविध शरीरोकी प्राप्ति होती है।

जैसे धूमके सम्पर्कसे आकाश मलिन नहीं होता वैसे ही अन्त करण-समुद्भूत इच्छा-द्वेषादि-भावोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता—

यथा हि धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्।
अन्त करणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते॥
(उपरिविभाग २। २४)

जिस प्रकार गुजा इत्यादि रक्तवर्णकी उपाधिके कारण शुद्ध स्फटिक-प्रस्तर रक्तवर्णका दिखलायी पडता है, उसी प्रकार स्वत निर्मल होनपर भी आत्मामें देहेन्द्रियादिकी उपाधिसे मलिनता परिलक्षित होती है।

आत्मा शुद्ध, अक्षर, अव्यय और व्यापक है तथा मुमुक्षुओके द्वारा श्रोतव्य, मन्तव्य और उपासितव्य है। ऐसा आत्मतत्त्व जब मनमें सर्वत्र और सर्वदा स्फुरित होता है, तब आत्मोपलब्धि मान्य है। जब श्रद्धालु योगी सम्पूर्ण भूतोको आत्मामे ही देखता है और सम्पूर्ण भूतामे आत्माको देखता है तब उसे ब्रह्मोपलब्धि होती है। जब समाधिस्थ योगी सम्पूर्ण भूतोको नहीं देखता, परमात्मामे एकीभूत होकर स्थित रहता है, तब वह केवल (अद्वितीय) होता है और जब उसके हृदयस्थ सभी काम विनिवृत्त हो जाते हैं, तब वह तत्त्ववेत्ता परमात्मासे एकीभूत होकर अमृतस्वरूप उस परम श्रेयको प्राप्त होता है। जब भूतोंके विविध विस्तारको एक आत्माके समाश्रित ही समझता है तथा आत्मासे ही विविध विस्तारको जानता है तब ब्रह्मको प्राप्त होता है। जब आत्माको परमार्थत अद्वितीय समझता है और मायामय जगत्‌को उसमें नित्य निरस्त समझता है, तब परा गतिको प्राप्त होता है। जब जन्म-जरा-दु ख और व्याधियोंका एकमात्र भेषज केवल ब्रह्मविज्ञानको ही समझता है, तब यह जीव शिव हो जाता है। जिस प्रकार ससारमें नद एव नदियाँ सागरसे एकीभूत होते हैं, वैसे ही यह आत्मा निष्कल अक्षरसे एकीभूत होता है।

यह आत्मा मैं हूँ। मैं अव्यक्त हूँ। मायावी परमेश्वर हूँ। सर्वात्मा सर्वतोमुख हूँ। सर्वरूप, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर, सवत पाणिपाद, सनातन अन्तर्यामी हूँ। बिना पाणिके ग्रहण करने और बिना पादके चलनेमे समर्थ हूँ। बिना चक्षुके ही देखता हूँ। बिना कर्णके ही सुनता हूँ। मैं सबका ज्ञाता हूँ, मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शियोंने मुझे ही महान् पुरुष कहा है।

कूर्मरूप श्रीहरिने पुन कहा—जो मेरी विश्वरूपिणी मायाको वशमें करनेवाले तत्त्वज्ञ योगी हैं, वे मेरे साथ परम विशुद्ध निर्वाणको प्राप्त होते हैं। उनकी पुनरावृत्ति मेरे अनुग्रहसे शतकोटिकल्पामे भी नहीं होती यह वेदानुशासन है—

तेषा हि वशमापन्ना माया मे विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमा शुद्धि निर्वाण ते मया सह॥
न तेषा पुनरावृत्ति कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद् वेदानुशासनम्॥

(उपरिविभाग २। ५८-५५)

योगाग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पापाको जला देता है। निष्पाप अन्त करणम निर्वाणप्रद ज्ञान उत्पन्न होता है। योगसे ज्ञान समुत्पन्न होता है ज्ञानसे योग प्रवृत्त होता है। योग और ज्ञानसे युक्त (व्यक्ति) पर परमात्मा प्रसन्न होता है। योग दो प्रकारका होता है। प्रथम अभावयोग है। द्वितीय महायोग है। जहाँ आभासरहित सब शून्य है—ऐसा चिन्तन किया जाता है, वह अभावयोग है। आत्माका नित्यानन्द निरञ्जन परमात्मा जानना महायोग है। इसीको ब्रह्मयोग भी कहते हैं। यम नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि—ये अष्टाङ्गयोग हैं। अहिसा सत्य अस्तय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। यम चित्तशुद्धिप्रद है। परमर्षियाने कर्म, वाणी और मनसे सर्वभूतोको क्लेश न देनेको अहिसा कहा है। अहिसा परमधर्म है, अहिसासे श्रेष्ठ सुख अन्य नहीं है। विधिसे जो हिसा होती है वह तो अहिसा ही कही गयी है—

अहिंसाया परो धर्मो नास्त्यहिंसापर सुखम्।
विधिना या भवेद्धिसा त्वहिंसैव प्रकीर्तिता॥

(उपरिविभाग ११। १५)

सत्यसे सब प्राप्त होता है। सत्यम सभी प्रतिष्ठित हैं। द्विजातियोने यथार्थ-कथनको सत्य कहा है। चोरी अथवा बलपूर्वक परधनका अपहरण स्तेय है। ऐसा न करना अस्तेय है। कर्म वाणी और मनसे सभी अवस्थाआमे सर्वदा मैथुन-त्याग ब्रह्मचय है। द्रव्य (धन)-का आपत्कालम भी ग्रहण न करना अपरिग्रह है। शौच, सताप, तप स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—ये पाँच नियम है। मिट्टी और जलसे बाह्य-शुद्धि-सम्पादन एव अकाम तथा अक्राधादिसे मन -शुद्धि-सम्पादन शौच है। यदृच्छाप्राप्त-वृत्तिको पर्याप्त मानना सतोष है। पराक एव कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप उपवासद्वारा शरीर-शोषण तप है। वेदान्त, शतरुद्रिय प्रणवादिका अधिकारानुसार जप स्वाध्याय है। वाचिक, उपाशु और मानस-भेदसे जप तीन प्रकारका है। वाणी मन और शरीरसे स्तुति तथा स्मरण-पूजनसे परमेश्वरकी आराधना ईश्वर-प्रणिधान है। स्वस्तिक तथा पद्मादि आसन है।

स्वदेहज वायुका नाम प्राण है, उसका निरोध आयाम है—'प्राणा स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्' (उपरि० ११। ३०)। इस प्रकार प्राणनिरोधका नाम प्राणायाम है। विषयामे स्वभावत विचरण करती हुई इन्द्रियोका निग्रह प्रत्याहार है—'इन्द्रियाणा विचरता विषयेषु स्वभावत । निग्रह प्रोच्यते सद्भि प्रत्याहारस्तु सत्तमा ॥' (उपरि० ११। ३८) हृदय कमल, नाभि, मूर्धा, पर्व अथवा मस्तकादि स्थानोमे चित्तबन्धन धारणा है—'हृत्पुण्डरीके नाभ्या वा मूर्ध्नि पर्वत-मस्तके। एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥' (उपरि० ११। ३९)। देशावस्थितिका आलम्बन लेकर बुद्धिवृत्तिसततिका जो वृत्त्यन्तरसे असस्पृष्ट प्रवाह है, वह ध्यान है—'देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या वृत्तिसतति । वृत्त्यन्तरैरसस्पृष्टा तद्ध्यान सूरयो विदु ॥' (उपरि० ११। ४०) देशालम्बनवर्जित वृत्तिकी अर्थमात्रम एकाकारता समाधि है—'एकाकार समाधि स्याद् देशालम्बनवर्जित । प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम्॥' (उपरि० ११। ४१)

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजाना पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्यय नित्यमज स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि॥

(विष्णुपुराण १। १५। ५७)

ब्रह्म ही प्रभु है, ब्रह्म ही सर्वजीवरूप है और ब्रह्म ही सकल प्रजाका पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। वह ब्रह्म अव्यय नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारोसे शून्य विष्णु है।

पुराण-महिमा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्र-मन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी कोष है, पुराण सनातन आर्य संस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थरहस्य और तीर्थमाहात्म्य है। पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है। पुराणमें परलोकविज्ञान, प्रेतविज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्मफलनिरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि-आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढे पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं। पुराणोंके अन्तस्तलमें प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देखा। यथार्थतः उन्होंने पुराणोंकी ज्ञान-परम्परापर भी दृष्टिपात नहीं किया। वस्तुतः पुराणोंमें जो कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता—उसमें विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे ग्रन्थोंकी दुर्दशा हुई उससे उसके बहुत-से अंश आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

एक ही परमतत्त्व

पुराणोंमें भक्ति एवं ज्ञानकी बातें भरी हैं। सत्-चित्-आनन्दरूप परमात्मा परात्पर ब्रह्म एक है, वह सर्वदा सर्वथा पूर्ण सर्वग सर्वगत सर्वज्ञ अनन्त विभु है वह सर्वातीत है सर्वमय है। सम्पूर्ण देशकालातीत है, सम्पूर्ण देश-कालमय है। वह नित्य निराकार, नित्य निर्गुण है, वह नित्य साकार, नित्य सगुण है। अवश्य ही उसकी आकृति पाञ्चभौतिक नहीं और उसके गुण त्रिगुणजनित नहीं हैं। वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए ही स्वरूपतः ही अनादिकालसे विविध स्वरूप-सम्पन्न, विविध शक्तिसम्पन्न एवं विविध शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न है। नित्य एक होते हुए ही उसकी नित्य विभिन्न पृथक् सत्ता है। उन्हीं पृथक् रूपोंके नाम—शिव, विष्णु, शक्ति, राम कृष्ण, वामन, कूर्म, गणेश आदि हैं। वह एक ही अनादिकालसे इन विविध रूपोंमें अभिव्यक्त है। ये सभी स्वरूप नित्य शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं—

> सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
> हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
> परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
> सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥

'परात्पर ब्रह्मके वे सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्म-स्वरूप हैं। उनके देह जन्म-मरणसे रहित होकर स्वरूपभूत हैं वे प्रकृतिजनित कदापि नहीं हैं। वे परमानन्दसंदोह हैं, सर्वतोभावेन ज्ञानैकस्वरूप हैं, वे सभी समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं एवं सभी दोषोंसे (माया-प्रपञ्चसे) सर्वथा रहित हैं।'

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अद्वय परम सत्य तत्त्वके लीलानुरूप तीन नाम हैं। इस परम तत्त्व भगवान्‌के भ्रुकुटिविलासकी लीलामात्रसे सृष्टिका निर्माण और संहार हो सकता है। ये भगवान् निर्गुण (प्राकृत गुणोंसे रहित), सर्वेश्वर, प्रकृतिसे परे और परमात्मा हैं। ये सब जीवोंसे निर्लिप्त हैं और उनमें लिप्त भी हैं। ये (भौतिक रूपसे रहित) निराकार और (स्वस्वरूपमें स्थित) साकार, सर्वव्यापी और स्वेच्छामय हैं। योगिगण 'सनातन परब्रह्म' कहते हैं और रात-दिन इन सर्वमङ्गलमय सत्य-स्वरूप परमात्माका ध्यान करते रहते हैं। ये स्वतन्त्र तथा समस्त कारणोंके भी

कारण हैं। प्रलयके समय सर्वबीजस्वरूपा प्रकृति इनम लीन रहती है और सृष्टिके समय प्रकट होकर क्रियाशील हो जाती है। यह प्रकृति भगवान्‌की निज अभिन्न शक्ति है और लीलानुसार अप्रकट या प्रकटरूपमे इनमें वैसे ही सदा-सर्वदा रहती है—जैसे अग्निमें उसकी दाहिका शक्ति रहती है।

पुराणोमें युगोतक धर्मका प्रचार हुआ। आज उनके प्रचारके अभावमे इस तत्त्वके प्रकाशन कथा-आख्याना, उपाख्यानोके सिवा धर्मकी व्याख्या पुराणाका प्रमुख उद्देश्य है। धर्मकी स्थिति डावाँडोल हो उठी है। धर्मभावनाके अभावमें देशका वास्तविक स्वरूप बिगडता जा रहा है। अपना देश धर्मप्राण देश है। अत पुराणोके प्रचारके द्वारा धर्मस्थापनका कार्य बडे महत्त्वका होगा। सभीको सचेष्ट होकर इसपर प्रयत्नशील होना चाहिये।

कूर्मपुराणकी उपादेयता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मनुष्य-शरीर केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। उसकी प्राप्तिके साधनोका वर्णन वेदोमें आता है, जो भगवान्‌के नि श्वास हैं—'यस्य नि श्वसित वेदा '। वेदाके तात्पर्यको समझानेके लिये ही वेदव्यासजी महाराजने पुराणोकी रचना की। पुराणोमे इतिहास-(कथानकों-) के द्वारा आख्यान-उपाख्यान एव वेदोके विषयाको ही सरलतासे समझाया गया है। जिन लोगोका वेदोमे अधिकार नहीं है, वे भी वेदाके तत्त्वको सरलतासे समझ सक, इसीलिये पुराणोका प्रणयन किया गया है एव वेदार्थ-सिद्धिके लिये ही स्मृतियोने भी आचरणका विधान किया है। पुराणों एव स्मृतियोको न जाननेसे वदोका ठीक अर्थ भी नहीं समझा जा सकता। सही तात्पर्य न समझनेवाले—अनजान मनुष्योके द्वारा वेदाकी मर्यादा नष्ट होती है। अत वेदाकी रक्षाके लिये पुराणो एव स्मृतियोका प्रकाशन हुआ, जिससे कि साधारण जनतातक वेदोका तात्पर्य पहुँच जाय और वे उससे अपने जीवनको शुद्ध-निर्मल बनाकर उन्नति कर सके।

'कल्याण' अपने एकहत्तरवे वर्षके प्रथम अङ्कके रूपमे 'कूर्मपुराणाङ्क' (विशेषाङ्क) निकाल रहा है जो बहुत ही उपादेय है। कूर्मपुराणमे अनेक अच्छे-अच्छे प्रकरण हैं, व्यवहारकी शिक्षाके साथ ही परमार्थ-सम्बन्धी बहुत-सी सार बाते बतायी गयी हैं। इस पुराणकी शिक्षाको जीवनमे उतारनेसे लोक और परलोक-विषयक कल्याण हो सकता है।

धर्मं भजस्व सतत त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरा पिब त्वम्॥

(श्रीमद्भा० मा० ४। ८०)

भगवद्भजन ही सबसे बडा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रह। अन्य सब प्रकारके लौकिक धर्मोंसे मुख मोड ले। सदा साधुजनाकी सेवा करे। भोगोकी लालसाको पास न फटकने द तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोके गुण-दोषोका विचार करना छोडकर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्‌की कथाआके रसका ही पान करे।

'कूर्मपुराण'—एक परिचय

पुराणोंमें वेदके निगूढ अर्थोंका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथा-वैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ-से-गूढतम तत्त्वोंको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी इनमें है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और साधनाके क्षेत्रमें कर्म, ज्ञान और भक्तिका मूल स्रोत वेद या श्रुतिको ही माना गया है। वेद अपौरुषेय, नित्य और स्वयं भगवान्‌की शब्दमयी मूर्ति हैं। स्वरूपतः वे भगवान्‌के साथ अभिन्न हैं, परंतु अर्थकी दृष्टिसे वे प्रायः अत्यन्त दुरूह भी हैं। उनका ग्रहण तपस्याके बिना नहीं किया जा सकता। व्यास, वाल्मीकि आदि ऋषि तपस्याद्वारा ईश्वरकी कृपासे ही वेदका प्रकृत अर्थ जान पाये थे। उन्होंने यह भी जाना था कि जगत्‌के कल्याणके लिये वेदके निगूढ अर्थका प्रचार करनेकी आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने उसी अर्थको सरल भाषामें पुराण, रामायण और महाभारतके द्वारा प्रकट किया। इसीसे शास्त्रोंमें कहा गया है कि रामायण, महाभारत और पुराणोंकी सहायतासे वेदोंका अर्थ समझना चाहिये—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'- उसके साथ ही इतिहास-पुराणको वेदोंके समकक्ष पञ्चम वेदके रूपमें माना गया है—'इतिहासपुराणाभ्यां पञ्चमो वेद उच्यते'।

पुराण वाङ्मयमें कूर्मपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस पुराणमें—

(१) महापुराणोंके पाँच मुख्य विषयों—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरितका पूर्ण विवेचन है।

(२) हिन्दूधर्मके तीन मुख्य सम्प्रदायों—वैष्णव, शैव और शाक्तका बहुत ही प्रशस्तरूपमें समन्वय किया गया है।

(३) यह त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)-की एकताका प्रतिपादन करता है।

(४) शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद मानता है।

(५) शिव और विष्णुका परमैक्य स्वीकार करता है।

इस पुराणमें वर्णित ईश्वरगीताका वही धार्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व है जो श्रीमद्भगवद्गीताका है। इसपर अनेक विद्वानोंने टीकाएँ लिखी हैं।

भगवान् विष्णुने कूर्म-अवतार धारणकर परम विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्नको जो भक्ति, ज्ञान एवं मोक्षका उपदेश दिया था, उसी उपदेशको पुनः भगवान् कूर्मने समुद्र-मन्थनके समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषिगणोंसे कहा, वही कथा कूर्मपुराणके नामसे विख्यात है। इसी उपदेश-कथाको द्वादशवर्षीय महासत्रमें रोमहर्षण सूतजीने शौनकादि अठासी हजार ऋषियोंसे कहा था। विष्णुपुराणमें प्राप्त महापुराणोंकी सूचीमें कूर्मपुराणको पंद्रहवाँ महापुराण कहा गया है। नारदीय पुराणके पूर्वभागके अध्याय १०६ में कूर्मपुराणका जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार (क) कूर्मपुराणके पूर्व तथा उपरि—ये दो विभाग हैं। (ख) मूल कूर्मपुराण—(१) ब्राह्मी, (२) भागवती, (३) सौरी एवं (४) वैष्णवी—इन चार संहिताओंमें विभक्त था। इसी बातको कूर्मपुराणने भी स्वयं स्वीकार किया है। परंतु वर्तमान समयमें उपर्युक्त चार संहिताओंमेंसे केवल ब्राह्मीसंहिता ही उपलब्ध है। इसमें परब्रह्मका स्वरूप यथार्थरूपमें बतलाया गया है, इसी कारण यह ब्राह्मीसंहिता कहलाती है। यही कूर्मपुराण (ब्राह्मीसंहिता) पूर्व तथा उपरि—दो विभागोंमें विभक्त है। पूर्वविभागमें ५१ एवं उपरिविभागमें ४४ अध्याय हैं। इनकी श्लोकसंख्या लगभग ६ हजार है। शेष तीन संहिताएँ अप्राप्य हैं। मत्स्यपुराण (५३। २२)-के अनुसार मूल कूर्मपुराणमें १८ हजार श्लोक थे—'अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुगं शिवम्।'—इस प्रकार मूल ग्रन्थका केवल तृतीयांश ही उपलब्ध है।

कूर्मपुराणका प्रारम्भ रोमहर्षण सूतजी तथा शौनकादि ऋषियोंके संवादसे होता है। सूतजीने पुराण-लक्षण अठारह महापुराण तथा अठारह उपपुराणोंके नामोंका परिगणन करते हुए कूर्मावतारकी संक्षिप्त कथा बतलायी। तदनन्तर कूर्मावतारके प्रसंगमें लक्ष्मीकी उत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य वर्णित है। पुनः भगवान् कूर्म एवं ऋषियोंके संवादमें लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्नका वृत्तान्त है। विप्रवर इन्द्रद्युम्न पूर्वजन्ममें राजा थे। उन्हें भगवान्‌का कूर्मरूप बहुत अच्छा लगता था। वे दिन-रात इस रूपके ध्यानमें निमग्न रहते थे। उन्होंने कूर्मभगवान्‌की शरण ग्रहण की। भगवान् तो शरणागतवत्सल हैं ही। जो एक बार भी भगवान्‌की शरणमें आ जाता है, उसे वे सदाके

लिये अपना लेते हैं। भगवान्‌ने राजाको वह गुह्य ज्ञान प्रदान किया, जिससे मरनेके बाद राजा श्वेतद्वीपमे दुर्लभ भोगोको भोगते रहे जो योगियोके लिये भी दुर्लभ है। उसके पश्चात् भगवान्‌की आज्ञासे उन्होने विप्रवर इन्द्रद्युम्नके रूपमे जन्म ग्रहण किया। उन्हे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई थी।

विप्रवर इन्द्रद्युम्नका बचपनमें ही कूर्म भगवान्‌की ओर लगाव था। व्रत, उपवास, नियम और गौ-ब्राह्मणकी सेवामे ही उनका सब समय व्यतीत होता था। उनकी अनवरत आराधनासे माता लक्ष्मी प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो गयीं। इन्द्रद्युम्न तो भगवान्‌के कूर्मरूप-ध्यानमे ही मग्न रहते थे। वे भगवान्‌के इस शक्तिरूप (लक्ष्मी)-को पहचान न सके और बोले—देवी, अपना परिचय दीजिये, आपने विष्णुका चिह्न क्यो धारण कर रखा है?

माता लक्ष्मी भक्तकी एकतानतासे प्रसन्न हो गयीं, बोलीं—'वत्स! मैं तुम्हारे उपास्यदेवकी ही शक्ति हूँ। उनमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। ममतावश मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। ज्ञानका उपदेश तो स्वय भगवान् तुमको करेंगे'—ऐसा कहकर ममतामयी माँने अपने स्नेहोर्मिल हाथोंसे इन्द्रद्युम्नका स्पर्श किया, इसके बाद वे अदृश्य हो गयीं। माताकी कृपासे इन्द्रद्युम्नको भगवान्‌के दर्शन हुए। भगवान्‌ने उन्हे ज्ञान एव भक्तिका उपदेश दिया। तदनन्तर वे भगवान् भी अन्तर्हित हो गये।

भगवान्‌के दर्शन एव उनके उपदेशसे विप्रश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके अन्तरमें प्रकाश-ही-प्रकाश भर गया था। सारी दुनियासे उनकी आसक्ति हट गयी थी। वे वैराग्यकी परमोत्कृष्ट स्थितिमें पहुँच गये थे। उनकी अद्वैतनिष्ठा पूर्ण हो गयी थी। वे यत्र-तत्र-सर्वत्र परमात्माका ही दर्शन करते रहते थे।

एक दिन भगवान् सूर्यकी आज्ञा पाकर वे पितामह ब्रह्माजीके दर्शन-हेतु ब्रह्मलोक जानेके लिये उद्यत हुए, तत्क्षण ही एक दिव्य विमान उनके पास आ पहुँचा। जब विमानपर बैठकर चलने लगे, तब उनके पीछे देवताओं और गन्धर्वोंकी एक लबी कतार चलने लगी। रास्तेमें जो योगीन्द्र, सिद्ध और महर्षि मिले, वे भी इनके पीछे हो लिये। वे उस परम स्थानमें पहुँचे, जहाँ हजारो सूर्योका प्रकाश छाया हुआ था। वहाँ जब वे पितामह ब्रह्माके पास पहुँचे, तब उन्हे पहले केवल अद्भुत प्रकाशपुञ्ज दिखायी दिया। बादमे उन्होंने पूर्वपुरुष ब्रह्माका दर्शन पाया। इन्द्रद्युम्न आनन्दमग्न होकर पितामहके चरणोंपर लेट गये। पितामहने बडे प्रेमसे इन्द्रद्युम्नको उठाकर गले लगा लिया, ठीक उसी समय इन्द्रद्युम्नके शरीरसे एक ज्योत्स्ना निकली, जो आदित्य-मण्डलमे प्रवेश कर गयी। इस तरह विप्रवर इन्द्रद्युम्नने अद्भुत मोक्षको प्राप्त किया।

भगवान् विष्णुके कूर्मावतारके विषयमे कूर्मपुराणके अतिरिक्त विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, वराहपुराण और महाभारतादिमे कथाएँ प्राप्त होती हैं। भगवान्‌के प्रसिद्ध दशावतारोमें यह द्वितीय अवतार है।

एक समयकी बात है, महर्षि दुर्वासा देवराज इन्द्रसे मिलनेके लिये स्वर्गमे गये। उस समय देवताओसे पूजित इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ हो कहीं जानेके लिये उद्यत थे। उन्हे देख महर्षि दुर्वासाका मन प्रसन्न हो उठा। उन्होने विनीत-भावसे देवराजको एक पारिजात-पुष्पोकी माला भेट की। देवराजने माला ग्रहण तो कर ली, किंतु उसे स्वय न पहनकर उपेक्षितभावसे ऐरावतके मस्तकपर डाल दी और स्वय चलनेको उद्यत हो गये। हाथी मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सुगन्धित तथा कभी म्लान न होनेवाली उस मालाको सूँडद्वारा मस्तकसे खींचकर मसलते हुए भूमिपर फेंक दिया। यह देखकर दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और शाप देते हुए उन्होने कहा—'रे मूढ! तुमने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया, तुम त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होनेके कारण मेरा अपमान करते हो, इसलिये जाओ आजसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी और यह तुम्हारा त्रिभुवन भी श्रीहीन हो जायगा, इसमे कोई सदेह नहीं है।' इतना कहकर दुर्वासा शीघ्र ही वहाँसे चल दिये।

इस शापके प्रभावसे इन्द्रादि देवताओसहित तीनो लोक श्रीहीन हो गया। यह दशा देखकर इन्द्रादि देवता अत्यन्त दु खित हुए। महर्षिका शाप अमोघ था। उन्हे प्रसन्न करनेके सभी प्रयत्न एव प्रार्थनाएँ जब विफल हो गयीं, तब असहाय तथा दु खी देवगण एव ऋषि-मुनि आदि प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजी उन्हे साथ लेकर वैकुण्ठम श्रीनारायणके पास पहुँचे और सभीने वहाँ अनेक प्रकारसे श्रीनारायणकी स्तुति की और बताया कि 'प्रभो! एक तो हम दैत्योके द्वारा अत्यन्त कष्टमे हैं और इधर महर्षिके शापसे श्रीहीन भी हो गये हैं। आप शरणागतोके रक्षक हैं, अत इस महान् कष्टसे हमारी रक्षा कीजिये।' स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने गम्भीर वाणीमे कहा—'तुम लोग समुद्रका मन्थन करो

जिससे लक्ष्मी और अमृतकी प्राप्ति होगी, जिसे पीकर तुम लोग अमर हो जाओगे और दैत्य तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न कर सकेंगे, किंतु यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसके लिये तुम लोग असुरोंको अमृतका प्रलोभन देकर संधि कर लो और दोनों मिलकर समुद्रका मन्थन करो'—यह कहकर प्रभु अन्तर्हित हो गये। प्रसन्नचित्त इन्द्रादि देवोंने असुरराज बलि तथा उनके प्रधान नायकोंको अमृतका प्रलोभन देकर इसके लिये सहमत कर लिया।

श्रीहरिके निर्देशपर ब्रह्मा आदि सभीने पृथ्वीपर स्थित समस्त ओषधियाँ तथा वनस्पतियोंको समुद्रमें डाला। मथानीके लिये मन्दराचलका सहारा लिया और वासुकि नागकी रस्सी बनाकर सिरकी ओर दैत्योंने तथा पूँछकी ओर देवताओंने पकड़कर समुद्र-मन्थन आरम्भ कर दिया, किंतु अथाह सागरमें मन्दरगिरि डूबता हुआ पातालमें चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीलावतारी भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उसे नीचेसे ऊपर उठाकर और थोड़ा अंश समुद्रसे ऊपर रखकर स्वयं अपनी पीठपर उस मन्दराचल पर्वतको मथानीके रूपमें धारण कर लिया। अब रस्सी बने वासुकि नागको उस मथानीके चारों ओर लपटकर देवता और असुरगण समुद्र-मन्थन करने लगे। श्रीभगवान्‌के इस लीलामय रूपको देखकर ब्रह्मादि देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए स्तुति करने लगे। भगवान्‌का यह कच्छपरूप विग्रह एक लाख योजनमें फैला हुआ जम्बूद्वीपके समान विस्तृत था। (श्रीमद्भा० ८। १७, कूर्मपु० १। १। २७-२८)

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी नारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि पञ्च कल्पवृक्ष, विष्णुका कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, सूर्यका वाहन सप्तानन उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट—ये सभी निकले थे।

नारदादि ऋषियों तथा इन्द्र आदिको भगवान् कूर्मने समस्त कूर्मपुराण सुनाया। जिसकी आज तीन संहिताएँ अप्राप्त हैं, सम्प्रति मात्र ब्राह्मीसंहिता उपलब्ध है। इसमें सभी वेदों एवं धर्मशास्त्रोंका सार वर्णित है।

इस पुराणमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यके वृत्तान्तोंका विस्तारसे बताया गया है। यह पुराण मनुष्योंका पुण्य प्रदान करनेवाला और मोक्षधर्मका वर्णन करनेवाला है। सर्वप्रथम लोकपितामह ब्रह्माका आविर्भाव, तदनन्तर सूर्यके सदृश तेजोमय त्रिशूलधारी त्रिलोचन महेश्वर भगवान् रुद्रदेवका प्रादुर्भाव, साथ ही प्रसन्नवदना मङ्गलमयी दिव्य शोभासे सुसम्पन्न मूलप्रकृतिरूपा महामाया नारायणी भगवती लक्ष्मीकी उत्पत्तिका वर्णन हुआ है। ब्रह्माके द्वारा अनुरोध करनेपर भगवान् विष्णु महामाया लक्ष्मीको देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायासे मोहितकर संसारमें प्रवृत्त करनेका आदेश प्रदान करते हैं। साथ ही प्रभुके द्वारा यह भी निर्देश किया जाता है कि जो जितेन्द्रिय हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, क्रोधशून्य हैं तथा सत्परायण हैं, जो भक्तियोगमें निरत हैं, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌को अर्पण कर दिया है, जो जप, होम, यज्ञ एवं स्वाध्यायके द्वारा देवाधिदेव महेश्वरका यजन करते हैं तथा जो स्वधर्मका पालन करते हुए ईश्वराराधनमें तत्पर हैं—ऐसे लोगोंको दूरसे ही छोड़ देना, कदापि मोहित न करना। चूँकि महामाया भगवती पराम्बाने भगवान्‌की इस आज्ञाका पूर्णतः पालन किया, अतः भगवान्‌द्वारा भगवती महालक्ष्मीके पूजनका आदेश किया गया है। जिसके करनेसे विपुल ऐश्वर्य, पुष्टि, मेधा, यश एवं बलकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्माके द्वारा सम्पूर्ण चराचर भूत-प्राणियोंकी सृष्टि की गयी है। चारों वर्णोंकी उत्पत्तिमें ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मणकी, भुजाओंसे क्षत्रियकी, जंघाओंसे वैश्यकी तथा पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई।

ऋक्, यजु, साम तथा अथर्ववेद ब्रह्माके सहज-स्वरूप हैं। प्रारम्भमें ही आदि और अन्तसे रहित वेदमयी दिव्य वाक्‌रूपी शक्तिको ब्रह्माने उत्पन्न किया। तदनन्तर वर्णाश्रमधर्मका प्रतिपादन किया गया। आश्रमधर्मके अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यासधर्मके साथ-साथ गृहस्थधर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है। चूँकि तीनों आश्रमोंके लोग गृहस्थाश्रमीपर ही निर्भर करते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमको तीनों आश्रमोंका आधार कहा गया है।

चतुर्विध पुरुषार्थके वर्णनमें धर्मसे रहित अर्थ एवं कामके परित्याग करनेकी बात कही गयी है। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, धर्मसे ही कामकी सिद्धि होती है और धर्माचरणसे ही मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। जिस व्यक्तिमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम प्रतिष्ठित रहते हैं, वह इस लोकमें सुखोंका

उपभोगकर मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करनेमे समर्थ होता है।

इसके अनन्तर चारो वर्णोके लिये सामान्य धर्मका भी प्रतिपादन किया गया है। क्षमा, दम (इन्द्रियनिग्रह), दया, व्रत, अलोभ, त्याग, आर्जव (मन-वाणी आदिकी सरलता), अनसूया, तीर्थानुसरण, सत्य, सतोष, अहिंसा, श्रद्धा, जितेन्द्रियत्व, आस्तिकता (वेदादि शास्त्रोमे श्रद्धा), अपिशुनता मधुर भाषण, पापसे राहित्य—ये सब मानवमात्रके लिये सामान्य धर्म कहे गये हैं, जिसका पालन सबको करना चाहिये। स्वधर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मणको प्राजापत्यलोक, क्षत्रियको इन्द्रलोक, वैश्यको वायुलोक और शूद्रको गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—इन त्रिदेवोकी एकताका निरूपण हुआ है। ये तीना ही पृथक्-पृथक् कार्यकी दृष्टिसे एक ही प्रभुकी तीन मूर्तियाँ बतायी गयी हैं। अत ये तीना ही वन्दनीय एव पूजनीय हैं। परमपदकी प्राप्तिके लिये वर्णाश्रमधर्मके नियमोका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पालन करते हुए श्रद्धापूर्वक त्रिदेवाका पूजन करना चाहिये।

आगे चलकर परमपद (मोक्ष)-की प्राप्तिके साधनरूपम निष्कामकर्मकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। न्यायमार्ग (ईमानदारी)-से धन प्राप्त करनेवाला, शान्त, ब्रह्मविद्यापरायण आसक्तिसे रहित होकर भगवत्प्रसन्नताकी बुद्धिसे अपने समस्त कर्मोको ब्रह्मार्पण करनेवाला निष्काम व्यक्ति प्रसन्न-मनसे कर्मोको करते हुए उस परमपद (मोक्ष)-को प्राप्त हाता है। निष्कामकर्मसे जन्म-जन्मान्तरके पाप नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर चित्तको प्रसन्नता प्राप्त होती है और ब्रह्मका परिज्ञान हो जाता है। परम ज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर उसके प्रभावस नैष्कर्म्यकी सिद्धि कर वह एकाकी, ममताशून्य तथा शान्तचित्त व्यक्ति जीवनकालम ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रसन्नचित्त हाकर परमेश्वरकी सतुष्टिके लिये निरन्तर कर्मयोगका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

ऋषियाके प्रश्न करनेपर भगवान् कूर्म जगत्की सृष्टिका क्रम, पञ्चीकरण-प्रक्रिया तथा परमेश्वरके विविध नामाका निरूपण करते हैं। इसी क्रमम ब्रह्माजीके आयुका वणन, युग, मन्वन्तर तथा कल्पादि-कालकी गणना प्राकृत प्रलय तथा कालकी महिमाका वणन प्राप्त होता है।

इसके बाद भगवान् कूर्मने सृष्टिके पूर्वकी स्थितिका निरूपण करते हुए ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवद्वारा वराहरूप धारणकर जलसे आप्लावित एकार्णवमे प्रलीन पृथ्वीके उद्धारका वर्णन किया है। तदनन्तर नौ सर्गोकी उत्पत्ति, ब्रह्माके मानस पुत्रोकी उत्पत्ति, ब्रह्माके ललाटसे रुद्रकी उत्पत्ति तथा स्वयम्भू दक्षकी त्रयोदश कन्याओसे धर्मकी सतानोकी उत्पत्तिका वर्णन मिलता है। सृष्टि-वर्णनमें ब्रह्माजीसे मनु और शतरूपाका प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव—मनु-वश-वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओ तथा उनके विवाहका वर्णन तथा धर्म एव अधर्मकी सतानोका विवरण प्राप्त होता है।

कूर्मपुराणमे कूर्मरूप भगवान् विष्णुने शिवको ही परमतत्त्व तथा मुख्य देवके रूपमे प्रतिपादित किया है। परब्रह्मके रूपम शिवतत्त्व तथा महेश्वरका माहात्म्य भी वर्णित है। आगेके प्रकरणमे शेषशायी नारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव, भगवान् शकरका प्राकट्य विष्णुद्वारा ब्रह्माके समक्ष शिवके माहात्म्यका निरूपण, ब्रह्माजीद्वारा भगवान् शकरकी स्तुति तथा शिव एव विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन हुआ है। पुन देवी भगवती पार्वतीका आविर्भाव, हिमवान्द्वारा उनकी स्तुति, देवीमाहात्म्य तथा सहस्रनामस्तोत्र एव उसके माहात्म्य आदिका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् भगवती पार्वतीद्वारा हिमवान्को ईश्वरयोगका उपदेश, भृगु-वशका वर्णन स्वायम्भुव मनु-वश, पृथु-वश देव, असुर, नाग, गन्धर्व, किनर, विश्वेदेव, वसु तथा मरुद्गणाकी उत्पत्तिके आख्यान सती-देह-त्याग, दक्ष-यज्ञ-विध्वस, दक्षकी कन्याआका वश, नृसिहावतार एव हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष-वध, वामनावतारकी कथा, इक्ष्वाकु-वश-वर्णन एव रामचरित-आख्यान, कश्यप तथा अदितिसे उत्पन्न सूर्य एव चन्द्र-वश तथा अनसूयाकी सततिका वर्णन हुआ है।

आगेके अध्यायोम यदुवशके वर्णनम भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गलमय चरित्र, श्रीकृष्णद्वारा पुत्र-प्राप्ति-हेतु तपस्या, शिवका दर्शन एव उनकी स्तुति तथा भगवान् महेश्वरकी कृपास श्रीकृष्णको जाम्बवती नामक पत्नीस साम्ब नामक पुत्रकी प्राप्तिका वर्णन किया गया है।

कैलास-शिखरस गरुडपर आरूढ हाकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामे पहुँचकर जाम्बवतीके साथ सिहासनपर विराजमान होते हैं ठीक उसी समय मार्कण्डेय मुनिका पदार्पण हुआ। मार्कण्डेय मुनिको यह जिज्ञासा हुई तथा उन्हाने पूछा कि कर्मोके द्वारा आपकी ही पूजा की जाती है यागियाके ध्यय

भी आप ही हैं, फिर आप किस देवताकी पूजा करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने उत्तरमें कहा—इस ससारमे लिङ्गार्चनसे अधिक पुण्यप्रद और भयका नाश करनेवाला दूसरा कर्म नहीं है। अत लोकोंके कल्याणके लिये इस लिङ्गमें शिवकी पूजा करनी चाहिये। वैदिक सिद्धान्तोंको जाननवाले लोग उस लिङ्गको मेरा ही स्वरूप कहते हैं। मैं शिवस्वरूप ही हूँ, इसमें कोई सदेह नहीं। मार्कण्डेय मुनिने भगवान् श्रीकृष्णसे पुन पूछा कि आप इस गूढ एव श्रेष्ठ विषयको बतायें कि लिङ्ग क्या है तथा इसका प्राकट्य कैसे हुआ? तब भगवान् श्रीकृष्णने लिङ्गकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—पूर्वकालमें एक बार मेरे स्वरूप भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मामे विवाद हुआ। वे दोना परस्पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने लगे। उसी समय यथार्थ स्थितिका ज्ञान करानेके लिये शिवस्वरूप ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ। यह लिङ्ग आदि और अन्तसे रहित था। उसी समय भगवान् महेश्वरने विष्णुसे नीचेकी ओर जाकर एव ब्रह्मासे ऊपरकी ओर जाकर इस लिङ्गके आदि एव अन्तका पता लगानेको कहा। वे दोनों ही ऊपर तथा नीचेकी ओर गये, लेकिन हजारा वर्षोंमे भी उस ज्योतिर्लिङ्गका आदि-अन्त नहीं जान सके। तदनन्तर त्रिशूलधारी भगवान्‌की मायासे मोहित, भयभीत एव आश्चर्यचकित वे दोना विश्वरूप उन शम्भुकी स्तुति करने लगे। भगवान् महेश्वर प्रसन्न होकर उन दोनोको दर्शन देकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तभीसे लोकमे लिङ्ग-पूजन प्रतिष्ठित हो गया। लय होनेसे लिङ्ग कहा जाता है। लिङ्ग ब्रह्मका श्रेष्ठ शरीर है। इसके बाद श्रीकृष्णके स्वधामगमनका उपक्रम होता है।

इसके आगे चलकर व्यासदेवजीद्वारा युगधर्मका वर्णन किया गया है। कलियुगम धर्मके ह्रासका प्रतिपादन करते हुए इस युगके धर्मोंका वर्णन तथा कलिकालम शिव-पूजनकी विशेष महिमाका ख्यापन किया गया है। तदनन्तर व्यासजीका वाराणसी-आगमन होता है। व्यासजीसे जैमिनि आदि ऋषि धर्म-सम्बन्धी प्रश्न करते हैं। जिसके उत्तरमे व्यासजीद्वारा शिव-पार्वती-सवाद प्रस्तुत किया जाता है। इस सवादम भूतभावन भगवान् शिवन पराम्बा भगवती पार्वतीसे ससार-सागरसे पार उतारनेवाली तीर्थोंमें उत्तम सभी स्थानोम श्रेष्ठ अविमुक्त काशी-क्षेत्रकी महिमाका वर्णन किया है। भगवान् शकर पार्वतीसे कहते हैं—'हे देवि! मेरा गुह्यस्वरूप यह वाराणसी-क्षेत्र भूलोकसे सम्बद्ध नहीं है। सभी गुह्य स्थानाम यह मरा सर्वाधिक प्रिय स्थान है। मेरे जो भक्त यहाँ निवास करते हैं, वे मुझमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। यहाँ किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन एव ज्ञानार्जन सब कुछ अक्षय हो जाता है। जन्म-जन्मान्तराके पूर्वसचित पाप भी यहाँ प्रवेश करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। इस अविमुक्त-क्षेत्रम जो प्राणी (मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतग आदि कोई भी) मृत्युको प्राप्त होता है, वह मेरे लोक (कैलासपुरी)-म प्रतिष्ठित होता है। इस अविमुक्त-क्षेत्रमें मरा हुआ कोई पापी भी नरकम नहीं जाता।' वहाँ ईश्वर (शकर)-की परम कृपासे सभी प्राणी परमगतिको प्राप्त करते हैं। अतएव मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और ससारको अत्यन्त भीषण समझकर पत्थरद्वारा पैराको तोडकर मनुष्यको वाराणसीम निवास करना चाहिये। जो महापापी हैं और उनसे भी अधिक पाप करनेवाले जो अतिपापी हैं, वे वाराणसी पहुँचकर परमगतिको प्राप्त करते हैं। इसलिये मोक्षार्थीको मरणपर्यन्त वाराणसीमे निवास करना चाहिये। वाराणसीम महादेवसे ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। किंतु पापसे आक्रान्त-चित्तवालोंको विघ्न होते हैं। इसलिये शरीर, मन एव वाणीसे भी पाप नहीं करना चाहिये, यह वेदों और पुराणोंका रहस्य है।

इसके बाद व्यासजीद्वारा काशीमे स्थित ओंकारेश्वर कृत्तिवासेश्वर, कपर्दीश्वर, मध्यमेश्वर आदि शिवलिङ्गोका माहात्म्य पिशाचमोचनका वर्णन शकुकर्ण-चरित्र तथा वाराणसी-माहात्म्य-प्रसगम तीर्थ-सख्यादिका कथन किया गया है। इसके साथ ही शिवाचन व्यासजीका भिक्षाचरण व्यासके समक्ष भगवती अन्नपूर्णाका प्रादुर्भाव आदि प्रकरणोंका दिग्दर्शन हुआ है।

प्रयाग-माहात्म्यके अन्तर्गत प्रयागतीर्थकी यात्राविधि गङ्गा-यमुनाके त्रिवेणी-सगममे स्नान करनेका माहात्म्य तथा सगममे विविधरूपसे प्राण-त्यागक फलादिका विवेचन किया गया है। आगे चलकर द्वादशादित्योंके नाम, सूर्य-रथके अधिष्ठातृ देवताका वर्णन तथा सूर्यकी सात रश्मियां और सहस्र नाडियों आदिका वर्णन हुआ है। इसके साथ ही भुवनकोशमें सप्तद्वीपा, सप्तमहासागरो, वर्षों, जम्बूद्वीप पर्वतों, नदियों, चौदह लोको, देवादिकाकी विविध पुरियोके साथ ज्योति-सनिवेश आदिका वर्णन विस्तारसे प्रतिपादित है। अन्तमें

वैवस्वतमन्वन्तरमे शिवके अनेक अवतारोके वर्णनके साथ सात भावी मन्वन्तराका नाम परिगणित है। इन्हीं विषयाके समन्वयमे कूर्मपुराणका पूर्वविभाग पूर्ण हो जाता है।

कूर्मपुराणके उत्तर-भाग (उपरिविभाग)-म सर्वप्रथम ईश्वरगीताका उपक्रम प्राप्त होता है, जिसको प्राचीन कालमे सनत्कुमारादि प्रमुख मुनीश्वरोके द्वारा पूछनेपर स्वय शूलपाणि महादेवने कहा था। इसीका मुनियाके द्वारा ब्रह्मविषयक ज्ञानकी जिज्ञासा करनेपर व्यासजीने प्रतिपादन किया।

इस सम्पूर्ण कार्य-जगत्का कारण तत्त्व कौन है? कौन नित्य गतिशील रहता है? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है? और ससारकी रचनाका प्रयोजन क्या है? इस ससारको चलानेवाला शासक कौन है? परात्पर ब्रह्म क्या है?— मुनीश्वरोके इस प्रकार जिज्ञासा करनेपर चन्द्रभूषण जगन्नाथ त्रिलोचन प्रकट होते हैं और अपने सदुपदेशद्वारा आत्मतत्त्वका निरूपण करते हुए आत्मसाक्षात्कारके साधनाका वर्णन करते हैं। यही सदुपदेश ईश्वरगीताके नामसे विख्यात है।

तदनन्तर शिवभक्तिका माहात्म्य, शिवोपासनाकी सुगमता, ज्ञानरूप शिवस्वरूपका वर्णन, शिवकी तीन प्रकारकी शक्तियोका प्रतिपादन तथा शिवके परमतत्त्वका निरूपण हमे यहाँ प्राप्त होता है। आगे चलकर ईश्वर (शकर)-द्वारा अपनी विभूतियोका वर्णन, प्रकृति महत् आदि चौबीस तत्त्वो तीन गुणा तथा पशु, पाश और पशुपति आदिका विवेचन किया गया है। तदनन्तर महादेवके विश्वरूपत्वका वर्णन ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका प्रतिपादन, परमतत्त्व तथा परम ज्ञानके स्वरूपका निरूपण एव उसकी प्राप्तिके साधन आदि विषयोपर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही योगकी महिमा, अष्टाङ्गयोग यम-नियमादि योगसाधनाका लक्षण, प्राणायामका विशेष प्रतिपादन ध्यानके विविध प्रकार, पाशुपतयोगका वर्णन, वाराणसीम प्राण-त्यागकी महिमा, शिवाराधनकी विधि, शिव एव विष्णुके अभेदत्वका प्रतिपादन ईश्वरगीताकी फलश्रुति एव उपसहार आदि विषयोका विस्तृत रूपम उल्लेख हुआ है।

ब्रह्मचारीका धर्म, यज्ञोपवीतका उपलक्षण अभिवादन-विधि माता-पिता एव गुरुकी महिमा ब्रह्मचारीके नित्यकर्मकी विधि आचमनका विधान, मूत्र-पुरीपोत्सर्गके नियम तथा शुद्धिकी प्रक्रिया ब्रह्मचारीके आचारका वर्णन और वेदाध्ययन एव गायत्रीकी महिमाका विस्तृत विवेचन यहाँ प्राप्त होता है।

इस पुराणमे गृहस्थधर्मके अन्तर्गत गृहस्थके सदाचारका वर्णन, धर्माचरण एव सत्यधर्मकी महिमाका प्रतिपादन समाराहके साथ हुआ है।

गृहस्थके लिये यह कहा गया है कि वेद एव शास्त्रमे बताये गये अपने कर्मोको नित्य आलस्यरहित होकर करना चाहिये। इन्हे न करनेपर वह शीघ्र ही अत्यन्त भयकर नरकोमे गिरता है। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि अपने द्वारा अनुष्ठित धर्मका वर्णन दूसरेके समक्ष न करे और अपने द्वारा किये गये पापाको दूसरोसे न छिपाये। नित्य स्वाध्यायपरायण रहनेवाला तथा सत्य बोलनेवाला एव क्रोधपर विजय प्राप्त करनेवाला ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। यज्ञोपवीतधारी, नित्य सध्या एव स्नान करनेवाला, ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-परायण रहनेवाला, असूयारहित, मृदुभाषी, जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोकमें अभ्युदय प्राप्त करता है। राग, भय एव क्रोधसे रहित तथा लोभ-मोहसे शून्य, गायत्रीके जपमे तत्पर और पितरोका श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। माता-पिता, गौ एव ब्राह्मणका हित करनेमे निरत, जितेन्द्रिय, यजन करनेवाला, देवताओका भक्त ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। निरन्तर धर्म-अर्थ तथा कामरूप त्रिवर्गका पालन और देवताओका पूजन प्रतिदिन करना चाहिये तथा प्रयत्नपूर्वक नित्य देवताओ एव गुरुओको नमस्कार करना चाहिये। धर्मसे रहित काम एव अर्थका मनसे भी चिन्तन नहीं करना चाहिये धर्मपालनमे कष्ट होनेपर भी उसका परित्याग न करे। अधर्मका आचरण कदापि न करे। इस प्रकार गृहस्थधर्मका प्रतिपादन बडे समारोहसे यहाँ किया गया है।

आगेके प्रकरणम सदाचारका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। जिसके अन्तर्गत किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये, कभी भी असत्यभाषण नहीं करना चाहिये। दूसराके लिये अहितकर और अप्रिय वचन कदापि न बोले, कभी भी किसी वस्तुकी चोरी न करे, दूसरेके तृण, शाक, मिट्टी अथवा जलका भी अपहरण करनेवाला प्राणी नरक प्राप्त करता है। इन विषयोंके साथ ही इस प्रकरणम गृहस्थ-जीवनमें रहनेकी सूक्ष्म प्रक्रियाआका दिग्दर्शन कराया गया है जो सामान्यत सबके लिये परम उपयोगी और कल्याणकारी है।

इसके आगे भक्ष्याभक्ष्य-प्रकरणम सद्गृहस्थके लिये तथा अपना कल्याण चाहनेवालके लिये क्या भक्ष्य है क्या अभक्ष्य है, इसका विशद विवेचन हुआ है।

उपरिविभागके १८वें अध्यायमें गृहस्थके नित्यकर्मोंका वर्णन, प्रात स्नानकी महिमा, छ प्रकारके स्नान, सध्योपासन-विधि एव उसकी महिमा, तर्पण-विधि, नित्य किये जानेवाले पञ्चमहायज्ञोंकी महिमा तथा उनके विधान आदि विषयोंको प्रस्तुत किया गया है। इसके बाद आगेके प्रकरणमें भोजन करनेकी विधिका भी निरूपण किया गया है। हाथ, पैर तथा मुखका प्रक्षालनकर पवित्र आसनपर बैठकर भोजन करना चाहिये। प्रजापति मनुने इस प्रकारके भोजनको उपवासके समान ही बताया है। ग्रहणकालमें भोजनके निषेधका कथन तथा शयनकी विधिका निरूपण भी किया गया है।

अपने यहाँ श्राद्धकी बडी महिमा है, परतु श्राद्धादि कर्मोंमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता होती है। श्राद्धके प्रशस्त दिन, तिथियों, नक्षत्रों और विभिन्न वारोंमें किये जानेवाले श्राद्धोंका विभिन्न फल, श्राद्धके आठ भेद, श्राद्धके लिये प्रशस्त स्थान, श्राद्धके विहित तथा निषिद्ध पदार्थोंका निरूपण विस्तृत रूपसे किया गया है। साथ ही श्राद्धमें ब्राह्मण निमन्त्रित करनेकी विधि निमन्त्रित ब्राह्मणके कर्तव्य तथा श्राद्धके दिन निषिद्ध कर्मों आदिका विवेचन निरूपित है।

अशौच-प्रकरणमें जननाशौच एव मरणाशौचकी क्रियाविधि, शुद्धिविधान, अन्त्येष्टि-सस्कार, सपिण्डीकरण-विधि एव मासिक तथा सावत्सरिक श्राद्धका वर्णन किया गया है।

कलियुगमें दानका विशेष महत्त्व बताया गया है। कूर्मपुराणमें दान-धर्मका विशेष रूपसे निरूपण हुआ है। सदाचारसम्पन्न व्यक्तिको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जो धन दिया जाता है वही वास्तविक दान है। नित्य-नैमित्तिक एव काम्य तीन प्रकारके दान बताये गये हैं। चौथा 'विमल' दान है। ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये धर्मभावनासे ब्रह्मज्ञानियोंको जो दिया जाता है, वह कल्याणकारी दान 'विमल' दान कहा जाता है। सत्पात्रकी प्राप्ति होनेपर यथाशक्ति दानधर्मका पालन करना चाहिये क्योंकि कभी ऐसा सत्पात्र प्रकट हो सकता है जो दाताका सभी प्रकारसे उद्धार कर दे। कुटुम्बके भरण-पोषणसे बचे हुए पदार्थका दान करना चाहिये इससे भिन्न प्रकारका किया जानेवाला दान फलप्रद नहीं होता। आगेके अध्यायोंमें वानप्रस्थधर्म एव सन्यासधर्मका प्रतिपादन हुआ है।

कूर्मपुराणमें प्रायश्चित्त-प्रकरणका भी निरूपण विशदरूपसे किया गया है। ब्रह्महत्यादि पञ्चमहापातकोंका वर्णन और उसका प्रायश्चित्त, चोरी एव अभक्ष्य-भक्षणके प्रायश्चित्त आदिका विस्तारसे वर्णन हुआ है। पातिव्रत्य व्रतके माहात्म्यमें भगवती सीताका आख्यान वर्णित है। तीर्थ-माहात्म्यके अन्तर्गत प्रयाग, गया, एकाम्र तथा पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन हुआ है। मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-सवादके अन्तर्गत मार्कण्डेयजीद्वारा नर्मदा तथा अमरकण्टक आदि तीर्थोंके माहात्म्य-उल्लेखनके साथ ही नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंकी महिमाका भी कथन सम्यक्‌रूपसे हुआ है।

अन्तमें प्राकृत प्रलयका वर्णन, शिवके विविध स्वरूपों एव शक्तियोंका निरूपण तथा शिवकी आराधना-विधि बतायी गयी है।

कूर्मपुराणमें निर्गुण तथा सगुण दोनों उपासना-विधियोंका निरूपण है। सगुणोपासनाके अन्तर्गत सर्वप्रथम पिनाकधारी त्रिलोचन पद्मासनमें स्थित स्वर्णिम आभावाले भूतभावन भगवान् सदाशिवका ध्यान निरूपित किया गया है। इस विधामें ब्रह्मादि सभी देवोंको छोडकर एकमात्र भगवान् महेश्वरकी ही आराधना विहित है। जो इस विधामें असमर्थ है, उसे हर, विष्णु एव ब्रह्माकी उपासना करनी चाहिये। इसमें भी जो असमर्थ हो उसे भक्तियुक्त होकर वायु, अग्नि तथा इन्द्रादि देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विविध विषयोंके विवेचनमें इस पुराणका उपसहार करते हुए भगवान् जनार्दन मौन हो गये। तब इन्द्रके साथ मुनिगणोंने कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णुका स्तवन किया। तदनन्तर भगवती लक्ष्मीको साथ लेकर और कूर्मरूपका परित्यागकर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु अपने धामको चले गये।

यह पौराणिकी (कूर्मपुराणकी) ब्राह्मीसहिता पापोंका नाश करनेवाली है इसमें उस परम ब्रह्मके तात्त्विक स्वरूपका यथार्थरूपसे विवेचन हुआ है। यह तीर्थोंमें परम तीर्थ, तपोंमें परम तप ज्ञानोंमें परम ज्ञान और व्रतोंमें परम व्रत है।

कूर्मपुराणमें इन्हीं विषयोंका विवेचन बडे ही समारोहपूर्वक हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पुराणका एक विहङ्गमावलोकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरि ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नम ॥

कूर्मपुराण

[पूर्व विभाग]

पहला अध्याय

सूतजीकी उत्पत्ति, उनके रोमहर्षण नाम पडनेका कारण, पुराणो तथा उपपुराणोका नाम-परिगणन, समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न विष्णुमायाका वर्णन, इन्द्रद्युमका आख्यान आर कूर्मपुराणकी महिमा

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

(बदरिकाश्रममे निवास करनवाले ऋषि) नारायण, नराम उत्तम श्रीनर तथा उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वतीको नमस्कार कर जय (पुराण एव इतिहास आदि सद्ग्रन्था)-का पाठ करना चाहिये।

नमस्कृत्वाप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।
पुराण सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्त विश्वयोनिना॥ १॥

कूर्म-रूप धारण करनेवाले अप्रमेय भगवान् विष्णुको नमस्कार कर मैं उस पुराण (कूर्मपुराण)-को कहूँगा, जो समस्त विश्वके मूल कारण भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया था॥ १॥

सत्रान्ते सूतमनघ नैमिषीया , महर्षय ।
पुराणसहिता पुण्या पप्रच्छू रोमहर्षणम्॥ २॥
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तम ।
इतिहासपुराणार्थं व्यास सम्यगुपासित ॥ ३॥
तस्य त सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्।
द्वैपायनस्य भगवास्ततो वै रोमहर्षण ॥ ४॥

नैमिषारण्यवासी महर्षियोने (बारह वर्षतक चलनेवाले) सत्र (यज्ञ)-के पूर्ण हो जानेपर सर्वथा निष्पाप रोमहर्षण सूतजीसे पवित्र पुराण-सहिताके विषयम प्रश्न किया—महाबुद्धिमान् सूतजी महाराज! आपने इतिहास और पुराणाके ज्ञानके लिये ब्रह्मज्ञानियाम परम श्रेष्ठ भगवान् वेदव्यासजीकी भलीभाँति उपासना की है। चूँकि आपके वचनसे द्वैपायन भगवान् वेदव्यासजीके समस्त रोम हर्षित हो गय थे, इसलिये आप 'रामहर्पण' कहलाते हैं॥ २—४॥

भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वय प्रभु ।
मुनीना सहिता वक्तु व्यास पौराणिकी पुरा॥ ५॥
त्व हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितत हरि ।
सम्भूत सहिता वक्तु स्वाशेन पुरुषोत्तम ॥ ६॥
तस्माद् भवन्त पृच्छाम पुराण कौर्ममुत्तमम्।
वक्तुमर्हसि चास्माक पुराणार्थविशारद॥ ७॥

प्राचीन कालम स्वय समर्थ होते हुए भी भगवान् वेदव्यासजीने आपसे ही कहा था कि आप मुनियाको पुराण-सहिता सुनाय। (सूतजी महाराज!) आप अपने अशसे उत्पन्न साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीके, महान् यज्ञम सोमरस प्रस्तुत करनेके दिन पुराण-सहिताका वाचन करनेक लिये ही आपका आविर्भाव हुआ था। आप पुराणाके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले हैं। इसीलिये हम आपसे श्रेष्ठ कूर्मपुराणके विषयमे पूछ रहे है। आप हम् वह (कूमपुराण) बतलाये॥ ५—७॥

मुनीना वचन श्रुत्वा सूत पौराणिकोत्तम ।
प्रणम्य मनसा प्राह गुरु सत्यवतीसुतम्॥ ८॥

मुनियाके वचन सुनकर पौराणिकाम श्रेष्ठ सूतजीने देवी सत्यवतीके पुत्र अपने गुरु (भगवान् वेदव्यास)-को मन-ही-मन प्रणाम कर (इस प्रकार) कहा—॥ ८॥

रामहर्षण उवाच

नमस्कृत्वा जगद्योनि कूर्मरूपधर हरिम्।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथा पापप्रणाशिनीम्॥ ९॥

या श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमा गतिम्।
न नास्तिके कथा पुण्यामिमा ब्रूयात् कदाचन॥१०॥
श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये।
इमा कथामनुब्रूयात् साक्षान्नारायणेरिताम्॥११॥

रोमहर्षण सूतजी बाले— समस्त विश्वके मूल कारण, कूर्म-रूप धारण करनवाले भगवान् नारायण विष्णुको नमस्कार करके कूर्मपुराणकी उस दिव्य कथाका कहता हूँ, जो समस्त पापाको नष्ट करनेवाली है ओर जिसे सुनकर महान्-से-महान् पाप करनवाला पापी व्यक्ति भी परम गतिको प्राप्त कर लेता हे। कूर्मपुराणकी इस पुण्यकथाको नास्तिक व्यक्तिको कभी भी नहीं सुनाना चाहिये। जो अत्यन्त श्रद्धालु हैं, शान्त हैं, धर्मात्मा हैं—ऐसे द्विजातियाको साक्षात् नारायण भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी इस कूर्मपुराणकी कथाको विशेष रूपसे कहना चाहिये॥९—११॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित चैव पुराण पञ्चलक्षणम्॥१२॥

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय) वश वशानुचरित तथा मन्वन्तर—य पुराणोके पाँच लक्षण हैं॥१२॥

ब्राह्म पुराण प्रथमं पाद्म वैष्णवमेव च।
शैव भागवत चैव भविष्य नारदीयकम्॥१३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेय ब्रह्मवैवर्तमेव च।
लैङ्ग तथा च वाराह स्कान्द वामनमेव च॥१४॥
कौर्मं मात्स्य गारुड च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादश समुद्दिष्ट ब्रह्माण्डमिति सज्ञितम्॥१५॥

अठारह महापुराणोमे प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण हैं द्वितीय पद्मपुराण है। इसी प्रकार क्रमश विष्णु, शिव भागवत भविष्य नारद मार्कण्डेय अग्नि ब्रह्मवैवर्त लिङ्ग वराह स्कन्द वामन कूर्म मत्स्य और गरुडपुराण हैं। भगवान् वायुके द्वारा कहा गया अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्डपुराणके नामसे कहा जाता है॥१३—१५॥

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभि कथितानि तु।
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा सक्षेपतो द्विजा ॥१६॥

(सूतजीने पुन कहा—) ब्राह्मणो! अठारह पुराणोके नाम सुनकर (अब आप लोग) मुनियोद्वारा कहे गये अन्य उपपुराणोका नाम भी सक्षेपमे सुने—॥१६॥

आद्य सनत्कुमारोक्त नारसिहमत परम्।
तृतीय स्कान्दमुद्दिष्ट कुमारेण तु भाषितम्॥१७॥
चतुर्थ शिवधर्माख्य साक्षान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्य नारदोक्तमत परम्॥१८॥
कापिल मानव चैव तथैवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्ड वारुण चाथ कालिकाह्वयमेव च॥१९॥
माहेश्वर तथा साम्ब सौर सर्वार्थसचयम्।
पराशरोक्तमपर मारीच भार्गवाह्वयम्॥२०॥

(इन उपपुराणोमे) पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कहा गया सनत्कुमार उपपुराण है। तदनन्तर दूसरा नरसिंहपुराण है। स्कन्दकुमारके द्वारा कथित तीसरा पुराण स्कन्दपुराण कहा गया है। चौथे पुराणका नाम शिवधर्म है जो साक्षात् भगवान् नन्दीश्वर (शिव)-के द्वारा कहा गया है। महर्षि दुर्वासाके द्वारा कहा गया आश्चर्यपुराण पाँचवाँ है और छठा पुराण देवर्षि नारदके द्वारा कहा गया नारदपुराण है। इसी प्रकार (सातवाँ) कपिल (आठवाँ) मानव और शुक्राचार्यद्वारा प्रोक्त उशना नामक (नवाँ) पुराण है। (दसवाँ) ब्रह्माण्ड, (ग्यारहवाँ) वरुण तथा (बारहवाँ पुराण) कालिकापुराणके नामसे कहा गया है। (तेरहवाँ) माहेश्वरपुराण (चौदहवाँ) साम्बपुराण तथा सभी प्रकारके अर्थोंसे युक्त (पंद्रहवाँ) सौरपुराण है। (सोलहवाँ) पराशरपुराण महर्षि पराशरके द्वारा कहा गया है। (सत्रहवाँ) मारीचपुराण है और (अठारहवाँ पुराण) भार्गवपुराणके नामसे कहा गया है॥१७—२०॥

इद तु पञ्चदशमं पुराण कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्धा सस्थित पुण्यं सहितानां प्रभेदत ॥२१॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिता।
चतस्र सहिता पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥२२॥

यह कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ महापुराण है जो पुराणोमे श्रेष्ठ है। सहिताओके भेदसे यह पवित्र पुराण चार भागो (चार सहिताओ)-मे विभक्त है। ब्राह्मी भागवती सौरी तथा वैष्णवी नामक इस कूर्मपुराणकी चार पवित्र सहिताएँ धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष—इस प्रकार चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाली कही गयी हैं॥२१-२२॥

इय तु सहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता।
भवन्ति पट्सहस्राणि श्लोकानामत्र सख्यया॥ २३॥
यत्र धर्मार्थकामाना मोक्षस्य च मुनीश्वरा ।
माहात्म्यमखिल ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वर ॥ २४॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित दिव्या पुण्या प्रासगिकी कथा ॥ २५॥
ब्राह्मणाद्यैरिय धार्या धार्मिकै शान्तमानसै ।
तामह वर्तयिष्यामि व्यासेन कथिता पुरा॥ २६॥

यह ब्राह्मी सहिता है, जो चारा वेदोद्वारा अनुमोदित है। इसकी श्लोक-सख्या छ हजार है। हे मुनीश्वरो! इसमे धर्म अर्थ काम और मोक्षका अशेप माहात्म्य वर्णित है और (इसके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पठन-पाठन एव श्रवण आदिसे) परमश्वर ब्रह्मका ज्ञान होता है। इसम सर्ग प्रतिसर्ग, वश मन्वन्तर तथा वशानुचरित और दिव्य एव पुण्य प्रासगिक कथाएँ भी कही गयी हैं। यह पुराणसहिता शान्त-चित्त एव धर्मात्मा ब्राह्मणादिकाके द्वारा धारण करने योग्य है। (सूतजी कहते हैं—) मैं इसी पुराणसहिताका प्रवचन करूँगा जिसे प्राचीन समयम वदव्यासजीने कहा था॥ २३—२६॥

पुरामृतार्थं दैतेयदानवै सह देवता ।
मन्थान मन्दर कृत्वा ममन्थु क्षीरसागरम्॥ २७॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दन ।
बभार मन्दर देवो देवाना हितकाम्यया॥ २८॥
देवाश्च तुष्टुवुर्देव नारदाद्या महर्षय ।
कूर्मरूपधर दृष्ट्वा साक्षिण विष्णुमव्ययम्॥ २९॥

प्राचीन कालमे अमृतकी प्राप्तिके लिये देवताआने दितिके पुत्र दैत्यो और दानवाक साथ मन्दर नामक पर्वतको मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथा। उस क्षीरसागरके मन्थन किय जाते समय देवताआके कल्याणकी कामनासे जनार्दन भगवान् विष्णुने कूर्मरूप धारण करक उस मन्दराचलको ऊपर उठाय रखा। कूर्म (कच्छप) रूप धारण किये हुए सर्वद्रष्टा अविनाशी भगवान् विष्णुको दखकर देवताओ तथा नारदादि महर्षियोने उन देवकी स्तुति की॥ २७—२९॥

तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीर्नारायणवल्लभा।
जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुपोत्तम ॥ ३०॥
तेजसा विष्णुमव्यक्त । नारदाद्या महर्षय ।
मोहिता सह शक्रेण श्रियो वचनमब्रुवन्॥ ३१॥

उसी समय नारायण भगवान् विष्णुकी प्रिया देवी श्रीलक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। उन्हे पुरुपोत्तम भगवान् विष्णुने ही ग्रहण किया। लक्ष्मीके तेजसे मोहित हुए इन्द्रसहित नारद आदि महर्पियोने अव्यक्त भगवान् विष्णुसे यह वचन कहा—॥ ३०-३१॥

भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय।
कैषा देवी विशालाक्षी यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३२॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे नारायण! हे जगन्मय! हम पूछनेवालोको आप ठीक-ठीक बतलायें कि विशाल नेत्रोंवाली यह देवी कौन है?॥ ३२॥

श्रुत्वा तेषा तदा वाक्य विष्णुर्दानवमर्दन ।
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान्॥ ३३॥

उस समय उन देवताआ तथा महर्पियोका वह वाक्य सुनकर दानवाका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु देवी लक्ष्मीकी ओर देखकर नारद आदि परम पवित्र महर्षियोसे बोले—॥ ३३॥

इय सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी।
माया मम प्रियानन्ता ययेद मोहित जगत्॥ ३४॥
अनयैव जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च॥ ३५॥
उत्पत्ति प्रलय चैव भूतानामागति गतिम्।
विज्ञायान्वीक्ष्य चात्मान तरन्ति विपुलामिमाम्॥ ३६॥
अस्यास्त्वशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजा ।
ब्रह्मेशानादयो देवा सर्वशक्तिरिय मम॥ ३७॥

यह मेरी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परम शक्ति है यही माया है, यही अनन्ता है और यही मेरी वह प्रिया है जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को माहित कर रखा हे। हे श्रेष्ठ द्विजो! इसीके द्वारा मैं दवताआ असुरा एव मनुष्योसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको माहित करता हूँ, सहार करता हूँ और पुन सृष्टि करता हूँ। (ज्ञानी जन जगत्की) उत्पत्ति एव प्रलयको तथा प्राणियाक जन्म एव मोक्षको ठीक-ठीक समझकर और आत्मतत्त्वका दर्शनकर इस महामायाके बन्धनसे पार उतरत हैं। द्विजो! मेरी सब प्रकारकी शक्ति यही है इसीके अशाका आश्रय ग्रहणकर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता शक्तिमान् हुए है॥ ३४—३७॥

सैषा सर्वजगत्सूति प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्त सजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी॥३८॥
चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता शुभान्विता।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥३९॥
नाल देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च।
मायामेता समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिन॥४०॥

यही वह सत्त्व-रज तथा तम—तीनो गुणोसे युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और यही सारे ससारको उत्पन्न करनेवाली है। प्राचीन कालमे श्रीकल्पमे यह पद्मवासिनीके रूपमे मुझसे ही आविर्भूत हुई थी। ये चार भुजावाली है, ये हाथोमे शख चक्र तथा कमल धारण किये रहती हैं सभी मङ्गलमय गुणोसे युक्त हैं करोडो सूर्योके समान इनकी आभा है, ये सभी प्राणियोको मोहित करनेवाली है। देवता पितर, मनुष्य, वसुगण तथा पृथ्वीपर रहनेवाले जितने भी अन्य देहधारी प्राणी हैं, वे सभी अथात् कोई भी ऐसा नहीं है जो इस मायाको पार करनेमे समर्थ हो॥३८—४०॥

इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन्।
ब्रूहि त्व पुण्डरीकाक्ष यदि कालत्रयेऽपि च।
को वा तरति ता माया दुर्जया देवनिर्मिताम्॥४१॥

भगवान् वासुदेवके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मुनियोने भगवान् विष्णुसे कहा—हे पुण्डरीकाक्ष! उस देवनिर्मित दुर्जय मायाको पार करनेवाला तीनो कालोमे यदि कोई हुआ हो तो उसे आप बतलाये॥४१॥

अथोवाच हृषीकेशो मुनीन् मुनिगणार्चित।
अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुत॥४२॥
पूर्वजन्मनि राजासावधृष्य शकरादिभि।
दृष्ट्वा मा कूर्मसस्थान श्रुत्वा पौराणिकी स्वयम्।
सहिता मन्मुखाद् दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्॥४३॥
ब्रह्माण च महादेव देवाश्चान्यान् स्वशक्तिभि।
मच्छक्तौ सस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरण गत॥४४॥

तदनन्तर मुनियोद्वारा पूजित भगवान् हृषीकेशने उन मुनियोसे कहा—इन्द्रद्युम्न नामका द्विजातियोमे श्रेष्ठ एक ब्राह्मण था ऐसा सुना गया है। पूर्वजन्ममें वह शकर आदि देवताओसे भी अजेय राजा था। 'मैंने कूर्म-अवतार धारण किया है' यह जानकर तथा स्वय मेरे मुखसे दिव्य पुराण-सहिताको सुनकर वह (राजा इन्द्रद्युम्न) मुनीश्वरोसहित ब्रह्मा, शिव एव अपनी-अपनी शक्तियोके साथ अन्य सभी देवताओको मेरी ही शक्तिमे प्रतिष्ठित समझकर मुझे देखनेके लिये मेरी शरणमे आया॥४२—४४॥

सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोनि गमिष्यसि।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जाति स्मरसि पौर्विकीम्॥४५॥
सर्वेषामेव भूताना देवानामप्यगोचरम्।
वक्तव्य यद् गुह्यतम दास्ये ज्ञान तवानघ।
लब्ध्वा तन्मामक ज्ञान मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि॥४६॥
अशान्तरेण भूम्या त्व तत्र तिष्ठ सुनिर्वृत।
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थ मा प्रवेक्ष्यसि॥४७॥

इसके बाद मैंने कहा—(इन्द्रद्युम्न!) तुम ब्राह्मणकी योनिमे उत्पन्न होओगे तुम्हारा 'इन्द्रद्युम्न' यह नाम प्रसिद्ध होगा और तुम अपने पूर्वजन्मका स्मरण करोगे। हे अनघ! मैं तुम्हे सभी प्राणियो तथा देवताओके लिये भी अज्ञात एव जो अत्यन्त गूढ रूपसे कहने योग्य है उस ज्ञानका प्रदान करूँगा। उस मेरे ज्ञानको प्राप्तकर तुम अन्त समयमे मुझमे ही प्रविष्ट हो जाओगे और अपने ही अशसे दूसरे रूपमे तुम पृथ्वीपर शान्तिपूर्वक रहो। वैवस्वत मन्वन्तरके व्यतीत हो जानेपर तुम (अभीष्ट) कार्यके लिये मुझमे ही प्रविष्ट हो जाओगे॥४५—४७॥

मा प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम्।
कालधर्म गत कालाच्छ्वेतद्वीप मया सह॥४८॥
भुक्त्वा तान् वैष्णवान् भोगान् योगिनामप्यगोचरान्।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुन॥४९॥

(भगवान्‌ने पुन कहा—) मुनिश्रेष्ठो! मुझे प्रणामकर वह राजा अपनी नगरीमे गया और पृथ्वीका पालन-पोषण करने लगा। यथासमय मृत्यु होनेपर वह मेरे स्थान—श्वेतद्वीपको प्राप्त हुआ और वहाँ मेरे साथ योगियोके लिये भी अलभ्य दिव्य वैष्णव भोगोको भोगकर पुन मेरी ही आज्ञासे ब्राह्मण-कुलमे उत्पन्न हुआ॥४८-४९॥

ज्ञात्वा मा वासुदेवाख्य यत्र द्वे निहितेऽक्षरे।
विद्याविद्ये गूढरूपे यत्तद् ब्रह्म पर विदु॥५०॥

कर रहे उस मुनि (इन्द्रद्युम्न)-को अपने दोनो हाथोसे भलीभाँति स्पर्श कर (वे देवी) परात्पर विष्णुका स्मरण करती हुई वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ६३-६४॥

सोऽपि नारायण द्रष्टु परमेण समाधिना।
आराधयद्धृषीकेश प्रणतार्तिप्रभञ्जनम्॥ ६५॥
ततो बहुतिथे काले गते नारायण स्वयम्।
प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मय ॥ ६६॥
दृष्ट्वा देव समायान्त विष्णुमात्मानमव्ययम्।
जानुभ्यामवनि गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम्॥ ६७॥

इन्द्रद्युम्न भी शरणागतके दु खोको सर्वथा दूर कर देनेवाले हृषीकेश भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये दीर्घकालीन समाधिमे निरत होकर आराधना करने लगा। तत्पश्चात् बहुत समय बीत जानेपर पीताम्बरधारी, जगन्मूर्ति महायोगी भगवान् नारायण उसके सामने स्वय प्रकट हो गये। अविनाशी परमात्मा भगवान् विष्णुको आया हुआ देखकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर स्थित होकर वह गरुडध्वजदेवकी स्तुति करने लगा॥ ६५—६७॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्य विश्वात्मने नम ॥ ६८॥
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये।
सर्गस्थितिविनाशाना हेतवेऽनन्तशक्तये॥ ६९॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्य निष्कलायामलात्मने।
पुरुषाय नमस्तुभ्य विश्वरूपाय ते नम ॥ ७०॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नम ॥ ७१॥
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नम ।
भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे॥ ७२॥
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने।
अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नम ॥ ७३॥
नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नम ।
नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने॥ ७४॥
नमाऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नम ।
नम शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने॥ ७५॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—हे यज्ञोंके स्वामी। अच्युत। गोविन्द। माधव। अनन्त। केशव। कृष्ण। विष्णु। तथा हृषीकेश। आप विश्वात्माको नमस्कार है। पुराण-पुरुष। विश्वमूर्ति हे हरि। आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके मूल कारण हैं, आप अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप निर्गुण-स्वरूप हैं, निष्कल एव विमलात्मा हैं आपको नमस्कार है। हे विश्वरूप पुरुष। आपको नमस्कार है। विश्वकी योनि, वासुदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित ज्ञानद्वारा जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। निर्विकार तथा प्रपञ्चरहित आपको नमस्कार है। भेद-अभेदसे रहित आनन्द-स्वरूप आपको नमस्कार है। (ससारसागरसे) पार उतारनेवाले, शान्तस्वरूप आपको नमस्कार है। शुद्धात्मा आपको नमस्कार है। आप अनन्तमूर्तिवाले हैं, अमूर्त हैं आपको बार-बार नमस्कार है। आप परमार्थ-रूप हैं, आपको नमस्कार है। आप मायासे अतीत हैं, आपको नमस्कार है। ईशोके भी ईश। आपको नमस्कार है। परमात्मा परब्रह्मरूप आपको नमस्कार है। अत्यन्त सूक्ष्मरूप आपको नमस्कार है। देवोंके भी देव महादेव। आपको नमस्कार है। विशुद्धस्वरूप शिव। आपको नमस्कार है। परमेष्ठीस्वरूप आपको नमस्कार है॥ ६८—७५॥

त्वयैव सृष्टमखिल त्वमेव परमा गति ।
त्व पिता सर्वभूताना त्व माता पुरुषोत्तम॥ ७६॥
त्वमक्षर पर धाम चिन्मात्र व्योम निष्कलम्।
सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्त तमस परम्॥ ७७॥
प्रपश्यन्ति परात्मान ज्ञानदीपेन केवलम्।
प्रपद्ये भवतो रूप तद्विष्णो परम पदम्॥ ७८॥

आपने ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना की है। आप ही परम गति हैं। हे पुरुषोत्तम। आप ही सभी भूत-प्राणियोंके पिता हैं और आप ही सबकी माता हैं। आप अविनाशी हैं, परम धाम हैं, चित्स्वरूप हैं व्योम हैं, निष्कल हैं सबके आधार हैं अव्यक्त हैं अनन्त हैं और तमसे सर्वथा रहित नित्य प्रकाशस्वरूप हैं। (ज्ञानी जन) केवल ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा जिस परमात्माका दर्शन करते हैं मैं आपके उस रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ, वह विष्णुका परम पद है॥ ७६—७८॥

एव स्तुवन्त भगवान् भूतात्मा भूतभावन ।
उभाभ्यामथ हस्ताभ्या पस्पर्श प्रहसन्निव॥ ७९॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्रद्युम्नका सभी प्राणियोके आत्मरूप भूतभावन भगवान् विष्णुने अपने दोनो हाथोसे किञ्चित् मुसकराते हुए स्पर्श किया॥ ७९॥

स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुगव।
यथावत् परम तत्त्व ज्ञातवास्तत्प्रसादत ॥ ८०॥
तत प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम्।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्ष पीतवाससमच्युतम्॥ ८१॥

भगवान् विष्णुके द्वारा स्पर्श करते ही मुनिश्रेष्ठ (इन्द्रद्युम्न)-को उन भगवान्‌की कृपासे परम तत्त्वका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया। इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न मनसे इन्द्रद्युम्नने प्रफुल्लित कमलके समान नेत्रवाले, पीताम्बरधारी अच्युत भगवान् जनार्दनको प्रणाम कर कहा— ॥ ८०-८१॥

त्वत्प्रसादादसदिग्धमुत्पन्न पुरुषोत्तम।
ज्ञान ब्रह्मैकविषय परमानन्दसिद्धिदम्॥ ८२॥
नमो भगवते तुभ्य वासुदेवाय वेधसे।
कि करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय॥ ८३॥

हे पुरुषोत्तम! आपकी कृपासे मुझे परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाला एकमात्र ब्रह्मसम्बन्धी सदेहरहित ज्ञान प्राप्त हो गया है। हे भगवन्! हे वासुदेव! हे वेधा! आपको नमस्कार है। हे योगेश! हे जगन्मय! मैं क्या करूँ, उसे आप मुझे बतलाये॥ ८२-८३॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधव।
उवाच सस्मित वाक्यमशेषजगतो हितम्॥ ८४॥

इन्द्रद्युम्नके वचन सुनकर माधव भगवान् नारायणने समस्त ससारके कल्याणकी कामनासे मुसकराते हुए यह वचन कहा— ॥ ८४॥

श्रीभगवानुवाच

वर्णाश्रमाचारवता पुसा देवो महेश्वर।
ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा॥ ८५॥
विज्ञाय तत्पर तत्त्व विभूति कार्यकारणम्।
प्रवृत्ति चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत्॥ ८६॥
सर्वसगान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामय जगत्।
अद्वैत भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्॥ ८७॥

श्रीभगवान् बोले—वर्ण एव आश्रमधर्मका पालन करनेवाले व्यक्तियोको चाहिये कि वे ज्ञान एव भक्तियोगके द्वारा भगवान् महेश्वरकी पूजा करे अन्य साधनसे नहीं। मोक्षार्थीको चाहिये कि उस परम तत्त्व, विभूति एव कार्यकारणरूपको ठीक-ठीक जानकर साथ ही मेरी प्रवृत्तिको समझकर ईश्वरकी उपासना करे। सभी प्रकारकी आसक्तियोका सर्वथा परित्याग कर, इस ससारको मायारूप जानकर अपनेमे अद्वैतकी भावना करे[१] (ऐसा करनेसे इन्द्रद्युम्न! तुम) परमेश्वरका दर्शन करोगे॥ ८५—८७॥

त्रिविधा भावना ब्रह्मन् प्रोच्यमाना निबोध मे।
एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसश्रया।
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा॥ ८८॥
आसामन्यतमा चाथ भावना भावयेद् बुध।
अशक्त सश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुति॥ ८९॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायण।
समाराधय विश्वेश ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ९०॥

ब्रह्मन् इन्द्रद्युम्न! तीन प्रकारकी भावनाएँ कही गयी हैं, उन्हे मै बताता हूँ, तुम सुनो। उन तीनोमेसे पहली भावना है मद्विषया अर्थात् मेरे सगुण स्वरूपकी भावना। दूसरी है व्यक्तसश्रया अर्थात् भगवान्‌का जो विराट् स्वरूप है, उसका आश्रय ग्रहण कर उपासनाकी भावना और तीसरी जो भावना है उसे ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मज्ञानविषयक भावना जानना चाहिये, यह तीसरी भावना गुणातीत है (गुणातीत-रूपमे ब्रह्मकी उपासना ही ब्राह्मी भावना है।) विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि इन तीनामेसे किसी भी भावनाका आश्रय ग्रहण कर उपासना करे। जो असमर्थ व्यक्ति है उसे चाहिये कि वह प्रथम भावना अर्थात् वैष्णवी भावनाका अवलम्बन ग्रहण करे—ऐसा वेदका मत है। इसलिये (इन्द्रद्युम्न! तुम) समस्त प्रयत्नाके द्वारा सम्पूर्ण ससारके स्वामी भगवान् विष्णुकी आराधना करो, उनमें ही निष्ठा रखो और उन्हींका आश्रय ग्रहण कर उन्हींके शरणागत हो जाओ, इससे तुम मोक्ष प्राप्त करोगे॥ ८८—९०॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

कि तत् परतर तत्त्व का विभूतिर्जनार्दन।
कि कार्यं कारण कस्त्व प्रवृत्तिश्चापि का तव॥ ९१॥

१-'परमात्मासे अतिरिक्त कुछ नहीं है' यह भावना ही यहाँ अद्वैत भावना है।

इन्द्रद्युम्न बोले—हे जनार्दन! वह परात्पर तत्त्व क्या है, विभूति क्या है? कार्य क्या है और कारण क्या है? आप कौन हैं? और आपकी प्रवृत्ति क्या है? ॥ ९१ ॥

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम्।
नित्यानन्दं स्वयञ्ज्योतिरक्षरं तमसः परम्॥ ९२॥
ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते।
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्॥ ९३॥
अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः।
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते॥ ९४॥
एतद् विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज।
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्चय॥ ९५॥

श्रीभगवान् बोले—वह परसे परतर तत्त्व एकमात्र अखण्ड परम ब्रह्म ही है। वह नित्य आनन्दस्वरूप है, स्वयं प्रकाशमान है, अविनाशी है और तम (अन्धकार)-से सर्वथा परे है। उस परमात्माका जो नित्य रहनेवाला ऐश्वर्य है, वही विभूति नामसे कहा जाता है। यह संसार ही (परमात्माका) कार्यरूप है और अविनाशी विशुद्ध अव्यक्त तत्त्व ही (इस संसारका) कारणरूप है। मैं ही समस्त प्राणियोंमें रहनेवाला अन्तर्यामी ईश्वर हूँ। सृष्टि, पालन और संहार ही मेरी प्रवृत्ति कही जाती है। हे द्विज! इन सभी बातोंको यथार्थरूपसे जानकर तुम कर्मयोगके द्वारा श्रद्धा-भावसे (उस) सनातन (ईश्वर)-की भलीभाँति अर्चना करो॥ ९२—९५॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः।
ज्ञानं च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम्॥ ९६॥
कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः।
कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च॥ ९७॥
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः।
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुनाखिलम्॥ ९८॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—(भगवन्!) वर्णों तथा आश्रमोंके वे कौनसे पालनीय नियम हैं जिनसे (उस) परतत्त्वकी आराधना की जाती है और वह दिव्य ज्ञान कैसा है जो तीन भावनाओंसे युक्त है? (परमात्माने) पूर्वकालमें इस (संसार)-की सृष्टि कैसे की और फिर कैसे इसका संहार होता है, लोकमें कितनी सृष्टियाँ हैं, कितने वंश हैं, कितने मन्वन्तर हैं। उनके कितने प्रमाण हैं और पवित्र व्रत तथा तीर्थ कौन-से हैं। सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति कैसी है, पृथ्वीकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है, कितने द्वीप, समुद्र, पर्वत हैं और कितने नद हैं और कितनी नदियाँ हैं, हे पुण्डरीकाक्ष! इस समय यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये॥ ९६—९८॥

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया।
यथावदखिलं सर्वमवोचं मुनिपुंगवाः॥ ९९॥
व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु।
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्॥ १००॥

श्रीकूर्मने कहा—हे श्रेष्ठ मुनियो! उस इन्द्रद्युम्नके द्वारा मुझसे इस प्रकार कहे जानेपर भक्तोंपर अनुकम्पा करनेकी कामनासे मैंने वे सभी बातें विस्तारसे ठीक-ठीक उसे बतला दीं। इस प्रकार उस ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नने जो-जो भी मुझसे पूछा था, वह सब विस्तारसे बतलाकर और उसपर कृपा करके मैं वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ९९-१००॥

सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमः।
आराधयामास परं भावपूतः समाहितः॥ १०१॥
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
सन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः॥ १०२॥
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत्।
सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम्॥ १०३॥
अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति।
यं विनिद्रा जितश्वासाः काङ्क्षन्ते मोक्षकाङ्क्षिणः॥ १०४॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने भी मेरे द्वारा बताये गये विधानसे अत्यन्त पवित्र भावनासे समाहित-चित्त होकर परम तत्त्वकी उपासना की। उसने अपने स्त्री-पुत्र आदिका मोह छोड़ दिया, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो गया, किसी भी वस्तुका संग्रह करना सर्वथा त्याग कर अपरिग्रही हो गया और सभी कर्मोंका परित्याग कर उसने परम वैराग्यका

आश्रय ग्रहण किया। अपनी आत्मामे ही परमात्माका दर्शन करके और अपनी आत्मामे ही सम्पूर्ण विश्वका अनुभव कर अक्षर-तत्त्व-सम्बन्धी अन्तिम ब्राह्मी भावनाको प्राप्त किया, जिसके कारण उसे उस दुर्लभ परम योगकी प्राप्ति हुई, इस योगसे ही उस अद्वितीय तत्त्वका साक्षात्कार होता है जिसकी अभिलाषा निद्रात्यागी, श्वासजयी मोक्षार्थी पुरुष भी करते हैं॥ १०१—१०४॥

तत कदाचिद् योगीन्द्रो ब्रह्माण द्रष्टुमव्ययम्।
जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम् ।
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावत ॥ १०५॥
विमान सूर्यसकाश प्रादुर्भूतमनुत्तमम्।
अन्वगच्छन् देवगणा गन्धर्वाप्सरसा गणा ।
दृष्ट्वान्ये पथि योगीन्द्र सिद्धा ब्रह्मर्षयो ययु ॥ १०६॥

इसके बाद किसी दिन वह ब्राह्मणश्रेष्ठ योगीन्द्र इन्द्रद्युम्न भगवान् सूर्यके निर्देशसे अव्यय ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये अपनी योग-सिद्धिके प्रभावसे प्रादुर्भूत सूर्यके समान प्रकाशमान श्रेष्ठ विमानमे चढकर आकाशमार्गसे मानसरोवरके उत्तरमे स्थित पर्वतपर गया। उस योगिराज इन्द्रद्युम्नको आकाशमार्गमे जाते हुए देखकर देवो, गन्धर्वों तथा अप्सराओका समूह भी उसके पीछे-पीछे गया और अन्य सिद्ध तथा ब्रह्मर्षियोने भी उसका अनुसरण किया॥ १०५-१०६॥

तत स गत्वा तु गिरिं विवेश सुरवन्दितम्।
स्थान तद् योगिभिर्जुष्ट यत्रास्ते परम पुमान्॥ १०७॥
सम्प्राप्य परम स्थान सूर्यायुतसमप्रभम्।
विवेश चान्तर्भवन देवाना च दुरासदम्॥ १०८॥

तदनन्तर वहाँ जाकर इन्द्रद्युम्नने देवताओंद्वारा वन्दित तथा योगियोद्वारा सेवित पर्वतके उस स्थानपर प्रवेश किया जहाँ परम पुरुष परमात्मा प्रतिष्ठित रहते हैं। दस हजार सूर्योके प्रकाशके समान प्रकाशित उस श्रेष्ठ स्थानपर पहुँचकर (इन्द्रद्युम्नने) देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य (उस स्थानके) अन्तगृहमे प्रवेश किया॥ १०७-१०८॥

विचिन्तयामास पर शरण्य सर्वदेहिनाम्।
अनादिनिधन देव देवदेव पितामहम्॥ १०९॥
तत प्रादुरभूत् तस्मिन् प्रकाश परमात्मन ।
तन्मध्ये पुरुष पूर्वमपश्यत् परम पदम्॥ ११०॥
महान्त तेजसो राशिमगम्य ब्रह्मविद्विषाम्।
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिभिरुपशोभितम् ॥ १११॥

(वहाँ पहुँचकर उसने) सभी प्राणियोके परम शरणदाता, आदि-अन्तसे रहित, देवाधिदेव पितामह ब्रह्मदेवका ध्यान किया। इसके बाद उसके ध्यान करते ही वहाँ परमात्माका प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। इन्द्रद्युम्नने उस पकाशपुञ्जके मध्यमे महान् तेजकी राशिके रूपमे ब्रह्मविद्वेषियोके लिये अगम्य, परमपद-स्वरूप पूर्व पुरुषका दर्शन किया,जो चार मुखवाले थे, जिनके सभी अङ्ग शुभ लक्षणोसे सम्पन्न थे और प्रकाशकी किरणोसे सुशोभित थे॥ १०९—१११॥

सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम्।
प्रत्युद्गम्य स्वय देवो विश्वात्मा परियस्वजे॥ ११२॥
परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहत ।
निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्।
ऋग्यजु सामसज्ञ तत् पवित्रममल पदम्॥ ११३॥
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक्।
द्वार तद् योगिनामाद्य वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्।
ब्रह्मतेजोमय श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम्॥ ११४॥

समीपमे आये प्रणाम करते हुए योगी इन्द्रद्युम्नको देखकर वह विश्वात्मा ब्रह्मदेव स्वय भी उसके समीपमे गये और उसको अपने हृदयसे लगाया। ब्रह्मदेवके द्वारा आलिङ्गन करते ही उस ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके शरीरसे एक महान् प्रकाश निकला जो आदित्य-मण्डलमे प्रविष्ट हो गया। वह पवित्र निर्मल पद (आदित्य-मण्डल) ऋक्-यजु एव साम नामवाला है। जिस स्थानमें हव्य (देवताओको प्राप्त होनवाला हवनीय द्रव्य) तथा कव्य (पितरोको प्राप्त कराया जानेवाला श्राद्धीय पदार्थ)-का उपभोग करनवाले भगवान् हिरण्यगर्भ निवास करते हैं। वह (स्थान) वेदान्तमें प्रतिपादित योगी जनोका आद्य प्रवेश-द्वार है ब्रह्मतेजसे सम्पन्न है, श्रीयुक्त है और वह मनीषियोकी निष्ठा भी है॥ ११२—११४॥

दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयो मुनि ।
अपश्यदैश्वर तेज शान्त सर्वत्रग शिवम्॥ ११५॥

स्वात्मानमक्षर व्योम तद् विष्णो परम पदम्।
आनन्दमचल ब्रह्म स्थान तत्पारमेश्वरम्॥ ११६॥
सर्वभूतात्मभूत स परमैश्वर्यमास्थित ।
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥ ११७॥

भगवान् ब्रह्माके देखते ही देखते वह मुनि इन्द्रद्युम्न तेजसे सम्पन्न हो गया और उसने सर्वत्र व्याप्त, परम कल्याणकारी अत्यन्त शान्त स्वात्मस्वरूप अक्षर, व्योम उस परमेश्वर-सम्बन्धी तेजको देखा। वह विष्णुका परम पद है। केवल आनन्दरूप, अचल वह ब्रह्मका स्थान परमेश्वररूप है। सभी प्राणियोको अपनी ही आत्मा समझनेवाला वह योगी इन्द्रद्युम्न परम ऐश्वर्यमे प्रतिष्ठित हो गया और उसने 'मोक्ष' पदसे कहे जानेवाले उस अव्यय परमात्मधामको प्राप्त कर लिया॥ ११५—११७॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थित ।
समाश्रित्यान्तिम भाव माया लक्ष्मीं तरेद् बुध ॥ ११८॥

इसलिये सभी प्रयत्नसे वर्ण एव आश्रमके नियमोका पालन करते हुए अन्तिम भावका आश्रय ग्रहण कर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह लक्ष्मीरूप मायासे पार उतरे॥ ११८॥

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेव नारदाद्या महर्षय ।
शक्रेण सहिता सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम्॥ ११९॥

सूतजी बोले—हरिके द्वारा इस प्रकार कहनेपर इन्द्रसहित नारद आदि सभी महर्षियान गरुडध्वज भगवान् विष्णुस पूछा—॥ ११९॥

ऋषय ऊचु

दयदेव हृषीकश नाथ नारायणामल।
तद् यदाशेषमस्माक यदुक्त भवता पुरा॥ १२०॥
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञान धमादिगोचरम्।
शुश्रूषुश्चाप्यय शक्र सखा तव जगन्मय॥ १२१॥

ऋषियान कहा—ह दवाधिदव! ह हृषीकश! हे नाथ! हे अमलरूप नारायण! जो आपने पूर्वकालमे ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नसे धर्मादि-सम्बन्धी ज्ञान कहा था, वह सब आप हमे बतलायें। हे जगन्मूर्ति! ये आपके सखा इन्द्र भी सुननेके लिये इच्छुक हैं॥ १२०-१२१॥

तत स भगवान् विष्णु कूर्मरूपी जनार्दन ।
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभि ॥ १२२॥
पृष्ट प्रोवाच सकल पुराण कौर्ममुत्तमम्।
सन्निधौ देवराजस्य तद् वक्ष्ये भवतामहम्॥ १२३॥

इसके बाद (सूतजीने कहा—) रसातलमे स्थित कूर्मरूपी जनार्दन भगवान् विष्णुदेवने नारदादि महर्षियोके द्वारा (इस प्रकार) पूछे जानेपर जिस श्रेष्ठ सम्पूर्ण कूर्मपुराणको देवराज इन्द्रके समीप सुनाया था, मैं उसे आप लोगोको सुनाता हूँ॥ १२२-१२३॥

धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य मोक्षप्रद नृणाम्।
पुराणश्रवण विप्रा कथन च विशेषत ॥ १२४॥
श्रुत्वा चाध्यायमेवैक सर्वपापै प्रमुच्यते।
उपाख्यानमथैक वा ब्रह्मलोक महीयते॥ १२५॥
इद पुराण परम कौर्म कूर्मस्वरूपिणा।
उक्त देवाधिदेवेन श्रद्धातव्य द्विजातिभि ॥ १२६॥

ह ब्राह्मणो! (इस कूर्म) पुराणका सुनना मनुष्योंके लिये यशको प्राप्ति करानवाला दीर्घ आयु प्रदान करानवाला पुण्य प्रदान करानेवाला कृतकृत्य करानेवाला तथा मोक्ष प्रदान करानेवाला है। इस पुराणक वाचन करनेकी तो और भी विशेष महिमा है। इसक मात्र एक अध्यायक सुननेस ही सभी प्रकारके पापासे (व्यक्ति) मुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय केवल एक उपाख्यानके श्रवणमात्रस ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको कूर्मरूपधारी देवाधिदेव स्वय भगवान् विष्णुने कहा है द्विजातियोको इसपर अवश्य श्रद्धा रखनी चाहिये॥ १२४—१२६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव, रुद्र तथा लक्ष्मीका प्राकट्य, ब्रह्माद्वारा नौ मानस पुत्रो तथा चार वर्णोकी सृष्टि, वेदज्ञानकी महिमा, ब्रह्म-सृष्टिका वर्णन, वर्ण और आश्रमोंके सामान्य तथा विशेष धर्म, गृहस्थाश्रमका माहात्म्य, चतुर्विध पुरुषार्थोमे धर्मकी महिमा, आश्रमोका द्वैविध्य, त्रिदेवोका पूजन, त्रिपुण्ड्र, तिलक तथा भस्म-धारणकी महिमा

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे यत्पृष्टोऽह जगद्धितम्।
वक्ष्यमाण मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम्॥ १॥

श्रीकूर्मने कहा—समस्त ऋषिगणो! ससारके कल्याणके लिये आप लोगाने जो कुछ मुझसे पूछा है और इन्द्रद्युम्नके प्रति मैंने जो कुछ कहा है, वह सब मैं बतला रहा हूँ, आप लोग सुनें॥ १॥

भूतैर्भव्यैर्भविष्यद्भिश्चरितैरुपबृहितम् ।
पुराण पुण्यद नृणा मोक्षधर्मानुकीर्तनम्॥ २॥

इस (कूर्म) पुराणम भूत, वर्तमान एव भविष्यकालमे हुए वृत्तान्तोको विस्तारसे बतलाया गया हे। यह पुराण मनुष्योको पुण्य प्रदान करनेवाला और मोक्षधर्मका वर्णन करनेवाला है॥ २॥

अह नारायणो देव पूर्वमास न मे परम्।
उपास्य विपुला निद्रा भोगिशय्या समाश्रित ॥ ३॥
चिन्तयामि पुन सृष्टिं निशान्ते प्रतिबुध्य तु।
ततो मे सहसोत्पन्न प्रसादो मुनिपुगवा ॥ ४॥

मैं ही नारायण देवरूपसे पूर्वकालमे विद्यमान था। मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा न था। मे प्रगाढ योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषशय्यामे पडा था। मुनिश्रेष्ठो! रात्रिके बीत जानेपर जागकर मैं पुन सृष्टि-विषयक चिन्तन करने लगा। उसी समय अकस्मात् मुझ प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ ३-४॥

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामह ।
तदन्तरेऽभवत् क्रोध कस्माच्चित् कारणात् तदा॥ ५॥
आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वर ।
रुद्र क्रोधात्मजो जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचन ।
तेजसा सूर्यसकाशस्त्रैलोक्य सहरन्निव॥ ६॥

तदुपरान्त समस्त ससारके पितामह चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। इसी बीच किसी कारणसे अकस्मात् उस समय क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मुनिश्रेष्ठो! (उस समय) क्रोधात्मज अपने तेजके द्वारा मानो त्रैलोक्यका सहार करनेके लिये हाथमे त्रिशूल धारण किये, तीन नेत्रो-वाले सूर्यके समान प्रकाशमान महेश्वर रुद्रदेव वहाँ उत्पन्न हुए॥ ५-६॥

तत श्रीरभवद् देवी कमलायतलोचना।
सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ७॥
शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा।
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता॥ ८॥
नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया।
स्वधाम्ना पूरयन्तीद मत्पार्श्व समुपाविशत्॥ ९॥
ता दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पति ।
मोहायाशेषभूताना नियोजय सुरूपिणीम्।
येनेय विपुला सृष्टिवर्धते मम माधव॥ १०॥

तदनन्तर कमलके समान विशाल नेत्रावाली, सुन्दर रूप एव प्रसन्न मुखवाली तथा सभी प्राणियाको मोहित करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुईं। पवित्र मुस्कानवाली, अत्यन्त प्रसन्न मङ्गलमयी अपनी महिमामे प्रतिष्ठित दिव्य कान्तिसे सुसम्पन्न दिव्य माल्य आदिसे सुशोभित, अविनाशिनी महामाया मूलप्रकृतिरूपा वे नारायणी अपने तजसे इस (ससार)-को आपूरित करती हुई मेरे समीपम आकर बैठ गयीं। उन्हे देखकर ससारके स्वामी भगवान् ब्रह्मा मुझसे कहने लगे—ह माधव! सम्पूर्ण प्राणियाका मोहित करनेके लिये इन सुरूपिणी (देवी)-को नियुक्त करो, जिससे यह मेरी सृष्टि और भी अधिक बढने लगे॥ ७—१०॥

तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव।
देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयित्वा ममादेशात् संसारे विनिपातय॥ ११॥
ज्ञानयोगरतान् दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः।
अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय॥ १२॥

ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने मुसकराते हुए देवी लक्ष्मीसे कहा—हे देवि! मेरे आदेशसे तुम देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको (अपनी मायासे) मोहित कर संसारमें प्रवृत्त करो। (किंतु) जो ज्ञानयोगमें निरत हैं, जितेन्द्रिय हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, ब्रह्मवादी हैं क्रोधशून्य हैं तथा सत्य-परायण हैं—ऐसे लोगोंको दूरसे ही छोड़ देना॥ ११-१२॥

ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान् धार्मिकान् वेदपारगान्।
जापिनस्तापसान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय॥ १३॥
वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान्।
महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय॥ १४॥
ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम्।
स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् तान् प्रयत्नेन वर्जय॥ १५॥
भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान्।
प्राणायामादिषु रतान् दूरात् परिहरामलान्॥ १६॥
प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान्।
अथर्वशिरसोऽध्येतॄन् धर्मज्ञान् परिवर्जय॥ १७॥
बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान्।
ईश्वराराधनरतान् मन्नियोगान्न मोहय॥ १८॥

ध्यान करनेवाले, ममतारहित, शान्त धार्मिक, वेदमें पारंगत जप-परायण और तपस्वी विप्रोंको दूरसे ही छोड़ देना। वेद एवं वेदान्तके विशेष ज्ञानसे जिनके सम्पूर्ण संशय सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसे तथा बड़े-बड़े यज्ञोंमें परायण द्विजोंको दूरसे ही छोड़ देना। जो जप होम यज्ञ एवं स्वाध्यायके द्वारा देवाधिदेव महेश्वरका यजन करते हैं, उनका प्रयत्नपूर्वक दूरसे ही परित्याग कर देना। जो भक्तियोगमें लगे हुए हैं जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌का अर्पण कर दिया है और जो प्राणायाम (धारणा, ध्यान तथा समाधि) आदिमें निरत हैं ऐसे अमलात्माओंको दूरसे ही त्याग कर देना। जिनका मन प्रणवोपासनामें आसक्त है जो रुद्र (मन्त्रों)-का जप करनेवाले हैं और जो अथर्वशिरस्‌के अध्येता हैं उन धर्मज्ञ व्यक्तियोंको छोड़ देना। और अधिक क्या कहा जाय, जो अपने धर्मका पालन करनेवाले हैं, ईश्वरकी आराधनामें सतत रत हैं, (हे देवि!) उन्हें मेरे आदेशसे कदापि मोहित न करना॥ १३—१८॥

एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा।
यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ १९॥
श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्।
अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ २०॥

इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित हरिप्रिया महामायाने जैसी मेरी आज्ञा थी, उसी प्रकार किया, इसलिये (उन) लक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिये। भगवत्पत्नी (देवी महालक्ष्मी) पूजा किये जानेपर विपुल ऐश्वर्य पुष्टि, मेधा यश एवं बल प्रदान करती हैं इसलिये लक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये॥ १९-२०॥

ततोऽसृजत् स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया॥ २१॥
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया॥ २२॥

तदनन्तर लोकपितामह भगवान्‌ने मेरी आज्ञासे पूर्वकी भाँति ही समस्त चराचर भूत—प्राणियोंकी सृष्टि की। योगविद्याके प्रभावसे ब्रह्माजीने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठको उत्पन्न किया॥ २१-२२॥

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्माणो ब्राह्मणोत्तमाः।
ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः॥ २३॥
ससर्ज ब्राह्मणान् वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद् विभुः।
वैश्यानूरुद्वयाद् देवः पादाच्छूद्रान् पितामहः॥ २४॥
यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह।
गुप्तये सर्ववेदानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ॥ २५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्माके मरीचि आदि ये नौ 'ब्रह्माण'-संज्ञक पुत्र साधक हैं ब्रह्मवादी हैं। पितामह विभु देव (ब्रह्मा)-ने मुखसे ब्राह्मणों तथा भुजासे क्षत्रियोंकी सृष्टि की। दोनों जंघाओंसे वैश्योंको तथा पैरसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माने यज्ञकी निष्पत्ति एवं सभी वेदोंकी रक्षाके लिये शूद्रके अतिरिक्त (अन्य सभी वर्णोंकी) सृष्टि की क्योंकि उनसे यज्ञका निर्वाह होता है॥ २३—२५॥

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च।
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया॥ २६॥
अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ २७॥
अतोऽन्यानि तु शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित्।
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते॥ २८॥

ऋक्, यजु, साम तथा अथर्ववेद ब्रह्माके सहज स्वरूप हैं और यह नित्य अव्यय शक्ति हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रारम्भमें आदि और अन्तसे रहित वेदमयी दिव्य वाक्‌रूपी शक्तिको उत्पन्न किया, जिसके द्वारा सभी व्यवहार होते हैं। पृथ्वीपर इन (वेदों)-से भिन्न जो कोई भी शास्त्र हैं, उनमें धीर पुरुषका मन नहीं लगता (क्योंकि ऐसे वेदातिरिक्त ग्रन्थोंके अध्ययनसे मनुष्य) पाखंडी हो जाता है॥ २६—२८॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा।
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः॥ २९॥
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥ ३०॥

वेदार्थ-ज्ञानमें श्रेष्ठ मुनियोंने प्राचीन समयमें जो कार्य (करने योग्य) बतलाया है, उसीको परम धर्म समझना चाहिये, (वह धर्म वेदातिरिक्त) अन्य शास्त्रोंमें प्रतिपादित नहीं है। वैदिक सिद्धान्तोंके विपरीत बातोंका प्रतिपादन करनेवाली जो स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) हैं और जो कोई भी कुदर्शन (नास्तिक दर्शन) हैं, पारलौकिक दृष्टिसे वे सभी निष्फल हैं, इसीलिये वे तामसी कहे गये हैं॥ २९-३०॥

पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः।
शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मनिरताः सदा॥ ३१॥
ततः कालवशात् तासां रागद्वेषादिकोऽभवत्।
अधर्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः॥ ३२॥

पूर्व कल्पमें जो प्रजा उत्पन्न हुई थी, वह सभी बाधाओंसे रहित थी। सभी लोग निर्मल अन्तःकरणवाले थे और सर्वदा अपनी-अपनी धर्म-मर्यादामें स्थिर रहते थे। हे श्रेष्ठ मुनियो! कुछ समय बाद कालकी गतिके प्रभावसे उन (लोगों)-में राग, द्वेष (लोभ, मोह तथा क्रोध) आदि उत्पन्न हो गये और स्वधर्ममें बाधा डालनेवाला अधर्म भी उत्पन्न हो गया॥ ३१-३२॥

ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते।
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन्॥ ३३॥
तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः।
वार्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम्।
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्माजीवमकल्पयत्॥ ३४॥

(इस कारण) उस समय उनमें (जो पहले सात्त्विक) सहज सिद्धि थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी और रजोगुण-मूलक जो अन्य सिद्धियाँ थीं, वे ही उन्हें प्राप्त हुईं। उन सभी (रजोगुणमूलक सिद्धियों)-के भी कालयोगसे क्षीण हो जानेपर वे वार्तोपाय अर्थात् कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्यरूपी जीविकाके उपाय और कर्मसाध्य (परिश्रमसाध्य) हस्तसिद्धि अर्थात् शिल्पशास्त्र (हाथोंके माध्यमसे किये जानेवाले शिल्प, मूर्ति-कला आदि)-के उपाय करने लगे। तब विभु ब्रह्माजीने उन लोगोंके लिये कर्म एवं आजीविकाकी व्यवस्था की॥ ३३-३४॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं धर्मान् प्रोवाच धर्मदृक्।
साक्षात् प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणा द्विजाः।
भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मानथोचिरे॥ ३५॥

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मासे उत्पन्न साक्षात् प्रजापतिस्वरूप धर्मदर्शी स्वायम्भुव मनुने पूर्वकालमें धर्मोंका उपदेश किया (जो मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध हुई)। तदनन्तर उनके मुखसे उसे सुनकर भृगु आदि महर्षियोंने धर्मोंका वर्णन किया॥ ३५॥

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम्।
अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः॥ ३६॥
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः।
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते॥ ३७॥
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्।
कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः॥ ३८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, अध्ययन और अध्यापन—ये ब्राह्मणोंके छः कर्म हैं। दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीन क्षत्रिय और वैश्यके (सामान्य) धर्म हैं, दण्ड-विधान और युद्ध क्षत्रियका तथा कृषिकर्म वैश्यका प्रशस्त कर्म है। द्विजातियोंकी सेवा करना शूद्रोंके लिये एकमात्र धर्मका साधन है। धर्मानुसार पाकयज्ञ तथा शिल्पविद्या उनकी आजीविका है॥ ३६—३८॥

तत स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्।
गृहस्थं च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम्॥ ३९॥

तदनन्तर वर्णोंकी व्यवस्था स्थिर हो जानेपर (उन्होंने) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास (इन चार) आश्रमोंकी स्थापना की॥ ३९॥

अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुंगवा ॥ ४०॥
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम्॥ ४१॥
भैक्षाशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषत ।
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मत ॥ ४२॥
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरो स्वाध्याय एव च।
संध्याकर्माग्निकार्यं च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम्॥ ४३॥

हे मुनिश्रेष्ठो! अग्नियो (गार्हपत्य आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि)-की उपासना, अतिथि-सेवा, यज्ञ, दान एवं देवताओंकी पूजा—यह संक्षेपमे गृहस्थका धर्म है। हवन, कन्द-मूल-फलका सेवन, स्वाध्याय तथा तप, न्यायपूर्वक (सम्पत्तिका) विभाजन—यह वानप्रस्थोका धर्म है। भिक्षावृत्तिसे प्राप्त पदार्थोंका सेवन मौनव्रत, तप सम्यक्-ध्यान, सम्यक्-ज्ञान तथा वैराग्य—यह सन्यासियोका धर्म है। भिक्षा माँगना गुरुकी सेवा करना, स्वाध्याय, संध्याकर्म तथा अग्निकार्य—यह ब्रह्मचारियोका धर्म है॥ ४०—४३॥

ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमा ।
साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भव ॥ ४४॥
ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यत ।
पर्ववर्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ ४५॥
आगर्भसम्भवादाद्यात् कार्यं तेनाप्रमादत ।
अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्रा भ्रूणहा तु प्रजायते॥ ४६॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कमलमे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीने ब्रह्मचर्यको ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा सन्यासीका साधारण धर्म कहा है अर्थात् ब्रह्मचर्य तीनो आश्रमियोका सामान्य धर्म है। ऋतुकाल (स्त्रीके रजस्वालाकी चार रात्रियाका छोडकर)-मे विशेष पर्वोंको छोडकर अपनी पत्नीमे गमन करना गृहस्थके लिये 'ब्रह्मचर्य' ही कहा गया है अन्य रात्रियामे नहीं। प्रथम गर्भ धारण करनेतक उसे बिना किसी प्रमादके इस नियमका पालन करना चाहिये। हे विप्रेन्द्रो! ऐसा न करनेवाला (गृहस्थ) भ्रूणघाती होता है॥ ४४—४६॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धं चातिथिपूजनम्।
गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा॥ ४७॥
वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि।
देशान्तरगतो वाथ मृतपत्नीक एव वा॥ ४८॥

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय, श्राद्ध, अतिथि-सेवा तथा देवताओंकी पूजा—यह गृहस्थका श्रेष्ठ धर्म है। किसी दूसरे देशमें जानेपर अथवा पत्नीके मर जानेपर भी गृहस्थको चाहिये कि वह प्रात काल और सायकाल विधिपूर्वक विवाहाग्नि (गार्हपत्याग्नि)-को प्रज्वलित करता रहे॥ ४७-४८॥

त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते।
अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी॥ ४९॥
ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य त्रयाणां श्रुतिदर्शनात्।
तस्माद् गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५०॥

गृहस्थ-आश्रमका तीनो आश्रमो (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास)-का बीज कहा जाता है, क्योंकि तीनो आश्रमोके लोग गृहस्थाश्रमीपर ही निर्भर रहते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वेदोंका अभिमत है कि केवल गृहस्थाश्रममे ही अन्य तीनो आश्रमोका (समावेश) होता है, इसलिये एकमात्र गार्हस्थ्यको ही धर्मका साधन जानना चाहिये॥ ४९-५०॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु॥ ५१॥
धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्मं समाश्रयेत्॥ ५२॥

धर्मसे रहित जो अर्थ एव काम नामक (पुरुषार्थ) हैं उनका परित्याग करना चाहिये। साथ ही सभी प्रकारसे जो लोकविरुद्ध हो उस धर्मका भी आचरण नहीं करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है धर्मसे ही कामकी भी सिद्धि होती है और धर्म (के आचरण)-से ही मोक्ष प्राप्त होता है इसलिये धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये॥ ५१-५२॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मत ।
सत्त्व रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्॥५३॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा ॥५४॥
यस्मिन् धर्मसमायुक्तावर्थकामौ व्यवस्थितौ।
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥५५॥

धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग (क्रमश) सत्त्व, रज, और तमरूपी त्रिगुणसे युक्त है, इसलिये धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। सात्त्विक गुणाका आश्रय लेनेवाले ऊर्ध्व लोकको प्राप्त करते है राजसी व्यक्ति मध्य लोकमे रहते है तथा तमोगुणके कार्यम स्थित तामसी व्यक्ति अधोगतिको प्राप्त होते हैं। जिस व्यक्तिम धर्मसे समन्वित अर्थ और काम प्रतिष्ठित रहते हैं वह इस लोकमे सुखोका उपभोग कर मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करनेमे समर्थ होता है॥५३—५५॥

धर्मात् सजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते।
एव साधनसाध्यत्व चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्॥५६॥
य एव वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानव ।
माहात्म्य चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते॥५७॥
तस्मादर्थं च काम च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मात् सजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिन ॥५८॥

धर्मसे (धर्माचरणसे) मोक्षकी प्राप्ति होती है और अर्थसे कामकी सिद्धि होती है। इस प्रकार चार प्रकारके पुरुषार्थोंम साधन और साध्यका वर्णन दिखाया गया। जो मानव धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके इस प्रकार बताये गये माहात्म्यको जानता है ओर तदनुसार आचरण करता है वह मोक्ष (प्राप्त) करनेमें समर्थ होता है। इसलिये (धर्म-विरुद्ध) अर्थ एव काम (रूपी पुरुषार्थ)-का सर्वथा परित्याग कर धर्मका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। धर्मसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है—ऐसा ब्रह्मवादियाका कहना है॥५६—५८॥

धर्मेण धार्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
अनादिनिधना शक्ति सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमा ॥५९॥
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न सशय ।
तस्माज्ज्ञानेन सहित कर्मयोग समाचरेत्॥६०॥

धर्मके द्वारा ही स्थावर-जगमात्मक सारा विश्व धारण किया जाता है। हे द्विजोत्तमो! यह (धर्मशक्ति) ब्रह्माजीकी वह ब्राह्मी शक्ति हे जो आदि और अन्तसे रहित है। कर्म एव ज्ञान—दोनोके द्वारा ही धर्मकी प्राप्ति होती है, इसमे कोई सदेह नहीं। इसलिये ज्ञानके[1] साथ ही कर्मयोगका भी आचरण ग्रहण करना चाहिये॥५९-६०॥

प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकम्।
ज्ञानपूर्वं निवृत्त स्यात् प्रवृत्त यदतोऽन्यथा॥६१॥
निवृत्त सेवमानस्तु याति तत् परम पदम्।
तस्मान्निवृत्त ससेव्यमन्यथा ससरेत् पुन ॥६२॥

प्रवृत्त एवं निवृत्त—इस प्रकारसे वैदिक कर्म दो प्रकारका होता है। निवृत्तकर्म ज्ञानपूर्वक एव प्रवृत्तकर्म इससे भिन्न प्रकारका होता है। निवृत्तकर्मका सेवन करनेवाला उस परमपद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है। अत निवृत्तकर्म (निवृत्तिमार्ग)-का ही सेवन करना चाहिये, इससे अन्यथा करनेपर पुन ससारम आना पडता है॥ ६१-६२॥

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च।
आर्जव चानसूया च तीर्थानुसरण तथा॥६३॥
सत्य सतोष आस्तिक्य श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रह ।
देवताभ्यर्चन पूजा ब्राह्मणाना विशेषत ॥६४॥
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता।
सामासिकमिम धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ॥६५॥

क्षमा, दम (इन्द्रियनिग्रह), दया दान अलोभ त्याग आर्जव (मन-वाणी आदिकी सरलता), अनसूया, तीर्थानुसरण अर्थात् गुरु एव शास्त्रका अनुगमन या तीर्थसेवन, सत्य सतोष आस्तिकता (वेदादि शास्त्रोंमें श्रद्धा) श्रद्धा जितेन्द्रियत्व, देवताओका अर्चन, विशेष रूपसे ब्राह्मणाकी पूजा अहिंसा मधुर भाषण, अपिशुनता तथा पापसे राहित्य—स्वायम्भुव मनुने चारो वर्णोंके लिये ये सामान्य धर्म कहे हैं॥६३—६५॥

प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा सग्रामेष्वपलायिनाम्॥६६॥

[1] १-यहाँ ज्ञानका तात्पर्य धर्मज्ञानसे है, आत्मज्ञानसे नहीं।

वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममनुवर्तताम्।
गान्धर्व शूद्रजातीना परिचारेण वर्तताम्॥६७॥

अपने ब्राह्मण-धर्मका यथावत् पालन करनेवाले क्रियानिष्ठ ब्राह्मणाके लिये प्राजापत्य-स्थान (प्राजापत्य लोक) तथा सग्राममे पलायन न करनेवाले क्षत्रियोके लिये ऐन्द्र-स्थान (इन्द्रलोक) सुनिश्चित है। इसी प्रकार स्वधर्मका पालन करनेवाल वैश्योके लिये मारुत-स्थान (वायुलोक) और परिचर्यारूप स्वधर्मका पालन करनेवाले शूद्रजातिवालोके लिये गन्धर्वलोक सुनिश्चित है॥६६-६७॥

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
स्मृत तेषा तु यत्स्थान तदेव गुरुवासिनाम्॥६८॥
सप्तर्षीणा तु यत्स्थान स्मृत तद् वै वनौकसाम्।
प्राजापत्य गृहस्थाना स्थानमुक्त स्वयम्भुवा॥६९॥

ऊर्ध्वरेता अट्ठासी हजार (शौनक आदि) ऋषियोका जो स्थान है, वही स्थान गुरुके अन्तेवासी ब्रह्मचारियाको प्राप्त होता है। सप्तर्षियाका जो स्थान है, वही स्थान वनमे रहनेवाले वानप्रस्थियाको प्राप्त होता है और स्वयम्भू ब्रह्माने गृहस्थोके लिये प्राजापत्य-स्थान (प्राजापत्य लोक)-की प्राप्ति बतलायी है॥ ६८-६९॥

यतीना यतचित्ताना न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्।
हैरण्यगर्भ तत् स्थान यस्मान्नावर्तते पुन ॥७०॥
योगिनाममृत स्थान व्योमाख्य परमाक्षरम्।
आनन्दमैश्वर धाम सा काष्ठा सा परा गति ॥७१॥

समाहित-चित्त यतात्मा ऊर्ध्वरेता सन्यासियाको हिरण्यगर्भ नामक वह स्थान प्राप्त होता है, जहाँसे पुन लौटना नहीं पडता। योगियाका अविनाशी वह व्योमसज्ञक श्रेष्ठ अमरस्थान प्राप्त होता है जा आनन्दस्वरूप और ऐश्वर धाम है वही पराकाष्ठा (अन्तिम) और परम गति है॥७०-७१॥

ऋषय ऊचु

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन।
चत्वारो ह्याश्रमा प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते॥७२॥

ऋषियोने कहा—दयताओके शत्रुओका विनाश करनेवाले हिरण्याक्षका वध करनेवाले हे भगवन्! (आपने) चार आश्रम बताये (किंतु) योगियाके लिये एक ही आश्रम बताया॥ ७२॥

श्रीकूर्म उवाच

सर्वकर्माणि सन्यस्य समाधिमचल श्रित।
य आस्ते निश्चलो योगी स सन्यासी न पञ्चम ॥७३॥
सर्वेषामाश्रमाणा तु द्वैविध्य श्रुतिदर्शितम्।
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्पर ॥७४॥
योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत्।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिक ॥७५॥

श्रीकूर्मने कहा—सभी कर्मोका परित्याग कर एकमात्र अचल समाधिमे निरन्तर स्थिर रहनेवाला जो निश्चल योगी है, वही सन्यासी होता है, अत (चार ही आश्रम होते हैं) पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं होता। वेदमे बतलाया गया है कि सभी आश्रम दो प्रकारके होते हैं। ब्रह्मचारीके दो भेद हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक ब्रह्मतत्पर। जो ब्रह्मचारी विधिवत् वेदोका अध्ययन कर गृहस्थाश्रमे प्रवेश करता है, उसे उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी समझना चाहिये और जो यावज्जीवन गुरुके पास रहकर ब्रह्मविद्याका अभ्यास करता है वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है॥७३—७५॥

उदासीन साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्बभरणे यत्त साधकोऽसौ गृही भवेत्॥७६॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीन स मौक्षिक ॥७७॥

(इसी प्रकार) गृहस्थाश्रमी भी दो प्रकारका होता है—(१) उदासीन और (२) साधक। जो कुटुम्बके भरण-पोषणमे लगा रहता है, वह गृहस्थ साधक कहलाता है और जो देवऋण पितृऋण एव ऋषिऋण—इन तीन ऋणोसे उऋण होकर स्त्री धन आदिका परित्याग कर देता है तथा एकाकी विचरण करता है वह मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छावाला गृहस्थ उदासीन कहलाता है॥७६-७७॥

तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद् दयान् जुहोति च।
स्वाध्याय चैव निरतो वनस्थस्तापसो मत ॥७८॥
तपसा कर्षितात्यर्थ यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
सान्यासिक स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थित ॥७९॥

जो वनमे अनुष्ठान करता है दयताओकी पूजा करता है हवन करता है और स्वाध्यायमे निरत रहता है

वह वनमे रहनेवाला 'तापस' नामक वानप्रस्थ कहलाता है और जो अत्यन्त तपसे अपने शरीरको कृश कर लेता है तथा निरन्तर ध्यानपरायण रहता है, वह वानप्रस्थ-आश्रममे रहनेवाला सान्यासिक वानप्रस्थी कहलाता है॥ ७८-७९ ॥

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रिय ।
ज्ञानाय वर्तते भिक्षु प्रोच्यते पारमेष्ठिक ॥८०॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनि ।
सम्यग् दर्शनसम्पन्न स योगी भिक्षुरुच्यते॥८१॥

नित्य योगाभ्यासमे रत रहनेवाला, मोक्षमार्गमे आरूढ होनेकी इच्छावाला, जितेन्द्रिय तथा ज्ञान-प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील सन्यासीको 'पारमेष्ठिक' सन्यासी कहा जाता है और जो केवल आत्मामे ही रमण करनेवाला है, नित्य-तृप्त महामुनि है, सम्यक्-दर्शन-सम्पन्न है, वह सन्यासी 'योगी' कहलाता है॥८०-८१॥

ज्ञानसन्यासिन केचिद् वेदसन्यासिनोऽपरे।
कर्मसन्यासिन केचित् त्रिविधा पारमेष्ठिका ॥८२॥
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिक साख्य एव च।
तृतीयोऽत्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममास्थित ॥८३॥
प्रथमा भावना पूर्वे साख्ये त्वक्षरभावना।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी॥८४॥

पारमेष्ठिक (सन्यासी)-के तीन भेद होते हैं—(१) कोई ज्ञानसन्यासी होते हैं, (२) कोई वेदसन्यासी होते हैं और (३) कोई कर्मसन्यासी होते हैं। (इसी प्रकार) योगी भी तीन प्रकारका समझना चाहिये—पहला भौतिक दूसरा साख्य और तीसरे प्रकारका योगी अत्याश्रमी कहा गया है, जो श्रेष्ठ योगमे ही नित्य स्थित रहता है। पहले भौतिक योगीमे प्रथम भावना (दूसरे) साख्ययोगीमें अक्षर-भावना और तीसरे अत्याश्रमी नामक योगीमे जो अन्तिम भावना रहती है वह पारमेश्वरी भावना कहलाती है॥८२—८४॥

तस्मादेतद् विजानीध्वमाश्रमाणा चतुष्टयम्।
सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते॥८५॥

इसीलिये (हे ऋषियो!) सभी वेदशास्त्रोमे चार ही आश्रम निश्चित किये गये हैं, एसा जानना चाहिये। पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं है॥ ८५॥

एव वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जन ।
दक्षादीन् प्राह विश्वात्मा सृजध्व विविधा प्रजा ॥८६॥
ब्रह्मणो वचनात् पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमा ।
असृजन्त प्रजा सर्वा देवमानुषपूर्विका ॥८७॥

इस प्रकार (चार) वर्ण तथा (चार) आश्रमोकी सृष्टि करके देवाधिदेव निरञ्जन विश्वात्मा (ब्रह्माजी)-ने दक्ष आदि (प्रजापतियो)-से कहा—'अनेक प्रकारकी सृष्टि करो'। हे मुनिश्रेष्ठो! ब्रह्माजीके कहनेपर उनके दक्ष आदि (मानस) पुत्राने देवताओ एव मनुष्योके साथ ही अन्य भी सभी प्रजाओ (प्राणियो)-की सृष्टि की॥८६-८७॥

इत्येष भगवान् ब्रह्मा स्रष्टृत्वे स व्यवस्थित ।
अह वै पालयामीद सहरिष्यति शूलभृत्॥८८॥

इस प्रकार ये भगवान् ब्रह्मा सृष्टिके कार्यमे नियत हैं। मैं इस (सृष्टि)-का पालन-पोषण करता हूँ और शूलधारी भगवान् शकर इसका सहार करेगे॥८८॥

तिस्रस्तु मूर्तय प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
रज सत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मन ॥८९॥
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविन ।
अन्योन्य प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वरा ॥९०॥

परात्पर परमात्माकी रज, सत्त्व एव तमोगुणके योगसे (क्रमश) ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर नामक तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। ये तीनो विग्रह परस्पर एक दूसरेमे अनुरक्त तथा एक दूसरके उपजीवी (आश्रित) हैं। ये तीनो परमेश्वर हैं और लीलावश एक दूसरेको प्रणाम करते रहते हैं॥ ८९-९०॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना।
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सतत द्विजा ॥९१॥
प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या चाक्षरभावना।
द्वितीया ब्रह्मण प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना॥९२॥

हे ब्राह्मणो! रुद्रमे ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर (वैष्णवी) नामक तीन प्रकारकी भावनाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं। मुझमे प्रथम अक्षरभावना निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। भगवान् ब्रह्माजीकी द्वितीय अक्षरभावना कही गयी है॥९१-९२॥

अहं चैव महादेवो न भिन्नौ परमार्थतः।
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः॥ ९३॥
त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्।
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत्॥ ९४॥

पारमार्थिक दृष्टिसे मुझमें और महादेवमें कोई भिन्नता नहीं है। वही अन्तर्यामी ईश्वर अपनी इच्छासे अपनेको विभाजित कर (मेरे तथा महादेवके रूपमें) स्थित है। देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके साथ ही सम्पूर्ण त्रैलोक्यकी सृष्टि करनेके लिये (इसी परम) पुरुषने अपने परात्पर अव्यक्त स्वरूपद्वारा ब्रह्मत्वको स्वीकार किया अर्थात् वे ही अव्यक्त परमात्मा सृष्टि करनेके लिये ब्रह्माके रूपमें व्यक्त हुए॥ ९३-९४॥

तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः॥ ९५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः प्रयत्नतः।
यदीच्छेदचिरात् स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥ ९६॥
वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः।
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया॥ ९७॥

अतः ब्रह्मा, महादेव एवं परात्पर विश्वेश्वर भगवान् विष्णु (ये तीनों ही) पृथक्-पृथक् कार्यकी दृष्टिसे एक ही प्रभुकी तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे विशेषतः (ये तीनों ही) वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं। मोक्ष नामसे कहे जानेवाले उस अविनाशी स्थानको यदि शीघ्र ही प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वर्णाश्रम-धर्मके नियमोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पालन करते हुए प्रतिज्ञापूर्वक बड़े श्रद्धाभावसे जीवनपर्यन्त इन (त्रिदेवों)-का पूजन करना चाहिये॥ ९५—९७॥

चतुर्णामाश्रमाणां तु प्रोक्तोऽयं विधिवद्द्विजाः।
आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः॥ ९८॥
तल्लिङ्गधारी सततं तद्भक्तजनवत्सलः।
ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः॥ ९९॥

हे ब्राह्मणो! विधिपूर्वक इस प्रकार चारों आश्रमोंका वर्णन किया गया। (इनमें) वैष्णव, ब्राह्म तथा हर (शैव) नामक तीन आश्रम (सम्प्रदाय) होते हैं। उन (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म आश्रमों)-का लिङ्ग (चिह्न) धारणकर उस (देवता)-के भक्तजनोंके प्रति प्रेम रखते हुए ब्रह्मविद्यापरायण व्यक्तिको चाहिये कि वह इन देवोंका निरन्तर ध्यान करे, पूजन करे॥ ९८-९९॥

सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम्।
सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्॥ १००॥
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्।
धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः॥ १०१॥
प्रपन्ना ये जगद्वीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा॥ १०२॥

शिवके सभी भक्तोंके लिये (चिह्न-रूपमें) शिव-लिङ्ग धारण करना श्रेष्ठ है। शैवोंको चाहिये कि वे श्वेत भस्मसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करें। जो परम पद (स्वरूप) भगवान् नारायणके शरणागत (भक्त) हों उसे ललाटपर (कस्तूरी आदिके) सुगन्धित जलसे त्रिशूल (की आकृति)-का तिलक सर्वदा धारण करना चाहिये। जो संसारके बीज परमेष्ठी ब्रह्माके भक्त हैं उन्हें ललाटपर सर्वदा तिलक धारण करना चाहिये॥ १००—१०२॥

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत्।
उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात्॥ १०३॥
यत्तत् प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
धृतं त्रिशूलधरणाद् भवत्येव न संशयः॥ १०४॥
ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः।
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते॥ १०५॥

ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्रके धारण करनेसे अनादि (होते हुए भी) जो प्राणियोंका आदि है, कालात्मा है उसका धारण करना हो जाता है। त्रिशूल (चिह्न)-के धारण करनेसे जो वह त्रिगुणात्मक प्रधान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूप है निश्चयरूपसे उसका धारण हो जाता है। तिलक लगानेसे जो आदित्यमण्डलका प्रकाशमान ब्रह्मतेजोमय ऐश्वरयुक्त स्थान है उसका धारण हो जाता है॥ १०३—१०५॥

तस्मात् कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम्।
त्रियायुषं च भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम्॥ १०६॥

इसलिये (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म) तीनों प्रकारके भक्तोंको

विधिपूर्वक मङ्गलमय तथा दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले त्रिशूलके चिह्न तथा तिलकको धारण करना चाहिये॥ १०६॥

यजेत जुहुयादग्नौ जपेद् दद्याज्जितेन्द्रिय ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित्॥ १०७॥
एव परिचरेद् देवान् यावज्जीव समाहित ।
तेषा सस्थानमचल सोऽचिरादधिगच्छति॥ १०८॥

वर्ण तथा आश्रमक विधि-विधानको जाननेवाले शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा क्रोधजयीको यज्ञ, अग्निमे हवन, जप तथा दान करना चाहिये। इस प्रकार यावज्जीवन समाहित-मन होकर देवाको आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उसे शीघ्र ही अचल स्थानकी प्राप्ति होती है॥ १०८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे द्वितीयोऽध्याय ॥ २॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

आश्रमधर्मका वर्णन, सन्यास ग्रहण करनेका क्रम, ब्रह्मार्पणका लक्षण तथा निष्कामकर्मयोगकी महिमा

ऋषय ऊचु

वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा।
इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणा वद प्रभो॥ १॥

ऋषियोंने कहा—प्रभो! आपने चारो वर्णों तथा चारो आश्रमोका वर्णन किया। अब हमे आश्रमोका क्रम बतलाय॥ १॥

श्रीकूर्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
क्रमेणैवाश्रमा प्रोक्ता कारणादन्यथा भवेत्॥ २॥

श्रीकूर्म बोले—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ तथा सन्यास—ये क्रमसे आश्रम कहे गये हैं। किसी कारणसे (इस क्रमम) परिवर्तन भी होता है॥ २॥

उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्य परम गत ।
प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात् तु यदीच्छेत् परमा गतिम्॥ ३॥
दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखै ।
यजेदुत्पादयेत् पुत्रान् विरक्तो यदि सन्यसेत्॥ ४॥

जो ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न हो तथा परम वैराग्यको प्राप्त हो गया हो ऐसा ब्रह्मचारी यदि परमगतिको प्राप्त करना चाहे तो यह ब्रह्मचर्य-आश्रमसे (सीधे) सन्यास ग्रहण कर ले। इसके विपरीत (अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रमसे सीधे सन्यास न ग्रहण कर) विधिपूर्वक स्त्रीसे विवाह कर विविध यज्ञाका अनुष्ठान करते हुए पुत्रोको उत्पन्न करे और विरक्त होनेपर सन्यास ग्रहण करे॥ ३-४॥

अनिष्ट्वा विधिवद् यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजम्।
न गार्हस्थ्य गृही त्यक्त्वा सन्यसेद् बुद्धिमान् द्विज ॥ ५॥
अथ वैराग्यवेगेन स्थातु नोत्सहते गृहे।
तत्रैव सन्यसेद् विद्वाननिष्ट्वापि द्विजोत्तम ॥ ६॥

बुद्धिमान् गृहस्थ द्विजको चाहिये कि वह विधिपूर्वक यज्ञोका अनुष्ठान तथा पुत्रोको उत्पन्न किये बिना गृहस्थ-आश्रमका परित्यागकर सन्यास ग्रहण न करे। श्रेष्ठ विद्वान् द्विज यदि तीव्र वैराग्यके वेगके कारण गृहस्थाश्रममें रहनेके लिये उत्सुक न हो तो यज्ञ किये बिना भी वहीं सन्यास ग्रहण कर ले॥ ५-६॥

अन्यथा विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयेत्।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद् विरक्त सन्यसेद् यदि॥ ७॥
वानप्रस्थाश्रम गत्वा न गृह प्रविशेत् पुन ।
न सन्यासी वन चाथ ब्रह्मचर्य न साधक ॥ ८॥

अन्यथा विविध यज्ञोका सम्पादन कर वनका आश्रय लेना चाहिये एव तपोयोगद्वारा तप करनेके बाद यदि विराग हो जाय तो सन्यास लेना चाहिये। वानप्रस्थ-आश्रम ग्रहण कर फिर गृहस्थ-आश्रमम प्रवेश नहीं करना चाहिये न सन्यासी वानप्रस्थ-आश्रमम वापस आये और न साधक गृहस्थ ब्रह्मचर्याश्रमम वापस लौटे॥ ७-८॥

प्राजापत्या निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विज ।
प्रव्रजेत गृही विद्वान् वनाद् वा श्रुतिचोदनात्॥ ९॥
प्रकर्तुमसमर्थोऽपि जुहोतियजतिक्रिया ।
अन्ध पगुर्दरिद्रो वा विरक्त सन्यसेद् द्विज ॥१०॥
सर्वेषामेव वैराग्य सन्यासाय विधीयते।
पतत्यवाविरक्तो य सन्यास कर्तुमिच्छति॥११॥

विद्वान् गृहस्थ द्विज प्राजापन्य इष्टि अथवा आग्नेयी इष्टिका सम्पादन कर सन्यास गहण करे या वैदिक विधानसे वानप्रस्थमे (सन्यास-आश्रमम) प्रवेश करे। हवन तथा यज्ञ-सम्बन्धी क्रियाओको करनेम असमर्थ होनेपर भी अन्धा लँगडा अथवा दरिद्र द्विज वैराग्य होनेपर सन्यास ग्रहण करे। सभीके लिये सन्यासके निमित्त वैराग्यका विधान किया गया है। जो आसक्तियुक्त पुरुष सन्यास-आश्रम ग्रहण करना चाहता हे वह अवश्य ही पतित हा जाता है॥ ९—११॥

एकस्मिन्नथवा सम्यग् वर्तेतामरण द्विज ।
श्रद्धावानाश्रमे युक्त सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१२॥
न्यायागतधन शान्तो ब्रह्मविद्यापरायण ।
स्वधर्मपालको नित्य सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१३॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि नि सग कामवर्जित ।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम्॥१४॥

अथवा निष्ठावान् द्विजका चाहिये कि किसी भी एक आश्रमम रह यावज्जीवन ठीक-ठीक व्यवहार करता रहे ता मोक्ष प्राप्त करनम समर्थ हो जाता है। न्यायमार्ग (ईमानदारी)-स धन प्राप्त करनेवाला शान्त ब्रह्म-विद्यापरायण तथा नित्य अपने धर्मका पालन करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करनम समर्थ होता है। अपने समस्त कर्मोंको ब्रह्मम अर्पितकर आसक्तिरहित तथा निष्काम व्यक्ति प्रसन्न-मनसे कर्मोंको करते हुए उस पद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है॥१२—१४॥

ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते।
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥१५॥
नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा।
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभि तत्त्वदर्शिभि ॥१६॥
प्रीणातु भगवानीश कर्मणानेन शाश्वत ।
करोति सतत बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिद परम॥१७॥
यद्वा फलाना सन्यास प्रकुर्यात् परमेश्वरे।
कर्मणामेतदप्याहु ब्रह्मार्पणमनुत्तमम्॥१८॥

देने योग्य पदार्थ ब्रह्मके द्वारा ही प्राप्त होता है, ब्रह्मको ही दिया जाता है और ब्रह्म ही दिया भी जाता है—यही श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण (की भावना) है। मैं कर्ता अर्थात् करनवाला नहीं हूँ और जो कुछ भी किया जाता है वह ब्रह्म ही करता है—इसे तत्त्वद्रष्टा ऋषियोने 'ब्रह्मार्पण' नामसे कहा है। 'मेरे इस कर्मसे सनातन भगवान् ईश्वर प्रसन्न हो' इस प्रकारकी बुद्धिसे निरन्तर किया गया कर्म श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण है। अथवा परमेश्वरमे सभी कर्मोंके फलोका सन्यास करे—यह भी श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण कहा गया है॥ १५—१८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियत सगवर्जितम्।
क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदपि मोक्षदम्॥१९॥
अन्यथा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यमपि द्विज ।
अकृत्वा फलसन्यास बध्यते तत्फलेन तु॥२०॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रित फलम्।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोत्यचिरात् पदम्॥२१॥
कर्मणा क्षीयते पापमैहिक पौर्विक तथा।
मन प्रसादमन्वेति ब्रह्म विज्ञायते तत ॥२२॥

विद्वान् व्यक्तिके द्वारा आसक्तिरहित होकर कर्तव्य-बुद्धिसे जो कर्म नियमसे किया जाता है उसका वह कर्म भी मोक्ष देनेवाला होता है। इसके विपरीत यदि द्विज नित्य कर्मोंको करता भी रहे तो कर्मफलका सन्यास न करनेके कारण वह उस कर्मफलके बन्धनसे बँधा रहता है। इसलिये अविद्वान् व्यक्तिको भी चाहिये कि सभी प्रकारके प्रयत्नसे कर्मके आश्रित फलको त्यागकर कर्म करता रहे इससे उसे शीघ्र ही (परम) पद प्राप्त होता है। (निष्काम) कर्मसे व्यक्तिके इस जन्म तथा पूर्व-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं तदनन्तर चित्तको प्रसन्नता प्राप्त होती है और फिर (उसे) ब्रह्मका परिज्ञान हो जाता है॥१९—२२॥

कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग् योगोऽभिजायते।
ज्ञान च कर्मसहित जायते दोषवर्जितम्॥ २३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र तत्राश्रमे रत ।
कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्॥ २४॥
सम्प्राप्य परम ज्ञान नैष्कर्म्यं तत्प्रसादत ।
एकाकी निर्मम शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते॥ २५॥

कर्मयुक्त ज्ञानसे सम्यक् योगकी प्राप्ति होती है और कर्मयुक्त ज्ञान दोषरहित होता है। इसलिये किसी भी आश्रमम रहते हुए सभी प्रकारके प्रयत्नोसे भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कर्मोको करता रहे। (इससे) नैष्कर्म्यकी प्राप्ति हो जाती है। परम ज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर उसके प्रभावसे नैष्कर्म्यकी सिद्धि कर वह एकाकी, ममताशून्य तथा शान्त (व्यक्ति) जीवनकालमे ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २३—२५॥

वीक्षते परमात्मान पर ब्रह्म महेश्वरम्।
नित्यानन्द निराभास तस्मिन्नेव लय व्रजेत्॥ २६॥
तस्मात् सेवेत संतत कर्मयोग प्रसन्नधी ।
तृप्तये परमेशस्य तत् पद याति शाश्वतम्॥ २७॥

(ऐसा व्यक्ति) नित्यानन्दस्वरूप, निराभास (स्वत -प्रकाश), महेश्वर, परम ब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार कर उसीम लीन हो जाता है। इसलिये प्रसन्नचित्त होकर परमेश्वरकी सतुष्टिके लिये निरन्तर कर्मयोगका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। (इससे वह परमेश्वरके) उस सनातन पदको प्राप्त करता है॥ २६-२७॥

एतद् व कथित सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
न ह्येतत् समतिक्रम्य सिद्धि विन्दति मानव ॥ २८॥

इस प्रकार आप लोगाको यह चारा आश्रमाका सम्पूर्ण श्रेष्ठ क्रम बतलाया। इस क्रमका अतिक्रमण करके कोई भी मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं कर सकता॥ २८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायां पूर्वविभागे तृतीयोऽध्याय ॥ ३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

साख्य-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्माण्डकी सृष्टिका क्रम, पञ्चीकरण-प्रक्रिया तथा परमेश्वरके विविध नामोका निरूपण

सूत उवाच

श्रुत्वाश्रमविधि कृत्स्नमृषयो हृष्टमानसा ।
नमस्कृत्य हृषीकेश पुनर्वचनमब्रुवन्॥ १॥

सूतजीने कहा—आश्रमोंके सम्बन्धम पूरे विधि-विधानको सुनकर प्रसन्न मनवाले ऋषियाने भगवान् हृषीकेशको नमस्कार करके पुन इस प्रकारका वचन कहा—॥ १॥

मुनय ऊचु

भाषित भवता सर्व चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सम्भवते जगत्॥ २॥
कुत सर्वमिद जात कस्मिंश्च लयमेष्यति।
नियन्ता कश्च सर्वेषा वदस्व पुरुषोत्तम॥ ३॥
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणा कूर्मरूपधृक्।
प्राह गम्भीरया वाचा भूताना प्रभवाप्ययौ॥ ४॥

मुनिजन बोले—(भगवन्!) आपने श्रेष्ठ चारो आश्रमोंके विषयम सब कुछ बतलाया, अब इस समय हम यह सुननेकी इच्छा है कि इस जगत्‌की सृष्टि कैसे होती है। हे पुरुषोत्तम। यह सब (ससार) कहाँसे उत्पन्न हुआ, किसम विलीन होगा और इन सबका नियामक कौन है? यह सब आप बतलाये। ऋषियोका वचन सुनकर कूर्मरूप धारण करनेवाले तथा सभी भूत-प्राणियोके उत्पत्ति और विनाशके स्थान भगवान् नारायण गम्भीर वाणीमे बोले—॥ २—४॥

श्रीकूर्म उवाच

महेश्वर परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूह सनातन ।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुख ॥ ५॥
अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम्।
प्रधान प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥ ६॥

श्रीकूर्मने कहा—सर्वत्र (चारो ओर) मुखवाले महेश्वर (प्रकृतिसे) पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह, सनातन, अनन्त, अप्रमेय तथा (समस्त जगत्के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तक जिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्-रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है॥ ५-६ ॥

गन्धवर्णरसैर्हीन शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजर ध्रुवमक्षय्य नित्य स्वात्मन्यवस्थितम्॥७॥
जगद्योनिर्महाभूत पर ब्रह्म सनातनम्।
विग्रह सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठित महत्॥८॥
अनाद्यन्तमज सूक्ष्म त्रिगुण प्रभवाप्ययम्।
असाम्प्रतमविज्ञेय ब्रह्माग्रे समवर्तत॥९॥

गन्ध, वर्ण और रससे हीन, शब्द-स्पर्शसे रहित, अजर, ध्रुव, अक्षय्य (कभी नाश न होनेवाला), नित्य अपनी आत्माम स्थित, ससारका बीजरूप, महाभूत सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियोकी मूर्तिरूप, आत्मासे अधिष्ठित, महत्तत्त्व, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण, उत्पत्ति और प्रलयका स्थान, शाश्वत तथा अविज्ञेय ब्रह्म ही आदिमे विद्यमान था॥ ७—९ ॥

गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।
प्राकृत प्रलयो ज्ञेयो यावद् विश्वसमुद्भव ॥१०॥
ब्राह्मी रात्रिरिय प्रोक्ता अह सृष्टिरुदाहृता।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारत ॥११॥

उस समय गुणोकी साम्यावस्थारूप उस पुरुषके आत्मस्वरूपमे स्थित होनेपर जबतक विश्वकी सृष्टि नहीं हो जाती, प्राकृत प्रलय (का समय) जानना चाहिये। यह ब्रह्माकी रात्रि कही गयी है और सृष्टिको ब्रह्माका दिन कहा गया हे (वास्तवमे) उसका न दिन होता हे और न रात होती है॥ १०-११ ॥

निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान्।
सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वर पर ॥१२॥
प्रकृति पुरुष चैव प्रविश्याशु महेश्वर ।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वर ॥१३॥

आदिसे रहित वह जगत्का आदि कारण, सर्वभूतमय अव्यक्त अन्तर्यामी परात्पर ईश्वर रात्रि व्यतीत होनेपर जाग्रत् हुआ। परमेश्वर महेश्वरने प्रकृति एव पुरुषमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर परम योगके द्वारा (उनमे) क्षोभ (गति) उत्पन्न किया॥ १२-१३ ॥

यथा मदो नरस्त्रीणा यथा वा माधवोऽनिल ।
अनुप्रविष्ट क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान्॥१४॥
स एव क्षोभको विप्रा क्षोभ्यश्च परमेश्वर ।
स सकोचविकासाभ्या प्रधानत्वेऽपि च स्थित ॥१५॥
प्रधानात् क्षोभ्यमाणाच्च तथा पुस पुरातनात्।
प्रादुरासीन्महद् बीज प्रधानपुरुषात्मकम्॥१६॥

जैसे वसन्त ऋतुकी वायु अथवा मद पुरुष एव स्त्रियाको *(क्षुब्ध करता है) वैसे ही वह योगविग्रह (योगबलसे विविध* शरीर-धारणम समर्थ ईश्वर) प्रकृति एव पुरुषमें अनुप्रविष्ट होकर क्षोभका कारण बनता है। हे ब्राह्मणो! वही परमेश्वर क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है एव स्वय क्षुब्ध होनेवाला है, वह प्रलय एव सृष्टि करनेके कारण प्रधान भी कहलाता है। प्रधान पुरातनपुरुषके क्षुब्ध होनेसे प्रधान (प्रकृति) पुरुषात्मक महद् बीजका आविर्भाव हुआ॥ १४—१६ ॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धि ख्यातिरीश्वर ।
प्रज्ञा धृति स्मृति सविदेतस्मादिति तत् स्मृतम्॥१७॥

इसी कारणसे (वह महद्बीज) महान् आत्मा मति, ब्रह्मा प्रबुद्धि *ख्याति* ईश्वर, प्रज्ञा धृति स्मृति तथा सवित् कहलाता है॥ १७ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामस ।
त्रिविधोऽयमहकारो महत सम्बभूव ह॥१८॥

महत्तत्त्वसे समस्त प्राणियाकी सृष्टिका आदि कारण—वैकारिक, तैजस तथा तामस—यह तीन प्रकारका अहकार उत्पन्न हुआ॥ १८ ॥

अहकारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च स स्मृत ।
आत्मा च पुद्गलो जीवो यत सर्वा प्रवृत्तय ॥१९॥
पञ्चभूतान्यहकारात् तन्मात्राणि च जज्ञिरे।
इन्द्रियाणि तथा देवा सर्वं तस्यात्मज जगत्॥२०॥

वह अहकार अभिमान कर्ता, मन्ता आत्मा पुद्गल तथा जीव (नामो)-से कहा गया है। उसी अहकारसे सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं। अहकारसे पाँच महाभूत (पृथ्वी जल तेज वायु तथा आकाश), पाँच तन्मात्राएँ (शब्द स्पर्श रूप रस तथा गन्ध) सभी इन्द्रियाँ तथा उन इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता

उत्पन्न हुए। यह सम्पूर्ण जगत् उससे ही उत्पन्न हुआ है॥ १९-२०॥

मनस्त्वव्यक्तज प्रोक्त विकार प्रथम स्मृत।
येनासौ जायते कर्ता भूतादींश्चानुपश्यति॥ २१॥
वैकारिकादहकारात् सर्गो वैकारिकोऽभवत्।
तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश॥ २२॥

अव्यक्तसे उत्पन्न मनको प्रथम विकार माना गया है। इस कारण यह कर्ता एव भूतादिकोको देखनेवाला है। वैकारिक अहकारसे वैकारिक सृष्टि उत्पन्न हुई। इन्द्रियाँ तैजस हैं और (उन इन्द्रियोके अधिष्ठाता) दस देवता वैकारिक हैं॥ २१-२२॥

एकादर्श मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्।
भूततन्मात्रसर्गोऽय भूतादेरभवन् प्रजा॥ २३॥
भूतादिस्तु विकुर्वाण शब्दमात्र ससर्ज ह।
आकाश शुषिर तस्मादुत्पन्न शब्दलक्षणम्॥ २४॥
आकाशस्तु विकुर्वाण स्पर्शमात्र ससर्ज ह।
वायुरुत्पद्यते तस्मात् तस्य स्पर्शो गुणो मत॥ २५॥

उनमें (ग्यारहवीं) इन्द्रिय मन अपने गुणके कारण उभयात्मक[१] है। यह भूततन्मात्राओकी सृष्टि है। भूतादिकासे ही प्रजा उत्पन्न हुई। विकारप्राप्त भूतोने शब्दतन्मात्राको उत्पन्न किया। उस (शब्द तन्मात्रा)-से शब्द लक्षणवाले तथा अवकाशस्वरूप आकाशकी उत्पत्ति हुई। वैकारिक आकाशने स्पर्श तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे वायु उत्पन्न हुआ और वायुका गुण स्पर्श कहा गया है॥ २३—२५॥

वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्र ससर्ज ह।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते॥ २६॥
ज्योतिश्चापि विकुर्वाण रसमात्र ससर्ज ह।
सम्भवन्ति ततोऽम्भासि रसाधाराणि तानि तु॥ २७॥
आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्र ससर्जिरे।
सघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मत॥ २८॥

विकारप्राप्त वायुने रूप तन्मात्राको उत्पन्न किया, वायुसे तेज उत्पन्न हुआ और इसका 'रूप' गुण कहा जाता है। विकारको प्राप्त हुए तेजने भी रस तन्मात्राकी सृष्टि की और उससे फिर जलकी उत्पत्ति हुई, वह जल इस 'रस' गुणका आधार है। विकारको प्राप्त हो रहे जलने गन्ध तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे सघात (पृथ्वीतत्त्व) उत्पन्न हुआ और उसका गुण 'गन्ध' माना गया है॥ २६—२८॥

आकाश शब्दमात्र यत् स्पर्शमात्र समावृणोत्।
द्विगुणस्तु ततो वायु शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥ २९॥
रूप तथैवाविशत शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ।
त्रिगुण स्यात् ततो वह्नि स शब्दस्पर्शरूपवान्॥ ३०॥
शब्द स्पर्शश्च रूप च रसमात्र समाविशन्।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिका॥ ३१॥
शब्द स्पर्शश्च रूप च रसो गन्ध समाविशन्।
तस्मात् पञ्चगुणा भूमि स्थूला भूतेषु शब्द्यते॥ ३२॥

आकाशकी शब्द नामक तन्मात्रा है, उसने स्पर्श नामक तन्मात्राको आवृत किया है, इसलिये वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंवाला है। उसी प्रकार रूप (नामक) गुण, शब्द एव स्पर्श दो गुणोंसे आविष्ट है, अत तेज या अग्नि—शब्द, स्पर्श तथा रूप—इन तीन गुणावाला है। शब्द, स्पर्श तथा रूप एव रस तन्मात्राम प्रविष्ट हुए, इसलिये रसात्मक जल-तत्त्वको चार गुणो (शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस)-से युक्त समझना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण गन्ध तन्मात्राम प्रविष्ट हुए, इसलिये पञ्च स्थूल महाभूतसे युक्त पृथ्वी तत्त्व पाँच गुणोवाला कहा गया है॥ २९—३२॥

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृता।
परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम्॥ ३३॥

इसी कारण ये शान्त, घोर, मूढ तथा विशेष कहलाते हैं। ये परस्पर एक दूसरेम प्रविष्ट होनेके कारण आपसमे एक दूसरेको धारण किये रहते हैं॥ ३३॥

एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्।
नाशक्नुवन् प्रजा स्त्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नश॥ ३४॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥ ३५॥

ये सातो महात्मा (महत्, अहकार आदि तत्त्व) एक-दूसरेके आश्रित होनेके कारण बिना सम्पूर्ण रूपसे मिले

१-हस्त आदि पाँच कर्मेन्द्रिय हैं तथा चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। मन उभयात्मक है अर्थात् सकल्प-विकल्प-रूप कर्म भी करता है तथा इसे सुख-दु खका ज्ञान भी होता है।

सृष्टि करनेमे समर्थ नहीं हो सके। पुरुपसे अधिष्ठित और अव्यक्तसे अनुगृहीत होनेके कारण महत्तत्त्वसे लेकर विशेष (पञ्चभूत)-पर्यन्त वे सभी (तत्त्व) अण्डको उत्पन्न करते हैं॥ ३४-३५॥

एककालसमुत्पन्न जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत् तदुदकेशयम्॥ ३६॥
तस्मिन् कार्यस्य करण ससिद्धि परमेष्ठिन ।
प्राकृतेऽण्डे विवृत्त स क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञित ॥ ३७॥
स वै शरीरी प्रथम स वै पुरुप उच्यते।
आदिकर्ता स भूताना ब्रह्माग्रे समवर्तत॥ ३८॥
यमाहु पुरुय हस प्रधानात् परत स्थितम्।
हिरण्यगर्भं कपिल छन्दोमूर्ति सनातनम्॥ ३९॥

विशेपों (महाभूतो)-से एक बारमे ही जलके बुलबुलेके समान तथा जलम स्थित वह बृहत् अण्ड उत्पन्न हुआ। उसी (बृहत् अण्ड)-म परमेष्ठीके (सृष्टिस्वरूप) कार्यका करण सिद्ध (निष्पन्न) हुआ। प्राकृत अण्डम क्षेत्रज्ञ आविर्भूत हुआ जो ब्रह्मा नामसे कहलाया। वे प्रथम शरीर धारण करनवाले हैं। वे पुरुप कहलाते हैं और समस्त प्राणियोंके आदिकर्ता वे ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। प्रधानसे परम स्थित उस पुरुपको हस, हिरण्यगर्भ, कपिल, छन्दोमूर्ति तथा सनातन कहा जाता है॥ ३६—३९॥

मेरुरुल्बमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वता ।
गर्भोदक समुद्राश्च तस्यासन् परमात्मन ॥ ४०॥
तस्मिन्नण्डेऽभवद् विश्व सदेवासुरमानुषम्।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥ ४१॥

उस परमात्माका गर्भवेष्टन था मेरु पर्वत थे गर्भके आवरणरूप चर्म-जरायु तथा गर्भोदक थे सभी समुद्र। उस अण्डम देवताओ, असुरो तथा मनुष्योसहित सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ तथा ग्रहा, नक्षत्रासहित वायु, सूर्य एव चन्द्रमा भी उत्पन्न हुए॥ ४०-४१॥

अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्ड समावृतम्।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृता ॥ ४२॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यता वायुनावृतम्।
आकाशेनावृतो वायु ख तु भूतादिनावृतम्॥ ४३॥
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।
एते लोका महात्मान सर्वतत्त्वाभिमानिन ॥ ४४॥

अण्ड (ब्रह्माण्ड) बाहरकी ओर अपनेसे दस गुने अधिक जलसे घिरा हुआ है और जल बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक तेजसे आवृत है। तेज बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक वायुसे आवृत है। इसी प्रकार वायु आकाशसे आवृत है और आकाश भूतादि अर्थात् अहकारसे घिरा हुआ है। जैसे अहकार महत्तत्त्वसे आवृत है, वैसे ही महत्तत्त्व अव्यक्तसे आवृत है। ये लोक सर्वतत्त्वाभिमानी महान् स्वरूपवाले हैं॥ ४२—४४॥

वसन्ति तत्र पुरुपास्तदात्मानो व्यवस्थिता ।
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तका ॥ ४५॥
सर्वज्ञा शान्तरजसो नित्य मुदितमानसा ।
एतैरावरणैरण्ड सप्तभि प्राकृतैर्वृतम्॥ ४६॥

उन (लोको)-मे उन्हींके आत्मरूप ऐश्वर्यसम्पन्न तथा योगधर्मा (योगधर्मसे युक्त) पुरुप निवास करते हैं और अन्य भी जो तत्त्वचिन्तक हैं, वे भी निवास करते हैं। (वे सभी पुरुप) सर्वज्ञ, शान्त रजोगुणवाले अर्थात् सत्त्वसम्पन्न तथा नित्य ही अत्यन्त प्रसन्न मनवाले हैं। ब्रह्माण्ड इन्हीं प्राकृत सात आवरणोसे आवृत है॥ ४५-४६॥

एतावच्छक्यते वक्तु मायैषा गहना द्विजा ।
एतत् प्राधानिक कार्यं यन्मया बीजमीरितम्।
प्रजापते परा मूर्तिरितीय वैदिकी श्रुति ॥ ४७॥

ब्राह्मणो। (इस विषयमे) केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'यह माया बहुत ही गहन है'। बीजरूपसे मैंने जिसका वर्णन किया वह सब प्रधान अर्थात् प्रकृतिका कार्य (व्यापार) है। यह (प्रकृति या माया अन्य और कोई नहीं) प्रजापतिकी (ही) परा मूर्ति है—ऐसा वेदोंका अभिमत है॥ ४७॥

ब्रह्माण्डमेतत् सकल सप्तलोकतलान्वितम्।
द्वितीय तस्य देवस्य शरीर परमेष्ठिन ॥ ४८॥
हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डज ।
तृतीय भगवद्रूप प्राहुर्वेदार्थवेदिन ॥ ४९॥

सात लोकाके तलसे युक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन परमेष्ठी देवका दूसरा शरीर है। वेदाके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले बतलाते हैं कि सोनेके समान वर्णवाले पीत अण्डसे प्रादुर्भूत हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा भगवान्के तीसरे रूप (शरीर) हैं॥ ४८-४९॥

रजोगुणमय चान्यद् रूप तस्यैव धीमत ।
चतुर्मुख स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्तते ॥ ५० ॥
सृष्ट च पाति सकल विश्वात्मा विश्वतोमुख ।
सत्त्व गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वर स्वयम् ॥ ५१ ॥
अन्तकाले स्वय देव सर्वात्मा परमेश्वर ।
तमोगुण समाश्रित्य रुद्र सहरते जगत् ॥ ५२ ॥

उन्हीं धीमान्का जो रजोगुणयुक्त अन्य रूप है, वे ही चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हैं तथा ससारकी सृष्टि करते हैं। स्वय विश्वेश्वर विश्वतोमुख विश्वात्मा भगवान् विष्णु सत्त्वगुणका आश्रय ग्रहणकर उत्पन हुए सम्पूर्ण (ससार)-का पालन-पोषण करते हैं। अन्तकालमे स्वय परमेश्वर सर्वात्मा रुद्रदेव तमोगुणका समाश्रयणकर ससारका सहार करते हैं ॥ ५०—५२ ॥

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थित ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जन ।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुन ॥ ५३ ॥
योगेश्वर शरीराणि करोति विकरोति च।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया ॥ ५४ ॥

एक होनेपर भी वे निर्गुण-निरञ्जन महादेव सृष्टि, पालन और सहाररूपी तीन गुणोके कारण तीन रूपामे स्थित हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनन्त रूप धारण कर लेते हैं। वे योगेश्वर (परमात्मा) अपनी लीलासे अनेक आकार, क्रिया रूप तथा नामवाले शरीरोका निर्माण करते हैं और फिर सहार कर डालते हैं ॥ ५३-५४ ॥

हिताय चैव भक्ताना स एव ग्रसते, पुन ।
त्रिधा विभज्य चात्मान त्रैकाल्ये सम्प्रवर्तते।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषत ॥ ५५ ॥

भक्ताके कल्याणके लिये ही वे पुन सहार करते हैं। अपनेको तीन रूपाम विभक्तकर तीनो कालोमे प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार (वे) विशेष रूपसे सृष्टि सहार और पालनका कार्य करते हैं ॥ ५५ ॥

यस्मात् सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते च पुन प्रजा ।
गुणात्मकत्वात् त्रैकाल्ये तस्मादेक स उच्यते ॥ ५६ ॥
अग्रे हिरण्यगर्भ स प्रादुर्भूत सनातन ।
आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादज स्मृत ॥ ५७ ॥
पाति यस्मात् प्रजा सर्वा प्रजापतिरिति स्मृत ।
देवेषु च महादवो महादेव इति स्मृत ॥ ५८ ॥

चूँकि वे (स्वय ही) प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसका पालन करते हैं और (स्वय उसका) पुन सहार करते हैं, इसलिये तीनो कालोंम (सत्त्व, रज तथा तमरूप) त्रिगुणात्मक होनेसे वे (परमात्मा) एक (अद्वैत) कहलाते हैं। प्रारम्भमे वे सनातन हिरण्यगर्भ प्रादुर्भूत हुए। आदिम उत्पन्न होनेसे वे आदिदेव तथा अजन्मा होनेसे अज कहलाते हैं। वे समस्त प्रजाओका पालन करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' इस नामसे कहे जाते हैं और देवताओमे सबसे बडे देव हैं, इसलिये 'महादेव' कहलाते हैं ॥ ५६—५८ ॥

बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात् परमेश्वर ।
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वर परिभाषित ॥ ५९ ॥
ऋषि सर्वत्रगत्वेन हरि सर्वहरो यत ।
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृत ॥ ६० ॥
नराणामयनो यस्मात् तेन नारायण स्मृत ।
हर ससारहरणाद् विभुत्वाद् विष्णुरुच्यते ॥ ६१ ॥

बृहत् होनेसे वे ब्रह्मा तथा परम (श्रेष्ठ) होनेके कारण परमेश्वर कहे जाते हैं। सबका अपने वशमें रखनेवाले, परतु स्वय किसीके वशमे न रहनेके कारण वे ईश्वर (नामसे) परिभाषित किये जाते हैं। उनकी सर्वत्र गति होनेके कारण वे ऋषि और (प्रलयकाल)-मे सब कुछ हरण करनेके कारण हरि कहलाते ह। किसीके द्वारा उत्पन्न न होने तथा सर्वप्रथम हानके कारण 'स्वयम्भू' इस नामसे कहे जाते हैं। सभी मनुष्योके वे अयन (आश्रय-स्थान) हैं, इसलिये नारायण कहे जाते हैं, ससारका सहार करनेसे हर तथा सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं ॥ ५९—६१ ॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृत ।
सर्वज्ञ सर्वविज्ञानात् सर्व सर्वमयो यत ॥ ६२ ॥
शिव स निर्मलो यस्माद् विभु सर्वगता यत ।
तारणात् सर्वदु खाना तारक परिगीयते ॥ ६३ ॥

(वे) सब कुछ जाननेके कारण भगवान् तथा रक्षा-कार्य करनेसे ॐ कहलाते हैं। सभीका विशिष्ट ज्ञान होनेस सर्वज्ञ तथा सभीके आत्मस्वरूप होनेके कारण वे सर्व कहे

जाते हैं। वे मलशून्य हैं, इसलिये शिव और सर्वत्र व्याप्त होनेसे विभु तथा सभी प्रकारके कष्टोंका निवारण करनेसे 'तारक' कहलाते हैं॥ ६२-६३॥

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत्।
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः॥६४॥

और अधिक कहनेसे क्या लाभ! यह सारा जगत् ब्रह्ममय ही है और वे परमेश्वर अनेक रूपोंमें विभक्त होकर अनेक क्रीडाएँ (लीलाएँ) करते रहते हैं॥ ६४॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात् कथितो मया।
अबुद्धिपूर्वको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत॥६५॥

हे ब्राह्मणो! मैंने संक्षेपमें इस अबुद्धिपूर्वक हुए प्राकृत सर्ग (प्राकृत सृष्टि)-का वर्णन किया है। अब आप लोग ब्रह्माकी सृष्टिके सम्बन्धमें सुनें॥ ६५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी आयुका वर्णन, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि कालकी गणना, प्राकृत प्रलय तथा कालकी महिमाका वर्णन

श्रीकूर्म उवाच

स्वयम्भुवो विवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः।
न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम्॥१॥
कालसंख्या समासेन परार्धद्वयकल्पिता।
स एव स्यात् परः कालस्तदन्ते प्रतिसृज्यते॥२॥

श्रीकूर्मने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! स्वयम्भू-ब्रह्माके बीते हुए कालकी गणनाका वर्णन बहुत वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। संक्षेपमें कालकी गणना दो परार्ध कही गयी है। वही परम काल है और उसके बीत जानेपर प्रलय होता है॥ १-२॥

निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत् पराख्यं तदर्धं च परार्धमभिधीयते॥३॥

अपने मानसे ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु कही गयी है। उसी (ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु)-को 'पर' नामसे कहा जाता है और उस परका आधा 'परार्ध' कहलाता है॥ ३॥

काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः।
काष्ठास्त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्तिकी गतिः॥४॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥५॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥६॥

द्विजोत्तमो! पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा कही गयी है। तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कलाका समय एक मुहूर्त-काल होता है। उतनी ही संख्या अर्थात् तीस मुहूर्तोंका एक मानवीय अहोरात्र (दिन-रात) होता है, उतने ही अर्थात् तीस अहोरात्रोंका एक मास होता है जो दो पक्षवाला है। छः मासोंका एक अयन तथा उत्तर एवं दक्षिण नामसे दो अयनोंका एक वर्ष होता है। दक्षिण अयन अर्थात् दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि और उत्तर अयन अर्थात् उत्तरायण (देवताओंका) दिन होता है॥ ४—६॥

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत॥७॥

(श्रीकूर्मने ब्राह्मणोंसे कहा—) दिव्य बारह हजार वर्षोंका सत्य त्रेता इत्यादि नामसे एक चतुर्युग होता है। उसके विभागोंका वर्णन सुनें॥ ७॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च कृतस्य तु॥८॥

त्रिशती द्विशती सध्या तथा चैकशती क्रमात्।
अशक षट्शत तस्मात् कृतसध्याशक विना॥९॥

चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग होता है। सत्ययुगकी उतने ही सौ वर्षोंकी अर्थात् चार सौ वर्षोंकी सध्या तथा सध्याश (त्रेतायुगका सधिकाल) होता है। सत्ययुगके सध्याशको छोडकर क्रमश तीन सौ दो सौ तथा एक सौ—इस प्रकार कुल मिलाकर दिव्य छ सौ वर्षोंके द्वापर तथा कलियुगके सध्या तथा सध्याश होते हैं॥८-९॥

त्रिद्व्येकसाहस्त्रमतो विना सध्याशकेन तु।
त्रेताद्वापरतिष्याणा कालज्ञाने प्रकीर्तितम्॥१०॥
एतद् द्वादशसाहस्र साधिक परिकल्पितम्।
तदेकसप्ततिगुण मनोरन्तरमुच्यते॥११॥

कालका ज्ञान करनेके लिये सध्याशोसे रहित त्रेता द्वापर तथा कलियुग क्रमश तीन, दो तथा एक हजार (दिव्य) वर्षोंके कहे गये हैं। कुछ अधिकता लिये यही (दिव्य) बारह हजार वर्षोंका कालपरिमाण कहा गया है। इसके इकहत्तर गुना कालको एक मनुका अन्तर अर्थात् एक मन्वन्तरका समय कहा गया है॥१०-११॥

ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनव स्युश्चतुर्दश।
स्वायम्भुवादय सर्वे तत सावर्णिकादय॥१२॥
तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।
पूर्णं युगसहस्र वै परिपाल्या नरेश्वरै॥१३॥

ब्राह्मणो! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु (मन्वन्तर) होते हैं। वे सभी स्वायम्भुव (प्रथम मनु) आदि तथा सावर्णिक (अष्टम मनु) आदि मनु हैं। उन नरेश्वरो (मन्वन्तराधिपो)-के द्वारा सात द्वीपो एव पर्वतोवाली इस पृथ्वीका पूरे एक हजार युगोतक पालन किया जाता है॥१२-१३॥

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै।
व्याख्यातानि न सदेह कल्प कल्पेन चैव हि॥१४॥
ब्राह्ममेकमह कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते।
चतुर्युगसहस्र तु कल्पमाहुर्मनीषिण॥१५॥

एक मन्वन्तरके वर्णनसे अन्य भी—सभी मन्वन्तरोका वर्णन कर दिया गया है (ऐसा समझना चाहिये)। इसमे सदेह नहीं करना चाहिये। प्रत्येक कल्प (पूर्व) कल्पके समान ही होता है। ब्रह्माका एक दिन एक कल्पके बराबर और रात्रि भी उतनी (अर्थात् एक कल्पके बराबर) ही होती है। विद्वानोने एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा है॥१४-१५॥

त्रीणि कल्पशतानि स्यु तथा षष्टिर्द्विजोत्तमा।
ब्रह्मण कथित वर्षं पराख्य तच्छत विदु॥१६॥
तस्यान्ते सर्वतत्त्वाना स्वहेतौ प्रकृतौ लय।
तेनाय प्रोच्यते सद्भि प्राकृत प्रतिसचर॥१७॥
ब्रह्मनारायणेशाना त्रयाणा प्रकृतौ लय।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भव॥१८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! तीन सो साठ कल्पोका ब्रह्माका एक वर्ष कहा गया है, उसके सौ गुने (अर्थात् ३६०×१००=३६,००० कल्पो या १०० वर्षोंके) कालको 'पर' इस नामसे जानना चाहिये। ('पर' नामक) उस कालके बीतनेपर सभी तत्त्वोका अपने मूल कारण प्रकृतिमें लय हो जाता है। इसीलिये विद्वानोंने इसे प्राकृत प्रतिसञ्चर (प्राकृत प्रलय) कहा है। ब्रह्मा विष्णु एव महेश तीनोका प्रकृतिमे लय हो जाता है। पुन कालयोगसे उनका आविर्भाव होना कहा जाता है॥१६—१८॥

एव ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शकर।
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुन॥१९॥
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमर।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मासौ महेश्वर॥२०॥

इस प्रकार ब्रह्मा जीव, वासुदेव तथा शकरकी कालके द्वारा ही सर्जना होती है, पुन वही काल इनका सहार भी करता है। यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर है, अमर है एव अनादि है। सर्वव्यापी होनेसे स्वतन्त्र होनेसे तथा सबका आत्मस्वरूप होनेसे यह महेश्वर कहलाता है॥१९-२०॥

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादय।
एको हि भगवानीश काल कविरिति श्रुति॥२१॥

ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत होते हैं किंतु भगवान् एक ही है जो ईश काल तथा कवि कहलाता है—ऐसा वेदका अभिमत है॥ २१॥

एकमत्र व्यतीत तु परार्धं ब्रह्मणो द्विजा।
साम्प्रतं वर्तते तद्वत् तस्य कल्पोऽयमष्टम॥२२॥
योऽतीत सप्तम कल्प पाद्म इत्युच्यते बुधै।
वाराहो वर्तते कल्प तस्य वक्ष्यामि विस्तरम्॥२३॥

ब्राह्मणो! इस समय ब्रह्माजीका एक परार्ध बीत चुका है, अब उनका दूसरा परार्ध चल रहा है, उस (द्वितीय परार्ध)-का यह आठवाँ कल्प चल रहा है। ब्रह्माजीका जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो चुका है, विद्वानोंद्वारा वह 'पाद्म' (कल्प) कहा गया है। वर्तमानमें वाराह कल्प चल रहा है इसके विस्तारका मैं वर्णन करूँगा॥ २२-२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चमोऽध्याय॥५॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥५॥

छठा अध्याय

'नारायण' नामका निर्वचन, वराहरूपधारी नारायणद्वारा पृथ्वीका उद्धार, सनकादि ऋषियोद्वारा वराहकी स्तुति

श्रीकूर्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्।
शान्तवातादिकं सर्वं न प्रज्ञायत किञ्चन॥१॥
एकार्णवे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे।
तदा समभवद् ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात्॥२॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रिय।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥३॥

श्रीकूर्मने कहा—(सृष्टिके पूर्व) केवल एकमात्र समुद्र ही था अर्थात् सर्वत्र जल-ही-जल था और कुछ नहीं। कोई विभाग नहीं था, घोर अन्धकारमय था। उस समय वायु आदि सभी शान्त थे। कुछ भी जाना नहीं जाता था। स्थावर तथा जगम (सम्पूर्ण सृष्टि)-के उस एकार्णवमे नष्ट हो जानेपर (विलीन हो जानेपर) उस समय हजार नेत्रों तथा हजार चरणोवाले ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। हजार सिरवाले, सोनेके समान वर्णवाले, अतीन्द्रिय ब्रह्मा जो नारायण नामवाले पुरुष कहलाते हैं उस समय जलमे (एकार्णवमे) सोये हुए थे॥ १—३॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणम्प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगत प्रभवाप्ययम्॥४॥

सम्पूर्ण ससारके सृष्टि एव विनाशके कारण ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमे यह श्लोक कहा जाता है— ॥ ४॥

आपो नारा इति प्रोक्ता नाम्ना पूर्वमिति श्रुति।
अयन तस्य ता यस्मात् तेन नारायण स्मृत॥५॥
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य स।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्॥६॥
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम्।
अनुमानात् तदुद्धारं कर्तुकाम प्रजापति॥७॥

वेदमे 'अप्' अर्थात् 'जल' को 'नार' इस नामसे पहले कहा गया है और वह नार (जल) नरका अयन अर्थात् आश्रय-स्थान है, इस कारण वे 'नारायण' कहे जाते हैं। हजार युगोके बराबर रात्रिका उपभोग करके वे नारायण (उस प्रलयकालीन) रात्रिके बीत जानेपर सृष्टि करनेके लिये ब्रह्मत्व ग्रहण करते हैं। तदनन्तर उस जल (एकार्णव)-मे प्रलीन पृथ्वीको अनुमानद्वारा जानकर प्रजापतिने उसके उद्धारकी कामना की॥ ५—७॥

जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थित।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसञ्ज्ञितम्॥८॥
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम्।
दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधर॥९॥
दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथिवीं प्रथितपौरुषम्।
अस्तुवञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम्॥१०॥

जलमे क्रीडा करते समय (वे) अत्यन्त सुन्दर वराहरूपमें अवस्थित हो गये। (भगवान्‌का वह स्वरूप) अन्य लोगोंके द्वारा मनसे भी न जाना जा सकने योग्य वाक्स्वरूप तथा ब्रह्मसंज्ञक है। धराको धारण करनेवाले (उन) धराधर एव

आत्माधारने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमे प्रवेश करके अपनी दाढ (दंष्ट्रा)-द्वारा इसे (रसातलमें डूबी पृथ्वीको) ऊपर निकाला। (नारायणकी) दंष्ट्राके अग्रभागमे अवस्थित पृथ्वीको देखकर जनलोकमें रहनेवाले सिद्धा तथा ब्रह्मर्षियोने अपने पौरुषको व्यक्त करनेवाले हरिकी (इस प्रकार) स्तुति की॥ ८—१०॥

ऋषय ऊचु

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च॥ ११॥
नम स्वयम्भुवे तुभ्य स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने॥ १२॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवाना हितकारिणे॥ १३॥
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र शार्ङ्गचक्रासिधारिणे।
सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमो नम ॥ १४॥

ऋषि बोले—देवाधिदेव, पुराणपुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मको नमस्कार है। सृष्टि करनेवाले तथा सभी अर्थोके ज्ञाता स्वयम्भू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा परमात्माको नमस्कार है। विश्वके उत्पत्ति-स्थान, देवोके हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णुको नमस्कार है। शार्ङ्ग (धनुष), चक्र (सुदर्शन) तथा तलवार (नन्दक) अदि धारण करनेवाले चतुर्मुख! आपको नमस्कार है। सभी प्राणियोंके आत्मरूप कूटस्थको बार-बार नमस्कार है॥ ११—१४॥

नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥ १५॥
नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगता नम।
अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय करणाय च॥ १६॥
नमस्ते पञ्चभृताय पञ्चभूतात्मने नम।
नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नम॥ १७॥

वेदके रहस्यरूपको नमस्कार है। वेद-योनिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्धको नमस्कार है। ज्ञानरूपको नमस्कार है। आनन्दस्वरूपको नमस्कार है। जगत्के साक्षी अनन्त, अप्रमेय तथा कार्य एव कारणरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतात्मा (पञ्चभूतके अधिष्ठान आत्मा)-को नमस्कार है, मूलप्रकृतिको नमस्कार है। मायारूप आपको नमस्कार है॥ १५—१७॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे।
नमो योगाधिगम्याय नम सकर्षणाय ते॥ १८॥
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे।
नम सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभाविने॥ १९॥
नमोऽस्त्वादित्यवर्णाय नमस्ते पद्मयोनये।
नमोऽमूर्ताय मूर्ताय माधवाय नमो नम॥ २०॥

हे वराह! आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारण करनेवालेको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्यको नमस्कार है। सकर्षण! आपको नमस्कार है। तीन मूर्तियो एव तीन धामो (स्थानो)-वाले दिव्य तेज स्वरूप आपको नमस्कार है। तीन गुणोको प्रवृत्त करनेवाले सिद्ध एव पूज्य आपको नमस्कार है। आदित्यके समान वर्णवाले अर्थात् प्रकाशस्वरूप आपको नमस्कार है। पद्मयोनिको नमस्कार है। मूर्त एव अमूर्तरूपको नमस्कार है। माधवको बारम्बार नमस्कार है॥ १८—२०॥

त्वयैव सृष्टमखिल त्वय्येव लयमेष्यति।
पालयैतज्जगत् सर्वं त्राता त्व शरण गति॥ २१॥

आपके द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि हुई है और आपमे ही (वह) विलीन भी हो जायगी। इस सम्पूर्ण जगत्का आप पालन करे। आप ही रक्षक हैं, आप ही शरण देनेवाल आश्रय-स्थान हैं॥ २१॥

इत्थ स भगवान् विष्णु सनकाद्यैरभिष्टुत।
प्रसादमकरोत् तेषा वराहवपुरीश्वर॥ २२॥
तत सस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीपति।
मुमोच रूप मनसा धारयित्वा प्रजापति॥ २३॥

सनक आदि (महर्षियों)-के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वराह-शरीर धारण करनेवाले सर्वसमर्थ उन भगवान् विष्णुने उनपर कृपा की। इसके बाद पृथ्वीके स्वामी प्रजापतिने पृथ्वीको उसके स्थानमे प्रतिष्ठित कर दिया और मनसे उसको धारण करके अपने (वराह)-रूपको छोड दिया॥ २२-२३॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति सम्प्लवम्॥ २४॥

पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन्।
प्राक्सर्गदग्धानखिलास्ततः सर्गेऽदधन्मनः ॥ २५॥

उस महान् जलराशिके ऊपर विशाल नौकाके समान स्थित पृथ्वी अपने देहके विस्तारके कारण डूबती नहीं है। तदनन्तर पृथ्वीको समतल बनाकर उन्होंने पहली सृष्टिके दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथ्वीपर स्थापित किया और सृष्टि (करने)-में अपना मन लगाया॥ २४-२५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छठा अध्याय समाप्त हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

नौ प्रकारकी सृष्टि, ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंका आविर्भाव, ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चारों वेदोंकी उत्पत्ति इत्यादिका वर्णन

श्रीकूर्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ २॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
संवृतस्तमसा चैव बीजकम्भुवनावृतः ॥ ३॥

श्रीकूर्म बोले—उनके (ब्रह्माके) द्वारा सृष्टिके विषयमें सोचते रहनेपर अबुद्धिपूर्वक अन्धकाररूप वैसी ही सृष्टि हुई जैसी कि पूर्वके कल्पोंमें हुई थी। उन महात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्ध नामवाली यह पञ्चपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई। उस अभिमानी (देव)-के द्वारा ध्यान करते समय अन्धकारसे ढकी हुई बीज-सदृश तथा लोकोंसे आवृत वह सृष्टि पाँच भागोंमें विभाजित होकर स्थित हुई॥ १—३॥

बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च।
मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ४॥
तं दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ॥ ५॥
यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६॥

बाहर एवं भीतरके प्रकाश (ज्ञान)-से शून्य स्तब्ध (जड) तथा संज्ञा (चेतना)-विहीन नग (अर्थात् पर्वत वृक्ष आदि) 'मुख्य' इस नामसे कहे जाते हैं और वही मुख्य सर्ग (मुख्य सृष्टि) कहलाता है। प्रभुने उस (मुख्य सर्ग)-को (सृष्टिके विस्तारमें) साधक (समर्थ) न देखकर दूसरी सृष्टिके लिये विचार किया। उनके ऐसा विचार करते ही '*तिर्यक्स्रोत*' नामक (पशु-पक्षियों आदिकी) सृष्टि हुई। हे ब्राह्मणो! क्योंकि वह सृष्टि तिर्यक् (तिरछी) चलनेवाली थी, इसलिये तिर्यक्स्रोत सृष्टि कहलाती है। वे (मार्गका उल्लंघन करनेवाले) पशु आदि उत्पथग्राही कहे जाते हैं॥ ४—६॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह।
ऊर्ध्वस्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥ ७॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद् देवसंज्ञिताः ॥ ८॥

उस तिर्यक्स्रोत नामक सृष्टिको भी (सृष्टि-विस्तारके लिये) निष्प्रयोजन जानकर (उन देवने) अन्य सर्गको उत्पन्न किया। वह (सर्ग) ऊर्ध्वस्रोत सात्त्विक सर्ग 'देवसर्ग' नामसे कहा गया। इस देवसर्गके लोगोंमें सुख और प्रीतिकी अधिकता रहती है। वे अंदर तथा बाहर आवरणसे रहित होते हैं तथा स्वभावसे ही अंदर-बाहर प्रकाशसे परिपूर्ण रहते हैं, इसलिये वे देव कहलाते हैं॥ ७-८॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुरासीत् तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ ९॥
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्तिताः ॥ १०॥

तदनन्तर निरन्तर सत्यका ध्यान करनवाले उन देवके चिन्तन करनेपर उसी समय अव्यक्त (प्रकृति)-से (सृष्टि-विस्तारका) साधक अर्वाक्स्रोतवाला साधक (सर्ग) उत्पन्न हुआ। व (अर्वाक्स्रोत प्राणी) प्रकाश (ज्ञान)-के बाहुल्यवाल तमोगुण तथा रजोगुणकी अधिकतावाले, अधिक दु खवाले और सत्वगुणसे सम्पन्न मनुष्य नामसे कहे जाते हैं॥ ९-१०॥

त दृष्ट्वा चापर सर्गममन्यद् भगवानज ।
तस्याभिध्यायत सर्ग सर्गो भूतादिकोऽभवत्॥ ११॥
तेऽपरिग्राहिण सर्वे सविभागरता पुन ।
खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्या परिकीर्तिता ।
इत्येते पञ्च कथिता सर्गा वै द्विजपुगवा ॥ १२॥

उस (मानुप-सर्ग)-को देखकर अजन्मा भगवान्ने अन्य सर्गकी रचनाका विचार किया और उनके एसे सर्ग-विपयक ध्यान करते ही भूतादि सर्ग उत्पन्न हुआ। व सभी सग्रह न करनेवाले, फिर भी बाँटनेके स्वभाववाले, उपभोग करनवाले तथा शीलरहित 'भूतादि' इस नामसे कहे गये हैं। ब्राह्मण-श्रेष्ठो! इस प्रकार य पाँच सर्ग कहे गये हैं॥ ११-१२॥

प्रथमो महत सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु स ।
तन्मात्राणा द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृत ॥ १३॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियक स्मृत ।
इत्येष प्राकृत सर्ग सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वक ॥ १४॥
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावरा स्मृता ।
तिर्यक्स्रोतस्तु य प्रोक्तस्तिर्यग्यान्य स पञ्चम ॥ १५॥
तथोर्ध्वस्रोतसा षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृत ।
ततोऽर्वाक्स्रोतसा सर्ग सप्तम स तु मानुप ॥ १६॥
अष्टमो भौतिक सर्गो भूतादीना प्रकीर्तित ।
नवमश्चैव कौमार प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥ १७॥

ब्रह्माका वह पहला सर्ग महत्सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओंका दूसरा सर्ग भूतसर्ग कहलाता है। तासरा वैकारिक सर्ग ऐन्द्रियक सर्ग कहा जाता हे। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक हुआ। चौथा सर्ग मुख्य सर्ग हे। स्थावर (जड पदार्थ) मुख्य कहलाते हैं। तिर्यक्स्रोतस जिस सर्गको बतलाया है वह तिर्यग्यानिवाला पाँचवाँ सर्ग है। तदनन्तर ऊर्ध्वस्रोतसाका छठा सग है जो दवसर्ग कहलाता है। तदनन्तर अर्वाक्स्रातसाका सातवाँ सर्ग है जो मानुप सर्ग है। भूतादिकोका आठवाँ सर्ग भौतिक सर्ग कहा गया है। नवाँ सर्ग कामार सर्ग है। इस प्रकार ये नवा सर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोना प्रकारके हैं॥ १३—१७॥

प्राकृतास्तु त्रय पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वका ।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्त मुख्याद्या मुनिपुगवा ॥ १८॥

मुनिश्रेष्ठो! पहलक तीन सर्ग (महत्सर्ग, भूतसर्ग तथा ऐन्द्रियक सर्ग) प्राकृत सर्ग हैं, जो अबुद्धिपूर्वक होते हैं। और मुख्य आदि सग (अवशिष्ट ६ सर्ग) बुद्धिपूर्वक होते हैं॥ १८॥

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मन समान्।
सनक सनातन चैव तथैव च सनन्दनम्।
ऋभु सनत्कुमार च पूर्वमेव प्रजापति ॥ १९॥
पञ्चैते योगिनो विप्रा पर वैराग्यमास्थिता ।
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम्॥ २०॥

प्रजापति ब्रह्माजीने सबसे पहले अपने ही समान सनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु तथा सनत्कुमार नामक मानस पुत्राको उत्पन्न किया। हे ब्राह्मणो! ये पाँचो योगी थे, परम वैराग्यवान् थे और ईश्वरमे उनका मन आसक्त था। (इसलिये) उन्हाने सृष्टि (के विस्तार)-म अपनी बुद्धि नहीं लगायी॥ १९-२०॥

तेष्वेव निरपेक्षेपु लोकसृष्टौ प्रजापति ।
मुमोह मायया सद्यो मायिन परमेष्ठिन ॥ २१॥
त बोधयामास सुत जगन्मायो महामुनि ।
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जन ॥ २२॥
बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परम तप ।
स तप्यमानो भगवान् न किञ्चित् प्रत्यपद्यत॥ २३॥

लोकसृष्टिके कार्यम उनके इस प्रकार निरपेक्ष (उदासीन) हो जानेपर प्रजापति (ब्रह्मा) मायापति परमेष्ठीकी[१] मायाके द्वारा तत्काल मोहित कर लिये गये। योगियोके चित्तका अनुरञ्जन करनेवाले जगत्कर्ता महायोगी, महामुनि नारायणने (अपने) उस पुत्र (ब्रह्मा)-को प्रबुद्ध किया। (तब) उनके द्वारा प्रबुद्ध किये गये विश्वात्मा (ब्रह्मा)-ने परम तप किया (किंतु) तप करनेपर भी उन भगवान् ब्रह्माका कुछ प्राप्त नहीं हुआ॥ २१—२३॥

१-छठे अध्यायमे ब्रह्मा और नारायणमे अभेद माना गया है, अत यहाँ परमेष्ठी शब्द नारायण का वाचक है।

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥ २४ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेश्वरः ।
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः ॥ २५ ॥
स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः ।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर (प्रयोजन सिद्ध न होनेके कारण उन्हें) दुःखके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधसे आविष्ट उन (ब्रह्मा)-के नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरीं। उनके (क्रोधके कारण) टेढ़ी भृकुटियोंवाले ललाटमें शरण देनेवाले नीललोहित परमेश्वर महादेव प्रकट हुए। वे ही तेजकी राशि सनातन भगवान् ईश हैं, जिन्हें विद्वान् लोग अपनी आत्मामें स्थित परमेश्वर (परमात्मा)-के रूपमें देखते हैं ॥ २४—२६ ॥

ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः ।
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः ॥ २७ ॥

ओंकारका सम्यक् रूपसे स्मरणकर और प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए भगवान् ब्रह्माने उन (महादेव)-से कहा—इन अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करें ॥ २७ ॥

निशम्य भगवान् वाक्यं शंकरो धर्मवाहनः ।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ।
कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान् नीललोहितान् ॥ २८ ॥

धर्म (वृषभ)-पर आरूढ होनेवाले धर्मवाहन मङ्गलकारी भगवान् शिवने (ब्रह्माके) वचनको सुनकर मनसे अपने ही समान जटाधारी, आतंकरहित, तीन नेत्रवाले एवं नीललोहित रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ २८ ॥

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः ।
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः ।
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजाः ॥ २९ ॥

उनसे भगवान् ब्रह्माने कहा—जन्म लेनेवाली और मृत्युको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि करो। वे ईश बोले—हे जगन्नाथ! मैं मृत्यु एवं वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि नहीं करूँगा। ऐसी अशुभ प्रजाओंको आप ही उत्पन्न करें ॥ २९ ॥

निवार्य च तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः ।
स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान् निबोधत ॥ ३० ॥

तब कमलसे उत्पन्न ब्रह्माने (सृष्टि-विस्तारके कार्यमें) रुद्रको रोककर (स्वयं) सभी स्थानाभिमानियोंको उत्पन्न किया, मैं उन्हें बता रहा हूँ (आपलोग) सुनें ॥ ३० ॥

आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा।
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च ॥ ३१ ॥
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः ।
अर्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः ॥ ३२ ॥
स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत् पुनः ।
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं संकल्पमेव च ॥ ३३ ॥

जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, आकाश, वायु और पृथ्वी इसी प्रकार नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन-रात, अर्धमास, मास, अयन, वर्ष तथा युग आदि स्थानाभिमानियोंकी सर्जना कर पुनः सृष्टिके सहायकों—मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म एवं संकल्पको उत्पन्न किया ॥ ३१—३३ ॥

प्राणाद् ब्रह्मासृजद् दक्षं चक्षुषश्च मरीचिनम्।
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद् भृगुमेव च ॥ ३४ ॥
श्रोत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः ।
संकल्पं चैव संकल्पात् सर्वलोकपितामहः ॥ ३५ ॥
पुलस्त्यं च तथोदानाद् व्यानाच्च पुलहं मुनिम्।
अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम् ॥ ३६ ॥

सभी लोकोंके पितामह ब्रह्मदेवने प्राण (वायु)-से दक्षको उत्पन्न किया, इसी प्रकार नेत्रोंसे मरीचि, सिरसे अङ्गिरा, हृदयसे भृगु, कानोंसे अत्रि नामवाले (ऋषि)-को, व्यवसायसे धर्मको और संकल्पसे संकल्पको तथा ऐसे ही उदान (वायु)-से पुलस्त्य, व्यान (वायु)-से पुलह मुनि, अपान (वायु)-से शान्त स्वभाव क्रतु और समान (वायु)-से वसिष्ठको उत्पन्न किया ॥ ३४-३६ ॥

इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः ।
आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः ॥ ३७ ॥
ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ३८ ॥

ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न ये सभी गृहस्थ हैं तथा (सृष्टि-विस्तारके) सहयोगी हैं। मनुष्यका रूप धारणकर इन्होंने

धर्मका प्रवर्तन किया। तदनन्तर देवता, असुर पितर तथा मनुष्य—इन चाराकी तथा जलकी सृष्टि करनकी इच्छास (ब्रह्मान) अपने-आपको नियुक्त किया॥ ३७-३८॥

युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापते ।
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुता ॥३९॥
उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा ता तनु पुरुषोत्तम ।
सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत।
सा तमोबहुला यस्मात् प्रजास्तस्या स्वपन्त्यत ॥४०॥

सयुक्त आत्मरूपवाले प्रजापतिसे तमोगुणकी मात्राका उद्रेक हुआ। तदनन्तर उनकी जघासे पहले (तमोगुणी) असुर (योनिके) पुत्र उत्पन्न हुए। असुराकी सृष्टिकर पुरुषोत्तमने उस (तमोमय) शरीरका परित्याग कर दिया। उनके द्वारा छोडा गया वह शरीर शीघ्र ही रात्रिके रूपम परिवर्तित हो गया। वह (रात्रि) चूँकि अन्धकारकी अधिकतावाली रहती है अत उसमे (रात्रिम) प्रजाएँ सोती हैं॥ ३९-४०॥

सत्त्वमात्रात्मिका देवस्तनुमन्यामगृह्णत।
ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यत सम्प्रजज्ञिरे॥४१॥
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद् दिनम्।
तस्मादहो धर्मयुक्ता देवता समुपासते॥४२॥

(पुन) देवने सत्त्वगुणात्मक दूसरे शरीरको धारण किया और तब उनके मुखसे दीप्तिमान् दवता प्रादुर्भूत हुए। उन्होने (प्रजापतिने) वह शरीर भी छाड दिया। वह सत्त्वगुणकी अधिकतावाला शरीर दिन हुआ। धर्मात्मा देवता इसीलिये दिनका सेवन करते हैं॥ ४१-४२॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्या जगृहे तनुम्।
पितृवन्मन्यमानस्य पितर सम्प्रजज्ञिरे॥४३॥
उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वसृक्।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्य सध्या व्यजायत॥४४॥

पुन (उन्हाने) सत्त्वगुणात्मक ही एक दूसर शरीरको धारण किया। पिताके समान माननेवाले उनक द्वारा पितर उत्पन्न हुए। विश्वकी रचना करनेवाले उन्होने (ब्रह्माने) पितराकी सृष्टिकर उस शरीरका भी छाड दिया। वह छोडा गया शरीर शीघ्र ही सध्याक रूपम बदल गया॥ ४३-४४॥

तस्मादहर्देवताना रात्रि स्याद् देवविद्विषाम्।
तयोर्मध्य पितृणा तु मूर्ति सध्या गरीयसी॥४५॥
तस्माद् देवासुरा सर्वे मनवो मानवास्तथा।
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमा तनुम्॥४६॥

इसीलिये देवताआके लिये दिन, देवविद्वेषी असुरोके लिये रात तथा दिन और रातके मध्यकी सध्या जो पितराकी मूर्तिरूप है, वह प्रशस्त है। इसीलिये देवता असुर, (स्वायम्भुव आदि) सभी मनु तथा सभी मनुष्य दिन और रातके मध्यमे सदा स्थित रहनेवाले (सध्यारूपी) शरीर (मूर्ति)-की उपासना करते हैं॥ ४५-४६॥

रजोमात्रात्मिका ब्रह्मा तनुमन्यामगृह्णत।
ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृता ॥४७॥

(तब) ब्रह्माने रजोगुणकी अधिकतावाले अन्य शरीरको धारण किया, जिससे रजोगुणसे आवृत उनके पुत्र उत्पन्न हुए, जो मनुष्य कहलाये॥ ४७॥

तामप्याशु स तत्याज तनु सद्य प्रजापति ।
ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्रा प्राक्सध्या याभिधीयते॥ ४८॥

ब्राह्मणो! उन प्रजापतिने शीघ्र ही उस (रजोगुणात्मक) शरारको भी छोड दिया। वह (छोडा गया शरीर) ज्योत्स्नाके रूपम हो गया जिसे प्राक्सध्या कहा जाता है॥ ४८॥

तत स भगवान् ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुगवा ।
मूर्ति तमोरज प्राया पुनरेवाभ्ययूयुजत्॥४९॥
अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे।
पुत्रास्तमोरज प्राया बलिनस्ते निशाचरा ॥५०॥
सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वा सम्प्रजज्ञिरे।
रजस्तमोभ्यामाविष्टास्ततोऽन्यानसृजत् प्रभु ॥५१॥

हे ब्राह्मणो! भगवान् ब्रह्मा फिर तम तथा रजोमयी मूर्ति (शरीर)-को धारण कर पुन यागयुक्त हुए। इस शरीरसे अन्धकारमे भूखसे व्याकुल होनेवाले राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए। तमागुण तथा रजागुणकी अधिकतावाले वे महान् बलशाली पुत्र निशाचर कहलाये। एसे ही सर्प यक्ष भूत तथा गन्धर्व उत्पन्न हुए। तदनन्तर रजोगुण तथा तमोगुणस आविष्ट अन्य प्राणियाका भी प्रभुन उत्पन्न किया॥ ४९—५१॥

वयांसि वयस सृष्ट्वा अवयो वक्षसोऽसृजत्।
मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद् गाश्च निर्ममे॥५२॥

पद्भ्यां चाश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्याश्च जातयः।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥ ५३॥

वय (अवस्था)-से पक्षियोंकी सृष्टि करनेके अनन्तर (ब्रह्माने) वक्षःस्थलसे भेड़ोंको उत्पन्न किया। मुखसे बकरोंको उत्पन्न किया और उदर-देशसे गौओंकी सृष्टि की। पैरोंसे हाथियोंसहित घोड़ों, गदहों, गायके समान ही दूसरे प्रकारकी गायों (नीलगाय आदि), मृगों, ऊँटों, खच्चरों, न्यङ्कुओं (मृग-विशेष) तथा अन्य (तिर्यक् आदि) योनियोंको उत्पन्न किया। फल-मूलवाली ओषधियाँ उनके रोमोंसे पैदा हुईं॥ ५२-५३॥

गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम्।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥ ५४॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥ ५५॥
सामानि जागतं छन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥ ५६॥
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥ ५७॥

(ब्रह्माजीने अपने) प्रथम (पूर्व) मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्साम, रथन्तर (साम) और यज्ञोंमें अग्निष्टोम (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया। दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) बृहत्साम तथा उक्थ (नामक वेदमन्त्रों)-का सृजन किया। पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) और वैरूप तथा अतिरात्र नामक यज्ञोंको उत्पन्न किया। उत्तर-मुखसे इक्कीस शाखाओंवाले अथर्ववेद, अनुष्टुप् छन्द और आप्तोर्याम तथा वैराज (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया॥ ५४-५७॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः॥ ५८॥
सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम्।
ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ५९॥

प्रजापति ब्रह्माके द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि करते समय उनके शरीरसे उच्च एवं निम्न (कोटिके अन्य भी) प्राणियोंकी सृष्टि हुई। देवता, ऋषि, पितर तथा मनुष्य—इन चार प्रकारकी सृष्टि करके (ब्रह्माने) चर तथा अचर (सभी) प्राणियोंकी सृष्टि की॥ ५८-५९॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः।
नरकिंनररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान्।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम्॥ ६०॥
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टौ प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥ ६१॥

यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों तथा शुभ अप्सराओं, नरों, किंनरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, मृगों तथा सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य एवं अनित्य-भेदसे चर एवं अचर सृष्टि दो प्रकारकी है। पहलेकी सृष्टियोंमें उन (प्राणियों)-के जो-जो कर्म निश्चित थे अगली सृष्टियोंमें भी उत्पन्न होकर वे बार-बार उन्हीं कर्मोंको प्राप्त करते हैं॥ ६०-६१॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते॥ ६२॥

इसीलिये उसी प्रकारकी भावना (संस्कार)-से प्रेरित होकर (वे प्राणी) हिंसक, अहिंसक कोमल, क्रूर धर्म-अधर्म तथा सत्य एवं असत्यकी प्रवृत्तियाँ प्राप्त करते हैं और वही (कर्म) उन्हें रुचिकर भी लगता है॥ ६२॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु।
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम्॥ ६३॥
नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥ ६४॥
आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥ ६५॥

विधाताने स्वयं ही प्राणियोंकी इन्द्रियोंके विषयों महाभूतों एवं मूर्तियोंमें भिन्नता और विनियोगकी व्यवस्था की है। उन महेश्वरने प्रारम्भमें वेदके शब्दोंसे ही प्राणियोंके नाम और रूप तथा कर्मोंका त्रिविधताका निर्माण किया। वेदोंमें जिन सिद्धान्तों और आर्ष नामोंका प्रतिपादन हुआ है उन्हीं नामोंको ब्रह्मा (प्रलयकालीन) रात्रिके अन्तमें उत्पन्न पदार्थोंको प्रदान करते हैं॥ ६३—६५॥

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ ६६॥

प्रलयकालसे पूर्व जो ऋतुएँ और ऋतुओके चिह्न तथा अनेक प्रकारके रूप (आकार) दिखलायी देते थे, अगले युगामे वे उन्हीं-उन्हीं (नाम-रूपो तथा) भावोमे प्रकट होकर दिखलायी देते हैं॥ ६६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

सृष्टि-वर्णनमे ब्रह्माजीसे मनु और शतरूपाका प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओका वर्णन तथा उनका विवाह, धर्म तथा अधर्मकी संतानोका विवरण

श्रीकूर्म उवाच

एव भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च।
यदा चास्य प्रजा सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमत ॥१॥
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दु खित।
तत स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥ २॥

श्रीकूर्मने कहा—इस प्रकार स्थावर तथा जङ्गम प्राणियाकी सृष्टि हुई, किंतु जब उन बुद्धिमान् (ब्रह्मा)-द्वारा उत्पन्न की गयी प्रजाओम वृद्धि नहीं हुई, तब तमोगुणकी अधिकतासे आवृत ब्रह्मा दु खी होकर चिन्ता करने लगे और फिर उन्होने अर्थका निश्चय करनेवाली बुद्धिको ग्रहण किया॥ १-२॥

अथात्मनि समद्राक्षीत् तमोमात्रा नियामिकाम्।
रज सत्त्व च संवृत्य वर्तमाना स्वधर्मत ॥३॥
तमस्तद् व्यनुदत् पश्चात् रज सत्त्वेन संयुत।
तत् तम प्रतिनुन्न वै मिथुन समजायत॥४॥

तदनन्तर उन्होने स्वधर्मानुसार रजोगुण एव सत्त्वगुणको आवृत कर स्थित रहनेवाली तथा (कर्मकी) नियामिका (तमोवृत्ति)-को अपनी आत्मामे देखा। तत्पश्चात् सत्त्वगुणसे संयुक्त रजोगुणने उस तमोगुणको दूर किया और दूर हुआ वह तम दो भागाम विभक्त हो गया॥ ३-४॥

अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा।
स्वा तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥५॥

हे ब्राह्मणो! (इस प्रकार दो भागोंम विभक्त हुए तमसे) अधर्माचरण और अशुभ लक्षणावाली हिंसा उत्पन्न हुइ। तब ब्रह्माजीने अपने उस प्रकाशमान शरीरको छोड दिया॥ ५॥

द्विधाकरोत् पुनर्देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभु ॥६॥

पुन (पुरातन) पुरुष प्रभुने अपने शरीरको दो भागोम बाँटा। आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे नारी। तत्पश्चात् (उन्होने) विराट् पुरुषको उत्पन्न किया॥ ६॥

नारीं च शतरूपाख्या योगिनीं ससृजे शुभाम्।
सा दिव पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता॥७॥

उन्होने 'शतरूपा' नामवाली कल्याणमयी योगिनी नारीको बनाया, वह पृथिवी लोक तथा द्युलोकको अपनी महिमासे व्याप्तकर प्रतिष्ठित हुई॥ ७॥

योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता।
योऽभवत् पुरुषात् पुत्रो विराडव्यक्तजन्मन ॥ ८ ॥
स्वायम्भुवो मनुर्देव सोऽभवत् पुरुषो मुनि।
सा देवी शतरूपाख्या तप कृत्वा सुदुश्चरम्॥ ९ ॥
भर्तार ब्रह्मण पुत्र मनुमेवान्वपद्यत।
तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत॥१०॥

(वह शतरूपा नामवाली नारी) योगके ऐश्वर्य एव बलसे सम्पन्न तथा ज्ञान-विज्ञानसे युक्त थी। (और) जो पुरुषसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माका विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ वह देवपुरुष मुनि स्वायम्भुव मनुके रूपमे प्रसिद्ध हुआ। शतरूपा नामवाली उस देवीने अत्यन्त कठोर तप करके ब्रह्माजीके पुत्र (स्वायम्भुव) मनुको ही (अपना) पति बनाया और शतरूपाने उनसे (मनुसे) दो पुत्र उत्पन्न

किया॥ ८-१०॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम्।
तयो प्रसूति दक्षाय मनु कन्या ददौ पुन ॥११॥
प्रजापतिरथाकूति मानसो जगृहे रुचि।
आकूत्या मिथुन जज्ञे मानसस्य रुचे शुभम्।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्या सवर्धित जगत्॥१२॥

(वे ही) प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। (इनके अतिरिक्त) दो श्रेष्ठ कन्याएँ भी हुईं। उन दो कन्याओंमेसे स्वायम्भुव मनुने प्रसूति नामक एक कन्या दक्ष प्रजापतिको प्रदान की। आकूति नामक दूसरी कन्याको (ब्रह्माजीके) मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने ग्रहण किया। मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने आकूतिसे दो सताने प्राप्त कीं—यज्ञ और दक्षिणा, जिनसे ससार वृद्धिको प्राप्त हुआ॥ ११-१२॥

यज्ञस्य दक्षिणाया तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे॥१३॥
प्रसूत्या च तथा दक्षश्चतस्रो विशति तथा।
ससर्ज कन्या नामानि तासा सम्यक् निबोधत॥१४॥
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्ति सिद्धि कीर्तिस्त्रयोदशी॥१५॥

यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो स्वायम्भुव मन्वन्तरमे 'याम' इस नामसे प्रसिद्ध देवता हुए और दक्ष प्रजापतिने प्रसूतिसे चौबीस कन्याओको उत्पन्न किया उनके नामोको भलीभाँति सुनो—(वे हैं—) श्रद्धा लक्ष्मी धृति तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति सिद्धि तथा तेरहवीं कन्याका नाम है कीर्ति॥ १३—१५॥

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणी शुभा।
ताभ्य शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचना॥१६॥
ख्याति सत्यथ सम्भूति स्मृति प्रीति क्षमा तथा।
सततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥१७॥

दक्ष प्रजापतिकी इन (तेरह दाक्षायणी) मङ्गलमयी कन्याओको धर्मने पत्नीरूपमे ग्रहण किया। उन (तेरह कन्याओ)-के अतिरिक्त इनसे सुन्दर आँखोवाली दक्षकी ग्यारह अवस्थामें छोटी कन्याएँ और थीं (जिनके नाम हैं—) ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सतति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा॥ १६-१७॥

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनि।
पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रतु परमधर्मवित्॥१८॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहु कन्या मुनयो मुनिसत्तमा॥१९॥

श्रेष्ठ मुनियो! ख्याति, सती आदि जो (ग्यारह) कन्याएँ थीं, उन्हे क्रमश भृगु, मरीचि अङ्गिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, परम धर्मज्ञ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ नामक मुनियों, अग्निदेव और पितराने ग्रहण किया॥ १८-१९॥

श्रद्धया आत्मज कामो दर्पो लक्ष्मीसुत स्मृत।
धृत्यास्तु नियम पुत्रस्तुष्ट्या सतोष उच्यते॥२०॥

श्रद्धाका पुत्र 'काम' तथा लक्ष्मीका पुत्र 'दर्प' नामसे कहा जाता है। धृतिका 'नियम' नामक पुत्र तथा तुष्टिका (पुत्र) 'सतोष' कहलाता है॥ २०॥

पुष्ट्या लाभ सुतश्चापि मेधापुत्र श्रुतस्तथा।
क्रियायाश्चाभवत् पुत्रो दण्ड समय एव च॥२१॥
बुद्ध्या बोध सुतस्तद्वदप्रमादो व्यजायत।
लज्जाया विनय पुत्रो वपुषा व्यवसायक ॥२२॥
क्षेम शान्तिसुतश्चापि सुख सिद्धिरजायत।
यश कीर्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनव ॥२३॥
कामस्य हर्ष पुत्रोऽभूद् देवानन्दो व्यजायत।
इत्येष वै सुखोदर्क सर्गो धर्मस्य कीर्तित ॥२४॥

पुष्टिका पुत्र 'लाभ' और मेधाका पुत्र 'श्रुत' हुआ। क्रियाका पुत्र 'दण्ड' हुआ और वही 'समय' भी कहलाता है। बुद्धिसे 'बोध' नामक पुत्र और उसी प्रकार 'अप्रमाद' नामक पुत्र भी हुआ। लज्जाका 'विनय' नामक पुत्र और वपुका 'व्यवसायक' हुआ। 'क्षेम' शान्तिका पुत्र और 'सुख' सिद्धिका पुत्र हुआ। इसी प्रकार कीर्तिका 'यश' नामक पुत्र हुआ। ये सभी धर्मके पुत्र हुए। कामका 'हर्ष' नामक पुत्र हुआ जो देवताओको आनन्द देनेवाला हुआ। यही (इतनी) धर्मकी सुखदायक सृष्टि कहलाती है॥ २१—२४॥

जज्ञे हिंसा त्वधर्माद् निकृति चानृत सुतम्।
निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नारक एव च॥२५॥

माया च वेदना चैव मिथुन त्विदमेतयो ।
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्यु भूतापहारिणम्॥ २६॥
वेदना च सुत चापि दु ख जज्ञेऽथ रौरवात्।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे॥ २७॥

अधर्मसे हिसाने निकृति तथा अनृत नामक पुत्रको उत्पन्न किया। निकृति और अनृतसे भय तथा नरक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। माया तथा वेदना—ये दो इनकी क्रमश भय एव नरककी पत्नियाँ हैं। मायाने भयसे समस्त प्राणियोको मार देनेवाले मृत्युको उत्पन्न किया। वेदनाने भी रौरव (नरक नामक पति)-से दु ख नामक पुत्र उत्पन्न किया। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा तथा क्रोध उत्पन्न हुए॥ २५—२७॥

दु खोत्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणा ।
नैषा भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतस ॥ २८॥

ये सभी उत्तरोत्तर अधिक दु खदायी कहे गये हैं और अधर्माचरण ही इनका लक्षण है। इनकी न कोई स्त्री है और न कोइ पुत्र। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं॥ २८॥

इत्येष तामस सर्गो जज्ञे धर्मनियामक ।
सक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुगवा ॥ २९॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार धर्मनियामकने तामस सर्गकी सृष्टि की। मैंने सक्षेपमें इस विशिष्ट सृष्टिका वर्णन किया॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागेऽष्टमोऽध्याय ॥ ८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

शेषशायी नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति तथा उसी कमलसे ब्रह्माका प्राकट्य, विष्णु-मायाद्वारा ब्रह्माका मोहित होकर विष्णुसे विवाद करना, भगवान् शकरका प्राकट्य, विष्णुद्वारा ब्रह्माको शिवका माहात्म्य बताना, ब्रह्माद्वारा शिवकी स्तुति तथा शिव और विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचन नारदाद्या महर्षय ।
प्रणम्य वरद विष्णु पप्रच्छु सशयान्विता ॥ १॥

सूतजी बोले—नारद आदि महर्षियोने यह वचन सुननेपर सशयग्रस्त होते हुए वरदाता विष्णुको प्रणामकर इस प्रकार पूछा—॥ १॥

ऋषय ऊचु

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीना जनार्दन।
इदानीं सशय चेममस्माक छेत्तुमर्हसि॥ २॥
कथ स भगवानीश पूर्वजोऽपि पिनाकधृक्।
पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ॥ ३॥
कथ च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामह ।
अण्डजो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

ऋषियोंने कहा—हे जनार्दन! आपने मुख्य आदिकी सृष्टिका वर्णन किया। अब इस समय जो सशय हमें हो रहा है, उसे आप दूर करें—(ब्रह्मासे) पूर्वमें उत्पन्न होनेपर भी पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले ईश भगवान् शिव किस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पुत्रत्वको प्राप्त हुए और कैसे जगत्के स्वामी लोकपितामह अण्डज (हिरण्यगर्भ) भगवान् ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उसे आप हमें बतलाये॥ २—४॥

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे शकरस्यामितौजस ।
पुत्रत्व ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च॥ ५॥

श्रीकूर्म बोले—ऋषियो! आप सभी सुनें—अमित तेजस्वी शकर ब्रह्माके पुत्र-रूपमे कैसे हुए और कैसे ब्रह्मा कमलसे उत्पन्न हुए॥ ५॥

अतीतकल्पावसाने तमोभूत जगत् त्रयम्।
आसीदेकार्णव सर्वं न देवाद्या न चर्षय ॥ ६॥

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे।
आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः ॥७॥

विगत कल्पकी समाप्तिपर तीनों लोकोंमें घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। सर्वत्र केवल जल-ही-जल था। न कोई देवता आदि थे और न कोई ऋषिजन। उस जनशून्य अत्यन्त शान्त (समुद्रमें) पुरुषोत्तम नारायणदेव शेषनागकी शय्याका आश्रय लेकर सोये हुए थे॥ ६-७॥

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥ ८ ॥
पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसंनिभः ।
महाविभूतिर्योगात्मा योगिनां हृदयालयः ॥ ९ ॥
कदाचित् तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम्।
त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्बभौ॥१०॥
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसंनिभम्।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥११॥

हजारों सिर, हजारों नेत्र, हजारों चरण, हजारों बाहुवाले होकर वे विद्वानोंके चिन्तनके विषयरूप, सर्वज्ञ पीतवस्त्रधारी विशाल नेत्रवाले नील बादलके समान वर्णवाले महाविभूतिस्वरूप योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाले योगात्मा (नारायण) जब किसी समय शेषशय्यापर शयन कर रहे थे तब उनकी नाभिसे लीला करनेके लिये दिव्य अद्भुत, तीनों लोकोंका साररूप, एक स्वच्छ कमल प्रकट हुआ। (वह कमल) सौ योजन विस्तारवाला, तरुण आदित्यके समान प्रकाशमान पुण्यमय दिव्य गन्धसे सम्पन्न और कर्णिकाएँ तथा केसरसे समन्वित था॥८—११॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः ।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे॥१२॥
स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम्।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः॥१३॥

शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले शार्ङ्गधन्वा (नारायण) इसी रूपमें बहुत समयसे निवास कर रहे थे तभी एक समय भगवान् हिरण्यगर्भ उस स्थानपर गये। उनकी मायासे मुग्ध उन विश्वात्माने उन (सुप्त) सनातन (पुरुष)-को हाथसे उठाकर यह मधुर वचन कहा— ॥१२-१३॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते।
एकाकी को भवाञ्छेते ब्रूहि मे पुरुषर्षभ॥१४॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! अन्धकारसे आवृत इस घोर, निर्जन एकार्णवमें अकेले सोनेवाले आप कौन हैं? मुझे बतलायें॥ १४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः ।
उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥१५॥

उनके इस वचनको सुनकर मेघके समान गम्भीर स्वरवाले गरुडध्वजने हँसकर ब्रह्मदेवसे कहा— ॥ १५॥

भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाप्ययम्।
महायोगेश्वरं मां त्वं जानीहि पुरुषोत्तमम्॥१६॥
मयि पश्य जगत् कृत्स्नं त्वां च लोकपितामहम्।
सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्॥१७॥
एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः।
जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम्॥१८॥

(ब्रह्माजी आप) मुझे ही समस्त लोकोंकी उत्पत्ति एवं संहार करनेवाला महायोगेश्वर एवं पुरुषोत्तम नारायणदेव जानें। पर्वत और महान् द्वीपोंसे युक्त सात समुद्रोंसे घिरे हुए इस सम्पूर्ण जगत्‌के साथ ही समस्त लोकोंके पितामह (ब्रह्माजी) आप अपनेको भी मुझमें ही देखें। ऐसा कहकर विश्वात्मा महायोगी हरिने (सब कुछ) जानते हुए भी ब्रह्मारूपी पुरुषसे कहा—आप कौन हैं?॥ १६—१८॥

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा॥१९॥
अहं धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः ।
मय्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुखः॥२०॥

तदनन्तर वेदनिधि प्रभु भगवान् ब्रह्माने हँसकर कमलकी आभाके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मुसकानवाले (भगवान् विष्णुको इस प्रकार) मधुर वाणीमें उत्तर दिया—मैं ही धाता (धारण करनेवाला), विधाता (विधान बनानेवाला), स्वयम्भू (स्वयं ही उत्पन्न होनेवाला) और प्रपितामह हूँ। मुझमें ही (सम्पूर्ण) विश्व स्थित है। मैं सभी ओर मुखवाला ब्रह्मा हूँ॥१९-२०॥

श्रुत्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम्॥२१॥
त्रैलोक्यमेतत् सकलं सदेवासुरमानुषम्।
उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥२२॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतन ।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत्॥ २३ ॥

सत्यपराक्रम वे भगवान् विष्णु (ब्रह्माका) वचन सुनकर (उनकी) आज्ञा लेकर योगबलसे ब्रह्माके शरीरम प्रविष्ट हुए। उन देव (ब्रह्मा)-क उदरम देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको दखकर श्रीविष्णुको (अत्यन्त) आश्चर्य हुआ। तदनन्तर नागराजकी शय्यापर निवास करनेवाले अजातशत्रु वे भगवान् (विष्णु) उनके (ब्रह्माके) मुखसे बाहर निकलकर पितामह (ब्रह्मा)-से बोल— ॥ २१—२३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वत हि ममोदरम्।
प्रविश्य लोकान् पश्यैतान् विचित्रान् पुरुषर्षभ॥ २४॥

पुरुषश्रेष्ठ! आप भी अब इसी प्रकार मेरे उदरम प्रविष्ट होकर सदा इन विचित्र लाकाको देख॥ २४॥

तत प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च।
श्रीपतेरुदर भूय प्रविवेश कुशध्वज ॥ २५॥
तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत् सत्यविक्रम ।
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्त न वै हरे ॥ २६॥

तब भगवान् विष्णुकी यह आह्लाद प्रदान करनेवाली वाणी सुनकर और पुन उनका (श्रीविष्णुका) अभिनन्दन कर कुशध्वज (ब्रह्मा)-ने लक्ष्मीपति (भगवान् विष्णु)-के उदरम प्रवेश किया। सत्यविक्रम (ब्रह्मा)-ने उन्हीं लोकोको (भगवान् विष्णुके) उदरम स्थित देखा (जिन्ह श्रीविष्णुने ब्रह्माके उदरम दखा था)। देवके (उदरम) भ्रमण करते हुए उन्ह हरि (विष्णु)-का कोई अन्त न दिखायी दिया॥ २५-२६॥

ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना।
जनार्दनेन ब्रह्मासौ नाभ्या द्वारमविन्दत॥ २७॥
तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डज ।
उज्जहारात्मनो रूप पुष्कराच्चतुरानन ॥ २८॥

तदनन्तर महात्मा जनार्दनने (अपनी इन्द्रियोके) सभी द्वाराको बद कर दिया तब ब्रह्मान उनकी नाभिम द्वार प्राप्त किया। सुवर्णमय अण्डसे उत्पन्न चतुर्मुख (ब्रह्मा)-ने योगबलसे उसमें (नाभिमे) प्रवेश कर (नाभिसे उत्पन्न) कमलस अपने रूपको बाहर निकाला॥ २७-२८॥

विरराजारविन्दस्थ पद्मगर्भसमद्युति ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् जगद्योनि पितामह ॥ २९॥
स मन्यमानो विश्वेशमात्मान परम पदम्।
प्रोवाच पुरुष विष्णु मेघगम्भीरया गिरा॥ ३०॥

पद्मगर्भक समान[१] शोभावाले स्वयम्भू, जगद्योनि, पितामह भगवान् ब्रह्मा अरविन्द (रक्त कमल)-पर बैठे हुए शोभित होने लगे। अपनेको सम्पूर्ण विश्वका स्वामी तथा परम पद (आश्रय) मानते हुए उन्हान (ब्रह्माने) मेघके समान गम्भीर वाणीमे पुरुषोत्तम विष्णुसे कहा— ॥ २९-३० ॥

किं कृत भवतदानीमात्मनो जयकाङ्क्षया।
एकोऽह प्रबलो नान्यो मां वै कोऽभिभविष्यति॥ ३१॥

आपने अपनी विजयकी आकाक्षासे इस समय यह क्या किया (अपनी सभी इन्द्रियाके द्वाराको क्या बद कर दिया?)। एकमात्र मैं ही सबमे बडा बलशाली हूँ आर कोई नहीं है, मुझे कौन पराजित कर पायेगा?॥ ३१॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्य ब्रह्मणो लोकतन्त्रिण ।
सान्त्वपूर्वमिद वाक्य बभाषे मधुर हरि ॥ ३२॥

लोकनियामक ब्रह्माका वचन सुनकर नारायण हरिने सान्त्वनापूर्वक यह मधुर वाक्य कहा— ॥ ३२ ॥

भवान् धाता विधाता च स्वयम्भू प्रपितामह ।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे॥ ३३॥
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वा बाधितुमिच्छया।
को हि बाधितुमन्विच्छेद् देवदेव पितामहम्॥ ३४॥
न तेऽन्यथावगन्तव्य मान्यो मे सर्वथा भवान्।
सर्वमन्वय कल्याण यन्मयापहृत तव॥ ३५॥
अस्माच्च कारणाद् ब्रह्मन् पुत्रो भवतु मे भवान्।
पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय॥ ३६॥

आप ही धाता विधाता और स्वयम्भू पितामह हैं। (मैंने) ईर्ष्या-द्वेषके कारण अपने (शरीरक) द्वारोको बद नहीं किया अपितु लीला करनकी इच्छास ही मैंने ऐसा किया न कि आपको बाधा पहुँचानेकी दृष्टिसे। देवाधिदेव पितामह आपका भला कान बाधा पहुँचाना चाहेगा। आपको कुछ अन्यथा नही समझना चाहिये। आप मेरे लिये सभी प्रकारसे मान्य है। मरे द्वारा जा आपका

१-रक्त कमलके भीतर जैसी अरुणिमा हाती है वैसी अरुणिमा (लालिमा-ललाई)-से सुशाभित।

अपहरण हुआ है, उसमें आप सभी प्रकारसे अपना कल्याण ही समझें। इसी कारण ब्रह्मन्! मेरी प्रीतिके लिये आप मेरे पुत्र बनें। जगन्मूर्ति! आप 'पद्मयोनि' इस नामसे विख्यात हों॥ ३३—३६॥

ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने।
प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत॥ ३७॥

तदनन्तर भगवान् देव (ब्रह्मा)-ने किरीटी (विष्णु)-को वर देकर अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः विष्णुसे कहा—॥ ३७॥

भवान् सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः।
सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्॥ ३८॥
अहं वै सर्वलोकानामात्मा लोकमहेश्वरः।
मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माहं पुरुषः परः॥ ३९॥
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः।
एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ॥ ४०॥

आप सभीके आत्मरूप हैं, अनन्त हैं और सभीके परम ईश्वर हैं। आप सभी प्राणियोंका अन्तरात्मा हैं तथा आप ही सनातन परब्रह्म हैं। मैं ही सभी लोकोंकी आत्मा एवं लोकमहेश्वर हूँ। यह सब कुछ मेरा ही स्वरूप है। मैं परम पुरुष ब्रह्मा हूँ। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर दूसरा अन्य कोई नहीं है, नारायण और पितामहके रूपमें एक मूर्ति ही दो भागोंमें विभक्त हुई है॥ ३८—४०॥

तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम्।
इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति॥ ४१॥
किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम्॥ ४२॥
यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम्।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥ ४३॥

उनके (ब्रह्माके) द्वारा ऐसा कहे जानेपर वासुदेव ब्रह्मासे इस प्रकार बोले—यह प्रतिज्ञा[1] आपके विनाशका कारण बनेगी। क्या आप ब्रह्माधिपति योगेश्वर, अव्यय एवं प्रधान पुरुष ईशान (शंकर)-को नहीं देख रहे हैं? मैं उन परमेश्वरको जानता हूँ। योगीन्द्र तथा सांख्यशास्त्रके ज्ञाता भी जिन महेश्वरको दर्शन नहीं कर पाते, आप उन्हीं अनादिनिधन ब्रह्मकी शरण ग्रहण करें॥ ४१—४३॥

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्।
भवान् न नूनमात्मानं वेत्ति तत् परमक्षरम्॥ ४४॥
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम्।
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः॥ ४५॥
संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय।
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत॥ ४६॥
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः।
न मेऽस्त्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते॥ ४७॥
किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी।
मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा॥ ४८॥

तदनन्तर क्रुद्ध ब्रह्माने कमलकी आभाके समान नेत्रवाले केशवसे कहा—निश्चित ही आप अपने-आपको वह परम अक्षर, जगत्का एकमात्र आत्मरूप ब्रह्मरूप परम पद (शरण) नहीं जान रहे हैं। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर और दूसरा कोई विद्यमान नहीं है। आप दीर्घ निद्राका परित्यागकर अपने-आपको देखें (पहचानें)। उनके (ब्रह्माके) इस क्रोधयुक्त वचनको सुनकर विष्णुने कहा—हे कल्याण! इस प्रकार न कहें, इस प्रकार न कहें, (यह उन) महात्माकी निन्दा है। ब्रह्मन्! मेरे लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है, मैं आपसे असत्य नहीं कह रहा हूँ। किंतु ब्रह्मन्! आत्मासे समुद्भूत समस्त विशेषोंकी हेतुभूत परमेश्वरकी माया ही आपको मोहित कर रही है॥ ४४—४८॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह।
ज्ञात्वा तत् परमं तत्त्वं स्वमात्मानं महेश्वरम्॥ ४९॥

इतना कहकर भगवान् विष्णु अपने आत्मरूप महेश्वरको उस सर्वोत्कृष्ट परम तत्त्वके रूपमें जानकर चुप हो गये॥ ४९॥

कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः।
प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत् ततो हरः॥ ५०॥
ललाटनयनोऽनन्तो जटामण्डलमण्डितः।
त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः॥ ५१॥
दिव्यां विशालां ग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन् पादलम्बिनीम्॥ ५२॥

तदनन्तर ब्रह्माके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्राणियोंके परम ईश्वर अपरिमेयात्मा (असीम सामर्थ्यसम्पन्न) हर

[1] १-हम दोनोंके अतिरिक्त दूसरा परमेश्वर नहीं है—यह प्रतिज्ञा।

(भगवान् शकर) वहाँ प्रादुर्भूत हो गये। उन अनन्त (भगवान् शकर)-के ललाटमे नेत्र था। वे जटामण्डलसे सुशोभित थे। तेजके परम निधि वे भगवान् हाथमे त्रिशूल लिये थे। उन्होने सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहो तथा नक्षत्रोंसे गुँथी हुई अद्भुत आकारवाली, चरणोतक लटकती हुई लम्बी दिव्य विशाल मालाको धारण कर रखा था॥ ५०—५२॥

त दृष्ट्वा देवमीशान ब्रह्मा लोकपितामह ।
मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्॥ ५३॥
क एष पुरुषोऽनन्त शूलपाणिस्त्रिलोचन ।
तजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन॥ ५४॥

उन ईशानदेवको देखकर मायासे अत्यन्त मोहित लोकपितामह ब्रह्माने (अपनी रक्षाके लिये) पीताम्बरधारी (विष्णु)-से कहा—हे जनार्दन! हाथमे त्रिशूल धारण किये, त्रिनेत्रधारी, तेजकी राशिरूप, अमेयात्मा यह कौन अनन्त पुरुष (यहाँ) चला आ रहा है॥ ५३-५४॥

तस्य तद् वचन श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दन ।
अपश्यदीश्वर देव ज्वलन्त विमलेऽम्भसि॥ ५५॥
ज्ञात्वा तत्परम भावमैश्वर ब्रह्मभावनम्।
प्रोवाचोत्थाय भगवान् देवदेव पितामहम्॥ ५६॥

उनके (ब्रह्माके) इस वचनको सुनकर दानवोका मर्दन करनेवाले विष्णुने निर्मल जलमे देदीप्यमान देव ईश्वरको देखा। ईश्वर-सम्बन्धी उस परम भावरूप ब्रह्मभावको जानकर (महेश्वरम परम तत्त्वका दर्शनकर) भगवान् (विष्णु)-उठकर गये और देवदेव पितामहसे कहने लगे—॥ ५५-५६॥

अय देवो महादेव स्वयज्योति सनातन ।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्॥ ५७॥
शकर शम्भुरीशान सर्वात्मा परमेश्वर ।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमल शिव ॥ ५८॥
एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वर ।
य प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविता ॥ ५९॥
सृजत्येष जगत् कृत्स्न पाति सहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेव केवलो निष्कल शिव ॥ ६०॥

ये देव स्वय प्रकाशित होनेवाले, सनातन, आदि और अन्तसे रहित अचिन्त्य महान्, समस्त लोकाके ईश्वर महादेव हैं। ये शकर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, समस्त प्राणियोके एकमात्र स्वामी, योगी, महेश, विमल एव शिवरूप (कल्याणरूप) हैं। ये ही धाता, विधाता, प्रधान पुरुष और ईश्वर हैं। यतिजन (सन्यासी लोग) ब्रह्मकी भावनासे भावित होकर जिनका दर्शन करते हैं वे ही केवल, निष्कल, महादव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और सहार करते हैं॥ ५७—६०॥

ब्रह्माण विदधे पूर्वं भवन्त य सनातन ।
वेदाश्च प्रददौ तुभ्य सोऽयमायाति शकर ॥ ६१॥
अस्यैव चापरा मूर्तिं विश्वयोनि सनातनीम्।
वासुदेवाभिधाना मामवेहि प्रपितामह॥ ६२॥
किं न पश्यसि योगेश ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
दिव्य भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम्॥ ६३॥

ये वे ही शकर आ रहे हैं, जिन सनातन (देव)-ने पूर्वकालमें आप ब्रह्माको बनाया और आपको वद प्रदान किया। प्रपितामह! मुझे इनकी ही विश्वयोनि, सनातन एव वासुदेव नामवाली दूसरी मूर्ति समझो। क्या आप ब्रह्माके भी अधिपति, अव्यय योगेश्वरको नहीं देख रह हैं? आपकी दिव्य दृष्टि हो जाय, जिससे आप उस परम (तत्त्व)-को देख सकें॥ ६१—६३॥

लब्ध्वा शैव तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामह ।
बुबुधे परमेशान पुरत समवस्थितम्॥ ६४॥
स लब्ध्वा परम ज्ञानमैश्वर प्रपितामह ।
प्रपेदे शरण देव तमव पितर शिवम्॥ ६५॥
ओकार समनुस्मृत्य सस्तभ्यात्मानमात्मना।
अथर्वशिरसा देव तुष्टाव च कृताञ्जलि ॥ ६६॥

विष्णुसे इस प्रकार शैव-नेत्र (शिव-सम्बन्धी ज्ञान) प्राप्तकर लोक-पितामह (ब्रह्मा)-ने सामने अवस्थित परम ईशानको जाना। उन प्रपितामह (ब्रह्मा)-न ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान प्राप्तकर उन्हों पितृरूप दव शिवकी शरण ग्रहण की। आकार (तत्त्व)-का अनुस्मरणकर और आत्माद्वारा मनका निराधकर उन्हाने अथर्ववेदके मन्त्रासे हाथ जोडते हुए (उन) देवकी प्रार्थना की॥ ६४—६६॥

सस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वर ।

अवाप परमा प्रीति व्याजहार स्मयन्निव॥६७॥

उन ब्रह्माके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर (शिव)-को परम प्रीति प्राप्त हुई और वे मुसकराते हुए (इस प्रकार) बोले—॥ ६७॥

मत्समस्त्व न सदेहो मद्भक्तश्च यतो भवान्।
मयैवोत्पादित पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययम्॥६८॥
त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भव ।
वर वरय विश्वात्मन् वरदोऽह तवानघ॥६९॥

तुम मेरे भक्त हो, इसलिये नि सदेह तुम मेरे ही समान हो। मेरे द्वारा ही पहले ससारकी सृष्टि करनेके लिये तुम अव्ययको उत्पन्न किया गया था। मेरी देहसे उत्पन्न तुम (मेरी ही) आत्मा और आदि पुरुष हो। हे अनघ! विश्वात्मन्! वर माँगो। मैं तुम्हे वर प्रदान करूँगा॥६८-६९॥

स देवदेववचन निशम्य कमलोद्भव ।
निरीक्ष्य विष्णु पुरुष प्रणम्याह वृषध्वजम्॥७०॥

कमलसे उत्पन्न उन ब्रह्माने देवाधिदेव (शकर)-के इस वचनको सुनकर विष्णुकी ओर देखा और उन (परम) पुरुष वृषध्वज (शकर)-को प्रणामकर उनसे कहा—॥७०॥

भगवन् भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते।
त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृश सुतम्॥७१॥
मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया।
न जाने परम भाव याथातथ्येन ते शिव॥७२॥
त्वमेव देव भक्तानां भ्राता माता पिता सुहृत्।
प्रसीद तव पादाब्ज नमामि शरण गत ॥७३॥

हे भगवन्! भूत एव भविष्यके स्वामी! महादेव! अम्बिकाके पति! मैं आपको ही पुत्र-रूपमे अथवा आपके ही समान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ। महादेव! मैं आपकी सूक्ष्म मायाद्वारा मोहित कर लिया गया हूँ। शिव! मैं आपके परम भावको यथार्थरूपमें नहीं जानता हूँ। देव! आप ही भक्तोंके माता-पिता भाई तथा मित्र हैं। (आप) प्रसन्न हो। मैं आपके चरणकमलोमे प्रणाम करता हूँ और आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ७१—७३॥

स तस्य वचन श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वज ।
व्याजहार तदा पुत्र समालोक्य जनार्दनम्॥७४॥

तदनन्तर जगत्के स्वामी वृषध्वज (शकर)-ने उनके वचन सुनकर पुत्र (रूप) जनार्दन (विष्णु)-की ओर देखकर (ब्रह्मासे) कहा—॥७४॥

यदर्थित भगवता तत् करिष्यामि पुत्रक।
विज्ञानमैश्वर दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ॥७५॥
त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजित ।
तथा कुरुष्व देवेश मया लोकपितामह॥७६॥
एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनु ।
भविष्यति तवेशानो योगक्षेमवहो हरि ॥७७॥

हे पुत्रक! तुमने जैसी इच्छा की है मैं वैसा ही करूँगा। अनघ! तुम्हे ईश्वर-सम्बन्धी दिव्य ज्ञान प्राप्त होगा। मेरे द्वारा तुम्हीं सभी प्राणियोके प्रथम स्रष्टाके रूपमे नियुक्त किये गये हो। अत देवेश! लोकपितामह! तुम वैसा ही करो। ये नारायण एव अनन्त (भगवान् विष्णु) मेरी ही श्रेष्ठ मूर्ति हैं। ये ईशान हरि तुम्हारे योग-क्षेमका वहन करनेवाले होगे॥७५—७७॥

एव व्याहृत्य हस्ताभ्या प्रीतात्मा परमेश्वर ।
सस्पृश्य देव ब्रह्माण हरिं वचनमब्रवीत्॥७८॥
तुष्टोऽस्मि सर्वथाह ते भक्त्या तव जगन्मय।
वर वृणीष्व नह्यावा विभिन्नौ परमार्थत ॥७९॥

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त परमेश्वर (शिव)-ने हाथोसे देव ब्रह्माका स्पर्शकर हरि (विष्णु)-से कहा—हे जगन्मूर्ति! तुम्हारी भक्तिसे मैं तुमपर सर्वथा प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तत्त्वत हम दोनो भिन्न नहीं हैं॥७८-७९॥

श्रुत्वाथ देववचन विष्णुर्विश्वजगन्मय ।
प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य चतुर्मुखम्॥८०॥
एष एव वर श्लाघ्यो यदह परमेश्वरम्।
पश्यामि परमात्मान भक्तिर्भवतु मे त्वयि॥८१॥

इसके बाद महादेवका वचन सुनकर विश्वमय, जगन्मय विष्णुने चतुर्मुख ब्रह्माकी ओर देखकर प्रीतियुक्त वाणीमे (महादेवसे) कहा—मेरे लिये यही श्लाघनीय वर है कि मैं आप परमेश्वर परमात्माका दर्शन कर रहा हूँ। मेरी आपमें भक्ति हो॥ ८०-८१॥

तथेत्युक्त्वा महादेव पुनर्विष्णुमभाषत।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्॥८२॥
मन्मय त्वन्मय चैव सर्वमेतन्न सशय ।

भवान् सोमस्त्वह सूर्यो भवान् रात्रिरह दिनम्॥८३॥
भवान् प्रकृतिरव्यक्तमह पुरुष एव च।
भवान् ज्ञानमह ज्ञाता भवान् मायाहमीश्वर ॥८४॥
भवान् विद्यात्मिका शक्ति शक्तिमानहमीश्वर ।
योऽह सुनिष्कलो देव सोऽपि नारायण पर ॥८५॥

'ऐसा ही हो' यह कहकर महादेवने पुन विष्णुसे कहा—आप सभी कार्योंके कर्ता हैं और मैं अधिदेवता हूँ। यह सब कुछ मेरा और आपका ही रूप है, इसम कोई सदेह नहीं है। आप चन्द्रमा हैं, मैं सूर्य हूँ। आप रात्रि हैं, मैं दिन हूँ। आप प्रकृति हैं और मैं ही अव्यक्त पुरुष हूँ। आप ज्ञानरूप हैं और मैं ज्ञाता हूँ,आप मायारूप हैं और मैं ईश्वर हूँ। आप विद्यात्मिका शक्ति हैं, मैं शक्तिमान् ईश्वर हूँ और निष्कल देव परस्वरूप नारायण भी मैं ही हूँ॥ ८२—८५॥

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिन ।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति।
पालयैतज्जगत् कृत्स्न सदेवासुरमानुषम्॥८६॥

ब्रह्मवादी योगी (हम दोनोको) एक भावसे ही देखते हैं। हे विश्वात्मन्! बिना आपका आश्रय ग्रहण किये योगी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आप देवता, असुर तथा मनुष्योसे युक्त इस सम्पूर्ण जगत्का पालन करे॥ ८६॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादि
स्वमायया मोहितभूतभेद ।
जगाम जन्मर्धिविनाशहीन
धामैकमव्यक्तमनन्तशक्ति ॥८७॥

ऐसा कहकर अपनी मायासे सम्पूर्ण प्राणियोको मोहित करनेवाल अनादि एव अनन्तशक्तिसम्पन्न भगवान् जन्म, विकास एव विनाशसे रहित (अपने) अव्यक्त धाम (स्थान)-का चले गये॥ ८७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहिताया पूर्वविभागे नवमोऽध्याय ॥९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९॥
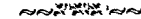
दसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा मधु तथा कैटभका वध, नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा सनकादिकी सृष्टि, ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्ति, रुद्रकी अष्टमूर्तियो, आठ नामो तथा आठ पत्नियोका वर्णन, रुद्रके द्वारा अनेक रुद्रोकी उत्पत्ति तथा पुन वैराग्य ग्रहण करना, ब्रह्माद्वारा रुद्रकी स्तुति तथा माहात्म्य-वर्णन, रुद्रद्वारा ब्रह्माको ज्ञानकी प्राप्ति, महादेवका त्रिमूर्तित्व ओर ब्रह्माद्वारा अनेक प्रकारकी सृष्टि

श्रीकूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे स्वाधिवास पितामह ।
तदेव सुमहत् पद्म भेजे नाभिसमुत्थितम्॥१॥

श्रीकूर्मने कहा—महेश्वर देवके अपने निवास-स्थानपर चले जानेके बाद पितामह (ब्रह्मा) (भगवान् विष्णुकी) नाभिसे उत्पन्न उसी विशाल सुन्दर कमलपर रहने लगे॥ १॥

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ।
महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ॥२॥
क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ।
कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिण ॥३॥
तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभु ।
त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि॥४॥

एक लम्बा समय व्यतीत हो जानेपर वहाँ अतुलित शक्तिवाले मधु तथा कैटभ नामक दो असुर आये, जो परस्पर भाई थे। देवोके भी देव शार्ङ्गधारी भगवान् विष्णुके कानसे उत्पन्न तथा विशाल पर्वतके समान शरीरवाले और महान् क्रोधसे आविष्ट उन दोनो (मधु-कैटभ)-को आया हुआ देखकर अजन्मा विभु (ब्रह्मा)-ने नारायणसे कहा—ये दोना असुर तीना लोकोके लिये कण्टक हैं आप इन्हें मार॥ २-४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः।
आज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ॥५॥

उनके इस वचनको सुनकर प्रभु नारायण हरिने उन दोनोका वध करनेके लिये (जिष्णु तथा विष्णु नामक) दो पुरुषोको आज्ञा दी॥ ५॥

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः।
व्यजयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्च व्यजयन्मधुम्॥६॥
ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथं पितामहम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः॥७॥

हे ब्राह्मणो! उनकी आज्ञासे उन (विष्णु तथा जिष्णु)-से उन दोनो (मधु-कैटभ) असुरोका महान् युद्ध हुआ। विष्णुने कैटभको जीता और जिष्णुने मधुको जीता। तदनन्तर स्नेहसे आविष्ट मनवाले हरिने कमलके आसनपर आसीन तथा जगन्नाथ पितामहसे मधुर वचन कहा—॥ ६-७॥

अस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो।
नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयं गुरुम्॥८॥
ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः।
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना॥९॥

प्रभो! मेरे कहनेसे आप अब इस कमलसे नीचे उतरें। तेजोमय, बहुत भारी आपको ढोनेमें मैं असमर्थ हूँ। तब विश्वात्मा (ब्रह्मा) नीचे उतरे और चक्र धारण करनेवाले विष्णुकी देहमें प्रविष्ट होकर वैष्णवी निद्राको प्राप्त हो गये। इस प्रकार विष्णुसे उनकी एकात्मता हो गयी॥ ८-९॥

सहस्रशीर्षनयनः शङ्खचक्रगदाधरः।
ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा॥१०॥
सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः।
अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥११॥
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः॥१२॥

तब हजारो सिर तथा हजारो नेत्रवाले और शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले वे नारायण नामवाले ब्रह्मा जलमें सो गये। उन्होने बहुत समयतक परमात्माके अनादि अनन्त, आत्मस्वरूप ब्रह्मसंज्ञक अद्वैत आनन्दका अनुभव किया। तदनन्तर प्रभातकाल होनेपर योगात्मा देव चतुर्मुख होकर और वैष्णव भावका आश्रय ग्रहणकर उसी प्रकारकी (वैष्णवी) सृष्टि करने लगे॥ १०—१२॥

पुरस्तादसृजद् देवः सनन्दं सनकं तथा।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वजं तं सनातनम्॥१३॥
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः।
विदित्वा परमं भावं न सृष्टौ दधिरे मतिम्॥१४॥
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः।
बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः॥१५॥
ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्तिर्जनार्दनः।
व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम्॥१६॥

उन देवने सर्वप्रथम पूर्वजोके भी पूर्वज सनन्दन, सनक, ऋभु, सनत्कुमार तथा सनातनको उत्पन्न किया। (सुख-दुःख आदि) द्वन्द्व एवं मोह (आसक्ति)-से सर्वथा शून्य एवं परम वैराग्यभावमे स्थित इन सनक आदि ऋषियोंने परम तत्त्वको जानकर सृष्टिकार्यमें अपनी बुद्धि नहीं लगायी। उन (सनकादि)-के इस प्रकारके लोक-सृष्टिसे सर्वथा निरपेक्षभावको देखकर पितामह (ब्रह्मा) परमेष्ठी (परमात्मा—जनार्दन)-की मायासे मोहित हो गये। तब जगन्मूर्ति पुराणपुरुष, जनार्दनने (नाभि) कमलसे उत्पन्न अपने पुत्र (ब्रह्मा)-का मोह नष्ट करनेके लिये उनसे कहा—॥ १३—१६॥

विष्णुरुवाच

कच्चिन्न विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः।
यदुक्तवानात्मनाऽसौ पुत्रत्वे तव शंकरः॥१७॥

विष्णु बोले—कहीं आप शूलपाणि सनातनदेवको भूल तो नहीं गये? उन शंकरने अपनेको आपके पुत्र-रूपमें होनेकी बात कही थी॥ १७॥

अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः।
प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तपः परमदुश्चरम्॥१८॥
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित् समवर्तत।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधोऽभ्यजायत॥१९॥

गोविन्दसे चेतना प्राप्तकर पद्मयोनि पितामह प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे परम दुश्चर तप करने लगे। उनके इस प्रकार (दीर्घकालतक) तप करनेपर (भी) किसी भी

प्रकारकी सृष्टि नहीं हुई। बहुत समय बीत जानेपर उन्हे दु खसे क्रोध उत्पन्न हुआ॥ १८-१९॥

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्या प्रापतन्नश्रुबिन्दव ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूता प्रेतास्तथाभवन्॥ २०॥
सर्वास्तानश्रुजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत।
जहौ प्राणाश्च भगवान् क्रोधाविष्ट प्रजापति ॥ २१॥

क्रोधाविष्ट उनके (ब्रह्माके) नेत्रोसे आँसूकी बूँदें गिरीं। तब उन आँसुओकी बूँदोसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। आँसुओंसे उत्पन्न उन सब (भूत-प्रेतो)-को देखकर क्रोधाविष्ट प्रजापति भगवान् ब्रह्माने अपनी ही निन्दा की और अपने प्राणोका परित्याग कर दिया॥ २०-२१॥

तदा प्राणमयो रुद्र प्रादुरासीत् प्रभोर्मुखात्।
सहस्रादित्यसकाशो युगान्तदहनोपम ॥ २२॥
रुरोद सुस्वर घोर देवदेव स्वय शिव ।
रोदमान ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत।
रोदनाद् रुद्र इत्येव लोके ख्याति गमिष्यसि॥ २३॥

तदनन्तर प्रभुके मुखसे हजारो सूर्यके समान देदीप्यमान तथा प्रलयकालीन अग्निके सदृश प्राणमय रुद्र प्रकट हुए। देवोंके भी देव स्वय शिव उच्च स्वरमे घोर रुदन करने लगे। तब रुदन करते हुए उनसे ब्रह्माने 'मत रोओ'—इस प्रकारसे कहा। तुम रुदन करनेके कारण 'रुद्र' इस नामसे ससारम प्रसिद्धि प्राप्त करोगे॥ २२-२३॥

अन्यानि सप्त नामानि पत्नी पुत्राश्च शाश्वतान्।
स्थानानि चैषामष्टाना ददौ लोकपितामह ॥ २४॥

लोकपितामहने (उन्हे रुद्रके अतिरिक्त) अन्य सात नाम (आठ) पत्नियाँ शाश्वत (दीर्घायु) पुत्र और आठ स्थानों[१] (मूर्तियो)-को प्रदान किया ॥ २४॥

भव शर्वस्तथेशान पशूना पतिरेव च।
भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै॥ २५॥
सूर्यो जल मही वह्निर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तय ॥ २६॥

भव शर्व ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव—ये सात नाम हैं। सूर्य, जल पृथ्वी, अग्नि वायु, आकाश दीक्षित ब्राह्मण तथा चन्द्र—ये (रुद्रकी) आठ मूर्तियाँ हैं॥ २५-२६॥

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्र ध्यायन्ति प्रणमन्ति च।
तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परम पदम्॥ २७॥

जो इन आठ स्थानो (मूर्तिरूपो)-मे रुद्रका ध्यान करते हैं और उन्हे प्रणाम करते हैं, उन्ह अष्टमूर्तिरूप दव (भगवान् शिव अपना) परम पद देते हैं॥ २७॥

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च तथा शिवा।
स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नय ॥ २८॥
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजव ।
स्कन्द सर्गोऽथ सतानो बुधश्चैषा सुता स्मृता ॥ २९॥

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशाएँ, दीक्षा तथा रोहिणी—ये ही (रुद्रकी आठ) पत्नियाँ हैं। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग (मगल), मनोजव (कामदेव) स्कन्द सर्ग, सतान तथा बुध—ये (आठ उनके) पुत्र कहे गये हैं॥ २८-२९॥

एवम्प्रकारो भगवान् देवदेवो महेश्वर ।
प्रजाधर्म च काम च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रित ॥ ३०॥
आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वर भावमास्थित ।
पीत्वा तदक्षर ब्रह्म शाश्वत परमामृतम्॥ ३१॥

इस प्रकारके देवाधिदेव भगवान् महेश्वरने प्रजाधर्म (सृष्टिकार्य) एव काम (वासना)-का परित्यागकर वैराग्यका आश्रय ग्रहण किया। उस शाश्वत, परम अमृतरूपी अक्षर ब्रह्मका आस्वादनकर और आत्माम आत्मतत्त्वका आधानकर वे ईश्वरभावमे स्थित हो गये॥ ३०-३१॥

प्रजा सृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहित ।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिव ॥ ३२॥

ब्रह्माके द्वारा 'प्रजाकी सृष्टि करो' इस प्रकारका आदेश प्राप्तकर नीललोहित शिवने मनसे अपने ही समान रुद्रोकी सृष्टि की॥ ३२॥

कपर्दिनो निरातङ्कान् नीलकण्ठान् पिनाकिन ।
त्रिशूलहस्तानृष्टिघ्नान् महानन्दास्त्रिलोचनान्॥ ३३॥
जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान्।
वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभु ॥ ३४॥

प्रभुने सैकडा करोड जटाजूट धारण करनेवाले

१-ये आठ स्थान सूर्य जल आदि आगे गिनाये गये हैं। इनमें रुद्रका निवास है। इसीलिये ये आठ रुद्रकी मूर्ति माने ग

भयरहित, नीलकण्ठ, पिनाकपाणि हाथमे त्रिशूल धारण किये, ऋष्टिघ्न, महान् आनन्दस्वरूप तीन नेत्रयुक्त, जरा-मरणसे रहित, विशाल वृषभाको वाहन-रूपमे स्वीकार करनेवाले सर्वज्ञ तथा वीतराग (रुद्रो)-को उत्पन्न किया॥ ३३-३४॥

तान् दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् निर्मलान् नीललोहितान्।
जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हर गुरु ॥ ३५॥

गुरु (ब्रह्मा)-ने जरा-मरणसे रहित, नीललोहित एव निमल उन अनक रुद्राको दखकर हर (शिव)-स कहा॥ ३५॥

मा स्राक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिता ।
अन्या सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विता ॥ ३६॥

हे देव! मृत्युस रहित इस प्रकारकी सृष्टि मत करो। भूतेश! जन्म एव मृत्युवाली दूसरी प्रकारकी सृष्टि करो॥ ३६॥

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासन ।
नास्ति मे तादृश सर्ग सृज त्वमशुभा प्रजा ॥ ३७॥
तत प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूतेऽशुभा प्रजा ।
स्वात्मजैरेव तै रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत।
स्थाणुत्व तेन तस्यासीद् देवदेवस्य शूलिन ॥ ३८॥

तदनन्तर कामपर शासन करनेवाले जटाजूटधारी भगवान् (शिव)-ने उनसे कहा—मेरे पास उस प्रकारकी (जन्म-मृत्युसे युक्त) सृष्टि नहीं है। (एसी) अशुभ प्रजाओको आप ही उत्पन्न करे। तबसे उन देवने अशुभ प्रजाओकी सृष्टि नहीं की। (और) अपने आत्मज उन रुद्रोके साथ वे निवृत्तात्मा (क्रियारहित)-के रूपमे स्थित हो गये। इसी कारण देवामे देव उन शूलधारी (शकर)-का स्थाणुत्व हुआ। (अर्थात् वे 'स्थाणु'[१] इस नामसे प्रसिद्ध हो गये)॥ ३७-३८॥

ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं तप सत्य क्षमा धृति ।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च॥ ३९॥
अव्ययानि दशैतानि नित्य तिष्ठन्ति शकरे।
स एव शकर साक्षात् पिनाकी परमेश्वर ॥ ४०॥

भगवान् शकरमे ज्ञान वैराग्य एश्वर्य तप सत्य क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व—ये दस अव्यय (शाश्वत) गुण सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। ये पिनाक धारण करनेवाले शकर ही साक्षात् परमेश्वर हैं॥ ३९-४०॥

तत स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देव त्रिलोचनम्।
सहैव मानसै पुत्रै प्रीतिविस्फारिलोचन ॥ ४१॥
ज्ञात्वा परतर भावमैश्वर ज्ञानचक्षुषा।
तुष्टाव जगतामेक कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ ४२॥

तदनन्तर प्रीतिसे विकसित नेत्रवाले भगवान् ब्रह्माने तीन नेत्रावाले देव (शकर)-का मानस पुत्राके साथ देखा। ब्रह्माने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे ईश्वर-सम्बन्धी परात्पर भावको जानकर जगत्के एकमात्र स्वामी (भगवान् शकर)-की अपने मस्तकपर हाथाकी अजलि बाँधकर स्तुति की॥ ४१-४२॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर।
नम शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥ ४३॥
नमोऽस्तु ते महेशाय नम शान्ताय हेतवे।
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नम ॥ ४४॥
नम कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने।
नम पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नम ॥ ४५॥
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य ब्रह्मणो जनकाय ते।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने॥ ४६॥

ब्रह्माने कहा—महादेव! आपका नमस्कार है। परमेश्वर! आपको नमस्कार है। शिवको नमस्कार है। ब्रह्मरूपी देवको नमस्कार है। महेश! आपका नमस्कार है। शान्तिके मूल-हेतु! आपको नमस्कार है। प्रधान पुरुषेश! आपको नमस्कार है तथा योगाधिपति आपको नमस्कार है। काल रुद्र, महाग्रास[२] तथा शूलीको नमस्कार है। हाथमे पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। तीन नेत्रवालेको बार-बार नमस्कार है। त्रिमूर्तिस्वरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्माके उत्पत्तिकर्ता आपके लिये नमस्कार है। ब्रह्मविद्याके अधिपति और ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४३—४६॥

१-स्थाणु-ठूँठ। ठूँठकी ही तरह निष्क्रिय होनेसे शिवको स्थाणु कहा गया है।
२-महाप्रलयमें भगवान् शकर समस्त प्राणियाको अपनी गर्भमें सुला लेते हैं—इसलिये महाग्रास कहे जाते हैं।

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः।
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये॥ ४७॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते॥ ४८॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः।
त्रियम्बकाय देवाय नमस्ते परमेष्ठिने॥ ४९॥

वेदोंके रहस्यरूपको नमस्कार है। कालके भी काल आपको नमस्कार है। वेदान्तसारके भी सारको नमस्कार है। वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्ध स्वरूपको नमस्कार है। योगियोंके गुरुको नमस्कार है। शोकोंसे रहित विविध भूतोंसे घिरे हुए आपको नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेवको नमस्कार है। ब्रह्माधिपतिके लिये नमस्कार है। त्रिलोचन परमेष्ठी देवको नमस्कार है॥ ४७—४९॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने।
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥ ५०॥
नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे।
नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः॥ ५१॥
नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः।
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने॥ ५२॥

दिगम्बर! आपको नमस्कार है। मुण्ड (की माला) एवं दण्ड धारण करनेवालेको नमस्कार है। अनादि तथा मलरहित (शुद्धरूप), ज्ञानगम्य आपको नमस्कार है। तारक एवं तीर्थरूप तथा योगविभूतियोंके मूल कारणको नमस्कार है। धर्म (धर्माचरण)-के द्वारा प्राप्य, योगगम्य आपको नमस्कार है। निष्प्रपञ्चको नमस्कार है। निराभास! आपको नमस्कार है। विश्वरूप ब्रह्म परमात्माको नमस्कार है॥ ५०—५२॥

त्वय्येव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय॥ ५३॥
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः॥ ५४॥
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा॥ ५५॥

जगन्मय! आपके द्वारा ही यह सम्पूर्ण (जगत्) रचा गया है, आपमें ही यह सम्पूर्ण प्रतिष्ठित है और आप ही प्रधानादि समस्त विश्वका संहार करते हैं। आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म, महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल तथा हर हैं। आप अक्षर, परम ज्योति हैं, आप काल तथा परमेश्वर हैं और आप ही प्रधान पुरुष प्रकृति तथा अनन्त हैं॥ ५३—५५॥

भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहंकार एव च।
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ५६॥
यस्य द्यौरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः।
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम्॥ ५७॥
संतापयति यो विश्वं स्वभाभिर्भासयन् दिशः।
ब्रह्मतेजोमयं नित्यं तस्मै सूर्यात्मने नमः॥ ५८॥
हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः।
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः॥ ५९॥
आप्यायति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत्।
पीयते देवतासङ्घैस्तस्मै सोमात्मने नमः॥ ६०॥

भूमि जल, वायु, अग्नि आकाश एवं अहंकार—ये जिसके रूप हैं, उन ब्रह्मसंज्ञक आपको नमस्कार करता हूँ। द्युलोक जिनका मस्तक है, पृथ्वी पैर है, दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं और आकाश जिनका उदर है, उन विराट् पुरुषको मेरा प्रणाम है। जो अपने प्रकाशसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए विश्वको अपेक्षित उष्णता प्रदान करते हैं, उन नित्य ब्रह्म तेजोमय सूर्यरूपको नमस्कार है। जो अपने रौद्र तेजोमय शरीरसे (देवताओंको) हव्य तथा पितरोंको कव्य पहुँचाते हैं उन अग्निस्वरूप (देव)-को नमस्कार है। जो अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को नित्य संतृप्त करते हैं और देवतासमूहके द्वारा जिनका पान किया जाता है उन सोमरूप चन्द्रदेवको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

बिभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्चरति सर्वदा।
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः॥ ६१॥
सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः।
स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः॥ ६२॥
यः शेषशयने शेते विश्वमावृत्य मायया।
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः॥ ६३॥

बिभर्ति शिरसा नित्य द्विसप्तभुवनात्मकम्।
ब्रह्माण्ड योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नम ॥६४॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोका भरण-पोषण करती है और जो (सभी प्राणियोके) भीतर सदा विचरण करती है ऐसी वायुरूपात्मक माहेश्वरीशक्ति आपको नमस्कार है। जो प्राणियोके अपने-अपने कर्मोके अनुसार इस सम्पूर्ण (जगत्)-की सृष्टि करते है, उन अपनी आत्मामे प्रतिष्ठित चतुर्मुखात्मक (ब्रह्मा)-को नमस्कार है। जो अपने आत्मामे प्रतिष्ठित अनुभूतिरूप योगमे (प्ररित) मायाद्वारा सम्पूर्ण विश्वको आवृतकर शेष (शेषनाग)-की शय्यापर शयन करते हैं, उन विश्वात्माको नमस्कार है। जो चौदह भुवनोवाले ब्रह्माण्डको नित्य अपने सिरपर धारण किये रहते हैं और जो सभीके आश्रय है, उन शेषात्माको नमस्कार है॥६१—६४॥

य परान्ते परानन्द पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम्।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नम ॥६५॥
योऽन्तरा सर्वभूताना नियन्ता तिष्ठतीश्वर ।
त सर्वसाक्षिण देव नमस्ये भवतस्तनुम्॥६६॥
य विनिद्रा जितश्वासा सतुष्टा समदर्शिन ।
ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नम ॥६७॥
यया सतरते माया योगी सक्षीणकल्मष ।
अपारतरपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नम ॥६८॥
यस्य भासा विभातीदमद्वय तमस परम्।
प्रपद्ये तत् पर तत्त्व तद्रूप परमेश्वरम्॥६९॥
नित्यानन्द निराधार निष्कल परम शिवम्।
प्रपद्ये परमात्मान भवन्त परमेश्वरम्॥७०॥

जो महाप्रलयकालमे दिव्य एव एकमात्र साक्षीरूप परमानन्दका आस्वादन करते हुए नृत्य करते हैं उन अनन्त महिमावाले रुद्रात्माको नमस्कार है। जो ईश्वर सभी प्राणियोके भीतर नियन्ताके रूपमे प्रतिष्ठित रहते हैं उन सर्वसाक्षी देव और उनके शरीररूप (देव)-को मै नमस्कार करता हूँ। निद्रारहित श्वासको जीतनेवाले सतुष्ट तथा समदर्शी (योगीजन समाधिमे) जिस ज्योति या प्रकाशका दर्शन करते हैं उन योगात्माको नमस्कार है। जिस (विद्या)-के द्वारा पुण्यात्मा योगीजन अत्यन्त कठिनतासे पार की जा सकनेवाली मायाको सरलतासे पार कर लेते हैं उस विद्यास्वरूप (देव)-को नमस्कार है। जिसके प्रकाशसे यह (विश्व) प्रकाशित होता है, मैं (उस) अन्धकारसे सर्वथा रहित अर्थात् प्रकाशस्वरूप और अद्वितीय परम तत्त्व-स्वरूप (तद्रूप परम-तत्व मात्र ही जिनका स्वरूप है उन) परमेश्वरकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं नित्यानन्दस्वरूप, निराधार, निष्कल परमात्मा, परमेश्वर आप परम शिवकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ६५—७०॥

एव स्तुत्वा महादेव ब्रह्मा तद्भावभावित ।
प्राञ्जलि प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥७१॥

इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर ब्रह्मा उनकी भावनासे भावित होकर सनातन ब्रह्मको सम्बोधित करते हुए विनयपूर्वक हाथ जोडे हुए खडे हो गये॥ ७१॥

ततस्तस्मै महादेवो दिव्य योगमनुत्तमम्।
ऐश्वर्य ब्रह्मसद्भाव वैराग्य च ददौ हर ॥७२॥
कराभ्या सुशुभाभ्या च सस्पृश्य प्रणतार्तिहा।
व्याजहार स्वय देव सोऽनुगृह्य पितामहम्॥७३॥

तदनन्तर महादेव हरने उन्हे सर्वश्रेष्ठ दिव्य योग (ज्ञान), ऐश्वर्य, ब्रह्मकी सद्भावना (ब्रह्मविषयक उत्तम भाव) तथा वैराग्य प्रदान किया। शरणागतोका कष्ट हरनेवाले उन (शकर) देवने स्वय अपने मनोरम एव कल्याणकारी हाथोके द्वारा उनका (ब्रह्माका) स्पर्श किया और उनपर अनुग्रह करके वे बोले— ॥ ७२-७३॥

यत्त्वयाभ्यर्थित ब्रह्मन् पुत्रत्व भवतो मम।
कृत मया तत् सकल सृजस्व विविध जगत्॥७४॥
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यह ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कल परमेश्वर ॥७५॥
स त्व ममाग्रज पुत्र सृष्टिहेतोर्विनिर्मित ।
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तम ॥७६॥
तस्य देवादिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशत ।
सम्बभूवाथ रुद्रोऽसावह तस्यापरा तनु ॥७७॥
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतव ।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शकर स्थित ॥७८॥

ब्रह्मन्! जो आपने 'मेरा पुत्र बनें' इस प्रकारसे मुझसे

प्रार्थना की थी, मैंने उसे (रुद्ररूपमे उत्पन्न होकर) पूर्ण कर दिया। (अब आप) विविध प्रकारके जगत् (की) सृष्टि कर। ब्रह्मन्! मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एव प्रलय—इन तीन गुणोसे भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन नामोसे तीन रूपोमें विभक्त हूँ। आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं और सृष्टिकी रचनाके लिये मेरे ही दाहिने अङ्गसे आप बनाये गये हैं। मेरे ही बाये अङ्गसे पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हैं। उन्हीं देवामे आदिदेव शम्भुके हृदयप्रदेशसे मैं ही रुद्र-रूपमें प्रादुर्भूत हूँ और उन्हींकी अपर मूर्ति हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव (क्रमश) सृष्टि, स्थिति तथा सहारके हेतु हैं। एक होते हुए भी वे शकर अपनी इच्छासे अपनेको (तीन रूपामे) विभक्तकर स्थित रहते हैं॥ ७४—७८॥

तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु।
निरूप केवल स्वच्छो महादेव स्वभावत ॥७९॥

इसी प्रकार अन्य भी जो रूप हैं, वे सब मेरी मायाद्वारा ही निर्मित हैं। स्वरूपत महादेव स्वच्छ रूपरहित एव अद्वितीय हैं॥ ७९॥

एभ्य परतरो देवस्त्रिमूर्ति परमा तनु।
माहेश्वरी त्रिनयना योगिना शान्तिदा सदा॥८०॥

वे देव इन त्रिमूर्तियो (ब्रह्मा विष्णु, महेश)-से उत्कृष्ट एव श्रेष्ठ शरीरवाले हैं। तीन नेत्रोवाली वह माहेश्वरी मूर्ति योगियोको सदा शान्ति प्रदान करनेवाली है॥ ८०॥

तस्या एव परा मूर्तिं मामवेहि पितामह।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम् ॥८१॥
सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्।
कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति॥८२॥
यदा यदा हि मा नित्य विचिन्तयसि पद्मज।
तदा तदा मे सानिध्य भविष्यति तवानघ॥८३॥

पितामह! मुझे सनातन ऐश्वर्य विज्ञान, तेज एव योगसे समन्वित उनकी वही परा मूर्ति समझो। वही मैं कालरूप होकर तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त विश्वको ग्रस्त कर लेता हूँ, कोई दूसरा तमद्वारा मुझे अभिभूत नहीं कर सकता। निष्पाप कमलोद्भव। जब-जब मुझ सनातनका तुम ध्यान करोगे, तब-तब तुम मेरी समीपता प्राप्त करोगे॥ ८१—८३॥

एतावदुक्त्वा ब्रह्माण सोऽभिवन्द्य गुरु हर।
सहैव मानसै पुत्रै क्षणादन्तरधीयत॥८४॥

इतना कहकर गुरु (पिता) ब्रह्माकी वन्दना करके वे हर (महेश्वर) मानस पुत्रोंके साथ क्षणभरमे ही अन्तर्धान हो गये॥ ८४॥

सोऽपि योग समास्थाय ससर्ज विविधं जगत्।
नारायणाख्यो भगवान् यथापूर्वं प्रजापति ॥८५॥
मरीचिभृग्वङ्गिरस पुलस्त्य पुलह क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया॥८६॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता।
सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्या साधका ब्रह्मवादिन ॥८७॥

नारायण नामवाले उन भगवान्ने योगका अवलम्बन कर प्रजापतिने जैसी सृष्टि पूर्वमे की थी, वैसी ही विविध प्रकारके जगत्की सृष्टि की। योगविद्यासे उन्होने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष अत्रि और वसिष्ठको उत्पन्न किया। पुराणोके अनुसार यह निश्चित है कि ये नौ ब्रह्माण कहलाते हैं। ये सभी ब्रह्माके समान हे, साधक हैं और ब्रह्मवादी हैं॥ ८५—८७॥

सकल्प चैव धर्मं च युगधर्मांश्च शाश्वतान्।
स्थानाभिमानिन सर्वान् यथा ते कथित पुरा॥८८॥

जैसा पहले बताया गया था तदनुसार सकल्प धर्म, सनातन युगधर्म तथा सभी स्थानाभिमानी (देवताओ)-का वर्णन तुम्हे सुनाया गया॥ ८८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायां पूर्वविभागे दशमोऽध्याय ॥१०॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सती और पार्वतीका आविर्भाव, देवी-माहात्म्य, हेमवती-माहात्म्य, देवीका अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्र, हिमवान्‌द्वारा देवीकी स्तुति एवं हिमवान्‌को देवीद्वारा उपदेश, देवीसहस्रनामस्तोत्र-जपका माहात्म्य

श्रीकूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन् देवदेवः पितामहः।
सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः॥१॥

श्रीकूर्मने कहा—इस प्रकार मरीचि आदिकी सृष्टि करके देवोंके देव पितामह (ब्रह्मा अपने) मानस पुत्रोंके साथ परम तप करने लगे॥१॥

तस्यैवं तपतो वक्त्राद् रुद्रः कालाग्निसंनिभः।
त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः॥२॥
अर्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयंकरः।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात्॥३॥

इस प्रकार तप करते हुए उनके मुखसे कालाग्निके समान अति भयंकर, हाथमें त्रिशूल धारण किये, कठिनतासे देखे जाने योग्य, अर्धनारीश्वरका शरीर धारण किये हुए, त्रिलोचन ईशान रुद्र प्रकट हुए। 'अपना विभाग करो' ऐसा कहकर ब्रह्मा भयसे अन्तर्धान हो गये॥२-३॥

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वमथाकरोत्।
बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा पुनः॥४॥
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः।
कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः॥५॥

(ब्रह्माके द्वारा) ऐसा कहे जानेपर उन्होंने स्त्री तथा पुरुष-रूपसे दो भाग कर दिये। पुनः पुरुषभागको दस और एक—इस प्रकार ग्यारह भागोंमें बाँट दिया। ये ग्यारह रुद्र त्रिभुवनेश्वर कहलाते हैं। ब्राह्मणो! कपाली-ईश आदि ये सभी एकादश रुद्र देवताओंके कार्यमें नियोजित हैं॥४-५॥

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः॥६॥
ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि।
लक्ष्म्यादयो याभिरीशा विश्वं व्याप्नोति शांकरी॥७॥

उन प्रभु देवने सौम्य और रौद्र, शान्त और अशान्त तथा श्वेत और कृष्ण-रूपोंसे स्त्री-भागको भी अनेक रूपोंमें विभक्त किया। हे विप्रो! ये ही विभूतियाँ शक्तियोंके रूपमें लक्ष्मी आदि नामोंसे संसारमें विख्यात हैं। शंकरकी शक्ति ईशा इन्हींके द्वारा विश्वमें व्याप्त है॥६-७॥

विभज्य पुनरीशानी स्वात्मानं शंकराद् विभोः।
महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता॥८॥
तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव।
सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत् प्रजापतेः॥९॥
नियोगाद् ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम्।
दक्षाद् रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत्॥१०॥

पुनः ईशानी (ईशा) अपनेको विभु शंकरसे विभक्तकर महादेवके निर्देशसे वे पितामहके पास गयीं। भगवान् ब्रह्माने इनसे कहा—'दक्षकी पुत्री बनो।' ये भी उनके आदेशसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ उत्पन्न हुईं (इन्हींका नाम सती है)। (दक्षने) ब्रह्माकी आज्ञासे इन सतीदेवीको रुद्रको प्रदान कर दिया। त्रिशूलधारी रुद्रने भी दक्षसे अपनी ही (शक्ति)-को ग्रहण किया॥८—१०॥

प्रजापतिं विनिन्द्यैषा कालेन परमेश्वरी।
मेनायामभवत् पुत्री तदा हिमवतः सती॥११॥
स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्।
हिताय सर्वदेवानां त्रिलोकस्यात्मनोऽपि च॥१२॥

कालान्तरमें (यज्ञमें अपने आराध्य शिवका भाग न देखकर) दक्ष प्रजापतिकी निन्दा कर (तथा अपने शरीरका परित्याग कर) वे परमेश्वरी सती पुनः हिमवान्‌से मेनाकी पुत्री (पार्वती) बनीं। पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्‌ने भी पार्वतीको सभी देवताओं तीनों लोकों तथा स्वयं अपने भी कल्याणके लिये रुद्रको समर्पित कर दिया॥११-१२॥

सैषा माहेश्वरी देवी शंकरार्धशरीरिणी।
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता॥१३॥
तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः।
विदन्ति मुनयो वेत्ति शंकरो वा स्वयं हरिः॥१४॥

अनया परया देव स्वात्मानन्द ममश्नुते।
चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वर ॥ २८ ॥

उन शक्तियोको शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति—इस प्रकारसे कहा गया है और इसीलिये (अर्थात् इन चारो शक्तियोमे सम्पन्न होनेके कारण) परमेश्वर देवको भी चतुर्व्यूहात्मक[1] कहा जाता है। इस पराशक्तिके द्वारा देव (महेश्वर) स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। चारो ही वेदोमे चतुर्मूर्ति महेश्वर वर्णित हैं॥ २७-२८॥

अस्यास्त्वनादिससिद्धमैश्वर्यमतुल महत्।
तत्सम्बन्धादनन्ताया रुद्रेण परमात्मना ॥ २९ ॥
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका।
प्रोच्यते भगवान् कालो हरि प्राणो महेश्वर ॥ ३० ॥

उन रुद्र परमात्माके सम्बन्धसे इस अनन्ता (शक्ति)-का महान् अतुलनीय ऐश्वर्य सिद्ध है। वे ही ये सर्वेश्वरी देवी सभी प्राणियोको प्रवर्तित करती हैं। भगवान् काल, हरि, प्राण तथा महेश्वर कहे जाते हैं॥ २९-३०॥

तत्र सर्वमिद प्रोतमोत चैवाखिल जगत्।
स कालोऽग्निर्हरो रुद्रो गीयते वेदवादिभि ॥ ३१ ॥
काल सृजति भूतानि काल सहरते प्रजा ।
सर्वे कालस्य वशगा न काल कस्यचिद् वशे॥ ३२ ॥
प्रधान पुरुषस्तत्त्व महानात्मा त्वहकृति ।
कालनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना॥ ३३ ॥

उनमे ही यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। वेदवादियो (वैदिको)-के द्वारा वे ही काल, अग्नि हर तथा रुद्र-रूपमे गाये जाते हैं। काल सभी प्राणियोकी सृष्टि करता है, काल ही प्रजाओका सहार करता है। सभी कालके वशीभूत हैं और काल किसीके वशमे नहीं है। (वह काल ही) प्रधान, पुरुष तत्त्व, महान्, आत्मा तथा अहकार है। योगी[2] कालमें ही अन्य सभी तत्त्व समाविष्ट हैं॥ ३१—३३॥

तस्य सर्वजगत्सूति शक्तिर्मायेति विश्रुता।
तयेद भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तम ॥ ३४ ॥
सैषा मायात्मिका शक्ति सर्वाकारा सनातनी।
वैश्वरूप्य महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत्॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण जगत्को उनकी (इशकी) सतान और उनकी शक्तिको माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उस (माया)-के द्वारा ही इस (जगत्)-को भ्रमित (मोहित) करते हैं। वही यह सर्वाकारा, सनातनी मायात्मिका शक्ति महेशके विश्वरूपत्वको सदा प्रकाशित करती रहती है॥ ३४-३५॥

अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिता ।
ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति प्राणशक्तिरिति त्रयम्॥ ३६ ॥
सर्वासामेव शक्तीना शक्तिमन्तो विनिर्मिता ।
माययैवाथ विप्रेन्द्रा सा चानादिरनन्तया॥ ३७ ॥
सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया।
मायावी सर्वशक्तीश काल कालकर प्रभु ॥ ३८ ॥

उन देवके द्वारा निर्मित ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा प्राणशक्ति—ये तीन अन्य मुख्य शक्तियाँ हैं। विप्रेन्द्रो! अनन्त मायाके द्वारा ही सभी शक्तियोसे युक्त शक्तिमानोका निर्माण हुआ है, किंतु वह (माया) अनादि है। सभी शक्तियोकी आत्मरूप वह माया बडी कठिनतासे निवारण करने योग्य और बडे ही कष्टसे पार करने योग्य है। सभी शक्तियोके स्वामी मायावी प्रभु स्वय काल हैं और कालको भी उत्पन्न करनेवाले हैं॥ ३६—३८॥

करोति काल सकल सहरेत् काल एव हि।
काल स्थापयते विश्व कालाधीनमिद जगत्॥ ३९ ॥

काल ही सब कुछ (उत्पन्न) करता है और काल ही (सबका) सहार करता है। विश्वकी स्थापना काल करता है और कालके ही अधीन यह सारा जगत् है॥ ३९॥

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सनिधि परमेष्ठिन ।
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भो कालात्मन प्रभो ॥ ४० ॥
प्रधान पुरुषो माया माया चैव प्रपद्यते।
एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा॥ ४१ ॥

देवाधिदेव परमेष्ठी अनन्त और अखिल (विश्व)-के स्वामी कालात्मा प्रभु शम्भुका सानिध्य प्राप्तकर वही माया शक्ति, प्रधान पुरुष एव माया नामकी शक्तिका रूप धारण करती है। वह शक्ति अद्वितीय सर्वत्र व्याप्त, अन्तरहित केवल भेदशून्य और कल्याणकारिणी है॥ ४०-४१॥

एका शक्ति शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिव ।
शक्तय शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवा ॥ ४२ ॥

१-व्यूहका अर्थ शक्ति है।

२-कालमें सभी प्रकारका सामर्थ्य है इसीलिये कालको योगी कहा गया है।

शक्तिशक्तिमतोर्भेद वदन्ति परमार्थत ।
अभेद चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तका ॥४३॥
शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमन्तोऽथ शकर ।
विशेष कथ्यते चाय पुराणे ब्रह्मवादिभि ॥४४॥

शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियाँ तथा शक्तिमान् (इसी) शक्तिसे उत्पन्न हैं। शक्ति और शक्तिमान्मे भेद कहा जाता है, किंतु तत्त्वका चिन्तन करनेवाले योगीजन (उनमे) परमार्थत अभेदका ही दर्शन करते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं वे गिरिजादेवी और जितने भी शक्तिमान् हैं वे शकर हैं। ब्रह्मवादियोके द्वारा पुराणमे इनके विषयमे विशेष (रूपसे) कहा जाता है॥ ४२—४४॥

भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता।
प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपर्दी नीललोहित ॥४५॥
मन्ता विश्वेश्वरो देव शकरो मन्मथान्तक ।
प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारत ॥४६॥

महेश्वरकी पतिव्रता देवी विश्वेश्वरीको भोग्या और नीललोहित जटाधारी भगवान् (शकर)-को भोक्ता कहा गया है। कामदेवका अन्त करनेवाले, विश्वके स्वामी देव शकरको मनन करनेवाला मन्ता और ईशानीको मति एव विचारद्वारा मानने योग्य (मन्तव्या) कहा गया है॥ ४५-४६॥

इत्येतदखिल विप्रा शक्तिशक्तिमदुद्भवम्।
प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि ॥४७॥
एतत् प्रदर्शित दिव्य देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चित ब्रह्मवादिभि ॥४८॥

ब्राह्मणो! तत्त्वद्रष्टा मुनियोके द्वारा सभी वेदोमे यही कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व शक्ति एव शक्तिमान्से प्रादुर्भूत है। इस प्रकार ब्रह्मवादियोके द्वारा समस्त वेदान्त एव वेदोमे निश्चित किये गये देवीके दिव्य एव उत्तम माहात्म्यका यह वर्णन किया गया॥ ४७-४८॥

एक सर्वगत सूक्ष्म कूटस्थमचल ध्रुवम्।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्या पर पदम्॥४९॥
आनन्दमक्षर ब्रह्म केवल निष्कल परम्।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्या पर पदम्॥५०॥
परात्परतर तत्त्व शाश्वत शिवमच्युतम्।
अनन्तप्रकृतौ लीन देव्यास्तत् परम पदम्॥५१॥
शुभ निरञ्जन शुद्ध निर्गुण द्वैतवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषय देव्यास्तत् परम पदम्॥५२॥
सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम्।
ससारतापानखिलान् निहन्तीश्वरसश्रया॥५३॥
तस्माद् विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम्।
आश्रयेत् सर्वभावानामात्मभूता शिवात्मिकाम्॥५४॥

महादेवीका जो सर्वव्यापक, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल तथा ध्रुव परम पद है, उसका योगी साक्षात्कार करते हैं। महादेवीका जो आनन्दमय, अविनाशी, ब्रह्मरूप, अद्वितीय एव भेदरहित परम पद है, योगी उसका दर्शन करते हैं। देवीका वह परम पद परसे भी परतर, तत्त्वरूप, सनातन, कल्याणकारी, अच्युत तथा अनन्त प्रकृतिमे लीन है। देवीका वह परम पद शुभ निरञ्जन शुद्ध निर्गुण, द्वैतरहित और आत्मज्ञानका विषय है। परम आनन्द चाहनेवालोंके लिये वे ही धात्री तथा विधात्री हैं। वे ईश्वरके आश्रयसे ससारके सारे पापोका विनाश करती हैं। इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवालोको चाहिये कि वे सभी भावाकी आत्मस्वरूपा शिवात्मिका परमेश्वरी पार्वतीका आश्रय ग्रहण करें॥ ४९—५४॥

लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
सभार्य शरण यात पार्वतीं परमेश्वरीम्॥५५॥
ता दृष्ट्वा जायमाना च स्वेच्छयैव वराननाम्।
मेना हिमवत पत्नी प्राहेद पर्वतेश्वरम्॥५६॥

अत्यन्त कठोर तप करनेके अनन्तर शर्वाणी (शकरप्रिया)-को पुत्रीरूपमे प्राप्तकर (हिमवान् अपनी) भार्याके साथ परमेश्वरी पार्वतीकी शरणम गये। अपनी इच्छासे उत्पन्न उस श्रेष्ठ मुखवालीको देखकर हिमवान्की पत्नी मेनाने गिरिराज हिमालयसे इस प्रकार कहा— ॥ ५५-५६॥

मेनोवाच

पश्य बालामिमा राजन् राजीवसदृशाननाम्।
हिताय सर्वभूताना जाता च तपसावयो ॥५७॥

मेना बोलीं—राजन्! कमलके समान मुखवाली इस बालिकाको देखो। (यह) हम दोनाकी तपस्या (के प्रभाव)-से सभी प्राणियाके कल्याणके लिये उत्पन्न हुई है॥ ५७॥

सोऽपि दृष्ट्वा तत पुत्रीं तरुणादित्यसनिभाम्।
कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रामतिलालसाम्॥५८॥

अष्टहस्ता विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम्।
निर्गुणा सगुणा साक्षात् सदसद्व्यक्तिवर्जिताम्॥५९॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वल।
भीत कृताञ्जलिस्तस्या प्रोवाच परमेश्वरीम्॥६०॥

तरुण सूर्यके समान (देदीप्यमान), जटायुक्त, चतुर्मुख तीन नेत्रोवाली, उत्कृष्ट इच्छास्वरूप, आठ हाथो और विशाल नेत्रोवाली, चन्द्रमाकी कलाओके आभूषण धारण की हुई, गुणातीत एव गुणयुक्त तथा सत्-असत्‌के भावासे रहित साक्षात् देवीको पुत्रीरूपमे देखकर हिमवान्‌ने भूमिपर मस्तक लगाकर प्रणाम किया और उनके तेजसे अत्यन्त विह्वल तथा भयभीत होते हुए हाथ जोडकर उन परमश्वरीसे कहा— ॥ ५८—६०॥

हिमवानुवाच

का त्व देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते।
न जाने त्वामह वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते॥६१॥

हिमवान् बोले—विशाल नेत्रावाली तथा चन्द्रमाकी कलाओसे सुशोभित देवि! आप कौन हैं? वत्से! मैं आपको नहीं जानता हूँ। मुझ पूछनेवालेको आप यथार्थरूपसे बतलाय॥ ६१॥

गिरीन्द्रवचन श्रुत्वा तत सा परमेश्वरी।
व्याजहार महाशैल योगिनामभयप्रदा॥६२॥

योगियोंको अभय प्रदान करनेवाली उस परमेश्वरीने गिरिराज (हिमालय)-का वचन सुनकर महाशैलसे कहा— ॥ ६२॥

देव्युवाच

मा विद्धि परमा शक्ति परमेश्वरसमाश्रयाम्।
अनन्यामव्ययामेका या पश्यन्ति मुमुक्षव ॥६३॥
अह वै सर्वभावानामात्मा सर्वान्तरा शिवा।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्ति सर्वप्रवर्तिका॥६४॥
अनन्तानन्तमहिमा ससारार्णवतारिणी।
दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे रूपमैश्वरम्॥६५॥

देवी बोलीं—मोक्षकी इच्छा करनेवाले (मोक्षार्थी) जिस अनन्य अविनाशी तथा अद्वितीय (शक्ति)-का दर्शन करते हैं परमेश्वरके आश्रयमे रहनेवाली वही परम शक्ति मुझे समझो। मैं ही सभी पदार्थोकी आत्मा सभीके अदर रहनेवाली कल्याणकारिणी सनातन ऐश्वर्य तथा विज्ञानकी मूर्ति और सभीको प्रवृत्त करनेवाली हूँ। मैं अनन्त और अनन्त महिमावाली तथा ससारसागरसे पार उतारनेवाली हूँ। मैं तुम्हे दिव्य दृष्टि प्रदान करती हूँ, मेरे ऐश्वर्यमय रूपको देखो॥ ६३—६५॥

एतावदुक्त्वा विज्ञान दत्त्वा हिमवते स्वयम्।
स्व रूप दर्शयामास दिव्य तत् पारमेश्वरम्॥६६॥

इतना कहकर तथा हिमवान्‌को स्वय विशिष्ट ज्ञान प्रदान कर (देवीने) अपना वह परमेश्वरमय दिव्य रूप दिखलाया॥ ६६॥

कोटिसूर्यप्रतीकाश तेजोबिम्ब निराकुलम्।
ज्वालामालासहस्राढ्य कालानलशतोपमम्॥६७॥
दंष्ट्राकराल दुर्धर्ष जटामण्डलमण्डितम्।
त्रिशूलवरहस्त च घोररूप भयानकम्॥६८॥
प्रशान्त सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसयुतम्।
चन्द्रावयवलक्ष्माण चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥६९॥
किरीटिन गदाहस्त नूपुरैरुपशोभितम्।
दिव्यमाल्याम्बरधर दिव्यगन्धानुलेपनम्॥७०॥
शङ्खचक्रधर काम्य त्रिनेत्र कृत्तिवाससम्।
अण्डस्थ चाण्डबाह्यस्थ बाह्यमाभ्यन्तर परम्॥७१॥
सर्वशक्तिमय शुभ्र सर्वाकार सनातनम्।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम् ॥७२॥
सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वमावृत्य तिष्ठन्त ददर्श परमेश्वरम्॥७३॥

(हिमवान्‌ने) करोडों सूर्यके समान (प्रकाशमान) तेज-पुञ्ज, स्थिर, हजारों ज्वालामालाओसे युक्त, सैकडों कालाग्निके समान भयकर दाढावाला दुर्धर्ष जटामण्डलोसे मण्डित, हाथमे त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये भयानक, घोर रूप एव प्रशान्त सौम्य मुखवाला अनन्त आश्चर्योंसे युक्त, चन्द्रकलासे चिह्नित करोटो चन्द्रमाओंकी आभावाला मुकुट धारण किये हाथमे गदा लिये नूपुरोंसे सुशोभित दिव्य वस्त्र एव माला धारण किये दिव्य सुगन्धित अनुलेपन किये हुए, शङ्ख-चक्रधारी कमनीय तीन नेत्रवाले चर्माम्बरधारी ब्रह्माण्डके बाहर एव भीतर (सर्वत्र) स्थित बाहर तथा भीतर सर्वत्र श्रेष्ठ सर्वशक्तिमय शुभ्र सभी आकारोंसे युक्त सनातन ब्रह्मा इन्द्र विष्णु और श्रेष्ठ योगियोद्वारा वन्दित चरणकमलोवाला सभी ओर हाथ पैर आँख सिर एव मुखवाला और सभीको आवृत कर स्थित रहनेवाला

(देवीका वह) परमेश्वर-रूप देखा॥ ६७—७३॥

दृष्ट्वा तदीदृश रूप देव्या माहेश्वर परम्।
भयेन च समाविष्ट स राजा हृष्टमानस ॥७४॥
आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कार समनुस्मरन्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्॥७५॥

देवीके इस प्रकारके उस परम माहेश्वर रूपको देखकर वे (पर्वतोके) राजा (हिमवान्) भयसे आविष्ट[1] होते हुए भी प्रसन्न मनवाल हो गये। (और) अपनी आत्मामे आत्माको प्रतिष्ठितकर (आत्मनिष्ठ होकर) ओङ्कारका स्मरण करते हुए (वे) परमेश्वरीके एक हजार आठ नामासे उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ७४-७५॥

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला।
शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा॥७६॥
अचिन्त्या केवलानन्त्या शिवात्मा परमात्मिका।
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाचला॥७७॥
एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला।
महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना॥७८॥
काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा।
नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा॥७९॥
शान्ति प्रतिष्ठा सर्वेषा निवृत्तिरमृतप्रदा।
व्योममूर्तिर्व्योमलया व्योमाधाराऽच्युताऽमरा॥८०॥
अनादिनिधनामोघा कारणात्मा कलाकला।
क्रतु प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसश्रया॥८१॥
प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषघातिनी।
प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी॥८२॥

हिमवान्ने कहा—(हे देवी! आप) शिवा उमा परमा शक्ति, अनन्ता निष्कला अमला, शान्ता माहेश्वरी, नित्या शाश्वती, परमाक्षरा, अचिन्त्या, केवला अनन्त्या शिवात्मिका, परमात्मिका अनादि, अव्यया शुद्धा दवात्मिका, सर्वगा अचला, एका अनेकविभागस्था (विविध रूपाम स्थित) मायातीता सुनिर्मला, महामाहेश्वरी सत्या, महादवी निरञ्जना, काष्ठा सर्वान्तरस्था (सभीके हृदयमें स्थित रहनेवाली) चिच्छक्ति (चैतन्यशक्तिरूपा), अतिलालसा (उत्कृष्ट इच्छारूपा), नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतीरूपा, अमृताक्षरा, शान्ति, सभीकी प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा, व्योममूर्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता अमरा, अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मिका, कला अकला, क्रतु, प्रथमजा, अमृतनाभि, आत्मसश्रया, प्राणेश्वरप्रिया, माता महामहिषघातिनी प्राणेश्वरी, प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी॥ ७६—८२॥

सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा।
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी॥८३॥
अनादिरव्यक्तगुहा महानन्दा सनातनी।
आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी॥८४॥
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
ससारयोनि सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा॥८५॥
ससारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा।
प्राणशक्ति प्राणविद्या योगिनी परमा कला॥८६॥
महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा।
अनाद्यनन्तविभवा परार्था पुरुषारणि ॥८७॥
सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया।
शब्दयोनि शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा॥८८॥
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका।
पुराणी चिन्मयी पुसामादि पुरुषरूपिणी॥८९॥
भूतान्तरात्मा कूटस्था महापुरुषसज्ञिता।
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता॥९०॥
व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी।
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता॥९१॥
अनादिमायासम्भिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुहा।
महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा॥९२॥

सर्वशक्तिकलाकारा, ज्योत्स्ना, द्यौ (आकाशरूपा) महिमास्पदा सर्वकार्यनियन्त्री सर्वभूतेश्वरेश्वरी अनादि अव्यक्तगुहा, महानन्दा सनातनी आकाशयानि योगस्था महायोगश्वरेश्वरी महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृति, ईश्वरी, ससारयोनि, सकला, सर्वशक्तिसमुद्भवा, ससारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा (कठिन तपस प्राप्त करन याग्य)

१-अपनी पुत्रीमें परस्पर-विरोधी अनेक रूपोंको देखकर भयभीत होना स्वाभाविक है पर ऐश्वर्यसम्पन्न देवी ही मेरी पुत्री है—यह अनुभव कर प्रसन्नचित होना भी स्वाभाविक ही है।

प्राणशक्ति, प्राणविद्या योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा अनाद्यनन्तविभवा, परार्था पुरुषारणि पुरुष (परब्रह्म) ही जिनकी अरणि (अग्निमन्थनका काष्ठ-विशेष है), सर्गस्थित्यन्तकारिणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्दयोनि शब्दमयी, नादाख्या, नादविग्रहा, प्रधानपुरुषातीता, प्रधानपुरुषात्मिका, पुराणी, चिन्मयी, पुरुषाकी आदिस्वरूपा, पुरुषरूपिणी, भूतान्तरात्मा, कूटस्था, महापुरुषसंज्ञिता, जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता, व्यापिनी अनवच्छिन्ना, प्रधानानुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता, अनादिमायासम्भिन्ना (अनादिमायारूपा), त्रितत्त्वा, प्रकृति, गुहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, ध्रुवा॥ ८३—९२॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका।
अकार्या कार्यजननी नित्य प्रसवधर्मिणी॥ ९३॥
सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी।
ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाच्युतात्मिका॥ ९४॥
वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया।
सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता॥ ९५॥
विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी।
महीयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्भवा॥ ९६॥
महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका।
सर्वसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिका॥ ९७॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला, प्रसूतिका अकार्या, कार्यजननी नित्यप्रसवधर्मिणी सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा (चौबीस तत्त्वोंमें अन्तिम तत्त्व) पद्मनाभा अच्युतात्मिका वैद्युती शाश्वती योनि (मूल कारण) जगन्माता ईश्वरप्रिया सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी महीयसी ब्रह्मयोनि महालक्ष्मीसमुद्भवा महाविमानमध्यस्था महानिद्रा आत्महेतुका सर्वसाधारणी सूक्ष्मा अविद्या पारमार्थिका॥ ९३—९७॥

अनन्तरूपानन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी।
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता॥ ९८॥
ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया॥ ९९॥
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी।
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता।
अपांयोनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा॥ १००॥
ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्धशरीरिणी।
भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका॥ १०१॥
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा॥ १०२॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी।
ईश्वरार्धासनगता महेश्वरपतिव्रता॥ १०३॥

अनन्तरूपा, अनन्तस्था, देवी, पुरुषमोहिनी अनेकाकार-संस्थाना, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा, हरिमूर्ति (हरिकी मूर्ति), ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेशविष्णुजननी, ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मिका, ब्रह्ममूर्ति हृदिस्थिता, अपांयोनि (जलकी योनि) स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी शंकरार्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी महालक्ष्मी अम्बिका महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या नित्यमुदितमानसा ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शंकरेच्छानुवर्तिनी ईश्वरार्धासनगता महेश्वरपतिव्रता॥ ९८—१०३॥

सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी॥ १०४॥
गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकासिनी।
सावित्री कमला लक्ष्मी श्रीरनन्तोरसिस्थिता॥ १०५॥
सरोजनिलया मुद्रा योगनिद्रासुरार्दिनी।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला॥ १०६॥
वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका।
योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना॥ १०७॥
गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता।
स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः॥ १०८॥
नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी।
अजा विभावरी सौम्या भोगिनी भोगदायिनी॥ १०९॥
शोभा वंशकरी लोला मालिनी परमेष्ठिनी।
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी॥ ११०॥

सकृद्विभाविता सर्वा, समुद्रपरिशोषिणी पार्वती हिमवत्पुत्री

परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगजा, योग्या ज्ञानमूर्ति, विकासिनी सावित्री, कमला लक्ष्मी, श्री अनन्तोरसिस्थिता (विष्णुके हृदयमे रहनेवाली), सरोजनिलया, मुद्रा, योगनिद्रा, असुरार्दिनी, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला, वाग्देवी वरदा, वाच्या कीर्ति, सर्वार्थसाधिका योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या सुशोभना, गुह्यविद्या आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा धृति, श्रुति, नीति सुनीति सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, अजा विभावरी, सौम्या, भोगिनी, भोगदायिनी, शोभा, वशकरी, लोला (चञ्चला), मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी कामचारिणी ॥ १०४—११० ॥

महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी।
पद्ममाला पापहरा विचित्रा मुकुटानना ॥ १११ ॥
कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
हसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्धिनी ॥ ११२ ॥
निर्यन्त्रा यन्त्रवाहस्था नन्दिनी भद्रकालिका।
आदित्यवर्णा कौमारी मयूरवरवाहिनी ॥ ११३ ॥
वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता।
अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा विवाहना ॥ ११४ ॥
विरूपाक्षी लेलिहाना महापुरनिवासिनी।
महाफलानवद्याङ्गी कामपूरा विभावरी ॥ ११५ ॥
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जिनी।
कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी ॥ ११६ ॥
बहुरूपा सुरूपा च विरूपा रूपवर्जिता।
भक्तार्तिशमनी भव्या भवभावविनाशिनी ॥ ११७ ॥

महानुभावा, सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी, पद्ममाला पापहरा विचित्रा, मुकुटानना, कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता, हसाख्या व्योमनिलया, जगत्सृष्टिविवर्धिनी निर्यन्त्रा यन्त्रवाहस्था नन्दिनी, भद्रकालिका आदित्यवर्णा, कौमारी मयूरवरवाहिनी, वृषासनगता गौरी, महाकाली, सुरार्चिता अदिति, नियता रौद्री पद्मगर्भा विवाहना विरूपाक्षी, लेलिहाना महापुरनिवासिनी महाफला अनवद्याङ्गी, कामपूरा विभावरी विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जिनी कौशिकी, कर्षणी रात्रि त्रिदशार्तिविनाशिनी बहुरूपा सुरूपा विरूपा रूपवर्जिता भक्तार्तिशमनी भव्या भवभावविनाशिनी ॥ १११—११७ ॥

निर्गुणा नित्यविभवा नि सारा निरपत्रपा।
यशस्विनी सामगीतिर्भवाङ्गनिलयालया ॥ ११८ ॥
दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी।
सर्वातिशायिनी विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ११९ ॥
सर्वेश्वरप्रिया तार्क्ष्या समुद्रान्तरवासिनी।
अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया ॥ १२० ॥
कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी।
नि सङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा ॥ १२१ ॥
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी।
महाभगवती दुर्गा वासुदेवसमुद्भवा ॥ १२२ ॥
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा।
ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गति ॥ १२३ ॥
दक्षिणा दहना दाह्या सर्वभूतनमस्कृता।
योगमाया विभावज्ञा महामाया महीयसी ॥ १२४ ॥

निर्गुणा, नित्यविभवा, नि सारा, निरपत्रपा, यशस्विनी, सामगीति, भवाङ्गनिलयालया, दीक्षा, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वातिशायिनी, विद्या, सर्वसिद्धिप्रदायिनी, सर्वेश्वरप्रिया, तार्क्ष्या, समुद्रान्तरवासिनी, अकलका निराधारा, नित्यसिद्धा निरामया, कामधेनु, बृहद्गर्भा धीमती, मोहनाशिनी, नि सङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा ज्वालामालासहस्राढ्या, देवदेवी मनोन्मनी, महाभगवती, दुर्गा, वासुदेवसमुद्भवा महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या, परावरा ज्ञानज्ञया जरातीता, वेदान्तविषया गति दक्षिणा, दहना दाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया विभावज्ञा महामाया महीयसी॥ ११८—१२४ ॥

सध्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रयानति ।
बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामति ॥ १२५ ॥
ख्याति प्रज्ञा चिति सवित् महाभोगीन्द्रशायिनी।
विकृति शाकरी शास्त्री गणगन्धर्वसेविता ॥ १२६ ॥
वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया।
महारात्रि शिवानन्दा शचीदु स्वप्ननाशिनी ॥ १२७ ॥
इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी।
गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ॥ १२८ ॥
हव्यवाहान्तरागादि हव्यवाहसमुद्भवा।
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा ॥ १२९ ॥

बुद्धिमाता बुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी।
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसस्थिता॥ १३०॥

सध्या, सर्वसमुद्भूति, ब्रह्मवृक्षाश्रयानति, बीजाङ्कुरसमुद्भूति, महाशक्ति महामति, ख्याति, प्रज्ञा, चिति, सवित्, महाभागीन्द्रशायिनी, विकृति, शाकरी, शास्त्री, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवानन्दा, शची दु स्वप्ननाशिनी, इज्या, पूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेया, सुरूपिणी, गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्योनि जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धिमाता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसस्थिता॥ १२५—१३०॥

सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता।
ससारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया॥ १३१॥
ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणि।
हिरण्मयी महारात्रि ससारपरिवर्तिका॥ १३२॥
सुमालिनी सुरूपा च भाविनी तारिणी प्रभा।
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी॥ १३३॥
सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा।
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी॥ १३४॥
जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया।
निराश्रया निराहारा निरङ्कुरवनोद्भवा॥ १३५॥
चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी।
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा॥ १३६॥
विद्येश्वरप्रिया विद्या विद्युज्जिह्वा जितश्रमा।
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा॥ १३७॥

सर्वेन्द्रियमनामाता सर्वभूतहृदिस्थिता ससारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनालया ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणि हिरण्मयी महारात्रि ससारपरिवर्तिका, सुमालिनी, सुरूपा भाविनी तारिणी प्रभा उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा सत्त्वशुद्धिकरी[1] शुद्धि मलत्रयविनाशिनी जगत्प्रिया जगन्मूर्ति त्रिमूर्ति अमृताश्रया निराश्रया निराहारा निरङ्कुरवनोद्भवा चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा विद्येश्वरप्रिया विद्या विद्युज्जिह्वा जितश्रमा विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा॥ १३१—१३७॥

सहस्ररश्मि सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया।
क्षालिनी सन्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका॥ १३८॥
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा।
व्योमलक्ष्मी सिहरथा चेकितानामितप्रभा॥ १३९॥
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी।
अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी॥ १४०॥
सदानन्दा सदाकीर्ति सर्वभूताश्रयस्थिता।
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणि॥ १४१॥
ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया।
व्योमशक्ति क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति परागति॥ १४२॥
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता।
अभिन्नाभिन्नसस्थाना वशिनी वशहारिणी॥ १४३॥
गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी।
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी॥ १४४॥

सहस्ररश्मि सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी, सन्मयी, व्याप्ता तैजसी, पद्मबाधिका, महामायाश्रया, मान्या महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिहरथा, चेकिताना अमितप्रभा, वीरेश्वरी विमानस्था विशोका, शोकनाशिनी अनाहता, कुण्डलिनी नलिनी, पद्मवासिनी सदानन्दा सदाकीर्ति, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता कलारणि ब्रह्मश्री ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति परागति क्षोभिका बन्धिका भद्या भेदाभेदविवर्जिता *अभिन्ना, अभिन्नसस्थाना वशिनी, वशहारिणी, गुह्यशक्ति* गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला कालकारिणी॥ १३८—१४४॥

सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहारणि।
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी॥ १४५॥
कपिला कापिला कान्ता कनकाभा कलान्तरा।
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरस्सरा॥ १४६॥
पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति परमार्थार्थविग्रहा॥ १४७॥
धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा।
मनोहरा मनोरक्षा तापसी वेदरूपिणी॥ १४८॥
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी।
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी॥ १४९॥

---

१ मन्त्र (चिन्ह)।

विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी।
किनरी सुरभी वन्द्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा॥१५०॥
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका।
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी॥१५१॥

सर्ववित्, सर्वतोभद्रा गुह्यातीता, गुहारणि प्रक्रिया, योगमाता, गङ्गा, विश्वेश्वरेश्वरी कपिला, कापिला, कान्ता कनकाभा, कलान्तरा पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री पुरदरपुरस्सरा पोपणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूपणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया भानुमती, योगिज्ञेया मनोजवा, मनोहरा, मनारक्षा, तापसी वेदरूपिणी, वेदशक्ति वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्ति मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्ति, विद्युन्माला, विहायसी किनरी, सुरभी, वन्द्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती परमानन्दा परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या कामेश्वरेश्वरी॥ १४५—१५१॥

अचिन्त्याचिन्त्यविभवा हृल्लेखा कनकप्रभा।
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी॥१५२॥
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणि शिवोदया।
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना॥१५३॥
शान्ति प्रभावती दीप्ति पङ्कजायतलोचना।
आद्या हृत्कमलोद्भूता गवा माता रणप्रिया॥१५४॥
सत्क्रिया गिरिजा शुद्धा नित्यपुष्टा निरन्तरा।
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा॥१५५॥
हिरण्यवर्णा रजनी जगद्यन्त्रप्रवर्तिका।
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी॥१५६॥
रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी।
पद्मानना पद्मनिभा नित्यतुष्टामृतोद्भवा॥१५७॥
धुन्वती दु प्रकम्प्या च सूर्यमाता दृषद्वती।
महेन्द्रभगिनी मान्या वरेण्या वरदर्पिता॥१५८॥

अचिन्त्या अचिन्त्यविभवा, हल्लेखा कनकप्रभा, कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदाद्भूता, धनुष्पाणि, शिवोदया सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना शान्ति प्रभावती दीप्ति पङ्कजायतलोचना, आद्या हृत्कमलोद्भूता गवा माता (गौओंकी माता), रणप्रिया सत्क्रिया गिरिजा शुद्धा नित्यपुष्टा निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी चण्डी चर्चिका, शान्तविग्रहा, हिरण्यवर्णा, रजनी, जगद्यन्त्रप्रवर्तिका, मन्दराद्रिनिवासा, शारदा स्वर्णमालिनी, रत्नमाला रत्नगर्भा, पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी, पद्मानना, पद्मनिभा नित्यतुष्टा अमृतोद्भवा धुन्वती दु प्रकम्प्या सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, मान्या, वरेण्या वरदर्पिता॥ १५२—१५८॥

कल्याणी कमला रामा पञ्चभूता वरप्रदा।
वाच्या वरेश्वरी वन्द्या दुर्जया दुरतिक्रमा॥१५९॥
कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता।
भद्रकाली जगन्माता भक्ताना भद्रदायिनी॥१६०॥
कराला पिङ्गलाकारा नामभेदामहामदा।
यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्तिका॥१६१॥
शङ्खिनी पद्मिनी साख्या साख्ययोगप्रवर्तिका।
चैत्रा सवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणीन्द्रजा॥१६२॥
शुम्भारि खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया।
खगध्वजा खगारूढा परार्ध्या परमालिनी॥१६३॥
ऐश्वर्यवर्त्मनिलया विरक्ता गरुडासना।
जयन्ती हृद्गुहा रम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणी॥१६४॥
सकल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी।
कलिकल्मपहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा॥१६५॥

कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूता, वरप्रदा वाच्या, वरेश्वरी, वन्द्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा कालरात्रि, महावेगा वीरभद्रप्रिया, हिता, भद्रकाली जगन्माता भक्ताना भद्रदायिनी (भक्तोंका कल्याण करनेवाली), कराला पिङ्गलाकारा नामभेदा, अमहामदा, यशस्विनी यशोदा, षडध्वपरिवर्तिका शङ्खिनी, पद्मिनी साख्या, साख्ययोगप्रवर्तिका चैत्रा सवत्सरारूढा, जगत्सम्पूरणीन्द्रजा शुम्भारि खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया खगध्वजा खगारूढा, परार्ध्या, परमालिनी ऐश्वर्यवर्त्मनिलया विरक्ता गरुडासना जयन्ती, हृद्गुहा, रम्या, गह्वरेष्ठा, गणाग्रणी, सकल्पसिद्धा साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी कलिकल्मपहन्त्री, गुह्योपनिषत्, उत्तमा॥ १५९—१६५॥

निष्ठा दृष्टि स्मृतिर्व्याप्ति पुष्टिस्तुष्टि क्रियावती।
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्ति शिवामृता॥१६६॥
लोहिता सर्पमाला च भीषणी वनमालिनी।
अनन्तशयनानन्या नरनारायणोद्भवा॥१६७॥

नृसिही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा।
सकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकापादसश्रया ॥१६८॥
महाज्वाला महामूर्ति सुमूर्ति सर्वकामधुक्।
सुप्रभा सुस्तना गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा॥१६९॥
भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणि ।
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा॥१७०॥
अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा।
सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मार्थवर्जिता॥१७१॥
वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया।
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी॥१७२॥
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी।
अशेषदेवतामूर्तिर्देवता वरदेवता।
गणाम्बिका गिरे पुत्री निशुम्भविनिपातिनी॥१७३॥

निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, विश्वामरेश्वरेशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, लोहिता, सर्पमाला भीषणी, वनमालिनी अनन्तशयना, अनन्या, नरनारायणोद्भवा नृसिही दैत्यमथनी, शङ्खचक्रगदाधरा, सकर्षण-समुत्पत्ति अम्बिकापदसश्रया, महाज्वाला महामूर्ति, सुमूर्ति सर्वकामधुक् सुप्रभा, सुस्तना, गौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराणपुरुषारणि, महाविभूतिदा, मध्या, सराजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मार्थवर्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका निरिन्द्रिया, विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी स्थानेश्वरी निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्ति देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरे पुत्री (गिरिपुत्री), निशुम्भविनिपातिनी॥ १६६—१७३॥

अवर्णा वर्णरहिता निवर्णा बीजसम्भवा।
अनन्तवर्णानन्यस्था शकरी शान्तमानसा॥१७४॥
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा।
गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता॥१७५॥
सत्यमात्रा सत्यसंधा त्रिसध्या सधिवर्जिता।
सर्ववादाश्रया सख्या सांख्ययोगसमुद्भवा॥१७६॥
असख्येयाप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा।
बिन्दुनादसमुत्पत्ति शम्भुवामा शशिप्रभा॥१७७॥
विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी।
महाश्री श्रीसमुत्पत्तिस्तम पारेप्रतिष्ठिता॥१७८॥
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसश्रया।
शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया॥१७९॥
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी।
दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकल्पिका॥१८०॥

अवर्णा, वर्णरहिता, निवर्णा, बीजसम्भवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शकरी, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा, गुणात्तरा, गौ (गौ), गी , गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता सत्यमात्रा, सत्यसधा, त्रिसध्या, सधिवर्जिता सर्ववादाश्रया, सख्या, साख्ययोगसमुद्भवा, असख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, बिन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विसङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्री (महाश्री) श्रीसमुत्पत्ति, तम पारे-प्रतिष्ठिता, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसश्रया शान्त्यतीता मलातीता, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्मात्री, काश्यपी काल-कल्पिका॥ १७४—१८०॥

शास्त्रयोनि क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका।
नारायणी नरोद्भूति कौमुदी लिङ्गधारिणी॥१८१॥
कामुकी ललिता भावा परापरविभूतिदा।
परान्तजातमहिमा बडवा वामलोचना॥१८२॥
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा।
मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा॥१८३॥
अमृत्युरमृता स्वाहा पुरुहूता पुरुष्टुता।
अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया॥१८४॥
हिरण्या राजती हैमी हेमाभरणभूषिता।
विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा॥१८५॥
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता।
दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्धिनी॥१८६॥
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका।
त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता॥१८७॥
सुधामा कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका।
सकर्षणी जगद्धात्री कामयोनि किरीटिनी॥१८८॥

ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी।
प्रद्युम्नदयिता दान्ता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना॥ १८९॥

शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोद्भूति, कौमुदी लिंगधारिणी, कामुकी, ललिता, भावा, परापरविभूतिदा, परान्तजातमहिमा, बडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता वेदवेदाङ्गपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा, अमृत्यु, अमृता, स्वाहा पुरहूता पुरुष्टुता, अशोच्या भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया, हिरण्या, राजती, हैमी हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा महानिद्रा समुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्धिनी, लक्ष्म्यादिशक्तिजननी, शक्तिचक्रप्रवर्तिका, त्रिशक्तिजननी, जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता, सुधामा, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, सकर्षणी, जगद्धात्री कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दान्ता युग्मदृष्टि, त्रिलोचना॥ १८१—१८९॥

मदोत्कटा हंसगति प्रचण्डा चण्डविक्रमा।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी॥ १९०॥
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी।
चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी॥ १९१॥
वेदविद्याव्रतस्नाता धर्मशीलानिलाशना।
वीरभद्रप्रिया वीरा महाकालसमुद्भवा॥ १९२॥
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृति।
आप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी खिला॥ १९३॥
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया।
करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा॥ १९४॥
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी॥ १९५॥
वसुप्रदा वसुमती वसोर्धारा वसुधरा।
धाराधरा वरारोहा वरावरसहस्रदा॥ १९६॥

मदोत्कटा हंसगति, प्रचण्डा चण्डविक्रमा वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी, चाणूरहन्तृतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, वेदविद्याव्रतस्नाता, धर्मशीला अनिलाशना—वीरभद्रप्रिया वीरा महाकालसमुद्भवा विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृति आप्यायनी हरन्ती पावना पोषणी, खिला मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा, वाहनप्रिया करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगाङ्का, मानदायिनी, वसुप्रदा, वसुमती, वसोर्धारा, वसुधरा, धाराधरा, वरारोहा, वरावरसहस्रदा॥ १९०—१९६॥

श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्धशरीरिणी॥ १९७॥
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया।
निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना॥ १९८॥
सुषेणा चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया।
रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानामृतस्रवा॥ १९९॥
नित्योदिता स्वयञ्ज्योतिरुत्सुका मृतजीवनी।
वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा॥ २००॥
मङ्गल्या मङ्गला माला मलिना मलहारिणी।
गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया॥ २०१॥

श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्धशरीरिणी अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसघाना निहन्त्री (दैत्यसघनिहन्त्री), सिंहिका, सिंहवाहना सुषेणा, चन्द्रनिलया, सुकीर्ति, छिन्नसंशया रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्रवा, नित्योदिता, स्वयज्योति, उत्सुका, मृतजीवनी, वज्रदण्डा वज्रजिह्वा, वैदेही वज्रविग्रहा मङ्गल्या मङ्गला माला, मलिना, मलहारिणी गान्धर्वी, गारुडी चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया॥ १९७—२०१॥

सौदामिनी जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना।
कर्णिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिणी॥ २०२॥
युगंधरा युगावर्ता त्रिसंध्या हर्षवर्धिनी।
प्रत्यक्षदवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा॥ २०३॥
शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना।
इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता॥ २०४॥
शतरूपा शतावर्ता विनता सुरभि सुरा।
सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता॥ २०५॥
समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा।
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना॥ २०६॥

सादामिनी, जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिणी, युगधरा, युगावर्ता त्रिसध्या हर्षवर्धिनी प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा,

शक्रासनगता, शाक्री साध्वी नारी, शवासना, इष्टा विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता शतरूपा, शतावर्ता, विनता, सुरभि सुरा सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता समीक्ष्या, सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना॥ २०२—२०६॥

धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी॥ २०७॥
धर्मान्तरा धर्ममेघा धर्मपूर्वा धनावहा।
धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा॥ २०८॥
कापाली शाकला मूर्तिः कला कलितविग्रहा।
सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया॥ २०९॥
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सुसूक्ष्मा ज्ञानरूपिणी।
प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी।
सदाशिवा वियन्मूर्तिर्विश्वमूर्तिरमूर्तिका॥ २१०॥

धर्माधर्मविनिर्मात्री, धार्मिकाणां शिवप्रदा (धार्मिकोंका कल्याण करनेवाली), धर्मशक्ति धर्ममयी, विधर्मा विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममेघा धर्मपूर्वा धनावहा धर्मोपदेष्ट्री, धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा कापाली शाकला, मूर्ति कला कलितविग्रहा सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सुसूक्ष्मा, ज्ञानरूपिणी प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी सदाशिवा, वियन्मूर्ति, विश्वमूर्ति तथा अमूर्तिका—(के नामसे प्रसिद्ध) हैं॥ २०७—२१०॥

एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वासौ हिमवान् गिरिः।
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः॥ २११॥

इस प्रकार हजार नामोंसे (देवीकी) स्तुति करके वे भयभीत हिमवान् पर्वत पुनः प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार बोले—॥ २११॥

यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि।
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत् प्रदर्शय॥ २१२॥
एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती।
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुनः॥ २१३॥

हे परमेश्वरि! यह जो आपका घोर ऐश्वर (विराट्) रूप है, उसे देखकर मैं इस समय भयभीत हो गया हूँ, आप अपना दूसरा (सौम्य) रूप मुझे दिखाये। उन (हिमवान्) पर्वतके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन देवी पार्वतीने अपने उस विराट् रूपको समेटकर दूसरा (सौम्य) रूप उन्हें दिखलाया॥ २१२-२१३॥

नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धिकम्।
द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम्॥ २१४॥
रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्।
श्रीमद् विशालसंवृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम्॥ २१५॥
भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम्।
दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम्॥ २१६॥
ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम्।
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम्॥ २१७॥

(देवीका वह रूप) नील कमलदलके समान (नीलवर्णवाला), नीलकमलके समान सुगन्धियुक्त दो नेत्र एवं दो भुजावाला सौम्य, नीले अलकोंसे विभूषित, रक्तकमलके समान चरणतलवाला सुन्दर लाल पल्लवके समान हाथवाला श्रीयुक्त (वह रूप) विशाल एवं प्रशस्त ललाटपर लगे तिलकसे प्रफुल्लित (था)। (उसके) सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल सुन्दर तथा भूषणोंसे आभूषित थे। (उन देवीने) स्वर्णनिर्मित विशाल मालाको अपने वक्ष-स्थलपर धारण कर रखा था। सुन्दर बिम्बफलके समान (रक्त) ओठ मन्द मधुर मुसकानयुक्त था। (चरणोंमें धारण किये) नूपुरोंसे ध्वनि निकल रही थी। (देवीका वह रूप) प्रसन्न मुखवाला तथा दिव्य एवं अनन्त महिमामें प्रतिष्ठित था॥ २१४—२१७॥

तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः।
भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम्॥ २१८॥

पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् देवीके इस प्रकारके (सौम्य) स्वरूपको देखकर भयका परित्यागकर प्रसन्न-मन होकर परमेश्वरीसे कहने लगे—॥ २१८॥

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
यन्मे साक्षात् त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा॥ २१९॥
त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम्।
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परा गतिः॥ २२०॥
वदन्ति केचित् त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम्।
अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रयाः॥ २२१॥

त्वयि प्रधानं पुरुषो महान् ब्रह्मा तथेश्वरः।
अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन्॥ २२२॥

हिमवान् बोले—मेरा जन्म लेना आज सफल हो गया, आज मेरा तप सफल हो गया, जो मुझ अव्यक्तस्वरूपा आप प्रसन्न होकर दृष्टिगोचर हुई हैं। देवि! आपके द्वारा सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है, आपमें प्रधानादि प्रतिष्ठित हैं और आपमें ही (वह सब) लीन भी हो जाता है। आप ही परम गति भी हैं। शिवके आश्रयमें रहनेवाली देवि! कुछ लोग आपको ही प्रकृति तथा प्रकृतिसे परे कहते हैं और दूसरे परमार्थको जाननेवाले आपको शिवा कहते हैं। आपमें प्रधान, पुरुष, महान्, ब्रह्मा तथा ईश्वर (प्रतिष्ठित हैं)। (आपसे) अविद्या, नियति, माया और सैकड़ों कला आदिकी उत्पत्ति हुई है॥ २१९—२२२॥

त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी।
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा॥ २२३॥
त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः।
प्रधानाद्यं जगत् कृत्स्नं करोति विकरोति च॥ २२४॥
त्वयैव संगतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते।
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी॥ २२५॥
त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम्॥ २२६॥
त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि।
वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः॥ २२७॥

आप ही वह परमा शक्ति अनन्ता और परमेष्ठिनी हैं। आप सभी भेदोंसे विनिर्मुक्त और सभी भेदोंके आश्रय एवं स्वयं प्रतिष्ठित हैं। हे योगेश्वरी! आपमें ही अधिष्ठित होकर महादेव महेश्वर प्रधान आदि सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं और फिर (उसका) संहार करते हैं। आपके ही संयोगसे महादेव स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। आप ही परमानन्द (रूपा) और आप ही आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। आप अक्षर, परमव्योम, महान् ज्योति, निरञ्जन, कल्याणरूप, सर्वगत, सूक्ष्म एवं सनातन परम ब्रह्म हैं। देवि! आप सभी देवताओंमें इन्द्र (रूप) और ब्रह्मज्ञानियोंमें ब्रह्मा (रूप) हैं। (आप) बलवानोंमें वायु (रूप) तथा योगियोंमें कुमारक (सनत्कुमार) हैं॥ २२३—२२७॥

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि।
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः॥ २२८॥
आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः।
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि॥ २२९॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः।
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि॥ २३०॥
ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः।
आश्रमाणां च गार्हस्थ्यमीश्वराणां महेश्वरः॥ २३१॥

आप ऋषियोंमें वसिष्ठ, वेदविदोंमें व्यास हैं। सांख्यशास्त्रके जाननेवालोंमें कपिलदेव तथा रुद्रोंमें शंकर हैं। आप आदित्योंमें उपेन्द्र (विष्णु) तथा वसुओंमें पावक हैं। वेदोंमें आप सामवेद तथा छन्दोंमें गायत्री छन्द हैं। विद्याओंमें अध्यात्मविद्या तथा गतियोंमें परम गति हैं। आप सभी शक्तियोंमें माया और संहार करनेवालोंमें काल (रूप) हैं। आप सभी गुह्योंमें ओंकार और वर्णोंमें द्विजोत्तम हैं। आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम तथा ईश्वरोंमें महेश्वर हैं॥ २२८—२३१॥

पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः।
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे॥ २३२॥
ईशानश्चासि कल्पानां युगानां कृतमेव च।
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती॥ २३३॥
त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि।
अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि॥ २३४॥
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु।
सावित्री चासि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम्॥ २३५॥

पुरुषोंमें जो (उत्तम) पुरुष है और जो सभी प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला है, वह एकमात्र आप ही हैं। देवि! आप सभी उपनिषदोंमें गुह्योपनिषत् कही जाती हैं। कल्पोंमें आप ईशानकल्प हैं और युगोंमें सत्ययुग हैं। सभी भ्रमण करनेवाले (ग्रह-नक्षत्र आदि)-में आदित्य (सूर्य) तथा वाणियोंमें सरस्वती देवी हैं। सुन्दर रूपवालोंमें आप लक्ष्मी और मायावियोंमें विष्णु हैं। आप पतिव्रताओंमें अरुन्धती तथा पक्षियोंमें गरुड हैं। आप सूक्तोंमें पुरुषसूक्त, सामगानोंमें ज्येष्ठ साम हैं। जपने योग्य मन्त्रोंमें सावित्री मन्त्र और

यजुर्वेदके मन्त्रोमे शतरुद्रिय आप ही हैं॥ २३२—२३५॥

पर्वताना महामेरुरनन्तो भोगिनामसि।
सर्वेषा त्व पर ब्रह्म त्वन्मय सर्वमेव हि॥ २३६॥

रूप तवाशेषकलाविहीन-
मगोचर निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्य
नमामि सत्य तमस परस्तात्॥ २३७॥

यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूति
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्था ।
आनन्दमात्र प्रणवाभिधान
तदेव रूप शरण प्रपद्ये॥ २३८॥

अशेषभूतान्तरसनिविष्ट
प्रधानपुयोगवियोगहेतुम् ।
तेजोमय जन्मविनाशहीन
प्राणाभिधान प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २३९॥

आप पर्वतोमे महामेरु और सर्पोमे अनन्त (नाग) हैं। सभीमे आप परब्रह्म हैं सब कुछ आपमे ही व्याप्त है। मैं आपके तमोगुणसे परे रहनेवाले उस सत्यरूपको नमस्कार करता हूँ जो समस्त कलाओसे रहित, अगोचर, निर्मल अद्वितीय आदि मध्य तथा अन्तरहित, अनन्त और आदि-स्वरूप हैं। वेदान्तरूपी विज्ञानके अर्थका निश्चय करनेवाले जगत्के उत्पादक प्रणव नामवाले जिस अद्वितीय आनन्दका साक्षात्कार करते हे, मैं उसी रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ। (मैं) समस्त प्राणियोके भीतर रहनेवाले, प्रधान और पुरुषके सयाग तथा वियोगके कारण, उत्पत्ति एव विनाशसे रहित तथा तेजोमय उस प्राण नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ॥ २३६—२३९॥

आद्यन्तहीन जगदात्मभूत
विभिन्नसस्थ प्रकृते परस्तात्।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव
नमामि रूप पुरुषाभिधानम्॥ २४०॥

सर्वाश्रय सर्वजगद्विधान
सर्वत्रग जन्मविनाशहीनम्।
सूक्ष्म विचित्र त्रिगुण प्रधान
नतोऽस्मि त रूपमलुप्तभेदम्॥ २४१॥

आद्य महत् ते पुरुषात्मरूप
प्रकृत्यवस्थ त्रिगुणात्मबीजम्।
ऐश्वर्यविज्ञानविरागधर्मै
समन्वित देवि नतोऽस्मि रूपम्॥ २४२॥

(मैं) आदि तथा अन्तसे रहित ससारके आत्मारूप, अनेक रूपोमे स्थित, प्रकृतिसे परे रहनेवाले कूटस्थ एव अव्यक्त शरीर धारण करनेवाले पुरुष नामक आपके रूपको नमस्कार करता हूँ। मैं सभीके आश्रयरूप सम्पूर्ण ससारका विधान करनेवाले सर्वत्र व्याप्त जन्म और मरणसे रहित, सूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणात्मक, प्रधानस्वरूप तथा अलुप्त भेदवाले आपके रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि। आपका जो आद्य, महान्, पुरुषात्मक रूप है जो प्रकृतिमें अवस्थित है, त्रिगुणात्मक मूल बीजरूप है तथा ऐश्वर्य, विज्ञान और विराग-धर्मोसे समन्वित है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ॥ २४०—२४२॥

द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसस्थ
विचित्रभेद पुरुषैकनाथम्।
अनन्तभूतैरधिवासित ते
नतोऽस्मि रूप जगदण्डसज्ञम्॥ २४३॥

अशेषवेदात्मकमेकमाद्य
स्वतेजसा पूरितलोकभेदम्।
त्रिकालहेतु परमेष्ठिसज्ञ
नमामि रूप रविमण्डलस्थम्॥ २४४॥

सहस्रमूर्धानमनन्तशक्ति
सहस्रबाहु पुरुष पुराणम्।
शयानमन्त सलिले तथैव
नारायणाख्य प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २४५॥

दष्ट्राकराल त्रिदशाभिवन्द्य
युगान्तकालानलकल्परूपम् ।
अशेषभूताण्डविनाशहेतु
नमामि रूप तव कालसज्ञम्॥ २४६॥

चौदह लोकात्मक, जलमे अवस्थित विचित्र भेदवाले, परम पुरुषको ही अपना स्वामी स्वीकार करनेवाले, अनन्त प्राणियोके निवासस्थान उस जगदण्ड (ब्रह्माण्ड)-सज्ञक आपके रूपको मैं नमस्कार करता हूँ। (मैं) समग्र वेदरूप,

अद्वितीय, आदि, अपने तेजसे सम्पूर्ण ससारको व्याप्त करनेवाले, तीनो कालोके कारण तथा सूर्यमण्डलमे प्रतिष्ठित परमेष्ठी नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ। जो हजारो सिरवाले हैं, अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं हजारो हाथवाले हैं तथा जलके मध्यमे शयन करनेवाले हैं, मैं उन 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध पुराणपुरुषके रूपको प्रणाम करता हूँ। (देवि!) आपका जो रूप भयकर दाढवाला, देवताओद्वारा सब प्रकारसे वन्दनीय, प्रलयकालीन अग्निके समान रूपवाला और सम्पूर्ण प्राणियोके विनाशके लिये कारणरूप है, मैं उस काल नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ॥ २४३—२४६॥

फणासहस्रेण विराजमान
भोगीन्द्रमुख्यैरभिपूज्यमानम्।
जनार्दनारूढतनु प्रसुप्त
नतोऽस्मि रूप तव शेषसज्ञम्॥ २४७॥
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्र
ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम्।
युगान्तशेष दिवि नृत्यमान
नतोऽस्मि रूप तव रुद्रसज्ञम्॥ २४८॥
प्रहीणशोक विमल पवित्र
सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्।
सुकोमल देवि विशालशुभ्र
नमामि ते रूपमिद नमामि॥ २४९॥
ॐ नमस्ते महादेवि नमस्ते परमेश्वरि।
नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नम॥ २५०॥

(देवि!) मैं आपके शेष नामवाले उस रूपको प्रणाम करता हूँ, जो हजारो फणोसे सुशोभित है, प्रधान-प्रधान नागराजोसे पूजित है, जनार्दन नामसे शरीर धारण किये हुए है तथा प्रगाढ निद्रामे है। जिसका ऐश्वर्य अव्याहत (अबाधित) है, जिसके नेत्र विषम हैं, (जो तीन नेत्रोसे युक्त है), जो ब्रह्मके अमृतरूपी आनन्द-रसका जाननेवाला है, अद्वितीय है, प्रलयकालमे स्थित रहनेवाला है और जो द्युलोकमे नृत्य करता रहता है (देवि!) मैं आपके उस रुद्र नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि! (मैं) शोकसे सर्वथा शून्य निर्मल पवित्र देवताओ तथा असुरोसे पूजित चरणकमलवाले आपके अत्यन्त कोमल विशाल एव उज्ज्वल इस रूपको नमस्कार करता हूँ, बार-बार नमस्कार करता हूँ। महादेवि! आपको नमस्कार है, परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। भगवती ईशानीको नमस्कार है, कल्याणरूपिणी आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४७—२५०॥

त्वन्मयोऽह त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम।
त्वामेव शरण यास्ये प्रसीद परमेश्वरि॥ २५१॥
मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा।
जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यत॥ २५२॥
एषा तवाम्बिका देवि किलाभूत् पितृकन्यका।
मेनाशेषजगन्मातुरहो पुण्यस्य गौरवम्॥ २५३॥
पाहि माममरेशानि मेनया सह सर्वदा।
नमामि तव पादाब्ज व्रजामि शरण शिवाम्॥ २५४॥

मैं आपसे व्याप्त हूँ, आप मेरे आधार हैं और आप ही मेरी गति हैं। परमेश्वरि! मैं आपकी ही शरण ग्रहण करता हूँ, आप (मुझपर) प्रसन्न हो। मेरे समान ससारमे देवता या दानव कोई भी नहीं है, क्योकि (मेरे) तपके कारण आप जगन्माता ही मेरी पुत्रीके रूपमे उत्पन्न हुई हैं। देवि! ये पितरोकी कन्या मेना सम्पूर्ण ससारकी मातास्वरूप आपकी माता हैं, अहो! पुण्यके गौरवका क्या कहना? अमरेशानि! आप मेनाके साथ मेरी सर्वदा रक्षा करे। मैं आपके चरणकमलोमे नमस्कार करता हूँ और आप कल्याणकारिणीकी शरणमे हूँ॥ २५१—२५४॥

अहो मे सुमहद् भाग्य महादेवीसमागमात्।
आज्ञापय महादेवि कि करिष्यामि शकरि॥ २५५॥
एतावदुक्त्वा वचन तदा हिमगिरीश्वर।
सम्प्रेक्षमाणो गिरिजा प्राञ्जलि पार्श्वतोऽभवत्॥ २५६॥
अथ सा तस्य वचन निशम्य जगतोऽरणि।
सस्मित प्राह पितर स्मृत्वा पशुपति पतिम्॥ २५७॥

अहो! महादेवीके (मेरे घर) आ जानेसे मेरा बहुत बडा सौभाग्य हुआ। महादेवि! शकरि! आप मुझे आज्ञा दे कि मैं क्या करूँ? ऐसा वचन कहकर वह गिरिराज हिमालय गिरिजाको देखते हुए एव हाथ जोडते हुए उनके पास खडे हो गये। जगत्की अरणि (मूल कारण)-रूप उस देवीने उनका (हिमवान्का) वचन सुनकर अपने पति पशुपति (शकर)-का स्मरणकर मधुर-मधुर मुसकराते हुए

पिता (हिमवान्)-से कहा— ॥ २५५—२५७॥

देव्युवाच

शृणुध्व चैतत् परम गुह्यमीश्वरगोचरम्।
उपदेश गिरिश्रेष्ठ सेवित ब्रह्मवादिभि ॥ २५८॥
यन्मे साक्षात् पर रूपमैश्वर दृष्टमद्भुतम्।
सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्त प्रेरक परम्॥ २५९॥
शान्त समाहितमना दम्भाहकारवर्जित ।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरण व्रज॥ २६०॥
भक्त्या त्वनन्यया तात मद्भाव परमाश्रित ।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा॥ २६१॥
तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व जपस्व च।
ममोपदेशात् ससार नाशयामि तवानघ॥ २६२॥

देवी बोलीं—गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मवादियोद्वारा सेवित केवल ईश्वरको ज्ञात इस परम गुह्य उपदेशको सुनो। मेरे जिस सर्वशक्तिसम्पन्न अनन्त परम प्रेरक, अद्भुत एव ऐश्वर्यसम्पन्न रूपको तुमने देखा है, शान्त एव एकाग्रमन होकर, दम्भ और अहकारका सर्वथा परित्यागकर, अत्यन्त निष्ठा रखकर, तत्परायण हो उसी (रूप)-की शरण ग्रहण करो। तात! अनन्य भक्तिपूर्वक मेरे श्रेष्ठ भावका आश्रय ग्रहणकर सभी यज्ञ तप दान (आदि साधनो)-के द्वारा सदा उसी (रूप)-की अर्चना करो। मेरे उपदेशको मानकर मनसे उसी (रूप)-को देखो उसीका ध्यान करो और उसीका *जप करो। अनघ! मैं तुम्हारे ससार (भवबन्धन)-को* विनष्ट कर दूँगी॥ २५८—२६२॥

अह वै मत्परान् भक्तानैश्वर योगमास्थितान्।
ससारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु॥ २६३॥
ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि।
प्राप्याह ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभि ॥ २६४॥
श्रुतिस्मृत्युदित सम्यक् कर्म वर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्मज्ञानसहित मुक्तय सतत कुरु॥ २६५॥
धर्मात् सजायते भक्तिर्भक्त्या सम्प्राप्यते परम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मत ॥ २६६॥
नान्यतो जायते धर्मो वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूप वेदमाश्रयेत्॥ २६७॥
ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजु सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते॥ २६८॥

ऐश्वर-योगमे स्थित अपने भक्तोका मैं इस ससार-सागरसे शीघ्र ही उद्धार कर देती हूँ। गिरिश्रेष्ठ! मैं ध्यान, कर्मयोग, भक्ति तथा ज्ञानके द्वारा ही तुम्हारे लिये प्राप्य हूँ, दूसरे करोडो कर्मोके द्वारा मुझे प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रुति तथा स्मृति—शास्त्रोमे जो सम्यक् वर्णाश्रमकर्म (धर्म) *बतलाया गया है,* मुक्ति-प्राप्तिके लिये *अध्यात्मज्ञानयुक्त* उस (कर्म)-का निरन्तर आचरण करो। धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परम (तत्त्व) प्राप्त होता है। *श्रुति एव स्मृतिद्वारा प्रतिपादित यज्ञादि कर्मको धर्म कहा* गया है। धर्म किसी अन्यसे उत्पन्न नही होता वेदसे ही धर्म निर्गत है। इसलिये धर्मार्थी एव मुमुक्षुको चाहिये कि मेरे स्वरूपभूत वेदका आश्रय ग्रहण करे। मेरी ही यह 'वेद' नामवाली पुरातन परा शक्ति ऋक्, यजुष् तथा सामवेदके रूपमे सृष्टिके आदिमे प्रवर्तित होती है॥ २६३—२६८॥

तेषामेव च गुप्त्यर्थ वेदाना भगवानज ।
ब्राह्मणादीन् ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत्॥ २६९॥
ये न कुर्वन्ति तद् धर्म तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम्।
तेषामधस्तान्नरकास्तामिस्रादीनकल्पयत् ॥ २७०॥
न च वेदाद् ऋते किञ्चिच्छास्त्रधर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभि ॥ २७१॥
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषा हि तामसी॥ २७२॥
कापाल पञ्चरात्र च यामल वाममार्हतम्।
एवविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु॥ २७३॥
ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान्।
मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषा भवान्तरे॥ २७४॥

उन्हीं वेदोकी रक्षाके लिये भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणादिको उत्पन्न कर अपने-अपने कर्मोमे लगाया। ब्रह्माद्वारा बनाये गये उस (वेदविहित वर्णाश्रम) धर्मका जो पालन नहीं करते हैं उनके लिये (ब्रह्माने) नीचेके लोकोमे स्थित तामिस्र आदि नरकोंको बनाया है। धर्मका विधान करनेवाले अथवा धर्मको बतलानेवाले वेदको छोडकर और अन्य कोई शास्त्र नहीं हैं। जो (वेदाभ्यासके अतिरिक्त) अन्यत्र मन लगाते हैं द्विजातियोके द्वारा वे सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं। इस ससारमे श्रुति एव स्मृतिके विरुद्ध जो विविध शास्त्र देखे जाते हैं निश्चय ही उनमे निष्ठा (विश्वास)

रखना तमोगुणी (निष्ठा) है। जो कुत्सित शास्त्रोंके प्रभावको बतलाकर मनुष्योंको मोहित करते हैं, इस संसारमें उन लोगोंको मोहित करनेके लिये मैंने (ऐसे) शास्त्रोंको बनाया है॥ २६९—२७४॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत् स्मृतं कर्म वैदिकम्।
तत् प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः॥ २७५॥
वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद् विराट् स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान्॥ २७६॥
श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद् धर्ममुत्तमम्।
चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि॥ २७७॥
तेषु चान्तर्हितेष्वेव युगान्तेषु महर्षयः।
ब्रह्मणो वचनात् तानि करिष्यन्ति युगे युगे॥ २७८॥

वेदके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ विद्वानोंके द्वारा जिस कर्मको वेदसम्मत कहा गया है वही (कर्म) करणीय है और जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक उस कर्मको करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। प्राचीन कालमें विराट् (पुरुष) स्वायम्भुव मनुने सभी वर्णोंपर अनुग्रह करनेके लिये मेरी ही आज्ञासे (भृगु आदि) मुनियोंमें धर्म (मनुस्मृति) कहा था। उनके मुखसे श्रेष्ठ धर्मका श्रवणकर अन्य मुनियोंने भी धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये अन्य धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-की रचना की। प्रलयकालमें उनके (धर्मशास्त्रोंके) अन्तर्हित हो जानेपर प्रत्येक युगमें वे महर्षिगण ब्रह्माके कहनेपर पुनः उन शास्त्रोंकी रचना करते हैं॥ २७५—२७८॥

अष्टादश पुराणानि व्यासेन कथितानि तु।
नियोगाद् ब्रह्मणो राजंस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥ २७९॥
अन्यान्युपपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु।
युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित्॥ २८०॥
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च।
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या मीमांसा चोपबृंहणम्॥ २८१॥
एवं चतुर्दशैतानि विद्यास्थानानि सत्तम।
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते॥ २८२॥

राजन्! ब्रह्माके आदेशसे व्यासजीने अठारह (महा-) पुराणोंको कहा है। उन (पुराणों)-में धर्म प्रतिष्ठित है। अन्य उपपुराण उन व्यासजीके शिष्योंद्वारा कहे गये हैं। यहाँ प्रत्येक युगमें इन सभी शास्त्रोंका कर्ता ही धर्मशास्त्रका ज्ञाता होता है। सत्तम! चार वेदोंसहित शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषशास्त्र, न्यायविद्या, मीमांसा तथा उपबृंहण (इतिहास और पुराण)—इस प्रकार ये चौदह विद्यास्थान कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्यत्र धर्म विद्यमान नहीं है॥ २७९—२८२॥

एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम्।
स्थापयन्ति ममादेशाद् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ २८३॥
ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्॥ २८४॥

इस प्रकार मनु, व्यास आदि पितामह ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ धर्मको मेरे ही आदेशसे प्रलयकालपर्यन्त स्थापित करते हैं। ब्रह्माकी आयु पूर्ण हो जानेपर प्रलयकाल उपस्थित होनेपर वे सभी पुण्यात्मा (व्यासादि) ब्रह्माके साथ ही परम पदमें प्रवेश करते हैं॥ २८३—२८४॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥ २८५॥

इसलिये धर्मके (परिज्ञानके) लिये सभी प्रकारके प्रयत्नसे वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये (इससे) धर्मसहित ज्ञान और परम ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है॥ २८५॥

ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः॥ २८६॥
सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः॥ २८७॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः।
संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः॥ २८८॥
तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वसमुत्थितम्।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन मा चिरात्॥ २८९॥
ते सुनिर्धूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः।
सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः॥ २९०॥

जो सभी प्रकारकी आसक्तियोंका परित्यागकर अनन्यभावसे मेरी शरण ग्रहण कर लेते हैं, ईश्वर-सम्बन्धी योगमें स्थित होकर भक्तिपूर्वक सदा मेरी उपासना करते हैं, सभी प्राणियोंपर दया करते हैं, शान्त, जितेन्द्रिय, मात्सर्यरहित, मानरहित, बुद्धिमान्, तपस्वी तथा व्रतपरायण हैं, मुझमें जिनका चित्त और प्राण लगा हुआ है, मेरे तत्त्व-वर्णनमें ही

जो लगे हुए हैं ऐसे सन्यासी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा ब्रह्मचारी जो कोई भी हो उन नित्य भक्तिमे लगे हुए भक्तोके माया-तत्त्वसे उत्पन्न सम्पूर्ण अन्धकारका ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मैं अविलम्ब ही विनाश कर दती हूँ। अद्वितीय ज्ञानके द्वारा जिनके अन्धकारका भलीभाँति विनाश हो गया हे ऐसे ही मत्परायण (भक्त) सदा आनन्दित रहत है और ससारम बार-बार जन्म नहीं लेते॥ २८६—२९०॥

तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायण ।
मामेवार्चय सर्वत्र मेनया सह सगत ॥२९१॥
अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वर रूपमव्ययम्।
ततो मे सकल रूप कालाद्य शरण व्रज॥२९२॥
यद् यत् स्वरूप मे तात मनसो गोचर भवेत्।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव॥२९३॥

इसलिये सब प्रकारसे मेरे भक्त और मेरे परायण रहते हुए (तुम) मेनाके साथ सर्वत्र मेरी ही अर्चना करो। यदि तुम मेरे ऐश्वर्यसम्पन्न अव्यय-स्वरूपका ध्यान करनेमे असमर्थ हो तो मेरे आदिकालस्वरूप कलात्मक रूपकी शरण ग्रहण करो। तात! मेरा जो-जो भी रूप आपके मनको अभीष्ट हो, उसीमे निष्ठा रखो और उसीके परायण होकर उसकी ही आराधनामे सलग्न रहो॥ २९१—२९३॥

यत्तु मे निष्कल रूप चिन्मात्र कवल शिवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृत परम्॥२९४॥
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्य क्लेशेन परम पदम्।
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते॥२९५॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणा ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥२९६॥
मामनाश्रित्य परम निर्वाणममल पदम्।
प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मा शरण व्रज॥२९७॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा।
मामुपास्य महाराज ततो यास्यसि तत्पदम्॥२९८॥

मेरा जो कलारहित चिन्मात्र अद्वितीय कल्याणकारी सभी उपाधियोसे सर्वथा मुक्त अनन्त अमर एव परमरूप है वह परमपद एकमात्र ज्ञानके द्वारा बड़ी ही कष्टसे प्राप्त किया जाता है। ज्ञानका साक्षात्कार करनेवाले लोग मुझमे ही प्रवेश करते हैं। उसीमे (मेरे दिव्य रूपमे) बुद्धि रखनेवाले, उसीमे अपनेको लगानेवाले उसीमे निष्ठा रखनेवाले तथा उसीके परायण और ज्ञानके द्वारा जिनके समस्त पाप विनष्ट हो गये हैं, वे सभी आवागमनके चक्रमे नहीं पडते अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं। राजेन्द्र! मेरी शरण ग्रहण किये बिना परम निर्वाण निर्मल पद प्राप्त नहीं होता इसलिये मेरी शरण ग्रहण करो। महाराज! द्वैत या अद्वैत अथवा दोनो ही रूपोसे मेरी उपासना कर तुम्हे उस पदकी प्राप्ति हो जायगी॥ २९४—२९८॥

मामनाश्रित्य तत् तत्त्व स्वभावविमल शिवम्।
ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मा शरण व्रज॥२९९॥
तस्मात् त्वमक्षर रूप नित्य चारूपमैश्वरम्।
आराधय प्रयत्नेन ततो बन्ध प्रहास्यसि॥३००॥
कर्मणा मनसा वाचा शिव सर्वत्र सर्वदा।
समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम्॥३०१॥
न वै पश्यन्ति तत् तत्त्व मोहिता मम मायया।
अनाद्यनन्त परम महेश्वरमज शिवम्॥३०२॥
सर्वभूतात्मभूतस्थ सर्वाधार निरञ्जनम्।
नित्यानन्द निराभास निर्गुण तमस परम्॥३०३॥
अद्वैतमचल ब्रह्म निष्कल निष्प्रपञ्चकम्।
स्वसवेद्यमवेद्य तत् परे व्योम्नि व्यवस्थितम्॥३०४॥

हे राजन्द्र! बिना मेरा आश्रय लिये स्वभावसे ही निर्मल, उस शिवतत्त्वको जाना नहीं जा सकता अत मेरी शरण ग्रहण करो। इसलिये तुम नित्य अक्षरस्वरूप एव रूपरहित ईश्वर (तत्त्व)-की प्रयत्नपूर्वक आराधना करो। इससे (तुम) बन्धनसे मुक्त हो जाओगे। मन, वाणी तथा कर्मसे बडे ही भावसे सर्वत्र शिवकी आराधना करो इससे (तुम) उस पदको प्राप्त करोगे। मेरी मायासे मोहित (प्राणी) उस अनादि अनन्त अजन्मा कल्याणकारी परम महेश्वर सभी प्राणियोके अन्तरमे निवास करनेवाले, सभीके आधार निरञ्जन नित्य आनन्दस्वरूप निराभास निर्गुण अन्धकारसे पर अद्वैत अचल कलारहित, निष्प्रपञ्च स्वसवेद्य अज्ञेय तथा परमाकाशमे स्थित ब्रह्मसज्ञक तत्त्वको नहीं जान पाते॥ २९९—३०४॥

सूक्ष्मेण तमसा नित्य वेष्टिता मम मायया।
ससारसागर घोर जायन्ते च पुन पुन ॥३०५॥

भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग् ज्ञानेन चैव हि।
अन्वेष्टव्य हि तद् ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्तये॥३०६॥
अहकार च मात्सर्यं काम क्रोध परिग्रहम्।
अधर्माभिनिवेश च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थित ॥३०७॥
सर्वभूतेषु चात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
अन्वीक्ष्य चात्मनात्मान ब्रह्मभूयाय कल्पते॥३०८॥
ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रद ।
ऐश्वरीं परमा भक्ति विन्देतानन्यगामिनीम्॥३०९॥
वीक्षते तत् पर तत्त्वमैश्वर ब्रह्मनिष्कलम्।
सर्वससारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥३१०॥

मेरी मायाद्वारा नित्य सूक्ष्म तमोगुणसे घिरे हुए प्राणी (इस) घोर ससारसागरमे बार-बार जन्म लेते हैं। राजन्! जन्मरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये अनन्य भक्ति एव सम्यक् ज्ञानके द्वारा उस ब्रह्मका अन्वेषण करना चाहिये। (राजन्! जो) अहकार, मात्सर्य, काम क्रोध, सग्रहकी प्रवृत्ति तथा अधर्माचरणमे रुचिका सर्वथा परित्याग कर अनासक्तभावमे स्थित रहते हैं और सभी प्राणियोमे अपनेको एव सभी प्राणियोको अपनी अन्तरात्मामे स्थित देखते हैं, वे आत्माद्वारा अन्तरात्माका साक्षात्कार कर ब्रह्मको प्राप्त करनेके योग्य बन जाते हैं। सभी प्राणियोको अभय प्रदान करनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले ब्रह्ममे एकीभावसे स्थित अनन्यगामिनी परम ईश्वरभक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। वे उस ऐश्वर्ययुक्त निष्कल ब्रह्मतत्त्वका साक्षात् करते हैं और समस्त ससारसे अनासक्त होते हुए एकमात्र ब्रह्मम ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं॥ ३०५—३१०॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाय परस्य परम शिव ।
अनन्तस्याव्ययस्यैक स्वात्माधारो महेश्वर ॥३११॥
ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्तियोगेन वा नृप।
सर्वससारमुक्त्यर्थमीश्वर सतत श्रय॥३१२॥
एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर।
अन्वीक्ष्य चैतदखिल यथेष्ट कर्तुमर्हसि॥३१३॥

ये अद्वितीय अपनी आत्माक आश्रय महेश्वर परमशिव ही अनन्त तथा अव्यय पर ब्रह्मकी प्रतिष्ठा-रूप हैं। राजन्! ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा भक्तियोगके द्वारा समस्त ससारस मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निरन्तर ईश्वरका आश्रय ग्रहण करो। पर्वतराज हिमालय! मैंने यह गुह्य उपदेश तुम्हे प्रदान किया है, इस सम्पूर्ण उपदेशपर विचारकर तुम जैसा चाहो वैसा करो॥ ३११—३१३॥

अह वै याचिता देवै सजाता परमेश्वरात्।
विनिन्द्य दक्ष पितर महेश्वरविनिन्दकम्॥३१४॥
धर्मसस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्।
मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितर श्रिता॥३१५॥
स त्व नियोगाद् देवस्य ब्रह्मण परमात्मन ।
प्रदास्यसे मा रुद्राय स्वयवरसमागमे॥३१६॥
तत्सम्बन्धाच्च ते राजन् सर्वे देवा सवासवा ।
त्वा नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शकर ॥३१७॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मा विद्धीश्वरगोचराम्।
सम्पूज्य देवमीशान शरण्य शरण व्रज॥३१८॥

महादेव शकरकी निन्दा करनेवाले अपने पिता दक्षकी आलोचना कर देवताओके द्वारा प्रार्थना करनेपर मैं परमेश्वरसे प्रादुर्भूत हुई हूँ। तुम्हारी आराधनाके कारण धर्मकी स्थापना करनेके लिये तुम्हे-ही पिताके रूपमे आश्रय बनाकर मैं मेनाकी देहसे उत्पन्न हुई हूँ। आप परमात्मा ब्रह्मदेवके निर्देशसे स्वयवरके समय मुझे रुद्रको प्रदान करेगे। राजन्! तात! उस सम्बन्धके कारण इन्द्रसहित सभी देवता आपको नमस्कार करेगे तथा भगवान् शकर भी आपसे प्रसन्न हागे। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोके द्वारा मुझे ही ईश्वरकी विषयस्वरूपा (ईश्वरका सर्वस्व) समझो और शरण ग्रहण करने योग्य भगवान् शकरकी पूजाकर उनकी शरणमे जाओ॥ ३१४—३१८॥

स एवमुक्तो भगवान् देवदेव्या गिरीश्वर ।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलि पुनरब्रवीत्॥३१९॥
विस्तरेण महेशानि योग माहेश्वर परम्।
ज्ञान चैवात्मनो योग साधनानि प्रचक्ष्व मे॥३२०॥

भगवान् महादेवकी देवी (शकरपत्नी)-के द्वारा इस प्रकार कहे जानपर वे पर्वतराज हिमालय विनयपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़त हुए पुन महेश्वरीस कहने लगे— महशानि! आप मुझे परम माहेश्वर योगको विस्तारसे बतलाइये और ज्ञान तथा साधनासहित आत्मयोगको भी विस्तारपूर्वक बतलाय॥ ३१९—३२०॥

तस्यैतत् परम ज्ञानमात्मयोगमनुत्तमम्।
यथावद् व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्॥३२१॥

निशम्य वदनाम्भोजाद् गिरीन्द्रो लोकपूजित ।
लोकमातु पर ज्ञान योगासक्तोऽभवत् पुन ॥३२२॥
प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात्।
नियोगाद् ब्रह्मण साध्वीं देवाना चैव सनिधौ॥३२३॥

(इसपर) भगवती पार्वतीने उन्हे वह परम ज्ञान, श्रेष्ठ आत्मयोग आर उसकी प्राप्तिके साधनाको भी विस्तारपूर्वक भलीभाँति बतलाया। जगज्जननीके मुखकमलसे परम ज्ञान सुनकर वे लोकपूजित पर्वतराज हिमालय पुन यागम आसक्त हो गये। (कालान्तरम हिमालयने) ब्रह्माजीके आदेशसे देवताआकी सनिधिम (अपने) सौभाग्यकी अभिवृद्धि समझत हुए साध्वी पार्वतीको महेश्वरके लिये प्रदान किया॥ ३२१—३२३॥

य इम पठतेऽध्याय देव्या माहात्म्यकीर्तनम्।
शिवस्य सनिधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावित ॥३२४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वित ।
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोक देव्या स्थानमवाप्नुयात्॥३२५॥
यश्चैतत् पठत स्तोत्र ब्राह्मणाना समीपत ।
देव्या समाहितमना सर्वपापै प्रमुच्यते॥३२६॥

जो व्यक्ति भगवान् शिवके सानिध्यम उनक भावम भावित हाकर पवित्रतापूर्वक देवीक माहात्म्यका वर्णन करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता ह, वह सभी पापामे मुक्त हो जाता है और दिव्य योगसे समन्वित होकर ब्रह्मलाकको पारकर देवीक स्थानको प्राप्त करता है। जा एकाग्रमनस ब्राह्मणाक समीपम देवीके इस (सहस्रनाम) स्तात्रका पाठ करता है, वह सभी पापास विमुक्त हा जाता है॥ ३२४—३२६॥

नाम्नामष्टसहस्र तु देव्या यत् समुदीरितम्।
ज्ञात्वार्कमण्डलगता सम्भाव्य परमेश्वरीम्॥३२७॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वित ।
सस्मरन् परम भाव दव्या माहेश्वर परम्॥३२८॥
अनन्यमानसो नित्य जपदामरणाद् द्विज ।
सोऽन्तकाल स्मृति लब्ध्वा पर ब्रह्माधिगच्छति॥३२९॥

देवीके जो एक हजार आठ नामवाला स्तोत्र बताया गया है उसे जानकर सूर्यमण्डलमे स्थित परमेश्वरीकी भावना करते हुए गन्ध पुष्प आदिके द्वारा भक्तियोगपूर्वक उनकी अर्चना द्विजका करनी चाहिये और दवीके परम माहेश्वर श्रेष्ठ भावका अनन्य-मनस मरणपर्यन्त स्मरण करते हुए इस उपदिष्ट एक हजार आठ नामाका नित्य जप करना चाहिये। एसा करनेस द्विज अन्त-समयम (देवीकी) स्मृति प्राप्तकर परब्रह्मका प्राप्त करता है॥ ३२७—३२९॥

अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणाना कुले शुचौ।
पूर्वसस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्य स ॥३३०॥
सम्प्राप्य योग परम दिव्य तत् पारमेश्वरम्।
शान्त सर्वगतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥३३१॥
प्रत्येक चाथ नामानि जुहुयात् सवनत्रयम्।
पूतनादिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते॥३३२॥

अथवा वह विप्र ब्राह्मणाके पवित्र कुलम उत्पन्न हाता है आर पूर्वजन्मके सस्काराके प्रभावसे वह ब्रह्मविद्याका प्राप्त करता है। परमेश्वर-सम्बन्धी उस परम दिव्य योगको प्राप्तकर वह शान्त तथा सर्वत्र व्याप्त होते हुए शिवसायुज्यको प्राप्त करता ह। (जो व्यक्ति प्रात मध्याह्न तथा साय—) तीनो समय देवीक प्रत्यक नामस हवन करता है वह पूतना आदिद्वारा उत्पन्न (अरिष्ट) दोपा तथा ग्रहाक दोपासे मुक्त हा जाता है॥ ३३०—३३२॥

जपेद् वाहरहर्नित्य सवत्सरमतन्द्रित ।
श्रीकाम पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानत ॥३३३॥
सम्पूज्य पार्श्वत शम्भु त्रिनेत्र भक्तिसयुत ।
लभत महतीं लक्ष्मीं महादवप्रसादत ॥३३४॥

अथवा लक्ष्मी-प्राप्तिका इच्छा करनवाला द्विज विधिपूर्वक देवाकी पूजाकर और उनके पार्श्वभाग (समीप)-म तीन नत्रवाल भगवान् शाकरका पूजा करता है तथा एक वर्षतक आलस्यरहित हाकर प्रतिदिन निरन्तर (दवाक सहस्रनामका) जप करता है वह महादव भगवान् शकरकी कृपाम महालक्ष्माका प्राप्त करता है॥ ३३३-३३४॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जप्तव्य हि द्विजातिभि ।
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नाम सहस्रकम्॥३३५॥
प्रसङ्गात् कथित विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।
अत पर प्रजासर्गं भृग्वादीना निबोधत॥३३६॥

इसलिये द्विजातियाको सभी प्रकारके प्रयत्नोक द्वारा सभी पापासे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये देवीके सहस्रनामका जप करना चाहिये। विप्रो! मैंने प्रसङ्गवश देवीका उत्तम माहात्म्य आप लोगोसे कहा। अब इसके बाद आपलोग भृगु आदि महर्षियाकी प्रजासृष्टिको सुने॥ ३३५-३३६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

महर्षि भृगु, मरीचि, पुलस्त्य तथा अत्रि आदिद्वारा दक्ष-कन्याओसे उत्पन्न सतान-परम्पराका वर्णन, उनचास अग्नियो, पितरो तथा गङ्गाके प्रादुर्भावका वर्णन

सूत उवाच

भृगो ख्यात्या समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ तथा॥ १॥
आयतिर्नियतिर्मेरो कन्ये चैव महात्मन ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ॥ २॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुत ।
तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान् सुत ॥ ३॥

सूतजी बोले—महर्षि भृगुकी 'ख्याति' नामक पत्नीसे नारायणकी पत्नी लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा धाता एव विधाता नामक दो देवता भी उनसे उत्पन्न हुए, जो मेरुके जामाता हुए। महात्मा मेरुकी आयति तथा नियति नामकी दो कन्याएँ थीं, व क्रमश धाता तथा विधाताकी पत्नियाँ थीं उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—प्राण और मृकण्डु। मृकण्डुसे मार्कण्डेय हुए तथा प्राणके कान्तिमान् वदशिरा नामके पुत्र हुए॥ १—३॥

मरीचेरपि सम्भूति पौर्णमासमसूयत।
कन्याचतुष्टय चैव सर्वलक्षणसयुतम्॥ ४॥
तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टि कृष्टिश्चापचितिस्तथा।
विरजा पर्वतश्चैव पौर्णमासस्य तौ सुतौ॥ ५॥

महर्षि मरीचिक भी सम्भूति (नामक पत्नी)-न सभी (शुभ) लक्षणोंमे सम्पन्न पौर्णमास नामक पुत्र और चार कन्याओंको उत्पन्न किया। सबसे बडी (कन्याका नाम) तुष्टि तथा अन्य तीन कन्याआका नाम वृष्टि कृष्टि और अपचिति था। पौणमासके विरजा तथा पर्वत नामक दो पुत्र थे॥ ४-५॥

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापते ।
कर्दम च वरीयास सहिष्णु मुनिसत्तमम्॥ ६॥
तथैव च कनीयास तपोनिर्धूतकल्मषम्।
अनसूया तथैवात्रर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्॥ ७॥
सोम दुर्वासस चैव दत्तात्रेय च योगिनम्।
स्मृतिश्चाङ्गिरस पुत्रीर्जज्ञे लक्षणसयुता ॥ ८॥
सिनीवालीं कुहू चैव राकामनुमति तथा।
प्रीत्या पुलस्त्यो भगवान् दत्तात्रिमसृजत् प्रभु ॥ ९॥
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्य स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे।
वदबाहु तथा कन्या सन्नति नाम नामत ॥ १०॥

प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने कदम वरीयान् और उनसे छोटे सहिष्णु नामक श्रेष्ठ मुनिको जन्म दिया जो तपके कारण पाप-रहित थ। उसी प्रकार अत्रिकी पत्नी अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रय नामक पुण्यात्मा पुत्राको उत्पन्न किया। महर्षि अङ्गिराकी स्मृति नामक पत्नीने सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति (नामवाली) शुभलक्षणसम्पन्न (चार) पुत्रियाको जन्म दिया। प्रभु भगवान् पुलस्त्यने (अपनी पत्नी) प्रीतिसे दत्तात्रि (नामक पुत्र)-को उत्पन्न किया। स्वायम्भुव मन्वन्तारक (अपने) पूर्वजन्मम वे ही अगस्त्य नामम प्रसिद्ध थे। (पुलस्त्यका प्रीतिस) वेदबाहु (नामक एक अन्य पुत्र) और 'सन्नति' इस नामस प्रसिद्ध (एक) कन्या थी॥ ६—१०॥

पुत्राणा षष्टिसाहस्र सतति सुषुव क्रता ।
ते चार्ध्वरेतस सर्वे यालखिल्या इति स्मृता ॥ ११॥

वसिष्ठश्च तथोर्जायां सप्त पुत्रानजीजनत्।
कन्यां च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम्॥ १२॥

महर्षि क्रतुकी पत्नी संततिने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी ऊर्ध्वरेता वालखिल्य इस नामसे प्रसिद्ध हुए। महर्षि वसिष्ठने ऊर्जा नामक पत्नीसे सात पुत्रों और कमलके समान नेत्रवाली तथा सभी प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न एक कन्याको जन्म दिया॥ १२॥

रजोहश्चोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः॥ १३॥
योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः।
स्वाहा तस्मात् सुतान् लेभे त्रीनुदारान् महौजसः॥ १४॥
पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः।
निर्मथ्यः पवमानः स्याद् वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ १५॥
यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः।
तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च॥ १६॥
पावकः पवमानश्च शुचिस्तेषां पिता च यः।
एते चैकोनपञ्चाशद् वह्नयः परिकीर्तिताः॥ १७॥
सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः।
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः॥ १८॥

रज, ऊह, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—(नामवाले) ये (वसिष्ठके) सात महान् ओजस्वी पुत्र थे। द्विजो! ब्रह्माके रुद्रस्वरूप जो वह वह्नि नामक पुत्र था, उससे स्वाहाने महातेजस्वी तीन उदार पुत्रोंको प्राप्त किया। ये तीनों पावक, पवमान तथा शुचि (नामवाले) अग्नि थे। मन्थनद्वारा उत्पन्न अग्निको पवमान और विद्युत्से सम्बद्ध अग्निको पावक कहा जाता है। जो यह सूर्य तपता है वही शुचि अग्नि कहलाता है। उन (तीनों अग्नियों)-की पैंतालीस संतानें हुईं। (इस प्रकार) पावक, पवमान तथा शुचि (नामक तीन अग्नियाँ) और इन तीनोंके पिता (रुद्रात्मक अग्नि) एवं (उन तीनों अग्नियोंके पैंतालीस पुत्र) ये सभी मिलाकर उनचास अग्नियाँ कही गयी हैं। ये सभी (उनचास) तपस्वी कहे गये हैं, सभी यज्ञभागके अधिकारी हैं, रुद्रात्मक कहलाते हैं और सभी मस्तकपर त्रिपुण्ड्रके चिह्नसे अङ्कित रहते हैं॥ १३—१८॥

अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः स्मृताः।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः॥ १९॥
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः॥ २०॥
असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजं तथा।
गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी॥ २१॥
स्वयोगाग्निबलाद् देवीं लेभे पुत्रीं महेश्वरीम्।
यथावत् कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्॥ २२॥

ब्रह्माके अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् नामक दो पुत्र कहे गये हैं जो पितर हैं। उनमें अयज्वा (यज्ञ न करनेवाले) तथा यज्वा (यज्ञ करनेवाले)-के रूपमें दो प्रकारकी व्यवस्था है। मुनिश्रेष्ठो! स्वधाने उनके द्वारा मेना और वैतरणी नामक दो पुत्रियोंको प्राप्त किया। ये दोनों ही ब्रह्मवादिनी और योगिनी थीं। मेनाने मैनाक और उसके अनुज क्रौञ्च (नामक पर्वत)-को जन्म दिया। हिमालयसे समस्त लोकोंको पवित्र करनेमें अद्वितीय गङ्गा उत्पन्न हुईं। (हिमालयने) अपने योगाग्निके बलसे (उन) देवी महेश्वरीको पुत्री-रूपमें प्राप्त किया, जिन देवीके उत्तम माहात्म्यको भलीभाँति पहले बता दिया गया है॥ १९—२२॥

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसंततिः।
व्याख्याता भवतामद्य मनोः सृष्टिं निबोधत॥ २३॥

मैंने प्रजापति दक्षकी कन्याओंकी संतान-परम्पराका आज आपलोगोंसे वर्णन किया। अब आप (स्वायम्भुव) मनुकी सृष्टिको सुनें॥ २३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाले श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति, महाराज पृथुका आख्यान, पृथुका वंश-वर्णन, पृथुके पौत्र 'सुशील' का रोचक आख्यान, सुशीलको हिमालयके 'धर्मपद' नामक वनमें महापाशुपत श्वेताश्वतर मुनिके दर्शन तथा उनसे पाशुपत-व्रतका ग्रहण, दक्षके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा पुनः दक्ष प्रजापतिके रूपमें आविर्भावकी कथा, दक्षद्वारा शंकरका अपमान, सतीद्वारा देह-त्याग तथा शंकरका दक्षको शाप

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
धर्मज्ञौ सुमहावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत्॥ १॥
ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत्।
भक्तो नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम्॥ २॥
ध्रुवात् शिलष्टिं च भव्यं च भार्या शम्भुर्व्यजायत।
शिलष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ ३॥
वसिष्ठवचनाद् देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्॥ ४॥
रिपुं रिपुंजयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम्।
नारायणपरान् शुद्धान् स्वधर्मपरिपालकान्॥ ५॥

सूतजी बोले—स्वायम्भुव मनुकी पत्नी शतरूपाने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामवाले दो पुत्रोंको जन्म दिया, जो धर्मको जाननेवाले तथा महान् पराक्रमी थे। कालान्तरमें उत्तानपादका ध्रुव नामक पुत्र हुआ। भगवान् विष्णुके उस भक्तने उत्तम स्थान प्राप्त किया। ध्रुवकी शम्भुनामक पत्नीने शिलष्टि तथा भव्य नामक पुत्रोंको जन्म दिया। शिलष्टिकी सुच्छाया नामक पत्नीने पाँच पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया। महर्षि वसिष्ठके कथनानुसार सुच्छाया नामक देवीने अत्यन्त कठोर तप करके शालग्राममें जनार्दन पुरुष विष्णुकी आराधनाकर रिपु, रिपुंजय विप्र, वृकल तथा वृषतेजस् नामवाले पाँच पुत्रोंको जन्म दिया जो नारायणमें अनन्य निष्ठा रखनेवाले, शुद्ध तथा अपने धर्मका विशेष रूपसे पालन करनेवाले थे॥ १—५॥

रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्वतेजसम्।
सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥ ६॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायां सुमहावीर्या वैराजस्य प्रजापतेः॥ ७॥
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः॥ ८॥
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाबलान्।
अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम्॥ ९॥
अङ्गाद् वेनोऽभवत् पश्चाद् वैन्यो वेनादजायत।
योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः॥ १०॥
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात्।
नियोगाद् ब्रह्मणः सार्धं देवेन्द्रेण महौजसा॥ ११॥

रिपुकी पत्नी बृहतीने सब प्रकारके तेजासे सम्पन्न चक्षुष् (नामक पुत्र)-को जन्म दिया। उस चक्षुष्ने महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुष्करिणी[1] नामवाली पुत्रीसे चाक्षुष मनुको जन्म दिया। अत्यन्त तेजस्वी (चाक्षुष) मनुके वैराज प्रजापतिकी कन्या नड्वलासे दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो ऊरु, पूरु, शतद्युम्न तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र सुद्युम्न तथा अभिमन्युक (नामवाले) थे। ऊरुकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग सुमनस्, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरस् एवं शिव (नामवाले) महाबलशाली छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। अङ्गसे वेन हुआ और फिर वेनसे वैन्य उत्पन्न हुए। प्रजापालक महाबलवान् वे ही वैन्य पृथु नामसे विख्यात हुए। पूर्वकालमें उन्होंने प्रजाओंके कल्याणकी कामनासे ब्रह्माके आदेशसे महातेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ (गोरूपा) पृथ्वीका दोहन किया था॥ ६—११॥

वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे।
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः॥ १२॥
प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुणवत्सलः।
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम्॥ १३॥

१-यह पुष्करिणी प्रजापति वीरणकी पुत्री होनेसे वैरणी भी कही जाती है।

अस्मिन् मन्वन्तरे व्यास कृष्णद्वैपायन स्वयम्।
श्रावयामास मा प्रीत्या पुराण पुरुषो हरि ॥१४॥
मदन्वये तु ये सूता सम्भूता वेदवर्जिता ।
तेषा पुराणवक्तृत्व वृत्तिरासीदजाज्ञया ॥१५॥

प्राचीन कालमे वेनके पुत्र पृथुके पैतामह नामक यज्ञ करते समय मायारूपधारी साक्षात् विष्णु ही पौराणिक सूतके रूपमें उत्पन्न हुए। वे सभी शास्त्रोंके प्रवक्ता, धर्मको जाननेवाले तथा वात्सल्यगुणसे सम्पन्न थे। मुनिश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें आविर्भूत वही सनातन (विष्णु) मुझे जानो। इस मन्वन्तरमे स्वय कृष्णद्वैपायन व्यास नामक पुराणपुरुष विष्णुने प्रीतिपूर्वक मुझे पुराण सुनाया। मेरे वशमे वेदवर्जित जो सूत उत्पन्न हुए, ब्रह्माकी आज्ञासे 'पुराणोंका प्रवचन करना' उनकी वृत्ति हुई॥ १२—१५॥

स तु वैन्य पृथुर्धीमान् सत्यसधो जितेन्द्रिय ।
सार्वभौमो महातेजा स्वधर्मपरिपालक ॥१६॥
तस्य बाल्यात् प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्।
गोवर्धनगिरिं प्राप्य तपस्तेपे जितेन्द्रिय ॥१७॥
तपसा भगवान् प्रीत शङ्खचक्रगदाधर ।
आगत्य देवो राजान प्राह दामोदर स्वयम्॥१८॥
धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृता वरौ।
मत्प्रसादादसदिग्ध पुत्रौ तव भविष्यत ।
एवमुक्त्वा हृषीकश स्वकीया प्रकृति गत ॥१९॥
वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चला भक्तिमुद्वहन्।
अपालयत् स्वक राज्य न्यायेन मधुसूदने॥२०॥

वेनके पुत्र वे पृथु बुद्धिमान्, सत्यसकल्प जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी महान् तेजस्वी तथा अपने धर्मका पालन करनेवाले थे। उनकी बाल्यकालसे ही नारायणमे भक्ति थी। इन्द्रियजयी पृथुने गोवर्धन पर्वतपर जाकर तप किया। शख चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु तपस्यासे प्रसन्न हो गये। स्वय भगवान् दामोदर (विष्णु)-ने उनके पास आकर कहा—मेरी कृपासे निश्चित ही तुम्हें सुन्दर रूपसे सम्पन्न सभी शस्त्रधारियोमे श्रेष्ठ दो धर्मात्मा पुत्र होंगे। ऐसा कहकर भगवान् हृषीकेश अपने प्राकृतिक रूपमे स्थित हो गये (अपने धाम चले गये)। वैन्य (पृथु) भी भगवान् मधुसूदनमे वैदिक विधानसे निश्चल भक्ति रखते हुए न्यायपूर्वक अपने राज्यका पालन करने लगे॥ १६—२०॥

अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता।
शिखण्डिन हविर्धानमन्तर्धाना व्यजायत॥२१॥
शिखण्डिनोऽभवत् पुत्र सुशील इति विश्रुत ।
धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारग ॥२२॥
सोऽधीत्य विधिवद् वेदान् धर्मेण तपसि स्थित ।
मति चक्रे भाग्ययोगात् सन्यास प्रति धर्मवित्॥२३॥
स कृत्वा तीर्थससेवा स्वाध्याये तपसि स्थित ।
जगाम हिमवत्पृष्ठ कदाचित् सिद्धसेवितम्॥२४॥
तत्र धर्मपद नाम धर्मसिद्धिप्रद वनम्।
अपश्यद् योगिना गम्यमगम्य ब्रह्मविद्विषाम्॥२५॥

मधुर एव पवित्र मुसकानवाली तथा कृश शरीरवाली उनकी पत्नी अन्तर्धानाने थोडे ही समयमे शिखण्डी तथा हविर्धान नामक दो पुत्रोको जन्म दिया। शिखण्डीका पुत्र 'सुशील' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह धार्मिक, रूपसम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् था। विधिपूर्वक वेदोका अध्ययनकर वह धर्मपूर्वक तपस्यामे स्थित हुआ। भाग्ययोगसे उस धर्मज्ञने सन्यास ग्रहण करनेका विचार किया। वह तीर्थस्थानोका सेवन करते हुए स्वाध्याय तथा तपस्यामे स्थित रहने लगा। एक बार वह सिद्धोके द्वारा सेवित हिमालय पर्वतपर गया। वहाँ उसने धर्म एव सिद्धिको प्रदान करनेवाले योगियोके लिये प्राप्य किंतु ब्रह्मसे द्वेष करनेवालोके लिये अप्राप्य धर्मपद नामक एक वनको देखा॥ २१—२५॥

तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी।
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता॥२६॥
स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्वृतम्।
सुपुण्यमाश्रम रम्यमपश्यत् प्रीतिसयुत ॥२७॥
मन्दाकिनीजले स्नात्वा सतर्प्य पितृदेवता ।
अर्चयित्वा महादेव पुष्पै पद्मोत्पलादिभि ॥२८॥
ध्यात्वार्कसस्थमीशान शिरस्याधाय चाञ्जलिम्।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्त तुष्टाव परमेश्वरम्॥२९॥
रुद्राध्यायेन गिरिश रुद्रस्य चरितेन च।
अन्यैश्च विविधै स्तोत्रै शाम्भवैर्वेदसम्भवै ॥३०॥

वहाँ सिद्धाके आश्रमसे सुशोभित तथा विभिन्न प्रकारके कमल-समूहोसे सम्पन्न निर्मल जलवाली तथा पुण्य प्रदान करनवाली मन्दाकिनी नामक एक नदी (प्रवाहित हाती) थी। उसने प्रीतिपूर्वक उस मन्दाकिनी नदीके दक्षिण किनारेपर स्थित मुनीन्द्रा तथा योगियास सेवित पुण्यदायी एक रमणीय आश्रम देखा। उसने मन्दाकिनीक जलम स्नानकर देवस्वरूप पितरोका (तर्पण आदिसे) सतृप्तकर विभिन्न वर्णके कमल आदि पुष्पाके द्वारा भगवान् शकरकी अर्चना की और सूर्यमण्डलमे स्थित भगवान् ईशानका ध्यानकर सिरसे हाथ जाडते हुए प्रकाशमान सूर्यका दर्शन करते हुए वह रुद्राष्टाध्यायी, रुद्रके चरित्र एव और भी अनक वेदवर्णित विविध प्रकारक शिव-सम्बन्धी स्तात्राके द्वारा परमेश्वर गिरिशकी स्तुति करने लगा॥ २६—३०॥

अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत् समायान्त महामुनिम्।
श्वेताश्वतरनामान महापाशुपतोत्तमम्॥ ३१॥
भस्मसदिग्धसर्वाङ्ग कौपीनाच्छादनान्वितम्।
तपसा कर्षितात्मान शुक्लयज्ञापवीतिनम्॥ ३२॥
समाप्य सस्तव शम्भारानन्दास्राविलेक्षण।
ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ३३॥

इसी बीच उसने समस्त अङ्गामे भस्म लगाये हुए, कौपीन वस्त्रसे समन्वित, सफद यज्ञापवीत धारण किये हुए, तपस्याक द्वारा क्षाण शरीरवाले उत्तम महापाशुपत श्वेताश्वतर नामवाले महामुनिको समीपम आते हुए दखा। नेत्राम आनन्दाश्रु भरे हुए उसने भगवान् शकरकी स्तुति समाप्त कर उनके चरणाम सिरस प्रणाम किया और हाथ जोडते हुए यह वाक्य कहा—॥ ३१—३३॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वर।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् दृष्टो योगविदा वर॥ ३४॥
अहो मे सुमहद्भाग्य तपासि सफलानि म।
कि करिष्यामि शिष्योऽह तव मा पालयानघ॥ ३५॥

म धन्य हूँ, मैं अनुगृहीत हूँ, जो (आज) मुझे यागज्ञानियामे श्रेष्ठ, मुनियाके इश्वर साक्षात् भगवान् योगाश्वरके दशन हुए। अहा! मरा बडा ही सुन्दर भाग्य है। (आज) मर सभी तप सफल हा गये। अनघ! मैं क्या करूँ आपका मैं शिष्य हूँ, आप मरी रक्षा कर॥ ३४-३५॥

साऽनुगृह्याथ राजान सुशील शीलसयुतम्।
शिष्यत्व परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्॥ ३६॥
सान्यासिक विधि कृत्स्न कारयित्वा विचक्षण।
ददौ तदेश्वर ज्ञान स्वशाखाविहित व्रतम्॥ ३७॥
अशषवेदसार तत् पशुपाशविमोचनम्।
अन्त्याश्रममिति ख्यात ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्॥ ३८॥

तपस्यास जिसका सम्पूर्ण कल्मष नष्ट हा गया है एस उस निष्पाप एव शीलसम्पन्न 'सुशील' नामवाले राजाक ऊपर अनुग्रह करक (शकरने अपने) शिष्यरूपम उसे ग्रहण किया। उन बुद्धिमान् (मुनि)-ने सन्यास-सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि करवाकर उसे ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान तथा अपनी शाखाद्वारा विहित नियम और पशुरूपी जीवक पाश अर्थात् मायारूपी बन्धनसे मुक्त करनवाला वह सम्पूर्ण वेदका सार प्रदान किया, साथ ही ब्रह्मा आदिके द्वारा सेवित 'अन्त्याश्रम' नामवाले आश्रमको भी प्रदान किया॥ ३६—३८॥

उवाच शिष्यान् सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिन।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् ब्रह्मचर्यपरायणान्॥ ३९॥
मया प्रवर्तिता शाखामधीत्यैवेह योगिन।
समासते महादेव ध्यायन्तो निष्कल शिवम्॥ ४०॥
इह देवो महादेवो रममाण सहोमया।
अध्यास्त भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया॥ ४१॥

उस आश्रमम रहनेवाले ब्रह्मचर्यपरायण ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य शिष्योको देखकर वे (श्वेताश्वतर मुनि) बोल—मेरे द्वारा प्रवर्तित शाखाका अध्ययन करते हुए योगीजन निष्कल महादव शिवका ध्यान करते हुए यहाँ निवास करते हैं। भक्तापर अनुकम्पा करनेके लिय भगवान् महादव उमाक साथ रमण करत हुए यहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३९—४१॥

इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायण स्वयम्।
आराधयन्महादेव लाकाना हितकाम्यया॥ ४२॥
इहैव दवमीशान दवनामपि दैवतम्।
आराध्य महती सिद्धि लभिरे दवदानवा॥ ४३॥
इहैव मुनय पूर्व मरीच्याद्या महश्वरम्।
दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञान लभिरे सार्वकालिकम्॥ ४४॥

प्राचीन कालमें संसारके कल्याणकी कामनासे समस्त जगत्को धारण करनेवाले स्वयं नारायण महादेवकी आराधना करते हुए यहाँ रहते थे। यहींपर देवताओंके भी देवता भगवान् शिवकी आराधना कर देवता तथा दानवोंने महान् सिद्धि प्राप्त की थी और यहींपर प्राचीन कालमें मरीचि आदि ऋषियोंने अपनी तपस्याके प्रभावसे महेश्वरका दर्शनकर सभी कालोंमें उपयोगी—हितकर ज्ञान प्राप्त किया था॥ ४२—४४॥

तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वित ।
तिष्ठ नित्यं मया सार्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥ ४५॥
एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम्।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत् स्वार्थसिद्धये॥ ४६॥
सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम्।
अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभिः सम्प्रवर्तितम्॥ ४७॥
सोऽपि तद्वचनाद् राजा सुशीलः श्रद्धयान्वित ।
साक्षात् पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत्॥ ४८॥

इसलिये राजेन्द्र! तुम भी तप एवं योगसे समन्वित होकर नित्य ही मेरे साथ रहो, इससे तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। ऐसा कहकर उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ (श्वेताश्वतर मुनि)-ने पिनाक (नामक धनुष) धारण करनेवाले भगवान् (शंकर)-का ध्यान करके स्वार्थ-सिद्धिके लिये सभी पापोंका शमन करनेवाले, वेदसार-स्वरूप, मुक्ति प्रदान करनेवाले तथा ऋषियोंद्वारा प्रवर्तित 'अग्नि' इत्यादि पुण्यजनक महामन्त्रका उसे (सुशीलको) विधिपूर्वक उपदेश दिया। उनके कथनानुसार 'सुशील' नामक वह राजा भी बड़ी ही श्रद्धासे साक्षात् पाशुपत होकर वेदाभ्यासमें निरत हो गया॥ ४५—४८॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशन ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः संन्यासविधिमाश्रित ॥ ४९॥
हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास सत्सुतम्।
प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम्॥ ५०॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान् सर्वशस्त्रभृतां वर ।
समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत्॥ ५१॥
प्रचेतसस्ते विख्याता राजान प्रथितौजस ।
अधीतवन्त स्वं वेदं नारायणपरायणा ॥ ५२॥
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापति ।
दक्षो जज्ञे महाभागो य पूर्वं ब्रह्मण सुत ॥ ५३॥
स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता।
कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्त प्राचेतसोऽभवत्॥ ५४॥

अपने सभी अङ्गोंमें भस्म धारणकर कन्द, मूल एवं फलोंका आहार करते हुए शान्त, इन्द्रियजयी एवं क्रोधजयी राजाने संन्यास-विधिका आश्रय लिया। हविर्धानने आग्नेयी नामक अपनी पत्नीसे धनुर्वेदमें पारंगत प्राचीन बर्हिष् नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया। सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् प्राचीनबर्हिने समुद्रकी पुत्रीसे दस पुत्रोंको उत्पन्न किया। नारायणपरायण तथा अपने तेजके लिये विख्यात प्रचेतस् नामसे प्रसिद्ध उन राजाओंने अपने वेदका अध्ययन किया। इन्हीं दस प्रचेताओंद्वारा मारिषा (नामक उनकी पत्नी)-से महाभाग प्रजापति दक्ष (पुत्ररूपमें) उत्पन्न हुए, जो पूर्व समयमें ब्रह्माके पुत्र थे। उन दक्षने बुद्धिमान् महेश रुद्रके साथ विवाद किया था, इससे रुद्रद्वारा शाप प्राप्तकर वे प्रचेताओंके पुत्र बने॥ ४९—५४॥

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हर ।
दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्॥ ५५॥
तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मण सुत ।
पूजामनर्हामन्विच्छन् जगाम कुपितो गृहम्॥ ५६॥
कदाचित् स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्ष सुदुर्मना ।
भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा॥ ५७॥

महादेव हरने स्वयं देवी (पार्वती)-के घर आये हुए दक्षको देखकर उनकी यथोचित पूजा की। (किंतु) उस समय तमोगुणके आवेशसे समाविष्ट ब्रह्माके पुत्र दक्ष (शंकरद्वारा की गयी अपनी) पूजाको अपर्याप्त और अयोग्य समझकर और भी अधिक पूजाकी इच्छा करनेके कारण कुपित होकर अपने घर चले गये। तदनन्तर कभी दूषित मनवाले दक्षने अपने घर आयी हुई (अपनी पुत्री) सतीकी (उनके) पति (भगवान् शंकर)-के साथ निन्दा करते हुए क्रुद्ध होकर भर्त्सना की॥ ५५—५७॥

अन्ये जामातर श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिन ।
त्वमप्यसत्सुतास्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम्॥ ५८॥
तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शंकरप्रिया।
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना॥ ५९॥
प्रणम्य पशुभर्तारं भर्तारं कृत्तिवाससम्।
हिमवद्दुहिता साभूत् तपसा तस्य तोषिता॥ ६०॥

(दक्ष बोले—सती!) तुम्हारे पिनाकधारी पतिसे मेरे अन्य जामाता श्रेष्ठ हैं। तुम भी अच्छी पुत्री नहीं हो इसलिये मेरे घरसे वहीं चले जाओ जहाँसे आयी हो। शकरप्रिया उन देवी सतीने उस (कठोर) वाक्यको सुनकर पिता दक्षकी निन्दा की और चर्माम्बरधारी अपने स्वामी पशुपतिको प्रणामकर स्वय ही उन्हाने (योगाग्निद्वारा) अपनेको भस्म कर डाला। तदनन्तर वे ही हिमालयकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी पुत्री बनीं॥ ५८—६०॥

ज्ञात्वा तद्भगवान् रुद्र प्रपन्नार्तिहरो हर।
शशाप दक्ष कुपित समागत्याथ तद्‌गृहम्॥ ६१॥
त्यक्त्वा देहमिम ब्रह्मन् क्षत्रियाणा कुलोद्भव।
स्वस्या सुताया मूढात्मन् पुत्रमुत्पादयिष्यसि॥ ६२॥
एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलामपर्वतम्।
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्ष प्राचेतसोऽभवत्॥ ६३॥

उस बातको जानकर शरणागतोका कष्ट हरनेवाले भगवान् रुद्र हर दक्षके घर आये और क्रुद्ध होकर उन्ह शाप दिया। ब्रह्मन्! मूढात्मन्! इस शरीरको छोडकर तुम क्षत्रियोके कुलमे उत्पन्न हाओगे और पापवश अकार्यमें तुम्हारी प्रवृत्ति होगी। ऐसा कहकर महादेव कैलासपर्वतपर चले गये और समय आनेपर स्वायम्भुव दक्ष भी प्रचेताओके पुत्र बने॥ ६१—६३॥

एतद् व कथित सर्वं मनो स्वायम्भुवस्य तु।
विसर्गं दक्षपर्यन्त शृण्वता पापनाशनम्॥ ६४॥

(सूतजीने इस प्रकार कहा—) आप लागोसे मैने स्वायम्भुव मनुकी दक्षपर्यन्त विशेष सृष्टिका वर्णन किया। (यह वर्णन) सुननवालोंके पापको नष्ट करनेवाला है॥ ६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

हरिद्वारमे दक्षद्वारा यज्ञका आयोजन, यज्ञमे शकरका भाग न देखकर महर्षि दधीचद्वारा दक्षकी भर्त्सना तथा यज्ञमे भाग लेनेवाले ब्राह्मणोको शाप, देवी पार्वतीके कहने-पर शकरद्वारा रुद्रो, भद्रकाली तथा वीरभद्रको प्रकट करना, वीरभद्रादिद्वारा दक्षके यज्ञका विध्वस, शकर-पार्वतीका यज्ञस्थलमे प्राकट्य, भयभीत दक्षद्वारा शकर तथा पार्वतीकी स्तुति और वर प्राप्त करना, ब्रह्माद्वारा दक्षको उपदेश और शिव-विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन तथा दक्षद्वारा शिवकी शरण ग्रहण करना

नैमिषीया ऊचु

देवाना दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्ति विस्तरात् सूत ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे॥ १॥
स शप्त शम्भुना पूर्वं दक्ष प्राचेतसो नृप।
किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥ २॥

नैमिषीय ऋषि बोले—सूतजी महाराज! वैवस्वत मन्वन्तरमें हुई देवताओ, दानवा गन्धर्वों, नागो तथा राक्षसोकी उत्पत्तिको आप विस्तारसे बतलाये। महाबुद्धिमान् सूतजी! इस समय हम यह सुनना चाहते हैं कि प्राचीन कालम प्रचेताके पुत्र राजा दक्षने भगवान् शकरस शाप प्राप्तकर क्या किया था॥ १-२॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्त पूर्वकल्पानुषङ्गिकम्।
त्रिकालबद्ध पापघ्न प्रजासर्गस्य विस्तरम्॥ ३॥

सूतजीने कहा—मैं पूर्वकल्पके प्रसगमे नारायणद्वारा कहे गये (भूत, भविष्य तथा वर्तमान—इस प्रकार) तीनो कालासे सम्बद्ध तथा पाप हरनेवाल प्रजा-सर्गको विस्तारसे बतलाता हूँ॥ ३॥

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः।
विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद् भवम्॥ ४॥
देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह।
सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुंगवाः॥ ५॥
दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शंकरेण विनागतम्।
दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत्॥ ६॥

प्राचीन कालकी बात है, भगवान् शंकरके शापसे ग्रस्त उन प्रचेतापुत्र राजा दक्षने पूर्व वैरके कारण शंकरकी निन्दा कर गङ्गाद्वार हरिद्वारमें एक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। श्रेष्ठ मुनियो! विष्णुके साथ सभी देवता उस यज्ञमें भाग ग्रहण करनेके लिये बुलाये गये। सभी मुनियोंके साथ वे वहाँ आये। शंकरको छोड़कर आये हुए समस्त देव-समूहोंको देखकर दधीच नामक विप्रर्षिने प्राचेतस-दक्षसे (इस प्रकार) कहा— ॥ ४—६॥

दधीच उवाच

ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः।
स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किं न पूज्यते॥ ७॥

दधीच बोले—ब्रह्मा आदिसे लेकर पिशाचतक जिनकी आज्ञाका शीघ्र ही अनुपालन करते हैं, उन रुद्रदेवकी पूजा इस समय क्यों नहीं की जा रही है?॥ ७॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः।
न मन्त्रा भार्यया सार्धं शंकरस्येति नेज्यते॥ ८॥
विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम्॥ ९॥

दक्षने कहा—सभी यज्ञोंमें भार्यासहित शंकरके भाग एवं मन्त्रोंकी परिकल्पना नहीं हुई है, इसलिये उनकी पूजा नहीं की जाती। इसपर साक्षात् सर्वज्ञानमय महामुनि दधीचने कोपपूर्वक हँसते हुए सभी देवताओंको सुनाते हुए दक्षसे कहा— ॥ ८-९॥

दधीच उवाच

यतः प्रवृत्तिर्विश्वेषां यश्चास्य परमेश्वरः।
सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा किल शंकरः॥ १०॥

दधीच बोले—जिनसे सभीकी प्रवृत्ति होती है और जो इस (विश्व)-के परमेश्वर हैं वे शंकर निश्चय ही सभी यज्ञोंद्वारा ज्ञानपूर्वक पूजित होते हैं॥ १०॥

दक्ष उवाच

न ह्ययं शंकरो रुद्रः संहर्ता तामसो हरः।
नग्नः कपाली विकृतो विश्वात्मा नोपपद्यते॥ ११॥
ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणः स्वराट्।
सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु॥ १२॥

दक्षने कहा—संहार करनेवाले तमोगुणी नग्न, कपाल धारण करनेवाले तथा विकृत (वेशवाले) रुद्र, हर, शंकर किसी भी प्रकार विश्वात्मा नहीं हो सकते। संसारकी सृष्टि करनेवाले स्वराट्, प्रभु नारायण ही ईश्वर हैं और सभी कर्मोंमें उन सत्त्वात्मक भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है॥ ११-१२॥

दधीच उवाच

किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते।
सर्वलोकैकसंहर्ता कालात्मा परमेश्वरः॥ १३॥
यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः।
सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः कालात्मा शांकरी तनुः॥ १४॥
एष रुद्रो महादेवः कपर्दी च घृणी हरः।
आदित्यो भगवान् सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः॥ १५॥
संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः।
पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्तिं त्रयीमयम्॥ १६॥

दधीच बोले—क्या तुम समस्त लोकोंके एकमात्र संहारकर्ता कालस्वरूप तथा हजारों किरणवाले इन परमेश्वर भगवान् (सूर्य)-को नहीं देख रहे हो। धर्मात्मा, ब्रह्मवादी विद्वान् जिनकी स्तुति करते हैं वही ये (सूर्य) तीव्र तेजसे सम्पन्न कालात्मक साक्षी यहाँ शंकरके शरीर-रूपमें ही स्थित हैं। देवी अदितिके पुत्र ये भगवान् सूर्य ही रुद्र, महादेव, कपर्दी, घृणी, हर, नीलग्रीव, विलोहित (नामवाले) हैं। सामवेदका गान करनेवाले तथा अध्वर्यु एवं होताओंके द्वारा हजारों किरणवाले सूर्यकी स्तुति की जाती है। विश्वको बनानेवाले त्रयीमय—ऋक्, यजु तथा सामवेद-स्वरूप रुद्रकी मूर्तिको देखो॥ १३—१६॥

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः।
सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः॥ १७॥
एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः।

बाढमित्यब्रुवन् वाक्य तस्य साहाय्यकारिण ॥ १८ ॥
तमसाविष्टमनसो न पश्यन्ति वृषध्वजम्।
सहस्रशोऽथ शतशो भूय एव विनिन्द्यते ॥ १९ ॥
निन्दन्तो वैदिकान् मन्त्रान् सर्वभूतपति हरम्।
अपूजयन् दक्षवाक्य मोहिता विष्णुमायया ॥ २० ॥
देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादय ।
नापश्यन् देवमीशानमृते नारायण हरिम् ॥ २१ ॥
हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।
पश्यतामेव सर्वेषा क्षणादन्तरधीयत ॥ २२ ॥

दक्षने कहा—यज्ञमे भाग ग्रहण करनेवाले ये जो बारह (अदिति-पुत्र) आदित्य यहाँ आये हुए हैं, ये सभी सूर्यके नामसे ही जाने जाते हैं। इनसे अतिरिक्त कोई अन्य सूर्य नहीं हैं। ऐसा कहनेपर यज्ञ देखनेकी इच्छासे आये हुए उनके (दक्षके) सहयोगी मुनियाने (समर्थन करते हुए) दक्षसे कहा—ठीक है। तमागुणसे आविष्ट मनवाले सैकडों-हजारोकी सख्याम आये हुए उन लागाने भगवान् वृषध्वज शकरको न देखते हुए पुन उनकी निन्दा करनी आरम्भ की। विष्णुकी मायासे मोहित हाकर वे वैदिक मन्त्रोकी निन्दा करते हुए सभी प्राणियाक एकमात्र स्वामी भगवान् हरकी पूजा न करके दक्षक वचनका अनुमोदन करने लगे। यज्ञम भाग ग्रहण करनेके लिये आये हुए इन्द्रादि सभी देवताआने भी नारायण हरिके अतिरिक्त देव ईशान (शकर)-को भी नहीं देखा (अर्थात् शिवक माहात्म्यको वे जान नहीं पाये)। ब्रह्मज्ञानियोम श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा सभीके देखते-देखते क्षणभरमे ही अन्तर्धान हो गये॥ १७—२२॥

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायण हरिम्।
रक्षक जगता देव जगाम शरण स्वयम् ॥ २३ ॥
प्रवर्तयामास च त यज्ञ दक्षोऽथ निर्भय ।
रक्षते भगवान् विष्णु शरणागतरक्षक ॥ २४ ॥
पुन प्राह च त दक्ष दधीचो भगवानृषि ।
सम्प्रेक्ष्यर्षिगणान् देवान् सर्वान् वै ब्रह्मविद्विष ॥ २५ ॥
अपूज्यपूजने चैव पूज्याना चाप्यपूजने।
नर पापमवाप्नोति महद् वै नात्र सशय ॥ २६ ॥
असता प्रग्रहो यत्र सता चैव विमानना।
दण्डो देवकृतस्तत्र सद्य पतति दारुण ॥ २७ ॥
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षि शशापेश्वरविद्विष ।
समागतान् ब्राह्मणास्तान् दक्षसाहाय्यकारिण ॥ २८ ॥

भगवान् ब्रह्माके अन्तर्धान हो जानेपर स्वय दक्ष ससारकी रक्षा करनेवाले देव नारायण हरिकी शरणम गये। तदनन्तर भयसे मुक्त होकर दक्षने वह यज्ञ आरम्भ किया। शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णु (उस यज्ञकी) रक्षा करने लगे। भगवान् दधीच ऋषिने ब्रह्म (शकर)-से द्वेष माननेवाले उन सभी ऋषिगणा तथा देवताओकी ओर देखकर उन दक्षसे पुन कहा—जो अपूज्य है, उसका पूजन करनेसे और जो पूज्य है, उसका पूजन न करनेसे मनुष्य निश्चित ही महान् पापको प्राप्त करता है, इसमे किंचित् भी सदेह नहीं है। जहाँ दुर्जनाका आदर होता है और सत्पुरुपोका अनादर होता है, वहाँ अति शीघ्र ही दारुण दैवी दण्ड उपस्थित होता है। ऐसा कहकर विप्रर्षि दधीचने दक्षकी सहायता करनेके लिये आये हुए उन ईश्वर (शकर)-से विद्वेष रखनेवाले ब्राह्मणोको शाप देते हुए कहा— ॥ २३—२८ ॥

यस्माद् बहिष्कृता वेदा भवद्भि परमेश्वर ।
विनिन्दितो महादेव शकरो लोकवन्दित ॥ २९ ॥
भविष्यध्व त्रयीबाह्या सर्वेऽपीश्वरविद्विष ।
निन्दन्तो ह्यैश्वर मार्गं कुशास्त्रासक्तमानसा ॥ ३० ॥
मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिन ।
प्राप्य घोर कलियुग कलिजै किल पीडिता ॥ ३१ ॥
त्यक्त्वा तपोबल कृत्स्न गच्छध्व नरकान् पुन ।
भविष्यति हृषीकेश स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुख ॥ ३२ ॥

चूँकि तुम लोगोने वेदाकी अवमानना की है और समस्त ससारके द्वारा वन्दित परमेश्वर महादव शकरकी निन्दा की है, अत ईश्वर (शकर)-से द्वेष रखनेवाले तुम सभी वेदत्रयीसे रहित हो जाओगे और असत्-शास्त्राम मन लगाते हुए ईश्वर-मार्ग (शिव-मार्ग)-की निन्दा करोगे तथा घार कलियुग आनेपर मिथ्या अध्ययन और मिथ्या आचारयुक्त होकर मिथ्या ज्ञानका प्रलाप करनेवाले होओगे, साथ ही कलिके द्वारा उत्पन्न कष्ट एव दु खा आदिसे पीडित रहागे। पुन तुम सभी अपने सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके नरक प्राप्त करोगे। तुम लागाके द्वारा हृपीकेश

भलीभाँति आश्रय ग्रहण करनेपर भी वे तुम लोगोसे विमुख ही रहेगे॥ २९—३२॥

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधि ।
जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्॥ ३३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेव महेश्वरम्।
पति पशुपति देव ज्ञात्वैतत् प्राह सर्वदृक्॥ ३४॥

ऐसा कहकर तपस्याकी निधि वे विप्रर्षि (दधीच) चुप हो गये और मानसिक रूपसे सम्पूर्ण पापोका विनाश करनेवाले रुद्रकी शरणमें गये। इसी बीच यह सारी घटना जानकर सर्वदर्शी (सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाली) देवी (पार्वती)-ने (अपने) पतिदेव पशुपति महादेव महेश्वरसे कहा—॥ ३३—३४॥

देव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजत पिता मे पूर्वजन्मनि।
विनिन्द्य भवतो भावमात्मान चापि शकर॥ ३५॥
देवा सहर्षिभिश्चासस्तत्र साहाय्यकारिण ।
विनाशयाशु त यज्ञ वरमेक वृणोम्यहम्॥ ३६॥
एव विज्ञापितो देव्या देवा देववर प्रभु ।
ससर्ज सहसा रुद्र दक्षयज्ञजिघासया॥ ३७॥
सहस्रशीर्षपाद च सहस्राक्ष महाभुजम्।
सहस्रपाणि दुर्धर्ष युगान्तानलसनिभम्॥ ३८॥
दष्ट्राकराल दुष्प्रेक्ष्य शङ्खचक्रगदाधरम्।
दण्डहस्त महानाद शार्ङ्गिण भूतिभूषणम्॥ ३९॥
वीरभद्र इति ख्यात देवदेवसमन्वितम्।
स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलि ॥ ४०॥

देवी बोलीं—शकर! पूर्वजन्मके मेरे (सतीके) पिता दक्ष यज्ञ कर रहे हैं और आपके भाव तथा स्वरूपकी निन्दा कर रहे हैं। ऋषियोके साथ देवता वहाँ उनकी सहायता करते हुए उपस्थित हैं। मैं आपसे एक वर माँगती हूँ कि 'आप शीघ्र ही उस यज्ञको नष्ट कर'। देवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवताओमे श्रेष्ठ प्रभु भगवान् (शकर)-ने दक्षके यज्ञका विध्वस करनेके लिये शीघ्र ही हजारो सिर एव पैरवाले, हजारो आँखवाले विशाल भुजायुक्त हजारो हाथवाले दुर्जेय प्रलयकालीन अग्निके समान भयकर दाढयुक्त देखनेमे भयकर शख चक्र तथा गदा धारण किये हाथमे दण्ड धारण करनेवाले घोर नाद करनेवाले सींगसे बने धनुषको धारण किये, विभूतिसे सुशोभित तथा अनेक देवताओसे घिरे हुए वीरभद्र नामवाले रुद्रको उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही वह हाथ जोडकर देवताओके स्वामी भगवान् शकरके सम्मुख उपस्थित हुआ॥ ३५—४०॥

तमाह दक्षस्य मख विनाशय शिवोऽस्त्विति।
विनिन्द्य मा स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर॥ ४१॥
ततो बन्धुप्रयुक्तेन सिहेनैकेन लीलया।
वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत् क्रतु ॥ ४२॥
मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी।
तया च सार्धं वृषभ समारुह्य ययौ गण ॥ ४३॥
अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता।
रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिण ॥ ४४॥
शूलशक्तिगदाहस्ताष्टङ्कोपलकरास्तथा ।
कालाग्निरुद्रसकाशा नादयन्तो दिशो दश॥ ४५॥
सर्वे वृषासनारूढा सभार्याश्चातिभीषणा ।
समावृत्य गणश्रेष्ठ ययुर्दक्षमख प्रति॥ ४६॥

(शकरने उससे कहा—) गणेश्वर! दक्षके यज्ञका विध्वस करो वह गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-मे मेरी निन्दा करते हुए यज्ञ कर रहा है। तुम्हारा कल्याण हो। तदनन्तर बन्धु (शिव)-के द्वारा निर्दिष्ट वीरभद्रने सिहके समान लीला करते हुए अकेले ही दक्षके यज्ञका विध्वस कर दिया। उमाने भी क्रोध करते हुए महेश्वरी भद्रकालीको उत्पन्न किया, उसके साथ वृषभपर आरूढ होकर वह गण (वीरभद्र) वहाँ (गङ्गाद्वार यज्ञमे) गया। बुद्धिमान् उन शकरने उनकी सहायता करनेवाले हजारो दूसरे रुद्रोको भी उत्पन्न किया। (शकरके) रोमोसे उत्पन्न होनेके कारण वे रुद्र 'रोमज' कहलाये। हाथोमें त्रिशूल शक्ति गदा, टङ्क (पत्थर ताडनेके हथियार—घन हथौडा छेनी आदि) तथा पत्थर लिये हुए और कालाग्नि रुद्रके समान अत्यन्त भीषण सभी अपनी-अपनी भार्याओके साथ वृषभ-रूप आसनपर आरूढ होकर दसो दिशाओको प्रतिध्वनित करते हुए गणोमे सर्वश्रेष्ठ वीरभद्रको अपने समूहके बीच रखते हुए जहाँ दक्ष-यज्ञ हो रहा था उस ओर चल पडे॥ ४१—४६॥

सर्वे सम्प्राप्य त देश गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्।
ददृशुर्यज्ञदेश त दक्षस्यामिततेजस ॥ ४७॥

देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम् ।
वीणावेणुनिनादाढ्य वेदवादाभिनादितम्॥४८॥
दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवै समासीन प्रजापतिम्।
उवाच भद्रया रुद्रैर्वीरभद्र स्मयन्निव॥४९॥

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) नामसे प्रसिद्ध उस देशम पहुँचकर उन सभीने अमित तेजस्वी दक्षके उस यज्ञस्थलको देखा, जो हजारो देवाङ्गनाआसे सुशोभित था, अप्सराओके गीतोसे मुखरित था वीणा तथा वेणुके निनादसे प्रतिध्वनित और वेद-मन्त्रोसे गुञ्जित था। देवताओ तथा ऋषियाके साथ बैठे हुए प्रजापति दक्षको देखकर भद्रकाली तथा रुद्रोसहित वीरभद्रने हँसते हुए कहा— ॥४७—४९॥

वय ह्यनुचरा सर्वे शर्वस्यामिततेजस ।
भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छध्वमीप्सितान्॥५०॥
अथ चेत् कस्यचिदियमाज्ञा मुनिसुरोत्तमा ।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम्।
त ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वय तत ॥५१॥
एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुर सरा ।
देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभुम्॥५२॥

हम सभी अमित तेजस्वी शकरके अनुचर हैं, यज्ञमे भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं, आप हम अभीप्सित यज्ञभाग प्रदान करे। अथवा श्रेष्ठ मुनियो और देवताओ! आप हमे यह बतलाय कि किसने आपको ऐसी आज्ञा दी है कि मुझे यज्ञ-भाग न द और आप लोगोका ही सब भाग है। जो ऐसी आज्ञा देनवाला है उसे बतलाय, फिर हम उसे दख लेगे। गणोके स्वामी वीरभद्रके ऐसा कहे जानेपर प्रजापति दक्षसहित देवताआने प्रभु (वीरभद्र)-से कहा—'आपको यज्ञभाग देने-सम्बन्धी मन्त्र नहीं हैं।'॥ ५०—५२॥

मन्त्रा ऊचु सुरान् यूय तमोपहतचेतस ।
ये नाध्वरस्य राजान पूजयध्व महेश्वरम्॥५३॥
ईश्वर सर्वभूताना सर्वभूततनुर्हर ।
पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिद ॥५४॥
एवमुक्ता अपीशान मायया नष्टचेतस ।
न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान् मुक्त्वा स्वमालयम्॥५५॥
तत स रुद्रो भगवान् सभार्य सगणेश्वर ।
स्पृशन् कराभ्या ब्रह्मर्षिं दधीच प्राह दवता ॥५६॥

(यह सुनकर वेद-) मन्त्राने (मूर्तिमान् स्वरूप धारणकर) देवताआसे कहा—आपका मन तमोगुणसे आक्रान्त हा गया है, इसीलिये आप यज्ञके स्वामी महेश्वरकी पूजा नहीं कर रहे हैं। सभी प्राणियोके एकमात्र स्वामी और सभी प्राणियाके शरीर-रूप तथा समस्त अभ्युदय एव सिद्धियोको प्रदान करनेवाले हर (शकर) सभी यज्ञामे पूजित होते हैं। ईशान अर्थात् शकरके बारेम ऐसा कह जानेपर भी मायाके कारण नष्ट चेतनावाले दवाने (जब उनकी बातको) नहीं माना, तब मन्त्र उन्ह छोडकर अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर भार्या और गणेश्वरोसहित उन (वीरभद्रस्वरूप) रुद्रने ब्रह्मर्षि दधीचको हाथोसे स्पर्श करते हुए देवताओसे कहा— ॥ ५३—५६॥

मन्त्रा प्रमाण न कृता युष्माभिर्बलगर्वितै ।
यस्मात् प्रसह्य तस्माद् वो नाशयाम्यद्य गर्वितम्॥५७॥
इत्युक्त्वा यज्ञशाला ता ददाह गणपुगव ।
गणेश्वराश्च सक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपु ॥५८॥
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्व चैव गणश्वरा ।
गृहीत्वा भीषणा सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपु ॥५९॥
वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्योद्यच्छत करम्।
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्यषा दिवौकसाम्॥६०॥
भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया।
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत्॥६१॥

तुम लागाने अपने बलसे गर्वित हाकर मन्त्रोको प्रमाण नहीं माना इसलिय इसे सहन न कर मैं आज बलपूर्वक सभीके गर्वको नष्ट करूँगा। एसा कहकर गणोम श्रेष्ठ वीरभद्रने उस यज्ञशालाको जला डाला और गणेश्वराने अत्यन्त क्रुद्ध हाकर (यज्ञशालाक) यूपा (स्तम्भा)-को उखाडकर फक दिया। भयानक सभी गणश्वराने आहुति दनेवालासहित पाठ करनवाला एव घोडेका भी पकडकर गङ्गाके प्रवाहमे फक दिया। प्रदीप्त आत्मावाले तथा दीनतारहित वीरभद्रन भी इन्द्रके उठे हुए सौ हाथा तथा अन्य देवताआके उठ हुए हाथाका स्तम्भित कर दिया। उन्होंने नाखूनाक अग्रभागस खल-खलम ही भग (दवता)-के नत्राका उखाड डाला मुक्कस मारकर पूषा (दवता)-के दाँताका ताड डाला॥ ५७—६१॥

तथा चन्द्रमस देव पादाङ्गुष्ठेन लीलया।
धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणश्वर ॥६२॥
वह्नेर्हस्तद्वय छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया।
जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वरा ॥६३॥
तथा विष्णु सगरुड समायान्त महाबल।
विव्याध निशितैर्बाणै स्तम्भयित्वा सुदर्शनम्॥६४॥

इसी प्रकार लीला करत हुए बलशाली गणश्वर वीरभद्रने हँसकर पैरके अँगूठसे चन्द्रमाको धर्षित कर (रौंद) दिया। अग्नि (देवता)-के दोनो हाथोंको काटकर लीलासे ही उनकी जीभ उखाड दी। मुनीश्वरो! उन्होने परसे मुनियोंके मस्तकपर भी प्रहार किया। साथ ही (उस) महाबली (वीरभद्र)-न सुदर्शनचक्रको स्तम्भित कर गरुडपर बैठकर आत हुए विष्णुको भी तीक्ष्ण बाणासे विद्ध (चोटिल) कर दिया॥६२—६४॥

समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडा गणम्।
जघान पक्षै सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा॥६५॥
तत सहस्रशो भद्र ससर्ज गरुडान् स्वयम्।
वैनतेयादभ्यधिकान् गरुड ते प्रदुद्रुवु ॥६६॥
तान् दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजव।
विसृज्य माधव वेगात् तदद्भुतमिवाभवत्॥६७॥
अन्तर्हिते वैनतये भगवान् पद्मसम्भव।
आगत्य वारयामास वीरभद्र च केशवम्॥६८॥

महाबाहु गरुडने वहाँ आकर गण (वीरभद्र)-को देखकर अचानक उन्हे अपन पखोसे मारा और समुद्रके समान गर्जन किया। तदनन्तर उन वीरभद्रने भी स्वय हजारो गरुडोको उत्पन्न कर डाला जो विनतापुत्र गरुडसे भी अधिक बलशाली थे वे सभी गरुडके ऊपर टूट पडे। उन (वीरभद्रद्वारा उत्पन्न) गरुडोको देखकर बुद्धिमान् व गरुड विष्णुको छोडकर बडे ही वेगसे भाग उठे यह एक आश्चर्यकी बात थी। विनताके पुत्र गरुडके अन्तधान हो जानेपर कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माने वहाँ उपस्थित होकर वीरभद्र तथा केशवको (युद्ध करनेसे) रोका॥ ६५—६८॥

प्रसादयामास च त गौरवात् परमेष्ठिन।
सस्तूय भगवानीश साम्बस्तत्रागमत् स्वयम्॥६९॥
वीक्ष्य देवाधिदेव त साम्ब सर्वगणैर्वृतम्।
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्ष सर्वे दिवौकस ॥७०॥
विशेषात् पार्वतीं देवीमीश्वरार्धशरीरिणीम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्ष प्रणम्य च कृताञ्जलि ॥७१॥
ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्।
प्रसन्नमानसा रुद्र वच प्राह घृणानिधि ॥७२॥

परमेष्ठी ब्रह्माकी महत्ताको समझकर (वीरभद्रने उनकी) स्तुति कर उन्हे प्रसन्न किया। (उस समय) पार्वतीसहित साक्षात् भगवान् शकर भी वहाँ आये। सभी गणोसे घिरे हुए पार्वतीसहित उन देवाधिदेव शकरको देखकर भगवान् ब्रह्मा दक्ष तथा द्युलोकमे रहनेवाले सभी देवता उनकी (भगवान् शकरकी) स्तुति करने लगे। दक्षने विशेष-रूपसे शकरकी अर्धाङ्गिनी देवी पार्वतीको हाथ जोडकर प्रणाम करते हुए नाना प्रकारके स्तोत्रोसे प्रसन्न किया। तदनन्तर दयाकी निधि देवी भगवतीने हँसते हुए प्रसन्न-मनसे महेश्वर रुद्रसे यह वचन कहा— ॥ ६९—७२॥

त्वमेव जगत स्रष्टा शासिता चैव रक्षक।
अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकस ॥७३॥
तत प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहित।
उवाच प्रणतान् देवान् प्राचेतसमथो हर ॥७४॥

आप ही ससारकी सृष्टि करनेवाले तथा आप ही शासन करनेवाले एव रक्षक हैं। आप भगवान्को दक्ष तथा देवताओपर कृपा करनी चाहिये। तदनन्तर जटा धारण करनेवाले नीललोहित भगवान् हरने हँसकर देवताओ तथा प्रचेतापुत्र दक्षसे कहा— ॥ ७३-७४॥

गच्छध्व देवता सर्वा प्रसन्नो भवतामहम्।
सम्पूज्य सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽह विशेषत ॥७५॥
त्व चापि शृणु मे दक्ष वचन सर्वरक्षणम्।
त्यक्त्वा लोकैषणामेता मद्भक्तो भव यत्नत ॥७६॥
भविष्यसि गणेशान कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम।
तावत् तिष्ठ ममादेशात् स्वाधिकारेषु निर्वृत ॥७७॥

देवताओ! आप सभी लोग जायँ। मै आपपर प्रसन्न हूँ। सभी यज्ञोमे विशेषरूपसे मेरी पूजा करनी चाहिये और मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। हे दक्ष! तुम भी सभीकी रक्षा करनेमे समर्थ मेरे वचनको सुनो—तुम 'मैं ही सबसे श्रेष्ठ

हूँ' इस लोकेषणा (यशकी इच्छा)-का परित्यागकर प्रयत्नपूर्वक मेरे भक्त बनो। इस कल्पके बीत जानेपर मेरी कृपासे तुम गणाक अधिपति बनोगे। मेरे आदेशस उस समयतक तुम अपने अधिकारपर शान्तिस बने रहो॥ ७५—७७॥

एवमुक्त्वा स भगवान् सपत्नीक सहानुग।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजस ॥७८॥
अन्तर्हिते महादव शकरे पद्मसम्भव।
व्याजहार स्वय दक्षमशेषजगतो हितम्॥७९॥

एसा कहकर वे भगवान् शकर पत्नी पार्वती तथा अपने अनुचरोसहित अमित तेजस्वी दक्षके लिये अन्तर्धान (अदृश्य) हा गय। महादेव शकरके अन्तर्धान हो जानेपर साक्षात् पद्मोद्भव ब्रह्माने समस्त ससारके लिये कल्याणकारी वचन कहे—॥ ७८-७९॥

ब्रह्मोवाच

किं तवापगतो मोह प्रसन्ने वृषभध्वजे।
यदाचष्ट स्वय देव पालयैतदतन्द्रित ॥८०॥
सर्वेषामव भूताना हृद्येष वसतीश्वर।
पश्यन्त्येन ब्रह्मभूता विद्वासो वदवादिन ॥८१॥
स आत्मा सर्वभूताना स बीज परमा गति।
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वर ॥८२॥
तमर्चयति यो रुद्र स्वात्मन्यक सनातनम्।
चेतसा भावयुक्तेन स याति परम पदम्॥८३॥
तस्मादनादिमध्यान्त विज्ञाय परमश्वरम्।
कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नत ॥८४॥

ब्रह्माजीने कहा—(दक्ष!) वृषभध्वज शकरके प्रसन्न हो जानपर क्या तुम्हारा माह दूर हुआ? साक्षात् भगवान्न जा तुमसे कहा हे, आलस्यरहित होकर उसका पालन करो। य परमश्वर सभी प्राणियाक हृदयम निवास करते हैं। वदवादा ब्रह्मस्वरूप विद्वान् लाग इनका दशन करत हैं। वे सभी प्राणियाक आत्मा वे हा बीजरूप तथा परम गति हैं। वैदिक मन्त्राके द्वारा देवदव महश्वरकी स्तुति की जाती है। जा उन अद्वितीय सनातन रुद्रकी अपनी आत्माम श्रद्धायुक्त मनस आराधना करता हैं वह परमपद अर्थात् माक्ष-प्राप्त करता है। इसलिये आदि मध्य और अन्तसे रहित परमेश्वरका जानकर मन वाणी तथा कर्मस पयत्लपूर्वक उनकी आराधना करो॥ ८०—८४॥

यत्नात् परिहरशस्य निन्दामात्मविनाशिनीम्।
भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया यत ॥८५॥
यस्तवैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्यय।
स देवदेवा भगवान् महादेवो न सशय ॥८६॥
मन्यन्ते ये जगद्योनि विभिन्न विष्णुमीश्वरात्।
मोहादवेदनिष्ठत्वात् त यान्ति नरक नरा ॥८७॥
वेदानुवर्तिनो रुद्र देव नारायण तथा।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥८८॥

अपना ही विनाश कर डालनवाला शकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छोड दो क्योकि (भगवान् शकरकी) निन्दा करनेवालेकी सारी क्रियाएँ दोषयुक्त ही हाती हे। जो आपके ये अव्यय तथा महायागी विष्णु रक्षक है, वे भी दवताओके देव भगवान् महादव ही हे इसम कोई सशय नहीं। जो अज्ञानसे तथा वेदम निष्ठा न रखनेके कारण ससारके मूल कारण भगवान् विष्णुको शकरसे पृथक् मानते है व मनुष्य नरकमे जात है। वदमार्गका अनुवर्तन करनेवाल लोग रुद्रदव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, अत वे मुक्तिपदक भागी हात हे॥ ८५—८८॥

यो विष्णु स स्वय रुद्रो यो रुद्र स जनार्दन।
इति मत्वा यजेद् देव स याति परमा गतिम्॥८९॥
सृजत्येतज्जगत् सर्व विष्णुस्तत् पश्यतीश्वर।
इत्थ जगत् सर्वमिद रुद्रनारायणोद्भवम्॥९०॥

जो विष्णु हैं व ही साक्षात् रुद्र है और जो रुद्र हैं, वे ही जनादन विष्णु ह—इस प्रकार समझकर जा दवका पूजन करता है वह परमगतिका प्राप्त करता है। विष्णु इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करत हे और शकर उसकी देख-रेख करत हैं। इस प्रकार यह सारा ससार रुद्र आर नारायणद्वारा ही उत्पन्न हाता है॥ ८९—९०॥

तस्मात् त्यक्त्वा हरेर्निन्दा विष्णावपि समाहित।
समाश्रयन्महादेव शरण्य ब्रह्मवादिनाम्॥९१॥
उपश्रुत्याथ वचन विरिञ्चस्य प्रजापति।
जगाम शरण दव गोपति कृत्तिवाससम्॥९२॥
यऽन्ये शापाग्निनिदग्धा दधीचस्य महषय।
द्विषन्तो माहिता दव सम्बभूवु कलिष्वथ॥९३॥

त्यक्त्वा तपोबल कृत्स्न विप्राणा कुलसम्भवा ।
पूर्वसस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह ॥ ९४ ॥

इसलिये भगवान् शकरकी निन्दाका परित्याग कर और विष्णुमे भी ध्यान लगाकर ब्रह्मवादियोके एकमात्र शरण्य महादेवका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्माके वचन सुनकर प्रजापति दक्ष चर्माम्बर धारण करनेवाले देव पशुपतिकी शरणमे गये। और जो दूसरे महर्षि दधीचके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो गये थे तथा मोहवश शकरसे द्वेष करनेवाले थे, वे पूर्वजन्मके सस्कारोके माहात्म्य तथा ब्रह्माके वचनसे सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके कलियुगमे ब्राह्मणोके कुलमे उत्पन्न होगे ॥ ९१—९४ ॥

मुक्तशापास्तत सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु।
निपात्यमाना कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम्।
ब्रह्माण जगतामीशमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ॥ ९५ ॥
समाराध्य तपोयोगादीशान त्रिदशाधिपम्।
भविष्यन्ति यथा पूर्वं शकरस्य प्रसादत ॥ ९६ ॥

रौरव आदि नरकामे डाले गये वे सभी (शकरसे विद्वेष करनेवाले) कल्पान्तमे यथासमय स्वयम्भूकी आज्ञासे आदित्यके समान तेजोमय जगत्के स्वामी ब्रह्माको प्राप्तकर शापसे मुक्त हो जायँगे और तपोयोगद्वारा देवताओके स्वामी शकरकी आराधना कर और उनकी कृपासे पुन जैसे पहले थे वैसे ही (विप्रर्षि) हो जायँगे ॥ ९५-९६ ॥

एतद् व कथित सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम्।
शृणुध्व दक्षपुत्रीणा सर्वासा चैव सततिम् ॥ ९७ ॥

प्रसगवश (मैंने) यह सब दक्ष-यज्ञके विध्वसकी कथा आप लागोसे कही। अब आप लोग प्रजापति दक्षकी सभी कन्याओकी सतान-परम्पराका वर्णन सुन ॥ ९७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहिताया पूर्वविभागे चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओकी सतति, नृसिहावतार, हिरण्यकशिपु एव हिरण्याक्ष-वधका वर्णन, पृथ्वीका उद्धार, प्रह्लाद-चरित, गौतमद्वारा दारुवननिवासी मुनियोको शाप, अन्धकके साथ महादेवका युद्ध एव महादेवद्वारा अपने स्वरूपका उपदेश, अन्धकद्वारा महादेवकी स्तुति तथा महादेव (शकर)-द्वारा अन्धकको गाणपत्य-पदकी प्राप्ति, अन्धकद्वारा देवीकी स्तुति और देवीद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमे ग्रहण करना तथा विष्णुद्वारा उत्पन्न माताओसे अपनी तीनो मूर्तियोका प्रतिपादन

सूत उवाच

प्रजा सृजेति व्यादिष्ट पूर्वं दक्ष स्वयम्भुवा।
ससर्ज देवान् गन्धर्वान् ऋषींश्चैवासुरोरगान् ॥ १ ॥
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्धन्त ता प्रजा ।
तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव धर्मत ॥ २ ॥
असिक्न्या जनयामास वीरणस्य प्रजापते ।
सुताया धर्मयुक्ताया पुत्राणा तु सहस्रकम् ॥ ३ ॥
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य स ।
षष्टि दक्षोऽसृजत् कन्या वैरण्या वै प्रजापति ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—पूर्वकालमे 'प्रजाकी सृष्टि करो' इस प्रकारकी स्वयम्भू ब्रह्माकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षने देवताओ, गन्धर्वों ऋषियो असुरों तथा नागोकी सृष्टि की। जब सृष्टि करनेवाले उन दक्षकी वे प्रजाएँ नहीं बढीं, तब उन्हाने मर्यादापूर्वक मिथुन-धर्म (स्त्री-पुरुष-सयोग)-से प्राणियोंकी सृष्टि की। उन्हाने वीरण प्रजापतिकी धर्मपरायणा असिक्नी नामकी कन्यासे एक हजार पुत्रोको उत्पन्न किया। देवर्षि नारदकी मायासे उन पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर पुन उन दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीसे ही साठ कन्याओंको

उत्पन्न किया॥ १—४॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
विंशत् सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥५॥
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्॥६॥

(उन साठ कन्याओमेसे) उन्होंने दस धर्मको तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और इसी प्रकार दो कन्याएँ अंगिराको प्रदान कीं। अब मैं उनके वंश-विस्तारका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

अरुन्धती वसुर्जामी लम्बा भानुर्मरुत्वती।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी॥७॥
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान् निबोधत।
विश्वाया विश्वदेवास्तु साध्या साध्यानजीजनत्॥८॥
मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसवोऽष्टौ वसोः सुताः।
भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्ता वै मुहूर्तजाः॥९॥
लम्बायाश्चाथ घोषो वै नागवीथी तु जामिजा।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत।
संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः॥१०॥

अरुन्धती, वसु, जामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा भामिनी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। विश्वाके विश्वेदेव हुए और साध्याने साध्य नामवाले पुत्रोंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुद्‌गण हुए और वसुसे वसु नामक आठ पुत्र हुए। भानुसे भानुओं और मुहूर्तासे मुहूर्तोंकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे घोष और जामिसे नागवीथी नामक पुत्र उत्पन्न हुए। अरुन्धतीसे सम्पूर्ण पृथ्वीसे सम्बद्ध प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई और संकल्पासे संकल्प नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार धर्मके (ये) दस पुत्र कहे गये हैं॥ ७—१०॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥११॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो धुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः॥१२॥
सोमस्य भगवान् वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः।
पुरोजवोऽनिलस्य स्यादविज्ञातगतिस्तथा॥१३॥
कुमारो ह्यनलस्यासीत् सेनापतिरिति स्मृतः।
देवलो भगवान् योगी प्रत्यूषस्याभवत् सुतः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्ता प्रजापतिः॥१४॥

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये अष्ट वसु कहे गये हैं। आपके वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा धुनि नामक पुत्र हुए ओर ध्रुवके पुत्र संसारके संहारक भगवान् काल हैं। भगवान् वर्चा सोमके पुत्र हैं और धरके द्रविण नामक पुत्र हैं। अनिलके पुरोजव तथा अविज्ञातगति नामवाले पुत्र हैं। अतुलके पुत्र कुमार हैं जो 'सेनापति' नामसे कहे जाते हैं। प्रत्यूष (नामक वसु)-के महायोगी भगवान् देवल नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार प्रभासके प्रजापति विश्वकर्मा नामक पुत्र हैं जो शिल्पकारी हैं॥ ११—१४॥

अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान् वै निबोधत॥१५॥

अदिति दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा क्रोधवशा, इरा, कद्रु, मुनि तथा धर्मज्ञा—(दक्षकी ये तेरह कन्याएँ कश्यपकी पत्नियाँ हैं) उनके पुत्रोंके विषयमे सुनो॥ १५॥

अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा।
विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान् विष्णुरेव च॥१६॥
तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्चादितेः सुताः॥१७॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद् बलसंयुतम्।
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथापरम्॥१८॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः।
आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
दृष्ट्वा लेभे वरान् दिव्यान् स्तुत्वासौ विविधैः स्तवैः॥१९॥
अथ तस्य बलाद् देवाः सर्व एव सुरर्षयः।
बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम्॥२०॥
शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम्।
ब्रह्माणं लोककर्तारं त्रातारं पुरुषं परम्।
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम्॥२१॥

अंश धाता भग, त्वष्टा मित्र वरुण, अर्यमा विवस्वान्, सविता, पूषा अंशुमान् तथा विष्णु—ये सभी पूर्वकालमें

चाक्षुष मन्वन्तरमे तुषित नामक देवता थे और वैवस्वत मन्वन्तरमे ये ही अदितिके पुत्र (बारह) आदित्य कहे गये हैं। दितिने कश्यपसे बलवान् दो पुत्रोको प्राप्त किया। उनमे हिरण्यकशिपु बडा था, उसका अनुज हिरण्याक्ष था। दैत्य हिरण्यकशिपु महाबलशाली और पराक्रमी था। उसने तपस्याद्वारा परमेष्ठी ब्रह्माकी आराधनाकर उनका दर्शन किया तथा विविध स्तोत्रोद्वारा उनकी स्तुतिकर दिव्य वरोको प्राप्त किया। उसके पराक्रमसे पीडित एव ताडित सभी देवता एव देवर्षिगण शरण ग्रहण करने योग्य आश्रयस्वरूप, सर्वजगन्मय शम्भु देवस्वरूप त्राता लोककर्ता, परमपुरुष कूटस्थ जगत्के एकमात्र पुराण पुरुष पुरुषोत्तम देवोके देव पितामह ब्रह्माकी शरणमे गये॥ १६—२१॥

स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः।
सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः॥ २२॥
संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः॥ २३॥
दृष्ट्वा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्।
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत॥ २४॥

मुनीश्वरो! श्रेष्ठ देवताओ तथा मुनियोके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सभी देवताओके कल्याण करनेकी इच्छासे कमलके आसनवाले ब्रह्मा क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये जहाँ विनीत मुनीन्द्रो तथा देवताओके द्वारा स्तुति किये जाते हुए हरि ईश्वर निवास करते हैं। जगत्के मूल कारण विश्वके गुरु कल्याणमय, विष्णुदेवका दर्शन करके उन्होने मस्तक झुकाकर चरणोमे प्रणाम किया और हाथ जोडकर (इस प्रकार) कहा—॥ २२—२४॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः।
व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः॥ २५॥
त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानं प्रकृतिः परा।
वैराग्यैश्वर्यनिरतो रागातीतो निरञ्जनः॥ २६॥
त्वं कर्ता चैव भर्ता च निहन्ता सुरविद्विषाम्।
त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्राता हि परमेश्वरः॥ २७॥

ब्रह्माने कहा—(भगवन्!) आप सभी प्राणियोकी गति हैं अनन्त हैं और इस सम्पूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं। आप सर्वत्र व्याप्त, सभी देवताओके शरीररूप, महायोगी तथा सनातन हैं। आप सभी प्राणियोकी आत्मा प्रधान और परा प्रकृति हैं। आप वैराग्य और ऐश्वर्यमे निरत रागातीत तथा निरञ्जन हैं। आप ही कर्ता-भर्ता तथा देवताओसे द्वेष रखनेवालोके संहर्ता हैं। अनन्तेश! आप ही रक्षा करनेवाले परमेश्वर है, आप रक्षा करे॥ २५—२७॥

इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासा सुरद्विषः॥ २८॥
किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः।
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः॥ २९॥

ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार भलीभाँति प्रबुद्ध किये जानेपर विकसित कमलके समान नेत्रवाले पीत वस्त्र धारण करनेवाले तथा असुरोके द्वेषी भगवान् विष्णु बोले—अत्यन्त वीर्यशाली देवताओ! आपलोग प्रजापतियोके साथ इस स्थानपर किस कारणसे आये हैं अथवा मैं आप लोगोका कौन-सा कार्य करूँ?॥ २८-२९॥

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः।
बाधते भगवन् दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः॥ ३०॥
अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम।
हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्वं त्रातासि जगन्मय॥ ३१॥
श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः।
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत् पुरुषं स्वयम्॥ ३२॥
मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः॥ ३३॥

देवता बोले—भगवन्! ब्रह्माके द्वारा प्राप्त वरदानके कारण घमंडसे भरा हुआ हिरण्यकशिपु नामका दैत्य ऋषियोसहित सभी देवताओको पीडित कर रहा है। हे पुरुषोत्तम! आपको छोडकर अन्य सभी प्राणियोसे वह अवध्य है। जगन्मय! आप उसे मारनेमे समर्थ है, आप ही सभीके रक्षक हैं। देवताओके द्वारा कही गयी उस बातको सुनकर संसारके रक्षक विष्णुने दैत्यप्रमुख उस हिरण्यकशिपुके वधके लिये स्वय एक पुरुषको उत्पन्न किया। सुमेरु पर्वतके समान शरीरवाले घोर रूपवाले, भयानक एव हाथमे शंख, चक्र गदा धारण करनेवाले

उस पुरुषसे गरुडध्वज (विष्णु)-ने कहा॥ ३०—३३॥

हत्वा त दैत्यराज त्व हिरण्यकशिपु पुन ।
इम देश समागन्तु क्षिप्रमर्हसि पौरुषात्॥ ३४॥
निशम्य वैष्णव वाक्य प्रणम्य पुरुषोत्तमम्।
महापुरुषमव्यक्त ययौ दैत्यमहापुरम्॥ ३५॥
विमुञ्चन् भैरव नाद शङ्खचक्रगदाधर ।
आरुह्य गरुड देवो महामेरुरिवापर ॥ ३६॥
आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम्।
समाचचक्षिरे न'द तदा दैत्यपतेर्भयात्॥ ३७॥

तुम (अपने) पराक्रमसे उस दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मारकर पुन इस स्थानपर शीघ्र ही वापस लौट आओ। विष्णुका वचन सुनकर शख, चक्र गदाधारी व ॅसर महामेरुके समान देव गरुडपर आरूढ हाकर भीषण नाद करत हुए अव्यक्त, महापुरुष पुरुषात्तमको प्रणामकर (हिरण्यकशिपु) दैत्यके महानगरकी ओर गया। महामेघकी गर्जनाके समान नादको सुनकर बडे-बडे दैत्योने दत्यराजसे (हिरण्यकशिपुसे) भयपूर्वक कहा— ॥ ३४—३७॥

असुरा ऊचु

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवचोदित ।
विमुञ्चन् भैरव नाद त जानीमोऽमरार्दन॥ ३८॥
तत सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपु स्वयम्।
सनद्धै सायुधै पुत्रै प्रह्लादाद्यैस्तदा ययौ॥ ३९॥
दृष्ट्वा त गरुडासीन सूर्यकोटिसमप्रभम्।
पुरुष पर्वताकार नारायणमिवापरम्॥ ४०॥
दुद्रुवु केचिदन्योन्यमूचु सम्भ्रान्तलोचना ।
अय स देवो देवाना गोप्ता नारायणो रिपु ॥ ४१॥
अस्माकमव्ययो नून तत्सुतो वा समागत ।
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजु पुरुषाय ते।
तानि चाशेषतो देवो नाशयामास लीलया॥ ४२॥

दैत्याने कहा—देवताआका विनाश करनेवाले दैत्यराज! देवताओंकी प्रेरणा प्राप्त कर काई महान् पुरुष भीषण नाद करता हुआ आ रहा है हमें उसे जानना चाहिय। तदनन्तर मुख्य-मुख्य असुरा तथा आयुधासे सुसज्जित प्रह्लाद आदि पुत्राके साथ हिरण्यकशिपु स्वय वहाँ गया। करोडा सूर्यक समान प्रभावाले तथा दूसर नारायणके समान पर्वताकार गरुडपर बैठे हुए उस पुरुषको देखकर कोई ता भाग गये और कोई भ्रान्त-दृष्टि होकर आपसमें कहने लगे—'यह निश्चित ही हमारा शत्रु और देवताआका रक्षक वही अव्यय नारायण देव हे अथवा उसका पुत्र ही यह आया हे।' ऐसा कहकर वे उस पुरषपर शस्त्राकी वर्षा करने लगे, किंतु उस देवने लीलासे ही उन सभी शस्त्रोको नष्ट कर डाला॥ ३८—४२॥

तदा हिरण्यकशिपोश्चत्वार प्रथितौजस ।
पुत्रा नारायणोद्भूत युयुधुर्मेघनि स्वना ।
प्रह्लादश्चाप्यनुह्लाद सह्लादो ह्लाद एव च॥ ४३॥
प्रह्लाद प्राहिणोद् ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्।
सह्लादश्चापि कौमारमाग्नेय ह्लाद एव च॥ ४४॥

तदनन्तर अतितेजस्वी तथा मेघके समान गर्जना करनेवाले प्रह्लाद अनुह्लाद, सह्लाद तथा ह्लाद नामक हिरण्यकशिपुके चार पुत्र नारायणसे उत्पन्न उस पुरुषसे युद्ध करने लगे। प्रह्लादने ब्रह्मास्त्र अनुह्लादने वैष्णवास्त्र, सह्लादने कौमारास्त्र तथा ह्लादन आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया॥ ४३-४४॥

तानि त पुरुष प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम्।
न शेकुर्बाधितु विष्णु वासुदेव यथा तथा॥ ४५॥
अथासौ चतुर पुत्रान् महाबाहुर्महाबल ।
प्रगृह्य पादेषु करै सचिक्षेप ननाद च॥ ४६॥
विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपु स्वयम्।
पादेन ताडयामास वेगेनोरसि त बली॥ ४७॥
स तेन पीडितोऽत्यर्थ गरुडेन तथाशुग ।
अदृश्य प्रययौ तूर्णं यत्र नारायण प्रभु ।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिल तथा॥ ४८॥

वे चारा अस्त्र उस वैष्णव पुरुषके पास पहुँचकर उन वासुदेव विष्णुको किसी भी प्रकार बाँधनेम समथ न हो सके। तदनन्तर महाबाहु महाबलशाला उस पुरुषन उन चारा पुत्राके पैराका अपन हाथस पकडकर उन्ह फक दिया ओर गर्जना की। इस प्रकार पुत्राक फक दिये जानपर बलवान् स्वय हिरण्यकशिपुने पैरद्वारा बड ही वेगसे उस (पुरुष)-की छातीपर प्रहार किया। उस प्रहारसे पीडित होकर वह पुरुष गरुडपर चढकर अदृश्य हो गया तथा शाघ्र ही वहाँ गया जहाँ प्रभु नारायण स्थित थ। वहाँ जाकर उसन सम्पूण घटित वृत्तान्त उन्ह बतला

दिया॥ ४५—४८॥

सचिन्त्य मनसा देव सर्वज्ञानमयोऽमल।
नरस्यार्धतनु कृत्वा सिंहस्यार्धतनु तथा॥४९॥
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपो पुरे।
आविर्बभूव सहसा मोहयन् दैत्यपुगवान्॥५०॥
दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपम।
समारुह्यात्मन शक्ति सर्वसहारकारिकाम्।
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यंदिने रवि॥५१॥
दृष्ट्वा नृसिंहवपुष प्रह्लाद ज्येष्ठपुत्रकम्।
वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुर॥५२॥

तब सर्वज्ञानमय विमल देवने मनमे विचारकर आधा शरीर मनुष्यका एव आधा शरीर सिंहका बनाया। नरसिंह-शरीर धारण करनेवाले अव्यक्त देव दैत्य-समूहोको मोहित करते हुए अकस्मात् हिरण्यकशिपुके नगरमे प्रकट हो गये। भयकर दाढोंवाले योगात्मा तथा प्रलयाग्निके समान अनन्त नारायण अपनी सर्वसहारकारिणी शक्तिपर आरूढ होकर उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे थे जैसे मध्याह्नकालीन सूर्य प्रकाशमान होता है। नरसिंहका शरीर धारण किये उन्हे देखकर उस असुरने अपने बडे लडके प्रह्लादको नरसिंहके वधके लिये प्रेरित किया और कहा—॥ ४९—५२॥

इम नृसिंहवपुष पूर्वस्माद् बहुशक्तिकम्।
सहैव त्वनुजै सर्वैर्नाशयाशु मयेरित॥५३॥
तत्सनियोगादसुर प्रह्लादो विष्णुमव्ययम्।
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जित॥५४॥
तत सचोदितो दैत्या हिरण्याक्षस्तदानुज।
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्र ससर्ज च ननाद च॥५५॥
तस्य देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजस।
न हानिमकरोदस्त्र यथा देवस्य शूलिन॥५६॥

अपने सभी छोटे भाइयोके साथ तुम पहलेसे अधिक शक्तिवाले इस नरसिंह-शरीरधारी पुरुषको मेरी प्रेरणासे शीघ्र ही मार डालो। उसकी आज्ञा पाकर असुर प्रह्लादने सभी प्रकारके प्रयत्नोके द्वारा अव्यय विष्णुके साथ युद्ध किया किंतु वह नरसिंहद्वारा पराजित हो गया। तदनन्तर उस (हिरण्यकशिपु)-की आज्ञा प्राप्तकर उसके छोटे भाई हिरण्याक्षने पाशुपतास्त्रका ध्यान करके उसे चलाया और गर्जना की। वह अस्त्र देवाधिदेव अमित तेजस्वी उन विष्णुकी, कोई हानि न कर सका जैसे कोई अस्त्र त्रिशूलधारी देव (शकर)-की हानि नहीं करता॥ ५३—५६॥

दृष्ट्वा पराहत त्वस्त्र प्रह्लादो भाग्यगौरवात्।
मेने सर्वात्मक देव वासुदेव सनातनम्॥५७॥
सत्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा।
ननाम शिरसा देव योगिना हृदयेशयम्॥५८॥
स्तुत्वा नारायणै स्तोत्रै ऋग्यजु सामसम्भवै।
निवार्य पितर भ्रातॄन् हिरण्याक्ष तदाब्रवीत्॥५९॥

अस्त्रको विफल होते देखकर भाग्यशाली होनेके कारण प्रह्लादने उन देवको सर्वात्मक सनातन वासुदेव ही समझा। उसने सभी शस्त्रोंका परित्याग कर दिया और सत्त्वगुणसम्पन्न चित्तसे योगियोके हृदयमे निवास करनेवाले देवको सिरसे प्रणाम किया तथा ऋक् यजुष् तथा सामवेदमे प्राप्त वैष्णव स्तुतियोके द्वारा स्तुतिकर अपने पिता (हिरण्यकशिपु), भाइयो एव हिरण्याक्षको युद्ध करनेसे रोकते हुए इस प्रकार कहा—॥ ५७—५९॥

अय नारायणोऽनन्त शाश्वतो भगवानज।
पुराणपुरुषो देवो महायोगी जगन्मय॥६०॥
अय धाता विधाता च स्वयज्योतिर्निरञ्जन।
प्रधानपुरुषस्तत्त्व मूलप्रकृतिरव्यय॥६१॥
ईश्वर सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिग।
गच्छध्वमेन शरण विष्णुमव्यक्तमव्ययम्॥६२॥

ये अनन्त, सनातन, अजन्मा महायोगी जगन्मय पुराण-पुरुष भगवान् नारायण देव हैं। ये धाता, विधाता, स्वयज्योति, निरञ्जन, प्रधानपुरुष-रूप, तत्त्व मूलप्रकृति अव्यय, ईश्वर सभी प्राणियोके अन्तर्यामी तथा गुणातीत हैं। इन अव्यक्त अव्यय विष्णुकी आप लोग शरण ग्रहण करे॥ ६०—६२॥

एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपु स्वयम्।
प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया॥६३॥
अय सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रम।
समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदित॥६४॥

(प्रह्लादके) इस प्रकार कहनेपर विष्णुकी मायासे अत्यन्त मोहित दुर्बुद्धि हिरण्यकशिपुने स्वय पुत्रसे कहा— यह थोडे पराक्रमवाला नरसिंह सभी प्रकारसे वध करने

योग्य है। कालके द्वारा प्रेरित होकर इस समय यह हमारे घरमे ही आ गया है॥ ६३-६४॥

विहस्य पितर पुत्रो वच प्राह महामति ।
मा निन्दस्वैनमीशान भूतानामेकमव्ययम्॥६५॥
कथ देवो महादेव शाश्वत कालवर्जित ।
कालेन हन्यते विष्णु कालात्मा कालरूपधृक्॥६६॥
तत सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा विधिचोदित ।
निवारितोऽपि पुत्रेण युयोध हरिमव्ययम्॥६७॥
सरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्।
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यत ॥६८॥

पिताका वचन सुनकर महामति प्रह्लादने हँसकर कहा—प्राणियाके एकमात्र स्वामी इन अव्ययकी निन्दा मत करो। सनातन, कालवर्जित, कालात्मा, कालका रूप धारण करनेवाले, महादेव विष्णु देवको काल कैसे मार सकता है। तदनन्तर भाग्यसे प्रेरित हिरण्यकशिपु पुत्रके द्वारा रोके जानेपर भी अव्यय हरिसे लडने लगा। (क्रोधसे) अत्यन्त लाल नेत्रोवाले अनन्त विष्णुने प्रह्लादके देखते-ही-देखते हिरण्य (स्वर्ण)-के समान नयन हैं जिसके, उस हिरण्यनयन (हिरण्याक्ष)-के बडे भाई हिरण्यकशिपुको अपने नखोद्वारा विदीर्ण कर डाला॥ ६५—६८॥

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबल ।
विसृज्य पुत्र प्रह्लाद दुद्रुवे भयविह्वल ॥६९॥
अनुह्लादादय पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुरा ।
नृसिहदेहसम्भूतै सिंहैर्नीता यमालयम्॥७०॥
तत सहत्य तद्रूप हरिर्नारायण प्रभु ।
स्वमेव परम रूप ययौ नारायणाह्वयम्॥७१॥

हिरण्यकशिपुके मार दिये जानेपर भयसे विह्वल महाबली हिरण्याक्ष पुत्र प्रह्लादको छोडकर भाग चला। नरसिहकी देहसे उत्पन्न सिहोने (हिरण्यकशिपुके) अनुह्लाद आदि पुत्रा तथा अन्य सैकडो असुरोको यमलोक पहुँचा दिया। तदनन्तर प्रभु नारायण हरिने उस (नरसिह) रूपको समेटकर अपने ही नारायण नामवाले श्रेष्ठ रूपको धारण कर लिया तथा अपने धामके लिये प्रस्थान किया॥ ६९—७१॥

गते नारायणे दैत्य प्रह्लादोऽसुरसत्तम ।
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत्॥७२॥
स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मुनीनपि।
लब्ध्वान्धक महापुत्र तपसाराध्य शकरम्॥७३॥
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च धरणीमिमाम्।
नीत्वा रसातल चक्रे वन्दीमिन्दीवरप्रभाम्॥७४॥

नारायणके चले जानेपर असुरश्रेष्ठ दैत्य प्रह्लादने (अपने चाचा) हिरण्याक्षका यथोचित अभिषेक किया। उस (हिरण्याक्ष)-ने युद्धम देवताओ और मुनियोको जीतकर उन्हे पीडा पहुँचायी और तपस्याके द्वारा शकरकी आराधना करके अन्धक नामक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया। उसने देवराज इन्द्रसहित सभी देवताओको जीत लिया तथा कमलके समान कान्तिवाली इस पृथ्वीको बाँधकर रसातलम ले जाकर बदी बना लिया॥ ७२—७४॥

तत सब्रह्मका देवा परिम्लानमुखश्रिय ।
गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्॥७५॥

तब मुरझायी हुई मुखकी शोभावाले सभी देवता ब्रह्मासहित हरिके निवासम गय आर उन्हे (सारा वृत्तान्त) बतलाया॥ ७५॥

स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्यय ।
सर्वदेवमय शुभ्र वाराह वपुरादधे॥७६॥
गत्वा हिरण्यनयन हत्वा त पुरुषोत्तम ।
दष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम्॥७७॥
त्यक्त्वा वराहसस्थान सस्थाप्य च सुरद्विजान्।
स्वामेव प्रकृति दिव्या ययौ विष्णु पर पदम्॥७८॥

अव्यय उन विश्वात्माने उस हिरण्याक्षके वधका उपाय सोचते हुए सर्वदेवमय स्वच्छ वराहके शरीरको धारण किया। हिरण्याक्षके समीप जाकर पुरुषोत्तमने उसे मार डाला और कल्पके आदिमे (हिरण्याक्षके द्वारा रसातल ले जायी गयी) इस पृथ्वीका अपन दाढोद्वारा (उठाकर) उद्धार किया। वराह-रूपका परित्यागकर तथा देवताओ और ब्राह्मणाको यथास्थान प्रतिष्ठित कर विष्णुने अपन ही दिव्य (चतुर्भुज) स्वरूपको धारण किया ओर वे अपने परम पदकी ओर चले गये॥ ७६—७८॥

तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्पर ।
अपालयत् स्वक राज्य भाव त्यक्त्वा तदासुरम्॥७९॥

इयाज विधिवद् देवान् विष्णोराराधने रत ।
नि सपत्न तदा राज्य तस्यासीद् विष्णुवैभवात्॥८०॥

देवताओके शत्रु उस (हिरण्याक्ष)-के मारे जानेपर विष्णुपरायण प्रह्लाद आसुर भावका परित्याग कर अपने राज्यका पालन करने लगा। विष्णुकी आराधनामे निरत रहते हुए उसने विधिपूर्वक देवोका यज्ञ आदिद्वारा पूजन किया। विष्णुके प्रतापसे उसका राज्य किसी प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) आदिसे रहित था॥ ७९-८०॥

तत कदाचिदसुरो ब्राह्मण गृहमागतम्।
तापस नार्चयामास देवाना चैव मायया॥८१॥
स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानित ।
शशापासुरराजान क्रोधसरक्तलोचन ॥८२॥
यत्तद्बल समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे।
सा भक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाश ते गमिष्यति॥८३॥

एक बारकी बात है—देवताओकी मायाके वशीभूत असुर प्रह्लादने घरमे आये हुए तपस्वी ब्राह्मणकी पूजा नहीं की। मायासे अत्यन्त मोहित उस तपस्वी प्रह्लादके द्वारा अपमानित होकर क्रोधसे रक्तनेत्रवाले उस तपस्वी ब्राह्मणने असुरराज (प्रह्लाद)-को शाप दे डाला—जिस बलका आश्रय ग्रहण कर तुम ब्राह्मणोकी अवमानना कर रहे हो, तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी भक्ति विनष्ट हो जायगी॥८१—८३॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विज ।
मुमोह राज्यससक्त सोऽपि शापबलात् तत ॥८४॥
बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम्।
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोध चक्रे हरिं प्रति॥८५॥
तयो समभवद् युद्ध सुघोर रोमहर्षणम्।
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विष ॥८६॥
कृत्वा तु सुमहद् युद्ध विष्णुना तेन निर्जित ।
पूर्वसस्कारमाहात्म्यात् परस्मिन् पुरुषे हरौ।
सजात तस्य विज्ञान शरण्य शरण ययौ॥८७॥
तत प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्या भक्तिमुद्वहन्।
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे॥८८॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण प्रह्लादके घरसे शीघ्र ही निकल पडा और प्रह्लाद भी शापके प्रभावसे राज्य-सचालनमे लगे रहनेपर भी मोहग्रस्त हो गया। वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोको पीडित करने लगा और जनार्दनको भूल-सा गया। पिता (हिरण्यकशिपु)-के वधका स्मरणकर वह हरि (विष्णु)-पर क्रुद्ध हो गया। तब उन दोनो सुरद्रोही प्रह्लाद और नारायणदेवमे अत्यन्त घोर रोमाचकारी युद्ध हुआ। बडा भारी युद्ध करनेके बाद विष्णुने उसे जीत लिया। पहलेके सस्कारके माहात्म्यसे उसे परमपुरुष हरिका वास्तविक ज्ञान उद्बुद्ध हो गया और वह उनकी शरणमे गया। तबसे नारायण पुरुषोत्तममे अनन्य भक्ति रखते हुए उस दैत्येन्द्र प्रह्लादको महायोगकी प्राप्ति हुई॥८४—८८॥

हिरण्यकशिपो पुत्रे योगससक्तचेतसि।
अवाप तन्महद् राज्यमन्धकोऽसुरपुगव ॥८९॥
हिरण्यनेत्रतनय शम्भोर्देहसमुद्भव ।
मन्दरस्थामुमा देवीं चकमे पर्वतात्मजाम्॥९०॥

हिरण्यकशिपुके पुत्र (प्रह्लाद)-का चित्त योगमे आसक्त हो जानेपर शम्भुके देहसे[1] उत्पन्न हिरण्याक्षके पुत्र असुर श्रेष्ठ अन्धकने उस विशाल राज्यको प्राप्त किया तथा मन्दर पर्वतपर अवस्थित पर्वत (हिमालय)-की पुत्री उमा देवीको प्राप्त करनेकी इच्छा की॥ ८९-९०॥

पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिन ।
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरु सहस्रश ॥९१॥
तत कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा।
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद् भूतविनाशिनी॥९२॥
समेत्य सर्वे मुनयो गौतम तपसा निधिम्।
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहार प्राणधारणम्॥९३॥
स तेभ्य प्रददावन्न मृष्ट बहुतर बुध ।
सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा॥९४॥

प्राचीन कालकी बात है हजारो गृहस्थ मुनि पुण्यदायी दारुवनमे ईश्वरकी आराधना करनेके लिये तप करते थे। तदनन्तर कालयोगसे किसी समय प्राणियोंका विनाश करनेवाली अत्यन्त उग्र तथा भयकर अनावृष्टि हुई। भूखसे व्याकुल सभी मुनियोंने साथ मिलकर तपोनिधि गौतमसे प्राण धारण-के निमित्त भोजनकी याचना की। बुद्धिमान् उन गौतमने उन सभीको अत्यधिक स्वादुयुक्त अन्न प्रदान किया। उन सभी

१-शम्भुकी आराधनासे ही हिरण्याक्षको अन्धक (पुत्र)-की प्राप्ति हुई थी।

ब्राह्मणोंने निःशङ्क-मनसे भोजन किया॥ ९१—९४॥

गते तु द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शंकरी।
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत्॥ ९५॥
ततः सर्वे मुनिवरा समामन्त्र्य परस्परम्।
महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः॥ ९६॥
निवारयामास च तान् कंचित् कालं यथासुखम्।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः॥ ९७॥
ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृशां गां सर्व एव ते।
समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः॥ ९८॥
सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा॥ ९९॥

बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर कल्पान्तमें होनेवाली कल्याणकारिणी वृष्टिके सदृश महान् वृष्टि हुई। संसार (पुनः) पहलेके समान हो गया। तब सभी मुनिवरोंने आपसमें मन्त्रणा कर महर्षि गौतमसे पूछा—क्या हमलोग शीघ्र यहाँसे चले जायँ? तब गौतमने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—पण्डितजनो! कुछ समय और यहाँ मेरे घरमें सुखपूर्वक रहें, इसके बाद आप सभी जायँ। तत्पश्चात् उन सभीने मायामयी एक कमजोर गाय बनाकर उसे महात्मा गौतमके समीप पहुँचा दिया। गायको देखकर उसकी रक्षाके लिये उत्सुक दयालु मुनिने अपनी गोशालामें उसे बाँध दिया, किंतु वह गाय छूते ही मर गयी॥ ९५—९९॥

स शोकेनाभिसंतप्तः कार्याकार्यं महामुनिः।
न पश्यति स्म सहसा तादृशं मुनयोऽब्रुवन्॥ १००॥

शोकसे अत्यन्त दुःखी वे महामुनि उस समय किंकर्तव्यविमूढ-से हो गये। तब शीघ्र ही मुनियोंने ऐसे उन (गौतम मुनि)-से कहा—॥ १००॥

गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत् तव शरीरगा।
तावत् तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि॥ १०१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जबतक यह गोहत्या आपके शरीरमें (व्याप्त) रहेगी, तबतक आपके यहाँ अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये, इसलिये हमलोग जा रहे हैं॥ १०१॥

तेन ते मुदिता सन्तो देवदारुवनं शुभम्।
जग्मुः पापवशं नीतास्तपश्चर्तुं यथा पुरा॥ १०२॥
स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः।
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपनः॥ १०३॥

इस प्रकार पापके वशीभूत हुए वे (मुनिजन) प्रसन्न होकर पहलेके ही समान तप करनेके लिये शुभ देवदारु वनमें चले गये। उन गौतम मुनिने उन मुनियोंकी मायाद्वारा करायी गयी गोहत्याको किसी प्रकारसे जान लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर (इस प्रकार) शाप दिया॥ १०२—१०३॥

भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः।
बभूवुस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः॥ १०४॥
सर्वे सम्प्राप्य देवेशं शंकरं विष्णुमव्ययम्।
अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वगौ॥ १०५॥

महापातकियोंके समान ये लोग वेदसे बहिष्कृत हो जायँगे और शापके कारण बार-बार जन्म लेनेवाले होंगे। भोजनसे बची हुई जूठनके समान वे सभी (शापसे भयभीत होकर) सर्वव्यापक देवेश शंकर तथा अव्यय विष्णुके पास पहुँचकर उनकी लौकिक स्तुतियोंसे स्तुति करने लगे—॥ १०४-१०५॥

देवदेवौ महादेवौ भक्तानामार्तिनाशिनौ।
कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हथः॥ १०६॥
तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः।
किमेतेषां भवेत् कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति॥ १०७॥
ततः स भगवान् विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः।
गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः॥ १०८॥

हे देवदेव (विष्णु)! हे महादेव! (शंकर) आप दोनों भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले हैं और इच्छानुसार योगका अवलम्बन करनेवाले हैं। आप हम लोगोंकी पापसे रक्षा करें। तब समीपमें स्थित विष्णुकी ओर देखकर वृषभध्वज शंकरने कहा—बताइये कि ये पुण्यकी इच्छा करनेवाले लोग क्या चाहते हैं? तब भक्तवत्सल, शरण्य हरि उन भगवान् विष्णुने विनीत श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी ओर देखकर शंकरजीसे कहा—॥ १०६—१०८॥

न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शंकर।
संगच्छते महादेव धर्मो वेदाद् विनिर्बभौ॥ १०९॥
तथापि भक्तवात्सल्याद् रक्षितव्या महेश्वर।
अस्माभिः सर्व एवेमे गन्तारो नरकानपि॥ ११०॥
तस्माद् वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्।
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज॥ १११॥
एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः॥ ११२॥

कापाल नाकुल वाम भैरव पूर्वपश्चिमम्।
पञ्चरात्र पाशुपत तथान्यानि सहस्रश ॥११३॥
सृष्ट्वा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणा शास्त्रचोदितम्।
पतन्तो निरये घोर बहून् कल्पान् पुन पुन ॥११४॥
जायन्तो मानुषे लोक क्षीणपापचयास्तत ।
ईश्वराराधनबलाद् गच्छध्व सुकृता गतिम्।
वर्तध्व मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि व ॥११५॥

शकर! वेदबाह्य पुरुषमे पुण्यका लेशमात्र भी नहीं रहता। हे महादेव! वेदस ही धर्म उत्पन्न हुआ है। तथापि महेश्वर! भक्तवत्सलताके कारण नरकोंमें जानेवाले इन सभीकी हमारे द्वारा रक्षा की जानी चाहिये ऐसा उचित प्रतीत होता है। इसलिये वृषभध्वज! वेदबाह्य पापियाकी रक्षा करन एव उन्ह मोहित करनेके लिये मैं शास्त्रोकी रचना करूँगा। इस प्रकार मुरारि माधवसे प्रेरित किये गये रुद्रने मोहित करनेवाल शास्त्राको बनाया और उसी प्रकार शिवसे प्रेरणा प्राप्त केशवने भी ऐसे ही शास्त्राकी रचना की। कापाल नाकुल, वाम भैरव पूर्वपश्चिम पञ्चरात्र, पाशुपत तथा अन्य भी सहस्रो शास्त्रोकी रचना करके उन देवोने उन (वेदबाह्य)-से कहा—इन शास्त्रामे बताये गये कर्मोको करनेके कारण बहुत कल्पोतक आप सब घोर अन्धकारपूर्ण नरकोमे गिरेगे और फिर पाप-समूहके क्षीण हो जानेपर मनुष्यलोक प्राप्त करेग। पुन ईश्वरकी आराधनाके बलपर पुण्यवानोकी गति प्राप्त करेगे। आप सभी मेरी प्रसन्नताके लिये ऐसा ही करे आप लोगोके निस्तारणका अर्थात् दोषमुक्त होनेका इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ १०९—११५॥

एवमीश्वरविष्णुभ्या चोदितास्ते महर्षय ।
आदेश प्रत्यपद्यन्त शिरसाऽसुरविद्विषो ॥११६॥
चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रता पुन ।
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि तु॥११७॥

इस प्रकार शिव तथा विष्णुके द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर उन महर्षियोने असुरोसे द्वेष करनेवाले उन दोना देवोकी आज्ञाको सिरसे स्वीकार किया। पुन उन लोगोंने भी दूसरे शास्त्रोकी रचना कर उनमे प्रवृत्त होनेवाले शिष्योको पढाया तथा उन शास्त्राके पढनेका फल भी बताया॥ ११६-११७॥

मोहयन्त इम लोकमवतीर्य महीतले।
चकार शकरो भिक्षा हितायैषा द्विजै सह॥११८॥
कपालमालाभरण प्रेतभस्मावगुण्ठित ।
विमोहयँल्लोकमिम जटामण्डलमण्डित ॥११९॥
निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि।
नियोज्याङ्गभव रुद्र भैरव दुष्टनिग्रहे॥१२०॥
दत्त्वा नारायणे देवीं नन्दिन कुलनन्दिनम्।
सस्थाप्य तत्र गणपान् देवानिन्द्रपुरोगमान्॥१२१॥

शिवने इन (ब्राह्मणो)-के कल्याणके लिये पृथ्वीपर अवतार लेकर लोगाको मोहित करते हुए ब्राह्मणोके साथ भिक्षावृत्ति ग्रहण की। कपालोकी मालाका आभूषण धारणकर, चिता-भस्म लगाकर और जटामण्डलसे मण्डित हो इस लोकको मोहित किया। देवी पार्वतीको अमित तेजस्वी विष्णुके समीप रखा और दुष्टोका निग्रह करनेके लिये अपने अङ्गसे उत्पन्न रुद्र भैरवको नियुक्त किया। देवीको नारायणके समीप रखकर कुलनन्दन नन्दीको वहाँ रखा तथा इन्द्रादि देवों एव गणपोंको भी वहाँ स्थापित किया॥ ११८—१२१॥

प्रस्थितेऽथ महादेवे विष्णुर्विश्वतनु स्वयम्।
स्त्रीरूपधारी नियत सेवते स्म महेश्वरीम्॥१२२॥
ब्रह्मा हुताशन शक्रो यमोऽन्य सुरपुगवा ।
सिषेविर महादेवीं स्त्रीवेश शोभन गता ॥१२३॥
नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभ ।
द्वारदेश गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत॥१२४॥
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मति ।
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम्॥१२५॥
सम्प्राप्तमन्धक दृष्ट्वा शकर कालभैरव ।
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हर ॥१२६॥
तयो समभवद् युद्ध सुघोर रोमहर्षणम्।
शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वज ॥१२७॥

महादेवके जानेके पश्चात् विश्वतनु साक्षात् विष्णु स्त्री-रूप धारण करके महेश्वरी पार्वतीकी भलीभाँति सेवा करने लगे। सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करके ब्रह्मा, अग्नि इन्द्र, यम तथा अन्य भी श्रेष्ठ देवता महादेवीकी सेवा करने लगे। शम्भुके अत्यन्त प्रिय गणोके अध्यक्ष भगवान् नन्दीश्वर पूर्वकी भाँति द्वारपर स्थित रहे। इसी बीच अन्धक नामका

एक कुबुद्धि दैत्य गिरिजा पार्वतीको हरनेकी इच्छासे उस मन्दर पर्वतपर आया। अन्धकको वहाँ आया देखकर कालरूपधारी शकर, अमेयात्मा हर कालभैरवने उसे रोका। उन दानोका अत्यन्त भयकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ—॥ १२२—१२७॥

तत सहस्रशो दैत्य ससर्जान्धकसज्ञितान्।
नन्दिषेणादयो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिता ॥१२८॥
घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापन ।
विनायको मेघवाह सोमनन्दी च वैद्युत ॥१२९॥
सर्वेऽन्धक दैत्यवर सम्प्राप्यातिबलान्विता ।
युयुधु शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधै ॥१३०॥
भ्रामयित्वाथ हस्ताभ्या गृहीतचरणद्वया ।
दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम्॥१३१॥
ततोऽन्धकनिसृष्टास्ते शतशोऽथ सहस्रश ।
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरव त्वभिदुद्रुवु ॥१३२॥
हा हेति शब्द सुमहान् बभूवातिभयकर ।
युयोध भैरवो रुद्र शूलमादाय भीषणम्॥१३३॥

इसके बाद उस दैत्यने अन्धक नामवाले हजारो दैत्योको उत्पन्न किया। उन अन्धक नामवाल दैत्योने नन्दिषेण आदि (गणा)-को पराजित कर दिया। घण्टाकर्ण मघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह सोमनन्दी तथा वैद्युत आदि इन सभी अत्यन्त बलशाली गणाने दैत्यश्रेष्ठ अन्धकके पास जाकर शूल शक्ति ऋष्टि पर्वतशिखर तथा परशुद्वारा युद्ध करने लगे। अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्रने अपने हाथोसे उन सभीके दोनो पैराको पकडकर घुमाते हुए उन्ह सौ योजन दूर फक दिया। तदनन्तर अन्धकद्वारा उत्पन्न सैकडों तथा हजारोंकी सख्यामें प्रलयकालीन सूर्यके समान वे (दैत्य) भैरवपर टूट पडे। अत्यन्त भयकर हाहाकारका शब्द होने लगा। भैरव रुद्र भीषण शूल लेकर युद्ध करने लगे॥ १२८—१३३॥

दृष्ट्वाऽन्धकाना सुबलं दुर्जयं तर्जितो हर ।
जगाम शरण देव वासुदवमज विभुम्॥१३४॥
सोऽसृजद् भगवान् विष्णुर्देवीना शतमुत्तमम्।
दवीपार्श्वस्थिता देवो विनाशायामरद्विषाम्॥१३५॥

अन्धकाको सनाको अजय देखकर भयभीत हर विभु, अजन्मा देव वासुदवकी शरणमे गये। तब दवीके समीपमे स्थित उन देव भगवान् विष्णुने देवताओके द्वेषियोका विनाश करनके लिये श्रेष्ठ सो दवियोको उत्पन्न किया॥ १३४-१३५॥

तदान्धकसहस्र तु देवीभिर्यमसादनम्।
नीत केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे॥१३६॥
दृष्ट्वा पराहत सैन्यमन्धकोऽपि महासुर ।
पराङ्मुखो रणात् तस्मात् पलायत महाजव ॥१३७॥

तदनन्तर विष्णुकी महिमासे उन देवियाने सेकडो अन्धकाको उस युद्धस्थलम खेल-खेलम ही यमलोक भेज दिया। अपनी सेनाको पराजय देखकर महान् असुर अन्धक भी युद्धस विमुख होकर अत्यन्त वेगसे भाग चला॥ १३६-१३७॥

तत क्रीडा महादेव कृत्वा द्वादशवार्षिकीम्।
हिताय लोके भक्तानामाजगामाथ मन्दरम्॥१३८॥
सम्प्राप्तमीश्वर ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वरा ।
समागम्योपतस्थुस्त भानुमन्तमिव द्विजा ॥१३९॥
प्रविश्य भवन पुण्यमयुक्ताना दुरासदम्।
ददर्श नन्दिन देव भैरव केशव शिव ॥१४०॥

तदनन्तर ससारमे भक्ताके कल्याणार्थ बारह वर्षतक चलनवाली लीलाको समाप्तकर महादेव मन्दराचल पर्वतपर चले आये। ईश्वरको आया हुआ जानकर सभी गणश्वर उनके पासम आकर इस प्रकार स्थित हो गये जैसे द्विज सूर्यकी उपासनाम स्थित रहते हैं। अयागियाके लिय दुर्गम पुण्यशाली भवनमें प्रवेशकर शिवन नन्दी भैरवदेव तथा केशवको देखा॥ १३८—१४०॥

प्रणामप्रवण देव सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम्।
आघ्राय मूर्धनीशान केशव परिषस्वज॥१४१॥
दृष्ट्वा देवी महादेव प्रीतिविस्फारितेक्षणा।
ननाम शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य सा॥१४२॥
निवेद्य विजय तस्मै शकरायाथ शकरी।
भैरवो विष्णुमाहात्म्य प्रणत पार्श्वगाऽवदत्॥१४३॥
श्रुत्वा तद्विजय शम्भुर्विक्रम केशवस्य च।
समास्ते भगवानीशा देव्या सह वरासने॥१४४॥
तता दवगणा सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजा ।
आजग्मुर्मन्दर द्रष्टु दवदव त्रिलाचनम्॥१४५॥

उन दव शकरने प्रणाम करनवाल नन्दीक ऊपर कृपा

करके उनका सिर सूँघा और केशवका आलिंगन किया। महादेवको देखकर प्रीतिसे विकसित आँखोंवाली उन देवीने उन ईश्वरके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया। तदनन्तर शंकरप्रिया पार्वतीने उन्हें विजयका समाचार कहा और (शंकरके) पार्श्वमें स्थित रहनेवाले भैरवने विनयपूर्वक विष्णुके माहात्म्यको भी (उन्हें) बताया। उस विजय (के समाचार) तथा केशव विष्णुके पराक्रमको सुनकर शम्भु भगवान् शंकर देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर मरीचि आदि प्रमुख द्विज तथा सभी देवगण देवाधिदेव त्रिलोचनका दर्शन करनेके लिये मन्दराचलपर आये॥ १४१—१४५॥

येन तद् विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्।
समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनवाञ्छया॥ १४६॥
दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम्।
प्रणेमुरादराद् देव्यो गायन्ति स्मातिलालसा॥ १४७॥
प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्श्वे पिनाकिनः।
देवासनगतं देवं नारायणमनामयम्॥ १४८॥
दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्या नारायणेन च।
प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गना॥ १४९॥

जिन्होंने दैत्य (अन्धक)-की सेनाको पहले जीता था, वे श्रेष्ठ सौ देवियाँ भी ईशके दर्शनाकी लालसासे वहाँ आयीं। चन्द्रमारूपी आभूषणसे विभूषित शंकरको देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखकर (उन) देवियोंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेमसे वे गान करने लगीं। पिनाकी (शंकर)-के वामभागमें स्थित देवी गिरिजा एवं शंकरके आसनपर उनके साथ विराजमान प्रसन्नचित्त नारायणको (उन देवियोंने) प्रणाम किया। देवी पार्वती और नारायणके साथ सिंहासनपर बैठे हुए देव शंकरको प्रणामकर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंने पूछा—॥ १४६—१४९॥

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बालरविप्रभा।
कोऽन्वयं भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः॥ १५०॥

कन्याओं (देवियों)-ने कहा—अपनी कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले आप कौन हैं? बाल सूर्यके समान आभावाली यह (बाला) कौन है? और कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले एवं अपने शरीरके कारण शोभायमान यह कौन पुरुष है?॥ १५०॥

निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः।
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः॥ १५१॥
अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी।
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः॥ १५२॥
न मे विदुः परं तत्त्वं देवाद्या न महर्षयः।
एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च॥ १५३॥
अहं हि निष्क्रियः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः।
मामेव केशवं देवमाहुर्देवीमथाम्बिकाम्॥ १५४॥

उनके वचन सुनकर श्रेष्ठ वृषभपर आरूढ होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी, महायोगी अव्यय (शिव)-ने कहा—मैं अपनेको नारायण तथा सनातन जगन्माता गौरी आदि अनेक रूपोंमें विभक्तकर स्थित रहनेवाला देव ईश्वर हूँ। मेरे परम तत्त्वको न तो देवता आदि जानते हैं और न महर्षि। एकमात्र विश्वात्मा ये विष्णु और भवानी ही (मुझे) जानते हैं। मैं ही निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय और परिग्रहशून्य हूँ। मुझे ही केशव देव तथा देवी अम्बिका कहा जाता है॥ १५१—१५४॥

एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च।
कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ १५५॥
भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृक्।
स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥ १५६॥
कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणः स्वयम्।
तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम्॥ १५७॥

ये विष्णु ही स्वयं धाता, विधाता, कारण कार्य, कर्ता, कारयिता (कार्यके लिये प्रेरित करने वाले) और भुक्ति तथा मुक्तिस्वरूप फलको प्रदान करनेवाले हैं। (ये ही) भोक्ता अप्रमेय पुरुष संहर्ता कालका रूप धारण करनेवाले सृष्टि तथा पालन करनेवाले, विश्वात्मा सर्वव्यापक, वासुदेव, कूटस्थ अविनाशी व्यापी, योगी, नारायण तारक, पुरुष आत्मा और अद्वितीय परम पद हैं॥ १५५—१५७॥

सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥ १५८॥
अस्यां सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥ १५९॥

ये माहेश्वरी गौरी मेरी निरञ्जन शक्ति हैं। वद इन्हं ही शान्त, सत्य, सदानन्द और परम पद बतलाते हैं। इन्हींसे यह सब उत्पन्न हुआ है और इन्हींमे लय भी हो जायगा। ये ही सभी प्राणियोकी गतियोमे उत्तम गति हैं॥ १५८-१५९॥

तयाह सगतो देव्या कवलो निष्कल पर।
पश्याम्यशेषमेवेद यस्तद् वेद स मुच्यते॥१६०॥
तस्मादनादिमद्वैत विष्णुमात्मानमीश्वरम्।
एकमेव विजानीध्व ततो यास्यथ निर्वृतिम्॥१६१॥
मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मान श्रद्धयान्विता।
ये भिन्नदृष्ट्यापीशान पूजयन्तो न मे प्रिया॥१६२॥
द्विषन्ति ये जगत्सूति मोहिता रौरवादिषु।
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि॥१६३॥
तस्मादशेषभूताना रक्षको विष्णुरव्यय।
यथावदिह विज्ञाय ध्येय सर्वापदि प्रभु॥१६४॥

इन्हीं देवीके साथ अद्वितीय, निष्कल तथा परमस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण (विश्व)-का साक्षात्कार करता हूँ। जो इस (तत्त्व)-को जानता है, वह मुक्त हो जाता है। इसलिये अनादि, अद्वैत विष्णु ओर आत्मस्वरूप ईश्वर (शकर)-को एक ही समझो। इससे तुम लोगोको शान्ति प्राप्त होगी। जो श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति अव्यक्त एव आत्मरूप विष्णुको भिन्न मानकर शिवकी पूजा करते है वे मुझे प्रिय नहीं हैं। जो लोग जगत्को उत्पन्न करनेवाल (विष्णु)-से द्वष रखते हैं (वे सभी) मोहित व्यक्ति रौरव आदि नरकोम पडे रहते है और सैकडा करोड कल्पोमे भी मुक्त नहीं होते। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोके रक्षक अव्यय विष्णुको भलीभाँति समझकर समस्त आपत्तियाम उन प्रभुका ध्यान करना चाहिय॥ १६०—१६४॥

श्रुत्वा भगवतो वाक्य देव्य सर्वगणेश्वरा।
नेमुर्नारायण देव देवीं च हिमशैलजाम्॥१६५॥
प्रार्थयामासुरीशाने भक्ति भक्तजनप्रिये।
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे॥१६६॥
ततो नारायण देव गणेशा मातरोऽपि च।
न पश्यन्ति जगत्सूति तदद्भुतमिवाभवत्॥१६७॥
तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धको मन्मथार्दित।
मोहितो गिरिजा देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ॥१६८॥

सभी देविया और गणेश्वराने भगवान्के वाक्यको सुनकर नारायण देव तथा हिमालयकी पुत्री देवी (पार्वती)-को प्रणाम किया और भक्तजनोके प्रिय ईशान भगवान् शकर तथा भवानीके चरणयुगल एव नारायणके चरणकमलोमे भक्तिकी प्रार्थना की। तदनन्तर गणेश्वरो और मातृदेवियोने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नारायण देवको नहीं देखा। यह एक आश्चर्य-जैसा ही हुआ। इसी बीच कामदेवके द्वारा पीडित महादेत्य अन्धक मोहित होता हुआ देवी गिरिजाको हरण करनेके लिये पर्वतपर आया॥ १६५—१६८॥

अथानन्तवपु श्रीमान् योगी नारायणोऽमल।
तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तम॥१६९॥
कृत्वाथ पार्श्वे भगवन्तमीशो
युद्धाय विष्णु गणदेवमुख्यै।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभि
स कालरुद्रोऽभिजगाम देव॥१७०॥
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्प
स देवदेव प्रययौ पुरस्तात्।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या
जगाम देवोऽपि सहस्रबाहु॥१७१॥
रराज मध्ये भगवान् सुराणा
विवाहनो वारिदवर्णवर्ण।
तदा सुमेरो शिखराधिरूढ-
स्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्क॥१७२॥

इसके बाद विराट्शरीरधारी, श्रीमान्, योगी निर्मल नारायण पुरुषोत्तम दैत्यासे युद्ध करनेके लिये वहीं प्रकट हो गये। तदनन्तर वे कालरुद्रदेव भगवान् विष्णुको अपने पार्श्वम करके तथा मुख्य गणदवो, शिलादपुत्र नन्दी और मातृकाआको साथ लेकर युद्धके लिये स्वय गये। अग्निके समान त्रिशूलको लकर वे दवदेव (शकर) आगे-आगे चले। उन श्रेष्ठ गणराजा तथा हजार बाहुवाले देव (विष्णु)-ने भी उनका अनुगमन किया। देवताआके बीचमे उस समय मेघके समान वर्णवाले गरुडवाहन भगवान् विष्णु उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार सुमेरु पर्वतके शिखरपर आरूढ तीना लाकाक नेत्र-स्वरूप भगवान् सूर्य सुशाभित होत हैं॥ १६९—१७२॥

जगत्यनादिर्भगवानमेयो
हर सहस्राकृतिराविरासीत्।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोष
पपात देवोपरि पुष्पवृष्टि ॥१७३॥
समागत वीक्ष्य गणेशराज
समावृत देवरिपुर्गणेशै ।
युयोध शक्रेण समातृकाभि-
र्गणैरशेषैरमरप्रधानै ॥१७४॥
विजित्य सर्वानपि बाहुवीर्यात्
स सयुगे शम्भुमनन्तधाम।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो
विमानमारुह्य विहीनसत्त्व ॥१७५॥
दृष्ट्वान्धक समायान्त भगवान् गरुडध्वज ।
व्याजहार महादेव भैरव भूतिभूषणम्॥१७६॥

अनादि, अमेय त्रिशूलपाणि भगवान् हर हजारो स्वरूप धारणकर पृथ्वीपर प्रकट हुए। (उस समय) आकाशम सुन्दर शब्द हाने लगा तथा उन दवके ऊपर (आकाशसे) पुष्पवृष्टि होने लगी। गणश्वराके राजा शिवको गणश्वरोद्वारा घिरे हुए आते देखकर दवशत्रु अन्धक इन्द्र तथा मातृकाआ, गणो ओर सभी प्रधान-प्रधान देवताआके साथ युद्ध करने लगा। अपने बाहुबलसे युद्धम सभीको जीतकर वह सत्त्वविहीन *(अन्धक) अनन्त तेजस्वी शम्भुके समीप गया, जहाँ वे* कालरुद्र विमानपर बैठे हुए थे। अन्धकको आते हुए देखकर भगवान् गरुडध्वजने विभूतिसे सुशोभित भैरव महादवसे कहा—॥ १७३—१७६॥

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धक लोककण्टकम्।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते॥१७७॥
त्व हर्ता सर्वलोकाना कालात्मा ह्यैश्वरी तनु ।
स्तूयत विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणै ॥१७८॥
स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हर ।
निरीक्ष्य विष्णु हनने दैत्यन्द्रस्य मति दधौ॥१७९॥
जगाम दवतानीक गणाना हर्षमुत्तमम्।
स्तुवन्ति भैरव देवमन्तरिक्षचरा जना ॥१८०॥

(भगवन्!) आप ससारक कण्टकरूप दैत्यपति अन्धकको मारनम ममर्थ हैं। आपका छाडकर इसे मारनम और कोई दूसरा समर्थ नहीं है। आप सभी लोकोका सहार करनेवाले ईश्वरके कालमय शरीर है। वेदाको जाननेवाले विद्वानाके द्वारा विविध मन्त्रोसे आपकी स्तुति की जाती है। वासुदेवका वचन सुनकर उन भगवान् हरने विष्णुकी ओर देखकर दैत्येन्द्र अन्धकको मारनेका विचार किया। गणोका हर्ष बढाते हुए वे देवताआकी सेनामे गये। (तब) अन्तरिक्षम विचरण करनेवाले लोग भैरवदेवकी (इस प्रकार) स्तुति करने लग—॥ १७७—१८०॥

जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन।
त्वमग्नि सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यश ॥१८१॥
त्व यज्ञस्त्व वषट्कारस्त्व धाता हरिरव्यय ।
त्व ब्रह्मा त्व महादेवस्त्व धाम परम पदम्॥१८२॥
ओङ्कारमूर्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचन ।
महाविभूतिर्देवेशो जयाशेषजगत्पते॥१८३॥

अनन्त! महादव! आप सनातन हैं, कालकी मूर्ति हैं, आपकी जय हो। आप अग्निरूप और सभी प्राणियाके भीतर सदेव निवास करनेवाले है। आप ही यज्ञ, आप ही वषट्कार और आप ही धाता अव्यय हरि हैं। आप ही ब्रह्मा, महादेव और आप ही तेज स्वरूप परमपद हैं। (आप) प्रणवमूर्ति, योगात्मा, वेदत्रयीरूप तीन नेत्रवाले त्रिलोचन हैं। आप महाविभूतिस्वरूप, *देवताओके स्वामी हैं। हे सम्पूर्ण ससारक स्वामी! आपकी* जय हो॥ १८१—१८३॥

तत कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वान्धकमीश्वर ।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सता गति ॥१८४॥
दृष्ट्वान्धक देवगणा शूलप्रोत पितामह ।
प्रणेमुरीश्वर देव भैरव भवमोचकम्॥१८५॥

तदनन्तर सज्जनोके आश्रयस्थान एव प्रलयकालीन अग्निके समान भयकर वे ईश्वर अन्धक दैत्यको पकडकर अपने त्रिशूलके अग्रभागमे रखकर नाचन लग। त्रिशूलपर पिरोये हुए अन्धकको देखकर पितामह ब्रह्मा तथा दवगण ससारसागरसे मुक्त करनेवाले भैरवदेवको प्रणाम करन लगे॥ १८४-१८५॥

अस्तुवन् मुनय सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिनरा ।
अन्तरिक्षेऽप्सर सङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोरमा ॥१८६॥

सस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिष ।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम्॥ १८७॥

मुनि तथा सिद्धजन स्तुति करने लगे और गन्धर्व, किन्नर गान करने लगे तथा अन्तरिक्षमे रमणीय अप्सराओके समूह नृत्य करने लगे। तदनन्तर त्रिशूलके अग्रभागमे स्थापित उस अन्धकके सभी पाप दग्ध (नष्ट) हो गये, उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया और वह परमेश्वरकी स्तुति करने लगा— ॥ १८६-१८७॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेक
समाहिता य विदुरीशतत्त्वम्।
पुरातन पुण्यमनन्तरूप
काल कवि योगवियोगहेतुम्॥ १८८॥
दष्ट्राकराल दिवि नृत्यमान
हुताशवक्त्र ज्वलनार्करूपम्।
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्त
भवन्तमेक प्रणमामि रुद्रम्॥ १८९॥
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे
विभागहीनामलतत्त्वरूप ।
त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यसे
वाय्वादिभेदैरखिलात्मरूप ॥ १९०॥
त्वामेकमाहु पुरुष पुराण-
मादित्यवर्णं तमस परस्तात्।
त्व पश्यसीद परिपास्यजस्र
त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्ट ॥ १९१॥
एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो
देहेषु देहादिविशेषहीन ।
त्वमात्मशब्द परमात्मतत्त्व
भवन्तमाहु शिवमेव केचित्॥ १९२॥

अन्धकने (स्तुति करते हुए) कहा—समाधिमे स्थित रहनेवाले लोग जिस पुरातन पुण्यदायी, अनन्तस्वरूप कालरूप, कवि तथा सयोग एव वियोगके कारणरूप ईश्वर-तत्त्वको जानते हैं, मैं उन अद्वितीय भगवान्‌को सिरसे प्रणाम करता हूँ। भयकर दाढोवाले आकाशमे नृत्य करते हुए, अग्निके समान मुखवाले प्रज्वलित सूर्यके समान स्वरूपवाले हजारो पैर, आँख तथा सिरासे युक्त आप अद्वितीय रुद्रको मैं प्रणाम करता हूँ। हे आदिदेव! देवताओके द्वारा आपके चरणाकी पूजा की जाती है, आप विभागरहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप हैं, आपकी जय हो। अद्वितीय अग्निरूप आप वायु आदि भेदासे बहुत प्रकारसे पूजित होते हैं और अखिल आत्मरूप हैं। सूर्यके समान वर्णवाले पुराणपुरुष! एकमात्र आपको ही तम (मायारूप अन्धकार)-से परे कहा जाता है। आप इस (ससार)-के साक्षी हैं, निरन्तर इसका पालन करते हैं और आप ही सहार करनेवाले हैं। आप योगियोके समूहोद्वारा सेवित होते रहते हैं। अद्वितीय, अन्तरात्मारूप आप देह आदि विशेष पदार्थोंसे रहित होते हुए (विभिन्न) देहामे अनेक प्रकारसे स्थित रहते हैं। आप आत्मशब्द ('आत्मा' शब्दसे बोध्य) और परमात्म-तत्त्व हैं। कुछ लोग आपको ही शिव कहते हैं॥ १८८—१९२॥

त्वमक्षर ब्रह्म पर पवित्र-
मानन्दरूप प्रणवाभिधानम्।
त्वमीश्वरो वेदपदेषु सिद्ध
स्वय प्रभोऽशेषविशेषहीन ॥ १९३॥
त्वमिन्द्ररूपो वरुणाग्निरूपो
हस प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञ ।
प्रजापतिर्भगवानेकरुद्रो
नीलग्रीव स्तूयसे वेदविद्भि ॥ १९४॥
नारायणस्त्व जगतामथादि
पितामहस्त्व प्रपितामहश्च।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीत
सदाशिवस्त्व परमेश्वरोऽसि॥ १९५॥

हे प्रभो! स्वय आप आनन्दस्वरूप, परम पवित्र, आकार शब्दसे वाच्य, अविनाशी, पर ब्रह्म हैं। आप स्वय वेदवाक्यामे 'ईश्वर'-शब्दसे सिद्ध है और समस्त विशेष पदार्थोंसे शून्य हैं। आप इन्द्र वरुण अग्नि हस, प्राण, मृत्यु, अन्त एव यज्ञ हैं। वेदको जाननेवालाके द्वारा आपके नीलकण्ठ, एक-रुद्र, प्रजापति और भगवत्स्वरूपकी स्तुति की जाती है। आप ससारके आदि और नारायण है आप ही पितामह और प्रपितामह हैं। वेदान्तशास्त्र तथा गुह्य उपनिषदोमे आप ही सदाशिव और परमेश्वर इस नामसे वर्णित हैं॥ १९३—१९५॥

नम परस्तात् तमस परस्मै
परात्मने पञ्चपदान्तराय।
त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय
सहस्रशक्त्यासनसस्थिताय ॥१९६॥

तमोगुणसे पर, परम परमात्मा पञ्चपदान्तरस्वरूप ब्राह्मी, वैष्णवी एव शाक्त—तीनो शक्तियोसे अतीत, निरञ्जन और सहस्रशक्तिरूप आसनपर विराजमान रहनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है॥ १९६॥

त्रिमूर्तयेऽनन्तपदात्ममूर्ते
जगन्निवासाय जगन्मयाय।
नमो ललाटार्पितलोचनाय
नमो जनाना हृदि सस्थिताय॥१९७॥

फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्य
मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादयुग्म ।
ऐश्वर्यधर्मासनसस्थिताय
नम परान्ताय भवोद्भवाय॥१९८॥

सहस्रचन्द्रार्कविलाचनाय
नमोऽस्तु ते सोम सुमध्यमाय।
नमोऽस्तु ते दव हिरण्यबाहो
नमोऽम्बिकाया पतये मृडाय॥१९९॥

नमोऽतिगुह्याय गुहान्तराय
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने
नमो महेशाय नम शिवाय॥२००॥

ब्रह्मा-विष्णु एव शिव—इन त्रिमूर्तिरूप, अनन्त पदात्मक, आत्ममूर्ति, जगन्निवास और जगन्मयको नमस्कार है। ललाटमे नेत्र धारण करनेवाले तथा लागाके हृदयम स्थित आपको नमस्कार है। मुनीन्द्रा तथा सिद्धाद्वारा जिनके चरणकमलाकी पूजा की जाती है, ऐसे नागराजोंका माला धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। ऐश्वर्यमय धर्मके आसनपर विराजमान रहनेवाले, परमोत्कृष्ट एव ससारका उत्पन्न करनेवाले आपका नमस्कार है। हजारा चन्द्रमा और सूर्योंके समान नत्रवाले तथा सुन्दर मध्यभागवाल सामस्वरूप आपको नमस्कार है। हिरण्यबाहो! दव! आपको नमस्कार है। अम्बिकाके पति मृड! आपको नमस्कार है। अत्यन्त गुह्य गुहान्तर, वदान्तरूपी विज्ञानके द्वारा निश्चित किये गये तीना कालोके प्रभावसे रहित शुद्ध तेजामय स्थानवाले महशको नमस्कार है, शिवको नमस्कार है॥ २००॥

एव स्तुवन्त भगवान् शूलाग्रादवरोप्य तम्।
तुष्ट प्रोवाच हस्ताभ्या स्पृष्ट्वाथ परमेश्वर ॥२०१॥
प्रीतोऽह सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम्।
सम्प्राप्य गाणपत्य मे सनिधाने वसामर ॥२०२॥
अरोगश्छिन्नसदेहो देवैरपि सुपूजित ।
नन्दीश्वरस्यानुचर सर्वदु खविवर्जित ॥२०३॥

इस प्रकार स्तुति कर रहे उस (अन्धक)-को प्रसन्न होकर भगवान् परमेश्वरने त्रिशूलके अग्रभागसे उतारा और हाथास स्पर्श करत हुए कहा—दैत्य! इस समय तुम्हार द्वारा की गयी इस स्तुतिसे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम गणपति-पद प्राप्तकर अमर हाकर मेर समीपम निवास करो तुम रोगासे रहित सदहशून्य, सभी दु खासे रहित और नन्दीश्वरक अनुचर होकर दवताआके द्वारा भलीभाँति पूजित होओगे॥ २०१—२०३॥

एव व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवता ।
गणेश्वरा महादेवमन्धक देवसनिधौ॥२०४॥
सहस्रसूर्यसकाश त्रिनेत्र चन्द्रचिह्नितम्।
नीलकण्ठ जटामौलि शूलासक्तमहाकरम्॥२०५॥
दृष्ट्वा त तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्य परम गता ।
उवाच भगवान् विष्णुर्देवदेव स्मयन्निव॥२०६॥

देवताआके भा दव (शकर)-के इतना कहते ही हजारो सूर्यके सभा प्रकाशमान त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमाक चिह्नसे सुशोभित नीलकण्ठ, जटामुकुटधारी विशाल भुजाम त्रिशूल धारण किये तथा महादेव-रूपमें विद्यमान उस अन्धक दैत्यका दव शकरके समीपमे स्थित दखकर देवता तथा गणेश्वर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गय और उसका स्तुति करने लगे। तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसते हुए दवाधिदव शिवसे कहा—॥ २०४—२०६॥

स्थाने तव महादेव प्रभाव पुरुषो महान्।
नेक्षतेऽज्ञानजान् दोषान् गृह्णाति च गुणानपि॥२०७॥
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुगवै ।
सकशव सहान्धको जगाम शकरान्तिकम्॥२०८॥

निरीक्ष्य देवमागत स शकर सहान्धकम्।
समाधव समातृक जगाम निर्वृति हर ॥२०९॥
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजम्।
जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा॥२१०॥
विलोक्य सा समागत भव भवार्तिहारिणम्।
अवाप सान्धक सुख प्रसादमन्धक प्रति॥२११॥
अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगाम्।
पपात दण्डवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयो ॥२१२॥

महादेव! आपने उचित ही प्रभाव दिखलाया। महान् पुरुष अज्ञानसे उत्पन्न दोषोंको नहीं देखते और गुणोंको ही ग्रहण करते हैं। इतना कहे जानेके बाद गणेश्वरो, श्रेष्ठ देवो केशव तथा अन्धकके साथ भैरव शकरके पास गये। अन्धक विष्णु तथा मातृकाओंके साथ देव (भैरव)-को आया देखकर उन कल्याणकारी हरको परम शान्ति प्राप्त हुई। हिरण्याक्षके पुत्र (अन्धक)-का हाथ पकडकर ईश्वर (शकर) वहाँ गये, जहाँ शकरप्रिया पार्वती विमानपर बैठी हुई थीं। ससारके दु खोंका हरण करनेवाले भव (शकर)-को अन्धकके साथ आया देखकर उन्हें सुख प्राप्त हुआ तब उन्होंने अन्धकपर कृपा की। अन्धक शकरके पार्श्वभागमें स्थित महेश्वरीको देखा। वह पृथ्वीपर दण्डके समान गिर गया और देवीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया॥ २०७—२१२॥

नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम्।
यत प्रधानपूरुषौ निहन्ति याखिल जगत्॥२१३॥
विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया।
हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तामिमामजाम्॥२१४॥
यदन्तराखिल जगज्जगन्ति यान्ति सक्षयम्।
नमामि यत्र तामुमामशेषभेदवर्जिताम्॥२१५॥
न जायते न हीयते न वर्धते च तामुमाम्।
नमामि या गुणातिगा गिरीशपुत्रिकामिमाम्॥२१६॥
क्षमस्व देवि शैलजे कृत मया विमोहत ।
सुरासुरैर्यदर्चित नमामि ते पदाम्बुजम्॥२१७॥

जिनसे प्रधान (प्रकृति) और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्वका सहार करनेवाली हैं, उन अनादि शकरप्रिया अद्रितनया (पर्वतपुत्री)-को मैं प्रणाम करता हूँ। जो अति निर्मल, हिरण्मय मगलकारी आसनपर भगवान् शिवके साथ सुशोभित होती हैं, उन अव्यय और अजन्माको मैं नमस्कार करता हूँ। सभी भेदोंसे रहित उन उमाको मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके भीतर सम्पूर्ण ससार उत्पन्न होता है और विनाशको प्राप्त होता रहता है। जो न उत्पन्न होती है, न विनाशको प्राप्त होती हैं और न बढती ही हैं, उन गुणातीत, हिमालयकी पुत्री उमाको मैं नमस्कार करता हूँ। देवि! शैलपुत्रि! मैंने मोहित होकर जो किया उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। देवताओं तथा असुरोंसे पूजित आपके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २१३—२१७॥

इत्थ भगवती गौरी भक्तिनम्रेण पार्वती।
सस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्धकम्॥२१८॥

भक्तिसे विनम्र हुए दैत्यपतिके इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवती गौरी पार्वतीने उस अन्धकको पुत्ररूपमें स्वीकार किया॥ २१८॥

तत स मातृभि सार्ध भैरवो रुद्रसम्भव ।
जगामानुज्ञया शम्भो पाताल परमेश्वर ॥२१९॥
यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्ति सहारकारिका।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिहाकृतिरीश्वर ॥२२०॥
ततोऽनन्ताकृति शम्भु शेषेणापि सुपूजित ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि॥२२१॥
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातर ।
बुभुक्षिता महादेव प्रणम्याहुस्त्रिशूलिनम्॥२२२॥

तदनन्तर रुद्रसे उत्पन्न परमेश्वर भैरव शम्भुकी आज्ञासे मातृकाओंके साथ पाताल गये। जहाँ विष्णुकी सहारकारिणी तामसी मूर्तिके रूपमें नृसिहाकृति ईश्वर अव्यक्त हरि स्थित हैं। तदनन्तर शेषसे भी पूजित कालाग्नि रुद्र अनन्ताकृति भगवान् शम्भुने स्वयको परमात्म-तत्त्वसे सयुक्त कर दिया। उन देवके (परमात्मासे) सयोग करते समय सभी बुभुक्षित मातृकाओंने त्रिशूलधारी महादेवको प्रणामकर कहा—॥ २१९—२२२॥

मातर ऊचु

बुभुक्षिता महादेव अनुज्ञा दीयता त्वया।
त्रैलोक्य भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति न ॥२२३॥
एतावदुक्त्वा वचन मातरो विष्णुसम्भवा ।
भक्षयाञ्चक्रिरे सर्व त्रैलोक्य सचराचरम्॥२२४॥

मातृकाओंने कहा—महादेव! हम भूखी हैं। आप आज्ञा दें, हम तीनों लोकोंका भक्षण करेंगी, हमारी और किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं होगी। इतनी बात कहकर विष्णुसे उत्पन्न वे मातृकाएँ चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीका भक्षण करने लगीं॥ २२३-२२४॥

ततः स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम्।
दध्यौ नारायणं देवं क्षणात् प्रादुरभूद्धरिः॥२२५॥
विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः।
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति॥२२६॥

तब उन भैरवदेवने नृसिंह-शरीरधारी नारायणदेव हरिका ध्यान किया। हरि क्षणभरमें ही प्रकट हो गये। (भैरवदेवने) उन्हें बतलाते हुए कहा—भगवन्! आपकी ये मातृकाएँ त्रिलोकीका भक्षण कर रही हैं, इन्हें आप शीघ्र ही रोकें॥ २२५-२२६॥

संस्मृता विष्णुना दध्यौ नृसिंहवपुषा पुनः।
उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं च तम्॥२२७॥
सम्प्राप्य संनिधिं विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः।
प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायातितेजसे॥२२८॥

नरसिंह-शरीरधारी विष्णुके द्वारा पुनः उन देवियोंका स्मरण किये जानेपर वे उन नरसिंहरूपवाले महादेवके पास आ पहुँचीं। संहार करनेवाली उन सभी शक्तियोंने विष्णुके समीप आकर भैरवरूपधारी अति तेजस्वी शम्भुको शक्ति प्रदान कर दी॥ २२७-२२८॥

अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमथ भैरवम्।
क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः॥२२९॥
व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणिनः।
ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः॥२३०॥
ममैव मूर्तिरतुला सर्वसंहारकारिका।
महेश्वरांशसम्भूता भुक्तिमुक्तिप्रदा त्वियम्॥२३१॥

उन मातृकाओंने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नृसिंह, भैरव तथा शेषनागको क्षणभरमें ही एक होते हुए देखा। हृषीकेशने कहा—शूलपाणि भगवान् शंकरके जो भक्त हैं और जो मेरा स्मरण करते हैं, प्रयत्नपूर्वक उनका यहाँ पालन करना चाहिये। महेश्वरके अंशसे उत्पन्न सबका संहार करनेवाली यह मेरी ही अतुलनीय मूर्ति है। यह भुक्ति और मुक्तिको प्रदान करनेवाली है॥ २२९—२३१॥

अनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्था ममैव तु।
तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः॥२३२॥
सोऽयं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः।
भक्षयिष्यति कल्पान्ते रुद्रात्मा निखिलं जगत्॥२३३॥
या सा विमोहिका मूर्तिर्मम नारायणाह्वया।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत् कृत्स्नं संस्थापयति नित्यदा॥२३४॥
स हि विष्णुः परं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते॥२३५॥
इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विश्वमातरः।
प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं हरिम्॥२३६॥

भगवान् अनन्त और काल मेरी ही दो प्रकारकी तामसी अवस्थाएँ हैं। देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्मा मेरी राजसी मूर्ति हैं। वे ही ये संसारका संहार करनेवाले दुर्धर्ष कालदेव हैं। कल्पका अन्त होनेपर ये रुद्रात्मा सम्पूर्ण विश्वका भक्षण करेंगे। सबको मोहित करनेवाली सत्त्वगुणसम्पन्ना मेरी 'नारायण' इस नामवाली जो मूर्ति है, वह नित्य समस्त संसारकी स्थापना करती है। (मेरी) उस (मूर्ति)-को विष्णु, परम ब्रह्म, परमात्मा, परमगति, मूलप्रकृति, अव्यक्त और सदानन्द—इस प्रकारसे कहा जाता है। विष्णुके द्वारा इस प्रकार समझानेपर देवीरूप उन सभी मातृकाओंने उन्हीं महादेव हरिकी शरण ग्रहण की॥ २३२—२३६॥

एतद् वः कथितं सर्वं मयान्धकनिबर्हणम्।
माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः॥२३७॥

मैंने आप लोगोंसे अन्धकके विनाश और अमित ओजस्वी देवाधिदेव भैरवके माहात्म्यका सम्पूर्ण वर्णन किया॥ २३७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १५॥
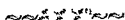
सोलहवाँ अध्याय

सनत्कुमारद्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचनका योगमे सलग्न होना, विरोचन-पुत्र बलिद्वारा देवताओको पराजित करना, देवमाता अदितिका दु खी होना तथा विष्णुसे प्रार्थनाकर पुत्ररूपमे उनके उत्पन्न होनेका वर प्राप्त करना, अदितिके गर्भमे विष्णुका प्रवेश, विष्णुका वामनरूपमे आविर्भाव, बलिके यज्ञमें वामनका प्रवेश तथा तीन पग भूमिकी याचना, तीसरे पगसे नापते समय ब्रह्माण्ड-भेदन, गङ्गाकी उत्पत्ति तथा भक्तिका वर प्राप्तकर बलि आदिका पातालमे प्रवेश

श्रीकूर्म उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मन ।
विरोचनो नाम सुतो बभूव नृपति पुरा॥१॥
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बहून् वर्षान् महासुर ।
पालयामास धर्मेण त्रैलोक्य सचराचरम्॥२॥
तस्यैव वर्तमानस्य कदाचिद् विष्णुचोदित ।
सनत्कुमारो भगवान् पुर प्राप महामुनि ॥३॥
दृष्ट्वा सिहासनगतो ब्रह्मपुत्र महासुर ।
ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥४॥

श्रीकूर्मने कहा—प्राचीन कालम अन्धकके निगृहीत हो जानेपर महात्मा प्रह्लादका विरोचन नामका पुत्र राजा बना। उस महान् असुरने देवेन्द्रसहित देवताओको जीतकर धर्मपूर्वक चराचर त्रिलोकीका बहुत वर्षोतक पालन किया। उसके इस प्रकार रहते हुए एक बार कभी विष्णुसे प्रेरित होकर महामुनि भगवान् सनत्कुमार उसके नगरमे आये। सिहासनपर बैठे हुए उस महान् असुरने ब्रह्माजीके पुत्र (सनत्कुमार)-को देखकर (आसनसे) उठकर सिरसे उन्हे प्रणाम किया और हाथ जोडकर यह वाक्य कहा—॥१—४॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरातन ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् यतोऽसौ ब्रह्मवित् स्वयम्॥५॥
किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वय देव पितामह ।
ब्रूहि मे ब्रह्मण पुत्र कि कार्यं करवाण्यहम्॥६॥

आज मैं धन्य हुआ कृतार्थ हुआ जो ये ब्रह्मज्ञानी, पुरातन योगीश्वर भगवान् स्वय यहाँ आ गये हैं। ह ब्रह्मन्! देवस्वरूप पितामह ब्रह्माजीक पुत्र! आप किस प्रयोजनस यहाँ आय हैं मुझ बतलाय। मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ॥५-६॥

सोऽब्रवीद् भगवान् देवो धर्मयुक्त महासुरम्।
द्रष्टुमभ्यागतोऽह वै भवन्त भाग्यवानसि॥७॥
सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्याना दैत्यसत्तम।
त्रिलोके धार्मिको नून त्वादृशोऽन्यो न विद्यते॥८॥
इत्युक्तोऽसुरराजस्त पुन प्राह महामुनिम्।
धर्माणा परम धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम॥९॥
सोऽब्रवीद् भगवान् योगी दैत्येन्द्राय महात्मने।
सर्वगुह्यतम धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम्॥१०॥

वे भगवान् देव धर्मात्मा महासुर (विरोचन)-से बाले—मैं आपको ही देखने आया हूँ, आप भाग्यशाली हैं। दैत्यश्रेष्ठ! दैत्योके लिये यह (धार्मिक) नीति अत्यन्त दुर्लभ है। निश्चय ही तीनो लोकोमें तुम्हारे समान कोई दूसरा धार्मिक नहीं है। ऐसा कहे जानेपर असुरराज (विराचन)-ने उन महामुनिसे पुन कहा—ब्रह्मज्ञानियोम सर्वश्रेष्ठ! आप मुझे धर्मोम जो श्रेष्ठ धर्म हो, उसे बतलाय। उन भगवान् यागीने महात्मा दैत्येन्द्रका आत्मज्ञानरूपी और सब प्रकारसे अत्यन्त रहस्यमय श्रेष्ठ धर्म बतलाया॥७—१०॥

स लब्ध्वा परम ज्ञान दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
निधाय पुत्रे तद्राज्य योगाभ्यासरतोऽभवत्॥११॥
स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुर ।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरदरम्॥१२॥
कृत्वा तेन महद् युद्ध शक्र सर्वामरैर्वृत ।
जगाम निर्जितो विष्णु देव शरणमच्युतम्॥१३॥

उन्होंने (महात्मा विरोचनने) परम ज्ञान प्राप्तकर उन्ह (सनत्कुमारको) गुरदक्षिणा प्रदान की तथा राज्य अपन पुत्र

(पृथ्वी)-को सौंपकर वे योगाभ्यासमें निरत हो गये। उनका वह बलि नामक महान् असुर पुत्र बुद्धिमान्, ब्राह्मणभक्त तथा अत्यन्त धार्मिक था। महान् अभ्युदयकी प्राप्तिके लिये उसने इन्द्रको भी जीत लिया था। सभी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रने उसके साथ महान् युद्ध करते हुए पराजित होकर अच्युत विष्णुदेवकी शरण ग्रहण की॥ ११—१३॥

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम्॥ १४॥
तताप सुमहद् घोरं तपोराशिस्तपः परम्।
प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्॥ १५॥
कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमं पदम्।
वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम्॥ १६॥
प्रसन्नो भगवान् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः।
आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः॥ १७॥
दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता।
मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्॥ १८॥

इसी बीच अत्यन्त दुःखी होकर देवताओंकी माता तपोराशि परम तपोरूप देवी अदितिने दैत्येन्द्रोंके वधके लिये 'स्वयं भगवान् ही मेरे पुत्र हों' इस संकल्पको लेकर अत्यन्त महान् कठोर तप किया। अपने हृदयरूपी कमलकलिकामें निष्कल परम पद, अनादि, अनन्त आनन्दस्वरूप व्योममय अद्वितीय वासुदेवका ध्यान करती हुई वे शरणागतवत्सल अव्यक्त, हरि विष्णुकी शरणमें गयीं। प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र तथा गदा धारण करनेवाले योगात्मा हरि भगवान् विष्णु देवमाता (अदिति)-के समक्ष प्रकट हो गये। विष्णुको सामने देखकर भक्तिपरायणा अदितिने अपनेको कृतार्थ माना और वे केशवको स्तुतिसे प्रसन्न करने लगीं॥ १४—१८॥

अदितिरुवाच

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो
जयानन्तमाहात्म्ययोगाभियुक्त।
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्ते
जयाशेयकल्पामलानन्दरूप॥ १९॥
नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं
नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम्।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे
नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते॥ २०॥
नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं
नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम्।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं
नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते॥ २१॥
नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते
नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य।
नमो देवदेवादिदेवादिदेव
प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते॥ २२॥
नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं
नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं
शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते॥ २३॥

अदितिने कहा—समस्त दुःखसमूहोंके नाश करनेके लिये एकमात्र कारणरूप आपकी जय हो। अनन्त माहात्म्य-सम्पन्न तथा योगाभियुक्त! (योगमें प्रतिक्षण निरत) आपकी जय हो। आदि मध्य और अन्तसे रहित विज्ञानमूर्ते! आपकी जय हो। अशेयकल्प (जिनमें किसी भी प्रकारके विषयका विराम नहीं है) तथा विशुद्ध आनन्दस्वरूप! आपकी जय हो। कालरूप विष्णु! आपको नमस्कार है। नरसिंहरूपधारी शेष! आपको नमस्कार है। संहार करनेवाले कालरुद्रको नमस्कार है। वासुदेव! आपको बार-बार नमस्कार है। विश्वरूपी मायाका विधान करनेवाले! आपको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्य सत्यरूप! आपको नमस्कार है। धर्म एवं ज्ञाननिष्ठ! आपको नमस्कार है। हे वराहरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। हजारों सूर्य और चन्द्रमाकी आभाके समान प्रकाशयुक्त मूर्तिवाले! आपको नमस्कार है। वेदोंमें प्रतिपादित विशिष्ट ज्ञान और धर्मद्वारा प्राप्त होनेवाले! आपको नमस्कार है। देवदेवादिदेव आदिदेव! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप विश्वके योनिरूप हैं आपको बार-बार नमस्कार है। सत्यनिष्ठ शम्भो! आपको नमस्कार है। कारणरूप! विश्वरूप! आपको नमस्कार है। योगपीठके मध्यमें विराजमान रहनेवाले! आपको नमस्कार है। हे एकरूप शिव! आपको बार-बार नमस्कार है॥ १९—२३॥

एवं स भगवान् कृष्णो देवमात्रा जगन्मयः।
तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव॥ २४॥

देवमाता (अदिति)-के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये

जानेपर जगन्मय उन भगवान् कृष्ण-(विष्णु)-ने किंचित् हँसते हुए वर माँगनेके लिये कहा॥ २४॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम्।
त्वामेव पुत्र देवाना हिताय वरये वरम्॥ २५॥
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सल ।
दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत॥ २६॥

सिरसे भूमिमे प्रणाम करते हुए तथा श्रेष्ठ वर माँगते हुए उसने (अदितिने) कहा—मैं देवताओके कल्याणके लिये आपको ही पुत्ररूपमे प्राप्त करनेका वर माँगती हूँ। शरणागतवत्सल अप्रमेय भगवान् 'ऐसा ही हो' इतना कहकर तथा वरोको प्रदानकर वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ २५-२६॥

ततो बहुतिथे काले भगवन्त जनार्दनम्।
दधार गर्भं देवाना माता नारायण स्वयम्॥ २७॥
समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम्।
उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचने पुरे॥ २८॥
निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान् दैत्येन्द्रो भयविह्वल ।
प्रह्लादमसुर वृद्ध प्रणम्याह पितामहम्॥ २९॥

तदनन्तर बहुत समय बीतनेके पश्चात् देवताओकी माता (अदिति)-न साक्षात् नारायण भगवान् जनार्दनको गर्भम धारण किया। देवमाताके उदरमे हृषीकेशके प्रविष्ट होते ही विरोचनपुत्र बलिके नगरम भयकर उत्पात होने लगे। सभी उपद्रवाको देखकर भयसे विह्वल हुआ दैत्यराज (बलि) वृद्ध पितामह असुर प्रह्लादको प्रणामकर कहने लगा— ॥ २७—२९॥

बलिरुवाच

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत्पुरेऽधुना।
किमुत्पाता भवेत् कार्यमस्माक किंनिमित्तका ॥ ३०॥
निशम्य तस्य वचन चिर ध्यात्वा महासुर ।
नमस्कृत्य हृषीकेशमिद वचनमब्रवीत्॥ ३१॥

बलिने कहा—महाप्राज्ञ पितामह! हमारे नगरम इस समय य उत्पात क्यो हो रहे हैं, इनका कारण क्या है? हमे क्या करना चाहिये? उसकी बात सुनकर महासुर (प्रह्लाद)-ने देरतक ध्यान किया और फिर हृषीकेशको नमस्कार करके यह वचन कहा— ॥ ३०-३१॥

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिद जगत्।
दधारासुरनाशार्थं माता त त्रिदिवौकसाम्॥ ३२॥
यस्मादभिन्न सकल भिद्यते योऽखिलादपि।
स वासुदेवो देवाना मातुर्देह समाविशत्॥ ३३॥
न यस्य देवा जानन्ति स्वरूप परमार्थत ।
स विष्णुरदितेर्देह स्वेच्छयाऽद्य समाविशत्॥ ३४॥

प्रह्लाद बोले—यज्ञाद्वारा जिन विष्णुका यजन किया जाता है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनका (स्वरूप) है, देवताओकी माता (अदिति)-ने उन्हे ही असुरोके विनाशके लिये (गर्भमे) धारण किया है। समस्त विश्व जिनसे अभिन्न है और जो समस्त विश्वसे भिन्न भी है, उन वासुदेवने देवताओकी माताके शरीरमे प्रवेश किया है। देवता भी जिनके स्वरूपको यथार्थत नहीं जानते वे विष्णु ही इस समय अपनी इच्छासे अदितिके देहमें प्रविष्ट हुए हैं॥ ३२—३४॥

यस्माद् भवन्ति भूतानि यत्र सयान्ति सक्षयम्।
सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरि ॥ ३५॥
न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना।
सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरशेन जायते॥ ३६॥
यस्य सा जगता माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी।
माया भगवती लक्ष्मी सोऽवतीर्णो जनार्दन ॥ ३७॥
यस्य सा तामसी मूर्ति शकरो राजसी तनु ।
ब्रह्मा सजायते विष्णुरशेनैकेन सत्त्वभृत्॥ ३८॥

जिनसे सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और जहाँ नाशको प्राप्त होते हैं वे महायोगी पुराणपुरुष हरि अवतीर्ण हुए हैं। जिनम नाम, जाति आदिकी परिकल्पना नहीं हाती, सत्तामात्रसे व्याप्त रहनेवाले आत्मरूप वे ही विष्णु अपने अशरूपसे प्रकट हो रहे हैं। जगत्की मातृरूपा और उसके (जगत्के) धर्मको धारण करनेवाली, भगवती लक्ष्मी जिनकी मायारूपी शक्ति हैं, वे जनार्दन ही अवतीर्ण हुए है। जिनकी तामसी मूर्ति शकर हैं और राजसी मूर्ति ब्रह्मा हैं व सत्त्वगुणको धारण करनेवाले विष्णु ही अपने एक अशसे प्रकट हा रहे हैं॥ ३५—३८॥

इत्थ विचिन्त्य गोविन्द भक्तिनम्रेण चेतसा।
तमेव गच्छ शरण ततो यास्यसि निर्वृतिम्॥ ३९॥

तत प्रह्लादवचनाद् बलिर्वैराचनिर्हरिम्।
जगाम शरण विश्व पालयामास धर्मत ॥ ४० ॥

गोविन्दका इस प्रकार समझकर भक्तिसे विनम्र-चित्त हा उन्हींकी शरणमे जाओ, इससे तुम शान्ति प्राप्त कराग। तब प्रह्लादक वचनसे विरोचनपुत्र बलि हरिकी शरण ग्रहण करता हुआ धर्मपूर्वक विश्वका पालन करने लगा ॥ ३९-४० ॥

काले प्राप्ते महाविष्णु देवाना हर्षवर्धनम्।
अमूत कश्यपाच्चैन दवमातादिति स्वयम् ॥ ४१ ॥
चतुर्भुज विशालाक्ष श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नीलमेघप्रतीकाश भ्राजमान श्रियावृतम् ॥ ४२ ॥
उपतस्थु सुरा सर्वे सिद्धा साध्याश्च चारणा ।
उपेन्द्रमिन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृत ॥ ४३ ॥
कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरि ।
समाचार भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥ ४४ ॥

समय आनेपर कश्यपसे स्वय देवमाता अदितिने देवताओंके हर्षको बढानेवाले उन महाविष्णुको जन्म दिया। वे (भगवान् विष्णु) चार भुजावाले, विशाल नेत्रवाले श्रीवत्ससे सुशोभित वक्ष स्थलवाले, नील मेघके समान, शोभासे व्याप्त एव प्रकाशमान थे। सभी देवता, सिद्ध साध्य, चारण तथा प्रधान इन्द्र उपेन्द्र और ऋषिगणोंसे आवृत ब्रह्मा उनके समीपमे गये। उपनयन (यज्ञोपवीत-संस्कार) हो जानेके बाद भगवान् हरिने तीनो लोकोंको प्रदर्शित करते हुए भरद्वाजसे वेदो और सदाचारका अध्ययन किया ॥ ४१—४४ ॥

एव हि लौकिक मार्ग प्रदर्शयति स प्रभु ।
स यत् प्रमाण कुरुत लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४५ ॥
तत कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनि स्वयम्।
यज्ञैर्यज्ञेश्वर विष्णुमर्चयामास सर्वगम् ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणान् पूजयामास दत्त्वा बहुतर धनम्।
ब्रह्मर्षय समाजग्मुर्यज्ञवाट महात्मन ॥ ४७ ॥
विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदित ।
आस्थाय वामन रूप यज्ञदेशमथागमत् ॥ ४८ ॥

इस प्रकार वे प्रभु लौकिक (लोककल्याणकारी) मार्ग दिखाते हैं। वे जैसा प्रमाण उपस्थित करते हैं ससार उसीका अनुवर्तन करता है। तदनन्तर समयानुसार विरोचनके पुत्र बुद्धिमान् बलिने यज्ञोके द्वारा सर्वव्यापी यज्ञेश्वर विष्णुकी स्वय अर्चना की। उसने (दक्षिणारूपमे) बहुत-सा धन देकर ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस महात्माके यज्ञस्थलमे ब्रह्मर्षि आये। (यज्ञ हो रहा है ऐसा) जानकर भरद्वाजसे प्रेरणा प्राप्तकर भगवान् विष्णु वामनरूप धारणकर यज्ञदेशमें आये ॥ ४५—४८ ॥

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजित ।
ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् भस्ममण्डित ॥ ४९ ॥
सम्प्राप्यासुरराजस्य समीप भिक्षुको हरि ।
स्वपादैर्विमित देशमयाचत बलि त्रिभि ॥ ५० ॥

शरीरपर कृष्णमृगका चर्म तथा उपवीत (यज्ञोपवीत-जनेऊ) धारण किये पलाशके दण्डसे सुशोभित, जटा धारण किये तथा भस्मसे मण्डित वे ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए असुरराज बलिके समीप आये। उन भिक्षुक (वेशधारी) हरिने बलिसे अपने तीन पगोंद्वारा नापी गयी भूमिकी याचना की ॥ ४९-५० ॥

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वित ।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम् ॥ ५१ ॥
दास्ये तवेद भवते पदत्रय
प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृति ।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे
निपातयामास जल सुशीतलम् ॥ ५२ ॥
विचक्रमे पृथिवीमेष एता-
मथान्तरिक्ष दिवमादिदेव ।
व्यपेतराग दितिजेश्वर त
प्रकर्तुकाम शरण प्रपन्नम् ॥ ५३ ॥
आक्रम्य लोकत्रयमीशपाद
प्राजापत्याद् ब्रह्मलोक जगाम।
प्रणेमुरादित्यसहस्रकल्प
ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धा ॥ ५४ ॥

बलिने भावपूर्वक विष्णुके दोनो चरणोंको धोकर स्वर्णनिर्मित भृङ्गार (टोटीदार पात्र) लेकर उन्हे आचमन कराया और 'मैं आपको आपके ही तीन पगोंवाली (भूमि) देता हूँ, इससे अव्यय आकृतिवाले देव हरि प्रसन्न हों' ऐसा सकल्पकर उन देवके कराग्रपल्लवपर सुशीतल जल गिराया। शरणमे आये हुए उस दैत्यराजको आसक्तिरहित बनानेकी

इच्छासे उन आदिदेवने- पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमे पाद-विक्षेप किया। -तीनो लोकोको आक्रान्तकर ईश्वरका चरण प्रजापतिके लोकसे ब्रह्मलोकमे पहुँचा। उस लोकमे निवास करनेवाले जो सिद्धजन थे, उन्होने हजारो आदित्यके समान (प्रकाशमान) उस चरणको प्रणाम किया॥ ५१—५४॥

अथोपतस्थे भगवाननादि
पितामहस्तोषयामास विष्णुम्।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं
जगाम दिव्यावरणानि भूय ॥ ५५॥
अथाण्डभेदान्निपपात शीतल
महाजल तत् पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम्।
प्रवर्तते चापि सरिद्वरा तदा
गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसस्था॥ ५६॥

तदनन्तर अनादि भगवान् पितामहने वहाँ उपस्थित होकर विष्णुको प्रसन्न किया। उस ब्रह्माण्डके ऊपरी कपालको भेदकर पुन वह चरण दिव्य आवरणोमे चला गया। उस अण्डका भेदन होनेसे पुण्य करनेवालोद्वारा सेवित वह शीतल महाजल नीचे गिरा। तभीसे आकाशमें स्थित वह नदियामे श्रेष्ठ नदी प्रवर्तित हुई जिसे ब्रह्माने 'गङ्गा' नामसे अभिहित किया॥ ५५-५६॥

गत्वा महान्त प्रकृति प्रधान
ब्रह्माणमेक पुरुष स्वबीजम्।
अतिष्ठदीशस्य पद तदव्यय
दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति॥ ५७॥
आलोक्य त पुरुष विश्वकाय
महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम्।
ननाम नारायणमेकमव्यय
स्वचेतसा य प्रणमन्ति देवा ॥ ५८॥

ईश्वरका वह चरण महान्, प्रधान प्रकृति स्वबीज-स्वरूप अद्वितीय पुरुष ब्रह्मपर्यन्त पहुँचकर स्थित हो गया। उस अव्यय पदका दर्शनकर विभिन्न स्थानाके देवता स्तुति करने लगे। उन ससाररूपी शरीरवाले पुरुष विष्णुको देखकर महान् बलिने उन अद्वितीय अव्यय नारायणको अपने भक्तिपूरित चित्तसे प्रणाम किया जिन्हे सभी देवता प्रणाम करत रहते हैं॥ ५७-५८॥

तमब्रवीद् भगवानादिकर्ता
भूत्वा, पुनर्वामनो वासुदेव ।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेद
लोकत्रय भवता भावदत्तम्॥ ५९॥

आदिकर्ता भगवान् वासुदेवने पुन वामनरूप धारणकर उस (बलि)-से कहा--दैत्याधिपते! इस समय भक्तिपूर्वक आपके द्वारा दिये गये ये तीनो लोक अब मेरे ही हैं॥ ५९॥

प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो
निपातयामास जल कराग्रे।
दास्ये तवात्मानमनन्तधाम्ने
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय ॥ ६०॥
प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्त
प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणि ।
जगाद दैत्य जगदन्तरात्मा
पातालमूल प्रविशेति भूय ॥ ६१॥
समास्यता भवता तत्र नित्य
भुक्त्वा भोगान् देवतानामलभ्यान्।
ध्यायस्व मा सतत भक्तियोगात्
प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम्॥ ६२॥

दैत्यने पुन सिरसे प्रणामकर हाथाके अग्रभागमे जल गिराया (और कहा—) अनन्तधाम! त्रिविक्रम! अमित पराक्रमी! मैं अपने-आपको तुम्हे प्रदान करता हूँ॥ ६०॥ प्रह्लादके पुत्रके भी पुत्र अर्थात् बलिके द्वारा भलीभाँति दिया हुआ तीनो लोक ग्रहणकर ससारके अन्तरात्मा शङ्खपाणि (भगवान् विष्णु)-ने दैत्यसे पुन कहा—(अब आप) पातालमूलमे प्रवेश करें। आप वहाँ नित्य रहते हुए देवताओको भी प्राप्त न होनेवाले भोगाका उपभोगकर भक्तियोगद्वारा मेरा निरन्तर ध्यान करते रहे। कल्पान्त होनपर पुन मुझमे ही (आप) प्रवेश करेंगे॥ ६०—६२॥

उक्त्वैव दैत्यसिह त विष्णु सत्यपराक्रम ।
पुरदराय त्रैलोक्य ददौ विष्णुरुरुक्रम ॥ ६३॥
सस्तुवन्ति महायोग सिद्धा देवर्षिकिन्नरा ।
ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्यमरुद्गणा ॥ ६४॥

उस दैत्यश्रेष्ठसे इस प्रकार कहकर सत्यपराक्रम तथा

विशाल डगवाले विष्णुने तीनों लोक इन्द्रको दे दिये। सिद्ध देवता, ऋषि, किन्नर, ब्रह्मा, इन्द्र, भगवान् रुद्र, आदित्य तथा मरुद्गण (उन) महायोगीकी स्तुति करने लगे॥ ६३-६४॥

कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक्।
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत॥ ६५॥
सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् पातालं प्राप चोदितः।
प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुना विष्णुतत्परः॥ ६६॥

ऐसा अद्भुत कार्य करके वामन-रूप धारण करनेवाले विष्णु सभीके देखते-ही-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। वह विष्णुपरायण श्रीसम्पन्न दैत्यश्रेष्ठ (बलि) भी विष्णुसे प्रेरित होकर प्रह्लाद एवं अन्य श्रेष्ठ असुरोंके साथ पातालमें चला गया॥ ६५-६६॥

अपृच्छद् विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम्।
पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः॥ ६७॥
अथ रथचरणासिशङ्खपाणिं
सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम्।
शरणमुपययौ स भावयोगात्
प्रणतगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम्॥ ६८॥

उसने प्रह्लादसे विष्णुका माहात्म्य, श्रेष्ठतम भक्तियोग तथा पूजनका विधान पूछा। तब उनके द्वारा बताये जानेपर उसने वैसा ही किया। तदनन्तर भक्तिपूर्वक कर्मयोगका आचरण कर वह शरणागतोंके आश्रयस्थल, हाथोंमें चक्र, तलवार, तथा शङ्ख धारण करनेवाले, कमलके समान नेत्रवाले अप्रमेय ईश्वरकी शरणमें गया॥ ६७-६८॥

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः।
स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः॥ ६९॥

ब्राह्मणो! इस प्रकार यह (भगवान्) वामनके पराक्रमको मैंने बतलाया। ये पुरुषोत्तम सदा देवताओंके कार्योंको करते रहते हैं॥ ६९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

बलिपुत्र बाणासुरका वृत्तान्त, दक्ष प्रजापतिकी दनु, सुरसा आदि कन्याओंकी संतानोंका वर्णन

सूत उवाच

बलेः पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम्।
तेषां प्रधानो द्युतिमान् बाणो नाम महाबलः॥ १॥
सोऽतीव शंकरे भक्तो राजा राज्यमपालयत्।
त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम्॥ २॥
ततः शक्रादयो देवा गत्वोचुः कृत्तिवाससम्।
त्वदीयो बाधते ह्यस्मान् बाणो नाम महासुरः॥ ३॥

सूतजी बोले—बलिके महान् बल और पराक्रमवाले सौ पुत्र थे। उनमें प्रधान पुत्रका नाम 'बाण' था जो द्युतिमान् और अत्यन्त बलवान् था। भगवान् शंकरमें अत्यन्त भक्तिवाले उस राजा (बाण)-ने राज्यका पालन करते हुए त्रिलोकीको अपने वशमें करके इन्द्रको पीडित किया। तब इन्द्रादि देवता कृत्तिवासा[1] (शंकर)-के पास जाकर कहने लगे—(भगवन्!) आपका भक्त 'बाण' नामक महान् असुर हमें पीडित कर रहा है॥ १—३॥

व्याहृतो दैवतैः सर्वैर्देवदेवो महेश्वरः।
ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया॥ ४॥
दह्यमाने पुरे तस्मिन् बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम्।
ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम्॥ ५॥

सभी देवताओंके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवाधिदेव महेश्वरने एक बाणसे लीलापूर्वक 'बाण' के नगरको दग्ध कर दिया। उस नगरके जलनेपर बाण त्रिशूलधारी गोपति (वृषवाहन) नीललोहित ईशान रुद्रकी शरणमें गया॥ ४—५॥

मूर्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवं भीतिवर्जितः।
निर्गत्य तु पुरात् तस्मात् तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ६॥

१-कृत्ति (व्याघ्रचर्म)-को वसन (वस्त्र)-रूपमें धारण करनेवाले।

सस्तुतो भगवानीश शकरो नीललोहित ।
गाणपत्येन बाण त योजयामास भावत ॥ ७ ॥

शम्भुके लिगको सिरपर धारणकर वह निर्भयतापूर्वक अपने नगरसे बाहर निकल गया और परमेश्वर (शकर)-की स्तुति करने लगा। स्तुति करनेपर नीललोहित, शकर भगवान् ईशने स्नेहवश उस बाणासुरको गणपतिका पद प्रदान किया॥ ६-७॥

अथाभवन् दनो पुत्रास्ताराद्या ह्यतिभीषणा ।
तारस्तथा शम्बरश्च कपिल शकरस्तथा।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥
सुरसाया सहस्र तु सर्पाणामभवद् द्विजा ।
अनेकशिरसा तद्वत् खेचराणा महात्मनाम्॥ ९ ॥
अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणा सहस्रकम्।
अनन्ताद्या महानागा काद्रवया प्रकीर्तिता ॥१०॥

दनुके[1] तार आदि अत्यन्त भीषण पुत्र हुए। उनमे तार, शम्बर, कपिल, शकर स्वर्भानु तथा वृषपर्वा प्रधान कहे गये हैं। द्विजो! दक्षप्रजापतिकी कन्या सुरसाके अनेक फणावाले हजार सर्प पुत्ररूपमे हुए। इसी प्रकार अरिष्टाने हजारो आकाशचारी महात्मा गन्धर्वोको उत्पन्न किया। अनन्त आदि महानाग कद्रूके पुत्र कहे गये हैं॥ ८—१०॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुगवा ।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवा गृध्रिका शुचिम्॥११॥
गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा।
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वश ॥१२॥
खसा वै यक्षरक्षासि मुनिरप्सरसस्तथा।
रक्षोगण क्रोधवशा जनयामास सत्तमा ॥१३॥

द्विजश्रेष्ठो! ताम्राने छ कन्याओको जन्म दिया, जो शुकी, श्येनी भासी, सुग्रीवा गृध्रिका तथा शुचि नामवाली हैं। सुरभिने गौओ तथा महिषियो (भैंसो)-को उत्पन्न किया। इराने सभी प्रकारके वृक्ष लता वल्ली तथा तृण-जातिवालोको जन्म दिया। द्विजसत्तमो! खसाने यक्षो तथा राक्षसोको मुनिने अप्सराओको और क्रोधवशाने राक्षसोको उत्पन्न किया॥ ११—१३॥

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ।
तयोश्च गरुडो धीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
प्रसादाच्छूलिन , प्राप्तो वाहनत्व हरे स्वयम्॥१४॥
आराध्य तपसा रुद्र- महादेव तथारुण ।
सारथ्ये कल्पित पूर्व प्रीतेनार्कस्य शम्भुना॥१५॥

विनताके दो विख्यात पुत्र हुए—गरुड तथा अरुण। उनमसे बुद्धिमान् गरुडने दुस्तर तप करके भगवान् शकरकी कृपासे साक्षात् हरिके वाहन होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। इसी प्रकार पूर्वकालमे अरुणने महादेव रुद्रकी तपस्याद्वारा आराधना की, इससे महादेवने प्रसन्न होकर उसे सूर्यका सारथी बना दिया॥ १४-१५॥

एत कश्यपदायादा कीर्तिता स्थाणुजङ्गमा ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वता पापनाशना ॥१६॥

इस वैवस्वत मन्वन्तरमे स्थावर तथा जगम-रूप ये (महर्षि) कश्यपके वशज कहे गये है। इनका वर्णन सुननेवालोके पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १६॥

सप्तविंशत् सुता प्रोक्ता सोमपत्न्यश्च सुव्रता ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश॥१७॥
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युत स्मृता ।
तद्वदङ्गिरस पुत्रा ऋषयो ब्रह्मसत्कृता ॥१८॥
कृशाश्वस्य तु दवर्षेर्देवप्रहरणा सुता ।
एत युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
मन्वन्तरेषु नियत तुल्यै कार्यै स्वनामभि ॥१९॥

शोभन व्रतवाले द्विजो! (दक्षकी) सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाकी पत्नियाँ कही गयी हैं। अरिष्टनेमिकी पत्नियोकी सोलह सतान हुई। विद्वान् बहुपुत्रके चार विद्युत् नामवाले पुत्र कहे गये हैं। इसी प्रकार अङ्गिराके पुत्र ब्रह्माद्वारा सम्मान-प्राप्त श्रेष्ठ ऋषि थे। देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण अर्थात् देवोके शस्त्र थे। हजार युगोका अन्त होनेपर विभिन्न मन्वन्तरोंमे ये अपने नामोके समान कार्योंके साथ निश्चितरूपसे पुन उत्पन्न होते हैं॥ १७—१९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१७॥

---

[1] दनु दक्षप्रजापतिकी कन्या है। इसका विवाह कश्यपसे हुआ था।

अठारहवाँ अध्याय

महर्षि कश्यप तथा पुलस्त्य आदि ऋषियोके वंशका वर्णन, रावण तथा कुम्भकर्ण आदिकी उत्पत्ति, वसिष्ठके वंश-वर्णनमे व्यास, शुकदेव आदिकी उत्पत्तिकी कथा, भगवान् शंकरका ही शुकदेवके रूपमे आविर्भूत होना

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात्।
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार सुमहत् तप ॥ १ ॥
तस्य वै तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ २ ॥
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशा ।
रैभ्यस्य जज्ञिरे रैभ्या पुत्रा द्युतिमता वरा ॥ ३ ॥
च्यवनस्य सुता पत्नी नैध्रुवस्य महात्मन ।
सुमेधा जनयामास पुत्रान् वै कुण्डपायिन ॥ ४ ॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठ समपद्यत।
नाम्ना वै देवल पुत्रो योगाचार्यो महातपा ॥ ५ ॥
शाण्डिल्याना पर श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थवित् सुधी ।
प्रसादात् पार्वतीशस्य योगमुत्तममाप्तवान् ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—प्रजाकी अभिवृद्धिके लिये इन पुत्रोको उत्पन्न कर पुत्राभिलाषी कश्यप अत्यन्त महान् तप करने लगे। कठोर तप कर रहे उनके 'वत्सर' तथा 'असित' नामके दो पुत्र हुए। वे दोनो ही ब्रह्मवादी थे। वत्सरसे नैध्रुव और रैभ्य नामके महान् यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। रैभ्यके तेजस्वियोमे श्रेष्ठ रैभ्य नामक पुत्र हुआ। च्यवन ऋषिकी (सुमेधा नामवाली) पुत्री महात्मा नैध्रुवकी पत्नी थी। सुमेधाने 'कुण्डपायी' पुत्रोको उत्पन्न किया। असितकी एकपर्णा नामक पत्नीने ब्रह्मिष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया जो देवल नामवाले थे वे योगके आचार्य, महान् तपस्वी शाण्डिल्योमे श्रेष्ठ श्रीमान्, सभी तत्त्वार्थोको जाननेवाले तथा विद्वान् थे। पार्वतीके पति भगवान् शंकरकी कृपासे उन्होने श्रेष्ठ योग प्राप्त किया॥ १—६ ॥

शाण्डिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रय पक्षास्तु काश्यपा ।
नरप्रकृतयो विप्रा पुलस्त्यस्य वदामि व ॥ ७ ॥
तृणबिन्दो सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला स्मृता।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥ ८ ॥
ऋषिस्त्वैलविलिस्तस्या विश्रवा समपद्यत।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धिका ॥ ९ ॥
पुष्पोत्कटा च राका च कैकसी देववर्णिनी।
रूपलावण्यसम्पन्नास्तासा वै शृणुत प्रजा ॥ १० ॥

शाण्डिल्य नैध्रुव तथा रैभ्य—ये तीनों शाखाएँ कश्यपवंशीय और मानव प्रकृतिवाली हैं। ब्राह्मणो! आपको अब पुलस्त्य ऋषिके वंशको बताता हूँ। विप्रो! तृणबिन्दुकी एक पुत्री थी, जो इलविला नामसे प्रसिद्ध थी। उन राजर्षिने वह कन्या पुलस्त्यको प्रदान की। उस इलविलासे विश्रवा ऋषि उत्पन्न हुए। उनकी पुष्पोत्कटा, राका, कैकसी तथा देववर्णिनी नामकी चार पत्नियाँ थीं, जो पुलस्त्यके वंशको बढानेवाली तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न थीं। अब आप उनकी संतानोको सुनें॥ ७—१० ॥

ज्येष्ठ वैश्रवण तस्य सुषुवे देवरूपिणी।
कैकसी जनयत् पुत्र रावण राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥
कुम्भकर्णं शूर्पणखा तथैव च विभीषणम्।
पुष्पोत्कटा व्यजनयत् पुत्रान् विश्रवस शुभान् ॥ १२ ॥
महोदर प्रहस्त च महापार्श्व खर तथा।
कुम्भीनसीं तथा कन्या राकाया शृणुत प्रजा ॥ १३ ॥

उनकी देवरूपिणी (देववर्णिनी) (नामक पत्नी)-ने ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर)-को जन्म दिया। कैकसीने राक्षसोके अधिपति रावण नामक पुत्र और इसी प्रकार कुम्भकर्ण शूर्पणखा तथा विभीषणको जन्म दिया। पुष्पोत्कटाने भी महोदर प्रहस्त महापार्श्व और खर नामक विश्रवाके शुभ पुत्रो और कुम्भीनसी नामक कन्याको जन्म दिया। अब आप राकाकी संतान सुनें॥ ११—१३ ॥

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबल ।
इत्येते क्रूरकर्माण पौलस्त्या राक्षसा दश।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ता सुभीषणा ॥ १४ ॥
पुलहस्य मृगा पुत्रा सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिण ।
भूता पिशाचा सर्पाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा ॥ १५ ॥

अनपत्य क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तर।
मरीचे कश्यप पुत्र स्वयमेव प्रजापति ॥१६॥
भृगोरप्यभवच्छक्रो दैत्याचार्यो महातपा।
स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युति ॥१७॥
अत्रे पत्न्योऽभवन् बह्व्य सोदर्यास्ता पतिव्रता।
कृशाश्वस्य तु विप्रेन्द्रा घृताच्यामिति मे श्रुतम्॥१८॥

त्रिशिरा दूषण तथा महाबली विद्युज्जिह्व—य राकाके पुत्र थे। पुलस्त्यक ये सभी दस राक्षस-पुत्र क्रूर कर्म करनेवाले अत्यन्त भयकर उत्कट तपोबलवाले और रुद्रके भक्त थे। मृग, व्याल दाढोवाले (प्राणी), भूत पिशाच, सर्प शूकर तथा हाथी—य सभी पुलह (ऋषि)-के पुत्र हैं। उस ववस्वत मन्वन्तरमे (महर्षि) क्रतुको सतानहीन कहा गया हे। प्रजापति कश्यप मरीचिके पुत्र थे। भृगुके भी शुक्र नामक पुत्र हुए जो दैत्याके आचार्य, महान् तपस्वी स्वाध्याय तथा यागपरायण अत्यन्त तेजस्वी और शकरके भक्त थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अत्रिकी बहुत-सी पत्नियाँ थीं। वे पतिव्रता तथा आपसम बहन थीं। हमने सुना है कि वे घृताचीसे उत्पन्न कृशाश्वकी पुत्रियाँ थीं॥ १४—१८॥

स तासु जनयामास स्वस्त्यात्रेयान् महौजस।
वदवेदाङ्गनिरतास्तपसा हतकिल्बिषान्॥१९॥
नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ दवीमरुन्धतीम्।
ऊर्ध्वरतास्तत्र मुनि शापाद् दक्षस्य नारद ॥२०॥
हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु।
शशाप नारद दक्ष क्रोधसरक्तलोचन ॥२१॥

उन्होंने उन पत्नियोंसे महान् आजस्वी वेद-वेदाङ्ग-परायण आर तपस्याद्वारा अपने पापोका नष्ट करनेवाल कल्याणकारी आत्रेया (स्वस्त्यात्रया)-को उत्पन्न किया। नारदन देवी अरुन्धतीको वसिष्ठक लिये प्रदान किया। दक्षक शापसे नारद मुनि ऊर्ध्वरेता हा गय। नारदकी मायासे हर्यश्वोंके नष्ट हा जानपर क्राधसे लाल आँखावाल दक्षने नारदका (इस प्रकार) शाप दिया— ॥ १९—२१॥

यस्मान्मम सुता सर्वे भवतो मायया द्विज।
क्षय नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यति॥२२॥
अरुन्धत्या वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत् सुतम्।
शक्ते पराशर श्रीमान् सर्वज्ञस्तपता वर ॥२३॥
आराध्य देवदेवेशमीशान त्रिपुरान्तकम्।
लेभे त्वप्रतिम पुत्र कृष्णद्वैपायन प्रभुम्॥२४॥

'द्विज! चूँकि आपकी मायासे मेरे सभी पुत्र सभी प्रकारसे विनाशको प्राप्त हो गये अत आप भी सतानरहित हागे।' वसिष्ठने अरुन्धतीसे शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न किया। शक्तिके पराशर हुए जो श्रीसम्पन्न, सर्वज्ञ तथा तपस्वियाम श्रेष्ठ थे। उन्होंने त्रिपुरका नाश करनेवाले देवाधिदेव शकरकी आराधनाकर कृष्णद्वैपायन नामवाले अप्रतिम एव शक्तिसम्पन्न पुत्रको प्राप्त किया॥ २२—२४॥

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शकर।
अशाशेनावतीर्योर्व्यां स्व प्राप परम पदम्॥२५॥
शुकस्याप्यभवन् पुत्रा पञ्चात्यन्ततपस्विन।
भूरिश्रवा प्रभु शम्भु कृष्णो गौरश्च पञ्चम।
कन्या कीर्तिमती चैव यागमाता धृतव्रता॥२६॥

भगवान् शकर ही शुक नामसे द्वपायनके पुत्र हुए। पृथ्वीपर अपने अशाशरूपसे उत्पन्न होकर (पुन) अपन परम पदको प्राप्त हुए। शुकक महान् तपस्वी पाँच पुत्र हुए, वे भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण तथा पाँचवे गोर नामवाले थे। साथ ही कीर्तिमती नामकी एक कन्या भी हुई, जो यागमाता ओर व्रतपरायणा थी॥ २५-२६॥

एतेऽत्र वश्या कथिता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनाम्।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्व कश्यपाद्राजसततिम्॥२७॥

इन ब्रह्मवादी ब्राह्मणाक वशजाका यह वर्णन किया गया अब आगे कश्यपसे उत्पन्न क्षत्रिय सतानाका वर्णन सुना॥ २७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहिताया पूर्वविभागे अष्टादशोऽध्याय ॥ १८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लाकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागम अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश-वर्णनमें वैवस्वत मनुकी संतानोंका वर्णन, युवनाश्वको गौतमका उपदेश, महातपस्वी राजा वसुमनाकी कथा, वसुमनाके अश्वमेध-यज्ञमें ऋषियों तथा देवताओंका आगमन, ऋषियोंद्वारा तपस्याकी आज्ञा प्राप्तकर वसुमनाका हिमालयमें जाकर तप करना और अन्तमें उसे शिवपदकी प्राप्ति

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात् प्रभुम्।
तस्यादित्यस्य चैवासीद् भार्याणां तु चतुष्टयम्।
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत॥ १॥
संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्।
यमं च यमुनां चैव राज्ञी रैवतमेव च॥ २॥
प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णमात्मजम्।
शनिं च तपतीं चैव विष्टिं चैव यथाक्रमम्॥ ३॥

सूतजी बोले—अदितिने कश्यपसे शक्तिशाली 'आदित्य' नामक पुत्रको उत्पन्न किया। उस आदित्यकी संज्ञा, राज्ञी, प्रभा तथा छाया नामवाली चार पत्नियाँ थीं। उनके पुत्रोंको सुनो। त्वष्टा (विश्वकर्मा)-की पुत्री संज्ञाने सूर्यसे श्रेष्ठ मनु, यम और यमुनाको उत्पन्न किया और राज्ञीने रैवतको उत्पन्न किया। प्रभाने आदित्यसे प्रभातको उत्पन्न किया। छायाने क्रमशः सावर्ण, शनि, तपती और विष्टि नामक संतानोंको जन्म दिया॥ १—३॥

मनोस्तु प्रथमस्यासन् नव पुत्रास्तु तत्समाः।
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च॥ ४॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्टः कारुषकस्तथा।
पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसंनिभाः॥ ५॥

प्रथम मनुके नौ पुत्र थे जो इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, कारुषक तथा पृषध्र नामवाले थे। ये नवों पुत्र इन्द्रियजयी, महान् तेजसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान थे॥ ४-५॥

इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशविवृद्धये।
बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण संगता॥ ६॥
असूत सौम्यजं देवी पुरूरवसमुत्तमम्।
पितृणां तृप्तिकर्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम्॥ ७॥
सम्प्राप्य पुंस्त्वममलं सुद्युम्न इति विश्रुतः।
इलः पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत॥ ८॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च।
सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम्॥ ९॥

(मनुकी) ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ (पुत्री) इलाने[1] सोमवंशकी अभिवृद्धिके लिये बुधके भवनमें जाकर सोमपुत्र (बुध)-के साथ संगति की और हमने सुना है कि उसने देवी बुधसे श्रेष्ठ पुरूरवाको उत्पन्न किया। वह पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला था। (पुत्र प्राप्त करनेके उपरान्त इलाको) विशुद्ध पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई जो सुद्युम्न नामसे विख्यात हुआ। (पुरुषरूपमें) इलने उत्कल, गय तथा विनताश्व नामक तीन पुत्रोंको प्राप्त किया, तदनन्तर वह पुनः स्त्री हो गयी, वे सभी अतुलनीय कीर्तिमान् तथा ब्रह्मपरायण थे॥ ६—९॥

इक्ष्वाकोश्चाभवद् वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यापि दश पञ्च च तत्सुताः॥ १०॥
तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत् काकुत्स्थो हि सुयोधनः।
सुयोधनात् पृथुः श्रीमान् विश्वकश्च पृथोः सुतः॥ ११॥
विश्वकादार्द्रको धीमान् युवनाश्वस्तु तत्सुतः।
स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान्॥ १२॥

मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुसे विकुक्षि नामक वीर राजा हुए। विकुक्षि सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे। उनके पंद्रह पुत्र हुए। उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़े थे। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनसे श्रीमान् पृथु उत्पन्न हुए और विश्वक पृथुके पुत्र थे। विश्वकसे बुद्धिमान् आर्द्रक हुए और उनके पुत्र युवनाश्व हुए। प्रतापी वे युवनाश्व गोकर्ण तीर्थमें गये॥ १०—१२॥

दृष्ट्वा तु गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपतिः।
अपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १३॥

[1] १-राजा मनुमहाराजकी कथामें 'इला'-की उत्पत्तिका वर्णन है।

वहाँ तप कर रहे अग्नि-सदृश विप्र गौतमका दर्शनकर पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे युवनाश्वने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे (गौतमसे) पूछा—(भगवन्!) किस कर्मके द्वारा धर्मात्मा पुत्रको प्राप्त किया जा सकता है—॥ १३ ॥

गौतम उवाच

आराध्य पूर्वपुरुषं नारायणमनामयम्।
अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १४॥
यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति सत्सुतम्॥ १५॥
न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः।
तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्॥ १६॥

गौतमने कहा—आदि और अन्तसे रहित, अनामय, पूर्वपुरुष नारायणदेवकी आराधनासे धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होती है। जिनके पुत्र स्वयं ब्रह्मा हैं और (जिनके) पौत्र नीललोहित शंकर हैं, उन आदिकृष्ण ईशानकी आराधनासे (मनुष्य) सत्पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् ब्रह्मा भी जिनके प्रभावको तत्त्वतः नहीं जानते हैं, उन हृषीकेशकी आराधनासे धार्मिक पुत्रको प्राप्त करना चाहिये॥ १४—१६॥

स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः।
आराधयन्महायोगं वासुदेवं सनातनम्॥ १७॥
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः।
निर्मिता येन श्रावस्तिर्गौडदेशे महापुरी॥ १८॥

गौतमके वचनको सुनकर उस पृथ्वीपति युवनाश्वने महायोगी सनातन वासुदेवकी आराधना प्रारम्भ की। (आराधनाके फलस्वरूप) उसका वीर पुत्र हुआ जो 'श्रावस्ति' इस नामसे विख्यात हुआ। उसने गौडदेशमें श्रावस्ति नामक महापुरीका निर्माण किया॥ १७-१८॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत् तस्मात् कुवलयाश्वकः।
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं हत्वा महासुरम्॥ १९॥
धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः।
दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च॥ २०॥
दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात् सहताश्वकः॥ २१॥
कृशाश्वश्च रणाश्वश्च सहताश्वस्य वै सुतौ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि॥ २२॥

उससे (श्रावस्तिसे) बृहदश्व उत्पन्न हुए और उससे कुवलयाश्वक उत्पन्न हुए। धुन्धु नामक महान् असुरको मारनेके कारण वे धुन्धुमारके नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रेष्ठ द्विजो! धुन्धुमारके तीन पुत्र कहे गये हैं—दृढाश्व, दण्डाश्व तथा कपिलाश्व। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भसे सहताश्वक उत्पन्न हुआ। सहताश्वकके कृशाश्व तथा रणाश्व—ये दो पुत्र हुए। रणाश्वका युद्धमें इन्द्रके तुल्य बलशाली युवनाश्व नामक पुत्र हुआ॥ १९—२२॥

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम्।
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ २३॥
मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्।
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि॥ २४॥
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः।
हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत्॥ २५॥

युवनाश्वने ऋषियोंकी कृपासे वारुणी नामक यागका (वारुणी नामकी इष्टिका) अनुष्ठान करके अप्रतिम महान् बुद्धिमान्, शस्त्रधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा उत्तम विष्णुभक्त मान्धाता नामक पुत्रका प्राप्त किया। मान्धाताके पुरुकुत्स, वीर्यवान् अम्बरीष तथा पुण्यात्मा मुचुकुन्द नामक पुत्र हुए। युद्धमें वे सभी इन्द्रके समान थे। अम्बरीषका पुत्र दूसरा युवनाश्व[1] कहलाता है। युवनाश्वका पुत्र हरित और उसका पुत्र हारित हुआ॥ २३—२५॥

पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः।
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतोऽभवत्॥ २६॥
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत् परः।
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत्॥ २७॥
सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः।
प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम्॥ २८॥
स तु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम्।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिंदमम्॥ २९॥
अयजच्चाश्वमेधेन शत्रून् जित्वा द्विजोत्तमाः।
स्वाध्यायवान् दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः॥ ३०॥

पुरुकुत्सका नर्मदा (नामक पत्नी)-से महायशस्वी त्रसदस्यु

१-इस वंशवर्णनके अनुसार यह तीसरा युवनाश्व है। पहला आर्द्रकका पुत्र, दूसरा रणाश्वका पुत्र और तीसरा यह अम्बरीषका पुत्र।

नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र सम्भूति हुआ। उसका (सम्भूतिका) विष्णुवृद्ध तथा दूसरा अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्यका बृहदश्व और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। यही हर्यश्व अत्यन्त धार्मिक राजारूपमे विख्यात हुआ। इसने कर्दम प्रजापतिकी कृपासे धार्मिक सूर्यभक्त (वसुमना नामक) पुत्रको प्राप्त किया। इस वसुमना नामक राजाने सूर्यकी आराधनासे शत्रुओंका दमन करनेवाले अप्रतिम कल्याणकारी त्रिधन्वा नामक पुत्रको प्राप्त किया। श्रेष्ठ द्विजो! स्वाध्यायनिरत, दानशील सहिष्णु तथा धर्मपरायण (उस) राजाने शत्रुओंको जीतकर अश्वमेध नामक यज्ञ किया॥ २६—३०॥

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः।
वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः॥ ३१॥
तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः।
समाप्य विधिवद् यज्ञं वसिष्ठादीन् द्विजोत्तमान्॥ ३२॥

उस महात्माके यज्ञस्थलमे वसिष्ठ तथा कश्यप आदि प्रमुख ऋषिगण तथा इन्द्र आदि देवता आये। विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण करके उन वसिष्ठ आदि द्विजोत्तमोको प्रणामकर महाराज (वसुमना)-ने विनयपूर्वक उनसे पूछा—॥ ३१-३२॥

वसुमना उवाच

किंस्विच्छ्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः।
यज्ञस्तपो वा सन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः॥ ३३॥

वसुमनाने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। मुझे यह बतलाइये कि इस ससारमे यज्ञ, तप अथवा सन्यासमे कौन अधिक श्रेयस्कर है?॥ ३३॥

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान् विधिवत् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद् वनमथात्मवान्॥ ३४॥

वसिष्ठ बोले—आत्मवान्को चाहिये कि वह वेदोंका विधिवत् अध्ययन करके धर्मपूर्वक पुत्रोंको उत्पन्न करे और यज्ञोद्वारा यज्ञेश्वरका यजनकर वनमे जाय॥ ३४॥

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनं परमेष्ठिनम्।
प्रव्रजेद् विधिवद् यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान्॥ ३५॥

पुलस्त्यने कहा—सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवोंकी यज्ञद्वारा अर्चना करके और तपस्याद्वारा योगी देव परमेश्वरकी आराधना करके विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण करना चाहिये॥ ३५॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम्।
तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात्॥ ३६॥

पुलह बोले—जिन्हे अद्वितीय पुराणपुरुष तथा परमेश्वर कहा गया है, उन सहस्रकिरण (सूर्य)-की तपस्याद्वारा आराधना करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये॥ ३६॥

जमदग्निरुवाच

अजस्य नाभावध्येकमीश्वरेण समर्पितम्।
बीजं भगवता येन स देवस्तपसेज्यते॥ ३७॥

जमदग्नि कहा—जिन भगवान् ईश्वरने अजन्मा (ब्रह्म)-की नाभिमे अद्वितीय बीज (जगत्कारण ब्रह्मा)-को स्थापित किया, उन देवकी तपस्याद्वारा आराधना की जानी चाहिये॥ ३७॥

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः॥ ३८॥

विश्वामित्रने कहा—जो अग्निस्वरूप, सर्वात्मक अनन्त स्वयम्भू तथा सर्वतोमुख हैं, वे रुद्र उग्र तपस्याद्वारा पूजनीय हैं न कि अन्य किसी दूसरे यज्ञ आदि साधनाद्वारा॥ ३८॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो जातवेदाः सनातनः।
स सर्वदैवततनुः पूज्यते तपसेश्वरः॥ ३९॥

भरद्वाज बोले—यज्ञोद्वारा जिन सनातन अग्निदेवकी पूजा की जाती है, वे सभी देवताओके विग्रहरूप परमेश्वर ही तपके द्वारा पूजित होते हैं॥ ३९॥

अत्रिरुवाच

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः।
तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः॥ ४०॥

अत्रि बोले—वे महेश्वर अत्यन्त महान् तपके द्वारा पूजे जाते हैं, जिनसे यह सब उत्पन्न हुआ है और प्रजापति जिनकी सतान हैं॥ ४०॥

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिमयं जगत्।
स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः॥ ४१॥

गौतमने कहा—जिससे प्रधान अर्थात् पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुए हैं और जिनकी शक्तिसे यह जगत् (उत्पन्न) हुआ है, वे सनातन देवाधिदेव तपस्याद्वारा पूजनीय हैं॥ ४१॥

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देव साक्षी, स तु प्रजापति।
प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा पर॥ ४२॥

कश्यपने कहा—तपद्वारा आराधना करनेसे वे हजारों नेत्रवाले, साक्षी, महायोगी, प्रजापति प्रभु प्रसन्न होते हैं॥ ४२॥

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि।
नान्तरेण तप कश्चिद्धर्म शास्त्रेषु दृश्यते॥ ४३॥

क्रतु बोले—अध्ययनरूपी यज्ञ पूर्ण कर पुत्र प्राप्त कर लेनेवाले पुरुषके लिये तपस्याके अतिरिक्त कोई और दूसरा धर्म शास्त्रोंमें दिखायी नहीं देता॥ ४३॥

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधी।
विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत्॥ ४४॥
आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम्।
प्राण बृहन्त पुरुषमादित्यान्तरसस्थितम्॥ ४५॥
त्व तु धर्मरतो नित्य पालयैतदतन्द्रित।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेष क्षितिमण्डलम्॥ ४६॥

ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मनवाले उस वसुमना राजर्षिने उन द्विजश्रेष्ठोंको प्रणाम किया और पूजनकर उन्हें बिदा किया। तदनन्तर (उसने अपने पुत्र) त्रिधन्वासे (इस प्रकार) कहा—तपद्वारा मैं सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित प्राणरूप अद्वितीय अक्षर नामक ब्रह्म पुरुषकी आराधना करूँगा। तुम धर्ममें निरत होकर चातुर्वर्ण्यसे समन्वित इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका आलस्यरहित होकर पालन करो॥ ४४—४६॥

एवमुक्त्वा स तद्राज्य निधायात्मभवे नृप।
जगामारण्यमनघस्तपश्चर्तुमनुत्तमम्॥ ४७॥
हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवने शुभे।
कन्दमूलफलाहारो मुन्यन्नैरयजत् सुरान्॥ ४८॥
सवत्सरशत साग्र तपोनिर्धूतकल्मष।
जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्॥ ४९॥
तस्यैव जपतो देव स्वयम्भू परमेश्वर।
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा त देशमगमत् स्वयम्॥ ५०॥
दृष्ट्वा देव समायान्त ब्रह्माण विश्वतोमुखम्।
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्तयन्॥ ५१॥

ऐसा कहकर वह अनघ राजा वसुमना अपने पुत्र (त्रिधन्वा)-को राज्य सौंपकर सर्वोत्तम तपस्या करनेके लिये वनमें चला गया। ये वसुमना राजा हिमालयके शिखरपर स्थित रमणीय शुभ देवदारु वनमें रहते हुए कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए मुनियोंके अन्न (नीवार आदि)-से देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ (आराधना) करने लगे। तपस्याद्वारा नष्ट हुए पापोंवाले उन्होंने सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक वेदमाता देवी सावित्रीका मानसिक जप किया। उनके इस प्रकार जप करते रहनेपर ही स्वयम्भू देव परमेश्वर हिरण्यगर्भ विश्वात्मा स्वयं उस स्थानपर गये। विश्वतोमुख ब्रह्मदेवको आते हुए देखकर उन्होंने अपना नाम बोलते हुए उनके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ४७—५१॥

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने।
हिरण्यमूर्तये तुभ्य सहस्राक्षाय वेधसे॥ ५२॥
नमो धात्रे विधात्रे च नमो वेदात्ममूर्तये।
साख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये॥ ५३॥
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
पुरुषाय पुराणाय योगिना गुरवे नम॥ ५४॥

देवाधिदेव परमात्मा ब्रह्माको नमस्कार है। सहस्र नेत्रोंवाले हिरण्यमूर्ति आप वेधाको नमस्कार है। धाता और विधाताको नमस्कार है, वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। सांख्य तथा योगद्वारा ज्ञात होनेवाले ज्ञान-मूर्तिको नमस्कार है। सभी अर्थोंके ज्ञाता सृष्टिकर्ता त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। योगियोंके गुरु पुराणपुरुषको नमस्कार है॥ ५२—५४॥

तत प्रसन्नो भगवान् विरिञ्चो विश्वभावन।
वर वरय भद्र त वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ ५५॥

तब प्रसन्न होकर विश्वभावन भगवान् ब्रह्माने कहा—'वर माँगो, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें वर दूँगा'॥ ५५॥

राजोवाच

जपेय देवदेवेश गायत्री वेदमातरम्।
भूयो वर्षशत साग्र तावदायुर्भवेन्मम॥

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्।
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥५७॥

राजाने कहा—देवदेवेश! मैं पुनः सौ वर्षसे अधिक समयतक इस वेदमाता गायत्रीका जप कर सकूँ, इसके लिये उतनी ही मेरी आयु हो। राजाको देखकर विश्वात्माने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा और प्रसन्न होकर हाथोंसे (राजाका) स्पर्शकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ५६-५७॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमान् जजापातिप्रसन्नधीः।
शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः॥५८॥
तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः।
प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः॥५९॥
तं दृष्ट्वा वेदविदुषं मण्डलस्थं सनातनम्।
स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयं गतः॥६०॥
तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः।
क्षणादपश्यत् पुरुषं तमेव परमेश्वरम्॥६१॥
चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम्।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्॥६२॥
भासयन्तं जगत् कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः।
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥६३॥

वर-प्राप्त वह श्रीमान् (राजा) भी तीनों समयोंमें स्नान करते हुए तथा कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए अत्यन्त प्रसन्न-मनसे शान्तिपूर्वक जप करने लगे। उनके (जप करते हुए) सौ वर्ष पूरा होनेपर सूर्यमण्डलके मध्यसे प्रज्वलित किरणोंवाले महायोगी भगवान् प्रकट हुए। मण्डलमें स्थित उन सनातन स्वयम्भू, अनादि, अनन्त तथा वेदज्ञ ब्रह्माको देखकर वे राजा आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने वैदिक मन्त्रों तथा विशेषरूपसे गायत्री (मन्त्र)-द्वारा उनकी स्तुति की। क्षणभरमें ही उन्होंने उन परमेश्वर पुरुषको चार मुखवाले, जटा तथा मुकुटधारी आठ हाथ तथा तीन नेत्रवाले, चन्द्रकलाओंसे चिह्नित अर्धनारीश्वर शरीरवाले, अपनी किरणोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हुए, रक्तवस्त्र धारण किये, रक्तवर्णवाले तथा रक्तमाला और रक्त अनुलेपन धारण किये नीलकण्ठ हरके रूपमें देखा॥ ५८—६३॥

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि।
ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि॥६४॥
नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने।
त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे॥६५॥

उन्हें देखकर उन्हींके भावसे भावित होकर परम सद्भावसे राजाने सिरसे रुद्रको प्रणाम किया और सावित्री-मन्त्र तथा इस स्तोत्रसे स्तुति की। वेदत्रयीरूप रुद्र, कालरूप, कारणस्वरूप भासमान परमेष्ठी नीलकण्ठको नमस्कार है॥ ६४-६५॥

तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः।
इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ॥६६॥
सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु।
नमस्कुरुष्व नृपत एभिर्मां सततं शुचिः॥६७॥
अध्यायं शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम्।
जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप॥६८॥
ब्रह्मचारी मिताहारो भस्मनिष्ठः समाहितः।
जपेदामरणाद् रुद्रं स याति परमं पदम्॥६९॥
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया।
पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत्॥७०॥

तब प्रसन्न मनवाले महादेवने राजासे कहा—हे निष्पाप! मेरे इन गोपनीय नामोंको सुनो। ये सभी वेदोंमें वर्णित हैं तथा संसार (सागर)-का नाश करनेवाले हैं। राजन्! पवित्र होकर इन नामोंसे मुझे निरन्तर नमस्कार करो। राजन्! यजुर्वेदसे साररूपमें उद्धृत शतरुद्रीका अनन्यमन होकर मुझमें मन लगाकर जप करो। जो ब्रह्मचर्य धारणकर संयमित आहार ग्रहणकर भस्मका लेपकर एकाग्रतापूर्वक मरणपर्यन्त रुद्रका जप करता है, वह परम पद प्राप्त करता है। ऐसा कहकर भक्तपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रने राजाकी आयु पुनः सौ वर्षोंतक कर दी॥ ६६—७०॥

दत्त्वास्मै तत् परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः।
क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत्॥७१॥
राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः।
भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः॥७२॥
जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः।
योगप्रवृत्तिरभवत् कालात् कालात्मकं परम्॥७३॥
विवेश तद् वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः।
भानोः स मण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥७४॥

राजा वसुमनाको परम ज्ञान और वैराग्य प्रदानकर परमेश्वर

रुद्र क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये। यह एक आश्चर्य ही हुआ। राजाने भी तीनों कालोंमें स्नानकर, भस्म धारणकर, शान्त और एकाग्रतापूर्वक अनन्य-मनसे तपस्याद्वारा रुद्रका जप किया। जप करते हुए उन राजाके पुन सौ वर्ष पूरे हो जानेपर उसमे योगकी प्रवृत्ति हुई और यथासमय उन्होंने ब्रह्म कालात्मक परमेष्ठीके उस यदसार नामक स्थानको प्राप्त किया जो सूर्यका शुभ मण्डल है। तदनन्तर व महेश्वरको प्राप्त हुए॥ ७१—७४॥

य पठेच्छृणुयाद् वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ७५॥

राजाके इस उत्तम चरितको जो पढता है अथवा सुनता है, वह सभी पापोसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्याय ॥ १९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे उन्नीसवॉं अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवॉं अध्याय

इक्ष्वाकु-वश-वर्णनके प्रसगमे श्रीराम-कथाका प्रतिपादन, श्रीरामद्वारा सेतु-बन्धन और रामेश्वर-लिंगकी स्थापना, शकर-पार्वतीका प्रकट होकर रामेश्वर-लिंगके माहात्म्यको बतलाना, श्रीरामको लव-कुश-पुत्रोंकी प्राप्ति तथा इक्ष्वाकु-वशके अन्तिम राजाओंका वश-वर्णन

सूत उवाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम्।
तस्य पुत्रोऽभवद् विद्वांस्त्रय्यारुण इति स्मृत ॥ १॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबल ।
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत्॥ २॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद् रोहितो नाम वीर्यवान्।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत्॥ ३॥
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतु ।
विजयस्याभवत् पुत्र कारुको नाम वीर्यवान्॥ ४॥
कारुकस्य वृक पुत्रस्तस्माद् बाहुरजायत।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिक ॥ ५॥
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा।
ताभ्यामाराधित प्रादादौर्वाग्निर्वरमुत्तमम्॥ ६॥

सूतजी बोले—राजपुत्र त्रिधन्वाने पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। उसका एक विद्वान् पुत्र हुआ जो त्रय्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका (त्रय्यारुणको) सत्यव्रत नामका महान् बलवान् पुत्र हुआ। सत्यधना नामक उसकी पत्नीने हरिश्चन्द्रको जन्म दिया। हरिश्चन्द्रका रोहित नामवाला पराक्रमी पुत्र हुआ। रोहितका हरित और उसका पुत्र धुन्धु हुआ। धुन्धुके विजय और सुदेव—ये दो पुत्र हुए। विजयका कारुक नामका वीर पुत्र हुआ। कारुकका पुत्र वृक और उससे बाहु (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ। उस बाहुका पुत्र सगर हुआ जो परम धार्मिक था। सगरकी दो पत्नियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। औवाग्निने उन दोनोसे पूजित होकर उन्हे श्रेष्ठ वर प्रदान किया॥ १—६॥

एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्।
प्रभा षष्टिसहस्रं तु पुत्राणां जगृहे शुभा॥ ७॥
असमञ्जस्य तनयो ह्यंशुमान् नाम पार्थिव ।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथ ॥ ८॥
येन भागीरथी गङ्गा तप कृत्वावतारिता।
प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य धीमत ॥ ९॥

(वरके फलस्वरूप) भानुमतीने असमञ्जस नामक पुत्रको ग्रहण किया और कल्याणी प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको प्राप्त किया। असमञ्जसके पुत्र अंशुमान् नामक राजा थे, उनके पुत्र दिलीप तथा दिलीपसे भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके देवाधिदेव धीमान् महादेवकी कृपासे, भागीरथी गङ्गाको (पृथ्वीपर) अवतारित किया॥ ७—९॥

भगीरथस्य तपसा देव प्रीतमना हर ।
बभार शिरसा गङ्गा सोमान्ते सोमभूषण ॥ १०॥

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह।
नाभागस्तस्य दायाद सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ ११॥
अयुतायु सुतस्तस्य ऋतुपर्णस्तु तत्सुत ।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिक ।
सौदासस्तस्य तनय ख्यात कल्माषपादक ॥ १२॥

भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न हुए मनवाले चन्द्रभूषण देव हरने अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके अग्रभागमे गङ्गाको धारण किया। भगीरथका भी श्रुत नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र हुआ नाभाग। उससे सिन्धुद्वीप हुआ। उस सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु और उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ। ऋतुपर्णका सुदास नामका धार्मिक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सौदास हुआ जो कल्माषपाद नामसे विख्यात हुआ॥ १०—१२॥

वसिष्ठस्तु महातेजा क्षेत्रे कल्माषपादके।
अश्मक जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्॥ १३॥
अश्मकस्योत्कलाया तु नकुलो नाम पार्थिव ।
स हि रामभयाद् राजा वन प्राप सुदु खित ॥ १४॥
बिभ्रत् स नारीकवच तस्माच्छतरथोऽभवत्।
तस्माद् बिलिबिलि श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुत ॥ १५॥
तस्माद् विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुत ।
दीर्घबाहु सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥ १६॥

कल्माषपादके क्षेत्रमे महातेजस्वी वसिष्ठने इक्ष्वाकु-वशके पताका-रूप अश्मक नामक पुत्रको उत्पन्न कराया। अश्मककी उत्कला नामक पत्नीसे नकुल नामक राजा उत्पन्न हुआ। वह राजा परशुरामके भयसे अत्यन्त दु खित होकर वन चला गया। उसने 'नारीकवच'[१] धारण कर रखा था। उस (नकुल)-से शतरथ हुआ और उससे श्रीमान् बिलिबिलि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र वृद्धशर्मा था। उस वृद्धशर्मासे विश्वसह और उसका पुत्र खट्वाङ्ग नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दीर्घबाहु और उससे रघु उत्पन्न हुआ॥ १३—१६॥

रघोरज समुत्पन्नो राजा दशरथस्तत ।
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुत ॥ १७॥
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबल ।
सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विता ।
जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरशेन विश्वकृत्॥ १८॥

रघुका अज उत्पन्न हुआ और उससे राजा दशरथ हुए। दशरथके पुत्र राम वीर, धर्मज्ञ और लोकमे प्रसिद्ध हुए। दशरथके ही पुत्र भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी थे। ये सभी महान् बलशाली युद्धमे इन्द्रके समान और विष्णुकी शक्तिसे सम्पन्न थे। रावणका विनाश करनेके लिये विश्वकर्ता विष्णु ही इन लोगोंके रूपमे अशरूपसे प्रकट हुए थे॥ १७—१८॥

रामस्य सुभगा भार्या जनकस्यात्मजा शुभा।
सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता॥ १९॥
तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा।
प्रायच्छज्जानकीं सीता राममेवाश्रिता पतिम्॥ २०॥

रामकी सौभाग्यशालिनी कल्याणी पत्नी जनककी पुत्री सीता थीं। वे शील एव उदारता आदि गुणोसे सम्पन्न और तीनो लोकोमे विख्यात थीं। जनकके द्वारा तपस्यासे सतुष्ट की गयी गिरिराजपुत्री पार्वतीने उन्हे जानकी सीताको प्रदान किया। सीताने रामको ही पति बनाया॥ १९-२०॥

प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहित ।
प्रददौ शत्रुनाशार्थ जनकायाद्भुत धनु ॥ २१॥
स राजा जनको विद्वान् दातुकाम सुतामिमाम्।
अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन् द्विजपुगवा ॥ २२॥
इद धनु समादातु य शक्नोति जगत्त्रये।
देवो वा दानवो वापि स सीता लब्धुमर्हति॥ २३॥
विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृह प्रभु ।
भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि॥ २४॥
उद्वाह च ता कन्या पार्वतीमिव शकर ।
राम परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुख ॥ २५॥

त्रिशूल धारण करनेवाले, नीललोहित भगवान् ईश (शकर)-ने प्रसन्न होकर शत्रुओके विनाशके लिये जनकको अद्भुत धनुष प्रदान किया था। श्रेष्ठ द्विजो! उस विद्वान् शत्रुनाशक राजा जनकने इस कन्याका दान करनेकी इच्छासे ससारमे यह घोषणा करवायी कि देवता या दानव जो कोई भी इस धनुषको उठानेमे समर्थ होगा वह सीताको प्राप्त कर

१-परशुरामद्वारा पृथ्वीके क्षत्रियशून्य किये जानेके समय स्त्रियोके मध्य रहकर नकुलने अपनी रक्षा की थी इसलिये उसे नारी-कवच कहा जाता है।

सकता है। ऐसा जानकर बलवान् प्रभु रामने जनकके घर जाकर उस धनुषको उठाकर खेल-खेलमे ही तोड डाला। तदनन्तर परम धर्मात्मा रामने उस कन्याका उसी प्रकार पाणिग्रहण किया, जैसे शकरने पार्वतीका और कार्तिकेयने सेना (देवसेना)-का पाणिग्रहण किया॥ २१—२५॥

ततो वहुतिथे काले राजा दशरथ स्वयम्।
राम ज्येष्ठ सुत वीर राजान कर्तुमारभत्॥ २६॥
तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुभाषिणी।
निवारयामास पति प्राह सम्भ्रान्तमानसा॥ २७॥
मत्सुत भरत वीर राजान कर्तुमर्हसि।
पूर्वमेव वरो यस्माद् दत्तो मे भवता यत॥ २८॥

तदनन्तर बहुत दिन बीत जानेपर राजा दशरथने स्वय अपने बडे पुत्र वीर रामको युवराज बनानेका कार्य आरम्भ किया। तब उनकी सौभाग्यशालिनी मधुरभाषिणी कैकेयी नामक पत्नीने भ्रान्तमन होकर पतिको (रामके राज्याभिषेकसे) रोका और कहा कि मेर वीर पुत्र भरतको राजा बनाय, क्याकि आपने पहले मुझे वर दे रखा है॥ २६—२८॥

स तस्या वचन श्रुत्वा राजा दु खितमानस।
बाढमित्यब्रवीद् वाक्य तथा रामोऽपि धर्मवित्॥ २९॥
प्रणम्याथ पितु पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युत।
ययौ वन सपत्नीक कृत्वा समयमात्मवान्॥ ३०॥
सवत्सराणा चत्वारि दश चैव महाबल।
उवास तत्र मतिमान् लक्ष्मणेन सह प्रभु॥ ३१॥
कदाचिद् वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षस।
परिव्राजकवेषेण सीता हृत्वा ययौ पुरीम्॥ ३२॥

उसका वचन सुनकर उस राजाने अत्यन्त दु खित-मनसे कहा—'अच्छा ऐसा ही हो'। तब धर्मको जाननेवाले आत्मवान् अच्युत राम भी पिताके चरणाम प्रणामकर (वनवासकी) प्रतिज्ञा कर लक्ष्मणके साथ सपत्नीक वनको चले गये। बुद्धिमान् तथा महाबलवान् प्रभु (श्रीराम) भी चौदह वर्षतक लक्ष्मणके साथ वहाँ (वनमे) रहे। वनमे निवास करते समय कभी रावण नामका राक्षस सन्यासीका वेष धारणकर सीताका हरण कर लिया और उन्हे अपनी पुरी (लका)-मे ले गया॥ २९—३२॥

अदृष्ट्वा लक्ष्मणो राम सीतामाकुलितेन्द्रियौ।
दु खशोकाभिसतप्तौ बभूवतुररिंदमौ॥ ३३॥

शत्रुनाशक राम और लक्ष्मण सीताको न देखकर दु ख एव शोकसे अत्यन्त सतप्त हो गये और उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं॥ ३३॥

तत कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमा।
वानराणामभूत् सख्य रामस्याक्लिष्टकर्मण॥ ३४॥
सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनुमान् नाम वानर।
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रिय सदा॥ ३५॥
स कृत्वा परम धैर्य रामाय कृतनिश्चय।
आनयिष्यामि ता सीतामित्युक्त्वा विचचार ह॥ ३६॥
महीं सागरपर्यन्ता सीतादर्शनतत्पर।
जगाम रावणपुरीं लङ्का सागरसस्थिताम्॥ ३७॥
तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्।
अपश्यदमला सीता राक्षसीभि समावृताम्॥ ३८॥
अश्रुपूर्णेक्षणा हृद्या सस्मरन्तीमनिन्दिताम्।
राममिन्दीवरश्याम लक्ष्मण चात्मसस्थितम्॥ ३९॥
निवेदयित्वा चात्मान सीतायै रहसि स्वयम्।
असशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम्॥ ४०॥

द्विजोत्तमो! यथासमय अक्लिष्टकर्मा रामकी कपि सुग्रीव तथा वानरासे मित्रता हो गयी। वायुपुत्र महातेजस्वी वीर हनुमान् नामक वानर सुग्रीवके अनुगामी और सदा रामके प्रिय थे। वे परम धैर्य धारणकर 'उन सीताको लाऊँगा' इस प्रकार रामसे प्रतिज्ञापूर्वक कहकर सीताको देखनेके लिये तत्पर हो गये तथा सागरपर्यन्त सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगे। (इस प्रकार सीताको ढूँढते-ढूँढते) सागरमे बसी हुई रावणकी पुरी लकामे गये। वहाँ उन्होने राक्षसियासे घिरी हुई पवित्र अश्रुपूर्ण आँखोवाली अनिन्दित, रमणीय तथा पवित्र सीताको निर्जन देशम एक वृक्षके नीचे स्थित देखा। वहाँ भगवती सीता नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले राम तथा आत्मसयमी लक्ष्मणका स्मरण कर रही थीं। एकान्तमे सीताको स्वय अपना परिचय देकर उनका सदेह मिटानेके लिय उन्हाने (श्रीहनुमान्ने) रामकी अगूठी उन्हे प्रदान की॥ ३४—४०॥

दृष्ट्वाङ्गुलीयक सीता पत्यु परमशोभनम्।
मेने समागत राम प्रीतिविस्फारितेक्षणा॥ ४१॥
समाश्वास्य तदा सीता दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्।
नयिष्ये त्वा महाबाहुरुक्त्वा राम ययौ पुन॥ ४२॥

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान्।
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजित ॥४३॥

पतिकी परम सुन्दर अँगूठीको देखकर प्रीतिके कारण विस्फारित नेत्रोंवाली सीताने रामको (ही) आया हुआ माना। तब सीताको देखकर उन्होने आश्वासन दिया और कहा—'मैं आपको रामके पास ले चलूँगा।' ऐसा कहकर महाबाहु (हनुमान्) पुन रामके पास चले आये। आत्मवान् (हनुमान्) रामसे सीता-दर्शनकी बात बताकर सामने खडे हो गये। राम-लक्ष्मणने उनको साधुवादसे सत्कृत किया॥ ४१—४३॥

तत स रामो बलवान् सार्धं हनुमता स्वयम्।
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धि-चक्रे हि रक्षसाम्॥४४॥
कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधे ।
सेतु परमधर्मात्मा रावण हतवान् प्रभु ॥४५॥
सपत्नीक च ससुत सभ्रातृकमरिंदम ।
आनयामास ता सीता वायुपुत्रसहायवान्॥४६॥

तदनन्तर बलवान् रामने हनुमान् तथा लक्ष्मणक साथ राक्षसोसे स्वय युद्ध करनेका निश्चय किया। और सैकडा वानरोद्वारा महासमुद्रमे, लका जानके लिये मार्गक रूपम पुलका निर्माण किया गया तथा उसी पुलके सहारे महासमुद्रको पारकर शत्रुहन्ता परम धार्मात्मा प्रभु (श्रीराम)-न वायुपुत्र हनुमान्की सहायताम पत्नियाँ पुत्रा तथा भाइयोसहित रावणका मार डाला और भगवती सीताका वापस ले आये॥ ४४—४६॥

सेतुमध्ये महादेवमीशान कृत्तिवाससम्।
स्थापयामास लिङ्गस्थ पूजयामास राघव ॥४७॥

राघवने सतुके मध्यम चर्माम्बर धारण करनेवाले महादव ईशानकी लिङ्गरूपम प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की॥ ४७॥

तस्य देवो महादेव पार्वत्या सह शकर ।
प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम्॥४८॥
यत् त्वया स्थापित लिङ्ग द्रक्ष्यन्तीह द्विजातय ।
महापातकसयुक्तास्तेषा पाप विनश्यतु॥४९॥
अन्यानि चैव पापानि स्नानस्यात्र महोदधौ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाश यान्ति न सशय ॥५०॥
यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी।
यावत् सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहित ॥५१॥
स्नान दान जप श्राद्ध भविष्यत्यक्षय कृतम्।
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपाप प्रणश्यति॥५२॥

(इस रामेश्वर-प्रतिष्ठाके समय) पार्वतीसहित महादेव भगवान् शकरदेवने प्रत्यक्ष रूपमे श्रेष्ठ वर प्रदान करते हुए श्रीरामसे कहा—'जो द्विजाति तुम्हारे द्वारा स्थापित इस (रामेश्वर) लिगका दर्शन करेंगे उनके बडे-से-बडे पाप नष्ट हो जायँगे। महासमुद्रमे स्नान करने वालेके अन्य जो भी पाप (अर्थात् उपपातक आदि) हैं वे इस लिगके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो जायँगे इसमे सदेह नहीं है। जबतक पर्वत स्थित रहेंगे जबतक यह पृथ्वी रहेगी और जबतक यह सेतु रहेगा, तबतक मै गुप्तरूपसे यहाँ प्रतिष्ठित रहूँगा। यहाँ किया गया स्नान दान, जप तथा श्राद्ध अक्षय होगा। इस (रामेश्वर) लिंगके स्मरण करने मात्रसे ही दिनभरका पाप नष्ट हो जायगा॥ ४८-५२॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भु परिष्वज्य तु राघवम्।
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत॥५३॥
रामोऽपि पालयामास राज्य धर्मपरायण ।
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबल ॥५४॥
विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्।
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शकरम्॥५५॥

ऐसा कहकर भगवान् शम्भुने रघुवशी रामका आलिगन किया और नन्दी तथा अपने गणोके साथ वे रुद्र (शम्भु) वहीं अन्तर्धान हो गये। भरतके द्वारा अभिषिक्त होकर महाबली महातेजस्वी तथा धर्मपरायण रामने भी राज्यका पालन किया। विशेष रूपसे उन्होंने सभी ब्राह्मणोकी पूजा की ओर अश्वमेध यज्ञके द्वारा यज्ञहन्ता[1] ईश्वर शकरकी अर्चना की॥ ५३—५५॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुत ।
लवश्च सुमहाभाग सर्वतत्त्वार्थवित् सुधी ॥५६॥
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत्।
नलस्तु निषधस्याभून्नभस्तस्मादजायत॥५७॥
नभस पुण्डरीकाख्य क्षमधन्वा च तत्सुत ।
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीक प्रतापवान्॥५८॥
अहीनगुस्तस्य सुता सहस्वास्ततसुतोऽभवत्।
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्तु तत्सुत ॥५९॥

१-भगवान् शकरने दक्षके यज्ञका विध्वस कराया था इसलिये उनको यज्ञहन्ता कहा जाता है।

तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत् ।
श्रुतायुरभवत् तस्मादेते इक्ष्वाकुवशजा ।
सर्वे प्राधान्यत प्रोक्ता समासेन द्विजोत्तमा ॥६०॥

रामके 'कुश' नामसे विख्यात तथा सुन्दर महान् भाग्यशाली, सभी तत्त्वार्थोको जाननेवाले बुद्धिमान् 'लव' नामसे विख्यात दो पुत्र हुए। कुशसे अतिथि उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र निपध हुआ। निपधका पुत्र नल और उसका पुत्र नभस हुआ। नभससे पुण्डरीक नामवाला पुत्र हुआ और क्षेमधन्वा उसका पुत्र था। उस क्षेमधन्वाका देवानीक नामक वीर एव प्रतापी पुत्र हुआ। उस (देवानीक)-का पुत्र अहीनगु और उसका पुत्र सहस्वान् हुआ। उससे चन्द्रावलोक तथा उसका पुत्र तारापीड हुआ। तारापीडसे चन्द्रगिरि तथा चन्द्रगिरिका भानुवित्त हुआ। उस (भानुवित्त)-से श्रुतायु नामक पुत्र हुआ। ये सभी इक्ष्वाकुके वशज हैं। द्विजोत्तमा! सक्षेपम इनमे प्रधान-प्रधान (राजाओ)-को बताया गया है॥ ५६—६०॥

य इम शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वशमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो स्वर्गलोके महीयते॥६१॥

जो इस श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवशके वर्णनको सुनेगा वह सभी पापासे निर्मुक्त होकर स्वर्गलाकम प्रतिष्ठित होगा॥ ६१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायां पूर्वविभागे विंशोऽध्याय ॥ २०॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

चन्द्रवशके राजाओका वृत्तान्त, यदुवश-वर्णनमे कार्तवीर्यार्जुनके पाँच पुत्रोका आख्यान, परम विष्णुभक्त राजा जयध्वजकी कथा, विदेह दानवका पराक्रम तथा जयध्वज-द्वारा विष्णुके अनुग्रहसे उसका वध, विश्वामित्रद्वारा विष्णुकी आराधनाका जयध्वजको उपदेश करना और जयध्वजको विष्णुका दर्शन

रोमहर्षण उवाच

ऐल पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत्।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजस ॥१॥
आयुर्मायुरमावायुर्विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुता ॥२॥

रोमहर्षणने कहा—इलाका पुत्र राजा पुरूरवा राज्यका पालन करने लगा। उसको इन्द्रके समान तेजस्वी आयु, मायु, अमावायु, वीर्यवान् विश्वायु, शतायु तथा श्रुतायु नामवाले छ पुत्र हुए। ये उर्वशीके दिव्य पुत्र थे॥ १-२॥

आयुषस्तनया वीरा पञ्चैवासन् महौजस ।
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति न श्रुतम्॥३॥
नहुष प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुत ।
नहुषस्य तु दायादा षडिन्द्रोपमतेजस ॥४॥
उत्पन्ना पितृकन्यायां विरजायां महाबला ।
यतिर्ययाति सयातिरायति पञ्चकोऽश्वक ॥५॥
तेषां ययाति पञ्चानां महाबलपराक्रम ।
देवयानीमुशनस सुतां भार्यामवाप स ।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वण ॥६॥

हमने सुना है कि आयुको स्वर्भानु (राहु)-की कन्या प्रभासे पाँच महान् ओजस्वी पुत्र हुए थे। उनमे नहुष प्रथम (पुत्र) था जो धर्मज्ञ और लोकमे विख्यात था। पितरोकी कन्या विरजासे नहुषको यति, ययाति, सयाति आयाति तथा पाँचवे अश्वक नामवाले इन्द्रके समान तेजस्वी महाबलशाली पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। इन पाँचोमसे ययाति महान् बलशाली और पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा वृषपर्वाकी असुर-वशमे उत्पन्न शर्मिष्ठा नामकी कन्याको पत्नीरूपमे प्राप्त किया॥ ३—६॥

यदु च तुर्वसु चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्यु चानु च पूरु च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत्॥ ७ ॥
सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठ यदुमनिन्दितम्।

पूरुमेव कनीयासं पितुर्वचनपालकम्॥ ८ ॥

देवयानीने यदु तथा तुर्वसुको जन्म दिया। इसी प्रकार शर्मिष्ठाने भी द्रुह्यु, अनु तथा पूरुको उत्पन्न किया। उस (ययाति)-ने अनिन्दित ज्येष्ठ पुत्र यदुका अतिक्रमणकर पिताके वचनका पालन करनेवाले छोटे पुत्र पूरुको ही (राजपदपर) अभिषिक्त किया॥ ७-८ ॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्।
दक्षिणापरयो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्।
प्रतीच्यामुत्तरायां च द्रुह्युं चानुमकल्पयत्॥ ९ ॥
तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता।
राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः॥ १०॥
यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रजित् तथा ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽजितो रघुः॥ ११॥

राजा ययातिने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसु नामक पुत्रको दक्षिण-पश्चिम दिशामें ज्येष्ठ पुत्र यदुको, पश्चिममें द्रुह्युको और उत्तर दिशामें अनुको (राजाके रूपमें) नियुक्त किया। उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। महायशस्वी राजा (ययाति) भी पत्नीसहित वन चले गये। यदुके भी देवपुत्रोंके समान सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अजित तथा रघु नामक पाँच पुत्र हुए, उनमें सहस्रजित् सबसे बड़ा था॥ ९—११॥

सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः।
सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥ १२॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयः परः।
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥ १३॥

सहस्रजित्का उसीके समान शतजित् नामका पुत्र राजा था। शतजित्के भी हैहय, हय और वेणुहय नामक परम धार्मिक तीन पुत्र थे। हैहयका पुत्र 'धर्म' नामसे विख्यात हुआ॥ १२-१३॥

तस्य पुत्रोऽभवद् विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान्।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु संजितस्तत्सुतोऽभवत्॥ १४॥
महिष्मान् संजितस्याभूद् भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः॥ १५॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् धनको नाम वीर्यवान्।
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः॥ १६॥
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कार्तवीर्योऽर्जुनोऽभवत्॥ १७॥
सहस्रबाहुर्द्युतिमान् धनुर्वेदविदां वरः।
तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः॥ १८॥

विप्रो! उसका (धर्मका) धर्मनेत्र नामवाला प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मनेत्रका कीर्ति और उसका पुत्र संजित हुआ। संजितका महिष्मान् हुआ और उसका पुत्र भद्रश्रेण्य था। भद्रश्रेण्यका दुर्दम नामका पुत्र राजा था। दुर्दमका धनक नामवाला बुद्धिमान् और वीर्यवान् पुत्र था। धनकके लोकमें सम्मानित चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा चौथा कृतौजा। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ। वह हजार बाहुओंवाला, द्युतिमान् तथा धनुर्वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ था। जमदग्निके पुत्र जनार्दन परशुराम उस (सहस्रार्जुन)-के लिये मृत्युरूप हुए। (अर्थात् परशुरामके द्वारा वह मारा गया)॥ १४—१८॥

तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः॥ १९॥
शूरश्च शूरसेनश्च धृष्णः कृष्णस्तथैव च।
जयध्वजश्च बलवान् नारायणपरो नृपः॥ २०॥
शूरसेनादयः सर्वे चत्वारः प्रथितौजसः।
रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्ति स्म शंकरम्॥ २१॥
जयध्वजस्तु मतिमान् देवं नारायणं हरिम्।
जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः॥ २२॥
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ।
ईश्वराराधनरतः पितास्माकमभूदिति॥ २३॥

उस (सहस्रबाहु)-के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पुत्र महारथी अस्त्र-सम्पन्न बली, शूर, धर्मात्मा तथा मनस्वी थे। शूर, शूरसेन, धृष्ण, कृष्ण तथा पाँचवाँ पुत्र राजा जयध्वज बलवान् तथा नारायणका भक्त था। शूरसेन आदि चार पुत्र महात्मा एवं अति तेजस्वी और रुद्रके भक्त थे। वे सभी शंकरकी पूजा करते थे। धर्मपरायण एवं बुद्धिमान् जयध्वज नारायण देव हरि विष्णु देवताकी शरणमें गया। अन्य पुत्रों (उसके चार भाइयों)-ने उससे कहा—अनघ! यह तुम्हारा धर्म नहीं है। हमारे पिता शंकरकी आराधना करते थे॥ १९—२३॥

तानब्रवीन्महातेजा एष धर्मः परो मम।
विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो यन्महीतले॥ २४॥

राज्य पालयतावश्य भगवान् पुरुषोत्तम ।
पूजनीयो यतो विष्णु पालको जगतो हरि ॥ २५ ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयम्भुव ।
तिस्रस्तु मूर्तय प्रोक्ता सृष्टिस्थित्यन्तहेतव ॥ २६ ॥
सत्त्वात्मा भगवान् विष्णु सस्थापयति सर्वदा।
सृजेद् ब्रह्मा रजोमूर्ति सहरेत् तामसो हर ॥ २७ ॥
तस्मान्महीपतीना तु राज्य पालयतामयम्।
आराध्यो भगवान् विष्णु केशव केशिमर्दन ॥ २८ ॥

इसपर महातेजस्वी (जयध्वज)-ने उनसे कहा—यही मेरा श्रेष्ठ धर्म है। पृथ्वीपर जो भी राजा हुए हैं, वे सभी विष्णुके अशसे उत्पन्न हुए हैं। राज्यका परिपालन करनेवालोंको चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तमकी अवश्य आराधना करे। क्योंकि हरि विष्णु ससारके पालनकर्ता हैं। स्वयम्भू (विष्णु)-की सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी—ये तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं, जो क्रमश सृष्टि, पालन तथा सहार करनेवाली हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न भगवान् विष्णु नित्य पालन करते हैं। रजोमूर्ति ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और तमोगुणात्मक हर सहार करते हैं। अतएव राज्यका पालन करनेवाले राजाओके लिये केशीका मर्दन करनेवाले केशव भगवान् विष्णु आराधनीय हैं॥ २४—२८ ॥

निशम्य तस्य वचन भ्रातरोऽन्ये मनस्विन ।
प्रोचु सहारकृद् रुद्र पूजनीयो मुमुक्षुभि ॥ २९ ॥
अय हि भगवान् रुद्र सर्वं जगदिद शिव ।
तमोगुण समाश्रित्य कल्पान्ते सहरेत् प्रभु ॥ ३० ॥
या सा घोरतरा मूर्तिरस्य तेजोमयी परा।
सहरेद् विद्यया सर्वं ससार शूलभृत् तया॥ ३१ ॥

उस (जयध्वज)-का वचन सुनकर उसके दूसरे मनस्वी भाइयाने कहा—मुक्तिप्राप्तिकी इच्छा करनेवालोके लिये सहार करनेवाले रुद्र ही पूजनीय हैं। ये ही कल्याणकारी प्रभु भगवान् रुद्र कल्पान्तमे तमोगुणका आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत्का सहार करते हैं। इनकी जो अति घोर तेजोमयी परा मूर्ति है, वही विद्या (ज्ञान-विवेक)-स्वरूप है। शक्ति-रूपमे उसीके द्वारा त्रिशूल धारण करनेवाले शकर सम्पूर्ण ससारका सहार करते हैं॥ २९—३१ ॥

ततस्तानब्रवीद् राजा विचिन्त्यासौ जयध्वज ।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तु सत्त्वात्मा भगवान् हरि ॥ ३२ ॥

तब वह राजा जयध्वज कुछ विचार करके उनसे बोला—सत्त्वगुणद्वारा ही प्राणी मुक्त होता है और वे भगवान् सत्त्वात्मक हैं॥ ३२ ॥

तमूचुर्भ्रातरो रुद्र सेवित सात्त्विकैर्जनै ।
मोचयेत् सत्त्वसयुक्त पूजयेश ततो हरम्॥ ३३ ॥
अथाब्रवीद् राजपुत्र प्रहसन् वै जयध्वज ।
स्वधर्मो मुक्तये पन्था नान्यो मुनिभिरिष्यते॥ ३४ ॥
तथा च वैष्णवी शक्तिर्नृपाणा देवता सदा।
आराधन परो धर्मो मुरारेरमितौजस ॥ ३५ ॥

इसपर भाइयोने उससे कहा—सात्त्विकजनोके द्वारा सेवित रुद्र सत्त्वगुणसे सम्पन्न होकर मुक्त करते हैं, अत ईश्वर हरकी पूजा करो। तब राजपुत्र जयध्वजने हँसते हुए कहा—मुक्तिके लिये स्वधर्म-पालन ही एकमात्र मार्ग है। मुनिलोग अन्य (धर्म)-की इच्छा नहीं करते। साथ ही राजाओके लिये वैष्णवी शक्ति ही सदा देवता-रूप है। अमित तेजस्वी मुरारिकी आराधना करना परम धर्म है॥ ३३—३५ ॥

तमब्रवीद् राजपुत्र कृष्णो मतिमता वर ।
यदर्जुनोऽस्मज्जनक स्वधर्मं कृतवानिति॥ ३६ ॥
एव विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद् वच ।
प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत्॥ ३७ ॥

तब बुद्धिमानोमे श्रेष्ठ राजपुत्र कृष्ण (जयध्वजके भाई)-ने उससे (जयध्वजसे) कहा—हम लोगोके पिता अर्जुनने (सहस्रार्जुन या कार्तवीर्यार्जुनने) जिसे स्वधर्म माना है (वही हम लोगोको भी मान्य होना चाहिये)। इस प्रकार विवादके बढ जानेपर शूरसेन (जयध्वजके दूसरे भाई)-ने यह बात कही—इस विषयमे ऋषि ही प्रमाण हैं, अत वे जैसा कहेगे, हम लोगोको वैसा ही करना चाहिये॥ ३६-३७ ॥

ततस्ते राजशार्दूला पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिन ।
गत्वा सर्वे सुसरब्धा सप्तर्षीणा तदाश्रमम्॥ ३८ ॥

तदनन्तर वे सभी राजश्रेष्ठ तैयार होकर सप्तर्षियोके आश्रममें गये और (उन) ब्रह्मवादियासे पूछा—॥ ३८ ॥

तानब्रुवस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थत ।
या यस्याभिमता पुस सा हि तस्यैव देवता॥ ३९ ॥
किन्तु कार्यविशेषेण पूजिताश्चेष्टदा नृणाम्।
विशेषात् सर्वदा नाय नियमो ह्यन्यथा नृपा ॥ ४० ॥

नृपाणा दैवत विष्णुस्तथैव च पुरदर ।
विप्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक्॥ ४१॥
देवाना दैवत विष्णुर्दानवाना त्रिशूलभृत्।
गन्धर्वाणा तथा सोमा यक्षाणामपि कथ्यते॥ ४२॥

वसिष्ठ आदि उन मुनियोने तत्वकी बात बताते हुए उनसे कहा—जिस पुरुषका जो देवता अभिमत हो, वही उसका अभीष्ट देवता है। किंतु किसी विशेष कार्यसे पूजित (तत्तद्-देवता) मनुष्योको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। राजाओ। विशेष अर्थात् किसी उद्देश्यसकी जानेवाली पूजा सदा नहीं की जाती, क्योंकि कामनापरक आराधनाके नियम दूसरे प्रकारके होते हैं (वे सदा सब स्थितियोंमें पालनीय नहीं हो सकते)। राजाओंके देवता विष्णु और इन्द्र हैं। ब्राह्मणोंके देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा तथा पिनाकधारी शिव हैं। देवताओंके दवता विष्णु और दानवोंके त्रिशूलधारी शिव हैं। गन्धर्वों और यक्षोंके देवता सोम कहे गये हैं॥ ३९—४२॥

विद्याधराणा वाग्देवी साध्याना भगवान् रवि ।
रक्षसा शकरो रुद्र किनराणा च पार्वती॥ ४३॥
ऋषीणा दैवत ब्रह्मा महादेवश्च शूलभृत्।
मनूना स्यादुमा देवी तथा विष्णु सभास्कर॥ ४४॥
गृहस्थाना च सर्वे स्युर्ब्रह्मा वै ब्रह्मचारिणाम्।
वैखानसानामर्क स्याद् यतीना च महेश्वर॥ ४५॥
भूताना भगवान् रुद्र कूष्माण्डाना विनायक ।
सर्वेषा भगवान् ब्रह्मा देवदेव प्रजापति॥ ४६॥

विद्याधराके दवता वाग्देवी तथा साध्योके भगवान् सूर्य हैं। राक्षसाके शकर रुद्र आर किनरोकी देवता पार्वती हैं। ऋषियाके देवता ब्रह्मा और त्रिशूलधारी महादेव हैं। मनुष्याके देवता उमा देवी, विष्णु तथा सूर्य हैं। गृहस्थाके लिये सभी देवता (पूज्य) हैं। ब्रह्मचारियाके दवता ब्रह्मा, वैखानसोके सूर्य तथा सन्यासियाके महेश्वर देवता हैं। भूताके भगवान् रुद्र कूष्माण्डोके विनायक और देवाधिदेव प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सभीक दवता हैं॥ ४३—४६॥

इत्येव भगवान् ब्रह्मा स्वय देवोऽभ्यभाषत।
तस्माज्जयध्वजो नून विष्ण्वाराधनमर्हति॥ ४७॥
तान् प्रणम्याथ ते जग्मु पुरीं परमशोभनाम्।
पालयाञ्चक्रिरे पृथ्वीं जित्वा सर्वरिपून् रण॥ ४८॥

(सप्तर्षियोने कहा) स्वय भगवान् ब्रह्माने ही यह कहा है, इसलिये निश्चित ही जयध्वज विष्णुकी आराधना करनेके योग्य हैं। तब वे सभी उन्हे प्रणामकर परम सुन्दर अपनी पुरीको चले गये और युद्धमे सभी शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीका पालन करने लगे॥ ४७-४८॥

तत कदाचिद् विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानव ।
भीषण सर्वसत्त्वाना पुरीं तेषा समाययौ॥ ४९॥
दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपम ।
शूलमादाय सूर्याभ नादयन् वै दिशा दश॥ ५०॥
तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते।
तत्यजुर्जीवित त्वन्ये दुद्रुवुर्भयविह्वला॥ ५१॥

विप्रेन्द्रो! तदनन्तर किसी दिन सभी प्राणियोंके लिये भयकर विदेह नामका दानव उनकी पुरीमे चला आया। भयकर दाढ़ावाला, प्रलयकालीन अग्निके समान उद्दीप्त (वह दानव) सूर्यके समान चमकते हुए शूलको लेकर दसो दिशाओंमे गरजने लगा। उसकी (भयकर) गर्जनाको सुनकर वहाँ रहनेवाले कुछ मनुष्योने प्राण त्याग दिये और दूसरे भयसे विह्वल हाकर भाग पडे॥ ४९—५१॥

तत सर्वे सुसयत्ता कार्तवीर्यात्मजास्तदा।
युयुधुर्दानव शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरै॥ ५२॥
तान् सर्वान् दानवो विप्रा शूलेन प्रहसन्निव।
वारयामास घोरात्मा कल्पान्ते भैरवो यथा॥ ५३॥
शूरसेनादय पञ्च राजानस्तु महाबला ।
युद्धाय कृतसरम्भा विदेह त्वभिदुद्रुवु॥ ५४॥

तब कार्तवीर्यके सभी पुत्र सावधान हाकर शक्ति (सेना), पर्वतशिला तलवार तथा मुद्गरोसे उस दानवके साथ युद्ध करने लगे। ब्राह्मणो! उस भयकर दानवने शूलसे उन सभीका हँसते हुए वैसे ही निवारण कर दिया जैसे प्रलयकालमे भैरव करते हैं। तब महाबली शूरसेन आदि वे पाँच राजा युद्धके लिये तैयारी कर विदेह दानवपर टूट पडे॥ ५२—५४॥

शूरोऽस्त्र प्राहिणोद् रौद्र शूरसेनस्तु वारुणम्।
प्राजापत्य तथा कृष्णो वायव्य धृष्ण एव च॥ ५५॥
जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च।
भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानव॥ ५६॥

तत कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम्।
स्पृष्ट्वा मन्त्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च॥५७॥
सम्प्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम्।
न दानव चालयितु शशाकान्तकसन्निभम्॥५८॥

शूरने रौद्रास्त्र, शूरसेनने वारुणास्त्र कृष्णने प्राजापत्यास्त्र धृष्णने वायव्यास्त्र और जयध्वजने कौबेर एन्द्र तथा आग्नेयास्त्र चलाया किंतु उस दानवने शूलसे उन सभी अस्त्रोंको तोड डाला। तब महावीर्यशाली कृष्णने भीषण गदा लेकर मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित कर वेगपूर्वक फेंका और गर्जना की। वह गदा उस विदेहकी पत्थरके समान छातीपर लगकर भी यमराज-तुल्य उस दानवको विचलित करनेमें समर्थ न हो सकी॥ ५५—५८॥

दुद्रुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम्।
जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगत पतिम्॥५९॥
विष्णु ग्रसिष्णु लोकादिमप्रमेयमनामयम्।
त्रातार पुरुष पूर्वं श्रीपति पीतवाससम्॥६०॥
तत प्रादुरभूच्चक्र सूर्यायुतसमप्रभम्।
आदेशाद् वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात्॥६१॥
जग्राह जगता योनि स्मृत्वा नारायण नृप।
प्राहिणोद् वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरि॥६२॥

उसके महान् पौरुषको देखकर भयग्रस्त हो वे सभी भागने लगे। तब बुद्धिमान् जयध्वजने अप्रमेय अनामय लोकादि, ग्रसिष्णु, त्राणकर्ता पूर्वपुरुष, श्रीपति और पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णुका स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये वासुदेवकी आज्ञासे दस हजार सूर्योंके समान प्रकाशमान चक्र प्रकट हुआ। राजा (जयध्वजने) जगद्योनि नारायणका ध्यानकर उस चक्रको ग्रहण किया और विदेह (दानव)-पर उसी प्रकार चलाया जैसे विष्णु दानवोंपर चलाते हैं॥ ५९-६२॥

सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेश सुदर्शनम्।
पृथिव्या पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति॥६३॥
तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपा।
समाययु पुरीं रम्या भ्रातर चाप्यपूजयन्॥६४॥
श्रुत्वाजगाम भगवान् जयध्वजपराक्रमम्।
कार्तवीर्यसुत द्रष्टु विश्वामित्रो महामुनि॥६५॥

सुदर्शनचक्र उस भयंकर दानवके कंधेपर लगा और उसने उसके पर्वत-शिखरके समान सिरको पृथ्वीपर गिरा दिया। देवताओंके शत्रु उस (विदेह दानव)-के मारे जानेपर राजा शूर आदि सभी भाई अपनी रमणीय पुरीमें चले आये और उन्होंने भाई (जयध्वज)-की पूजा की। महामुनि भगवान् विश्वामित्र जयध्वजके पराक्रमको सुनकर उस कीर्तवीर्यपुत्रको देखने आये॥ ६३—६५॥

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तमानस।
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावत॥६६॥
उवाच भगवान् घोर प्रसादाद् भवतोऽसुर।
निपातितो मया सख्ये विदेहो दानवेश्वर॥६७॥
त्वद्वाक्याच्छिन्नसदेहो विष्णु सत्यपराक्रमम्।
प्रपन्न शरण तेन प्रसादो मे कृत शुभ॥६८॥
यक्ष्यामि परमेशान विष्णु पद्मदलेक्षणम्।
कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वर॥६९॥
कोऽय नारायणो देव किम्प्रभावश्च सुव्रत।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व पर कौतूहल हि मे॥७०॥

उनको (विश्वामित्रको) आया देखकर आश्चर्यचकित मनवाले राजा (जयध्वज)-ने सुन्दर आसनपर उन्हें बिठाया और भक्तिभावसे उनकी पूजा की तथा कहा—भगवन्! आपकी ही कृपासे मैंने युद्धमें भयंकर असुर दानवेश्वर विदेहको मार गिराया। आपके कहनेसे मैं संशयमुक्त होकर सत्यपराक्रमी विष्णुकी शरणमें गया और उन्होंने मेरे ऊपर शुभ अनुग्रह किया। कमलदलके समान नेत्रवाले, परम ईशान विष्णुका मैं पूजन करूँगा उन ईश्वर हरिका किस विधानसे किस प्रकार पूजन किया जाना चाहिये। सुव्रत! ये नारायण देव कौन हैं? उनका क्या प्रभाव है? यह सब मुझे बतलाइये मुझे (इस विषय)-में अत्यधिक कौतूहल है॥ ६६—७०॥

विश्वामित्र उवाच

यत प्रवृत्तिर्भूताना यस्मिन् सर्वमिद जगत्।
स विष्णु सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते॥७१॥
स्ववर्णाश्रमधर्मेण पूज्योऽय पुरुषोत्तम।
अकामहतभावेन समाराध्यो न चान्यथा॥७२॥

विश्वामित्रने कहा—जिनसे सभी प्राणियोंकी प्रवृत्ति होती है और जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् (प्रतिष्ठित) है, वे

विष्णु सभी प्राणियोके आत्मरूप हैं, उनका आश्रय ग्रहण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अपने-अपने वर्ण और आश्रमधर्ममें स्थित रहते हुए केवल निष्कामभावसे उन पुरुषोत्तम (विष्णु)-का पूजन करना चाहिये अन्य किसी भावसे नहीं॥ ७१-७२॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः।
शूराद्यैः पूजितो विप्रा जगामाथ स्वमालयम्॥ ७३॥
अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्।
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम्॥ ७४॥

इतना कहकर महामुनि भगवान् विश्वामित्र उन शूरसेन आदिके द्वारा पूजित होकर अपने निवास-स्थानको चले गये। तदनन्तर शूरसेन आदिने यज्ञके द्वारा कामनारहित होकर यज्ञ-गम्य उन अव्यय रुद्रदेव महेश्वरका यजन किया॥ ७३-७४॥

तान् वसिष्ठस्तु भगवान् याजयामास सर्ववित्।
गौतमोऽत्रिरगस्त्यश्च सर्वे रुद्रपरायणाः॥ ७५॥
विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमरिंदमम्।
याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम्॥ ७६॥
तस्य यज्ञे महायोगी साक्षात् देवः स्वयं हरिः।
आविरासीत् स भगवान् तदद्भुतमिवाभवत्॥ ७७॥

सर्वज्ञ भगवान् वसिष्ठ तथा रुद्रभक्त, गौतम, अत्रि तथा अगस्त्यने उन लोगोका यज्ञ कराया। भगवान् विश्वामित्रने शत्रुओका दमन करनेवाले जयध्वजसे प्राणियोके आदि कारण आदिदेव जनार्दन-सम्बन्धी (विष्णु) यज्ञ कराया। उस (जयध्वज)-के यज्ञमे महायोगी देव स्वयं भगवान् हरि साक्षात् प्रकट हुए। यह एक अद्भुत बात हुई॥ ७५—७७॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम्।
सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोकं स गच्छति॥ ७८॥

जो जयध्वजके इस पराक्रमको नित्य सुनेगा वह सभी पापोसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करेगा॥ ७८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

जयध्वजके वंश-वर्णनमें राजा दुर्जयका आख्यान, महामुनि कण्वद्वारा दुर्जयको वाराणसीके विश्वेश्वर-लिंगका माहात्म्य बतलाना, दुर्जयका वाराणसी जाकर पाप-मुक्त होना तथा सहस्रजित्-वंशका वर्णन

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत् तालजङ्घ इति स्मृतः।
शतपुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः॥ १॥
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः।
वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः॥ २॥
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक्॥ ३॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनन्त इत्युत।
दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः॥ ४॥
तस्य भार्या रूपवती गुणैः सर्वैरलंकृता।
पतिव्रतासीत् पतिना स्वधर्मपरिपालिका॥ ५॥

सूतजीने कहा—जयध्वजका एक पुत्र था जो तालजङ्घ नामसे प्रसिद्ध था। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजङ्घ ही कहलाते थे। उनमें वीतिहोत्र नामका महान् बलवान् राजा सबमें बड़ा था। दूसरे वृष इत्यादि नामवाले यादव पुण्यकर्मा थे। उनमें वृष वंशको बढ़ानेवाला था, उसका मधु नामक पुत्र हुआ। मधुके सौ पुत्र हुए, किंतु उनमें वृषण ही उस (मधु)-का वंशधर हुआ। वीतिहोत्रका भी विश्रुत अथवा अनन्त नामवाला एक पुत्र हुआ। उसका पुत्र दुर्जय हुआ, जो सभी शास्त्रोंका ज्ञाता था। उसकी भार्या रूपवती तथा सभी गुणोंसे अलंकृत तथा पतिव्रता थी वह पति दुर्जयके साथ अपने धर्मका पालन करती थी॥ १—५॥

स कदाचिन्महाभागः कालिन्दीतीरसंस्थिताम्।
अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्वनाम्॥ ६॥

तत कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै।
प्रोवाच सुचिर काल देवि रन्तु मयार्हसि॥ ७ ॥
सा देवी नृपति दृष्ट्वा रूपलावण्यसयुतम्।
रेमे तेन चिर काल कामदेवमिवापरम्॥ ८ ॥

किसी समय उस महाभाग्यशाली (दुर्जय)-ने कालिन्दी नदीके किनारे बैठी हुई मधुर स्वरमे गीत गाती हुई देवी उर्वशीको देखा। तब कामके द्वारा विचलित मनवाला वह उसके समीपमे गया और कहने लगा—'देवि! चिरकालतक मरे साथ रमण करो'। रूप ओर लावण्यसे सम्पन्न तथा दूसरे कामदेवके समान उस राजाको देखकर उस देवीने चिरकालतक उसके साथ रमण किया॥ ६—८॥

कालात् प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्।
गमिष्यामि पुरीं रम्या हसन्ती साब्रवीद् वच ॥ ९ ॥
न ह्यनेनोपभोगेन भवता राजसुन्दर।
प्रीति सजायते मह्य स्थातव्य वत्सर पुन ॥१०॥

बहुत समयके बाद ज्ञान होनेपर राजाने उस रमणीय उर्वशीसे कहा—'अब मैं अपनी सुन्दर पुरीको जाऊँगा।' इसपर वह हँसते हुए कहने लगी—राजसुन्दर! आपके साथ इतने उपभोगसे मुझे प्रसन्नता (सतुष्टि) नहीं हुई है, अत पुन एक वर्षतक यहाँ और ठहरे॥ ९-१०॥

तामब्रवीत् स मतिमान् गत्वा शीघ्रतर पुरीम्।
आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि॥ ११ ॥
तमब्रवीत् सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते।
नान्ययाप्सरसा तावद् रन्तव्य भवता पुन ॥१२॥
ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम्।
गत्वा पतिव्रता पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृप ॥१३॥

इसपर बुद्धिमान् (राजा)-ने उस (उर्वशी)-से कहा—मैं अपनी पुरीमे जाकर पुन शीघ्र ही यहाँ वापस लौटूँगा इसलिये मुझे जानेकी आज्ञा दो। उस सुभगाने उससे कहा—राजन्! वैसा ही कीजिये किंतु तबतक आप पुन किसी अन्य अप्सराके साथ रमण न करे। 'अच्छा' ऐसा कहकर वह शीघ्र ही परम शोभन अपनी पुरीको चला गया। (पुरीमे) जाकर अपनी पतिव्रता पत्नीको देखकर वह राजा भयभीत हो गया॥ ११—१३॥

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता।
भीत प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा॥ १४॥
स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्तते।
तद् ब्रूहि मे यथा तत्त्व न राज्ञा कीर्तये त्विदम्॥ १५॥

उस राजाकी पीन पयोधरोवाली उस गुणवती तथा पतिव्रता भार्याने डरे हुए (पति)-को देखकर प्रसन्न वाणीसे कहा—स्वामिन्! आज आप डर क्यो रहे हैं, जो भी बात हो मुझे सत्य-सत्य बतलाये। इस प्रकारका भय राजाओके लिये कीर्तिकर नहीं है॥ १४-१५॥

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतचेतन ।
नोवाच किंचिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा॥ १६॥
न भेतव्य त्वया स्वामिन् कार्यं पापविशोधनम्।
भीते त्वयि महाराज राष्ट्र ते नाशमेष्यति॥ १७॥

उसकी बात सुनकर उस (राजा)-का मन लज्जासे झुक गया। राजा कुछ भी नहीं बोला, किंतु उस (रानी)-ने ज्ञानदृष्टिसे (सब कुछ) जान लिया। (वह बोली) स्वामिन्! आपको डरना नहीं चाहिये। पापका प्रायश्चित्त (शोधन) करना चाहिये। हे महाराज! आपके भयभीत रहनेसे आपका राष्ट्र नष्ट हो जायगा॥ १६-१७॥

तदा स राजा द्युतिमान् निर्गत्य तु पुरात् तत ।
गत्वा कण्वाश्रम पुण्य दृष्ट्वा तत्र महामुनिम्॥ १८॥
निशम्य कण्ववदनात् प्रायश्चित्तविधि शुभम्।
जगाम हिमवत्पृष्ठ समुद्दिश्य महाबल ॥ १९॥
सोऽपश्यत् पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम्।
भ्राजमान श्रिया व्योम्नि भूषित दिव्यमालया॥ २०॥
वीक्ष्य मालाममित्रघ्न सस्माराप्सरसा वराम्।
उर्वशीं ता मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति॥ २१॥

तब वह द्युतिमान् राजा अपने नगरसे बाहर निकलकर पवित्र कण्वके आश्रमम गया। वहाँ महामुनि (कण्व)-का दर्शनकर तथा कण्वके मुखसे प्रायश्चित्तकी कल्याणकारी विधि सुनकर प्रायश्चित्तके द्वारा आत्मशुद्धिके उद्देश्यसे वह महाबलवान् (राजा दुर्जय) हिमालय पर्वतकी ओर गया। उस राजेन्द्रने मार्गमे (जाते समय) आकाशमे अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए गन्धर्वश्रेष्ठोमे उत्तम एक गन्धर्वको देखा जो दिव्य मालासे विभूषित था। मालाको देखकर शत्रुओका विनाश करनेवाले (उस राजाको) श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीका

स्मरण हो आया। उसने मनमे विचार किया कि यह (माला) तो उस (उर्वशी)-के ही योग्य है॥ १८—२१॥

सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि।
चकार सुमहद् युद्ध मालामादातुमुद्यत ॥ २२॥
विजित्य समरे माला गृहीत्वा दुर्जयो द्विजा ।
जगाम तामप्सरस कालिन्दीं द्रष्टुमादरात्॥ २३॥
अदृष्ट्वाप्सरस तत्र कामबाणाभिपीडित ।
बभ्राम सकला पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम्॥ २४॥
आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशीदर्शनोत्सुक ।
जगाम शैलप्रवर हेमकूटमिति श्रुतम्॥ २५॥

तब माला प्राप्त करनेको उद्यत उस अत्यन्त कामुक राजाने उस गन्धर्वके साथ महान् युद्ध किया। ब्राह्मणो! युद्धमे गन्धर्वोको जीतकर और माला लेकर वह दुर्जय उस अप्सराको देखनेके लिये आदरपूर्वक कालिन्दीके किनारे गया। वहाँ अप्सराको न देखकर कामदेवके बाणसे अत्यन्त पीडित वह सात द्वीपोसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमने लगा। उर्वशीके दर्शनके लिये उत्सुक वह हिमालयके पार्श्वभागको पारकर उस श्रेष्ठ पर्वतपर पहुँचा जो 'हेमकूट' नामसे विख्यात है॥ २२—२५॥

तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा त सिहविक्रमम्।
काम सदधिरे घोर भूषित चित्रमालया॥ २६॥
सस्मरन्नुर्वशीवाक्य तस्या ससक्तमानस ।
न पश्यति स्म ता सर्वा गिरिशृङ्गाणि जग्मिवान्॥ २७॥

वहाँ उन-उन स्थानोमे रहनेवाली वे श्रेष्ठ अप्सराएँ उस विचित्र मालासे विभूषित एव सिहके समान पराक्रमवाले राजाको देखकर अत्यन्त कामासक्त हो गयीं। उर्वशीके वाक्यका स्मरण करते हुए और उसीमे आसक्त मनवाले उस राजाने उन सभी (अप्सराओ)-को नहीं देखा और वह पर्वतोके शिखरोपर चला गया॥ २६-२७॥

तत्राप्यप्सरस दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडित ।
देवलोक महामेरु ययौ देवपराक्रम ॥ २८॥
स तत्र मानस नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम्।
भेजे शृङ्गाण्यतिक्रम्य स्वबाहुबलभावित ॥ २९॥
स तस्य तीर सुभगा चरन्तीमतिलालसाम्।
दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै माला ददौ पुन ॥ ३०॥

वहाँ भी दिव्य अप्सरा (उर्वशी)-को न देखकर देवताओके समान पराक्रमवाला वह कामपीडित (राजा) देवताओके स्थान महामेरुपर गया। अपने बाहुबलके प्रभावसे गिरिशिखरोको पार करता हुआ वह तीनो लोकोमे विख्यात 'मानस' नामक सरोवरपर पहुँचा। उसने उसके (मानसरोवरके) किनारेपर विचरण करती हुई सुन्दर अङ्गोवाली अत्यन्त स्नेहमयी सुन्दरी (उर्वशी)-को देखा और वह माला उसे दे दी॥ २८—३०॥

स मालया तदा देवीं भूषिता प्रेक्ष्य मोहित ।
रेमे कृतार्थमात्मान जानान सुचिर तया॥ ३१॥
अथोर्वशी राजवर्य रतान्ते वाक्यमब्रवीत्।
कि कृत भवता पूर्व पुरीं गत्वा वृथा नृप॥ ३२॥

तब उस देवीको मालासे विभूषित देखकर वह मोहित हो गया तथा अपनेको कृतार्थ समझते हुए उसने चिरकालतक उसके साथ रमण किया। अनन्तर उर्वशीने श्रेष्ठ राजासे कहा—राजन्! आपने पहले पुरीमे जाकर क्या किया व्यर्थ ही आप वहाँ गये॥ ३१-३२॥

स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत् समुदीरितम्।
कण्वस्य दर्शन चैव मालापहरण तथा॥ ३३॥

तब उसने पत्नीद्वारा कही गयी वह बात, कण्व ऋषिका दर्शन तथा मालाका अपहरण—सभी कुछ उसे बता दिया॥ ३३॥

श्रुत्वैतद् व्याहृत तेन गच्छेत्याह हितैषिणी।
शाप दास्यति ते कण्वो ममापि भवत प्रिया॥ ३४॥
तयासकृन्महाराज प्रोक्तोऽपि मदमोहित ।
न तत्याजाथ तत्पार्श्व तत्र सन्यस्तमानस ॥ ३५॥

उसके द्वारा कही गयी इन बातोंको सुनकर हित चाहनेवाली (उस उर्वशी)-ने 'आप चले जायँ'—ऐसा कहा। अन्यथा आपको कण्व शाप दे देंगे और आपकी प्रिया भी मुझे शाप दे देगी। बार-बार उसके कहनेपर भी (कामरूपी) मदसे मोहित हुए महाराजने उसका साथ नहीं छोडा, उसमे ही मन लगाये रखा॥ ३४-३५॥

तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्व रूपमुत्कटम्।
सरोमश पिङ्गलाक्ष दर्शयामास सर्वदा॥ ३६॥
तस्या विरक्तचेतस्क स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम्।
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तप कर्तुं समारभत्॥ ३७॥

सवत्सरद्वादशक कन्दमूलफलाशन ।
भूय एव द्वादशक वायुभक्षोऽभवन्नृप ॥ ३८ ॥

तदनन्तर इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेवाली उर्वशी राजाको रोमोसे युक्त, पिङ्गल वर्णके नेत्रोवाला अपना उत्कट रूप सदा दिखलाने लगी। (उसका वह वीभत्स रूप देखकर) उसके प्रति विरक्त मनवाले राजाने कण्व (मुनि)-द्वारा कही गयी बातका स्मरणकर 'मुझे धिक्कार है' ऐसा निश्चयकर तप करना प्रारम्भ किया। राजाने बारह वर्षतक कन्द-मूल और फलका आहार किया और पुन बारह वर्षोंतक केवल वायुका ही भक्षण किया॥ ३६—३८॥

गत्वा कण्वाश्रम भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्॥ ३९ ॥
वीक्ष्य त राजशार्दूल प्रसन्नो भगवानृषि ।
कर्तुकामो हि निर्बीज तस्याघमिदमब्रवीत्॥ ४० ॥

कण्वके आश्रममें जाकर राजाने डरते-डरते अप्सराके साथ निवास करने और पुन उत्तम तपस्या करनेकी सारी बातें उन्हें बता दीं। उस श्रेष्ठ राजाको देखकर प्रसन्न हुए भगवान् ऋषि (कण्व)-ने उसके पापको समूल नष्ट करनेकी इच्छासे यह कहा— ॥ ३९-४० ॥

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषिता पुरीम्।
आस्ते मोचयितु लोक तत्र देवो महेश्वर ॥ ४१ ॥
स्नात्वा सतर्प्य विधिवद् गङ्गाया देवता पितॄन्।
दृष्ट्वा विश्वेश्वर लिङ्ग किल्बिषान्मोक्ष्यसेऽखिलात्॥ ४२ ॥

कण्व बोले—(राजन्! तुम) ईश्वर जहाँ विशेषरूपसे निवास करते हैं, उस दिव्य वाराणसीपुरीम जाओ। ससारको मुक्त करनेके लिये महेश्वर देव वहाँ रहते हैं। गङ्गामे स्नानकर विधिपूर्वक देवताओ एव पितरोका तर्पणकर विश्वेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे तुम सम्पूर्ण पापोसे मुक्त हो जाओगे॥ ४१-४२ ॥

प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जय ।
वाराणस्या हर दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत् तत ॥ ४३ ॥

इसके बाद कण्वको सिरसे प्रणामकर और उनकी आज्ञा प्राप्तकर वह दुर्जय वाराणसीमें गया और भगवान् शकरका दर्शनकर पापसे मुक्त हो गया॥ ४३ ॥

जगाम स्वपुरीं शुभ्रा पालयामास मेदिनीम्।
याजयामास त कण्वो याचितो घृणया मुनि ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति श्रुत ।
बभूव जातमात्र त राजानमुपतस्थिरे ॥ ४५ ॥
उर्वश्या च महावीर्या सप्त देवसुतोपमा ।
कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्वदयिता द्विजा ॥ ४६ ॥

(तदनन्तर वह) अपनी सुन्दर पुरीमें जाकर पृथ्वीका पालन करने लगा। प्रार्थना करनेपर कण्व मुनिने कृपा करके उसका यज्ञ कराया। उसका बुद्धिमान् पुत्र 'सुप्रतीक' इस नामसे विख्यात हुआ। उत्पन्न होते ही उसे (लोगोने) राजा मान लिया। ब्राह्मणो! उर्वशीसे देवपुत्रोके समान महान् वीर्यवान् सात पुत्र हुए। उन्होने गन्धर्वोकी कन्याओको अपनी पत्नी बनाया॥ ४४—४६ ॥

एष व कथित सम्यक् सहस्रजित उत्तम ।
वश पापहरो नृणा क्रोष्टोरपि निबोधत॥ ४७॥

आप लोगोसे (मैंने) यह मनुष्याके पापको नष्ट करनेवाला सहस्रजित्का उत्तम वश भलीभाँति बतलाया। अब क्रोष्टुके वशको भी सुने॥ ४७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायां पूर्वविभागे द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

यदुवंश-वर्णनमें क्रोष्टुवंशी राजाओंका वृत्तान्त, राजा नवरथकी कथा, सात्त्वतवंश-वर्णनमें अक्रूरकी उत्पत्ति, राजा आनकदुन्दुभिका आख्यान, कंस एवं वसुदेव-देवकीकी उत्पत्ति, वसुदेवका वंश-वर्णन, देवकीके अन्य पुत्रोंकी उत्पत्ति, रोहिणीसे संकर्षण-बलराम तथा देवकीसे श्रीकृष्णका आविर्भाव, वासुदेव कृष्णका वंश-वर्णन

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुतिः।
तस्य पुत्रो महान् स्वातिरुशद्गुस्तत्सुतोऽभवत्॥ १॥
उशद्गोरभवत् पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली।
अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृतः॥ २॥
तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाभूद् धर्मतत्परः।
पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात् पृथुजयोऽभवत्॥ ३॥
पृथुकीर्तिरभूत् तस्मात् पृथुदानस्ततोऽभवत्।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत् पृथुसत्तमः॥ ४॥

सूतजीने कहा— क्रोष्टुका एक पुत्र हुआ जो वृजिनीवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका महान् पुत्र स्वाति हुआ और उसका पुत्र उशद्गु हुआ। उशद्गुका चित्ररथ नामका बलवान् पुत्र हुआ। चित्ररथका पुत्र लोकमें शशबिन्दु नामसे विख्यात हुआ। उसका पृथुयशा नामवाला पुत्र धर्मपरायण राजा हुआ। उसका पुत्र पृथुकर्मा और उससे पृथुजय हुआ। उससे पृथुकीर्ति और उससे पृथुदान हुआ। उसका पुत्र पृथुश्रवा और उसका पुत्र था—पृथुसत्तम॥ १—४॥

उशना तस्य पुत्रोऽभूत् सितेपुस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्याभूद् रुक्मकवचः परावृत् तस्य सत्तमाः॥ ५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस (पृथुसत्तम)-का पुत्र उशना हुआ और उसका सितेपु पुत्र हुआ। फिर उसका रुक्मकवच और उस (रुक्मकवच)-का परावृत् हुआ॥ ५॥

परावृतः सुतो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्रुतः।
तस्माद् विदर्भः सञ्जज्ञे विदर्भात् क्रथकैशिकौ॥ ६॥
रोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृपः।
धृतिस्तस्याभवत् पुत्रः ससस्तस्याप्यभूत् सुतः॥ ७॥
ससस्य पुत्रो बलवान् नाम्ना विश्वसहस्तु सः।
तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रजावान् कौशिकस्ततः।
अभूत् तस्य सुतो धीमान् सुमन्तुस्तत्सुतोऽनलः॥ ८॥
कैशिकस्य सुतश्चेदिश्चैद्यास्तस्याभवन् सुताः।
तेषां प्रधानो ज्योतिष्मान् वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत्॥ ९॥
वपुष्मतो बृहन्मेधा श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः॥ १०॥

परावृत्ने संसारमें विख्यात ज्यामघ नामक पुत्र उत्पन्न किया। उससे विदर्भ उत्पन्न हुआ और विदर्भसे क्रथ कैशिक और तीसरा रोमपाद नामक पुत्र हुआ। उस (रोमपाद)-का पुत्र बभ्रु राजा था। धृति उसका पुत्र हुआ और उसका भी सस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ससका विश्वसह नामवाला बलवान् पुत्र था। उसका पुत्र महान् पराक्रमी प्रजावान् और उसका पुत्र कौशिक हुआ। उस (कौशिक)-का बुद्धिमान् सुमन्तु नामक पुत्र था और उसका पुत्र अनल था। कैशिकका पुत्र चेदि था और उस चेदिके पुत्र चैद्य हुए। उन चैद्योंमें ज्योतिष्मान् प्रधान था और वपुष्मान् उसका पुत्र हुआ। वपुष्मान्से बृहन्मेधा और श्रीदेव उसका पुत्र हुआ। ब्राह्मणो! उसका वीतरथ नामक पुत्र महान् बलशाली और रुद्रका भक्त था॥ ६—१०॥

क्रथस्याप्यभवत् कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत् सुतः।
वृष्णेर्निवृतिरुत्पन्नो दशार्हस्तस्य तु द्विजाः॥ ११॥
दशार्हपुत्रोऽप्यारोहो जीमूतस्तत्सुतोऽभवत्।
जैमूतिरभवद् वीरो विकृतिः परवीरहा॥ १२॥
तस्य भीमरथः पुत्रस्तस्मान्नवरथोऽभवत्।
दानधर्मरतो नित्यं सम्यक्शीलपरायणः॥ १३॥

ब्राह्मणो! क्रथका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र वृष्णि हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति उत्पन्न हुआ और दशार्ह उसका पुत्र हुआ। दशार्हका पुत्र आरोह था और उसका जीमूत पुत्र हुआ। जीमूतका विकृति नामक बलवान् पुत्र शत्रु-वीरोंका

नाशक था। उसका भीमरथ नामक पुत्र हुआ, उससे नवरथ हुआ, जो नित्य दानधर्ममें परायण तथा पूर्णरूपसे शील-सम्पन्न था॥ ११—१३॥

कदाचिन्मृगया यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम्।
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुंगवाः॥ १४॥
अन्वधावत सक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः।
दुर्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासक्तमहाकरः॥ १५॥

श्रेष्ठ मुनियो! किसी समय आखेटके लिये जाते हुए वह (नवरथ) एक बलवान् राक्षसको देखकर अत्यन्त भयभीत होकर भागने लगा। अग्निके समान प्रज्वलित वह महाबलवान् दुर्योधन नामक राक्षस क्रुद्ध होकर अपने विशाल हाथमें शूल लेकर उसके पीछे दौड़ा॥ १४-१५॥

राजा नवरथो भीत्या नातिदूरादनुत्तमम्।
अपश्यत् परमं स्थानं सरस्वत्या सुगोपितम्॥ १६॥
स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान् नृपः।
ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्॥ १७॥

भयभीत राजा नवरथने समीपमें ही (देवी) सरस्वतीसे रक्षित एक परम श्रेष्ठ स्थान देखा। वह बुद्धिमान् राजा अति शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और साक्षात् देवी सरस्वतीका दर्शन करके उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया॥ १६-१७॥

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्।
पपात दण्डवद् भूमौ त्वामहं शरणं गतः॥ १८॥
नमस्यामि महादेवीं साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्।
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम्॥ १९॥
नमस्ते जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्।
हिरण्यगर्भमहिषीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्॥ २०॥

उस शत्रुजयीने हाथ जोड़ते हुए अभीष्ट स्तुतियोंद्वारा स्तुति की, वह भूमिपर दण्डवत् गिर पड़ा और कहा—'मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप अनादि, अनन्त ब्रह्मचारिणी, ईश्वरी महादेवी वाग्देवता साक्षात् देवी सरस्वतीको नमस्कार करता हूँ। जगत्‌की मूल कारणरूपा परम कलास्वरूपा तीन नेत्रोंवाली मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाली एवं हिरण्यगर्भकी महिषी योगिनीको नमस्कार है॥ १८—२०॥

नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम्।
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम्॥ २१॥

चित्कलारूप, परमानन्दस्वरूपा ब्रह्मरूपिणीको नमस्कार है। परमेशानि! भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो॥ २१॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः।
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती॥ २२॥
समुद्यम्य तदा शूलं प्रवेष्टुं बलदर्पितः।
त्रिलोकमातुस्तत्स्थानं शशाङ्कादित्यसंनिभम्॥ २३॥
तदन्तरे महद् भूतं युगान्तादित्यसंनिभम्।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥ २४॥
गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः।
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः॥ २५॥

इसी बीच क्रुद्ध वह राक्षसराज राजाको मारनेके लिये उसी स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ देवी सरस्वती थीं। बलसे दर्पित वह राक्षस शूल उठाकर तीनों लोकोंकी जननीके उस सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित स्थानमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगा। इसी बीच किसी प्रलयकालीन सूर्यके समान महान् बलशालीने शूलसे उसके वक्ष:स्थलको विदीर्ण कर पृथ्वीपर गिरा दिया और कहा—महाराज! आप अब निर्भय होकर शीघ्र ही इस स्थानसे चले जायँ, यहाँ अब फिर रुकें नहीं, राक्षस मारा जा चुका है॥ २२—२५॥

ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः पराम्।
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरंदरपुरोपमाम्॥ २६॥
स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम्॥ २७॥
तस्य चासीद् दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः।
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः॥ २८॥
तस्मात् करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत् ततः।
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः॥ २९॥
मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात् कुरुवशोऽभवत्।
पुत्रद्वयमभूत् तस्य सुत्रामा चानुरेव च॥ ३०॥

ब्राह्मणो! तब प्रसन्न मनवाला वह नवरथ उन परादेवीको प्रणामकर इन्द्रकी नगरीके समान अपनी नगरीको चला गया। वहाँ उसने भक्तियुक्त होकर देवेश्वरी सरस्वतीकी स्थापना की और विविध यज्ञों तथा होमोंके द्वारा उन देवीका यजन किया। उसका दशरथ नामक परम धार्मिक

पुत्र था। वह महातेजस्वी देवीका भक्त था। उसका पुत्र शकुनि था। उससे करम्भ हुआ उसका देवरात हुआ, उसने अश्वमेध यज्ञ किया (जिसके फलस्वरूप) उसको देवक्षत्र नामक पुत्र हुआ। उस (देवक्षत्र)-का पुत्र मधु हुआ, उससे कुरुवश हुआ। उसके सुत्रामा तथा अनु नामक दो पुत्र हुए॥ २६—३०॥

अनोस्तु पुरुकुत्सोऽभूदशुस्तस्य च रिक्थभाक्।
अथाशो सत्त्वतो नाम विष्णुभक्त प्रतापवान्।
महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदा वर ॥ ३१ ॥
स नारदस्य वचनाद् वासुदेवार्चनान्वितम्।
शास्त्र प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभि श्रुतम्॥ ३२ ॥
तस्य नाम्ना तु विख्यात सात्त्वत नाम शोभनम्।
प्रवर्तते महाशास्त्र कुण्डादीना हितावहम्॥ ३३ ॥
सात्त्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारद ।
पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम्॥ ३४ ॥
सात्त्वत सत्त्वसम्पन्न कौशल्या सुषुवे सुतान्।
अन्धक वै महाभोज वृष्णि देवावृध नृपम्।
ज्येष्ठ च भजमानाख्य धनुर्वेदविदा वरम्॥ ३५ ॥

अनुका पुरुकुत्स हुआ तथा उसका पुत्र अशु था। अशुका पुत्र सत्त्वत था जो विष्णुभक्त, प्रतापी, महात्मा दानशील और धनुर्वेद जाननेवालाम श्रेष्ठ था। उसने नारदजीके कहनपर वासुदवकी पूजासे युक्त शास्त्रका प्रवर्तन किया, जिसे कुण्डगोलकाने[1] सुना। उसके नामसे सात्त्वत ऐसा विख्यात कुण्डादिकाके लिये कल्याणकारी सुन्दर शास्त्र प्रवर्तित हुआ। उस (सत्त्वत)-का सभी शास्त्रोंमे पारगत सात्त्वत नामक पुत्र हुआ, वह महाराज पुण्यश्लोक था। उसने उस सात्त्वत शास्त्रका प्रवर्तन किया। सत्त्वसम्पन्न सात्त्वतकी पत्नी कौशल्याने अन्धक महाभोज वृष्णि राजा देवावृध तथा धनुर्वेदज्ञोमे श्रेष्ठ भजमान नामक ज्येष्ठ पुत्रको जन्म दिया॥ ३१—३५॥

तेषां देवावृधो राजा चचार परम तप ।
पुत्र सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभु ॥ ३६ ॥
तस्य बभ्रुरिति ख्यात पुण्यश्लोकोऽभवन्नृप ।
धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरत सदा॥ ३७॥
भजमानस्य सृञ्जय्या भजमाना विजज्ञिरे।
तेषा प्रधानौ विख्यातौ निमि कृकण एव च॥ ३८॥
महाभाजकुले जाता भोजा वैमार्तिकास्तथा।
वृष्णे सुमित्रो बलवाननमित्र शिनिस्तथा॥ ३९॥
अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ।
प्रसेनस्तु महाभाग सत्राजिन्नाम चोत्तम ॥ ४० ॥

उनमेसे राजा देवावृधने 'मुझे सभी गुणोसे सम्पन्न शक्तिशाली पुत्र हो' इस आशयसे परम तप किया। उसका पुत्र बभ्रु नामसे विख्यात पुण्यश्लोक राजा हुआ। वह धर्मात्मा रूप-सम्पन्न तथा सदा तत्त्वज्ञान-परायण रहता था। भजमानके सृञ्जयी (पत्नी)-से भजमान ही नामवाले (अनेक) पुत्र हुए। उनमसे निमि तथा कृकण—ये दो प्रधान तथा विख्यात थे। महाभाजके वशमे भोज तथा वैमार्तिक उत्पन्न हुए। वृष्णिके बलवान् सुमित्र, अनमित्र तथा शिनि हुए। अनमित्रसे निघ्न हुआ और निघ्नके महाभाग्यवान् प्रसेन तथा श्रेष्ठ सत्राजित् नामवाले दो पुत्र हुए॥ ३६—४०॥

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्।
सत्यवान् सत्यसम्पन्न सत्यकस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४१ ॥
सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत् सुत ।
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगंधर ॥ ४२॥
माद्र्या वृष्णे सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दन ।
जज्ञाते तनयौ पृश्ने श्वफल्कश्चित्रकश्च ह॥ ४३॥
श्वफल्क काशिराजस्य सुता भार्यामविन्दत।
तस्यामजनयत् पुत्रमक्रूर नाम धार्मिकम्।
उपमद्गुस्तथा मद्गुरन्ये च बहव सुता ॥ ४४॥
अक्रूरस्य स्मृत पुत्रो देववानिति विश्रुत ।
उपदेवश्च पुण्यात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ॥ ४५॥

कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुआ। उसका सत्यक नामक पुत्र हुआ जो सत्य बोलनेवाला तथा सत्यसम्पन्न था। सत्यकका पुत्र युयुधान और उसका पुत्र असङ्ग हुआ। उसका पुत्र बुद्धिमान् कुणि था और युगन्धर उसका पुत्र हुआ। वृष्णिकी माद्रीसे यदुनन्दन पृश्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृश्निका श्वफल्क तथा चित्रक नामवाले दो

१-कुण्डगोलक—कुण्ड—पतिके जीवित रहते हुए परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र।
गोलक—पतिके मर जानेपर परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र।

पुत्र हुए। श्वफल्कने काशिराजकी पुत्रीको अपनी भार्या बनाया और उससे अक्रूर नामक धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। उपमद्गु तथा मद्गु नामवाले उनके बहुतसे पुत्र थे। अक्रूरका देववान् इस नामसे प्रसिद्ध पुत्र कहा गया है। पुण्यात्मा उपदेव भी उसका पुत्र हुआ। उन दोनोको विश्व तथा प्रमाथी नामक दो पुत्र हुए॥ ४१—४५॥

चित्रकस्याभवत् पुत्र पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीव सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ ४६॥
अन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुर सुतान्।
कुकुर भजमान च शुचि कम्बलबर्हिषम्॥ ४७॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत्।
कपोतरोमा विपुलस्तस्य पुत्रो विलोमक ॥ ४८॥
तस्यासीत् तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रो नल किल।
ख्यायते तस्य नाम्नानुरनोरानकदुन्दुभि ॥ ४९॥

चित्रकके पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुपार्श्वक तथा गवेषण नामक पुत्र हुए। काश्यकी पुत्रीने अन्धकसे कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोको प्राप्त किया। कुकुरका पुत्र वृष्णि हुआ और वृष्णिका पुत्र कपोतरोमा विपुल हुआ। उसका पुत्र विलोमक हुआ। उस (विलोमक)-का विद्वान् नल नामक पुत्र हुआ जो तुम्बुरुका मित्र था, अनु भी उसका नाम हुआ। अनुका पुत्र आनकदुन्दुभि हुआ॥ ४६—४९॥

स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुल तप ।
वर तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वर ॥ ५०॥
वशस्य चाक्षया कीर्तिं गानयोगमनुत्तमम्।
गुरोरभ्यधिक विप्रा कामरूपित्वमेव च॥ ५१॥

ब्राह्मणो! उसने गोवर्धन पर्वतपर जाकर महान् तप किया। तब लोक-महेश्वर देव ब्रह्माने उसे वर प्रदान किया और कहा—तुम्हारे वशकी अक्षय कीर्ति होगी तथा तुम्हे गुरुसे भी अधिक श्रेष्ठ गानयोग (सगीत-कलाकी स्वाभाविक प्रतिभा) और इच्छानुसार रूप धारण करनेकी योग्यता प्राप्त होगी॥ ५०-५१॥

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्य वृषवाहनम्।
पूजयामास गानेन स्थाणु त्रिदशपूजितम्॥ ५२॥
तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापति ।
कन्यारत्न ददौ देवो दुर्लभ त्रिदशैरपि॥ ५३॥
तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम्।
अशिक्षयदमित्रघ्न प्रिया ता भ्रान्तलोचनाम्॥ ५४॥
तस्यामुत्पादयामास सुभुज नाम शोभनम्।
रूपलावण्यसम्पन्ना ह्रीमतीमपि कन्यकाम्॥ ५५॥

वर प्राप्तकर प्रशान्त (मनवाले) उसने देवताओद्वारा पूजित, वरणीय और वृषवाहन स्थाणु (शकर)-की गान (सगीत)-द्वारा पूजा की। गानमे रत उस (आनकदुन्दुभि)-को भगवान् देव अम्बिकापति (शकर)-ने देवताओके लिये भी दुर्लभ विवाह करने योग्य कन्यारूपी रत्न प्रदान किया। भार्या-रूपम उसका साथ प्राप्तकर शत्रुनाशक राजाने उस चञ्चल आँखोवाली अपनी प्रिया भ्रान्तलोचनाको श्रेष्ठ गानयोग सिखलाया। (राजाने) उससे सुन्दर भुजावाले शोभन नामक पुत्र तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न ह्रीमती नामकी कन्याको उत्पन्न किया॥ ५२—५५॥

ततस्त जननी पुत्र बाल्ये वयसि शोभनम्।
शिक्षयामास विधिवद् गानविद्या च कन्यकाम्॥ ५६॥
कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद् गुरो ।
उद्वाहात्मजा कन्या गन्धर्वाणा तु मानसीम्॥ ५७॥
तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान्।
वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्॥ ५८॥

तब माता (भ्रान्तलोचना)-ने बाल्यावस्थाम ही उस शोभन नामक पुत्रको तथा कन्या (ह्रीमती)-को भी विधिवत् गानविद्याकी शिक्षा प्रदान की। उपनयन होनेके अनन्तर विधिपूर्वक गुरुसे वेदोका अध्ययनकर (शोभनने) गन्धर्वोकी मानसी नामक कन्यासे विवाह किया और उससे वीणा बजानेका तत्त्व जाननेवाले तथा सगीतशास्त्रमे पारगत पाँच श्रेष्ठ पुत्रोको उत्पन्न किया॥ ५६—५८॥

पुत्रै पौत्रै सपत्नीको राजा गानविशारद ।
पूजयामास गानेन देव त्रिपुरनाशनम्॥ ५९॥
ह्रीमती चापि या कन्या श्रीरिवायतलोचना।
सुबाहुर्नाम गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम्॥ ६०॥
तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजस ।
सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहना ॥ ६१॥

पुत्र-पौत्र तथा पत्नीसहित गानविद्याम पारगत उस

राजाने गायनद्वारा त्रिपुरका नाश करनेवाले देव (शंकर)-की पूजा की। लक्ष्मीके सदृश विशाल नेत्रोंवाली जो ह्रीमती नामकी कन्या थी, सुबाहु नामक गन्धर्व उसे लेकर अपनी पुरीमें चला गया। अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वको भी उस (ह्रीमती)-से सुषेण, वीर, सुग्रीव, सुभोज तथा नरवाहन नामके पुत्र हुए॥ ५९—६१॥

अथासीदभिजित् पुत्रो वीरस्त्वानकदुन्दुभे।
पुनर्वसुश्चाभिजित सम्बभूवाहुकः सुतः॥ ६२॥
आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥ ६३॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तथा स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ॥ ६४॥
वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता।
श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता।
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत् सुमध्यमा॥ ६५॥

आनकदुन्दुभिका अभिजित् नामक एक वीर पुत्र था। अभिजित्‌का पुनर्वसु और उससे आहुकका जन्म हुआ। द्विजोत्तमो! आहुकके दो पुत्र हुए—उग्रसेन और देवक। देवकके देवताओंके समान देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देवरक्षित नामवाले चार वीर पुत्र हुए। इनकी सात बहनें थीं—वृकदेवा उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सुव्रता सहदेवा तथा देवकी। इनमें सुन्दर मध्यभागवाली देवकी सबसे बड़ी थी। ये सभी वसुदेवको दी गयीं॥ ६२—६५॥

उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्न्यग्रोधः कंस एव च।
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च॥ ६६॥
भजमानादभूत् पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः।
तस्य शूरः शमिस्तस्मात् प्रतिक्षत्रस्ततोऽभवत्॥ ६७॥
स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद् हृदिकः शत्रुतापनः।
कृतवर्माथ तत्पुत्रो देवरस्तत्सुतः स्मृतः।
स शूरस्तत्सुतो धीमान् वसुदेवोऽथ तत्सुतः॥ ६८॥

उग्रसेनके न्यग्रोध, कंस सुभूमि, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् तथा शङ्कु नामवाले पुत्र थे। भजमानका प्रख्यात विदूरथ नामवाला पुत्र हुआ। उसका पुत्र शूर उससे शमि और शमिका प्रतिक्षत्र नामक पुत्र हुआ। उस (प्रतिक्षत्र)-से स्वयम्भोज और उससे शत्रुओंको ताप पहुँचानेवाला पुत्र हृदिक हुआ। उसका पुत्र कृतवर्मा और उसका पुत्र देवर कहलाया। उस शूरसे धीमान् हुआ और उसका पुत्र वसुदेव था॥ ६६—६८॥

वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥ ६९॥
रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना।
असूत पत्नी संकर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥ ७०॥
स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः।
हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः संकर्षणः प्रभुः॥ ७१॥

देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाबाहु जगद्गुरु वासुदेव विष्णु वसुदेवसे देवकी-पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। वसुदेवकी महाभाग्यशालिनी सुन्दर रोहिणी नामक पत्नीने हलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले ज्येष्ठ पुत्र संकर्षण राम (बलराम)-को जन्म दिया। वह परमात्मा (विष्णु) ही ये जगन्मय (वसुदेवपुत्र) वासुदेव हैं। हलायुध (बलराम) संकर्षण स्वयं साक्षात् प्रभु शेष हैं॥ ६९—७१॥

भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम्।
बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः॥ ७२॥
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी।
नियोगाद् वासुदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत्॥ ७३॥

भृगुके शापके कारण वे माधव विष्णु भी मनुष्य-शरीर स्वीकार कर उन देवकी तथा रोहिणीसे उत्पन्न हुए। उमाकी देहसे उत्पन्न योगनिद्रारूप कौशिकीदेवी वासुदेवकी आज्ञासे यशोदाकी पुत्री हुई॥ ७२-७३॥

ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः।
प्रागेव कंसस्तान् सर्वान् जघान मुनिपुंगवाः॥ ७४॥
सुषेणश्च तथोदायी भद्रसेनो महाबलः।
ऋजुदासो भद्रदासः कीर्तिमानपि पूर्वजः॥ ७५॥
हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः।
असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम्॥ ७६॥

मुनिश्रेष्ठो! वसुदेवके अन्य जो वासुदेव नामवाले ज्येष्ठ पुत्र थे उन सबको कंसने पहले ही मार डाला। सुषेण उदायी, भद्रसेन, महाबल, ऋजुदास भद्रदास और पूर्वमें उत्पन्न कीर्तिमान्—इन सभी (वासुदेवके बड़े भाइयों)-के मारे जानेपर रोहिणीने वसुदेवमें संसारके

स्वामी! हलायुध बलभद्र राम (बलराम)-को जन्म दिया॥ ७४—७६॥

जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम्।
असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ७७॥

राम (बलराम)-के उत्पन्न होनेके पश्चात् देवकीने देवताओके आदि कारण, आत्मरूप, श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित वक्ष स्थलवाले अच्युत कृष्णको जन्म दिया॥ ७७॥

रेवती नाम रामस्य भार्यासीत् सुगुणान्विता।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोल्मुकौ॥ ७८॥

बलरामकी सुन्दर गुणोसे युक्त रेवती नामकी भार्या थीं। उन्होने उनसे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्राको उत्पन्न किया॥ ७८॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मण।
बभूवुरात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रश॥ ७९॥
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधर।
चारुश्रवाश्चारुयशा प्रद्युम्न शख एव च॥ ८०॥
रुक्मिण्या वासुदेवस्य महाबलपराक्रमा।
विशिष्टा सर्वपुत्राणा सम्बभूवुरिमे सुता॥ ८१॥

(वसुदेव-देवकीसे उत्पन्न साक्षात् विष्णु) अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार पत्नियाँ थीं और उनसे सैकडों हजारो पुत्र हुए। वासुदेव श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणीसे चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न तथा शङ्ख नामवाले महान् बलशाली और पराक्रमसम्पन्न पुत्र हुए। ये पुत्र सभी पुत्रोमे विशिष्ट हुए॥ ७८—८१॥

तान् दृष्ट्वा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयाञ्जनार्दनम्।
जाम्बवत्यब्रवीत् कृष्ण भार्या तस्य शुचिस्मिता॥ ८२॥
मम त्व पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तमम्।
सुरेशसदृश पुत्र देहि दानवसूदन॥ ८३॥
जाम्बवत्या वच श्रुत्वा जगन्नाथ स्वय हरि।
समारेभे तप कर्तुं तपोनिधिररिंदम॥ ८४॥

रुक्मिणीसे उत्पन्न इन वीर पुत्रोको देखकर पवित्र मुसकानवाली पत्नी जाम्बवतीने अपने पति जनार्दन श्रीकृष्णसे कहा—पुण्डरीकाक्ष! दानवसूदन! आप मुझे इन्द्रके समान विशिष्ट गुणवानोमे श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करे। जाम्बवतीका कथन सुनकर शत्रुओका दमन करनेवाले तपोनिधि जगन्नाथ स्वय हरिने तप करना प्रारम्भ किया॥ ८२—८४॥

तच्छृणुध्व मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुत।
दृष्ट्वा लेभे सुत रुद्र तप्त्वा तीव्र महत् तप॥ ८५॥

मुनिश्रेष्ठो! उन देवकीपुत्र (श्रीकृष्ण)-ने जिस प्रकार अत्यन्त तीव्र महान् तपके द्वारा रुद्रका दर्शनकर पुत्र प्राप्त किया, उस (वृत्तान्त)-को आपलोग सुने॥ ८५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोविंशोऽध्याय॥ २३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने-हेतु भगवान् श्रीकृष्णका महामुनि उपमन्युके आश्रममे जाना, महामुनि उपमन्युद्वारा उन्हे पाशुपत-योग प्रदान करना, तपस्यामे निरत कृष्णको शिव-पार्वतीका दर्शन और श्रीकृष्णद्वारा उनकी स्तुति करना, शिवद्वारा पुत्र-प्राप्तिका वर देना तथा माता पार्वतीद्वारा अनेक वर देना और शिवके साथ श्रीकृष्णका कैलास-गमन

सूत उवाच

अथ देवो हृषीकेशो भगवान् पुरुषोत्तम।
तताप घोर पुत्रार्थं निदान तपसस्तप॥ १॥
स्वेच्छयाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वधृक्।
चचार स्वात्मनो मूल बोधयन् भावमैश्वरम्॥ २॥
जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम्।
आश्रम तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मन॥ ३॥
पतत्त्रिराजमारूढ सुपर्णमतितेजसम्।
शङ्खचक्रगदापाणि श्रीवत्सकृतलक्षण॥ ४॥

सूतजी बोले—हृषीकेश भगवान् पुरुषोत्तम देवने पुत्र-

प्राप्तिके लिये तपस्याके निदान[1]-रूपमें (सर्वोत्कृष्ट) घोर तपस्या की। अपनी इच्छासे ही अवतीर्ण कृतकृत्य, विश्वका धारण करनेवाले ये श्रीकृष्ण (अपने) स्वरूपके मूल ईश्वर-भावका परिज्ञान करानेके लिये (उत्तम तप-स्थलके अन्वेषणके बहाने पक्षिराज गरुडपर आरूढ होकर) विचरण करने लगे। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा लिये तथा श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित (श्रीकृष्ण) योगियोंद्वारा सेवित अनेक प्रकारके पक्षिसमूहोंसे व्याप्त मुनीन्द्र महात्मा उपमन्युके आश्रममें पहुँचे॥ १—४॥

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्॥ ५ ॥
सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम्।
विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम्॥ ६ ॥
आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः।
ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा॥ ७ ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः।
योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रगतलोचनैः ॥ ८ ॥
उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः॥ ९ ॥
सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः।
प्रशान्तैः सत्यसंकल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः॥ १० ॥
भस्मावदातसर्वाङ्गैः रुद्रजाप्यपरायणैः।
मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः।
सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मचारिभिः॥ ११ ॥

वह आश्रम विविध प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित, ऋषियोंके आश्रमोंसे युक्त तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनियोंसे निनादित था। सिंह, भालू, शरभ, व्याघ्र और हाथियोंसे व्याप्त था, स्वच्छ, स्वादुयुक्त, पीने योग्य जलवाले सरोवरोंसे सुशोभित था, विविध प्रकारके उद्यानों तथा शुभ देवमन्दिरोंसे सम्पन्न था। ऋषियों, ऋषिपुत्रों, महामुनिगणों, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा अग्निहोत्र करनेवालोंसे सेवित था। नासिकाके अग्रभागमें जिनकी दृष्टि लगी हुई है, ऐसे ध्यानपरायण योगियोंसे युक्त सभी प्रकारसे पवित्र, तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंसे सेवित और चारों ओर नदियोंसे घिरा था। वह आश्रम ब्रह्मवादी जापकों, शंकरकी आराधनामें निरत पवित्र तपस्वियोंसे सेवित, सत्यसंकल्पवाले, परम शान्त, शोक तथा उपद्रवरहित यथाविधि सभी अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए रुद्रके जपमें परायण, मुण्डित या मात्र जटा रखे हुए तथा जटाके समान शिखावाले अन्य तपस्वियों, ज्ञानियों और ब्रह्मचारियोंसे नित्य सेवित था॥ ५—११॥

तत्राश्रमवरे रम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते।
गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी॥ १२॥
स तानन्विष्य विश्वात्मा तापसान् वीतकल्मषान्।
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः॥ १३॥

वहाँ सिद्धोंके आश्रमोंसे सुशोभित उस रमणीय श्रेष्ठ आश्रममें पापोंका नाश करनेवाली भगवती गङ्गा नित्य प्रवाहित रहती थीं। उन विश्वात्मा माधवने उन कल्मषरहित तपस्वियोंको ढूँढ-ढूँढकर उनके समीप जाकर उन्हें सविधि प्रणाम किया और स्तुतिपूर्वक उनकी पूजा की॥ १२-१३॥

तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम्॥ १४॥
स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम्।
प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम्॥ १५॥

उन शङ्ख, चक्र, गदाधारी योगियोंके परम गुरु, जगद्योनि (श्रीकृष्ण)-को देखकर उन्होंने (तपस्वियोंने) भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अव्यक्त आदिदेव, महामुनि तथा उन सनातन (देव)-का हृदयमें ध्यानकर वैदिक मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे और आपसमें कहने लगे—॥ १४-१५॥

अयं स भगवानेकः साक्षान्नारायणः परः।
आगच्छत्यधुना देवः पुराणपुरुषः स्वयम्॥ १६॥
अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः।
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टुमिहागतः॥ १७॥
एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः।
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः॥ १८॥

ये वही अद्वितीय परम साक्षात् नारायण भगवान् हैं।

१-जो तपस्या उत्कृष्ट तपस्याके लिये दृष्टान्त होती है तपस्याकी सत्यताका निकष (कसौटी) होती है उसे तपस्याका निदान कहते हैं।

स्वय पुराणपुरुष देव ही इस समय आये हुए हैं। ये ही अव्यय हैं, सृष्टि करनेवाले, सहार करनेवाले तथा पालन करनेवाले ये ही हैं। अमूर्त हाते हुए भी ये मूतिमान् होकर मुनियोको देखनेके लिये यहाँ आये हुए हैं। ये धाता, विधाता और सर्वव्यापी ही आ रहे हैं। ये अनादि, अक्षय, अनन्त, महाभूत और महेश्वर हैं॥ १६—१८॥

श्रुत्वा श्रुत्वा हरिस्तेया वर्चांसि यचनातिग ।
ययौ स तूर्णं गोविन्द स्थान तस्य महात्मन ॥ १९॥
उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादव ।
चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्॥ २०॥
नदीना तीरसस्थानि स्थापितानि मुनीश्वरै ।
लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजस ॥ २१॥

वाणीके अगोचर गोविन्द हरि उन (तपस्विया)-के वचनोंको सुनते हुए शीघ्र ही उन महात्मा (उपमन्यु)-के स्थानपर गये। उन यदुवशी देवकीपुत्र श्रीकृष्णने प्रत्येक तीर्थमें श्रद्धापूर्वक आचमनकर (मार्जनकर) देवता, ऋषि और पितराका तर्पण किया और मुनीश्वरोंके द्वारा नदियोंके किनारे स्थापित अमिततेजस्वी शकरके लिङ्गोंकी पूजा की॥ १९—२१॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा समायान्त यत्र यत्र जनार्दनम्।
पुजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तत्र वासिन ॥ २२॥
समीक्ष्य वासुदेव त शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्।
तस्थिरे निश्चला सर्वे शुभाङ्ग तन्निवासिन ॥ २३॥
यानि तत्रारुरुक्षूणा मानसानि जनार्दनम्।
दृष्ट्वा समाहितान्यासन् निष्क्रामन्ति पुरा हरिम्॥ २४॥

वहाँके निवासियाने जहाँ-जहाँ भी जनार्दनको आते हुए देखा वहाँ-वहाँ पुष्पा तथा अक्षतोसे उनकी पूजा की। शार्ङ्गधनुष शङ्ख तथा असि धारण करनेवाले एव शुभ अङ्गवाले उन वासुदेवका दर्शनकर वहाँ रहनेवाले सभी निश्चल-से खडे हो गये। वहाँ (योगम) आरूढ होनेके इच्छुक जिन लोगोंके मन समाधिस्थ थे, वे भी जनार्दन हरिको अपने सम्मुख देखकर उनका दर्शन करनेके लिये अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख कर लिये॥ २२—२४॥

अथावगाह्य गङ्गाया कृत्वा देवादितर्पणम्।
आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम्॥ २५॥
दृष्ट्वा त योगिना श्रेष्ठ भस्मोद्धूलितविग्रहम्।
जटाचीरधर शान्त ननाम शिरसा मुनिम्॥ २६॥

इधर श्रीकृष्णने गङ्गाम अवगाहन करनेके पश्चात् देवताओं, पितरो आदिका दर्शन तर्पण आदि कर उत्तमोत्तम पुष्प आदि लेकर श्रेष्ठ मुनि (उपमन्यु)-के गृहम प्रवेश किया। योगियाम श्रेष्ठ, भस्मसे अवलिप्त शरीरवाले, जटा और चीरधारी उन शान्त मुनिको देखकर (श्रीकृष्णने) सिर झुकाकर उन्हे प्रणाम किया॥ २५-२६॥

आलोक्य कृष्णमायान्त पूजयामास तत्त्ववित्।
आसने चासयामास योगिना प्रथमातिथिम्॥ २७॥

कृष्णको आते हुए देखकर तत्त्वज्ञ उन मुनिने योगियोके प्रथम पूज्य उन्हें आसनपर बिठाया और उनकी पूजा की॥ २७॥

उवाच वचसा योनि जानीम परम पदम्।
विष्णुमव्यक्तसस्थान शिष्यभावेन सस्थितम्॥ २८॥
स्वागत ते हृषीकेश सफलानि तपासि न ।
यत् साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेह विष्णुरागत ॥ २९॥
त्वा न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपि हि योगिन ।
तादृशस्याथ भवत किमागमनकारणम्॥ ३०॥

(मुनिने कहा—)हम जानते हैं कि वाणीके उत्पत्ति-स्थान परमपदरूप, अव्यक्त शरीरवाले विष्णु शिष्यके रूपमे उपस्थित हुए हैं। हृषीकश! आपका स्वागत है, हमारे तप सफल हुए, जो साक्षात् विश्वात्मा विष्णु ही मेरे घर आये हैं। प्रयत्न करते हुए भी योगी तथा मुनिजन आपको देख नहीं पाते, ऐसे आपके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है?॥ २८—३०॥

श्रुत्वोपमन्योस्तद् वाक्य भगवान् केशिमर्दन ।
व्याजहार महायोगी वचन प्रणिपत्य तम्॥ ३१॥

उपमन्युके उस वाक्यको सुनकर केशीका मर्दन करनेवाले महायोगी भगवान्ने उन्हे प्रणामकर कहा—॥ ३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीश कृत्तिवाससम्।
सम्प्राप्तो भवत स्थान भगवद्दर्शनोत्सुक ॥ ३२॥
कथ स भगवानीशो दृश्यो योगविदा वर ।
मयाचिरेण कुत्राह द्रक्ष्यामि तमुमापतिम्॥ ३३॥

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! भगवान् शकरके दर्शनोके लिये उत्सुक मैं आया हूँ। कृत्तिवासा गिरीश (भगवान् शकर)-का दर्शन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। योगविदोमे श्रेष्ठ भगवान् ईशका शीघ्र ही कैसे दर्शन कर सकता हूँ, उन उमापतिको मैं कहाँ देख पाऊँगा॥ ३२-३३॥

इत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वर।
भक्त्या चोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह यत्नत॥ ३४॥
इहेश्वर देवदेव मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिन।
ध्यायन्तोऽत्रासते देव जापिनस्तापसाश्च ये॥ ३५॥
इह देव सपत्नीको भगवान् वृषभध्वज।
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभि परिवारित॥ ३६॥

एसा कह जानेपर भगवान् (उपमन्यु)-ने कहा—तीव्र भक्ति एव तपस्याके द्वारा वे परमेश्वर देखे जा सकते हैं, इसलिये ऐसा ही प्रयत्न करो। ब्रह्मवादी मुनीन्द्र, जप करनेवाले तथा जो तपस्वी हैं वे, यहाँ उन देव ईश्वर देवाधिदेवका ध्यान करते हुए निवास कर रहे हैं। यहाँ भगवान् देव वृषभध्वज पत्नी (पार्वती)-सहित तथा विविध भूतो और योगियोसे घिरे हुए सदा क्रीडा करते हैं॥ ३४—३६॥

इहाश्रमे पुरा रुद्रात् तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।
लेभे महेश्वराद् योग वसिष्ठो भगवानृषि॥ ३७॥
इहैव भगवान् व्यास कृष्णद्वैपायन प्रभु।
दृष्ट्वा त परम ज्ञान लब्धवानीश्वरेश्वरम्॥ ३८॥
इहाश्रमवरे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिन।
अविन्दत् पुत्रकान् रुद्रात् सुरभिर्भक्तिसयुता॥ ३९॥
इहैव देवता पूर्वं कालाद् भीता महेश्वरम्।
दृष्टवन्तो हर श्रीमन्निर्भया निर्वृति ययु॥ ४०॥
इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपता वर।
लब्धवान् परम योग ग्रन्थकारत्वमुत्तमम्॥ ४१॥
प्रवर्तयामास, शुभा कृत्वा वै सहिता द्विज।
पौराणिकीं सुपुण्यार्थां सच्छिष्येषु द्विजातिषु॥ ४२॥

प्राचीन कालमे इस आश्रममे कठोर तप करके भगवान् वसिष्ठ ऋषिने महेश्वर रुद्रसे योग प्राप्त किया था। यहीं प्रभु कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासने उन ईश्वरोंके भी ईश्वर (भगवान् शकर)-का दर्शनकर परम ज्ञान प्राप्त किया था। इसी रमणीय श्रेष्ठ आश्रमम सुरभिने भक्तिपूर्वक तपस्या करके जटाधारी रुद्रसे पुत्रोको प्राप्त किया था। पूर्वकालमे कालसे भयभीत देवताओने यहींपर श्रीमान् हर (महाकाल)-का दर्शनकर भयसे रहित होकर शान्ति प्राप्त की थी। तपस्वियोम श्रेष्ठ द्विज सावर्णिने यहींपर महादेवकी आराधना करके परम योग तथा उत्तम ग्रन्थरचनाकी शक्ति प्राप्त किया था। तभी उन्होने कल्याणकारिणी सुन्दर पुण्य प्रदान करनेवाली पुराणसहिताका निर्माणकर सत्-शिष्यों और द्विजातियोमें उसका प्रवर्तन किया॥ ३७—४२॥

इहैव सहिता दृष्ट्वा कापेय शाशपायन।
महादेव चकारमा पौराणीं तन्नियोगत।
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकाना पुरुषोत्तम॥ ४३॥
इह प्रवर्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा।
वायवीयोत्तर नाम पुराण वेदसम्मितम्।
इहैव ख्यापितं शिष्यै शाशपायनभाषितम्॥ ४४॥

पुरुषोत्तम! इसी स्थानपर कापेय शाशपायनने महादेवका दर्शनकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके बारह हजार श्लोकोंवाली इस (कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा वर्णित) पुराणसहिताका निर्माण किया। वेदसम्मत पुण्य वायवीयपुराणसहिताका सोलह हजार श्लोकोवाला उत्तरभाग यहींपर प्रवर्तित हुआ। यहींपर शाशपायनद्वारा कही गयी पुराणसहिताका प्रचार उनके शिष्योने किया॥ ४३-४४॥

याज्ञवल्क्या महायोगी दृष्ट्वात्र तपसा हरम्।
चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्॥ ४५॥
इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा वै परम तप।
शुक्रो महेश्वरात् पुत्रो लब्धो योगविदा वर॥ ४६॥
तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा महेश्वरम्।
द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्र भीम कपर्दिनम्॥ ४७॥
एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनि।
व्रत पाशुपत योग कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे॥ ४८॥

महायोगी याज्ञवल्क्यने यहींपर तपस्याद्वारा शकरका दर्शन करके उनकी आज्ञासे श्रेष्ठ योगशास्त्रका निर्माण किया था। पूर्वकालमे भृगुने यहीं परम तप करके महेश्वरसे योगज्ञोमे श्रेष्ठ शुक्र नामक पुत्रको प्राप्त किया था। इसलिये

यहींपर तपस्या करके देवताओके ईश, महेश्वर विश्वेश, उग्र, भीम कपर्दीका आप दर्शन करें। ऐसा कहकर महामुनि उपमन्युने सुन्दर कर्म करनेवाले कृष्णको पाशुपतयोग, पाशुपत-व्रत और पाशुपत-ज्ञान प्रदान किया॥ ४५—४८॥

स तेन मुनिवर्येण व्याहतो मधुसूदन।
तत्रैव तपसा देव रुद्रमाराधयत् प्रभु॥ ४९॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मुण्डो वल्कलसयुत।
जजाप रुद्रमनिश शिवैकाहितमानस॥ ५०॥
ततो बहुतिथे काले सोम सोमार्धभूषण।
अदृश्यत महादेवो व्योम्नि देव्या महेश्वर॥ ५१॥

उन श्रेष्ठ मुनिके कहनेसे वे प्रभु मधुसूदन वहींपर तपस्याद्वारा रुद्रकी आराधना करने लगे। सभी अङ्गोमे यथाविधि भस्म धारण करके मुण्डित एव वल्कल वस्त्रधारी होकर अनन्य-मनसे शिवमें चित्तको समाहितकर निरन्तर रुद्रसम्बन्धी मन्त्रोका जप करने लगे। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेके बाद अर्धचन्द्रमाको आभूषणरूपमे धारण किये सोमरूप महादेव महेश्वर देवी पार्वतीके साथ आकाशमे दिखलायी पडे॥ ४९—५१॥

किरीटिन गदिन चित्रमाल
पिनाकिन शूलिन देवदेवम्।
शार्दूलचर्माम्बरसवृताङ्ग
देव्या महादेवमसौ ददर्श॥ ५२॥
परश्वधासक्तकर त्रिनेत्र
नृसिहचर्मावृतसर्वगात्रम्।
समुद्गिरन्त प्रणव बृहन्त
सहस्रसूर्यप्रतिमं ददर्श॥ ५३॥
प्रभु पुराण पुरुष पुरस्तात्
सनातन योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयासमनन्तशक्ति
प्राणेश्वर शम्भुमसौ ददर्श॥ ५४॥
न यस्य देवा न पितामहोऽपि
नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्यु।
प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्र
तमादिदेव पुरतो ददर्श॥ ५५॥
तदान्वपश्यद् गिरिशस्य वामे
स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम्।
स्तुवन्तमीश बहुभिर्वचोभि
शङ्खासिचक्रार्पितहस्तमाद्यम्॥ ५६॥

उन (श्रीकृष्ण)-ने मुकुट, गदा, त्रिशूल, पिनाकधनुप तथा चित्र-विचित्र माला धारण किये हुए, सिहके चर्म-रूपी वस्त्रसे समस्त अङ्गाको आच्छादित किये हुए देवाधिदेव महादेवको देवी पार्वतीके साथ देखा। हाथमे परशु धारण किये हुए, नृसिहके चर्मसे आच्छादित शरीरवाले, प्रणवका उच्चारण कर रहे तथा सहस्रा सूर्योके समान श्रेष्ठ त्रिलोचन-भगवान् शकरका श्रीकृष्णने दर्शन किया। उन्होने (श्रीकृष्णने) अपने समक्ष पुराणपुरुष, सनातन प्रभु, योगी ईश्वर, अणुसे भी सूक्ष्म, अनन्तशक्तियुक्त प्राणेश्वर शम्भुको देखा। जिन (रुद्र)-के प्रभावका देवता, पितामह, इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा यम भी आजतक वर्णन नहीं कर पाये, उन आदिदेवको श्रीकृष्णने सामने देखा। उस समय उन्होंने भगवान् शकरके वामभागमे शङ्ख, तलवार तथा चक्र धारण किये आत्मरूप, अव्यक्त, अनन्त तथा अनन्तरूपवाले आदिदेव (विष्णु)-को देखा। वे भी बहुत-सी स्तुतियोके द्वारा ईश (शकर)-की ही स्तुति कर रहे थे॥ ५२—५६॥

कृताञ्जलि दक्षिणत सुरेश
हसाधिरूढ पुरुष ददर्श।
स्तुवानमीशस्य पर प्रभाव
पितामह लोकगुरु दिविस्थम्॥ ५७॥
गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्
नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान्।
त्रिलोकभर्तु पुरतोऽन्वपश्यत्
कुमारमग्निप्रतिम सशाखम्॥ ५८॥
मरीचिमत्रि पुलह पुलस्त्य
प्रचेतस दक्षमथापि कण्वम्।
पराशर तत्परतो वसिष्ठ
स्वायम्भुव चापि मनु ददर्श॥ ५९॥

उन (भगवान् शकर)-के दक्षिण भागमे उन्होंने (श्रीकृष्णने) हसपर आसीन अत्यन्त प्रभाववाले, देवताओके स्वामी

लोकगुरु पितामहको आकाशमे हाथ जोडे हुए ईशकी स्तुति करते देखा। उन्होंने (श्रीकृष्णने) तीनों लोकोंके स्वामी (श्रीशंकर)-के सम्मुख हजारों सूर्योके समान गणेश्वरों अमित प्रभाववाले नन्दीश्वरादिको तथा मयूरसहित अग्नि-सदृश कुमार कार्तिकेयको देखा। उनके पीछेकी ओर मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, दक्ष, कण्व, पराशर, वसिष्ठ तथा स्वायम्भुव मनुको भी देखा॥ ५७—५९॥

तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं
बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः।
प्रणम्य देव्या गिरिशं सभक्त्या
स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य॥ ६०॥

उन उदार बुद्धिवाले विष्णु (कृष्ण)-ने भक्तिपूर्वक हाथ जोडते हुए देवी पार्वतीसहित शंकरको प्रणाम किया तथा अपने हृदयमें आत्म-स्वरूपका ध्यानकर देवताओंमें प्रधान शंकरकी मन्त्रोंद्वारा स्तुति की—॥ ६०॥

श्रीकृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥ ६१॥

त्वं ब्रह्मा हरिरथ विश्वयोनिरग्निः
संहर्ता दिनकरमण्डलाधिवासः।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेद-
स्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥ ६२॥

सांख्यास्त्वां विगुणमथाहुरेकरूपं
योगास्त्वां सततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमग्निं
त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥ ६३॥

श्रीकृष्ण बोले—शाश्वत! सबके मूलकारण! आपको नमस्कार है। ऋषिलोग आपको ब्रह्माका भी अधिपति कहते हैं। संतजन तप, सत्त्व, रज एवं तमोगुण और सब कुछ आपको ही बतलाते हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु, विश्वयोनि अग्नि, संहर्ता और सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाले हैं। प्राण, हुतवह (अग्नि) तथा इन्द्रादि विविध देव आप ही हैं। मैं अद्वितीय देव ईशकी शरणमें आया हूँ। सांख्यशास्त्रवाले आपको एकरूप और गुणातीत कहते हैं। योगिजन हृदयमें रहनेवाले आपकी सतत उपासना करते हैं। वेद आपको रुद्र, अग्नि नामसे कहते हैं। मैं आप ईशदेवकी शरणमें आया हूँ॥ ६१—६३॥

त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं
दत्त्वासौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं
स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात्॥ ६४॥

यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं
तत्त्वं ज्योतिरनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम्।
स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते
नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं तं शिवम्॥ ६५॥

मनुष्य आपके चरणमें मात्र एक पुष्प अथवा एक बिल्वपत्र ही चढाकर संसार-बन्धनसे विमुक्त हो जाता है। सिद्धों तथा योगियोंद्वारा सेवित आपके चरणकमलोंका स्मरणकर आपकी कृपासे मनुष्य सभी पापोंको विनष्ट कर डालता है। तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें सभी प्रकारके विभागसे रहित निर्मल अन्तर्हृदयमें अवस्थित, ज्योति अनन्त, अद्वितीय, अचल सत्य पर, सर्वव्यापी तथा आदि मध्य और अन्तसे रहित स्थानरूप कहते हैं और यह (संसार) जिनसे उत्पन्न होता है ऐसे आप सत्यविभव सनातन विश्वेश्वर शिवकी शरणमें मैं आया हूँ॥ ६४-६५॥

ॐ नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे।
महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः॥ ६६॥
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने।
नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने॥ ६७॥
नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे।
नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे॥ ६८॥
नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः॥ ६९॥
नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने।
नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे॥ ७०॥

प्रणवरूप नीलकण्ठ त्रिलोचन और शक्तिरूप आपको

नमस्कार है। आप महादेव तथा नित्य ईशानको बार-बार नमस्कार है। पिनाक नामक धनुप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्ड ओर दण्ड धारण करनवाले आपको नमस्कार है। हाथमे वज्र धारण करनवाले, दिशारूपी वस्त्रवाले कपर्दी (जटाधारी) आपको नमस्कार है। भयकर नाद करनेवाले तथा दाढवाले कालस्वरूप आपको नमस्कार है। नागोको यज्ञोपवीतके रूपमे धारण करनेवाले और अग्निस्वरूप वीर्यवाले आपको नमस्कार है। गिरीश! आपको नमस्कार है, स्वाहाकार! आपका नमस्कार ह, उन्मुक्त अट्टहास करनेवाले आपको नमस्कार है और भीमरूप आपको बार-बार नमस्कार है। कामदेवका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है, कालका मन्थन करनेवाले आपको नमस्कार है, भयानक वप धारण करनवाले आपको नमस्कार है और निपङ्ग (तरकस)-धारी हरको नमस्कार है॥ ६६—७०॥

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूना पतये नम ॥७१॥
नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नम ।
नरनारीशरीराय साख्ययोगप्रवर्तिने॥७२॥
नमो दैवतनाथाय देवानुगतलिङ्गिने।
कुमारगुरवे तुभ्य देवदेवाय ते नम ॥७३॥
नमो यज्ञाधिपतये नमस्त ब्रह्मचारिणे।
मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नम ॥७४॥
नमो हसाय विश्वाय मोहनाय नमो नम ।
योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नम ॥७५॥

तीन आँखावाले आपको नमस्कार है, गजचर्म धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अम्बिकाके स्वामीको नमस्कार है और पशुपतिको नमस्कार है। आकाशरूप आपको और आकाशके अधिपतिको नमस्कार है। नर और नारीका शरीर धारण करनेवाले अर्धनारीश्वर तथा साख्य और योगका प्रवर्तन करनेवाले आपको नमस्कार है। देवताओके स्वामी और देवताओद्वारा आराधित लिङ्गवाले आपको नमस्कार है। कुमारके गुरु (कार्तिकेयके पिता) आपको तथा देवाधिदेव आपको नमस्कार है। यज्ञके अधिपतिको नमस्कार है, ब्रह्मचारीको नमस्कार है। महान् मृगव्याध तथा ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। हसरूपको नमस्कार है, विश्वरूप तथा मोहित करनवालेको बार-बार नमस्कार है। योगी, योगसे प्राप्त होने योग्य तथा योग ही जिनकी माया है ऐसे आपको नमस्कार है॥ ७१—७५॥

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च।
कपालिने नमस्तुभ्य ज्योतिषा पतये नम ॥७६॥
नमो नमो नमस्तुभ्य भूय एव नमो नम ।
मह्य सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर॥७७॥

प्राणोका पालन करनेवाले (प्राणीमात्रके प्राणरक्षक) और घटानादप्रियको नमस्कार है। कपाली आपको नमस्कार है, नक्षत्राके स्वामीको नमस्कार हे। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार हे, पुन आपको बार-बार नमस्कार है। परमेश्वर! आप मेरी अभीष्ट इच्छाओको सभी प्रकारसे मुझे प्रदान करे॥ ७६-७७॥

एव हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधव ।
पपात पादयोर्विप्रा देवदेव्यो स दण्डवत्॥७८॥
उत्थाप्य भगवान् सोम कृष्ण केशिनिषूदनम्।
बभाषे मधुर वाक्य मेघगम्भीरनि स्वन ॥७९॥

विप्रो! इस प्रकार वे माधव भक्तिपूर्वक देवशकी स्तुतिकर देव और देवी-अर्थात् शकर-पार्वतीके चरणोमे दण्डवत् गिर पड। मेघके समान गम्भीर ध्वनिवाले भगवान् शकरने केशीको मारनवाले कृष्णको उठाकर मधुर वचन कहा— ॥७८-७९॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष तपस्तप्त त्वयाव्यय।
त्वमेव दाता सर्वेषा कामाना कामिनामिह॥८०॥
त्व हि सा परमा मूर्तिर्मम नारायणाह्वया।
नानवाप्त त्वया तात विद्यते पुरुषोत्तम॥८१॥
वेत्थ नारायणानन्तमात्मान परमेश्वरम्।
महादेव महायोग स्वेन योगेन केशव॥८२॥

पुण्डरीकाक्ष! अव्यय! आपने तप क्यो किया है। (क्योकि) आप ही कामना करनेवालोकी सभी कामनाआको पूर्ण करनेवाले हैं। आप ही मेरी नारायण नामवाली परम मूर्ति हे। पुरुषोत्तम! तात! आपके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। केशव! अपने योगद्वारा आप अपनेको नारायण, अनन्त, परमेश्वर, महादेव और महायोगी जान॥ ८०—८२॥

श्रुत्वा तद्वचन कृष्ण प्रहसन् वै वृषध्वजम्।
उवाच वीक्ष्य विश्वेश देवीं च हिमशैलजाम्॥८३॥
ज्ञात हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शकर।
इच्छाम्यात्मसम पुत्र त्वद्भक्त देहि शकर॥८४॥
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हर।
देवीमालोक्य गिरिजा केशव परिषस्वजे॥८५॥

उनका यह वचन सुनकर हँसते हुए श्रीकृष्णने विश्वेश्वर तथा हिमालय-पुत्री देवी पार्वतीकी ओर देखकर वृषध्वज शकरसे कहा—प्रभो शकर! आपको अपने योगद्वारा सब कुछ ज्ञात है। मैं अपने ही समान ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो आपका भक्त हो श्रीशकर! आप मुझे प्रदान करे। प्रसन्न-मन होकर विश्वात्मा हरने 'तथास्तु' ऐसा कहकर और देवी पार्वतीकी ओर देखकर केशवका आलिङ्गन किया॥८३—८५॥

तत सा जगता माता शकरार्धशरीरिणी।
व्याजहार हृषीकेश देवी हिमगिरीन्द्रजा॥८६॥
वत्स जाने तवानन्ता निश्चला सर्वदाच्युत।
अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव॥८७॥
त्व हि नारायण साक्षात् सर्वात्मा पुरुषोत्तम।
प्रार्थितो दैवतै पूर्वं सजातो देवकीसुत॥८८॥
पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मीयममल पदम्।
नावयोर्विद्यते भेद एक पश्यन्ति सूरय॥८९॥
इमानिमान् वरानिष्टान् मत्तो गृह्णीष्व केशव।
सर्वज्ञत्व तथैश्वर्यं ज्ञान तत् पारमेश्वरम्।
ईश्वरे निश्चला भक्तिमात्मन्यपि पर बलम्॥९०॥

तदनन्तर शकरके आधे शरीरमे स्थित, ससारकी माता हिमालय पर्वतकी पुत्री देवी (पार्वती) हृषीकेशसे बोलीं। अच्युत! केशव! वत्स! मैं ईश्वर (शकर)-मे तथा मुझमें भी सर्वदा रहनेवाली आपकी अनन्त, निश्चल और अनन्य भक्तिको जानती हूँ। आप ही साक्षात् नारायण और सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं। पूर्वकालमें देवताओके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर आप देवकीके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे। आप अपने आत्मरूपको तथा अपने निर्मल पदको स्वय देखे। हम दोनोमे कोई भेद नहीं है। विद्वान् लोग (हम दोनोको) एक रूपसे देखते हैं। केशव! आप इन अभीष्ट वरोको मुझसे ग्रहण करे। आपको सर्वज्ञता, ऐश्वर्य वह परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञान शिवमे निश्चल भक्ति तथा अपनेमे श्रेष्ठ बल प्राप्त हो॥८६—९०॥

एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दन।
आशिष शिरसागृह्णाद् देवोऽप्याह महेश्वर॥९१॥
प्रगृह्य कृष्ण भगवानथेश
करेण देव्या सह देवदेव।
सम्पूज्यमानो मुनिभि सुरेशै-
र्जगाम कैलासगिरिं गिरीश॥९२॥

उन महादेवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर जनार्दन कृष्णने उनके (वररूपी) आशीर्वादको शिरोधार्य किया। देव महेश्वरने भी कृष्णसे ऐसा ही कहा अर्थात् आशीर्वाद प्रदान किया। तब देवताओ तथा मुनियोसे पूजित होते हुए देवाधिदेव गिरीश भगवान् शकर कृष्णका हाथ पकडकर देवी पार्वतीके साथ कैलास पर्वतपर चले गये॥९१-९२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायां पूर्वविभागे चतुर्विंशोऽध्याय॥२४॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२४॥

पचीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका कैलास पर्वतपर विहार करना, श्रीकृष्णको द्वारका बुलानेके लिये गरुडका कैलासपर जाना, श्रीकृष्णका द्वारका-आगमन, द्वारकामे श्रीकृष्णका स्वागत तथा उनका दर्शन करनेके लिये देवताओ तथा मार्कण्डेय आदि मुनियोका आना, कृष्णके द्वारा महर्षि मार्कण्डेयको शिव-तत्त्व तथा लिङ्ग-तत्त्वका माहात्म्य बतलाना तथा स्वय शिवका पूजन करना, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा शिवके महालिङ्गका दर्शन तथा लिङ्गस्तुति, लिङ्गार्चनका प्रवर्तन

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखर कैलास कनकप्रभम्।
रराम भगवान् सोम केशवेन महेश्वर ॥ १ ॥
अपश्यस्त महात्मान कैलासगिरिवासिन ।
पूजयाञ्चक्रिरे कृष्ण देवदेवमथाच्युतम् ॥ २ ॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्ग कालमेघसमप्रभम्।
किरीटिन शार्ङ्गपाणि श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ ३ ॥
दीर्घबाहु विशालाक्ष पीतवाससमच्युतम्।
दधानमुरसा माला वैजयन्तीमनुत्तमाम् ॥ ४ ॥
भ्राजमान श्रिया दिव्य युवानमतिकोमलम्।
पद्माङ्घ्रिनयन चारु सुस्मित सुगतिप्रदम् ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—मेरु शिखरके स्वर्णिम कैलास पर्वतपर पहुँचकर महेश्वर भगवान् शकर केशव (श्रीकृष्ण)-के साथ विहार करने लगे। कैलास पवतपर निवास करनेवालोने उन देवाधिदेव अच्युत, महात्मा श्रीकृष्णको देखकर उनकी पूजा की। उन्हाने चार भुजावाले उदार अङ्गोवाले प्रलयकालीन मेघके समान प्रभावाले, मुकुटधारी हाथम धनुष धारण किय, श्रीवत्ससे सुशोभित वक्ष स्थलवाले, दीर्घ भुजावाले विशाल नेत्रावाले, पीताम्बर धारण किये वक्ष स्थलपर उत्तम वैजयन्तीकी माला धारण किये शोभासे सुशाभित दिव्य अति कोमल, युवावस्थावाले, कमल (वर्ण)-के समान (रक्त) चरण एव नेत्रवाल अत्यन्त सुन्दर, मुसकराते हुए अच्छी गति प्रदान करनेवाले अच्युत (श्रीकृष्ण)-की पूजा की ॥ १—५ ॥

कदाचित् तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्धन ।
भ्राजमान श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरे ॥ ६ ॥
गन्धर्वाप्सरसा मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नश ।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वास्तत्र तत्र जगन्मयम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वाश्चर्यं पर गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचना ।
मुमुचु पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि महात्मन ॥ ८ ॥
गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसा वरा ।
दृष्ट्वा चकमिरे कृष्ण स्रस्तवस्त्रविभूषणा ॥ ९ ॥
काश्चिद् गायन्ति विविधा गीति गीतविशारदा ।
सम्प्रेक्ष्य देवकीसूनु सुन्दर्य काममोहिता ॥ १० ॥

वहाँ किसी समय माता देवकीके आनन्दको बढानेवाले शोभासम्पन्न श्रीकृष्ण लीलाके निमित्त कैलास पर्वतकी गुहाम विचरण करने लगे। सभी प्रमुख गन्धर्वो, अप्सराओ नागकन्याओ, सिद्धा, यक्षा तथा गन्धर्वोने वहाँ उन जगन्मय (श्रीकृष्ण)-को देखा और परम आश्चर्यचकित हाकर वे आनन्दसे प्रफुल्लित नेत्रवाले हो गये तथा उन महात्माके मस्तकपर पुष्पाकी वर्षा करने लगे। दिव्य गन्धर्वोकी कन्याएँ तथा उसी प्रकार श्रेष्ठ अप्सराएँ कृष्णका देखकर अव्यवस्थित वस्त्राभूषणवाली होकर उनकी कामना करने लगीं। गायनम पारगत कुछ सुन्दरियाँ काममोहित होकर दवकीपुत्रकी आर दखकर विविध प्रकारके गीत गाने लगीं ॥ ६—१० ॥

काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रत ।
सम्प्रेक्ष्य सस्थिता काश्चित् पपुस्तद्वदनामृतम् ॥ ११ ॥
काश्चिद् भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम्।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्ण कामिन्यो लोकभूषणम् ॥ १२ ॥
काश्चिद् भूषणवर्याणि समादाय तदङ्गत ।
स्वात्मान भूषयामासु स्वात्मगैरपि माधवम् ॥ १३ ॥
काश्चिदागत्य कृष्णस्य समीप काममोहिता ।
चुचुम्बुर्वदनाम्भोज हरेर्मुग्धमृगेक्षणा ॥ १४ ॥
प्रगृह्य काश्चिद् गाविन्द करण भवन स्वकम्।
प्रापयामासुर्लोकादि मायया तस्य मोहिता ॥ १५ ॥

॥ और कुछ वहीं स्थित होकर उनको ओर देखकर
तामृतका पान करने लगीं। कुछ कामिनियाँ (कन्याएँ)
ङ्गोंसे श्रेष्ठ आभूषणोंको उतारकर उनसे लोकभूषण
आदरपूर्वक आभूषित करने लगीं। कुछ उनके
श्रेष्ठ आभूषणोंको लेकर अपनेको तथा अपने
स माधवको सजाने लगीं। कतिपय मुग्ध मृगके
यनोंवाली काममोहित (कन्याएँ) हरि कृष्णके
जाकर उनके मुखकमलका स्पर्श करने लगीं।
मायासे मोहित कुछ अप्सराएँ लोकोंके आदि
ोविन्दका हाथ पकड़कर उन्हें अपने भवनमें ले
१—१५॥

भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः।
कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया॥१६॥
सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः।
ायणः श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत्॥१७॥

कमललोचन भगवान् श्रीकृष्णने बहुतसे रूप
लीलापूर्वक उनकी अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति
प्रकार श्रीमान् नारायण हरिने संसारको (अपनी)
ोहित करते हुए देवाधिदेव शंकरके नगरमें बहुत
रमण किया॥१६-१७॥

हुतिथे काले द्वारवत्यां निवासिनः।
दला भीता गोविन्दविरहे जनाः॥१८॥
ुपर्णो बलवान् पूर्वमेव विसर्जितः।
मार्गमाणस्तु हिमवन्तं यथौ गिरिम्॥१९॥
तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
ाप्यमनु तां पुरीं द्वारवतीं पुनः॥२०॥
महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः।
ाराः शुभां भीषयन्तो महाबलाः॥२१॥
सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः।
द्धेन महता रक्षांश्च पुरीं शुभाम्॥२२॥

[illegible]

लौट आये। इसी बीच अत्यन्त भयंकर हजारों महादैत्य
तथा राक्षस भय उत्पन्न करते हुए सुन्दर द्वारकामें आ
पहुँचे। कृष्णके समान पराक्रमवाले बलवान् सुपर्ण (गरुड)-
ने महान् युद्धद्वारा उन्हें मारकर उस शुभ पुरीकी रक्षा
की॥१८—२२॥

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः।
दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः॥२३॥
तं दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिनः।
प्रोचुर्नारायणो नाथः कुत्रास्ते भगवान् हरिः॥२४॥
स तानुवाच भगवान् कैलासशिखरे हरिः।
रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागतः॥२५॥

इसी समय भगवान् नारद ऋषि कैलास शिखरपर
श्रीकृष्णका दर्शनकर द्वारकापुरीमें गये। उन नारद ऋषिको
देखकर वहाँ (द्वारकामें) निवास करनेवाले सभीने
पूछा—'नारायण नाथ भगवान् हरि कहाँ हैं?' उन्होंने
(नारदने) उनसे कहा कि भगवान् हरि कैलास शिखरपर
रमण कर रहे हैं, मैं उन महायोगीको देखकर आज यहाँ
आया हूँ॥२३—२५॥

तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः।
जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम्॥२६॥
ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते।
वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम्॥२७॥
उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः।
महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम्॥२८॥

विप्रो! उनका वचन सुनकर आकाशमें चलनेवाले
पक्षियोंमें श्रेष्ठ वे गरुड श्रेष्ठ पर्वत कैलासपर गये। उन्होंने
देवकीपुत्र गोविन्द हरिको देवाधिदेव (शंकर)-के समीप
रत्नमण्डित भवनमें एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखा।
(वहाँ) देवता, दिव्य स्त्रियाँ, महादेवके गण, सिद्ध तथा
योगीजन सभी ओरसे घेरकर उनकी उपासना कर रहे
थे॥२६—२८॥

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ सुपर्णः शंकरं शिवम्।
निवेदयामास हरेः प्रवृत्तिं द्वारके पुरे॥२९॥
ततः प्रणम्य शिरसा शंकरं नीललोहितम्।

आजगाम पुरीं कृष्ण सोऽनुज्ञातो हरेण तु॥ ३०॥
आरुह्य कश्यपसुत स्त्रीगणैरभिपूजित ।
वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदन ॥ ३१॥
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्न गन्धर्वाप्सरसा वरा ।
अन्वगच्छन् महायोगीं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ३२॥
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरि ।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्या द्वारवतीं पुरीम्॥ ३३॥

गरुडने कल्याणकारी शकरको भूमिपर दण्डवत् प्रणाम किया और द्वारकापुरीका समाचार हरिसे निवेदन किया। तदनन्तर नीललोहित शकरको विनयपूर्वक प्रणामकर ओर उन हरकी आज्ञा प्राप्तकर स्त्रीसमूहाद्वारा पूजित और अमृतके समान मधुर स्वादुयुक्त वचनासे सत्कृत वे मधुसूदन श्रीकृष्ण कश्यपपुत्र गरुडपर आरूढ होकर अपनी पुरीको चले। शख, चक्र तथा गदाधारी शत्रुहन्ता महायोगीको जाते हुए देखकर गन्धर्व तथा श्रेष्ठ अप्सराओन उनका अनुगमन किया। विश्वात्मा गोविन्द हरि उन सभी अङ्गनाआका विदाकर शीघ्र ही उस दिव्य पुरी द्वारवतीको गये॥ २९—३३॥

गते मुररिपौ नैव कामिन्यो मुनिपुगवा ।
निशेव चन्द्ररहिता विना तेन चकाशिरे॥ ३४॥
श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम्।
मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्या पुरीं द्वारवतीं शुभाम्॥ ३५॥
पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजै रत्नपरिष्कृतै ।
लाजादिभि पुरीं रम्या भूषयाञ्चक्रिरे तदा॥ ३६॥
अवादयन्त विविधान् वादित्रान् मधुरस्वनान्।
शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान् वितेनिरे॥ ३७॥
प्रविष्टमात्र गोविन्दे पुरीं द्वारवतीं शुभाम्।
अगायन् मधुर गान स्त्रियो यौवनशालिन ॥ ३८॥
दृष्ट्वा ननृतुरीशान स्थिता प्रासादमूर्धसु।
मुमुचु पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि॥ ३९॥

मुनिश्रेष्ठो। उन मुरारिके चल जानेपर वे कामिनियाँ चन्द्रमारहित रात्रिके समान शोभाहीन हो गयीं। पुरवासियाने श्रीकृष्णके आगमनके शुभ समाचारको सुनकर शीघ्र दिव्य एव मङ्गलमयी द्वारवती पुरीको सुसज्जित किया। श्रीकृष्णके आमगनसे अति प्रसन्न द्वारकावासियाने विशाल पताकाआ और रत्नासे जटित ध्वजा तथा लाजा आदि माङ्गलिक वस्तुओसे सुन्दर पुरीको सजा दिया। मधुर स्वरवाले विविध वाद्यो, हजारो शखा तथा वीणाओको वे लोग बजाने लगे। गोविन्दके शुभपुरी द्वारवतीमें प्रवेश करते ही युवती स्त्रियाँ मधुर स्वरमे गान करने लगीं। उन ईशान (कृष्ण)-को देखकर वे नृत्य करने लगीं और महलाके ऊपर स्थित स्त्रियाँ वसुदवपुत्र श्रीकृष्णके ऊपर फूल बरसाने लगीं॥ ३४—३९॥

प्रविश्य भवन कृष्ण आशीर्वादाभिवर्धित ।
वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वित ॥ ४०॥
सुरम्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खाद्यै परिवारित ।
आत्मजैरभितो मुख्यै स्त्रीसहस्रैश्च सवृत ॥ ४१॥

भवनमें प्रवेशकर महायोगी कृष्ण आशीर्वादासे अभिनन्दित होते हुए अत्यन्त रमणीय शुक्लवर्णके मण्डपम स्थित एक श्रेष्ठ आसनपर अपनी पत्नियोक साथ सुशोभित हुए। वे चारा ओरसे शङ्ख आदि प्रमुख पुत्रा तथा हजारो स्त्रियासे घिरे हुए थे॥ ४०-४१॥

तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युत ।
भ्राजते मालया देवो यथा देव्या समन्वित ॥ ४२॥
आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टु लोकादिमव्ययम्।
महर्षय पूर्वजाता मार्कण्डेयादयो द्विजा ॥ ४३॥
तत स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेय समागतम्।
ननामोत्थाय शिरसा स्वासन च ददौ हरि ॥ ४४॥
सम्पूज्य तानृषिगणान् प्रणामेन महाभुज ।
विसर्जयामास हरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान्॥ ४५॥

वजयन्ती मालासे विभूषित उस रमणीय श्रेष्ठ आसनपर अच्युत श्रीकृष्ण जाम्बवतीक साथ उसी प्रकार सुशाभित हुए जस दवी उमाके साथ महादेव। ब्राह्मणा! उन अव्यय तथा लोकाक आदि कारण (श्रीकृष्ण)-का दर्शन करनक लिये दवता, गन्धर्व आर पूवज मार्कण्डेय आदि महर्षि वहाँ आये। तब उन भगवान् श्रीकृष्ण हरिने मार्कण्डयजीको आया देखकर आसनस उठकर विनयपूर्वक प्रणाम किया और उन्ह आसन दिया। लम्बी भुजाआवाल हरिने प्रणामके द्वारा उन ऋषिगणाकी पूजा करके और उनके मनारथाका प्रदान करक उन्ह विदा किया॥ ४२—४५॥

तदा मध्याह्नसमय दवदव स्वय हरि ।
स्नात्वा शुक्लाम्बरो भानुमुपातिष्ठत् कृताञ्जलि ॥ ४६॥

जजाप जाप्यं विधिवत् प्रेक्षमाणो दिवाकरम्।
तर्पयामास देवेशो देवान् मुनिगणान् पितॄन्॥ ४७॥

तदनन्तर मध्याह्नकालमें स्वयं देवाधिदेव हरिने स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण किये और हाथ जोड़कर सूर्यकी आराधना की। दिवाकर सूर्यकी ओर देखते हुए उन्होंने विधिपूर्वक मन्त्रोंका जप किया। उन देवेश्वरने देवताओं, मुनिगणों और पितरोंका तर्पण किया॥ ४६-४७॥

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि।
पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषणम्॥ ४८॥
समाप्य नियमं सर्वं नियन्तासौ नृणां स्वयम्।
भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च॥ ४९॥
कृत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कण्डेयेन चाच्युतः।
कथां पौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः॥ ५०॥
अथैतत् सर्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः।
मार्कण्डेयो हसन् कृष्णं बभाषे मधुरं वचः॥ ५१॥

(मुनि) मार्कण्डेयके साथ देवमन्दिरमें प्रवेशकर उन्होंने लिंगमें प्रतिष्ठित भस्मविभूषित भूतेश्वर (श्रीशंकर)-की पूजा की। मनुष्योंके नियामक उन्होंने स्वयं सभी नियमोंको पूर्णकर ब्राह्मणोंकी पूजा की और मुनीश्वर (मार्कण्डेय)-को भोजन कराया। विप्रेन्द्रो! तदुपरान्त पुत्रों आदिसे घिरे हुए अच्युतने आत्मनिष्ठ होकर मार्कण्डेयजीसे पुराणोंकी पुण्यदायिनी कथाको सुना। इन सारे कर्मोंको देखकर महामुनि मार्कण्डेयने श्रीकृष्णसे हँसते हुए मधुर वचन कहा—॥ ४८—५१॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च॥ ५२॥
त्वं हि तत् परमं ब्रह्म निर्वाणममलं पदम्।
भारावतरणार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः॥ ५३॥
तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः।
शृण्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव॥ ५४॥

मार्कण्डेयजी बोले—(देव!) कर्मोंद्वारा आपकी ही पूजा की जाती है और योगियोंके ध्येय भी आप ही हैं, फिर आप शुभ कर्मोंके द्वारा किस देवताकी आराधना कर रहे हैं यह मुझे बतलाये। आप ही वे परम ब्रह्म हैं, निर्वाणरूप हैं और निर्मल पद हैं। (पृथ्वीका) भार उतारनेके लिये आप प्रभु ही वृष्णि-कुलमें अवतरित हुए हैं। सभी पुत्रोंके सुनते हुए ही ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कृष्णने उनसे (मार्कण्डेयजीसे) हँसते हुए कहा—॥ ५२—५४॥

श्रीभगवानुवाच

भवता कथितं सर्वं तथ्यमेव न संशयः।
तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम्॥ ५५॥
न मे विप्रास्ति कर्तव्यं नानवाप्तं कथंचन।
पूजयामि तथापीशं जानन्नेतत् परं शिवम्॥ ५६॥
न वै पश्यन्ति तं देवं मायया मोहिता जनाः।
ततोऽहं स्वात्मनो मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम्॥ ५७॥
न च लिङ्गार्चनात् पुण्यं लोकेऽस्मिन् भीतिनाशनम्।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्॥ ५८॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—आपने जो कुछ भी कहा सब सत्य ही कहा है, इसमें संशय नहीं है तथापि मैं सनातनदेव ईशान (शंकर)-की पूजा करता हूँ। विप्र! मुझे न तो कुछ करना है और न मुझे कुछ अप्राप्त है, फिर भी यह जानते हुए भी मैं परम शिव ईशकी पूजा करता हूँ। मायासे मोहित लोग उन देव (शंकर)-का साक्षात्कार नहीं कर पाते। परंतु मैं अपने मूलका[1] परिचय देते हुए उनकी पूजा करता हूँ। इस संसारमें लिङ्गार्चनसे अधिक कोई पुण्य और भयका नाश करनेवाला (कर्म) नहीं है। अतः इन लोकों (प्राणीमात्र)-के कल्याणके लिये लिङ्गमें शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ५५—५८॥

योऽहं तल्लिङ्गमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः।
ततोऽहमात्ममीशानं पूजयाम्यात्मनैव तु॥ ५९॥
तस्यैव परमा मूर्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः।
नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेव विनिश्चयः॥ ६०॥
एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः।
ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः॥ ६१॥

वैदिक सिद्धान्तोंको जाननेवाले लोग इस लिङ्गको मेरा ही स्वरूप कहते हैं। इसीलिये मैं स्वयमेव आत्मस्वरूप ईशानका पूजन करता हूँ। मैं उन्हीं (शंकर)-की परम मूर्ति

१-मेरे भी मूल (सर्वाधिष्ठान) महादेव शंकर ही हैं—यह सबको बतानेके लिये मैं लिङ्गस्वरूप भगवान् शंकरकी पूजा करता हूँ।

हूँ, मैं शिवस्वरूप ही हूँ, इसमे कोई सदेह नहीं। वेदोम ऐसा ही निश्चय किया गया है कि हम दोनोमें कोई भेद विद्यमान नहीं है। ससारसे भयभीत लोगोको इन देव महादेवका सदा ध्यान, पूजन और वन्दन करना चाहिये तथा लिङ्गमे महेश्वरको सदा प्रतिष्ठित समझना चाहिये॥ ५९—६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कि तल्लिङ्ग सुरश्रेष्ठ लिङ्गे सम्पूज्यते च क ।
ब्रूहि कृष्ण विशालाक्ष गहन ह्येतदुत्तमम्॥ ६२ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले देवश्रेष्ठ कृष्ण! आप इस गूढ एव श्रेष्ठ विषयको बतलाये कि लिङ्ग क्या है और लिङ्गमे किसकी पूजा होती है?॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच

अव्यक्त लिङ्गमित्याहुरानन्द ज्योतिरक्षरम्।
वेदा महेश्वर देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्॥ ६३ ॥
पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूत स्वय शिव ॥ ६४ ॥
तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाह सदैव हि।
पूजयावो महादेव लोकाना हितकाम्यया॥ ६५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ज्योति स्वरूप अक्षर, अव्यक्त आनन्दको लिङ्ग[1] कहा गया है और वेद महेश्वर देवको अव्यय तथा लिङ्ग धारण करनेवाला कहते हैं। प्राचीन कालमे जब सर्वत्र जल-ही-जल एकार्णव हो गया और स्थावर-जङ्गम सब नष्ट हो गया, तब ब्रह्मा तथा मुझे प्रबोधित करनेके लिये उसी एकार्णवमे शिवका प्रादुर्भाव हुआ। उसी समयसे लोकोके कल्याणकी कामनासे ब्रह्मा तथा मैं दोनो ही सदा महादेवकी पूजा करते हैं॥ ६३—६५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कथ लिङ्गमभूत् पूर्वमैश्वर परम पदम्।
प्रबोधार्थं स्वय कृष्ण वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ६६ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—श्रीकृष्ण! अब आप यह बतलायें कि पूर्वकालमे आप लोगोको ज्ञान देनेके लिये वह ईश्वरका परम पदरूप लिङ्ग किस प्रकार स्वय प्रकट हुआ॥ ६६ ॥

श्रीभगवानुवाच

आसीदेकार्णव घोरमविभाग तमोमयम्।
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधर ॥ ६७ ॥
सहस्रशीर्षा भूत्वाह सहस्राक्ष सहस्रपात्।
सहस्रबाहुर्युक्तात्मा शयितोऽह सनातन ॥ ६८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाश भ्राजमान श्रियावृतम्॥ ६९ ॥
चतुर्वक्त्र महायोगी पुरुष काञ्चनप्रभम्।
कृष्णाजिनधर देवमृग्यजु सामभि स्तुतम्॥ ७० ॥
निमेषमात्रेण स मा प्राप्तो योगविदा वर ।
व्याजहार स्वय ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युति ॥ ७१ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—(प्रलयकालमें) विभागरहित, तमोमय भयकर एकमात्र समुद्र (एकार्णव) ही था। उस एकार्णवके मध्यभागमे शख, चक्र, गदा धारण करनेवाला युक्तात्मा सनातन मैं हजारो सिर, हजारो आँख, हजारो चरण, हजारो बाहुवाला होकर शयन कर रहा था। इसी बीच मैंने दूर स्थित अमित प्रभावाले, करोडो सूर्यके समान प्रकाशमान, शोभासम्पन्न, कृष्णमृगका चर्म धारण किये हुए, ऋक्, यजु तथा सामवेदद्वारा स्तुत हो रहे, काञ्चनके समान आभावाले महायोगी चतुर्मुख देव पुरुषको देखा। क्षणभरमे ही वे योगज्ञानियोमे श्रेष्ठ, महाद्युति ब्रह्मा मुसकराते हुए स्वय मेरे पास आये और कहने लगे— ॥ ६७—७१ ॥

कस्त्व कुतो वा कि चेह तिष्ठसे वद मे प्रभो।
अह कर्ता हि लोकाना स्वयम्भू प्रपितामह ॥ ७२ ॥
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच ह।
अह कर्तास्मि लोकाना सहर्ता च पुन पुन ॥ ७३ ॥
एव विवादे वितते मायया परमेष्ठिन ।
प्रबोधार्थं पर लिङ्ग प्रादुर्भूत शिवात्मकम्॥ ७४ ॥
कालानलसमप्रख्य ज्वालामालासमाकुलम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ७५ ॥

प्रभो! मुझे बतलाय कि आप कौन हैं कहाँसे आये हैं और किस कारणसे यहाँ स्थित हैं। मैं लोकोका निर्माण

[1] लिङ्गका अर्थ है कारण। यहाँ प्रसगानुसार लिङ्गका अर्थ मूल कारण है। मूल कारण परमेश्वर ही हैं। वे ज्योति स्वरूप अक्षर एव आनन्दस्वरूप हैं इसीलिये यहाँ लिङ्गको ज्योति स्वरूप आनन्दरूप कहा है।

करनेवाला स्वयम्भू प्रपितामह (ब्रह्मा) हूँ। उन ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने उनसे (ब्रह्मासे) कहा—मैं पुन -पुन लोकोकी सृष्टि करनेवाला हूँ और मैं ही सहार करनेवाला हूँ। परमेष्ठीकी मायाके कारण इस प्रकारका विवाद बढनेपर (हम लोगोंको) यथार्थ स्थितिका ज्ञान करानेके लिये (उस समय) शिवरूप परम लिङ्ग प्रादुर्भूत हुआ। वह लिङ्ग प्रलयकालीन अग्निके समान अनेक ज्वालामालाओसे व्याप्त, क्षय एव वृद्धिसे मुक्त और आदि, मध्य तथा अन्तमे रहित था॥ ७२—७५॥

ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै।
अन्तमस्य विजानीम ऊर्ध्व गच्छेऽहमित्यज ॥७६॥
तदाशु समय कृत्वा गतावूर्ध्वमधश्च द्वौ।
पितामहाऽप्यह नान्त ज्ञातवन्तौ समा शतम्॥७७॥
ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिन।
मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम्॥७८॥
प्रोच्चरन्तौ महानादमोङ्कार परम पदम्।
प्रह्वाञ्जलिपुटोपेतौ शम्भु तुष्टुवतु परम्॥७९॥

तब भगवान् शकरने मुझसे कहा—तुम शीघ्र ही (इस लिङ्गके) नीचेकी ओर जाओ और इसके अन्तका पता लगाओ और ये अजन्मा ब्रह्मा (इसके) ऊपरकी ओर जायँ। तदनन्तर शीघ्र ही प्रतिज्ञा करके हम दोना ऊपर तथा नीचेकी ओर गये, किंतु पितामह तथा मैं सैकडो वर्षोंमे भी उसका अन्त नहीं जान सके। तदनन्तर त्रिशूलधारी देवकी मायासे मोहित भयभीत एव आश्चर्यचकित हम दोनो उन विश्वरूप ईश्वरका ध्यान करने लगे और परमपद महानाद ओंकारका उच्चारण करते हुए नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर श्रेष्ठ शम्भुकी स्तुति करने लगे—॥७६—७९॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतु

अनादिमलससाररोगवैद्याय शम्भवे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८०॥
प्रलयार्णवसस्थाय प्रलयाद्भूतिहेतवे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८१॥
ज्वालामालावृताङ्गाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८२॥
आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८३॥
महादेवाय महते ज्योतिषेऽनन्ततेजसे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८४॥
प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८५॥

ब्रह्मा तथा विष्णुने कहा—विविध अनादि विकारोंसे मुक्त ससाररूपी रोगके अनादि वैद्यस्वरूप शम्भु, शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मको नमस्कार है। प्रलयकालीन समुद्रमे स्थित रहनेवाले, सृष्टि और प्रलयके कारणरूप शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिधारी ब्रह्मको नमस्कार है। ज्वालामालाओंसे घिरे हुए शरीरवाले, प्रज्वलित स्तम्भरूप शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मको नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्तसे रहित स्वभावत निर्मल तेजोरूप शिव, शान्त तथा लिङ्गरूपी मूर्तिको धारण करनेवाले ब्रह्मको नमस्कार है। महादेव, महान्, ज्योति स्वरूप, अनन्त तेजस्वी लिङ्गविग्रह शिव, शान्त ब्रह्मका नमस्कार है। प्रधान पुरुषके भी ईश व्योमस्वरूप वेधा (ब्रह्म) और लिङ्गविग्रह शिव, शान्त ब्रह्मको नमस्कार है॥८०—८५॥

निर्विकाराय सत्याय नित्यायामलतेजसे।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८६॥
वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय धीमते।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥८७॥

निर्विकार, सत्य, नित्य विमल तेजरूप लिङ्गविग्रह शान्त शिव ब्रह्मको नमस्कार है। वेदान्तसार-स्वरूप कालरूप धीमान् लिङ्गमूर्ति शिव शान्त ब्रह्मको नमस्कार है॥८६-८७॥

एव सस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वर।
भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभ॥८८॥
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम्।
सहस्रहस्तचरण सूर्यसोमाग्निलोचन॥८९॥
पिनाकपाणिर्भगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलभृत्।
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनि स्वन॥९०॥
अथोवाच महादेव प्रीतोऽह सुरसत्तमौ।
पश्यत मा महादेव भय सर्वं प्रमुच्यताम्॥९१॥

युवा प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामह ।
वामपार्श्वे च मे विष्णु पालको हृदये हर ॥९२॥
प्रीतोऽहं युवयो सम्यक् वर दद्मि यथेप्सितम्।
एवमुक्त्वाथ मा देवो महादेव स्वय शिव ।
आलिङ्ग्य देव ब्रह्माण प्रसादाभिमुखोऽभवत्॥९३॥

इस प्रकार स्तुति करते रहनेपर महायोगी महेश्वर देव प्रकट हो गये और हजारो करोड मुखसे आकाशको मानो ग्रास बनाते हुए करोडो सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। हजारो हाथ और पैरवाले, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूप (तीन) नयनवाले, पिनाकधनुषको हाथमे धारण करनेवाले, चर्माम्बरधारी, त्रिशूलधारी, सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले और मेघ तथा दुन्दुभिके सदृश स्वरवाले भगवान् महादेवने कहा—श्रेष्ठ देवो! मैं प्रसन्न हूँ। मुझ महादेवकी ओर देखो और समस्त भयका परित्याग करो। पूर्वकालमे तुम दोनो सनातन (देव) मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए थे। मेरे दक्षिण पार्श्वमे ये लोकपितामह ब्रह्मा, वाम पार्श्वमे पालनकर्ता विष्णु और हृदयमें हर स्थित हैं। मैं तुम दोनोपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ, इसलिये यथेष्ट वर प्रदान करूँगा। ऐसा कहकर महादेव शिव स्वय मुझे तथा देव ब्रह्माका आलिङ्गनकर अनुग्रह प्रदान करनेके लिये उद्यत हुए॥८८—९३॥

तत प्रहृष्टमनसौ प्रणिपत्य महेश्वरम्।
ऊचतु प्रेक्ष्य तद्वक्त्र नारायणपितामहौ॥९४॥
यदि प्रीति समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्य त्वयि देव महेश्वरे॥९५॥
तत स भगवानीश प्रहसन् परमेश्वर ।
उवाच मा महादेव प्रीत प्रीतेन चेतसा॥९६॥

तदनन्तर प्रसन्न मनवाले नारायण तथा पितामहने महेश्वरको प्रणामकर उनके मुखकी ओर देखते हुए कहा—देव! यदि प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हम दोनोको वर देना चाहते हैं तो (यह वर दे कि) हम दोनाकी आप महेश्वरमे नित्य भक्ति बनी रहे। तब उन प्रसन्न हुए परम ईश्वर भगवान् ईश महादेवने प्रसन्न मनसे हँसते हुए मुझसे कहा— ॥९४—९६॥

देव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणा कर्ता त्व धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विश्व पालयैतच्चराचरम्॥९७॥
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यह विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जन ॥ ९८ ॥
सम्मोह त्यज भो विष्णो पालयैन पितामहम्।
भविष्यत्येष भगवास्तव पुत्र सनातन ॥ ९९ ॥
अह च भवतो वक्त्रात् कल्पादौ घोररूपधृक्।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रक ॥१००॥

देव बोले—धरणीपते! वत्स हरि! तुम सृष्टि, पालन और प्रलयके कर्ता हो। इस चराचर विश्वका पालन करो। हे विष्णो! मैं निर्गुण तथा निरञ्जन होते हुए भी सृष्टि, रक्षा तथा प्रलयके लिये अपेक्षित गुणोके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु तथा हर नामसे तीन रूपोमे विभक्त हूँ। विष्णो! मोहका परित्याग करो, इन पितामहका पालन करो। ये सनातन भगवान् आपके पुत्र होगे। कल्पके आदिमे मैं भी आपके मुखसे प्रकट होकर घोर रूप धारणकर हाथमे शूल धारण किये आपका क्रोधज पुत्र बनूँगा॥९७—१००॥

एवमुक्त्वा महादेवा ब्रह्माण मुनिसत्तम।
अनुगृह्य च मा देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१०१॥
तत प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्ग तल्लयनाद् ब्रह्मन् ब्रह्मण परम वपु ॥१०२॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार कहकर भगवान् महादेव मुझपर तथा ब्रह्मापर कृपा करके वहीपर अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मन्! तबसे लेकर लोकमे लिङ्गका पूजन प्रतिष्ठित हो गया। लीन होनेसे वह लिङ्ग कहा जाता है। लिङ्ग ब्रह्मका श्रेष्ठ शरीर है॥ १०१-१०२॥

एतल्लिङ्गस्य माहात्म्य भाषित ते मयानघ।
एतद् बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवा ॥१०३॥
एतद्धि परम ज्ञानमव्यक्त शिवसञ्ज्ञितम्।
येन सूक्ष्ममचिन्त्य तत् पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष ॥१०४॥
तस्मै भगवते नित्य नमस्कार प्रकुर्महे।
महादेवाय रुद्राय देवदेवाय लिङ्गिने॥१०५॥

अनघ! मैंने इस लिङ्गका माहात्म्य तुम्हे बताया। इसे न देवता जानते है न दानव केवल योगज्ञ लोग ही जानते हैं। यह शिव नामवाला अव्यक्त परम ज्ञान है। ज्ञानदृष्टिवाले इसीके द्वारा उस सूक्ष्म अचिन्त्य (तत्त्व)-का दर्शन करते हैं। इस लिङ्गस्वरूप देवाधिदेव महादेव भगवान् रुद्रको हम नित्य नमस्कार करते हैं॥ १०३—१०५॥

नमो वेदरहस्याय नीलकण्ठाय वै नम ।
विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नम ॥१०६॥
ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे।
शकराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च॥१०७॥
नम कुरुष्व सतत ध्यायस्व मनसा हरम्।
ससारसागरादस्मादचिरादुत्तरिष्यसि ॥१०८॥

वेदके रहस्यरूप आपको नमस्कार है, नीलकण्ठको नमस्कार है। विशेष भय[1] उत्पन्न करनेवाले, शान्त, स्थाणु तथा कारणरूपको नमस्कार है। वामदेव, त्रिलोचन, महिमावान्, ब्रह्म शकर, महेश, गिरीश तथा शिवको नमस्कार है। सदा इन्हे नमस्कार करो, मनसे शकरका ध्यान करो। इससे शीघ्र ही ससारसागरसे पार हो जाओगे॥ १०६—१०८॥

एव स वासुदेवन व्याहतो मुनिपुगव ।
जगाम मनसा देवमीशान विश्वतोमुखम्॥१०९॥
प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनि ।
जगाम चेप्सित देश देवदेवस्य शूलिन ॥११०॥

इस प्रकार वासुदवके द्वारा कहे जानेपर उन मुनिश्रेष्ठ (मार्कण्डेय)-ने विश्वतोमुख देव ईशान (शकर)-का ध्यान किया। श्रीकृष्णको विनयपूर्वक प्रणामकर उनकी आज्ञा प्राप्तकर महामुनि (मार्कण्डेय) त्रिशूल धारण करनेवाले देवाधिदेवके अभीष्ट स्थानको चले गये॥ १०९-११०॥

य इम श्रावयेन्नित्य लिङ्गाध्यायमनुत्तमम्।
शृणुयाद् वा पठेद् वापि सर्वपापै प्रमुच्यते॥१११॥
श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत् तपश्चरणमुत्तमम्।
वासुदेवस्य विप्रेन्द्रा पाप मुञ्चति मानव ॥११२॥
जपेद् वाहरहर्नित्य ब्रह्मलोके महीयते।
एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायन प्रभु ॥११३॥

जो इस श्रेष्ठ लिङ्गाध्यायको सुनेगा, सुनायेगा अथवा पढेगा, वह सभी पापोसे मुक्त हो जायगा। विप्रेन्द्रो! वासुदेवके इस श्रेष्ठ तपश्चरणको एक बार भी सुननेवाला मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है अथवा प्रतिदिन इसका निरन्तर जप करनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—ऐसा महायोगी प्रभु कृष्णद्वैपायनने कहा है॥ १११—११३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायां पूर्वविभागे पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५॥
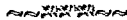
छब्बीसवॉ अध्याय

श्रीकृष्णको महेश्वरकी कृपासे साम्ब नामक पुत्रकी प्राप्ति, कसादिका वध, भृगु आदि महर्षियोका द्वारकामे आना, भृगु आदि मुनियोसे श्रीकृष्णद्वारा स्वधाम-गमनकी बात वताना, शिवसे द्वेष करनेवालोको नरककी प्राप्तिका वर्णन तथा शिवकी महिमा बताना, नारायणका अपने कुलका सहारकर स्वधामगमन तथा वश-वर्णनका उपसहार

सूत उवाच

ततो लब्धवर कृष्णो जाम्बवत्या महेश्वरात्।
अजीजनन्महात्मान साम्बमात्मजमुत्तमम्॥१॥
प्रद्युम्नस्याप्यभूत् पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबल ।
तावुभौ गुणसम्पन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू॥२॥
हत्वा च कस नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान्।
विजित्य लीलया शक्र जित्वा बाण महासुरम्॥३॥
स्थापयित्वा जगत् कृत्स्न लोके धर्मांश्च शाश्वतान्।
चक्रे नारायणो गन्तु स्वस्थान बुद्धिमुत्तमाम्॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्या कृष्णमीश्वरम्।
आजग्मुर्द्वारका द्रष्टु कृतकार्यं सनातनम्॥५॥

सूतजी बोले—तदनन्तर महेश्वरसे वर प्राप्त किये हुए कृष्णने जाम्बवतीसे महात्मा साम्ब नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया। प्रद्युम्नका भी महाबलवान् अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ।

१-प्राणीको पापसे विरत करनेके लिये अन्य उपाय न होनेपर भगवान् शकर भय भी उत्पन्न करते हैं।

गुणोसे सम्पन्न वे दोनो कृष्णके ही दूसरे शरीर(रूप) थे। कस, नरक तथा अन्य सैकडो असुरोको मारकर लीलापूर्वक इन्द्रको जीतकर तथा महान् असुर बाणको पराजितकर, सम्पूर्ण ससारको प्रतिष्ठितकर और लोकमे शाश्वत धर्मोंकी स्थापनाकर नारायणने अपने धाममे जानेका श्रेष्ठ विचार किया। ब्राह्मणो! इसी बीच भृगु आदि (महर्षि) अवतारके समस्त प्रयोजनोसे निवृत्त सनातन ईश्वर कृष्णका दर्शन करनेके लिये द्वारकामे आये॥ १—५॥

स तानुवाच विश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च।
आसनेषूपविष्टान् वै सह रामेण धीमता॥६॥
गमिष्ये तत् पर स्थान स्वकीय विष्णुसज्ञितम्।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्व मुनीश्वरा ॥७॥
इद कलियुग घोर सम्प्राप्तमधुनाशुभम्।
भविष्यन्ति जना सर्वे ह्यस्मिन् पापानुवर्तिन ॥८॥
प्रवर्तयध्व मज्ज्ञान ब्राह्मणाना हितावहम्।
येनेमे कलिजै पापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमा ॥९॥

विश्वात्मा (कृष्ण)-ने बुद्धिमान् बलरामके साथ आसनोंपर विराजमान भृगु आदि महर्षियोको प्रणामकर और पूजनकर उनसे कहा—मुनीश्वरो! सभी कार्य किये जा चुके हैं। अब मैं विष्णुसज्ञक अपने उस परमधामको जाऊँगा, आप लोग प्रसन्न हो। इस समय अशुभ घोर कलियुग आ गया है। इसम सभी लोग पापाचरण करनेवाले हो जायँगे। श्रेष्ठ ब्राह्मणा! आप लोग ब्राह्मणाके लिये कल्याणकारी मेरा ज्ञान प्रवर्तित करे जिससे ये लोग कलिद्वारा उत्पन्न पापोसे मुक्त हो सक॥ ६—९॥

ये मा जना सस्मरन्ति कलौ सकृदपि प्रभुम्।
तेषा नश्यतु तत् पाप भक्ताना पुरुषोत्तमे॥१०॥
येऽर्चयिष्यन्ति मा भक्त्या नित्य कलियुगे द्विजा।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत् पदम्॥११॥

कलियुगम जो लोग एक बार भी मुझ प्रभुका स्मरण करेंगे, उन पुरुपोत्तमके भक्तोका पाप नष्ट हो जायगा। द्विजो! जो कलियुगमे भक्तिपूर्वक वैदिक विधि-विधानसे नित्य मेरा पूजन करेगे, वे मेरे पदको प्राप्त करेगे॥ १०-११॥

ये ब्राह्मणा वशजाता युष्माक वै सहस्रश।
तेषा नारायण भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे॥१२॥
परात् परतर यान्ति नारायणपरायणा।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्॥१३॥
ध्यान होम तपस्तप्त ज्ञान यज्ञादिको विधि।
तेषा विनश्यति क्षिप्र ये निन्दन्ति पिनाकिनम्॥१४॥

आप लोगाके वशमे जो हजारो ब्राह्मण उत्पन्न होगे, उनकी कलियुगमे नारायणमें भक्ति होगी। नारायणके भक्तजन परसे परतर स्थानको प्राप्त करते हैं, किंतु जो महेश्वरसे द्वेष रखते हैं, वे वहाँ नहीं जाते। जो पिनाक धारण करनेवाले शिवकी निन्दा करते हैं, उनका ध्यान, होम, किया गया तप ज्ञान तथा यज्ञादि सभी विधान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ १२—१४॥

यो मा समाश्रयेन्नित्यमेकान्त भावमाश्रित।
विनिन्द्य देवमीशान स याति नरकायुतम्॥१५॥
तस्मात् सा परिहर्तव्या निन्दा पशुपतौ द्विजा।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नत॥१६॥
ये तु दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमा।
भविष्यन्ति कलौ भक्तै परिहार्या प्रयत्नत॥१७॥
द्विषन्तो देवमीशान युष्माक वशसम्भवा।
शप्ताश्च गौतमेनोर्व्यां न सम्भाष्या द्विजोत्तमै॥१८॥

जो ईशान (शकर) देवकी निन्दा कर नित्य अनन्य भावसे मेरा आश्रय ग्रहण करता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरकमे रहता है। इसलिये द्विजो! मन, वाणी तथा कर्मसे पशुपति तथा उनके भक्तोकी भी निन्दाका प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। द्विजोत्तमो! दक्ष प्रजापतिके यज्ञमे दधीचने आपके वशमे उत्पन्न जिन ब्राह्मणोको देव ईशानसे द्वेष करनेके कारण शाप दिया था, वे सभी कलियुगम पृथ्वीपर उत्पन्न होगे। भक्तोद्वारा प्रयत्नपूर्वक उनका परित्याग करना चाहिये। महर्षि गौतमद्वारा शाप-प्राप्त लोगोसे भी श्रेष्ठ ब्राह्मणोको बात नही करनी चाहिये॥ १५—१८॥

इत्येवमुक्ता कृष्णेन सर्व एव महर्षय।
ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्ण स्वानि स्थानानि सत्तमा॥१९॥
ततो नारायण कृष्णो लीलयैव जगन्मय।
सहृत्य स्वकुल सर्व ययौ तत् परम पदम्॥२०॥

कृष्णद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे सभी श्रेष्ठ महर्षि 'ठीक है' ऐसा कहकर शीघ्र ही अपने स्थानाको चले गये।

तदनन्तर जगन्मय नारायण कृष्ण लीलापूर्वक अपने सारे कुलका सहारकर अपने परमधामको पधार गये॥ १९-२०॥

इत्येष व समासेन राज्ञा वशोऽनुकीर्तित ।
न शक्यो विस्तराद् वक्तु कि भूय श्रोतुमिच्छथ॥ २१॥
य पठेच्छृणुयाद् वापि वशाना कथन शुभम्।
सर्वपापविनिर्मुक्त स्वर्गलोके महीयते॥ २२॥

(सूतजीने ऋषियासे कहा—) सक्षेपमे यह राजवश आप लागाको वताया गया, विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं हो सकता। अब आप पुन क्या सुनना चाहते हैं? जो इन वशोंके शुभ वर्णनको पढता है अथवा सुनता है, वह सभी पापोसे मुक्त हो जाता है तथा स्वर्गलाकमें आदर प्राप्त करता है॥ २२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षड्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६॥
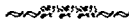
सत्ताईसवाँ अध्याय

व्यासदेवद्वारा अर्जुनको सत्ययुगादि चारो युगोके धर्मोका उपदेश, व्यासद्वारा एक वेद-सहिताका चतुर्धा विभाजन, चारो युगोमे चतुष्पाद धर्मकी विभिन्न स्थितिका निदर्शन तथा कलियुगमे धर्मके ह्रासका प्रतिपादन

ऋषय ऊचु

कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
एषा स्वभाव सूताद्य कथयस्व समासत ॥ १॥

ऋषियोन कहा—सूतजी! सत्य, त्रेता द्वापर तथा कलि—ये चार युग हैं अब (आप) इनके स्वभावका सक्षेपमे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परम पदम्।
पार्थ परमधर्मात्मा पाण्डव शत्रुतापन ॥ २॥
कृत्वा चैवोत्तरविधि शोकेन महतावृत ।
अपश्यत् पथि गच्छन्त कृष्णद्वैपायन मुनिम्॥ ३॥
शिष्यै प्रशिष्यैरभित सवृत ब्रह्मवादिनम्।
पपात दण्डवद् भूमौ त्यक्त्वा शोक तदार्जुन ॥ ४॥
उवाच परमप्रीत कस्माद् देशान्महामुने।
इदानीं गच्छसि क्षिप्र क वा देश प्रति प्रभो॥ ५॥
सदर्शनाद् वै भवत शोको मे विपुलो गत ।
इदानीं मम यत् कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण॥ ६॥
तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायन स्वयम्।
उपविश्य नदीतीरे शिष्यै परिवृतो मुनि ॥ ७॥

सूतजी बोले—नारायण कृष्णके अपन परमधाम चले जानेपर शत्रुआको पीडा पहुँचानेवाले परम धर्मात्मा पाण्डुपुत्र पार्थ अर्जुन और्ध्वदैहिक क्रिया करके महान् शोकसे आवृत हो गये। (उन्हाने) मार्गमे जाते हुए ब्रह्मवादी कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिको शिष्या प्रशिष्यास चारा आरस घिरे हुए देखा। तब शोकका परित्यागकर अर्जुनने भूमिपर दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया और परम प्रीतिस कहा—महामुने! प्रभो! आप कहाँसे आ रहे हैं और किस देशकी ओर इस समय शीघ्रतापूर्वक जा रहे है? आपका दर्शन करनेसे ही मेरा महान् शोक दूर हो गया है। कमलपत्रके समान नेत्रवाले (व्यासजी महाराज)! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो उसे आप बतलाय। तब शिष्योसे घिरे हुए महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनिने नदीके किनारे बैठकर स्वय कहा—॥ २—७॥

व्यास उवाच

इद कलियुग घोर सम्प्राप्त पाण्डुनन्दन।
ततो गच्छामि देवस्य वाराणसीं महापुरीम्॥ ८ ॥
अस्मिन् कलियुगे घोरे लोका पापानुवर्तिन ।
भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिता ॥ ९ ॥
नान्यत् पश्यामि जन्तूना मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
सर्वपापप्रशमन प्रायश्चित्त कलौ युगे॥ १०॥

व्यासजी बोले—पाण्डुके पुत्र (अर्जुन)! यह घोर कलियुग आ गया है। इसलिये मैं भगवान् शकरकी महापुरी

वाराणसी-जा रहा हूँ। इस भयकर कलियुगमे लोग पापाचरण करनेवाले, वर्ण तथा आश्रमधर्मसे रहित महान् पापी होगे। कलियुगम सभी पापोका शमन करनेके लिये वाराणसीपुरीके सेवनको छोडकर अन्य दूसरा कोई प्रायश्चित्त मैं नहीं देखता॥ ८—१०॥

कृत त्रेता द्वापर च सर्वेष्वेतेषु वै नरा ।
भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिका सत्यवादिन ॥ ११ ॥
त्व हि लोकेषु विख्यातो धृतिमाञ् जनवत्सल ।
पालयाद्य पर धर्मं स्वकीय मुच्यसे भयात्॥ १२ ॥
एवमुक्तो भगवता पार्थ परपुरजय ।
पृष्टवान् प्रणिपत्यासौ युगधर्मान् द्विजोत्तमा ॥ १३ ॥
तस्मै प्रोवाच सकल मुनि सत्यवतीसुत ।
प्रणम्य देवमीशान युगधर्मान् सनातनान्॥ १४ ॥

सत्य, त्रेता तथा द्वापर—इन सभी (युगा)-मे मनुष्य महात्मा, धार्मिक तथा सत्यवादी होते हैं। आप ससारमे प्रजावत्सल तथा धृतिमान्के रूपमें विख्यात है, अत अपने परम धर्मका पालन करे, इससे आप भयसे मुक्त हो जायँगे। द्विजोत्तमो! भगवान् (व्यास)-के द्वारा ऐसा कहनेपर शत्रुके पुरको जीतनेवाले पृथा (कुन्ती)-के पुत्र पार्थ (अर्जुन)-ने इन्हें प्रणामकर युगधर्मोंको पूछा। सत्यवतीके पुत्र व्यासमुनिने भगवान् शकरका प्रणामकर सम्पूर्ण सनातन युगधर्मोको उन्ह बतलाया॥ ११—१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान् नरेश्वर।
न शक्यते मया पार्थ विस्तरेणाभिभाषितुम्॥ १५ ॥
आद्य कृतयुग प्रोक्त ततस्त्रेतायुग बुधै ।
तृतीय द्वापर पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते॥ १६ ॥
ध्यान पर कृतयुगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते।
द्वापर यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे॥ १७ ॥
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेताया भगवान् रवि ।
द्वापरे दैवत विष्णु कलौ रुद्रो महेश्वर ॥ १८ ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्य सर्व एव कलिष्वपि।
पूज्यत भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्॥ १९ ॥
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पाद सनातन ।
त्रेतायुगे त्रिपाद स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थित ।
त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति॥ २० ॥

व्यासजी बोले—नरेश्वर! पार्थ! सक्षेपम युगधर्मोको तुम्ह बतलाता हूँ, मैं विस्तारसे वर्णन नहीं कर सकता हूँ। पार्थ! विद्वानोद्वारा पहला कृतयुग कहा गया है, तदनन्तर दूसरा त्रेतायुग, तीसरा द्वापर तथा चौथा कलियुग कहा गया है। कृतयुगमे ध्यान, त्रेतामे ज्ञान, द्वापरमे यज्ञ तथा कलियुगमे एकमात्र दान ही श्रेष्ठ साधन बताया गया है। कृतयुगमे ब्रह्मा देवता होते हैं, इसी प्रकार त्रेतामें भगवान् सूर्य, द्वापरमे देवता विष्णु और कलियुगमे महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य—ये सभी कलियुगमे पूजित होते हैं, किंतु पिनाकधारी भगवान् रुद्र चारो युगामे पूजे जाते हैं। सर्वप्रथम कृतयुगमे सनातनधर्म चार चरणोवाला था त्रेतामे तीन चरणोवाला तथा द्वापरमें दो चरणोसे स्थित हुआ, किंतु कलियुगमें तीन चरणोसे रहित होकर केवल सत्तामात्रमे स्थित रहता है॥ १५—२०॥

कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्ति साक्षाद् रसोल्लसा।
प्रजास्तृप्ता सदा सर्वा सदानन्दाश्च भोगिन ॥ २१ ॥
अधमोत्तमत्व नास्त्यासा निर्विशेषा पुरजय।
तुल्यमायु सुख रूप तासा तस्मिन् कृते युगे॥ २२ ॥
विशोका सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा।
ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणा ॥ २३ ॥
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्य मुदितमानसा ।
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेता परतप॥ २४ ॥

कृतयुगम स्त्री-पुरुषके सयोगसे उत्पत्ति होती थी और लोगाकी आजीविका साक्षात् (आनन्द) रससे उल्लसित रहती थी। सारी प्रजाएँ सर्वदा सात्त्विक आनन्दसे तृप्त और भोगस सम्पन्न रहती थीं। पुरजय! उन प्रजाआम उत्तम और अधमका भेद नहीं था, सभी निर्विशेष थे। उस कृतयुगम प्रजाकी आयु, सुख और रूप समान था। सम्पूर्ण प्रजा शोकसे रहित, सत्त्वगुणके बाहुल्यसे युक्त एकान्तप्रमी ध्याननिष्ठ, तपोनिष्ठ तथा महादेव शकरकी भक्त थी। परतप! वे प्रजाएँ निष्कामकर्म करनेवाली नित्य प्रसन्न मनवाली और पर्वता एव समुद्रक किनारे रहनेवाली थीं उनका कोई

घर नहीं होता था॥ २१—२४॥

रसोल्लासा कालयोगात् त्रेताख्ये नश्यते तत ।
तस्या सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्तत॥ २५॥
अपा सौक्ष्म्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै।
मेघेभ्य स्तनयित्नुभ्य प्रवृत्त वृष्टिसर्जनम्॥ २६॥
सकृदेव तया वृष्ट्या सयुक्ते पृथिवीतले।
प्रादुरासस्तदा तासा वृक्षा वै गृहसज्ञिता ॥ २७॥
सर्वप्रत्युपयोगस्तु तासा तेभ्य प्रजायते।
वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजा ॥ २८॥
तत कालेन महता तासामेव विपर्ययात्।
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्॥ २९॥
विपर्ययेण तासा तु तेन तत्कालभाविना।
प्रणश्यन्ति तत सर्वे वृक्षास्ते गृहसज्ञिता ॥ ३०॥

तदनन्तर कालके प्रभावसे त्रेता नामक युगमें (सत्ययुगका) आनन्दोल्लास नष्ट हो जाता है, (कृतयुगकी) उस सिद्धिका लोप होनेपर अन्य सिद्धि प्रवर्तित होती है। मेघमे जलकी कमी होनेपर मेघ और विद्युत्से वृष्टि उत्पन्न हुई।[१] पृथ्वीतलपर एक बार ही उस वृष्टिका सयोग होनेसे उन प्रजाआके लिये गृह-सज्ञक वृक्षोका प्रादुर्भाव हुआ। उन (वृक्षा)-से ही उनके सब कार्य सम्पन्न होने लगे। त्रेतायुगके प्रारम्भमे वह समस्त प्रजा उनसे ही, (अपनी जीविकाका) निर्वाह करती थी। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर उन प्रजाआके ही विपर्ययसे[२] उनमे अचानक ही राग और लोभका भाव उत्पन्न हो गया। तदनन्तर उनके उलट-फेर (दिनचर्यामे व्यत्यय)-के कारण उस समयके प्रभाववश वे गृह-सज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो गये॥ २५—३०॥

ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवा ।
अभिध्यायन्ति ता सिद्धि सत्याभिध्यायिनस्तदा॥ ३१॥
प्रादुर्बभूवुस्तासा तु वृक्षास्ते गृहसज्ञिता ।
वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च॥ ३२॥
तेष्वेव जायते तासा गन्धवर्णरसान्वितम्।
अमाक्षिक महावीर्यं पुटके पुटके मधु॥ ३३॥
तेन ता वर्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजा ।
हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या सर्वा वै विगतज्वरा ॥ ३४॥
तत कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तदा।
वृक्षास्तान् पर्यगृह्णन्त मधु चामाक्षिक बलात्॥ ३५॥

तब उन (वृक्षो)-के नष्ट हो जानेपर मिथुनधर्मसे उत्पन्न सत्यका ध्यान करनेवाले वे सभी प्रजाजन विभ्रान्त होकर उस पूर्व वर्णित सिद्धिका ध्यान करने लगे। उस समय (सत्यका ध्यान करनेके कारण) उन प्रजाआके (लुप्त) वे गृह-सज्ञक वृक्ष पुन प्रादुर्भूत हो गये। वे वस्त्रो, आभूषणों तथा फलाको उत्पन्न करने लगे। उन प्रजाओंके लिये उन वृक्षाके प्रत्येक पत्रपुटामे गन्ध, वर्ण और रससे समन्वित बिना मधु-मक्खियाके बना हुआ महान् शक्तिशाली मधु उत्पन्न होता था। उसी (मधु)-से त्रेतायुगके आरम्भमे वे प्रजाएँ जीवन-निर्वाह करती थीं। उस सिद्धिके कारण वे सारी प्रजाएँ हृष्ट-पुष्ट तथा ज्वरसे रहित थीं। तदनन्तर कालान्तरमे वे सभी पुन लोभके वशीभूत हो गये। अब वे उन वृक्षो तथा उनसे उत्पन्न अमाक्षिक (मक्षिकाद्वारा न बनाये हुए) मधुको बलपूर्वक ग्रहण करने लगे॥ ३१—३५॥

तासा तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेन वै।
प्रणष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षा क्वचित् क्वचित्॥ ३६॥
शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दु खिता भृशम्।
द्वन्द्वै सम्पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च॥ ३७॥
कृत्वा द्वन्द्वप्रतीघातान् वार्तोपायमचिन्तयन्।
नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥ ३८॥
तत प्रादुर्बभौ तासा सिद्धिस्त्रेतायुगे पुन ।
वार्ताया साधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासा निकामत ॥ ३९॥

उनके इस प्रकार पुन लोभ करनेके कारण उत्पन्न दुष्कमसे वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधुके साथ ही नष्ट हो गये। तब अत्यन्त शीत वर्षा एव धूपसे अत्यधिक दु खी उन्होने (शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वोंसे पीडित होते हुए

१-सत्ययुगम स्वय मेघ जलमय होते थे। उनमे इतनी जलकी प्रचुरता होती थी कि किसी अन्यके सहयोगके बिना ही वे वृष्टि करते थे। पर त्रेतायुगमे मेघाकी जलमयता प्रतिहत हो गयी। फलत विद्युत्के सहयोगसे ही मेघ वृष्टि कर पाते थे।

२-कर्तव्य-पालनमे प्रमाद होनेमे विपर्यय (करने योग्य कर्मका न करना न करने योग्य कर्मका करना) होता है। यह विपर्यय ही परम्परया दुर्दृष्टका कारण होता है। यह दुर्दृष्ट ही राग द्वेष तथा लोभकी भावना उत्पन्न करता है।

आवरणाकी रचना की। तब मधुसहित कल्पवृक्षोके नष्ट हो जानेपर उन्होने द्वन्द्वोके निराकरणका उपाय विचारकर जीविका-निर्वाहके साधनोंका चिन्तन किया। तदनन्तर त्रेतायुगमें उन प्रजाओकी जीविकाको सिद्ध करनेवाली अन्य सिद्धि पुन प्रादुर्भूत हुई और उनकी इच्छाके अनुकूल वृष्टि हुई॥ ३६—३९॥

तासा वृष्ट्यूदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु।
अवहन् वृष्टिसततत्या स्रोत स्थानानि निम्नगा ॥४०॥
ये पुनस्तदपा स्तोका आपन्ना पृथिवीतले।
अपा भूमेश्च सयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्॥४१॥
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।
ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥४२॥
तत प्रादुरभूत् तासा रागो लोभश्च सर्वश ।
अवश्य भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन वै॥४३॥
ततस्ता पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥४४॥
विपर्ययेण तासा ता ओषध्यो विविशुर्महीम्।
पितामहनियोगेन दुदोह पृथिवीं पृथु ॥४५॥

निरन्तर वर्षाके कारण जो जल नीचेकी ओर प्रवाहित हुआ, उससे उन (प्रजाओ)-के लिये अनेक स्रोतो तथा नदियोकी उत्पत्ति हुई। जब पृथ्वीतलपर थोडा जल एकत्र हो गया तो भूमि और जलका सयोग होनेसे अनेक प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। बिना जोते-बोये ही विभिन्न ऋतुओंमें होनेवाले पुष्प एव फलासे युक्त चौदह प्रकारके ग्राम्य एव जगली वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हो गये। तदनन्तर त्रेतायुगके प्रभावसे भवितव्यतावश उन प्रजाओम निश्चित-रूपसे सब प्रकारसे राग और लोभ[1] व्याप्त हो गया। तदुपरान्त उन लोगोने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार बलपूर्वक नदिया क्षेत्रों, पर्वता, वृक्षा, गुल्मो तथा औषधियोंपर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। उनके विपरीत आचरणके कारण वे सभी औषधियाँ पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गयीं। तब महाराज पृथुने पितामहके आदेशसे पृथ्वीका दोहन किया॥ ४०—४५॥

ततस्ता जगृहु सर्वा अन्योन्य क्रोधमूर्च्छिता ।
वसुदारधनाद्यास्तु बलात् कालबलेन तु॥४६॥
मर्यादाया प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद् भगवानज ।
ससर्ज क्षत्रियान् ब्रह्मा ब्राह्मणाना हिताय च॥४७॥
वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताया कृतवान् प्रभु ।
यज्ञप्रवर्तन चैव पशुहिंसाविवर्जितम्॥४८॥
द्वापरेष्वथ विद्यन्ते मतिभेदा सदा नृणाम्।
रागो लोभस्तथा युद्ध तत्त्वानामविनिश्चय ॥४९॥
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥५०॥

तदनन्तर कालके प्रभावसे वे सभी प्रजाएँ क्रोधाभिभूत होकर एक-दूसरेकी जमीन धन स्त्री आदिको बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। ऐसी अव्यवस्था देखकर भगवान् ब्रह्माने मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये और ब्राह्मणाके कल्याणके लिये क्षत्रियोंकी सृष्टि की। प्रभुने त्रेतायुगमे वर्ण तथा आश्रमकी व्यवस्था और पशुहिसासे रहित यज्ञोका प्रवर्तन किया। द्वापरमे लोगोमे सदा मतभेद, राग, लोभ, युद्ध तथा तत्त्वांके निश्चयका असामर्थ्य रहता है। एक ही वेद त्रेतामे चार पादोंमे विभक्त किया जाता है और द्वापर आदि युगोमे वेदव्यासके द्वारा वही वेद चार भागामे बाँटा जाता है[2]॥ ४६—५०॥

ऋषिपुत्रै पुनर्भेदाद् भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमै ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासै स्वरवर्णविपर्ययै ॥५१॥
सहिता ऋग्यजु साम्ना सहन्यन्ते श्रुत[illegible]
सामान्याद् वैकृताच्चैव दृष्टिभेदै क्वचित् [illegible]॥५२॥
ब्राह्मण कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवच[illegible] [illegible]
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्र[illegible] [illegible]॥५३॥

ऋषिपुत्रोने पुन भ्रान्तदृष्ट[illegible] [illegible] [illegible] विन्यास तथा स्वर एव व[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुन विभाग किये। वै[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विशेषता और दृष्टि-[illegible] [illegible]-एव [illegible] सज्ञक मन्त्रोंकी [illegible] [illegible] [illegible]। हे [illegible] (उन ऋषियों[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१-सुख-सुविधाकी अधिकता भी राग आदिका कारण बनती है।

२-सत्य एव त्रेतायुगमें वेद एक ही होता है उसके पाद चार होते हैं। [illegible] जाता है। इन चार वेदोंकी ११३ शाखाएँ होती हैं। अध्येताओंके सामर्थ्य [illegible]

और धर्मशास्त्रोंका उपदेश किया है॥ ५१—५३॥

अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः।
वाङ्मनःकायजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते नृणाम्॥५४॥
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा।
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम्॥५५॥
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः।
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता॥५६॥
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥५७॥

अवर्षण, मृत्यु, अनेक व्याधियाँ, उपद्रवों और मन, वाणी तथा शरीर-सम्बन्धी दुःखोंके कारण मनुष्योंको निर्वेद उत्पन्न होता है। फिर निर्वेदके कारण उनमें दुःखसे मुक्ति पानेका विचार पैदा होता है और विचारसे वैराग्य उत्पन्न होता है तथा वैराग्यसे अपने दोष दिखलायी पड़ते हैं। दोष-दर्शनके कारण द्वापरमें ज्ञान उत्पन्न होता है। द्वापरमें यह वृत्ति रजोगुण और तमोगुणसे युक्त कही गयी है। आद्य (सर्वप्रथम) कृतयुगमें धर्म प्रतिष्ठित था, वह त्रेतामें भी रहता है, द्वापरमें व्याकुल होकर वह धर्म कलियुगमें विलुप्त हो जाता है॥ ५४—५७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

कलियुगके धर्मोंका वर्णन, कलियुगमें शिव-पूजनकी विशेष महिमाका ख्यापन, व्यासकृत शिवस्तुति, व्यासप्रेरित अर्जुनका शिवपुरीमें जाना और व्यासद्वारा शिवभक्त अर्जुनकी महिमा

व्यास उवाच

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम्।
साधयन्ति नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृताः॥१॥
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयं तथा।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥२॥
अधार्मिका अनाचारा महाकोपाल्पचेतसः।
अनृतं वदन्ति ते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुःप्रजाः॥३॥
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः।
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्॥४॥
नाधीयते कलौ वेदान् न यजन्ति द्विजातयः।
यजन्त्यन्यायतो वेदान् पठन्ते चाल्पबुद्धयः॥५॥

व्यासजीने कहा—कलियुगमें मनुष्य सदा तमोगुणसे आवृत रहते हैं इसीलिये माया, असूया (गुणोंमें दोषदर्शन) तथा तपस्वियोंके वधमें ही लगे रहते हैं। कलियुगमें प्राणहन्ता रोग, निरन्तर भूखका कष्ट, अवर्षणका भयंकर भय तथा देशोंका उलट-फेर होता रहता है। कलियुगमें उत्पन्न हुए दुष्ट मनुष्य अधार्मिक, सदाचारसे रहित अत्यन्त क्रोधी, दुर्बल चित्तवाले तथा लोभी होते हैं और झूठ बोलते हैं। ब्राह्मणोंके असत् उद्देश्य असत् अध्ययन दुराचार तथा दूषित शास्त्रोंके अभ्यास और बुरे कर्मके दोषसे प्रजामें भय उत्पन्न होता है। द्विजाति लोग कलियुगमें वेदोंका अध्ययन नहीं करते और न यज्ञ ही करते हैं। अल्प बुद्धिवाले (यज्ञ करनेकी योग्यतासे रहित) लोग यज्ञ करते हैं और अन्यायपूर्वक वेदोंको पढ़ते हैं॥ १—५॥

शूद्राणां मन्त्रयौनैश्च सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह।
भविष्यति कलौ तस्मिञ् शयनासनभोजनैः॥६॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति च।
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेते नरेश्वर॥७॥
स्नानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्चनम्।
अन्यानि चैव कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातयः॥८॥
विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम्।
आम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे॥९॥
कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु।
स्वधर्मेऽभिरुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते॥१०॥

कलियुगमें शूद्रोंका ब्राह्मणोंके साथ मन्त्र, योनि, शयन, आसन और भोजनके द्वारा सम्बन्ध हो जायगा[१]। नरेश्वर! अधिकांश राजा शूद्र होंगे, जो वस्तुतः राजा होनेके लिये अयोग्य होंगे, वे ब्राह्मणोंको पीडित करेंगे। भ्रूणहत्या और वीरहत्या प्रचलित हो जायगी। (कलियुगमें) द्विजाति लोग स्नान, होम, जप, दान, देवताओंका पूजन तथा अन्य भी (शुभ) कर्मोंको नहीं करेंगे। कलियुगमें महादेव शंकर, पुरुषोत्तम विष्णु, ब्राह्मणों, वेदों, धर्मशास्त्रों और पुराणोंकी लोग निन्दा करते हैं। (सभी लोग) वेदमें अविहित अनेक प्रकारके कर्मोंको करते हैं तथा ब्राह्मणोंका अपने धर्ममें रुचि नहीं रहती॥ ६—१०॥

कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः।
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम्॥ ११॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे॥ १२॥
शुक्लदन्ता जिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ १३॥
शस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्षिणः।
चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः॥ १४॥
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता।
अधर्माभिनिवेशित्वात् तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्॥ १५॥

लोग कुत्सित आचारवाले एवं व्यर्थके पाखण्डोंसे युक्त हो जायँगे और संसार परस्परमें बहुत याचना करनेवाला हो जायगा। कलियुगमें जनपद अन्नविक्रयी, चौराहे वेदके विक्रयस्थल तथा स्त्रियाँ योनिविक्रयिणी हो जायँगी। युगका अन्त आनेपर सफेद दाँतोंवाले जिन नामवाले मुण्डित, काषायवस्त्रधारी शूद्र पर-धर्माचरण करने लगेंगे। (लोग) अनाज और वस्त्रकी चोरी करनेवाले होंगे। चोर लोग चोरोंकी ही चोरी करेंगे और दूसरे चोर उस चोरको चुरायेंगे। दुःखकी अधिकता होगी, अल्प आयु होगी, देहमें आलस्य तथा रोग रहेगा। अधर्ममें विशेष प्रवृत्तिके कारण कलियुगमें सभी व्यवहार तामस होंगे॥ ११—१५॥

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये।
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे॥ १६॥
आसनस्थान् द्विजान् दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धयः।
ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः॥ १७॥
उच्चासनस्थाः शूद्रास्तु द्विजमध्ये परंतप।
ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालबलेन तु॥ १८॥
पुष्पैश्च हसितैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः।
शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः॥ १९॥
न प्रेक्षन्तेऽर्चिताश्चापि शूद्रा द्विजवरान् नृप।
सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्ठन्ति च द्विजाः॥ २०॥

कुछ लोग काषायवस्त्र धारण करनेवाले, कुछ निर्ग्रन्थ (यज्ञोपवीत, शिखा आदिसे विहीन पंथवाले), कापालिक[२], वेदविक्रयी तथा कुछ लोग तीर्थविक्रयी[३] हो जायँगे। (कलियुगमें) राजाका संरक्षण प्राप्तकर अल्पबुद्धिवाले शूद्र आसनपर स्थित द्विजोंको देखकर नहीं चलते (द्विजोचित व्यवहार नहीं करते) तथा श्रेष्ठ द्विजोंको प्रताडित करते हैं। परंतप! कलियुगमें समयके प्रभावसे द्विजोंके मध्यमें शूद्र उच्च आसनपर बैठते हैं, किंतु राजा जानकर भी उन्हें दण्ड नहीं देता। अल्प ज्ञान, अल्प भाग्य तथा अल्प बलवाले द्विज लोग पुष्पोंके द्वारा मनोविनोदके साधन 'हास' आदिसे तथा अन्य माङ्गलिक पदार्थोंसे शूद्रोंकी पूजा करते हैं[४]। राजन्! शूद्र लोग पूजित श्रेष्ठ द्विजोंकी ओर देखते तक नहीं और द्विज सेवाके अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए उनके दरवाजेपर खड़े रहते हैं॥ १६—२०॥

वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः।
सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ॥ २१॥
अध्यापयन्ति वै वेदाञ् शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः।
पठन्ति वैदिकान् मन्त्रान् नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः॥ २२॥

१-ब्राह्मणोंके शूद्र छोटे भाई हैं। बड़े भाईका छोटे भाईके प्रति अतिशय स्नेह होता है अतः ब्राह्मण शूद्रोंसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करते ही हैं और यही अन्य युगोंमें था, पर कलिमें सत्त्वगुणकी कमी होनेसे ऐसे व्यवहारका प्रायः अभाव हो जाता है तथा अधिकार, योग्यता एवं मर्यादाका अतिक्रमण कर लोभ या भयवश ब्राह्मण मन्त्रदीक्षा, योनि (वैवाहिक सम्बन्ध) आदि करने लगते हैं। यह यथार्थतः अनुचित है ही।

२-पथ-विशेष। ३-अपने पुण्यको बचनेवाले।

४-यदि कोई बड़ा लोभ या भयवश अपनेसे छोटेकी पूजा या अमर्यादित ढंगसे चापलूसी करे तो यह उचित नहीं है, निषिद्ध है।

तपोयज्ञफलाना च विक्रतारो द्विजोत्तमा ।
यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रश ॥ २३ ॥
नाशयन्ति ह्यधीतानि नाधिगच्छन्ति चानघ।
गायन्ति लौकिकैर्गानैर्दैवतानि नराधिप ॥ २४ ॥

कलियुगमे शूद्रसे जीविका पानवाले ब्राह्मण वाहनमे स्थित शूद्रोको घेरकर स्तुतियोद्वारा उनकी प्रशसा करते हैं और सेवा करते हैं। शूद्रोसे जीविका प्राप्त करनेवाले (ब्राह्मण) शूद्रोको वेद[१] पढाते हैं। घोर नास्तिकतावादी (शूद्र) वैदिक मन्त्रोको पढते हैं। जिनकी श्रेष्ठ द्विजके रूपमे समाजमे मान्यता होती है वे लोग (अपने) तप एव यज्ञके फलोका विक्रय करनेवाले होते हैं। (आलस्य या प्रतिष्ठाके लिये) सैकडो एव हजारोकी सख्यामे लोग सन्यासी हो जायँगे। हे निष्पाप राजन्! (कलियुगमे लोग) पढे हुएको भूल जाते हैं, अध्ययनके फल ज्ञानके लिये उत्सुक नहीं रहते। (वे) लौकिक गीतोसे देवताओकी स्तुति करते हैं ॥ २१—२४ ॥

वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिका ।
भविष्यन्ति कलौ तस्मिन् ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा ॥ २५ ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियता गते।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ २६ ॥
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणाना कुलेषु वै।
दधीचशापनिर्दग्धा पुरा दक्षाध्वरे द्विजा ॥ २७ ॥
निन्दन्ति च महादेव तमसाविष्टचेतस ।
वृथा धर्म चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन् युगान्तिके ॥ २८ ॥
ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मन ।
सर्वे ते च भविष्यन्ति ब्राह्मणाद्या स्वजातिषु ॥ २९ ॥
विनिन्दन्ति हृषीकेश ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिन ।
वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमा ॥ ३० ॥

कलियुगमे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वाममार्गी, पाशुपताचारी तथा पाञ्चरात्रिक हो जायँगे[२]। ज्ञान तथा कर्मका लोप हो जाने और लोगोके निष्क्रिय हो जानेपर कीडे, चूहे तथा सर्प लोगोको कष्ट पहुँचायेंगे। प्राचीन कालमे दक्ष प्रजापतिके यज्ञमे दधीचके शापसे दग्ध हुए द्विज ब्राह्मणोके कुलमे उत्पन्न होगे। कलियुगके अन्तसमयमे तमोगुणसे व्याप्त मनवाले लोग महादेवकी निन्दा करेगे और व्यर्थके धर्मो (धर्माभासो)-का आचरण करेगे तथा जो दूसरे महात्मा गौतमके शापसे दग्ध हुए लोग थे वे सभी ब्राह्मण आदि अपनी-अपनी जातियोमे उत्पन्न होगे। वेदोंमे निषिद्ध व्रत और आचारका पालन करनेवाले दुराचारी तथा व्यर्थका श्रम (धर्म-मोक्षविरोधी अर्थमात्र साधक काम अथवा दुर्जनतावश लोगोको पीडा देनेवाले काम) करनेवाले लोग हृषीकेश (श्रीविष्णु) तथा ब्रह्मवादी ब्राह्मणोकी निन्दा करेगे ॥ २५—३० ॥

मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च।
तमसाविष्टमनसो वैडालवृत्तिकाधमा ॥ ३१ ॥
कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वर पर ।
न देवता भवेन्नृणा देवताना च दैवतम् ॥ ३२ ॥
करिष्यत्यवताराणि शकरो नीललोहित ।

१-शूद्र चौथे वर्णका नाम है। शूद्र शब्दसे किसी हीनभावको समझना कथमपि शास्त्रसम्मत नहीं है। अपने छोटे भाईके प्रति हीनभाव अपनाना सर्वथा अनुचित है। वेदोंके अध्ययनसे विरत रहनेके लिये शूद्रोको आदेश अवश्य दिया गया है पर इसके मूलमे उनके प्रति कल्याणकी भावना ही निहित है। यह वास्तविकता है कि समग्र वेदोका यथावत् अध्ययन करनेपर ही उनके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जो अधूरा न होकर परिपूर्ण होता है तथा सही अर्थमे कल्याणका साधन बनता है। जिन मनीषियोने समग्र वेदोका आकलन किया है उन लोगोने निरपेक्ष-भावसे यह भलीभाँति समझा है तथा परीक्षापूर्वक अनुभव किया है कि समग्र वेदोका अध्ययन तीव्रतम तप एव कठोरतम परिश्रम (सुदीर्घकालिक)-के बिना कथमपि सम्भव नहीं है और यह सुदीर्घकालिक तीव्रतम तप एव कठोरतम परिश्रम प्रिय अनुज (छोटे भाई) शूद्र एव अतिकोमल प्रकृतिवाला स्त्रियाँ कथमपि नहीं कर सकतीं। अतएव विशेषकर इन्हींके कल्याणके लिये महाभारत तथा अन्यान्य पुराण आदि ग्रन्थोका आविर्भाव हुआ। इन ग्रन्थोमें सरल एव रोचक पद्धतिसे वे ही ज्ञान-विज्ञान वर्णित हैं जो वेदोमे वर्णित हैं। योग्यता अधिकार एव अध्ययनके विधानके अनुसार इन (महाभारत आदि)-को अपनी अपेक्षाके अनुकूल जान-समझकर करनेसे कल्याण अवश्य ही प्राप्त होता है जो वेदोके समग्र अध्ययनसे प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि ज्ञानरूप फलकी दृष्टिसे मानव क्या प्राणिमात्र अपनी सामर्थ्यके अनुसार समान हैं। अत वेदोका पढनेके विषयमें जो शास्त्रीय व्यवस्था है उसके प्रति अन्यथा-दृष्टि अपनाना भूल हैं।

२-यहाँ वाममार्ग आदिकी निन्दामे तात्पर्य नहीं है। वैदिक मार्गकी स्तुतिमे तात्पर्य है। शुद्ध सात्त्विक भावकी प्रमुखता वैदिक मार्गमें है अत वैदिक मार्ग प्रशस्ततम है। वाममार्ग आदिमे तो तामस-भाव एव राजस-भावकी प्रमुखता है। अत ये प्रशस्त नहीं हैं।

श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्ताना हितकाम्यया॥ ३३॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञान शिष्याणा ब्रह्मसज्ञितम्।
सर्ववेदान्तसार हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥ ३४॥
ये त विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारत ।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परम पदम्॥ ३५॥

तमोगुणसे आविष्ट मनवाले तथा दिखावटी धर्माचरण करनेवाले अधम लोग अनेक प्रलोभनाको दिखाकर सब लागोको मोहित करेगे। कलियुगमें लोकोके ईश्वर दवताओके भी देव श्रेष्ठ महादेव रुद्र मनुष्योकी दृष्टिमे देव (आराध्य) नहीं रहेगे, पर भक्ताके कल्याणकी कामनासे तथा श्रौत एव स्मार्त धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये नीललोहित शकर अनेक अवतार धारण करगे। वे समस्त वेदान्तके साररूप उस ब्रह्मसज्ञक ज्ञानको और वेदमे बताये गये धर्मोंको शिष्योको प्रदान करेग। जो ब्राह्मण जिस-किसी भी उपायसे उन (शकर)-की सेवा करेगे, वे कलिके दोषोको जीतकर परमपदको प्राप्त करगे॥ ३१—३५॥

अनायासेन सुमहत् पुण्यमाप्नोति मानव ।
अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेष महान् गुण ॥ ३६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वर युगम्।
विशेषाद् ब्राह्मणो रुद्रमीशान शरण व्रजेत्॥ ३७॥
ये नमन्ति विरूपाक्षमीशान कृत्तिवाससम्।
प्रसन्नचेतसो रुद्र ते यान्ति परम पदम्॥ ३८॥
यथा रुद्रनमस्कार सर्वकर्मफलो ध्रुवम्।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥ ३९॥
एवविधे कलियुगे दोषाणामेकशोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुति ॥ ४०॥

अनेक दोषोसे दूषित कलिका यह महान् गुण है कि इसके युगमें मनुष्य अनायास महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। इसलिये महश्वर-सम्बन्धी युग प्राप्तकर विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे ईशान रुद्रकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। जो प्रसन्न-मनसे विरूपाक्ष कृत्तिवासा ईशान रुद्रको नमस्कार करते हैं, वे परमपदको प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार रुद्रको किया गया नमस्कार निश्चितरूपसे सभी कामनाओंको पूर्ण करता है उस प्रकार अन्य देवाको नमस्कार करनेस वैसा फल नहीं होता। इस प्रकारके कलियुगमे दोषाको दूर करनेका एकमात्र उपाय है महादेवको नमस्कार, उनका ध्यान और शास्त्रानुसार दान—ऐसा वेदका मत है॥ ३६—४०॥

तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देव महेश्वरम्।
समाश्रयेद् विरूपाक्ष यदीच्छेत् परम पदम्॥ ४१॥
नार्चयन्तीह ये रुद्र शिव त्रिदशवन्दितम्।
तेषा दान तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च॥ ४२॥

इसलिये यदि परमपद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो अन्य अनीश्वरो (महेश्वरकी कृपासे ही शक्ति प्राप्त करनेवाले अन्य देवो)-को छाडकर एकमात्र देव विरूपाक्ष महेश्वरका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। जो देवताओक द्वारा वन्दित रुद्र शिवकी अर्चना नहीं करते हैं उनका किया हुआ दान, तप, यज्ञ और जीवन व्यर्थ ही होता है॥ ४१-४२॥

नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिना गुरवे नम ॥ ४३॥
नमोऽस्तु वामदेवाय महादेवाय वेधसे।
शम्भवे स्थाणवे नित्य शिवाय परमेष्ठिने।
नम सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतव॥ ४४॥

त्रिशूल धारण करनेवाले देवाधिदव महान् रुद्रको नमस्कार है। त्र्यम्बक, त्रिलोचन यागियाक गुरुक लिये नमस्कार है। महादेव, वेधा, वामदेव शम्भु, स्थाणु, परमेष्ठी शिवको नित्य नमस्कार है। सोम रुद्र, महाग्रास (महाप्रलयम समस्त प्रपञ्चका अपनेम लीन कर लेनवाले) तथा कारणरूपका नमस्कार है॥ ४३-४४॥

प्रपद्येऽह विरूपाक्ष शरण्य ब्रह्मचारिणम्।
महादव महायोगमीशान चाम्बिकापतिम्॥ ४५॥
योगिना योगदातार योगमायासमावृतम्।
योगिना गुरुमाचार्यं योगिगम्य पिनाकिनम्॥ ४६॥
ससारतारण रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽधिपम्।
शाश्वत सर्वग शान्त ब्रह्मण्य ब्राह्मणप्रियम्॥ ४७॥
कपर्दिन कालमूर्तिममूर्तिं परमेश्वरम्।
एकमूर्तिं महामूर्तिं वदवेद्य दिवस्पतिम्॥ ४८॥
नीलकण्ठ विश्वमूर्तिं व्यापिन विश्वरतसम्।
कालाग्नि कालदहन कामद कामनाशनम्॥ ४९॥

नमस्ये गिरिश देव चन्द्रावयवभूषणम्।
विलोहित लेलिहानमादित्य परमेष्ठिनम्।
उग्र पशुपति भीम भास्कर तमस परम्॥५०॥

मैं विरूपाक्ष शरण ग्रहण करने योग्य, ब्रह्मचारी, महायोगस्वरूप ईशान तथा अम्बिकापति महादेवकी शरण ग्रहण करता हूँ। योगियोंको योग प्रदान करनेवाले, योगमायासे आवृत, योगियोंके गुरु, आचार्य, योगिगम्य पिनाकी, संसारसे उद्धार करनेवाले, रुद्र ब्रह्मा ब्रह्माधिपति, शाश्वत, सर्वव्यापी, शान्त ब्राह्मणोंके रक्षक तथा ब्राह्मणप्रिय, जटाधारी, कालमूर्ति, अमूर्ति एकमूर्ति, महामूर्ति, वेदवेद्य और द्युलोकके स्वामी परमेश्वर तथा नीलकण्ठ, विश्वमूर्ति, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, विश्वरेता (जिनके वीर्यसे ही समस्त विश्वकी उत्पत्ति हुई है), कालाग्निरूप, कालका दहन करनेवाले, कामनाओंको प्रदान करनेवाले एव कामदेवका नाश करनेवाले चन्द्रमाके अवयवको अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रमाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले देव गिरिश, विशेषरूपसे रक्तवर्णवाले, ग्रास बना लेनेवाले (महाप्रलयमें सबको अपने उदरमें डाल लेनेवाले) आदित्य उग्र पशुपति भीम भास्कर तथा अन्धकारसे परे रहनेवाले परमेष्ठीको मैं नमस्कार करता हूँ॥४५—५०॥

इत्येतल्लक्षण प्रोक्त युगाना वै समासत ।
अतीतानागताना वै यावन्मन्वन्तरक्षय ॥५१॥
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै।
व्याख्यातानि न सदेह कल्प कल्पेन चैव हि॥५२॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै।
तुल्याभिमानिन सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत॥५३॥

मन्वन्तरकी समाप्तिपर्यन्त बीते हुए तथा भविष्यमें आनेवाले युगों (कलियुगों)-का सक्षेपमें यह लक्षण बताया गया है, नि सदेह एक मन्वन्तर (के कथन)-से सभी मन्वन्तरों तथा एक कल्प (के कथन)-से अन्य कल्पोंका भी कथन हो गया। बीते हुए तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंमें समान नाम एव रूपवाले सभी अधिष्ठाता (देवता, सप्तर्षि तथा इन्द्र आदि) होते हैं॥५१—५३॥

एवमुक्तो भगवता किरीटी श्वेतवाहन ।
बभार परमा भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम्॥५४॥
नमश्चकार तमृषि कृष्णद्वैपायन प्रभुम्।
सर्वज्ञ सर्वकर्तार साक्षाद् विष्णु व्यवस्थितम्॥५५॥

भगवान् (व्यास)-के ऐसा कहनेपर श्वेतवाहन किरीटधारी (अर्जुन)-ने ईशान (भगवान् शंकर)-में निश्चल परम भक्ति धारण की। उन्होंने उन सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाले, साक्षात् विष्णुके रूपमें अवस्थित प्रभु कृष्णद्वैपायन ऋषिको नमस्कार किया॥ ५४-५५॥

तमुवाच पुनर्व्यास पार्थं परपुरजयम्।
कराभ्या सुशुभाभ्या च सस्पृश्य प्रणत मुनि ॥५६॥
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते।
त्रैलोक्ये शकर नून भक्त परपुरजय॥५७॥
दृष्टवानसि त देव विश्वाक्ष विश्वतोमुखम्।
प्रत्यक्षमेव सर्वेश रुद्र सर्वजगद्गुरुम्॥५८॥
ज्ञान तदैश्वर दिव्य यथावद् विदित त्वया।
स्वयमेव हृषीकेश प्रीत्योवाच सनातन ॥५९॥
गच्छ गच्छ स्वक स्थान न शोक कर्तुमर्हसि।
व्रजस्व परया भक्त्या शरण्य शरण शिवम्॥६०॥

शत्रुके नगरको जीतनेवाले तथा विनीत उन पार्थ (अर्जुन)-को व्यासमुनिने अपने दोनों सुन्दर शुभ हाथोंसे स्पर्श करते हुए पुन कहा। शत्रुके नगरको जीतनेवाले (अर्जुन!)-निश्चय ही तीनो लोकोंमें तुम्हारे समान शकरका भक्त कोई दूसरा नहीं है तुम धन्य हो अनुगृहीत (भगवान् शकरके अनुग्रहके भाजन) हो। तुमने सभी ओर नेत्र तथा सभी ओर मुखवाले सारे संसारके गुरु, सर्वेश रुद्रदेवका प्रत्यक्ष ही दर्शन किया है। ईश्वर (शकर)-सम्बन्धी दिव्य ज्ञान तुम्हें यथार्थरूपसे विदित है। स्वय सनातन हृषीकेशने प्रीतिपूर्वक तुम्हें सब बतलाया था। शीघ्र अपने स्थानको जाओ तुम शोक करने योग्य नहीं हो। शरणागतवत्सल शिवकी परा भक्तिकी शरण ग्रहण करो॥ ५६—६०॥

एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्जुन प्रभु ।
जगाम शकरपुरीं समाराधयितु भवम्॥६१॥
पाण्डवेयोऽपि तद्वाक्यात् सम्प्राप्य शरण शिवम्।
सत्यज्य सर्वकर्माणि तद्भक्तिपरमोऽभवत्॥६२॥

ऐसा कहकर वे भगवान् प्रभु (व्यास) अर्जुनपर कृपा करके शकरकी आराधना करनेके लिये शकरकी पुरीको गये। पाण्डुपुत्र अर्जुन भी उनके कहनेसे शिवकी शरणमें पहुँचे और सभी कर्मोंका परित्यागकर उनकी भक्तिमें ही दत्तचित हो गये॥ ६१-६२॥

नार्जुनेन सम शम्भोर्भक्त्या भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनु कृष्ण वा देवकीसुतम्॥६३॥
तस्मै भगवते नित्य नम सत्याय धीमते।
पाराशर्याय मुनये व्यासायामिततेजसे॥६४॥
कृष्णद्वैपायन साक्षाद् विष्णुरेव सनातन।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्र वेत्ति त परमेश्वरम्॥६५॥
नम कुरुध्व तमृषि कृष्ण सत्यवतीसुतम्।
पाराशर्यं महात्मान योगिन विष्णुमव्ययम्॥६६॥
एवमुक्तास्तु मुनय सर्व एव समाहिता।
प्रणेमुस्त महात्मान व्यास सत्यवतीसुतम्॥६७॥

सत्यवतीके पुत्र व्यास या देवकीके पुत्र कृष्णको छोडकर अन्य कोई भी अर्जुनके समान शकरकी भक्ति करनेवाला न तो हुआ और न होगा। उन सत्यस्वरूप, धीमान् पराशरके पुत्र अमित तेजस्वी भगवान् व्यासमुनिको नित्य नमस्कार है। कृष्णद्वैपायन (व्यास) साक्षात् सनातन विष्णु ही हैं, इनके अतिरिक्त उन परमेश्वर रुद्रको यथार्थ-रूपसे अन्य कौन जानता है। इन सत्यवतीनन्दन, पराशरपुत्र, महात्मा योगी, अव्यय विष्णुस्वरूप कृष्णद्वैपायन (व्यास) ऋषिको आपलोग नमस्कार करें। इस प्रकारसे कहे जानेपर सभी मुनियाने एकाग्रचित्त होकर सत्यवतीके पुत्र उन महात्मा व्यासको नमस्कार किया॥६३—६७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायां पूर्वविभागे अष्टाविशोऽध्याय ॥ २८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका वाराणसी-गमन, व्याससे जैमिनि आदि ऋषियोका धर्मसम्बन्धी प्रश्न, व्यासका उन्हे शिव-पार्वती-सवाद बताना, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य, वाराणसी-सेवनका विशेष फल

ऋषय ऊचु

प्राप्य वाराणसीं दिव्या कृष्णद्वैपायनो मुनि।
किमकार्षीन्महाबुद्धि श्रोतु कौतूहल हि न॥१॥

ऋषियोने कहा—(सूतजी!) महाबुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिने दिव्य वाराणसीपुरीम पहुँचकर क्या किया? इस विषयको सुननेके लिये हम लोगाको कौतूहल है॥१॥

सूत उवाच

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनि।
पूजयामास जाह्नव्या देव विश्वेश्वर शिवम्॥२॥
तमागत मुनि दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै।
पूजयाञ्चक्रिरे व्यास मुनयो मुनिपुगवम्॥३॥
पप्रच्छु प्रणता सर्वे कथा पापविनाशिनी।
महादेवाश्रया पुण्या मोक्षधर्मान् सनातनान्॥४॥
स चापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषि।
माहात्म्य देवदेवस्य धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥५॥
तेषा मध्ये मुनीन्द्राणा व्यासशिष्यो महामुनि।
पृष्टवान् जैमिनिर्व्यास गूढमर्थं सनातनम्॥६॥

सूतजी बोले—दिव्य वाराणसीम पहुँचकर महामुनिने गङ्गामे आचमनकर (स्नानकर) विश्वेश्वर देव शिवका पूजन किया। उन मुनि (व्यासजी)-को आया देखकर वहाँ निवास करनेवाले मुनियोने मुनिश्रेष्ठ व्यासकी पूजा की। उन सभीने महादेवसे सम्बद्ध पापोका नाश करनेवाली पुण्यदायिनी कथा तथा सनातन मोक्षधर्मोको विनयपूर्वक पूछा। सर्वज्ञ उन भगवान् (व्यास) ऋषिने भी देवाधिदेव (शिव)-का माहात्म्य तथा वेदम निर्दिष्ट धर्मोका वर्णन किया। उन मुनियाके मध्य व्यासके शिष्य महामुनि जैमिनिने व्यासजीसे सनातन गूढ अर्थ पूछा॥ २—६॥

जैमिनिरुवाच

भगवन् सशय त्वेक छेत्तुमर्हसि तत्त्वत।
न विद्यते ह्यविदित भवता परमर्षिणा॥७॥
केचिद् ध्यान प्रशसन्ति धर्ममेवापरे जना।
अन्य साङ्ख्य तथा योग तपस्त्वन्ये महर्षय॥८॥
ब्रह्मचर्यमथो मौनमन्य प्राहुर्महर्षय।
अहिंसा सत्यमप्यन्ये सन्यासमपरे विदु॥९॥

केचिद् दया प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा।
तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्॥ १०॥
किमेतेषां भवेज्ज्याय प्रब्रूहि मुनिपुंगव।
यदि वा विद्यतेऽप्यन्यद् गुह्यं तद्वक्तुमर्हसि॥ ११॥

जैमिनिने कहा—भगवन्! एक संशयको आप यथार्थरूपसे दूर करें, क्योंकि आप परम ऋषिका कुछ भी अविदित नहीं है। कुछ लोग ध्यानकी प्रशंसा करते हैं, कुछ दूसरे धर्मकी ही प्रशंसा करते हैं। अन्य लोग सांख्य तथा योगकी, कुछ महर्षि तपकी कोई ब्रह्मचर्यकी और दूसरे महर्षि मौन धारणकी, कुछ अहिंसा एवं सत्यकी तथा कुछ विद्वान् संन्यासको श्रेष्ठ बताते हैं। कुछ लोग दयाकी प्रशंसा करते हैं तो कुछ दान तथा अध्ययनकी। इसी प्रकार कुछ तीर्थयात्राको तथा दूसरे लोग इन्द्रियनिग्रहको महत्त्व देते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इनमेंसे बतलायें कि कौन सर्वाधिक श्रेष्ठ है अथवा अन्य भी यदि कोई गुह्य साधन हो तो उसे आप बतलायें॥ ७—११॥

श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम्॥ १२॥

जैमिनिकी बात सुनकर वे कृष्णद्वैपायन मुनि वृषभध्वज (शंकर)-को प्रणाम करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले—॥ १२॥

भगवानुवाच

साधु साधु महाभाग यत्पृष्टं भवता मुने।
वक्ष्ये गुह्यतमाद् गुह्यं शृण्वन्त्वन्ये महर्षयः॥ १३॥
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत् सनातनम्।
गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः॥ १४॥
नाश्रद्दधाने दातव्यं नाभक्ते परमेष्ठिनः।
न वेदविद्विषे शुभ्रं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्॥ १५॥
मेरुशृङ्गे पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम्।
देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत॥ १६॥

भगवान् (व्यास)-ने कहा—महाभाग्यशाली मुने! आप धन्य हैं धन्य हैं। आपने जो पूछा है मैं उस गुह्यतमसे भी गुह्य (तत्त्व)-को कहता हूँ, अन्य सभी महर्षि भी सुनें। अज्ञानी लोग जिससे द्वेष करते हैं और सूक्ष्मदर्शी जिसका सेवन करते हैं, वह गूढ सनातन ज्ञान प्राचीन कालमें ईश्वर (शंकर)-के द्वारा कहा गया है। जो श्रद्धारहित हो परमेष्ठी (शंकर)-का भक्त न हो और वेदसे द्वेष रखता हो ऐसे व्यक्तिको सभी ज्ञानोंमें उत्तम इस शुभ ज्ञानको नहीं प्रदान करना चाहिये। प्राचीन कालमें मेरु-शिखरपर भगवान् शंकरके साथ एक ही आसनपर स्थित देवी पार्वतीने त्रिपुरारि देव, ईशान महादेवसे पूछा—॥ १३—१६॥

देव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामार्तिनाशन।
कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति॥ १७॥
सांख्ययोगस्तथा ध्यानं कर्मयोगोऽथ वैदिकः।
आयासबहुला लोके यानि चान्यानि शंकर॥ १८॥
येन विभ्रान्तचित्तानां योगिनां कर्मिणामपि।
दृश्यो हि भगवान् सूक्ष्मः सर्वेषामथ देहिनाम्॥ १९॥
एतद् गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम्।
हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन॥ २०॥

देवीने कहा—देवाधिदेव महादेव! आप भक्तोंके कष्टको दूर करनेवाले हैं। पुरुष किस प्रकार शीघ्र ही आप देवका दर्शन कर सकता है? कामदेवका विनाश करनेवाले शंकर! लोकमें सांख्य योग, ध्यान, वैदिक कर्मयोग और अन्य भी अनेक अधिक परिश्रमसाध्य (उपाय) बतलाये गये हैं। (उनमें) जो ब्रह्मा आदिद्वारा सेवित उपाय या अत्यन्त गुह्य एवं गूढ ज्ञान हो, उसे आप हम सभी भक्तोंके कल्याणके लिये बतलायें, जिससे भ्रान्तचित्तवाले अथवा कर्मयोगी मनुष्यों एवं समस्त देहधारियोंको सूक्ष्म भगवान्‌का दर्शन हो सके॥ १७—२०॥

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् विज्ञानं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम्।
वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः॥ २१॥
परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी।
सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी॥ २२॥
तत्र भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिताः।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः॥ २३॥
उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च तत्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम॥ २४॥

ईश्वर बोले—परम ऋषियोंने जिस विज्ञानको कहा है, अज्ञानियोंने जिस ज्ञानका विरोध किया है और जो अकथनीय है, उसे मैं तत्त्वतः तुमसे कहता हूँ। पुरी वाराणसी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। यह सभी प्राणियोंको संसारसागरसे पार उतारनेवाली है। महादेवि! यहाँ मेरे

व्रतको धारण करनेवाले भक्त तथा श्रेष्ठ नियमका आश्रय ग्रहण करनेवाले महात्मा निवास करते हैं। यह मेरा अविमुक्त (काशीक्षेत्र) सभी तीर्थोंमे उत्तम, सभी स्थानामे श्रेष्ठ और सभी ज्ञानोमे उत्तम ज्ञानरूप है॥ २१—२४॥

स्थानान्तर पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च।
श्मशानसस्थितान्येव दिव्यभूमिगतानि च॥ २५॥
भूर्लोके नैव सलग्रमन्तरिक्षे ममालयम्।
अयुक्तास्तत्र पश्यन्ति युक्ता पश्यन्ति चेतसा॥ २६॥
श्मशानमेतद् विख्यातमविमुक्तमिति श्रुतम्।
कालो भूत्वा जगदिद सहराम्यत्र सुन्दरि॥ २७॥
देवीद सर्वगुह्याना स्थान प्रियतम मम।
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते॥ २८॥
दत्त जप्त हुत चेष्ट तपस्तप्त कृत च यत्।
ध्यानमध्ययन ज्ञान सर्वं तत्राक्षय भवेत्॥ २९॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पाप पूर्वसचितम्।
अविमुक्त प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥ ३०॥

इस दिव्य भूमिमे महाश्मशानरूपी[१] काशीमे अन्य अनेक पवित्र स्थान, तीर्थ तथा मन्दिर प्रतिष्ठित हैं मेरा गृहस्वरूप (यह वाराणसी क्षेत्र) भू-लोकसे सम्बद्ध नहीं है, अपितु अन्तरिक्षमें (अवस्थित) है, अयोगियाको इसके दर्शन नहीं होते। जो योगी हैं वे ध्यानम इसका दर्शन करते हैं। सुन्दरी! यह महाश्मशानके नामसे विख्यात है और इसे अविमुक्त (क्षेत्र) भी कहा जाता है। में कालरूप होकर यहाँ इस ससारका सहार करता हूँ। देवि! सभी गुह्य स्थानोमे यह मेरा सर्वाधिक प्रिय स्थान है। मेरे भक्त यहाँ आते ही मुझम ही प्रविष्ट हो जाते हैं। यहाँ किया हुआ दान, जप होम, यज्ञ तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन और ज्ञानार्जन—सब कुछ अक्षय हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेवालेका हजारों जन्मान्तरोंम किया हुआ जो पूर्वसचित पाप है, वह सब नष्ट हो जाता है॥ २५—३०॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा ये वर्णसकरा।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सकीर्णा पापयोनय॥ ३१॥
कीटा पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिण।
कालेन निधन प्राप्ता अविमुक्ते वरानने॥ ३२॥
चन्द्रार्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहना।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवा॥ ३३॥
नाविमुक्ते मृत कश्चिन्नरक याति किल्बिषी।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परा गतिम्॥ ३४॥
मोक्ष सुदुर्लभ मत्वा ससार चातिभीषणम्।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्या वसेन्नर॥ ३५॥

वरानने! अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्रमे कालवश मृत्युको प्राप्त—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसकर, स्त्री, म्लेच्छ, अन्य सकीर्ण पाप योनिवाले सभी मानव प्राणी, कीडे, चींटी तथा जो भी अन्य मृग-पक्षी आदि हैं—ये सभी सिरपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, त्रिनेत्र तथा महावृषभ (नन्दी)-को वाहन बनानेवाले (शिव-स्वरूप) मानव बनकर मेरे कल्याणमय पुरमे उत्पन्न होते हैं। अविमुक्त क्षेत्रमे मरा हुआ कोई पापी नरकमे नहीं जाता है, ईश्वर (शकर)-से कृपा-प्राप्त वे सभी परम गति प्राप्त करते हे॥३४॥ मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और ससारको अत्यन्त भीषण समझकर पत्थरद्वारा पैरोको तोडकर मनुष्यको वाराणसीमे निवास करना चाहिये॥ ३१—३५॥

दुर्लभा तपसा चापि पूतस्य परमेश्वरि।
यत्र तत्र विपन्नस्य गति ससारमोक्षिणी॥ ३६॥
प्रसादाज्जायते ह्येतन्मम शैलेन्द्रनन्दिनि।
अप्रबुद्धा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिता॥ ३७॥
अविमुक्त न सेवन्ते मूढा ये तमसावृता।
विण्मूत्ररेतसा मध्ये ते वसन्ति पुन पुन॥ ३८॥
हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद् विघ्नशतैरपि।
स याति परम स्थान यत्र गत्वा न शोचति॥ ३९॥

परमेश्वरी! तपस्याद्वारा पवित्र हुए प्राणीके लिये भी जहाँ-कहीं मरनेपर ससारसे मुक्त करनेवाली गति दुर्लभ होती है। शैलपुत्री! मेरे अनुग्रहसे (वह गति) यहाँ प्राप्त हो जाती है। मेरी मायासे विमोहित अज्ञानी लोग इस तत्त्वको नहीं समझते हैं। अज्ञानसे आवृत मूढ लोग अविमुक्त क्षेत्रका सेवन नहीं करते, वे मल-मूत्र और रजोवीर्य (से युक्त नरक)-के बीच बार-बार निवास करते हैं। सैकडों विघ्नासे आहत होनेपर भी जो विद्वान् (वाराणसीमे) निवास करते

१-काशीमें मरण होनेपर स्थूल सूक्ष्म एव कारण—इन तीनो शरीरोंका सदाके लिये नाश हो जाता है इसीलिये काशाको महाश्मशान कहते हैं।

हैं, वे उस परम स्थानको प्राप्त करते हैं, जहाँ जानेपर शोक नहीं करना पडता॥ ३६—३९ ॥

जन्ममृत्युजरामुक्त पर यान्ति शिवालयम्।
अपुनर्मरणाना हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
या प्राप्य कृतकृत्य स्यादिति मन्यन्ति पण्डिता ॥४०॥
न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया।
प्राप्यत गतिरुत्कृष्टा याविमुक्ते तु लभ्यते॥४१॥
नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिता ।
किल्बिषै पूर्णदेहा ये विशिष्टै पातकैस्तथा।
भेषज परम तेषामविमुक्त विदुर्बुधा ॥४२॥
अविमुक्त पर ज्ञानमविमुक्त पर पदम्।
अविमुक्त पर तत्त्वमविमुक्त पर शिवम्॥४३॥
कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये।
तेषा तत्परम ज्ञान ददाम्यन्ते पर पदम्॥४४॥

(वे) जन्म मृत्यु और जरारहित होकर शिवके श्रेष्ठ निवासस्थानको प्राप्त करते हैं। पुन मरणको न प्राप्त करनेवाले मोक्षार्थियोकी वह सद्गति होती हे, जिसे प्राप्तकर पण्डित लोग (स्वयको) कृतकृत्य मानते हैं। अविमुक्त क्षेत्रम जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है, वह न दानास न विविध तपासे, न यज्ञास और न विद्याद्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। विद्वानाका यह कहना है कि अनेक (ब्राह्मणादि) वर्णवाले मनुष्यो, वर्णरहित चण्डालादिकों, घृणित व्यक्तियो तथा जो पापो तथा विशिष्ट पापो (महापापो)-से युक्त देहवाले हैं उनके लिये अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसीका सेवन ही) परम ओषधि है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम ज्ञान है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम पद है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम तत्त्व है और अविमुक्त (क्षेत्र) परम कल्याण है। नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण कर जो अविमुक्त (क्षेत्र)-मे निवास करते हैं, उन्हे मैं श्रेष्ठ ज्ञान और अन्तम परम पद प्रदान करता हूँ॥ ४०—४४॥

प्रयाग नैमिष पुण्य श्रीशैलोऽथ महालय ।
केदार भद्रकर्ण च गया पुष्करमेव च॥४५॥
कुरुक्षेत्र रुद्रकोटिर्नर्मदाम्रातकेश्वरम्।
शालिग्राम च कुब्जाम्र कोकामुखमनुत्तमम्।
प्रभास विजयेशान गोकर्ण भद्रकर्णकम्॥४६॥
एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि ह।
न यास्यन्ति पर मोक्ष वाराणस्या यथा मृता ॥४७॥
वाराणस्या विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी।
प्रविष्टा नाशयेत् पाप जन्मान्तरशतै कृतम्॥४८॥

प्रयाग, पुण्यदायी नैमिषारण्य महालय श्रीशैल, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा आम्रातकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, श्रेष्ठ कोकामुख प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण तथा भद्रकर्ण—ये सभी पवित्र तीर्थ तीनो लोकोंमें विख्यात हैं, किंतु जिस प्रकार वाराणसीमे मरे हुए व्यक्तियोको परम मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। वाराणसीम प्रविष्ट त्रिपथगामिनी (स्वर्ग, पाताल एव भूलोक इस प्रकार तीन पथोमे प्रवाहित होनेवाली) गङ्गा सैकडो जन्मोमे किये हुए पापोको नष्ट करनेमे अपना विशिष्ट स्थान रखती है॥ ४५—४८॥

अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्ध दान तपो जप ।
व्रतानि सर्वमेवैतद् वाराणस्या सुदुर्लभम्॥४९॥
यजेत जुहुयान्नित्य ददात्यर्चयतेऽमरान्।
वायुभक्षश्च सतत वाराणस्या स्थितो नर ॥५०॥
यदि पापो यदि शठो यदि वाधार्मिको नर ।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति सकल नर ॥५१॥
वाराणस्या महादेव येऽर्चयन्ति स्तुवन्ति वै।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वरा ॥५२॥

गङ्गा, श्राद्ध, दान, तप, जप तथा व्रत वाराणसीमे सभी सुलभ हैं, परतु अन्यत्र दुर्लभ हैं। वाराणसीम स्थित मनुष्य ऐसा ज्ञान अत्यल्प परिश्रमसे प्राप्त कर लेता है, जिसके सहारे वायुभक्षी होकर नित्य हवन, यज्ञ करता है दान देता है तथा देवताओकी पूजा करता है। मनुष्य पापी हो, शठ हो अथवा अधार्मिक हो तब भी वाराणसीमे पहुँचकर अपने ससर्गमे रहनेवाले सबको पवित्र कर देता है। वाराणसीम जो महादेवकी स्तुति करते हैं अर्चना करते हैं, उन्हे सभी पापोसे मुक्त (शकरके) गणेश्वर समझना चाहिये॥ ४९—५२॥

अन्यत्र योगज्ञानाभ्या सन्यासादथवान्यत ।
प्राप्यते तत् पर स्थान सहस्रेणैव जन्मना॥५३॥
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्या वसन्ति वै।
ते विन्दन्ति पर मोक्षमेकेनैव तु जन्मना॥५४॥
यत्र योगस्तथा ज्ञान मुक्तिरेकेन जन्मना।
अविमुक्त समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्॥५५॥
यतो मया न मुक्त तदविमुक्त तत स्मृतम्।
तदेव गुह्य गुह्यानामेतद् विज्ञाय मुच्यते॥५६॥

ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठाना परमानन्दमिच्छताम्।
या गतिर्विहिता सुभ्रु साविमुक्ते मृतस्य तु॥५७॥
यानि चैवाविमुक्तस्य देहे तूक्तानि कृत्स्नश।
पुरी वाराणसी तेभ्य स्थानेभ्यो ह्यधिका शुभा॥५८॥

दूसरे स्थानम योग, ज्ञान, सन्यास अथवा अन्य उपायासे हजारो जन्मोम वह परमपद मोक्ष प्राप्त होता है, किंतु देवदेवेश शकरके जो भक्त वाराणसीमे निवास करते हैं, वे एक ही जन्मम परमपद-मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ एक ही जन्ममे योग, ज्ञान अथवा मुक्ति मिल जाती है उस अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्रम पहुँचकर फिर किसी दूसरे तपोवनमे नहीं जाना चाहिये। चूँकि मैं वाराणसी क्षेत्र कभी नहीं छोडता, इसलिये वह अविमुक्त (क्षेत्र) कहलाता है, यही गुह्योम अत्यन्त गुह्य (ज्ञान) है। इसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। हे सुभ्रु! (सुन्दर भौंहोंवाली)! ज्ञान[१] (ब्रह्म-ज्ञान) और अज्ञान (ब्रह्मज्ञानका साधनरूप ज्ञान)-मं निरत तथा परमानन्दकी इच्छा करनेवालोकी जो गति बतलायी गयी है, वह अविमुक्त (क्षेत्र)-म मरनेवालाको प्राप्त होती है। अविमुक्तरूप देह (विराट्)-मे जिन क्षेत्रोका वर्णन हुआ है, उन सभी क्षेत्रोंमे वाराणसीपुरी अधिक शुभ है॥५३—५८॥

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्त स्वयमीश्वर।
व्याचष्टे तारक ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम्॥५९॥
यत् तत् परतर तत्त्वमविमुक्तमिति श्रुतम्।
एकेन जन्मना देवि वाराणस्या तदाप्नुयात्॥६०॥
भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदये चैव मूर्धनि।
यथाविमुक्तमादित्ये वाराणस्या व्यवस्थितम्॥६१॥

यह अविमुक्त क्षेत्र ऐसा है, जहाँ साक्षात् महादेव ईश्वर देहान्त होनेके समय तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। देवि! जो वह परतर तत्त्व 'अविमुक्त' नामसे कहा जाता है, वह वाराणसीम एक जन्मम ही प्राप्त हो जाता है। (विराट्के) भौंहाके मध्य, नाभिके मध्य, हृदयम, मूर्धामे तथा आदित्यमे जिस प्रकार अविमुक्त स्थित है, उसी प्रकार वाराणसीमे अविमुक्त क्षेत्र प्रतिष्ठित है॥५९—६१॥

वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी।
तत्रैव सस्थित तत्त्व नित्यमेवाविमुक्तकम्॥६२॥
वाराणस्या पर स्थान न भूत न भविष्यति।
यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवेश्वर॥६३॥
तत्र देवा सगन्धर्वा सयक्षोरगराक्षसा।
उपासते मा सतत देवदेव पितामहम्॥६४॥

वरुणा और असीके मध्य वाराणसीपुरी है। वहाँ अविमुक्त नामक नित्य तत्त्व स्थित है। जहाँ नारायण देव और महादेव दिवेश्वर (सुरलोकके अधिपति) स्थित हैं, उस वाराणसीसे श्रेष्ठ स्थान न कोई हुआ है और न कोई होगा। वहाँ गन्धर्वों, यक्षा, नागा तथा राक्षसोसहित सभी देवता मुझ देवाधिदेव पितामहकी सतत उपासना करते हैं॥६२—६४॥

महापातकिनो ये च ये तेभ्य पापकृत्तमा।
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमा गतिम्॥६५॥
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद् वै मरणान्तिकम्।
वाराणस्या महादेवाज्ज्ञान लब्ध्वा विमुच्यते॥६६॥
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतस।
ततो नैव चरेत् पाप कायेन मनसा गिरा॥६७॥
एतद् रहस्य वेदाना पुराणाना च सुव्रता।
अविमुक्ताश्रय ज्ञान न कश्चिद् वेत्ति तत्त्वत॥६८॥

जो महापापी हैं और उनसे भी जो अधिक पाप करनेवाले (अतिपातकी) हैं, वे वाराणसी पहुँचकर परम गतिको प्राप्त करते हैं। इसलिये मोक्षार्थीको मरणपर्यन्त वाराणसीमें निश्चितरूपसे निवास करना चाहिये। वाराणसीमे महादेवसे ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। किंतु पापसे आक्रान्त चित्तवालाको विघ्न होते हैं। इसलिये शरीर, मन और वाणीसे पाप नहीं करना चाहिये। सुव्रतो! (उत्तम व्रताका पालन करनेवाले) यह वेदों और पुराणोका रहस्य है। अविमुक्तसे सम्बद्ध ज्ञानको कोई तत्त्वत जानता नहीं है॥ ६५—६८॥

देवतानामृषीणा च शृण्वता परमेष्ठिनाम्।
देव्यै देवेन कथित - सर्वपापविनाशनम्॥६९॥
यथा नारायण श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तम।
यथेश्वराणा गिरिश स्थानाना चैतदुत्तमम्॥७०॥
यै समाराधितो रुद्र पूर्वस्मिन्नेव जन्मनि।
ते विन्दन्ति पर क्षेत्रमविमुक्त शिवालयम्॥७१॥
कलिकल्मषसम्भूता येषामुपहता मति।

१-यहाँ मूलम 'ज्ञान' का अर्थ है विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) तथा अज्ञानका अर्थ है किंचित् न्यून ज्ञान (ब्रह्मज्ञानका साधन ज्ञान)।

न तेषा वेदितु शक्य स्थान तत् परमेष्ठिन ॥७२॥

महादेवने देवताओ, ऋषियो तथा परमेष्ठियोके समक्ष देवी पार्वतीसे सभी पापोको विनष्ट करनेवाले इस ज्ञानको कहा था। जिस प्रकार देवताओमे पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हे, जिस प्रकार ईश्वरोमे गिरिश (महादेव) श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सभी स्थानोमे यह (अविमुक्त क्षेत्र) श्रेष्ठ है। जिन्होने पूर्वजन्ममे रुद्रकी उपासना की है, वे ही परम अविमुक्त क्षेत्र नामक शिवके निवासस्थानको प्राप्त करते हैं। कलिके दोषोके कारण जिनकी बुद्धि उपहत हो गयी है, वह परमेष्ठीके उस स्थानको जान नहीं सकते॥ ६९—७२॥

ये स्मरन्ति सदा काल विन्दन्ति च पुरीमिमाम्।
तेषा विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥७३॥
यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालया।
नाशयेत् तानि सर्वाणि देव कालतनु शिव ॥७४॥

जो सर्वदा कालरूप शिवको और इस पुरी (वाराणसी)-का स्मरण करते रहते हैं, उनका इस लोक और अन्य लोकका पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यहाँ निवास करनेवाले जो पाप करते हैं, कालस्वरूप देव शिव उन सबको नष्ट कर देते हैं॥७३-७४॥

आगच्छतामिद स्थान सेवितु मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
मृताना च पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे॥७५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्या वसेन्नर।
योगी वाप्यथवायोगी पापी वा पुण्यकृत्तम ॥७६॥
न वेदवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादत।
मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तगति प्रति॥७७॥

मोक्षकी इच्छासे इस स्थानका सेवन करनेके लिये जो यहाँ आते हैं, उन्हे मृत्युके अनन्तर पुन भवसागरमे जन्म नहीं लेना पडता। इसीलिये चाहे योगी हो, अयोगी हो, अथवा पापी हो या श्रेष्ठ पुण्यकर्मा हो, जैसा भी हो, उसे सभी प्रयत्नसे वाराणसीमे ही निवास करना चाहिये। वेदके वचनसे माता-पिताके कहनेसे अथवा गुरुके वचनसे भी अविमुक्त क्षेत्र—वाराणसीमें आनेके विचारका परित्याग नहीं करना चाहिये[1] ॥७५—७७॥

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान् व्यासो वेदविदा वर।
सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्या चचार ह॥७८॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वेदविदोमे श्रेष्ठ भगवान् व्यास प्रधान शिष्योंके साथ वाराणसीमें विचरण करने लगे॥ ७८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे एकोनत्रिंशोऽध्याय ॥ २९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

वाराणसीके ओंकारेश्वर और कृत्तिवासेश्वर लिङ्गोका माहात्म्य, शकरके कृत्तिवासा नाम पड़नेका वृत्तान्त

सूत उवाच

स शिष्यै सवृतो धीमान् गुरुर्द्वैपायनो मुनि।
जगाम विपुल लिङ्गमोकार मुक्तिदायकम्॥१॥
तत्राभ्यर्च्य महादेव शिष्यै सह महामुनि।
प्रोवाच तस्य माहात्म्य मुनीना भावितात्मनाम्॥२॥

सूतजी बोले—शिष्योसे घिरे हुए बुद्धिमान् वे गुरु द्वैपायन मुनि मुक्ति प्रदान करनेवाले विशाल ओङ्कार लिङ्गकी सनिधिमे गये। शिष्योके साथ महामुनिने वहाँ महादेवकी भलीभाँति पूजा करके पवित्र आत्मावाले मुनियोंको उस ओङ्कार लिङ्गका माहात्म्य बताया॥ १-२॥

इद तद् विमल लिङ्गमोकार नाम शोभनम्।
अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकै ॥३॥
एतत् परतर ज्ञान पञ्चायतनमुत्तमम्।
सेवित सूरिभिर्नित्य वाराणस्या विमोक्षदम्॥४॥

[1] १-वाराणसीकी स्तुतिमें तात्पर्य है न कि वेदवाक्यों माता पिता एव गुरुके वचनोंके उल्लङ्घनमें तात्पर्य है।

अत्र साक्षान्महादेव पञ्चायतनविग्रह ।
रमते भगवान् रुद्रो जन्तूनामपवर्गद ॥५॥

ओङ्कार नामवाला यह लिङ्ग पवित्र एव सुन्दर है, इसके स्मरणमात्रसे सभी पापोसे मुक्ति मिल जाती है। वाराणसीमें विद्वानोंके द्वारा मुक्ति प्रदान करनेवाले इस अतिश्रेष्ठ ज्ञानरूप उत्तम पञ्चायतनकी नित्य पूजा की जाती है। यहाँ प्राणियाको मोक्ष देनेवाले साक्षात् महादेव भगवान् रद्र पञ्चायतन-शरीर धारणकर रमण करते रहते हैं॥ ३—५॥

यत् तत् पाशुपतं ज्ञान पञ्चार्थमिति शब्द्यते।
तदेतद् विमलं लिङ्गमोङ्कारे समवस्थितम्॥ ६ ॥
शान्त्यतीता तथा शान्तिर्विद्या चैव परा कला।
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम्॥ ७ ॥
पञ्चानामपि देवाना ब्रह्मादीना सदाश्रयम्।
आकारबोधक लिङ्ग पञ्चायतनमुच्यते॥ ८ ॥
सस्मरेदैश्वर लिङ्ग पञ्चायतनमव्ययम्।
देहान्ते तत्पर ज्योतिरानन्दं विशते बुध ॥ ९ ॥
अत्र देवर्षय पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा।
उपास्य देवमीशान प्राप्तवन्त पर पदम्॥१०॥
मत्स्योदर्यास्तटे पुण्य स्थान गुह्यतम शुभम्।
गोचर्ममात्र विप्रेन्द्रा ओङ्कारेश्वरमुत्तमम्॥११॥

जो वह पाशुपत ज्ञान 'पञ्चार्थ' शब्दसे कहा जाता है, वही ज्ञान इस पवित्र लिङ्गके रूपम ओङ्कारमें अवस्थित है। अतीता शान्ति, शान्ति, उत्कृष्ट कलावाली विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति—इन्हीं पाँच अर्थोके लिये इनके प्रतिनिधि-रूपम महादेवका (ओङ्कार) लिङ्ग प्रतिष्ठित है। ब्रह्मा आदि पाँच देवोका भी नित्य आश्रयरूप यही ओङ्कारबोधक लिङ्ग पञ्चायतन कहलाता है। अविनाशी पञ्चायतनरूप ईश्वरीय लिङ्गका स्मरण करना चाहिये ऐसा करनेसे मनुष्य देहान्त होनेपर आनन्दस्वरूप परम ज्योतिमे प्रवेश करता है। पूर्वकालम देवर्षियों ब्रह्मर्षियों तथा सिद्धोने यहींपर भगवान् ईशानकी उपासना कर परमपद प्राप्त किया था। विप्रेन्द्रो! मत्स्योदरीके किनारे गोचर्म[1]के बराबर गुह्यतम शुभ पुण्य स्थान है, वही ओङ्कारेश्वरका उत्तम क्षेत्र है॥ ६—११॥

कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग मध्यमेश्वरमुत्तमम्।
विश्वेश्वर तथोकार कपर्दीश्वरमेव च॥१२॥
एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्या द्विजोत्तमा ।
न कश्चिदिह जानाति विना शम्भोरनुग्रहात्॥१३॥
एवमुक्त्वा ययौ कृष्ण पाराशर्यो महामुनि ।
कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग द्रष्टु देवस्य शूलिन ॥१४॥
समभ्यर्च्य तथा शिष्यैर्माहात्म्य कृत्तिवासस ।
कथयामास शिष्येभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तम ॥१५॥

द्विजोत्तमो! कृत्तिवासेश्वर, श्रेष्ठ मध्यमेश्वर, विश्वेश्वर, ओङ्कारेश्वर तथा कपर्दीश्वर—ये वाराणसीके गुह्य लिङ्ग हैं, बिना शकरकी कृपाके कोई इन्हे यहाँ जान नहीं सकता। ऐसा कहकर पराशरके पुत्र महामुनि कृष्णद्वैपायन शूलधारी महादेवके कृत्तिवासेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करने गये। ब्रह्मज्ञानियामें श्रेष्ठ भगवान् व्यासने शिष्याके साथ लिङ्गका पूजनकर शिष्योको कृत्तिवासेश्वरका माहात्म्य बतलाया॥ १२—१५॥

अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्।
ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते॥१६॥
तेषा लिङ्गान्महादेव प्रादुरासीत् त्रिलोचन ।
रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्ताना भक्तवत्सल ॥१७॥
हत्वा गजाकृति दैत्यं शूलेनावज्ञया हर ।
वासस्तस्याकरोत् कृत्ति कृत्तिवासेश्वरस्तत ॥१८॥

प्राचीन कालमे एक दैत्य हाथीका रूप धारणकर यहाँ शकरके समीप नित्य उपासना करनेवाले ब्राह्मणोको मारनेके लिये आया। द्विजश्रेष्ठो! उन भक्तोकी रक्षाके लिये इस लिङ्गसे भक्तवत्सल महादेव त्रिलोचन प्रकट हुए। हाथीकी आकृतिवाले उस दैत्यको अवज्ञापूर्वक शूलसे मारकर शकरने उसके चर्मका वस्त्र धारण किया। उसी समयसे वे कृत्तिवासेश्वर[2] हो गये॥ १६—१८॥

१-भूमिकी एक विशिष्ट माप। २-कृत्ति चर्मको कहते हैं।

अत्र सिद्धि परा प्राप्ता मुनयो मुनिपुगवा ।
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत् परम पदम्॥१९॥
विद्या विद्येश्वरा रुद्रा शिवा ये च प्रकीर्तिता ।
कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग नित्यमावृत्य सस्थिता ॥२०॥
ज्ञात्वा कलियुग घोरमधर्मबहुल जना ।
कृत्तिवास न मुञ्चन्ति कृतार्थास्त न सशय ॥२१॥
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा।
एकेन जन्मना मोक्ष कृत्तिवासे तु लभ्यते॥२२॥

श्रेष्ठ मुनियो! यहाँ मुनियाने परम सिद्धि प्राप्त की और उसी शरीरसे परम पद अर्थात् मोक्ष भी प्राप्त किया। विद्या, विद्येश्वर, रुद्र एव शिव नामसे कहे जानेवाले कृत्तिवासेश्वर लिङ्गको सभी देवता नित्य आवृतकर स्थित रहते हैं। घोर कलियुग और अधार्मिक लोगोकी बहुलताको समझकर जो लोग कृत्तिवासेश्वरका परित्याग नहीं करते वे नि सदेह कृतार्थ हो जाते हैं। हजारो जन्मान्तरोम भी दूसरे स्थानपर मोक्ष प्राप्त होता हो अथवा नहीं, किंतु कृत्तिवास-क्षेत्रमे एक जन्मम ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है॥१९—२२॥

आलय सर्वसिद्धानामेतत् स्थान वदन्ति हि।
गोपित देवदेवेन महादेवेन शम्भुना॥२३॥
युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगा ।
उपासते महादेव जपन्ति शतरुद्रियम्॥२४॥
स्तुवन्ति सतत देव त्र्यम्बक कृत्तिवाससम्।
ध्यायन्ति हृदये देव स्थाणु सर्वान्तर शिवम्॥२५॥

लागोंका कहना है कि सभी सिद्धाका आश्रयरूप यह स्थान देवाधिदव महादेव शम्भुके द्वारा सुरक्षित है। प्रत्येक युगम वदमे पारगत इन्द्रियनिग्रही ब्राह्मण यहाँ महादवकी उपासना करते हैं और शतरुद्रियका जप करते हैं। हृदयमें सर्वान्तरात्मा स्थाणुदेव शिवका ध्यान करते हुए कृत्तिवासा त्र्यम्बक देव (त्रिलोचन महादेव)-की निरन्तर स्तुति करते हैं॥२३—२५॥

गायन्ति सिद्धा किल गीतकानि
ये वाराणस्या निवसन्ति विप्रा ।
तेषामथैकेन भवेन्मुक्ति-
र्ये कृत्तिवास शरण प्रपन्ना ॥२६॥
सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्ट
सुदुर्लभ विप्रकुलेषु जन्म।
ध्याने समाधाय जपन्ति रुद्र
ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम्॥२७॥
आराधयन्ति प्रभुमीशितार
वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्रा ।
यजन्ति यज्ञैरभिसधिहीना
स्तुवन्ति रुद्र प्रणमन्ति शम्भुम्॥२८॥

विप्रो! सिद्धजन यह गीत गाते हैं कि जो लोग वाराणसीमें निवास करते हैं और कृत्तिवासा भगवान् शिवकी शरण ग्रहण करते हैं, उनकी एक ही जन्मम मुक्ति हो जाती है। इस लाकम ससारको अभीष्ट अत्यन्त दुर्लभ विप्रकुलमे जन्म प्राप्तकर सयमी लोग ध्यानमे समाधिस्थ होकर रुद्रका जप करते हैं और चित्तमे महेश्वरका ध्यान करते रहते हैं। वाराणसीमे निवास करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजन प्रभु शकरकी आराधना करते हैं, फलकी आकाक्षा किये बिना यज्ञोद्वारा (उनका) यजन करते हैं, रुद्र-रूपम उनकी स्तुति करते हैं और शम्भु-रूपमें उन्हे प्रणाम करते हैं॥२६—२८॥

नमो भवायामलयोगधाम्ने
स्थाणु प्रपद्ये गिरिश पुराणम्।
स्मरामि रुद्र हृदये निविष्ट
जाने महादेवमनेकरूपम्॥२९॥

विशुद्ध योगके आश्रयरूप भवको नमस्कार है, मैं स्थाणु पुराण गिरिशकी शरण ग्रहण करता हूँ, हृदयम अवस्थित रुद्रका स्मरण करता हूँ और महादेवको अनेक रूपोमे स्थित मानता हूँ॥२९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायां पूर्वविभागे त्रिंशोऽध्याय ॥ ३०॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्ममहापुराणसहिताके पूर्वविभागमे तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

वाराणसीके कपर्दीश्वर लिङ्गका माहात्म्य, पिशाचमोचन-कुण्डमे स्नान करनेकी महिमा, वहाँ स्नान करनेसे पिशाचयोनिसे मुक्ति प्राप्त करनेका आख्यान, शकुकर्णकी कथा तथा शकुकर्णकृत ब्रह्मपार-स्तव

सूत उवाच

समाभाष्य मुनीन् धीमान् देवदेवस्य शूलिन ।
जगाम लिङ्ग तद् द्रष्टु कपर्दीश्वरमव्ययम्॥ १॥
स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितृन् द्विजा ।
पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम्॥ २॥

सूतजी बोले—मुनियोसे इस प्रकार कहकर बुद्धिमान् (व्यासजी) देवाधिदेव त्रिशूली (भगवान् शकर)-के कपर्दीश्वर नामक अव्यय लिङ्गका दर्शन करने गये। ब्राह्मणो! वहाँ पिशाचमोचन तीर्थमे स्नानकर विधिपूर्वक पितराका तर्पणकर उन्हाने त्रिशूल धारण करनेवाले शकरकी पूजा की॥ १-२॥

तत्राश्चर्यमपश्यस्ते मुनयो गुरुणा सह।
मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्य प्रणेमुर्गिरिश हरम्॥ ३॥
कश्चिदभ्याजगामेद शार्दूलो घोररूपधृक्।
मृगीमेका भक्षयितु कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥ ४॥
तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्।
धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता॥ ५॥

वहाँ गुरदेव (व्यास)-के साथ उन मुनियाने एक आश्चर्य देखा। उन्हाने इसे क्षेत्रका माहात्म्य समझा और गिरिश हरको प्रणाम किया। कोई भयकर रूपवाला व्याघ्र एक मृगीका भक्षण करनेके लिये वहाँ श्रेष्ठ कपर्दीश्वरक समीपमें आया। भयभीत मनवाली वह मृगी वहाँ प्रदक्षिणा करत-करते दौडती हुई अत्यन्त व्याकुल हो जानेसे व्याघ्रके वशीभूत हो गयी॥ ३—५॥

ता विदार्य नखैस्तीक्ष्णै शार्दूल सुमहाबल ।
जगाम चान्य विजन देश दृष्ट्वा मुनीश्वरान्॥ ६ ॥
मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी।
अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा॥ ७ ॥
त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितमूर्धजा।
वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव सवृता॥ ८ ॥
पुष्पवृष्टि विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्धनि।
गणेश्वर स्वय भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात् तत ॥ ९ ॥
दृष्ट्वैतदाश्चर्यवर जैमिनिप्रमुखा द्विजा ।
कपर्दीश्वरमाहात्म्य पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम्॥ १०॥

अपने तीक्ष्ण नखासे उसे विदीर्णकर वह महान् बलशाली व्याघ्र उन मुनियाको देखकर दूसरे जनशून्य स्थानकी ओर चला गया। कपर्दीशके समक्ष ही मृत्युको प्राप्त वह बाल-अवस्थावाली मृगी आकाशमे चमकते हुए सूर्यके समान प्रभावाली, महाज्वालारूपा, तीन नेत्रावाली, नीलकण्ठवाली, चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाली और वृषभपर आरूढ तथा शिवके समान ही पुरुषासे समन्वित दिखलायी पडी। उसके मस्तकपर आकाशचारी (गन्धर्व आदि) फूलाकी वर्षा कर रहे थे। तदनन्तर वह स्वय गणेश्वर होकर तत्क्षण ही अदृश्य हो गयी। जैमिनि आदि प्रमुख द्विजाने ऐसा महान् आश्चर्य देखकर अच्युतस्वरूप गुरु (व्यास)-से कपर्दीश्वरका माहात्म्य पूछा॥ ६—१०॥

तेषा प्रोवाच भगवान् देवाग्रे चोपविश्य स ।
कपर्दीशस्य माहात्म्य प्रणम्य वृषभध्वजम्॥ ११॥
इद देवस्य तल्लिङ्ग कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
स्मृत्वैवाशेषपापौघ क्षिप्रमस्य विमुञ्चति॥ १२॥

उन भगवान् व्यासने (कपर्दीश्वर) देवके समीपमे बैठकर वृषभध्वजको प्रणाम करके कपर्दीशका माहात्म्य उन्हे बतलाया। यह देवका वही श्रेष्ठ कपर्दीश्वर नामक लिङ्ग है, जिसका स्मरणमात्र करनेसे ही स्मरण करनेवालेका अशेष पापसमूह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ११-१२॥

कामक्रोधादयो दोषा वाराणसीनिवासिनाम्।
विघ्ना सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात्॥ १३॥
तस्मात् सदैव द्रष्टव्य कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
पूजितव्य प्रयत्नेन स्तोतव्य वैदिकै स्तवै ॥ १४॥
ध्यायतामत्र नियत योगिना शान्तचेतसाम्।
जायते योगससिद्धि सा षण्मासे न सशय ॥ १५॥

वाराणसीमे निवास करनेवाले लोगाके काम क्रोध आदि दोष और सभी विघ्न कपर्दीश्वरका पूजन करनेसे विनष्ट हो जाते हैं। इसलिये श्रेष्ठ कपर्दीश्वरका सदा ही दर्शन करना चाहिये प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये और वैदिक स्तोत्रासे उनकी स्तुति करनी चाहिये। शान्त चित्तवाले योगियाको यहाँ नियमित ध्यान करते हुए छ

महीनेमे ही उत्कृष्ट योगसिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमे कोई सशय नही है॥ १३—१५॥

ब्रह्महत्यादय पापा विनश्यन्त्यस्य पूजनात्।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्यात्र समीपत ॥ १६॥
अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शसितव्रत ।
शकुकर्ण इति ख्यात पूजयामस शकरम्।
जजाप रुद्रमनिश प्रणव ब्रह्मरूपिणम्॥ १७॥
पुष्पधूपादिभि स्तोत्रैर्नमस्कारै प्रदक्षिणै ।
उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षा तु नैष्ठिकीम्॥ १८॥
कदाचिदागत प्रेत पश्यति स्म क्षुधान्वितम्।
अस्थिचर्मपिनद्धाङ्ग नि श्वसन्त मुहुर्मुहु ॥ १९॥
त दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठ कृपया परया युत ।
प्रोवाच को भवान् कस्माद् देशाद् देशमिम श्रित ॥ २०॥

यहाँ समीपम स्थित पिशाचमोचन कुण्डमे स्नानकर इस लिङ्गका पूजन करनेसे ब्रह्महत्या आदि सभी पाप नष्ट हो जाते ह। ब्राह्मणो! प्राचीन कालमे शकुकर्ण नामसे प्रसिद्ध कठोर व्रतवाले तपस्वीने इस क्षेत्रम शकरकी पूजा की थी। वह रात-दिन प्रणव एव ब्रह्मस्वरूप रुद्रका जप करता था। निष्ठापूर्वक दीक्षा ग्रहण कर वह योगात्मा पुष्प, धूप आदिसे तथा स्तोत्र नमस्कार एव प्रदक्षिणाके द्वारा (पूजा करता हुआ) वहाँ रहने लगा। किसी दिन उसने भूखसे व्याकुल अस्थि एव चर्मसे व्याप्त शरीरवाले और बार-बार साँस ले रह एक आते हुए प्रेतको देखा। उसे देखकर उस श्रेष्ठ मुनिने अत्यन्त कृपासे युक्त होकर उससे कहा—आप कौन हैं? कहाँसे इस देशमे आये हैं?॥ १६—२०॥

तस्मै पिशाच क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद् वच ।
पूर्वजन्मन्यह विप्रो धनधान्यसमन्वित ।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्त कुटुम्बभरणोत्सुक ॥ २१॥
न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा।
न कदाचित् कृत पुण्यमल्प वा स्वल्पमेव वा॥ २२॥
एकदा भगवान् दयो गावृषेश्वरवाहन ।
विश्वेश्वरो वाराणस्या दृष्ट स्पृष्टा नमस्कृत ॥ २३॥
तदाचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागत ।
न दृष्ट तन्मया घार यमस्य वदन मुने॥ २४॥
ईदृशीं योनिमापन्न पैशाचीं क्षुधयान्वित ।
पिपासयाधुनाक्रान्तो न जानामि हिताहितम्॥ २५॥
यदि कचित् समुद्धर्तुमुपाय पश्यसि प्रभो।
कुरुष्व त नमस्तुभ्य त्वामह शरण गत ॥ २६॥

क्षुधासे पीडित पिशाचने उससे कहा—पूर्वजन्ममे मैं धनधान्यसे सम्पन्न, पुत्र-पौत्रादिकासे युक्त परिवारके भरण-पोषणमे उत्सुक रहनेवाला एक ब्राह्मण था। किंतु मैंने न तो कभी देवताओकी पूजा की न गायोकी और न तो अतिथियोकी, मैंने कभी छोटे-से भी छोटा पुण्य नहीं किया। एक बारकी बात है कि वाराणसीमे मैंने वृषभवाहन भगवान् विश्वेश्वरदेवका दर्शन किया, स्पर्श किया और उन्हे नमस्कार किया। तदनन्तर बहुत थोडे ही समयके बाद मेरी मृत्यु हो गयी। ह मुने! (इसी पुण्यके कारण) मुझे यमके भयानक मुखको तो नहीं देखना पडा, पर इस प्रकारकी पिशाचयोनि प्राप्तकर भूख और प्याससे व्याकुल मै वाराणसीमे ही भटक रहा हूँ। इस समय मुझे हित और अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं है। प्रभो! मेरे उद्धारका यदि कोई उपाय आप देखते हो तो उसे कर, आपको नमस्कार है, मैं आपकी शरणमे आया हूँ॥ २१—२६॥

इत्युक्त शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत्।
त्वादृशो न हि लोकेऽस्मिन् विद्यते पुण्यकृत्तम ॥ २७॥
यत् त्वया भगवान् पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वर शिव ।
सस्पृष्टो वन्दितो भूय कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि॥ २८॥
तेन कर्मविपाकेन देशमेत समागत ।
स्नान कुरुष्व शीघ्र त्वमस्मिन् कुण्डे समाहित ।
येनेमा कुत्सिता योनि क्षिप्रमव प्रहास्यसि॥ २९॥

ऐसा कहे जानेपर शकुकर्णने पिशाचसे कहा—तुम्हारे समान इस ससारमे श्रेष्ठ पुण्य कर्म करनेवाला और कोई नहीं है जो कि तुमने पूर्वकालम विश्वेश्वर भगवान् शिवका दर्शन किया उनका स्पर्श किया और वन्दना की, फिर ससारम तुम्हारे समान और कौन हो सकता है? उस कर्मके परिणामस्वरूप ही तुम इस स्थानपर पहुँचे हो। अब तुम एकाग्रमन होकर इस कुण्डम शीघ्र ही स्नान करो। जिससे इस कुत्सित (पिशाचकी) योनिसे तुम शीघ्र ही छुटकारा प्राप्त कर सको॥ २७—२९॥

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो
दयालुना देववर त्रिनेत्रम्।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितार
चक्र समाधाय मनोऽवगाहम्॥ ३०॥

दयालु मुनिके ऐसा कहनेपर उस पिशाचने देवश्रेष्ठ त्रिलोचन, अनुशास्ता भगवान् कपर्दीश्वरका स्मरण कर मनको एकाग्र करते हुए (कुण्डमे) स्नान किया॥ ३०॥

तदावगाढो मुनिसनिधाने
ममार दिव्याभरणोपपन्न ।
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने
शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलि ॥३१॥
विभाति रुद्रैरभितो दिविस्थै
समावृतो योगिभिरप्रमेयै ।
सबालखिल्यादिभिरेष देवो
यथोदये भानुरशेषदेव ॥३२॥
स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा
नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामा ।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमाम्बुमिश्रा
गन्धर्वविद्याधरकिनराद्या ॥३३॥

तदनन्तर स्नान किया हुआ वह मुनिके समीप ही मृत्युको प्राप्त हो गया और पुन सूर्यके समान प्रकाशित विमानमे स्थित हो वह दिव्य आभूपणाको धारण किये तथा चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित सुन्दर मस्तकसे युक्त (पुरुपके रूपमें) दिखायी पडा। वह आकाशम स्थित रहनेवाले रुद्रो, अप्रमेय योगियों तथा बालखिल्य आदि ऋपियासे चारो ओरसे आवृत होते हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार सभी देवताओके भी देवता सूर्य देवता उदयकालमे दिखलायी पडते हैं। आकाशमे सिद्ध तथा देवताओके समूह (उसकी) स्तुति कर रहे थे। दिव्य सुन्दर अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और गन्धर्व, विद्याधर तथा किनर आदि जलसे स्निग्ध पुष्पाकी वृष्टि कर रहे थे॥ ३१—३३॥

सस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घै-
रवाप्य बोध भगवत्प्रसादात्।
समाविशन्मण्डलमेतदग्र्य
त्रयीमय यत्र विभाति रुद्र ॥३४॥
दृष्ट्वा विमुक्त स पिशाचभूत
मुनि प्रहृष्टो मनसा महेशम्।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्नि
प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिने तम्॥३५॥

मुनियाके समूहासे स्तुति किये जाते हुए उसने भगवान्‌की कृपासे ज्ञान प्राप्त किया और वह उस त्रयीमय श्रेष्ठ मण्डलमे प्रविष्ट हो गया जहाँ रुद्र प्रकाशित होते हैं। पिशाचयोनिको प्राप्त उस (पुरुप)-का मुक्त हुआ देखकर वह मुनि अत्यन्त प्रसन्न-मनसे महेशका ध्यानकर और कवि अद्वितीय रुद्राग्निको प्रणामकर उन जटाधारी (शिव)-की स्तुति करने लगे—॥ ३४-३५॥

शङ्कुकर्ण उवाच

कपर्दिन त्वा परत परस्ताद्
गोप्तारमेक पुरुष पुराणम्।
व्रजामि योगेश्वरमीशितार-
मादित्यमग्नि कपिलाधिरूढम्॥३६॥

शकुकर्णने कहा—मैं परात्पर, अद्वितीय, सबके रक्षक, पुराणपुरुप, योगेश्वर, नियामक, आदित्य, अग्निरूप एव कपिल (वृपभ)-पर अधिष्ठित आप कपर्दीकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ३६॥

त्वा ब्रह्मपार हृदि सनिविष्ट
हिरण्मय योगिनमादिमन्तम्।
व्रजामि रुद्र शरण दिविस्थ
महामुनि ब्रह्ममय पवित्रम्॥३७॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्त
सहस्रबाहु तमस परस्तात्।
त्वा ब्रह्मपार प्रणमामि शम्भु
हिरण्यगर्भाधिपति त्रिनेत्रम्॥३८॥
यत प्रसूतिर्जगतो विनाशो
येनावृत सर्वमिद शिवेन।
त ब्रह्मपार भगवन्तमीश
प्रणम्य नित्य शरण प्रपद्ये॥३९॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूप
स्वयम्प्रभ चित्पतिमेकरुद्रम्।
त ब्रह्मपार परमेश्वर त्वा
नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥४०॥

मैं हृदयम सनिविष्ट, हिरण्मय, योगी, आदि एव अन्तरूप, द्युलोकमे स्थित, महामुनि, पवित्र और ब्रह्मस्वरूप आप ब्रह्मपार रुद्रकी शरणम जाता हूँ। मैं हजारो चरण नेत्र और सिरासे युक्त, हजारो बाहुवाले अन्धकारस परे रहनेवाले, हिरण्यगर्भके अधिपति और तीन नेत्रवाले आप ज्ञानातीत शम्भुको प्रणाम करता हूँ। जिनस ससारकी उत्पत्ति तथा विनाश हाता है और जिन शिवने इस सम्पूर्ण (विश्व)-को

आवृत कर रखा है, उन्हीं ज्ञानातीत भगवान् ईशको प्रणाम कर मैं उनकी नित्य शरण ग्रहण करता हूँ। मैं अलिङ्ग- (निराकार) और आलोकरहित[१] रूपवाले, स्वय प्रभावान्, चित्-शक्तिके स्वामी, अद्वितीय रुद्ररूप, ज्ञानसे अतीत आप परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ, क्योंकि आपसे भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं॥ ३७—४०॥

य योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा
लब्ध्वा समाधि परमार्थभूता।
पश्यन्ति देव प्रणतोऽस्मि नित्य
त ब्रह्मपार भवत स्वरूपम्॥ ४१॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्ति-
र्न सदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम्।
त ब्रह्मपार प्रणतोऽस्मि नित्य
स्वयम्भुव त्वा शरण प्रपद्ये॥ ४२॥
यद् वेदवादाभिरता विदेह
सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्।
पश्यन्त्यनेक भवत स्वरूप
त ब्रह्मपार प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥ ४३॥
यत प्रधान पुरुष पुराणो
विवर्तते य प्रणमन्ति देवा।
नमामि त ज्योतिषि सनिविष्ट
काल बृहन्त भवत स्वरूपम्॥ ४४॥
व्रजामि नित्य शरण गुहेश
स्थाणु प्रपद्ये गिरिर्श पुरारिम्।
शिव प्रपद्ये हरमिन्दुमौलि
पिनाकिन त्वा शरण व्रजामि॥ ४५॥

सबीज योग (सविकल्पक समाधि)-का त्याग करनेवाले परमार्थभूत योगिजन निर्विकल्पक समाधि लगाकर आपके जिस रूपका दर्शन करते हैं मैं आपके उसी ज्ञानातीत स्वरूपको नित्य प्रणाम करता हूँ। जिनमे न तो किसी नाम (तथा रूप) आदि विशेष (गुणो)-की कोई कल्पना है और जिनका न कोई स्वरूप दिखलायी पडता है प्रणामपूर्वक उन ब्रह्मपार स्वयम्भूकी शरणमे मैं जाता हूँ। वैदिक सिद्धान्तोके अनुगामी आपके जिस स्वरूपको विदेह ब्रह्मविज्ञानमय, अभेदरूप (अद्वितीय)—इन अनेक प्रकारोंसे जानते है, आपके उस ब्रह्मपार स्वरूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिसके प्रधान (प्रकृति) और पुराण पुरुष विवर्त (परिणाम) हैं तथा देवता जिसे प्रणाम करते हैं, उस ज्योतिमे सनिविष्ट ज्योतिर्मय आपके बृहत् काल-स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं सनातन गुहेशकी[२] शरणमे जाता हूँ। मैं स्थाणु, गिरिश पुरारिके शरणागत हूँ, मैं चन्द्रमौलि हर, शिवकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं पिनाक धारण करनेवाले आपकी शरणमे जाता हूँ॥ ४१—४५॥

स्तुत्वैव शङ्कुकर्णोऽसौ भगवन्त कपर्दिनम्।
पपात दण्डवद् भूमौ प्रोच्चरन् प्रणव परम्॥ ४६॥
तत्क्षणात् परम लिङ्ग प्रादुर्भूत शिवात्मकम्।
ज्ञानमानन्दमद्वैत कोटिकालाग्निसनिभम्॥ ४७॥
शकुकर्णोऽथ मुक्तात्मा तदात्मा सर्वगोऽमल।
निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४८॥

इस प्रकार भगवान् कपर्दीकी स्तुति कर श्रेष्ठ ओंकारका उच्चारण करता हुआ वह शकुकर्ण दण्डवत् भूमिपर गिर पडा। उसी क्षण ज्ञान और आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, करोडो प्रलयकालीन अग्निके समान, शिवात्मक श्रेष्ठ लिङ्ग प्रादुर्भूत हुआ। तब मुक्त आत्मावाला, तादात्म्यस्वरूपवाला सर्वव्यापी, विशुद्ध हुआ वह शकुकर्ण निर्मल लिङ्गमे विलीन हो गया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ ४६—४८॥

एतद् रहस्यमाख्यात माहात्म्य व कपर्दिन।
न कश्चिद् वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति॥ ४९॥
य इमा शृणुयान्नित्य कथा पापप्रणाशिनीम्।
भक्त पापविशुद्धात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ५०॥

यह मैंने आप लोगोको कपर्दीका रहस्य एव माहात्म्य बतलाया। इसे कोई नहीं जानता। विद्वान् भी इस विषयमे अज्ञानसे मोहित हो जाते हैं। जो भक्त पापका नाश करनेवाली इस कथाको नित्य सुनता है वह पापसे विमुक्त शुद्धात्मा होकर रुद्रकी समीपताको प्राप्त कर लेता है॥ ४९-५०॥

पठेच्च सतत शुद्धो ब्रह्मपार महास्तवम्।
प्रातर्मध्याह्नसमये स योग प्राप्नुयात् परम्॥ ५१॥

१-महेश्वरका रूप किसी भी आलोक (प्रकाश)-से आलोकित (प्रकाशित) नहीं होता अपितु स्वय प्रकाशमान है और उसीके प्रकाशसे समस्त प्रपञ्च सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशित हैं।

२-गुहा (बुद्धिके)-के ईश।

और जो मनुष्य नित्य प्रात एव मध्याह्नकालमे शुद्धतापूर्वक इस ब्रह्मपार नामक महान् स्तवका पाठ करेगा, वह परम योगको प्राप्त कर लेगा॥ ५१॥

इहैव नित्य वत्स्यामो देवदेव कपर्दिनम्।
द्रक्ष्याम सतत देव पूजयामोऽथ शूलिनम्॥५२॥
इत्युक्त्वा भगवान् व्यास शिष्यै सह महामुनि।
उवास तत्र युक्तात्मा पूजयन् वै कपर्दिनम्॥५३॥

'मैं यहीं नित्य निवास करूँगा, देवदेव कपर्दीका दर्शन करूँगा और त्रिशूल धारण करनेवाले देवकी निरन्तर पूजा करता रहूँगा।' ऐसा कहकर शिष्योके साथ युक्तात्मा महामुनि व्यासने कपर्दीकी पूजा करते हुए वहीं निवास किया॥ ५२-५३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायां पूर्वविभागे एकत्रिंशोऽध्याय ॥ ३१॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे एकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥
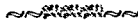
बत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजीद्वारा वाराणसीके मध्यमेश्वर महादेव तथा मन्दाकिनीकी महिमाका वर्णन

सूत उवाच

उषित्वा तत्र भगवान् कपर्दीशान्तिके पुन।
द्रष्टु ययौ मध्यमेश बहुवर्षगणान् प्रभु॥१॥
तत्र मन्दाकिनीं पुण्यामृषिसङ्घनिषेविताम्।
नदीं विमलपानीया दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनि॥२॥

सूतजी बोले—वहाँ कपर्दीश (कपर्दीश्वर)-के समीपमे बहुत वर्षोंतक निवास कर भगवान् प्रभु (वेदव्यास) पुन मध्यमेश्वर (लिङ्ग)-का दर्शन करने गये। वहाँ ऋषि-समूहोसे सेवित स्वच्छ जलवाली पवित्र मन्दाकिनी नामक नदीका दर्शन कर मुनि (व्यास) प्रसन्न हो गये॥ १-२॥

स तामन्वीक्ष्य मुनिभि सह द्वैपायन प्रभु।
चकार भावपूतात्मा स्नान स्नानविधानवित्॥३॥
सतर्प्य विधिवद्- देवानृषीन् पितृगणास्तथा।
पूजयामास लोकादि पुष्पैर्नानाविधैर्भवम्॥४॥
प्रविश्य शिष्यप्रवरै सार्धं सत्यवतीसुत।
मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामास शूलिनम्॥५॥
तत पाशुपता शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहा।
द्रष्टु समागता रुद्र मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥६॥

उसे देखकर पवित्र आत्मभाववाले तथा स्नानके विधानको जाननेवाले उन द्वैपायन प्रभुने मुनियोके साथ स्नान किया। विधिपूर्वक देवताओ, ऋषियो तथा पितरोका तर्पण किया और नाना प्रकारके पुष्पोद्वारा लोकके आदि कारण भवकी पूजा की। प्रमुख शिष्योके साथ सत्यवतीके पुत्र व्यासने (उस क्षेत्रमे) प्रवेशकर त्रिशूलधारी ईशान मध्यमेश्वरका पूजन किया। तदनन्तर सारे शरीरमे भस्म धारण किये हुए शान्त पाशुपात लोग अर्थात् पशुपतिके भक्तगण पाशुपत ईश्वर मध्यमेश्वर रुद्रका दर्शन करने आये॥ ३—६॥

ओकारासक्तमनसो वेदाध्ययनतत्परा।
जटिला मुण्डिताश्चापि शुक्लयज्ञोपवीतिन॥७॥
कौपीनवसना केचिदपरे चाप्यवासस।
ब्रह्मचर्यरता शान्ता वेदान्तज्ञानतत्परा॥८॥
दृष्ट्वा द्वैपायन विप्रा शिष्यै परिवृत मुनिम्।
पूजयित्वा यथान्यायमिद वचनमब्रुवन्॥९॥

उनका मन ओकारके जपमें लगा था, वे सभी वेदोके अध्ययनम तत्पर थे। वे शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये थे कोई जटा रखाये थे और कोई मुण्डित थे। कुछ कौपीन वस्त्र धारण किये थे तो दूसरे वस्त्ररहित थे। वे ब्रह्मचर्यपरायण, शान्त और वेदान्तके ज्ञानम तत्पर थे। विप्रो! शिष्यासे घिरे हुए द्वैपायन मुनिको देखकर यथोक्त विधिसे उनका पूजनकर उन्होने (पाशुपत भक्तोने) यह वचन कहा॥ ७—९॥

को भवान् कुत आयात सह शिष्यैर्महामुने।
प्रोचु पैलादय शिष्यास्तानृषीन् ब्रह्मभावितान्॥१०॥
अय सत्यवतीसूनु कृष्णद्वैपायनो मुनि।
व्यास स्वय हृषीकेशो येन वेदा पृथक् कृता॥११॥
यस्य देवो महादेव साक्षादेव पिनाकधृक्।
अशांशेनाभवत् पुत्रो नाम्ना शुक इति प्रभु॥१२॥

य स साक्षान्महादेव सर्वभावेन शकरम्।
प्रपन्न परया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम्॥ १३॥

महामुने! आप कौन हैं? शिष्योंके साथ कहाँसे आये हैं। तब पैल आदि व्यास-शिष्योंने उन ब्रह्मभावको प्राप्त ऋषियोंसे कहा। ये सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि हैं। ये स्वय हृषीकेश हैं, जिन्होंने वेदोंका विभाजन किया। पिनाकको धारण करनेवाले साक्षात् प्रभु महादेव ही अपने अशाशसे इनके शुक नामक पुत्र हुए। वे सभी भावोंसे, परम भक्तिके द्वारा साक्षात् महादेव शकरके शरणागत हुए हैं और जिन्हें ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान उपलब्ध है॥ १०—१३॥

तत पाशुपता सर्वे हृष्टसर्वतनूरुहा।
नेमुरव्यग्रमनस प्रोचु सत्यवतीसुतम्॥ १४॥
भगवन् भवता ज्ञात विज्ञान परमेष्ठिन।
प्रसादाद् देवदेवस्य यत् तन्माहेश्वर परम्॥ १५॥
तद्वदास्माकमव्यक्त रहस्य गुह्यमुत्तमम्।
क्षिप्र पश्येम त देव श्रुत्वा भगवतो मुखात्॥ १६॥

तब वे सभी पशुपतिके भक्त प्रसन्न हो गये, उन्हें रोमाञ्च हो आया। एकाग्रमनस उन्होंने सत्यवतीके पुत्र व्यासको प्रणाम किया और कहा—भगवन्! देवदेवकी कृपासे जो परमेष्ठीका श्रेष्ठ माहेश्वर विज्ञान है, वह आपको ज्ञात है, अत आप हमें वह श्रेष्ठ अव्यक्त गोपनीय रहस्य बतलायें। ताकि आपके मुखसे उसे सुनकर हम शीघ्र ही उन देवका दर्शन कर सकें॥ १४—१६॥

विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखास्तत।
प्रोवाच तत्पर ज्ञान योगिभ्यो योगवित्तम॥ १७॥
तत्क्षणादेव विमल सम्भूत ज्योतिरुत्तमम्।
लीनास्तत्रैव ते विप्रा क्षणादन्तरधीयत॥ १८॥

तदनन्तर सुमन्तु आदि उन प्रमुख शिष्योंको विदाकर योगविदाम श्रेष्ठ व्यासने उन योगियोंको श्रेष्ठ ज्ञान बतलाया। विप्रो! उसी क्षण एक निर्मल उत्तम ज्योति प्रकट हुई और क्षणभरमें ही वे पाशुपत भक्तगण उसीमें लीन हो गये और अन्तर्धान हो गये॥ १७-१८॥

तत शिष्यान् समाहूय भगवान् ब्रह्मवित्तम।
प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्य पैलपूर्वकान्॥ १९॥
अस्मिन् स्थाने स्वय देवो देव्या सह महेश्वर।
रमते भगवान् नित्य रुद्रैश्च परिवारित॥ २०॥

तदनन्तर पैल आदि प्रमुख शिष्योंको बुलाकर श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् (व्यास)-ने मध्यमेशका माहात्म्य उन्हें बतलाया। स्वय भगवान् महेश्वर देव देवीके साथ तथा रुद्रगणोंसे घिरे नित्य इस स्थानपर रमण करते हैं॥ १९-२०॥

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुत।
उवास वत्सर कृष्ण सदा पाशुपतैर्वृत॥ २१॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्पर।
आराधयन् हरि शम्भु कृत्वा पाशुपत व्रतम्॥ २२॥
तस्य ते बहव शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणा।
लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञान दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ २३॥
तस्य देवो महादेव प्रत्यक्ष नीललोहित।
ददौ कृष्णस्य भगवान् वरदो वरमुत्तमम्॥ २४॥
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्द मद्भक्ता विधिपूर्वकम्।
तेषा तदैश्वर ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मय॥ २५॥

यहींपर पूर्वकालमें देवकीके पुत्र विश्वात्मा हृषीकेश कृष्ण हरि पाशुपतोंसे आवृत रहते हुए, समस्त शरीरमें भस्म धारणकर रुद्र-तत्त्वके अनुसधानमें तत्पर हुए थे तथा पाशुपत व्रत धारणकर शम्भुकी आराधना करते हुए एक वर्षतक निवास किये थे। उनके (व्यासके) ब्रह्मचर्य-परायण बहुतसे विज्ञ शिष्योंने उनके वचनसे ज्ञान प्राप्तकर महेश्वरका दर्शन किया। वर प्रदान करनेवाले नीललोहित देव साक्षात् भगवान् 'महादेवने' उन कृष्णको उत्तम वर प्रदान किया। जगन्मय! जो मेरे भक्त विधिपूर्वक आप गोविन्दकी अर्चना करेंगे, उन्हें ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान प्राप्त होगा॥ २१—२५॥

नमस्योऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनै।
भविष्यसि न सदेहो मत्प्रसादाद् द्विजातिभि॥ २६॥
येऽत्र द्रक्ष्यन्ति देवेश स्नात्वा रुद्र पिनाकिनम्।
ब्रह्महत्यादिक पाप तेषामाशु विनश्यति॥ २७॥
प्राणास्त्यजन्ति ये मर्त्या पापकर्मरता अपि।
ते यान्ति तत् पर स्थान नात्र कार्या विचारणा॥ २८॥

निस्सदेह मेरी कृपासे आप मेरे भक्त द्विजातियोंके प्रणम्य आराध्य और ध्येय होंगे। जो यहाँ स्नानकर पिनाकी

रुद्र देवेश्वरका दर्शन करेगे, उनके ब्रह्महत्या आदि सभी पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। जो पापकर्मपरायण भी मनुष्य यहाँ प्राणोका त्याग करगे, वे परम स्थानको प्राप्त करेगे, इसमे कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ २६—२८॥

धन्यास्तु खलु ते विप्रा मन्दाकिन्या कृतोदका।
अर्चयन्ति महादेव मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥ २९॥
स्नान दान तप श्राद्ध पिण्डनिर्वपण त्विह।
एकैकश कृत विप्रा पुनात्यासप्तम कुलम्॥ ३०॥

विप्रो! वे निश्चय ही धन्य हैं, जो मन्दाकिनीमें स्नानकर ईश्वर महादेव मध्यमेश्वरकी पूजा करते हैं। ब्राह्मणो! यहाँपर एक बार भी किया गया स्नान, दान तप, श्राद्ध तथा पिण्डदान सात पीढियोतक कुलको पवित्र कर देता है॥ २९—३०॥

सनिहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे।
यत् फल लभते मर्त्यस्तस्माद् दशगुण त्विह॥ ३१॥
एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभु।
उवास सुचिर काल पूजयन् वै महेश्वरम्॥ ३२॥

सूर्यके राहुसे ग्रस्त किये जानेपर अर्थात् ग्रहणकालमे सनिहती (कुरुक्षेत्र तीर्थ)-में स्नान करनेसे जो फल मनुष्यको प्राप्त होता है, उससे दस गुना अधिक फल यहाँ मन्दाकिनीमे स्नानसे प्राप्त होता है। ऐसा कहकर महायोगी प्रभु (व्यास)-ने महेश्वरकी पूजा करते हुए मध्यमेश्वरके समीपमे ही बहुत समयतक निवास किया॥ ३१-३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे द्वात्रिंशोऽध्याय ॥ ३२॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

वाराणसी-माहात्म्यके प्रसगमे व्यासजीका शिष्योके साथ विभिन्न तीर्थोमे गमन, ब्रह्मतीर्थका आख्यान, व्यासजीद्वारा विश्वेश्वर लिङ्गका पूजन तथा वहाँ रहते हुए शिवाराधना, एक दिन भिक्षा न मिलनेपर क्रोधाविष्ट व्यासजीका वाराणसीके निवासियोको शाप देनेके लिये उद्यत होना, उसी समय देवी पार्वतीका प्रकट होना, देवीका व्यासको वाराणसी त्यागनेकी आज्ञा, पुन स्तुतिसे प्रसन्न देवीके द्वारा चतुर्दशी तथा अष्टमीको वहाँ (वाराणसीमे) रहनेकी अनुमति देना

सूत उवाच

तत सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम भगवान् व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृत ॥ १॥
प्रयाग परम तीर्थं प्रयागादधिक शुभम्।
विश्वरूप तथा तीर्थ तालतीर्थमनुत्तमम्॥ २॥
आकाशाख्य महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभ परम्।
स्वर्नील च महातीर्थ गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥ ३॥
प्राजापत्य तथा तीर्थं स्वर्गद्वार तथैव च।
जम्बुकेश्वरमित्युक्त धर्माख्य तीर्थमुत्तमम्॥ ४॥
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थं चैव महानदी।
नारायण पर तीर्थ वायुतीर्थमनुत्तमम्॥ ५॥
ज्ञानतीर्थं पर गुह्य वाराह तीर्थमुत्तमम्।
यमतीर्थं महापुण्य तीर्थ सवर्तक शुभम्॥ ६॥
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठा कलशेश्वरमुत्तमम्।
नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च॥ ७॥
पर्वताख्य महागुह्य मणिकर्णमनुत्तमम्।
घटोत्कच तीर्थवर श्रीतीर्थं च पितामहम्॥ ८॥
गङ्गातीर्थं तु देवश ययातेस्तीर्थमुत्तमम्।
कापिल चैव सोमेश ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥ ९॥

सूतजी बोले—तदनन्तर जैमिनि आदि प्रमुख शिष्यासे आवृत भगवान् व्यास सभी गुह्य तीर्था आर देवमन्दिराम गये। द्विजश्रेष्ठो! वे परम तीर्थ प्रयाग प्रयागसे भी अधिक शुभ तीर्थ विश्वरूप, श्रेष्ठ तालतीर्थ आकाश नामक महातीर्थ, श्रेष्ठ आर्षभ तीर्थ स्वर्नील नामक महातीर्थ श्रेष्ठ गौरीतीर्थ प्राजापत्य तीर्थ स्वर्गद्वार जम्बुकेश्वर, धर्म (धर्मारण्य) नामवाल उत्तम तीर्थ गया तीर्थ महातीर्थ

महानदीतीर्थ, परम नारायण तीर्थ, श्रेष्ठ वायु तीर्थ, परम गुह्य ज्ञानतीर्थ, श्रेष्ठ वाराह तीर्थ, महान् पवित्र यमतीर्थ, शुभ सवर्तक तीर्थ, अग्नितीर्थ, उत्तम कलशेश्वर, नागतीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, महागुह्य पर्वत नामक तीर्थ, अनुत्तम मणिकर्ण, तीर्थश्रेष्ठ घटोत्कच तीर्थ, श्रीतीर्थ, पितामह तीर्थ, गङ्गातीर्थ, देवेश तीर्थ, उत्तम ययातितीर्थ, कपिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ तथा अनुत्तम ब्रह्मतीर्थमें गये॥ १—९॥

अत्र लिङ्ग पुरानीय ब्रह्मा स्नातु यदा गत।
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम्॥ १०॥
तत स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच त हरिम्।
मयानीतमिद लिङ्ग कस्मात् स्थापितवानसि॥ ११॥
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा मम।
तस्मात् प्रतिष्ठित लिङ्ग नाम्ना तव भविष्यति॥ १२॥

प्राचीन कालमे जब ब्रह्मा यहाँ (ब्रह्मतीर्थम) लिङ्ग लाकर स्नान करने चले गये, तब विष्णुने उस ईश्वरके लिङ्गको यहाँ स्थापित कर दिया। जब स्नान करके ब्रह्मा आये तो उन्होने विष्णुसे पूछा—मेरे द्वारा लाये गये इस लिङ्गको आपने क्यो स्थापित कर दिया। इसपर विष्णुने उनसे कहा—मेरी रुद्रमे आपसे भी अधिक दृढ भक्ति है, इसलिय मैंने लिङ्गको यहाँ प्रतिष्ठित कर दिया यह आपके नामस ही प्रसिद्ध होगा॥ १०—१२॥

भूतेश्वर तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम्।
गन्धर्वतीर्थं परम वाह्नेय तीर्थमुत्तमम्॥ १३॥
दौर्वासिक व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमा।
चित्राङ्गदश्वर पुण्य पुण्य विद्याधरेश्वरम्॥ १४॥
केदारतीर्थमुग्राख्य कालञ्जरमनुत्तमम्।
सारस्वत प्रभास च भद्रकर्णं ह्रद शुभम्॥ १५॥
लौकिकाख्य महीतीर्थं तीर्थं चैव महालयम्।
हिरण्यगर्भं गोप्रक्ष्यं तीर्थं चैव वृषध्वजम्॥ १६॥
उपशान्त शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्।
त्रिलोचन महातीर्थं लोलार्कं चोत्तराह्वयम्॥ १७॥
कपालमोचन तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशकम्।
शुक्रेश्वर महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम्॥ १८॥
एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात् कथितानि तु।
न शक्य विस्तराद् वक्तु तीर्थसख्या द्विजोत्तमा॥ १९॥
तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्।
उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनि॥ २०॥
तर्पयित्वा पितॄन् देवान् कृत्वा पिण्डप्रदानकम्।
जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वर शिव॥ २१॥

द्विजोत्तमो। (व्यासजी पुन आगे कहे जानेवाले तीर्थोंमें गये) भूतेश्वर तीर्थ, धर्मसमुद्भव तीर्थ, परम गन्धर्वतीर्थ, उत्तम वाह्नेयतीर्थ, दौर्वासिक तीर्थ, व्योमतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, पवित्र चित्राङ्गदेश्वरतीर्थ, पवित्र विद्याधरेश्वर तीर्थ, केदारतीर्थ, उग्र नामक तीर्थ, अनुत्तम कालञ्जर तीर्थ, सारस्वत तीर्थ, प्रभासतीर्थ, भद्रकर्णह्रद नामक शुभ तीर्थ, लौकिक नामक महातीर्थ, महालयतीर्थ, हिरण्यगर्भ तीर्थ गोप्रेक्ष्य तीर्थ वृषध्वजतीर्थ, उपशान्त तीर्थ, शिवतीर्थ, अनुत्तम व्याघ्रेश्वरतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, महातीर्थ लोलार्क तीर्थ, उत्तर नामक तीर्थ, ब्रह्महत्या-विनाशक कपालमोचन तीर्थ, महापवित्र शुक्रेश्वर तीर्थ और उत्तम आनन्दपुर तीर्थ आदि मुख्य-मुख्य तीर्थोंका वर्णन किया गया है, तीर्थोंकी सख्याका विस्तार नहीं बताया जा सकता। पराशरके पुत्र महामुनि (व्यास) इन सभी तीर्थोंमें स्नानकर पिनाकी (भगवान् शकर)-की पूजाकर, वहाँ-वहाँ उपवासकर दवताओं तथा पितरोका तर्पणकर और उन्ह पिण्डदानकर पुन वहीं गये जहाँ विश्वेश्वर शिव स्थित हैं॥ १३—२१॥

स्नात्वाभ्यर्च्य पर लिङ्ग शिष्यै सह महामुनि।
उवाच शिष्यान् धर्मात्मा स्वान् देशान् गन्तुमर्हथ॥ २२॥
ते प्रणम्य महात्मान जग्मु पैलादयो द्विजा।
वास च तत्र नियतो वाराणस्या चकार स॥ २३॥
शान्तो दान्तस्त्रिषवण स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्।
भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायण॥ २४॥

शिष्याक साथ धमात्मा महामुनिन स्नानकर उस परम (विश्वेश्वर) लिङ्गकी पूजा की और शिष्यास कहा—अब आप अपन-अपने स्थानोंको जा सकत हैं। द्विजो! महात्मा (व्यास)-को प्रणाम कर य पैल आदि (शिष्य) चल गय

और उन व्यासजीने नियमित-रूपसे वाराणसीमे वास किया। वे शान्त, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा एव ब्रह्मचर्य-परायण होकर तीनो सध्याआमे स्नान करते थे तथा भिक्षाद्वारा प्राप्त आहार करते हुए पिनाकीकी आराधनाम लगे रहते थे॥ २२—२४॥

कदाचिद् वसता तत्र व्यासेनामिततेजसा।
भ्रममाणेन भिक्षा तु नैव लब्धा द्विजोत्तमा ॥ २५॥
तत क्रोधावृततनुर्नराणामिह वासिनाम्।
विघ्न सृजामि सर्वेषा येन सिद्धिर्विहीयते॥ २६॥
तत्क्षणे सा महादेवी शकरार्धशरीरिणी।
प्रादुरासीत् स्वय प्रीत्या वेष कृत्वा तु मानुषम्॥ २७॥

द्विजोत्तमो! वहाँ रहते हुए एक दिन अमित तेजस्वी व्यासजीको भ्रमण करते रहनेपर भी भिक्षा नहीं प्राप्त हुई। तब उनका शरीर क्रोधाविष्ट हो गया, (उन्होने विचार किया कि) यहाँ रहनेवाल मनुष्योंके लिये ऐसे विघ्नकी सृष्टि करूँ जिससे उनकी सिद्धि नष्ट हो जाय, पर तत्क्षण ही शकरकी अर्धाङ्गिनी साक्षात् महादेवी (पार्वती)—मानुष-वेष धारणकर प्रसन्न-मुद्राम प्रकट हो गयीं। (और बोलीं—) ॥ २५—२७॥

भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या भवता न हि।
गृहाण भिक्षा मत्तस्त्वमुक्त्वैव प्रददौ शिवा॥ २८॥

हे महाबुद्धिमान् व्यास! आप शाप न दें। आप मुझसे भिक्षा ग्रहण करें। ऐसा कहकर पार्वतीने (उन्हें) भिक्षा दी॥ २८॥

उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्व भवान् यत ।
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि त्वया सदा॥ २९॥
एवमुक्त स भगवान् ध्यानाज्ज्ञात्वा परा शिवाम्।
उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरै स्तवै ॥ ३०॥
चतुर्दश्यामथाष्टम्या प्रवेश देहि शाकरि।
एवमस्त्वित्यनुज्ञाप्य देवी चान्तरधीयत॥ ३१॥

महादेवीने कहा—मुने! आप क्रोधी तथा कृतघ्न हैं अत आपको सदा इस क्षेत्रम नहीं रहना चाहिये। ऐसा कहे जानेपर व्यासजीने ध्यानद्वारा 'ये श्रेष्ठ पार्वती हैं'—ऐसा समझकर प्रणाम किया और श्रेष्ठ स्तुतियोसे स्तुति कर उनसे कहा—हे शकरवल्लभे! चतुर्दशी तथा अष्टमीको यहाँ (वाराणसीमे) प्रवेश करने दे। 'ऐसा ही हो' ऐसी आज्ञा देकर देवी अन्तर्धान हो गयीं॥ २९—३१॥

एव स भगवान् व्यासो महायोगी पुरातन ।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वत ॥ ३२॥
एव व्यास स्थित ज्ञात्वा क्षेत्र सेवन्ति पण्डिता ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्या वसेन्नर ॥ ३३॥

इस प्रकार महायोगी भगवान् व्यासजी क्षेत्र (वाराणसी)-के सभी गुणों (विशेषताओं)-को समझते हुए उस (वाराणसी)-के पार्श्वभागमे रहने लगे। इस प्रकार व्यासजीको स्थित हुआ जानकर विद्वान् लोग (उस) क्षेत्रका सेवन करते हैं। अत मनुष्यको सभी प्रयत्नकर वाराणसीमे निवास करना चाहिये॥ ३२-३३॥

सूत उवाच

य पठेदविमुक्तस्य माहात्म्य शृणुयादपि।
श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् सोऽपि याति परा गतिम्॥ ३४॥
श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजा ।
नदीना चैव तीरेषु देवतायतनेषु च॥ ३५॥
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जित ।
जपेदीश नमस्कृत्य स याति परमा गतिम्॥ ३६॥

सूतजी बोले—जो अविमुक्त (क्षेत्र वाराणसी)-का माहात्म्य पढता है, सुनता है अथवा शान्त द्विजोको सुनाता है, वह भी परम गतिको प्राप्त करता है। द्विजो! जो स्नान करनेके अनन्तर श्राद्धमे, देवकार्यमे, रात अथवा दिनमे, नदियोके किनारोपर अथवा देवमन्दिरोमे मनको एकाग्र कर दम्भ तथा मात्सर्यसे रहित होकर नमस्कारपूर्वक ईश (शिव)-का जप करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है॥ ३४—३६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायां पूर्वविभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

प्रयागका माहात्म्य, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-सवाद, प्रयागमे सगम स्नानका फल

ऋषय ऊचु

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् तदुदीरितम्।
इदानीं तु प्रयागस्य माहात्म्य ब्रूहि सुव्रत॥१॥
यानि तीर्थानि तत्रैव विश्रुतानि महान्ति वै।
इदानीं कथयास्माक सूत सर्वार्थविद् भवान्॥२॥

ऋषियोंने कहा—सुव्रत! अविमुक्त (क्षेत्र वाराणसी)-के माहात्म्यका आपने भलीभाँति वर्णन किया। अब इस समय प्रयागका माहात्म्य बतलाये। सूतजी! आप समस्त अर्थोंको जाननेवाले हैं, अब आप वहाँ (प्रयाग)-के जो महान् प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उन्हे हमे बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि व।
प्रयागस्य च माहात्म्य यत्र देव पितामह॥३॥
मार्कण्डेयेन कथित कौन्तेयाय महात्मने।
यथा युधिष्ठिरायैतत् तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥४॥

सूतजी बोले—ऋषियो! आप सभी सुने। मैं विस्तारसे आप लोगोको प्रयागका माहात्म्य बतलाता हूँ, जहाँ पितामह देव स्थित हैं। (महर्षि) मार्कण्डेयने कुन्तीके पुत्र महात्मा युधिष्ठिरसे जो कुछ कहा था, वही मैं आप लोगोको बताता हूँ॥ ३-४॥

निहत्य कौरवान् सर्वान् भ्रातृभि सह पार्थिव।
शोकेन महताविष्टो मुमोह स युधिष्ठिर॥५॥
अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डयो महातपा।
सम्प्राप्तो हास्तिनपुर राजद्वारे स तिष्ठति॥६॥

भाइयाके साथ सभी कौरवोको मारनेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर महान् शोकसे आविष्ट होकर मोहसे ग्रस्त हो गये। तदनन्तर थोडे ही समय बाद महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि हस्तिनापुरमे आये और राजमहलके द्वारपर खडे हो गये॥ ५-६॥

द्वारपालोऽपि त दृष्ट्वा राज्ञ कथितवान् द्रुतम्।
मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनि॥७॥
त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह तत्परम्।
स्वागत ते महाप्राज्ञ स्वागत ते महामुने॥८॥
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे तारित कुलम्।
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि तुष्टे महामुने॥९॥
सिहासनमुपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभि।
युधिष्ठिरो महात्मेति पूजयामास त मुनिम्॥१०॥

उन्हे देखकर द्वारपालने भी शीघ्र जाकर राजा (युधिष्ठिर)-से कहा—आपके दर्शनकी इच्छासे मुनि मार्कण्डेय द्वारपर खडे हैं। धर्मपुत्र युधिष्ठिर शीघ्र ही तत्परतापूर्वक द्वारपर गये और कहने लगे—महाप्राज्ञ! महामुने! आपका स्वागत है, स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा कुल तर गया। महामुने! आपके प्रसन्न होनेपर आज मेरे पितृगण सतुष्ट हो गये। महात्मा युधिष्ठिरने उन मुनिको सिहासनपर बैठाकर पादप्रक्षालन, पूजन इत्यादिके द्वारा उनका सम्मान किया॥ ७—१०॥

मार्कण्डेयस्ततस्तुष्ट प्रोवाच स युधिष्ठिरम्।
किमर्थं मुह्यसे विद्वन् सर्वं ज्ञात्वाहमागत॥११॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्याह महामुनिम्।
कथय त्व समासन येन मुच्येत किल्बिषै॥१२॥

तब प्रसन्न होकर मार्कण्डेयने युधिष्ठिरसे कहा—विद्वन्! आप मोह क्यों कर रहे हैं? सभी कुछ जानकर ही मैं यहाँ आया हूँ। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने प्रणामकर महामुनिसे कहा—आप सक्षेपमे (कोई उपाय) बतलाय, जिससे मैं पापोसे मुक्त हो सकूँ॥ ११-१२॥

निहता बहवो युद्ध पुसो निरपराधिन।
अस्माभि कौरवै सार्धं प्रसङ्गान्मुनिपुगव॥१३॥
येन हिंसासमुद्भूताज्जन्मान्तरकृतादपि।
मुच्यते पातकादस्मात् तद् भवान् वक्तुमर्हति॥१४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हमने (युद्धके) प्रसगवश कौरवोंके साथ अनेक निरपराध मनुष्योंको युद्धमें मारा है अत आप वह (कोई उपाय) बतलाये, जिससे हिसाजनित दोप एव जन्मान्तरमें किये गये पापों तथा इस पापसे भी मुक्ति मिले॥ १३-१४॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाभाग यन्मा पृच्छसि भारत।
प्रयागगमन श्रेष्ठ नराणा पापनाशनम्॥१५॥

तत्र देवो महादेवो रुद्रो विश्वामरेश्वर ।
समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भूरपि दैवतै ॥१६॥

मार्कण्डेयने कहा—हे राजन्! भारत! महाभाग! आप जो मुझसे पूछते है उसे सुन—मनुष्योके लिये पापको नष्ट करने-हेतु प्रयागकी यात्रा करना श्रेष्ठ (उपाय) है। वहाँ सभी देवताओके ईश्वर महादेव रुद्रदेव और स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा देवताओके साथ विराजमान हैं॥ १५-१६॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम्।
मृताना का गतिस्तत्र स्नातानामपि किं फलम्॥१७॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषा तु कि फलम्।
भवता विदित ह्येतत् तन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते॥१८॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! मैं सुनना चाहता हूँ कि प्रयाग जानेका क्या फल है? वहाँ मरनेवालाकी कौन गति होती है और वहाँ स्नान करनेवालोको क्या फल मिलता है? जो प्रयागमे निवास करते हैं, उन्हे क्या फल मिलता है, आपको यह सब कुछ ज्ञात है, अत मुझे वह सब बताय, आपको नमस्कार है॥ १७-१८॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स या चेष्टा यच्च तत्फलम्।
पुरा महर्षिभि सम्यक् कथ्यमान मया श्रुतम्॥१९॥
एतत् प्रजापतिक्षेत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा ॥२०॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षा कुर्वन्ति सगता ।
बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानि तु॥२१॥
कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि।
सक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्तनम्॥२२॥

मार्कण्डेयने कहा—वत्स! प्राचीन कालम महर्षियोद्वारा कही गयी (प्रयागकी महिमा) एव प्रयाग-निवासका फल आदि जो कुछ मैंने सुना है, उसे मैं भलीभाँति आपको बतलाऊँगा। यह प्रजापति-क्षेत्र तीना लोकोमे विख्यात है। यहाँपर स्नान करनेवाले स्वर्गलोकम जाते हैं और जो यहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यहाँ ब्रह्मा आदि देवता मिलकर (प्रयाग-निवासियाकी) रक्षा करते हैं और सभी पापाको दूर करनेवाले अन्य भी अनेक तीर्थ यहाँ हैं। मैं सैकडो वर्षोमे भी उनका वर्णन नहीं कर सकता तथापि सक्षेपमे ही प्रयाग (की महिमा)-का कीर्तन करता हूँ॥ १९—२२॥

षष्टिर्धनु सहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।
यमुना रक्षति सदा सविता सप्तवाहन ॥२३॥
प्रयागे तु विशेषेण स्वय वसति वासव ।
मण्डल रक्षति हरि सर्वदेवैश्च सम्मितम्॥२४॥

साठ हजार धनुष जाह्नवी (गङ्गा)-की रक्षा करते हैं और सात अश्वाको वाहन बनानेवाले सवितादेव सदा यमुनाकी रक्षा करते हैं। प्रयागमे विशेषरूपसे इन्द्र स्वय निवास करते हैं। समस्त देवोंसे युक्त विष्णु प्रयागमण्डलको रक्षा करते हैं॥ २३-२४॥

न्यग्रोध रक्षते नित्य शूलपाणिर्महेश्वर ।
स्थान रक्षन्ति वै देवा सर्वपापहर शुभम्॥२५॥
स्वकर्मणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्।
स्वल्प स्वल्पतर पाप यदा तस्य नराधिप।
प्रयाग स्मरमाणस्य सर्वमायाति सक्षयम्॥२६॥

(प्रयागके विशाल) वट वृक्षकी रक्षा हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले महेश्वर नित्य करते हैं और सभी पापोको हरनेवाले इस शुभ स्थानकी रक्षा सभी देवता करते हैं। हे नराधिप! जो लोग अपने कर्मोसे घिरे है तथा जिनका छोटेसे भी छोटा पाप बचा रहता है, वे लोग उस मोक्ष-पदको प्राप्त नहीं करते किंतु प्रयागका स्मरण करनेवालेका यह सभी कुछ (पाप एव कर्म) नष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नाम सकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नर पापात् प्रमुच्यते॥२७॥
पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषा मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयाग विशत पुस पाप नश्यति तत्क्षणात्॥२८॥
योजनाना सहस्रेषु गङ्गा य स्मरते नर ।
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमा गतिम्॥२९॥

इस (प्रयाग) तीर्थके दर्शन करनेसे, नामका सकीर्तन करनेसे अथवा यहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे भी मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! यहाँ (प्रयागमे) पाँच कुण्ड हैं, जिनके बीचमे जाह्नवी (गङ्गा) स्थित है। प्रयागम प्रवेश करनेवालेका पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है। सहस्रो योजन दूरसे भी जो मनुष्य गङ्गाका स्मरण करता है, वह दुष्कृत करनवाला होनेपर भी परम गतिको

प्राप्त करता है॥ २७—२९॥

कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
तथोपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोके महीयते॥ ३०॥

हे राजेन्द्र! (प्रयागका नाम-) कीर्तन करनेसे (मनुष्य) पापसे मुक्त हो जाता है और इसका दर्शन करनेसे (उसे सर्वत्र) मगल-ही-मगल दिखलायी पडता है तथा यहाँ आचमन (इसके जलसे स्नान) करनेसे स्वर्गलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है॥ ३०॥

व्याधितो यदि वा दीन क्रुद्धो वापि भवेन्नर।
गङ्गायमुनमासाद्य त्यजेत् प्राणान् प्रयत्नत॥ ३१॥
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्णिभि।
ईप्सितॉल्लभते कामान् वदन्ति मुनिपुगवा॥ ३२॥

कोई मनुष्य व्याधिग्रस्त हो, दीन हो अथवा क्रुद्ध हो, यदि वह प्रयत्नपूर्वक गङ्गा-यमुनाके समीप पहुँचकर प्राण-त्याग करता है तो वह सूर्यके समान उद्दीप्त, स्वर्णिम आभावाले विमानोसे युक्त होकर अभीष्ट पदार्थोंको प्राप्त करता है—ऐसा श्रेष्ठ मुनिजनोका कहना है॥ ३१-३२॥

सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलै।
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षण॥ ३३॥
गीतवादित्रनिर्घोषै प्रसुप्त प्रतिबुध्यते।
यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते॥ ३४॥

वह शुभ लक्षणोवाला (मनुष्य) सभी रत्नोसे युक्त अनेक प्रकारकी दिव्य ध्वजाओसे परिपूर्ण और वराङ्गनाओंसे समन्वित होकर आनन्दित होता है। शयन करनेपर वह गीत और वाद्यकी ध्वनिसे जगाया जाता है, जबतक वह जन्मका स्मरण नहीं करता तबतक स्वर्गमे प्रतिष्ठित रहता है॥ ३३-३४॥

तस्मात् स्वर्गात् परिभ्रष्ट क्षीणकर्मा नरोत्तम।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले॥ ३५॥
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति।
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृह॥ ३६॥
प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजत्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुंगवा॥ ३७॥
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी।
ऋषयो मुनय सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति॥ ३८॥

नरोत्तम! (पुण्य) कर्मोके क्षीण होनेपर स्वर्गसे च्युत होकर वह स्वर्ण तथा रत्नोसे परिपूर्ण समृद्ध कुलमें जन्म लेता है और इसी तीर्थ (प्रयाग)-का स्मरण करता है। स्मरण होनेपर पुन वहाँ जाता है। अपने देश, विदेश, अरण्य अथवा घरमें जो प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, ऐसा श्रेष्ठ मुनि कहते हैं। वह उस लोकमे जाता है, जहाँके सभी वृक्ष इच्छानुसार फल देते हैं, जहाँकी भूमि स्वर्णमयी है और जहाँ ऋषि मुनि तथा सिद्धजन रहते हैं॥ ३५—३८॥

स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे।
मोदते मुनिभि सार्धं स्वकृतेनेह कर्मणा॥ ३९॥
सिद्धचारणगन्धर्वै पूज्यते दिवि दैवतै।
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बुद्वीपपतिर्भवेत्॥ ४०॥
तत शुभानि कर्माणि चिन्तयान पुन पुन।
गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह न सशय।
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठित॥ ४१॥

अपने किये कर्मोंके कारण वह सहस्रो स्त्रियोसे रमणीय मन्दाकिनीके शुभ तटपर मुनियोके साथ आनन्द प्राप्त करता है। वह स्वर्गमे सिद्ध चारण गन्धर्व तथा देवताओंसे पूजित होता है तदनन्तर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह (पुरुष) जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। तदुपरान्त वह बार-बार शुभ कर्मोंका चिन्तन करता हुआ गुणवान् तथा धनसम्पन्न हो जाता है, और मन, वाणी तथा कर्मसे सत्यधर्मपर प्रतिष्ठित रहता है, इसमें कोई सशय नहीं है॥ ३९—४१॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्राम प्रतीच्छति।
सुवर्णमथ मुक्ता वा तथैवान्यान् प्रतिग्रहान्॥ ४२॥
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा।
निष्फल तस्य तत् तीर्थं यावत् तत्फलमश्नुते॥ ४३॥
अतस्तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च।
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत्॥ ४४॥

जो व्यक्ति स्वकार्य, पितृकार्य अथवा देवताकी पूजा करते समय गङ्गा और यमुनाके मध्यम ग्राम, सुवर्ण मोती या अन्य कोई पदार्थ प्रतिग्रह (दान)-मे

लेता है, उसे तीर्थका पुण्य उस समयतक नहीं मिलता है, जबतक वह दानमे लिये हुए पदार्थका भोग करता रहता है[१]। अत तीर्थों तथा पवित्र मन्दिरोमे दान नहीं लेना चाहिये। द्विजको सभी प्रकारके प्रयोजनोमे सावधान रहना चाहिये॥ ४२—४४॥

कपिला पाटलावर्णां यस्तु धेनु प्रयच्छति।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरा चैलकण्ठा पयस्विनीम्॥ ४५॥
यावद्रोमाणि तस्या वै सन्ति गात्रेषु सत्तम।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ ४६॥

श्रेष्ठ (युधिष्ठिर)! जो व्यक्ति (प्रयागमे) कपिल अथवा पाटलवर्णकी, सुवर्णमण्डित सींगवाली, रजतमण्डित खुरोंवाली, वस्त्रसे आच्छादित कण्ठवाली पयस्विनी गायका दान करता है, वह उतने हजार वर्षोतक रुद्रलोकमे पूजित होता है, जितने उस गायके शरीरमे रोम होते हैं॥ ४५-४६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहिताया पूर्वविभागे चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, प्रयागके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा, त्रिपथगा गङ्गाका माहात्म्य, गङ्गास्नानका फल

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम्।
आर्षेण तु विधानेन यथा दृष्ट यथा श्रुतम्॥ १॥

मार्कण्डेयने कहा—वत्स! ऋषियाके द्वारा प्रतिपादित विधानके अनुसार तीर्थयात्राकी विधिके क्रमको मैंने जैसे देखा और सुना, वह तुमसे कहता हूँ॥ १॥

प्रयागतीर्थयात्रार्थी य प्रयाति नर क्वचित्।
बलीवर्द समारूढ शृणु तस्यापि यत्फलम्॥ २॥
नरके वसते घोरे समा कल्पशतायुतम्।
ततो निवर्तते घोरो गवा क्रोधो हि दारुण ।
सलिल च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिन ॥ ३॥
यस्तु पुत्रास्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा।
यथात्मना तथा सर्वान् दान विप्रेषु दापयेत्॥ ४॥
ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्‌ वा गच्छेद् यानेन यो नर ।
निष्फल तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यान विवर्जयेत्॥ ५॥

प्रयाग तीर्थकी यात्रा करनेवाला कोई मनुष्य यदि कहीं बैलपर आरूढ होकर गमन करता है तो उसका भी फल सुनो। वह व्यक्ति दस हजार कल्पोंतक घोर नरकमें वास करता है, क्योंकि गौका भयकर दारुण क्रोध इसके बाद ही दूर होता है। बैलको सवारी बनानेवाले मनुष्यके पितर उसका (तर्पण आदिमें दिया) जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो अपने सभी पुत्रों एव बालकाको अपने ही समान यहाँ (प्रयागमें) स्नान कराता है तथा उन्हे (गङ्गा-यमुनाका) जल पिलाता है और उनके हाथो ब्राह्मणोका दान कराता है (उसे उत्तम गति प्राप्त होती है)। जो मनुष्य ऐश्वर्य, लोभ या मोहवश यानद्वारा (तीर्थमे) जाता है, उसकी वह तीर्थयात्रा निष्फल होती है, इसलिये (तीर्थयात्रामे) यानका परित्याग करना चाहिये॥ २—५॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्या प्रयच्छति।
आर्षेण तु विवाहेन यथाविभवविस्तरम्॥ ६॥
न स पश्यति त घोर नरक तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्॥ ७॥

१-इसका तात्पर्य यह है कि तीर्थमे निवास अन्त करणकी शुद्धिके लिये ही होता है अत लोभरहित होकर अनासक्त-भावसे तीर्थमे निवास करना चाहिये। इसीलिये तीर्थमे यदि कोई लोभवश या आसक्तिवश दान लेता है तो यह प्रतिग्रह लोभको बढायेगा तथा अन्त करणकी शुद्धिमे बाधक होगा। अत दाताके कल्याणमात्रके लिये भले ही दान लिया जाय पर लोभवश दान नहीं लेना चाहिये। साथ ही जप-तप आदि प्रायश्चित्तद्वारा इसका निराकरण भी करना चाहिये।

जो व्यक्ति गङ्गा-यमुनाके मध्य आर्ष विवाह-पद्धतिसे अपने ऐश्वर्यके अनुकूल धनका व्ययकर कन्याका दान करता है, वह उस कर्मके कारण घोर नरकका दर्शन नहीं करता और उत्तर कुरुमें जाकर अनन्त कालतक आनन्दोपभोग करता है ॥ ६-७ ॥

वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ८ ॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः।
लोकपालाश्च सिद्धाश्च पितरो लोकसम्मताः ॥ ९ ॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथा नित्यं समासते।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः ॥ १० ॥

(प्रयागमें अक्षय) वटवृक्षके नीचे जाकर जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी लोकोंका अतिक्रमण कर रुद्रलोकको जाता है। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिक्पालोंसहित दिशाएँ, लोकपाल, सिद्ध, लोकमें मान्य पितर, सनत्कुमार आदि प्रमुख तथा दूसरे ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण एवं सिद्धगण तथा भगवान् हरि और प्रजापति प्रभृति नित्य निवास करते हैं ॥ ८—१० ॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ११ ॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशितव्रतः।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ १२ ॥

गङ्गा-यमुनाके मध्यको पृथ्वीका जघन[1] कहा गया है। हे राजशार्दूल! प्रयाग तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ (गङ्गा-यमुनाके) संगमपर जो कठोर व्रत धारणकर अभिषेक—स्नान करता है, वह अश्वमेध तथा राजसूय-यज्ञोंके समान फल प्राप्त करता है ॥ ११-१२ ॥

न मातृवचनात् तात न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति॥ १३ ॥
दश तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापरे।
तेषां सांनिध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन॥ १४ ॥
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे॥ १५ ॥
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन् यत्र तत्र युधिष्ठिर।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १६ ॥

हे तात! माताके कहने अथवा अन्य लोगोंके कहनेपर भी प्रयाग जानेकी बुद्धिका उत्क्रमण (परित्याग) नहीं करना चाहिये[2]। हे कुरुनन्दन! यहाँपर प्रमुख दस हजार तीर्थ तथा साठ करोड़ दूसरे तीर्थोंका सांनिध्य है। योगयुक्त सत्त्वगुणी मनीषीकी जो गति होती है वही गति गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण त्याग करनेवालेकी होती है। हे युधिष्ठिर! तीनों लोकोंमें विख्यात प्रयागमें जो नहीं पहुँचते जहाँ-कहीं भी निवास करनेवाले वे लोग इस संसारमें जीवित रहते हुए भी मृतकके तुल्य हैं ॥ १३—१६ ॥

एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा॥ १७ ॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १८ ॥

इस प्रकार परम पदरूप इस प्रयाग तीर्थका दर्शनकर मनुष्य सभी पापोंसे उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे चन्द्रमा राहुसे मुक्त हो जाता है। यमुनाके दक्षिण किनारेपर कम्बल और अश्वतर नामके दो नाग स्थित हैं। वहाँ स्नान करने और जल पीनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है ॥ १७-१८ ॥

तत्र गत्वा नरः स्थानं महादेवस्य धीमतः।
आत्मानं तारयेत् पूर्वं दशातीतान् दशापरान्॥ १९ ॥
कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाहूतसम्प्लवम्॥ २० ॥

धीमान् महादेवके उस स्थानपर जाकर मनुष्य अपनेको तथा दस पूर्वकी और दस बादकी सभी पीढ़ियोंको तार देता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करता है तथा महाप्रलयपर्यन्त स्वर्गलोक प्राप्त करता है ॥ १९-२० ॥

पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान् नृप।
अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्॥ २१ ॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ २२ ॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ २३ ॥

1-नाभिके नीचेका नितम्बका कोमल भाग जघन है।

2-इसका तात्पर्य प्रयागमें निवास करनेसे है न कि माता अथवा गुरुजनोंके वचनका उल्लंघन करनेमें।

अश्वमेधफल तत्र स्मृतमात्रात् तु जायते।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते॥ २४॥

हे राजन्! गङ्गाके पूर्वी तटपर तीनो लोकामें विख्यात सर्वसामुद्र नामक गह्वर तथा प्रतिष्ठान प्रसिद्ध है। वहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक तथा क्रोधजयी होकर तीन रात्रि निवास करनवाला (मनुष्य) सभी पापासे निर्मुक्त होकर अश्वमेधका फल प्राप्त करता है। प्रतिष्ठान नामक स्थानके उत्तर तथा भागीरथीकी बायीं ओर तीनो लोकोंमें विख्यात हसप्रपतन नामक तीर्थ है। उसके स्मरणमात्रसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है और (वहाँ जानेवाला व्यक्ति) जबतक सूर्य एव चन्द्रमा हैं, तबतक स्वर्गम प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २१—२४॥

उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हसपाण्डुरे।
परित्यजति य प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ २५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
आस्ते स पितृभि सार्धं स्वर्गलोके नराधिप॥ २६॥
अथ सध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय।
नर शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ २७॥
कोटितीर्थं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ २८॥
यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना।
सिद्धक्षेत्र हि तज्ज्ञेय नात्र कार्या विचारणा॥ २९॥
क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागास्तारयतेऽप्यध।
दिवि तारयते देवास्तेन त्रिपथगा स्मृता॥ ३०॥

जो व्यक्ति उर्वशीके[१] हसके समान अति धवल रम्य विस्तृत तटपर प्राणाका परित्याग करता है उसका भी जो फल है, वह सुनो—हे नराधिप! वह व्यक्ति साठ हजार साठ सा वर्षोंतक पिताके साथ स्वर्गलाकम निवास करता है। रमणीय सध्यावट (प्रयागके वट-विशेष)-के नीचे जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक पवित्रतासे उपासना करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता ह। जा कोटितीर्थ (प्रयागम स्थित तीर्थ)-म पहुँचकर प्राणाका परित्याग करता है वह हजार करोड वर्षोंतक स्वर्गलाकमे पूजित होता है। जहाँ बहुतसे तीर्थों एव तपोवनासे युक्त महाभागा गङ्गा विद्यमान हैं उस क्षत्रका सिद्धक्षेत्र जानना चाहिय इसम किसी भी प्रकारका विचार (सशय) करना उचित नहीं है। गङ्गा पृथ्वीपर मनुष्योको तारती है, नीचे पाताल लोकम नागोको तारती है और द्युलोकमे देवताओको तारती है, इसलिये यह त्रिपथगा कही जाती है॥ २५—३०॥

यावदस्थीनि गङ्गाया तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ३१॥
तीर्थाना परम तीर्थं नदीना परमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूताना महापातकिनामपि॥ ३२॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वार प्रयागे च गङ्गासागरसगमे॥ ३३॥
सर्वेषामेव भूताना पापोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणाना नास्ति गङ्गासमा गति॥ ३४॥

जितने वर्षतक पुरुषकी अस्थियाँ गङ्गाम रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमे पूजित होता है। (गङ्गा) सभी तीर्थोंमे परम तीर्थ और नदियामे श्रेष्ठ नदी है, वह सभी प्राणिया, यहाँतक कि महापातकियोको भी मोक्ष प्रदान करनवाली है। गङ्गा (स्नान) सर्वत्र सुलभ होनेपर भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग एव गङ्गासागर—इन तीन स्थानाम दुर्लभ होती है। (उत्तम) गतिकी इच्छा करनेवाले तथा पापसे उपहत चित्तवाले सभी प्राणियाके लिये गङ्गाके समान ओर कोई दूसरी गति नहीं है॥ ३१—३४॥

पवित्राणा पवित्र च मङ्गलाना च मङ्गलम्।
माहेश्वरात् परिभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥ ३५॥
कृते युगे तु तीर्थानि त्रेताया पुष्कर परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्र कलौ गङ्गा विशिष्यते॥ ३६॥
गङ्गामेव निषेवत प्रयागे तु विशेषत।
नान्यत् कलियुगाद्भूत मल हन्तु सुदुष्कृतम्॥ ३७॥
अकामो वा सकामो वा गङ्गाया या विपद्यते।
स मृता जायते स्वर्गे नरक च न पश्यति॥ ३८॥

यह सभी पवित्र वस्तुआस अधिक पवित्र और सभी मङ्गलकारी पदार्थोंसे अधिक माङ्गलिक है। महेश्वर (क मस्तक)-स हाकर इस लाकम आनेक कारण यह सभी पापाका हरण करनवाली आर शुभ हे। सत्ययुगम अनेक तीर्थ हाते हैं, त्रेताका श्रष्ठ तीर्थ पुष्कर है, द्वापरका कुरुक्षत्र

१-प्रयाग-सगमके समाप कोई तट-विशष।

है और कलियुगमे गङ्गाकी ही विशेषता है। गङ्गाकी ही सेवा करनी चाहिये, विशेष-रूपसे प्रयागमे गङ्गाकी सेवा करनी चाहिये। कलियुगमे उत्पन्न अत्यन्त कठिन पापको दूर करनेमे कोई अन्य तीर्थ समर्थ नहीं है। इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक जो गङ्गामे मृत्यु प्राप्त करता है, वह मृत व्यक्ति स्वर्ग जाता है और नरकका दर्शन नहीं करता॥ ३५—३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली कूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, माघ-मासमे सगमस्नानका फल, त्रिमाघीकी महिमा, प्रयागमे प्राण-त्याग करनेका फल

मार्कण्डेय उवाच

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसगमम्॥ १॥
गवा शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम्।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यह स्नातस्य तत् फलम्॥ २॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कार्षाग्नि यस्तु साधयेत्।
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वित ॥ ३॥

मार्कण्डेयने कहा—(युधिष्ठिर!) गङ्गा और यमुनाके सगमपर माघ महीनेमें साठ हजार साठ सौ तीर्थ जाते हैं। सौ हजार गौओंका भलीभाँति दान करनेका जो फल होता है, वही फल प्रयागमे माघ मासमे तीन दिन स्नान करनेका होता है। गङ्गा और यमुनाके सगमपर जो करीषाग्नि[1] सेवन करता है, वह अहीनाङ्ग (हीन अङ्गसे रहित) अथात् सम्पूर्ण अवयवोंसे सम्पन्न, रोगरहित तथा पाँचों इन्द्रियोंसे युक्त होता है॥ १—३॥

यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु मानद।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ४॥
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगास्तत् तीर्थं भजते पुन ॥ ५॥

मान देनेवाले (युधिष्ठिर)! उस मनुष्यके शरीरमे जितने रोमकूप होते हैं उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदनन्तर स्वर्गमे भ्रष्ट होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है और विपुल भोगोंका उपभोग करनेके अनन्तर वह पुन इस तीर्थ (प्रयाग)-को प्राप्त करता है॥ ४-५॥

जलप्रवेश य कुर्यात् सगमे लोकविश्रुते।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्त सर्वपातकै ॥ ६॥
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च॥ ७॥
स्वर्गत शक्रलोकेऽसौ मुनिगन्धर्वसेवित ।
ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले॥ ८॥
अध शिरास्त्वयोधारामूर्ध्वपाद पिबेन्नर ।
शत वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ९॥
तस्माद् भ्रष्टस्तु राजेन्द्र अग्निहोत्री भवेन्नर ।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगास्तत् तीर्थं भजते पुन ॥ १०॥
य स्वदेह विकर्तेद् वा शकुनिभ्य प्रयच्छति।
विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्॥ ११॥

(गङ्गा-यमुनाके) लोक-प्रसिद्ध सगमपर जो जलमें प्रवेश करता है वह जिस प्रकार राहुसे ग्रस्त चन्द्रमा मुक्त हो जाता है, वैसे ही सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह चन्द्रलोकमे जाता है और साठ हजार साठ सौ वर्षोंतक चन्द्रमाके साथ आनन्दोपभोग करता है। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त मुनियों एव गन्धर्वोंसे सेवित वह स्वर्गलोकसे इन्द्रलोकमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट होनेपर इस लोकमे आकर धनवानोंके कुलमें जन्म लेता है। जो मनुष्य (यहाँ प्रयागमें) पैर ऊपर और सिर नीचे करके लोहकी धाराका पान (तपस्या-विशेष) करता है, वह सौ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें पूजित

[1] करीष—सूखा गोमय। इससे अग्नि बनाकर उसके मध्य तपस्या करना।

होता है। राजेन्द्र! वहाँसे भ्रष्ट होनेपर वह मनुष्य अग्निहोत्री होता है और विपुल भोगाका उपभोग करके पुन इस (प्रयाग) तीर्थका सेवन करता है। जो अपना शरीर काटता[१] है अथवा पक्षियाको दता है, ऐसे पक्षियाद्वारा खाये गय (मासवाले) उस पुरुपको भी जो फल प्राप्त होता है उसे सुनो॥ ६—११॥

शत वर्षसहस्राणि सोमलोके महीयते।
ततस्तस्मात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिक ॥१२॥
गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वान् सुप्रियवाक्यवान्।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगास्तत् तीर्थं भजते पुन ॥१३॥
उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य तु दक्षिणे।
ऋणप्रमोचन नाम तीर्थं तु परम स्मृतम्॥१४॥
एकरात्रोषित स्नात्वा ऋणैस्तत्र प्रमुच्यते।
सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्॥१५॥

वह सौ हजार वर्षोतक चन्द्रलोकमें पूजित होता है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होनेपर धार्मिक, गुणवान्, रूपसम्पन्न, विद्वान् और सुन्दर तथा प्रिय वचन बोलनेवाला राजा होता है एव विपुल भोगोको भोगकर पुन इस तीर्थका सेवन करता है। प्रयागके दक्षिणमे यमुनाके उत्तरी तटपर ऋणप्रमोचन नामका एक श्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है। वहाँ स्नानकर एकरात्रिपर्यन्त निवास करनेवाला पुरुप ऋणासे मुक्त हो जाता है, सूर्यलोक प्राप्त करता है तथा सदाके लिये ऋण-मुक्त हो जाता है॥ १२—१५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहिताया पूर्वविभागे षट्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३६॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली कूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥
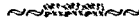
सैंतीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, यमुनाकी महिमा, यमुनाके तटवर्ती तीर्थोका वर्णन, गङ्गामे सभी तीर्थोकी स्थिति, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-सवादकी समाप्ति

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा॥१॥
येनैव नि सृता गङ्गा तेनैव यमुना गता।
योजनाना सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनाया युधिष्ठिर।
सर्वपापविनिर्मुक्त पुनात्यासप्तम कुलम्।
प्राणास्त्यजति यस्तत्र स याति परमा गतिम्॥३॥
अग्नितीर्थमिति ख्यात यमुनादक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरक स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति य मृतास्तेऽपुनर्भवा ॥४॥

मार्कण्डेयने कहा—(राजन् युधिष्ठिर!) सूर्यकी तीनो लोकोम विख्यात पुत्री महाभागा देवी यमुना नदी यहाँपर मिली हैं। जिस मार्गसे गङ्गा प्रवाहित हुई हैं, उस मार्गसे यमुना भी गयी हैं। सहस्रो योजन दूरपर भी (यमुना) नाम लेनेसे पापोको नष्ट कर देनेवाली है। युधिष्ठिर! इस यमुनामे स्नान करने तथा इसका जल पीनेसे मनुष्य सभी पापोसे मुक्त होकर अपने सात पीढियाके कुलोको पवित्र कर देता है। जो यहाँ प्राणोका परित्याग करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। यमुनाके दक्षिणी तटपर अग्नितीर्थ नामका एक विख्यात तीर्थ है। यमुनाके पश्चिमी भागम धर्मराजका 'अनरक'[२] नामक तीर्थ कहा गया है। यहाँ स्नान करनेवाले स्वर्ग जाते हैं ओर जो यहाँ मृत्युको प्राप्त हाते है उनका पुनर्जन्म नहीं होता॥ १—४॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्या स्नात्वा सतर्पयेच्छुचि ।
धर्मराज महापापैर्मुच्यते नात्र सशय ॥५॥

१-ज्ञानकी पराकाष्ठामे शरीरके प्रति ममताका सर्वथा अभाव हो जाता है। ऐसी स्थितिमें शरीरका काटना या अपने शरीरका मास पक्षियोको समर्पित करना (प्राणि-कल्याण-बुद्धिमात्रसे) विशेष तप है। दधीचि शिवि जीमूतवाहन आदिके दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं।

२-न नरक-अनरक इस तीर्थमे स्नान आदि करनेसे नरक नहीं जाना पडता इसलिये इसका नाम 'अनरक' है।

दश तीर्थसहस्राणि त्रिशत्कोट्यस्तथापरा ।
प्रयागे सस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिण ॥ ६ ॥

यहाँ (अनरक तीर्थमे) कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको स्नान करके पवित्रतापूर्वक जो धर्मराजका तर्पण करता है, वह निस्सदेह महापापोंसे मुक्त हो जाता है। मनीषी लोगोंका यह कहना है कि प्रयागमें दस हजार (प्रधान) तीर्थ और तीस करोड दूसरे (अप्रधान) तीर्थ स्थित हैं॥ ५-६॥

तिस्त्र कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थाना वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्व जाह्नवी स्मृता॥ ७ ॥
यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत् तपोवनम्।
सिद्धिक्षेत्र तु तज्ज्ञेय गङ्गातीरसमाश्रितम्॥ ८ ॥
यत्र देवो महादेवो देव्या सह महेश्वर ।
आस्ते वटेश्वरो नित्य तत् तीर्थं तत् तपोवनम्॥ ९ ॥
इद सत्य द्विजातीना साधूनामात्मजस्य च।
सुहृदा च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य तु॥१०॥

वायुने कहा है कि द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षमें साढे तीन करोड तीर्थ हैं। और जाह्नवी उन सभी तीर्थोंसे युक्त कही गयी है। जहाँ महाभागा गङ्गा होती हैं, वही (पवित्र) देश है और वही तपोवन होता है। गङ्गाके तटपर स्थित उस स्थानको सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिये। जहाँ देवीके साथ महादेव महेश्वरदेव वटेश्वर[1] स्थित हैं, वह स्थान नित्य तीर्थ है और वह तपोवन है। इस सत्यको द्विजातियों, साधुओं, मित्रो, अपने पुत्र तथा अनुगामी शिष्यके कानमे कहना चाहिये॥ ७—१०॥

इद धन्यमिद स्वर्ग्यमिद मेध्यमिद सुखम्।
इद पुण्यमिद रम्य पावन धर्म्यमुत्तमम्॥११॥
महर्षीणामिद गुह्य सर्वपापप्रमोचनम्।
अत्राधीत्य द्विजोऽध्याय निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥१२॥
यश्चेद शृणुयान्नित्य तीर्थं पुण्य सदा शुचि ।
जातिस्मरत्व लभते नाकपृष्ठे च मोदते॥१३॥
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भि शिष्टानुदर्शिभि ।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव॥१४॥

यह (प्रयाग) धन्य है, स्वर्गफलप्रद (स्वर्गरूप फलको देनेवाला) है, यह पवित्र, सुख, पुण्य, रमणीय, पावन और उत्तम धर्मयुक्त है। यह महर्षियोके लिये गोपनीय रहस्य है। सभी पापोको नष्ट करनेवाला है। यहाँ द्विज वेदका स्वाध्याय कर निर्मल हो जाता है। जो व्यक्ति नित्य पवित्रतापूर्वक इस पुण्यप्रद तीर्थका वर्णन सुनता है, वह जन्मान्तरकी बातोको स्मरण करनेवाला हो जाता है और स्वर्गलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। शिष्ट मार्गका अनुसरण करनेवाले सज्जन पुरुष ऐसे तीर्थोंमे जाते हैं। कुरुके वशधर (युधिष्ठिर)। तीर्थोंमे स्नान करो। इस विषयमे विपरीत बुद्धिवाले मत होओ॥ ११—१४॥

एवमुक्त्वा स भगवान् मार्कण्डेयो महामुनि ।
तीर्थानि कथयामास पृथिव्या यानि कानिचित्॥१५॥
भूसमुद्रादिसस्थान प्रमाण ज्योतिषा स्थितम्।
पृष्ट प्रोवाच सकलमुक्त्वाथ प्रययौ मुनि ॥१६॥

ऐसा कहकर उन भगवान् मार्कण्डेय महामुनिने (युधिष्ठिरके द्वारा) पूछे जानेपर पृथ्वीमे जो कोई भी तीर्थ थे, उन्हें बतलाया और पृथ्वी तथा समुद्र आदिकी स्थिति एव नक्षत्रोंकी स्थितिका सम्पूर्ण वर्णन कर वे मुनि चले गये॥ १५-१६॥

य इद कल्यमुत्थाय पठतेऽथ शृणोति वा।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोक स गच्छति॥१७॥

प्रात काल उठकर जो इस (प्रयाग-माहात्म्य)-का पाठ करता है अथवा इसे सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमे जाता है॥ १७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां सहितायां पूर्वविभागे सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली कूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

[1] १-प्रयागमें स्थित विशाल वटवृक्षके नीचे प्रतिष्ठित लिङ्ग वटेश्वर लिङ्ग है।

अड़तीसवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णनमे राजा प्रियव्रतके वशका वर्णन, प्रियव्रतके पुत्र राजा अग्नीध्रके वशका वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपोका तथा वर्षोका वर्णन, जम्बूद्वीपके नौ वर्षोमे राजा अग्नीध्रके नाभि, किपुरुष आदि नौ पुत्रोका आधिपत्य

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामतिम्।
पप्रच्छुरुत्तर सूत पृथिव्यादिविनिर्णयम्॥ १॥

श्रीकूर्मने कहा—ऐसा कहे जानेपर नैमिषारण्यम निवास करनेवाले मुनियोने महाबुद्धिमान् सूतजीसे पृथ्वी आदिके सम्बन्धमे निर्णय पूछा—॥ १॥

ऋषय ऊचु

कथितो भवता सूत सर्ग स्वायम्भुव शुभ ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम्॥ २॥
यावन्त सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वता ।
वनानि सरित सूर्यग्रहाणा स्थितिरेव च॥ ३॥
यदाधारमिद कृत्स्न येषा पृथ्वी पुरा त्वियम्।
नृपाणा तत्समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

ऋषि बोले—हे सूतजी! आपने स्वायम्भुव मन्वन्तरकी शुभ सृष्टिको बतलाया, अब इस समय हम लोग त्रैलोक्य-मण्डलका वर्णन सुनना चाहते हैं। जितने सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन तथा नदियाँ हैं और सूर्य आदि ग्रहाकी जो स्थिति है, इन सभीका वर्णन करे। हे सूतजी! यह सब कुछ जिसके आधारपर टिका है और प्राचीन कालमे यह पृथ्वी जिन राजाओके अधिकारमे रही है, उन सभी विषयोका सक्षेपम आप वर्णन करे॥ २—४॥

सूत उवाच

वक्ष्ये देवादिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
नमस्कृत्वाप्रमेयाय यदुक्त तेन धीमता॥ ५॥

सूतजीने कहा—देवोके आदिदेव, अप्रमेय, प्रभविष्णु विष्णुको नमस्कार कर मैं उन धीमान्‌द्वारा जो कुछ कहा गया है, उसे बताता हूँ॥ ५॥

स्वायम्भुवस्य तु मनो प्रागुक्तो य प्रियव्रत ।
पुत्रस्तस्याभवन् पुत्रा प्रजापतिसमा दश॥ ६ ॥
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमास्तथा।
मेधा मेधातिथिर्हव्य सवन पुत्र एव च॥ ७ ॥
ज्योतिष्मान् दशमस्तेषा महाबलपराक्रम ।
धार्मिको दाननिरत सर्वभूतानुकम्पक ॥ ८ ॥
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणा ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम्॥ ९ ॥
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद् वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान्।
जम्बूद्वीपेश्वर पुत्रमग्नीध्रमकरोन्नृप ॥ १०॥
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथि कृत ।
शाल्मलेश वपुष्मन्त नरेन्द्रमभिषिक्तवान्॥ ११॥

पूर्वमे स्वायम्भुव मनुके जिस प्रियव्रत नामक पुत्रका वर्णन किया गया है उस (प्रियव्रत)-को प्रजापतिके समान दस पुत्र हुए। अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, हव्य, सवन और पुत्र तथा महान् बलशाली एव पराक्रमी, धार्मिक, दानपरायण और सभी प्राणियोपर दया करनेवाला ज्योतिष्मान् नामक दसवाँ पुत्र था। मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र—ये तीनो योगपरायण थे। पूर्वजन्मोका स्मरण करनेवाले इन महाभाग्यशालियो (विरक्तो)-का मन राज्यकार्यमें नहीं लगा। (अत) प्रियव्रतने (अपने अन्य) उन सात पुत्रोको सात द्वीपोमे अभिषिक्त कर दिया। राजाने अग्नीध्र नामक पुत्रको जम्बूद्वीपका स्वामी बनाया। उन्होंने मेधातिथिको प्लक्षद्वीपका राजा बनाया और वपुष्मान्‌को शाल्मलिद्वीपमे राजाके रूपम अभिषिक्त किया॥ ६—११॥

ज्योतिष्मन्त कुशद्वीपे राजान कृतवान् प्रभु ।
द्युतिमन्त च राजान क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्॥ १२॥
शाकद्वीपेश्वर चापि हव्य चक्रे प्रियव्रत ।
पुष्कराधिपति चक्रे सवन च प्रजापति ॥ १३॥
पुष्करे सवनस्यापि महावीत सुतोऽभवत्।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवता वरौ॥ १४॥
महावीत स्मृत वर्षं तस्य नाम्ना महात्मन ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते॥ १५॥
शाकद्वीपेश्वरस्याथ हव्यस्याप्यभवन् सुता ।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचक ।
कुसुमोत्तरोऽथ मोदाकि सप्तम स्यान्महाद्रुम ॥ १६॥

प्रभु (प्रियव्रत)-ने ज्योतिष्मान्‌को कुशद्वीपका राजा बनाया और द्युतिमान्‌को क्रौञ्चद्वीपका राजा बननेका आदेश दिया। प्रजापति प्रियव्रतने हव्यको शाकद्वीपका स्वामी बनाया और

सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति बनाया। पुष्करमें सवनको भी महावीत तथा धातकि नामक दो पुत्र हुए। पुत्रवानोंके पुत्रोंमे ये दोनो ही पुत्र श्रेष्ठ थे। उन महात्मा (महावीत)-के नामसे उस वर्षको महावीतवर्ष कहा गया है और धातकिके भी नामसे धातकिखण्ड कहा जाता है। शाकद्वीपके राजा हव्यको जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर तथा मोदाकि एव सातवाँ महाद्रुम नामक पुत्र हुआ॥ १६॥

जलद जलदस्याथ वर्ष प्रथममुच्यते।
कुमारस्य तु कौमार तृतीय सुकुमारकम्॥१७॥
मणीचक चतुर्थं तु पञ्चम कुसुमोत्तरम्।
मोदाक षष्ठमित्युक्त सप्तम तु महाद्रुमम्॥१८॥
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन्।
कुशल प्रथमस्तेषा द्वितीयस्तु मनोहर ॥१९॥
उष्णस्तृतीय सम्प्रोक्तश्चतुर्थ प्रवर स्मृत ।
अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिश्चैव सप्तम ।
तेषा स्वनामभिर्देशा क्रौञ्चद्वीपाश्रया शुभा ॥२०॥
ज्योतिष्मत कुशद्वीपे सप्तैवासन् महौजस ।
उद्भेदो वेणुमाश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृति ।
षष्ठ प्रभाकरश्चापि सप्तम कपिल स्मृत ॥२१॥

(इन साता पुत्रोके राज्यक्षेत्र इनके नामसे एक-एक वर्ष कहलाये—इसीलिये) जलदका जलद नामक प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमारका कौमार नामक वर्ष, इसी प्रकार तीसरा सुकुमारक (वर्ष), चौथा मणीचक, पाँचवाँ कुसुमोत्तर, छठा मोदाक और सातवाँ महाद्रुम नामक वर्ष है। क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान्को भी पुत्र हुए। उनमें कुशल पहला, मनोहर दूसरा, उष्ण तीसरा पुत्र कहा गया है और चौथा पुत्र प्रवर नामसे जाना जाता है। इसी प्रकार अन्धकार (पाँचवाँ), मुनि (छठा) तथा दुन्दुभि सातवाँ पुत्र था। उनके (अपने ही) नामसे प्रसिद्ध सुन्दर देश क्रौञ्चद्वीपमें स्थित हैं। कुशद्वीपमे ज्योतिष्मान्को महान् ओजस्वी सात पुत्र हुए। उद्भेद, वेणुमान्, अश्वरथ, लम्बन धृति तथा छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है॥ १७—२१॥

स्वनामचिह्नितान् यत्र तथा वर्षाणि सुव्रता ।
ज्ञेयानि सप्त तान्येषु द्वीपेष्वेव नयो मत ॥२२॥
शाल्मलद्वीपनाथस्य सुताश्चासन् वपुष्मत ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सप्तम सुप्रभो मत ॥२३॥
प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथे सुता ।
ज्येष्ठ शान्तभयस्तेषा शिशिरश्च सुखोदय ।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा॥२४॥

हे सुव्रतो। इस (कुशद्वीप)-में उनके नामसे युक्त वर्ष हैं। इसी प्रकार उन अन्य द्वीपोमें भी स्थिति समझनी चाहिये। शाल्मलद्वीपके स्वामी वपुष्मान्के श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत और मानस तथा सातवे सुप्रभ नामक पुत्र थे। प्लक्षद्वीपके राजा मेधातिथिके भी सात पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्र शान्तभय था। इसके अतिरिक्त शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव नामक पुत्र थे॥ २२—२४॥

प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेय शाकद्वीपान्तिकेषु वै।
वर्णाश्रमविभागेन स्वधर्मो मुक्तये द्विजा ॥२५॥
जम्बूद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रास्त्वासन् महाबला ।
द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत॥२६॥
अग्नीध्रस्य किंपुरुषश्चैव तथा हरिरिलावृत ।
नाभि हिरण्वाश्च कुरुर्भद्राश्व केतुमालक ॥२७॥
रम्यो

द्विजो। प्लक्षद्वीप आदिसे लेकर शाकद्वीपतक वर्ण और आश्रमके भेदसे स्वधर्म (पालन)-को मुक्तिका साधन समझना चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो। जम्बूद्वीपके अधिपति अग्नीध्रके भी महान् बलशाली पुत्र थे, उनके नाम सुनो—नाभि किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमालक नामक नौ पुत्र थे॥ २५—२७॥

जम्बूद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामति ।
विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्याय ददौ पुन ॥२८॥
नाभेस्तु दक्षिण वर्षं हिमाह्व प्रददौ पुन ।
हेमकूट ततो वर्षं ददौ किंपुरुषाय तु॥२९॥
तृतीय नैषध वर्षं हरये दत्तवान् पिता।
इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम्॥३०॥
नीलाचलाश्रित वर्षं रम्याय प्रददौ पिता।
श्वेत यदुत्तर वर्षं पित्रा दत्त हिरण्वते॥३१॥
यदुत्तर शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ।
मेरो पूर्वेण यद् वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत्।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥३२॥

जम्बूद्वीपेश्वर महामति उन राजा अग्नीध्रने (जम्बूद्वीपको) नौ भागोंमे बाँटकर न्यायानुसार उन (पुत्रों)-को दे दिया। (अग्नीध्रने) नाभिको दक्षिण दिशामें स्थित हिम नामक वर्ष प्रदान किया। तदनन्तर किंपुरुषको हेमकूट नामक वर्ष दिया। पिता(अग्नीध्र)-ने हरिको तृतीय नैषध नामक वर्ष प्रदान किया और इलावृतको मेरुके मध्यम स्थित इलावृत

(नामक वर्ष) दिया। पिताने रम्यको नीलाचलयुक्त वर्ष प्रदान किया और जो उत्तरमे स्थित श्वेतवर्ष है, उसे हिरण्वान्‌को दिया। शृगवान् पर्वतके उत्तरम स्थित (उत्तरकुरु नामक) वर्ष कुरुको दिया और मेरुके पूर्वमे स्थित (भद्राश्व नामक) वर्ष भद्राश्वको दिया तथा गन्धमादन नामक वर्ष केतुमालको प्रदान किया॥ २८—३२॥

वर्षेष्वेतेषु तान् पुत्रानभिषिच्य नराधिप ।
ससारकष्टता ज्ञात्वा तपस्तेपे वन गत ॥ ३३॥
हिमाह्वय तु यस्यैतन्नाभेरासीन्महात्मन ।
तस्यर्षभोऽभवत् पुत्रो मरुदेव्या महाद्युति ॥ ३४॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताग्रज ।
सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्र भरत पृथिवीपति ।
वानप्रस्थाश्रम गत्वा तपस्तेपे यथाविधि॥ ३५॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसतत ।
ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत्॥ ३६॥

इन वर्षोंमे अपने पुत्रोको अभिषिक्त कर राजा (अग्नीध्र) ससारके कष्टको जानकर तपस्या करनेके लिये वनमे चले गये। जिन महात्मा नाभिके पास हिम नामक वर्ष था, उन्ह मरुदेवीसे महान् द्युतिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभको सौ पुत्रोमे सबसे ज्येष्ठ भरत नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। भरत नामक पुत्रको पृथ्वीके अधिपतिके रूपमे अभिषिक्त कर राजा ऋषभ वानप्रस्थाश्रमका आश्रय लेकर यथाविधि तप करने लगे। तपस्यासे अत्यन्त क्षीण होनेके कारण वे इतने कृश हो गये कि उनके शरीरकी नाडियाँ दीखती थीं। (तप पूत वे) ज्ञानयोगपरायण होकर महापाशुपत[1] हो गये॥ ३३—३६॥

सुमतिर्भरतस्याभूत् पुत्र परमधार्मिक ।
सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत॥ ३७॥
परमेष्ठी सुतस्तस्मात् प्रतीहारस्तदन्वय ।
प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मज ॥ ३८॥
भवस्तस्मादथोद्गीथ प्रस्तावस्तत्सुतोऽभवत्।
पृथुस्ततस्ततो रक्तो रक्तस्यापि गय सुत ॥ ३९॥
नरो गयस्य तनयस्तस्य पुत्रो विराडभूत्।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमास्तस्मादजायत॥ ४०॥

(उन) भरतको भी सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। सुमतिका पुत्र तैजस और उस (तैजस)-से इन्द्रद्युम्न उत्पन्न हुआ। उस इन्द्रद्युम्नका पुत्र परमेष्ठी हुआ और उस (परमेष्ठी)-का पुत्र प्रतीहार हुआ। उस प्रतीहारका जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह प्रतिहर्ताके नामसे विख्यात हुआ। उससे भव, भवसे उद्गीथ तथा उस (उद्गीथ)-से प्रस्ताव नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस (प्रस्ताव)-से पृथु एव पृथुसे रक्त उत्पन्न हुआ और रक्तको भी गय नामक पुत्र हुआ। गयका पुत्र नर और उसका पुत्र विराट् हुआ। उस (विराट्)-का पुत्र महावीर्य और उससे धीमान् (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ॥ ३७—४०॥

महान्तोऽपि ततश्चाभूद् भौवनस्तत्सुतोऽभवत्।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत् सुत ॥ ४१॥

उस (धीमान्)-से महान्त नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र भौवन हुआ। उस (भौवन)-का त्वष्टा हुआ उस (त्वष्टा)-से विरज तथा विरजसे रज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४१॥

शतजिद् रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशत द्विजा ।
तेषा प्रधानो बलवान् विश्वज्योतिरिति स्मृत ॥ ४२॥
आराध्य देव ब्रह्माण क्षेमक नाम पार्थिवम्।
असूत पुत्र धर्मज्ञ महाबाहुमरिंदमम्॥ ४३॥

द्विजो! उस रजस्‌को शतजित् नामक पुत्र हुआ और उसके सौ पुत्र हुए। उनमे जो प्रधान और बलवान् था, वह विश्वज्योति नामसे प्रसिद्ध हुआ। देव ब्रह्माकी आराधनाकर (विश्वज्योतिने) क्षेमक नामके महाबाहु और शत्रुमर्दन तथा धर्मज्ञ राजाको पुत्र-रूपमें उत्पन्न किया॥ ४२-४३॥

एते पुरस्ताद् राजानो महासत्त्वा महौजस ।
एषा वशप्रसूतैश्च भुक्तेय पृथिवी पुरा॥ ४४॥

पूर्वकालमे ये महासत्त्वसम्पन्न और महान् ओजस्वी राजा थे। इनके वशमे उत्पन्न लोगोने प्राचीन कालमे इस पृथ्वीका उपभोग किया॥ ४४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायां पूर्वविभागे अष्टात्रिंशोऽध्याय ॥ ३८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली कूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे अडतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८॥

१-पाशुपत (पशुपति—महादेवको परम ध्येय माननेवाला) व्रत है। इसमें पूर्ण परिनिष्ठित परम विरक्त मनुष्य महापाशुपत कहा जाता है।

उनतालीसवाँ अध्याय

'भू' आदि सात लोकोंका वर्णन, ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिका वर्णन तथा उनका परिमाप, सूर्यरथका वर्णन, पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित इन्द्रादि देवोंकी अमरावती आदि पुरियोंका नाम-निर्देश, सूर्यकी महिमा

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः।
त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शक्यं विस्तरेण तु॥१॥
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्ततः।
जनस्तपश्च सत्यं च लोकास्त्वण्डोद्भवा मताः॥२॥

सूतजीने कहा—हे द्विजोत्तमो! अब मैं आप लोगोंसे संक्षेपमें इस त्रैलोक्यके परिमाणका वर्णन करूँगा, क्योंकि इसका विस्तारसे वर्णन नहीं किया जा सकता। (सृष्टिके आदिमें) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये (सातों) लोक अण्डसे उत्पन्न बताये गये हैं॥१-२॥

सूर्याचन्द्रमसोर्यावत् किरणैरवभासते।
तावद् भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुंगवाः॥३॥
यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात् परिमण्डलात्।
भुवर्लोकोऽपि तावान् स्यान्मण्डलाद् भास्करस्य तु॥४॥
ऊर्ध्वं यन्मण्डलाद् व्योम ध्रुवो यावद् व्यवस्थितः।
स्वर्लोकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः॥५॥
आवहः प्रवहश्चैव तथैवानुवहः परः।
संवहो विवहश्चाथ तदूर्ध्वं स्यात् परावहः॥६॥
तथा परिवहश्चोर्ध्वं वायोर्वै सप्त नेमयः।
भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलं स्थितम्॥७॥
लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम्।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते॥८॥

द्विजश्रेष्ठो! सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंसे जहाँतकका भाग प्रकाशित होता है उतने भागको पुराणमें भूलोक कहा गया है। सूर्यके परिमण्डलसे भूलोकका जितना परिमाण है, उतना ही विस्तार भुवर्लोकका भी सूर्यके मण्डलसे है। आकाशमें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव (तारा) स्थित है वहाँतकके मण्डलको स्वर्लोक कहा जाता है। वहाँ वायुकी नेमियाँ[1] हैं। आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह तथा उसके ऊपर परावह और उसके ऊपर परिवह नामक वायुकी सात नेमियाँ हैं। भूमिसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यका मण्डल स्थित है। सूर्यसे भी एक लाख (योजन) ऊपरके भागमें चन्द्रमाका मण्डल कहा गया है। उससे एक लाख योजनपर स्थित सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है॥३—८॥

द्वे लक्षे ह्युत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः॥९॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणो व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥१०॥
सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर्ग्रहाणामथ मण्डलम्।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते॥११॥
ऋषीणां मण्डलादूर्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।
तत्र धर्मः स भगवान् विष्णुर्नारायणः स्थितः॥१२॥

हे विप्रो! नक्षत्रमण्डलसे उत्तर दो लाख योजनकी दूरीपर बुध है। बुधसे उतने प्रमाणकी दूरीपर शुक्र स्थित है। शुक्रसे उतने ही प्रमाणपर मंगलकी स्थिति है। मंगलसे दो लाख योजनकी दूरीपर देवताओंके पुरोहित बृहस्पति स्थित हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन दूर सूर्यपुत्र शनैश्चर स्थित है। यह ग्रहोंका मण्डल है। ग्रहोंके उस मण्डलसे लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षि-मण्डल प्रकाशित होता है। ऋषियोंके मण्डल (सप्तर्षि-मण्डल)-से एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। ध्रुव सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्रका केन्द्र-रूप है। वहाँ धर्मरूप नारायण भगवान् विष्णु स्थित हैं॥९—१२॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥१३॥

१-चक्र (रथके पहिया)-के ऊपर लोहेकी गोलाकार हाल (परिधि) लगी होती है इसीके कारण चक्र बिखरता नहीं है। इसी गोलाकार हाल (परिधि)-को नेमि कहते हैं।

द्विगुणस्तस्य विस्ताराद् विस्तार शशिन स्मृत ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति॥ १४॥
उद्धृत्य पृथिवीच्छाया निर्मितो मण्डलाकृति ।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थान तृतीय यत् तमोमयम्॥ १५॥
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पति ॥ १६॥
बृहस्पते पादहीनौ वक्रसौरावुभौ स्मृतौ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुध ॥ १७॥
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात् तथा॥ १८॥

सूर्यका व्यास नौ हजार योजन कहा गया है। उसका तीन गुना सूर्यमण्डलका विस्तार है। सूर्यके विस्तारका दो गुना चन्द्रमाका विस्तार कहा गया है। उन दानाके तुल्य राहु उन दोनाके नीचे भ्रमण करता है। पृथ्वीकी छायाको लेकर मण्डलाकारनिर्मित राहुका जो तीसरा बृहत्स्थान है, वह तमोमय है। चन्द्रमाका सोलहवाँ भाग शुक्रका है। शुक्रसे चतुर्थांश कम बृहस्पति (का विस्तार) जानना चाहिय। बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम मगल एव शनि—इन दानाका मण्डल कहा गया है। इन दोनोके मण्डल तथा विस्तारसे चतुर्थांश कम बुधका मण्डल हे। तारा ओर नक्षत्ररूपी[1] जो शरीरधारी हैं, वे सभी मण्डल एव विस्तारसे बुधके तुल्य हैं॥ १३—१८॥

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परात्।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥ १९॥
सर्वावरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु।
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्व न विद्यते॥ २०॥
उपरिष्टात् त्रयस्तेषा ग्रहा ये दूरसर्पिण ।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिण ॥ २१॥
तेभ्योऽधस्ताच्च चत्वार पुनरन्ये महाग्रहा ।
सूर्य सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगा ॥ २२॥
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिमान्।
तदा सर्वग्रहाणा स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति॥ २३॥
विस्तीर्णं मण्डल कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी।
नक्षत्रमण्डल कृत्स्न सोमादूर्ध्व प्रसर्पति॥ २४॥

जो तारा एव नक्षत्र-रूप हैं, वे एक दूसरेसे पाँच, चार, तीन या दो सो योजन कम विस्तारवाले हैं। सभी छोटे-बडे ताराओका मण्डल (ग्रह-पिण्डासे छोटे ओर एक) योजन या आधे योजन परिमाणवाले हें, उनसे छोटा कोई विद्यमान नहीं है। उनसे ऊपर दूरगामी जो शनि बृहस्पति तथा मगल हैं, उन्हे मन्दगतिसे विचरण करनेवाला समझना चाहिये। उनसे नीचे जो दूसरे सूर्य, चन्द्रमा बुध तथा शुक्र—चार महाग्रह हैं, ये शीघ्र गतिवाले हैं। जब सूर्य दक्षिणायनके मार्गम विचरण करता है, तब वह (सूय) सभी ग्रहोके निम्न भागोम भ्रमण करता हे। उसके ऊपर विस्तृत मण्डल बनाकर चन्द्रमा विचरण करता है। सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है॥ १९—२४॥

नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्व तु भार्गव ।
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्व बृहस्पति ॥ २५॥
तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूर्ध्वं तस्मात् सप्तर्षिमण्डलम्।
ऋषीणा चैव सप्ताना ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थित ॥ २६॥

नक्षत्रासे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र शुक्रस ऊपर मगल और मगलसे ऊपर बृहस्पति है। उस बृहस्पतिस भा ऊपर शनैश्चर, उससे ऊपर सप्तर्षि-मण्डल तथा सप्तर्षिमण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित है॥ २५-२६॥

योजनाना सहस्राणि भास्करस्य रथो नव।
ईषादण्डस्तथैव स्याद् द्विगुणो द्विजसत्तमा ॥ २७॥
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु।
योजनाना तु तस्याक्षस्तत्र चक्र प्रतिष्ठितम्॥ २८॥
त्रिनाभिमति पञ्चार षण्णेमिन्यक्षयात्मके।
सवत्सरमये कृत्स्न कालचक्र प्रतिष्ठितम्॥ २९॥
चत्वारिंशत् सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वत ।
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य द्विजोत्तमा ॥ ३०॥

हे श्रेष्ठ द्विजा! भास्करका रथ नौ हजार योजनका है। उसका इषादण्ड[2] उसी प्रकार दो गुना (अथात् अठारह

१-ज्योतिषमे अश्विनी आदि २७ अथवा 'अभिजित्' नामके नक्षत्रको लेकर २८ नक्षत्र प्रसिद्ध हैं—ये ही आकाशमें नक्षत्र नामसे विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त आकाशमें अगणित ज्योतिष्पिण्ड हैं वे ही 'तारा कहे जाते हैं।

२-ईषादण्ड—यह रथका अवयव-विशेष है। यह अवयव-विशेष उन दो लम्बे दण्डोको समझना चाहिये जो रथके आगे होते हैं। इन्हींमें मध्य एक या अपेक्षानुसार एकसे अधिक अश्व जोडे जाते हैं।

हजार योजनका) है। उसका धुरा डेढ करोड सत्तर लाख योजनका है और उसीमे चक्र (रथका पहिया) प्रतिष्ठित है। तीन नाभि[1] पाँच अरे[2] और छ नेमियावाले[3] संवत्सरमय उस अक्षय चक्रमे यह सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। द्विजोत्तमो! सूर्यके रथका दूसरा अक्ष (चक्र या धुरा) चालीस तथा साढे पाँच हजार योजनका है॥ २७—३०॥

अक्षप्रमाणमुभयो प्रमाण तद् युगार्धयो ।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धेन ध्रुवाधारे रथस्य तु॥ ३१॥
द्वितीयेऽक्ष तु तच्चक्र संस्थित मानसाचले।
हयाश्च सप्त छन्दांसि तन्नामानि निबोधत॥ ३२॥

दोनो ओरके युगार्ध (जूआ)-का प्रमाण उस अक्ष (धुर)-के परिमाणके बराबर है। धुरके आधारमे स्थित ह्रस्व अक्ष उस युगार्ध (जूआ)-के बराबर है। द्वितीय अक्षमें स्थित उस (रथ)-का चक्र मानसाचलपर स्थित है। सात छन्द (उस रथके) अश्व हैं। उनके नाम सुनो— ॥ ३१-३२॥

गायत्री च बृहत्युष्णिक् जगती पङ्क्तिरेव च।
अनुष्टुप् त्रिष्टुबित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो हरे ॥ ३३॥
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी।
दक्षिणेन यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे॥ ३४॥
उत्तरेण तु सोमस्य तन्नामानि निबोधत।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात्॥ ३५॥
काष्ठां गतो दक्षिणत क्षिप्तेषुरिव सर्पति।
ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेव प्रजापति ॥ ३६॥

गायत्री बृहती उष्णिक् जगती, पंक्ति, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप्—ये (सात) छन्द सूर्यके (सात) अश्व कहे गये हैं। मानसाचलपर पूर्व दिशामे महेन्द्रकी महापुरी है। दक्षिणमे यमकी पश्चिममे वरुणकी, उत्तरमे सोमकी नगरी हे उनके (भी)नाम सुनो—अमरावती संयमनी, सुखा तथा विभा—ये क्रमसे इन्द्रादिकी महापुरियाँ है। दक्षिण दिशामे स्थित देवोके भी देव प्रजापति (सूर्य) ज्योतिश्चक्रका ग्रहणकर प्रक्षिप्त बाणके समान भ्रमण करते हैं॥ ३३—३६॥

दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकाल व्यवस्थित ।
सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा निशामध्यस्य सम्मुखम्॥ ३७॥
उदयास्तमने चैव सर्वकाल तु सम्मुख।
अशेषासु दिशास्वेव तथैव विदिशासु च॥ ३८॥
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष यथेश्वर ।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन् मेदिनीं द्विजा ॥ ३९॥
दिवाकरकरैरेतत् पूरित भुवनत्रयम्।
त्रैलोक्य कथित सद्भिर्लोकानां मुनिपुंगवा ॥ ४०॥

विप्रेन्द्रो! सात द्वीपोमे दिनके मध्य एव रात्रिके अर्धभागमें सूर्य सदा सम्मुख रहता है, उदय और अस्तके समय भी सदा सम्मुख रहता है। ये ईश्वर (सूर्य) कुम्हारके चक्रके समान सभी दिशाओ तथा विदिशाओमे भ्रमण करते हैं। हे द्विजो! पृथ्वीका त्याग करते हुए ये दिन और रात्रिका निर्माण करते हैं। ये तीनो भुवन सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! विद्वानोने (समस्त) लोकोको त्रैलोक्यके नामसे कहा है॥ ३७—४०॥

आदित्यमूलमखिल त्रिलोक नात्र संशय ।
भवत्यस्मात् जगत् कृत्स्न सदेवासुरमानुषम्॥ ४१॥
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम्।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्न यत्तेज सार्वलौकिकम्॥ ४२॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेव प्रजापति ।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूल परमदैवतम्॥ ४३॥
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिण ।
निर्वहन्ति पद तस्य तदंशा विष्णुमूर्तय ॥ ४४॥

सम्पूर्ण त्रिलोकीके मूल सूर्य ही हैं इसमे संशय नहीं। देवता असुर तथा मनुष्योसे युक्त सम्पूर्ण जगत् इन्हींसे उत्पन्न होता है। रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्रमा एव श्रेष्ठ विप्रो तथा समस्त देवताओका जो तेज है, द्युतिमानोका जो प्रकाश है और समस्त लोकोका जो सम्पूर्ण तेज है (वह सूर्यका ही तेज है)। सूर्य ही सभी लोकोके स्वामी सर्वात्मा प्रजापति महान् देव तीनो लोकोके मूल और परम देवता हैं। इसी प्रकार अधिकारी-रूपमे जो अन्य बारह आदित्य देवता हैं, वे उन्हीं सूर्यके अंश हैं और विष्णुके मूर्तिरूप हैं। वे उन्हींके पद (कार्य)-को सम्पन्न करते हैं॥ ४१—४४॥

१-नाभि—रथके चक्रके बीचका भाग जिसमे चारो ओरसे काष्ठ जुडे रहते हैं।
२-नाभिके चारो ओर जो काष्ठ जुडे रहते हैं वे ही 'अर' या 'आर' कहे जाते हैं।
३-नेमि—रथके चक्रके ऊपरवाली लोहेकी परिधि (हाल)।

सर्वे नमस्यन्ति सहस्रभानुं
गन्धर्वदेवोरगकिंनराद्याः ।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्द्विजेन्द्रा-
श्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम्॥ ४५॥

गन्धर्व, देवता, नाग तथा किंनर आदि सभी हजारों किरणोंवाले सूर्यको नमस्कार करते हैं। श्रेष्ठ द्विज विविध यज्ञोंके द्वारा छन्दोमय एवं ब्रह्मस्वरूप पुरातन सूर्यदेवका यजन करते हैं॥ ४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

सूर्य-रथ तथा द्वादश आदित्योंके नाम, सूर्य-रथके अधिष्ठातृ देवता आदिका वर्णन, सूर्यकी महिमा

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्वसुभिस्तथा।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥ १ ॥
धातार्यमाथ मित्रश्च वरुणः शक्र एव च।
विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च॥ २॥
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च द्वादशैते दिवाकराः ।
आप्याययन्ति वै भानुं वसन्तादिषु वै क्रमात्॥ ३॥
पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः ।
भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च॥ ४॥
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्ते यथाक्रमम्॥ ५॥

सूतजीने कहा—वह (सूर्यदेव) (सभी) देवों, (द्वादश) आदित्यों, (अष्ट) वसुओं गन्धर्वों अप्सराओं, ग्रामणी[1] सर्पों तथा राक्षसोंसहित उस रथपर अधिष्ठित रहते हैं। धाता अर्यमा मित्र वरुण, इन्द्र विवस्वान्, पूषा पर्जन्य अंशु, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। ये क्रमशः वसन्त आदि ऋतुओंमें भानुको आप्यायित करते हैं। पुलस्त्य, पुलह अत्रि वसिष्ठ, अंगिरा, भृगु, भरद्वाज गौतम, कश्यप क्रतु, जमदग्नि तथा कौशिक—ये ब्रह्मवादी मुनि अनेक प्रकारके छन्दों (वैदिक मन्त्रों)-के द्वारा क्रमशः सूर्यदेवकी स्तुति करते हैं॥ १-५॥

रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः ।
रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित् तथा॥ ६ ॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च रथजित् सत्यजित् तथा।
ग्रामण्यो देवदेवस्य कुर्वतेऽभीशुसंग्रहम्॥ ७ ॥
अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा।
सर्पो व्याघ्रस्तथापश्च वातो विद्युद् दिवाकरः ॥ ८ ॥
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च।
राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात्॥ ९ ॥
वासुकिः कङ्कनीरश्च तक्षकः सर्पपुंगवः ।
एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः ॥ १०॥
धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः ।
कम्बलाश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम्॥ ११॥

रथकृत्, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक रथस्वन, वरुण, सुषेण सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि रथजित् और सत्यजित्—ये (बारह) ग्रामणी देवोंके देव सूर्यकी रश्मियोंका संग्रह करते हैं। हे विप्रेन्द्रो! हेति, प्रहेति, पौरुषेय वध सर्प व्याघ्र, अप्, वात विद्युत्, दिवाकर ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत—ये (बारह) श्रेष्ठ राक्षस क्रमसे सूर्यके आगे-आगे चलते हैं। हे द्विजो! वासुकि, कङ्कनीर तक्षक, सर्पपुङ्गव एलापत्र, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कर्कोटक कम्बल तथा अश्वतर—ये (बारह) नाग क्रमशः इन सूर्यदेवका वहन करते हैं॥ ६—११॥

तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूर्विश्वावसुस्तथा।
उग्रसेनो वसुरुचिरर्वावसुरथापरः ॥ १२॥
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः ।
सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायतां वराः ।
गायन्ति विविधैर्गानैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात्॥ १३॥

---

[1] १-अग्रणी (नेता)।

क्रतुस्थलाप्सरावर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमा ॥ १४ ॥
अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा।
अन्या च पूर्वचित्ति स्यादन्या चैव तिलोत्तमा ॥ १५ ॥
ताण्डवैर्विविधैरन वसन्तादिषु वै क्रमात्।
तोषयन्ति महादेव भानुमात्मानमव्ययम् ॥ १६ ॥

द्विजोत्तमो! तुम्बुरु, नारद हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु चित्रसेन, उर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा—ये (बारह) श्रेष्ठ गायन करनेवाले गन्धर्व क्रमश षड्ज आदि स्वराक द्वारा विविध प्रकारके गीतोसे सूर्यके समीप गान करते रहते हैं। हे द्विजोत्तमो! अप्सराआम श्रेष्ठ अप्सरा-क्रतुस्थला, पुञ्जिकस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लाचा, अनुम्लोचा घृताची, विश्वाची, उर्वशी पूर्वचित्ति, अन्या आर तिलात्तमा—ये (बारह) अप्सराएँ क्रमश वसन्त आदि ऋतुआम विविध ताण्डव आदि (नृत्या)-के द्वारा इन अव्यय, आत्मस्वरूप महान् दवता भानुको सतुष्ट करती हैं॥ १२-१६ ॥

एव देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तजसा निधिम् ॥ १७ ॥
ग्रथितै स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैन नृत्यगेयैरुपासते ॥ १८ ॥

इस प्रकार य दवता क्रमश दा-दो महानामे (वसन्त आदि ६ ऋतुआमे) सूर्यम प्रतिष्ठित रहते हुए तजोनिधि सूर्यको अपने तेजसे आप्यायित करते ह। मुनिगण स्वयरचित स्तुतियासे सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं और अप्सराएँ एव गन्धर्व नृत्य तथा गीतोके द्वारा इनकी उपासना करते हैं ॥ १७-१८ ॥

ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसग्रहम्।
सर्पा वहन्ति देवेश यातुधाना प्रयान्ति च ॥ १९ ॥
वालखिल्या नयन्त्यस्त परिवार्योदयाद् रविम्।
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च।
भूतानामशुभ कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिता ॥ २० ॥
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि सानुगा।
विमाने च स्थिता नित्य कामगे वातरहसि ॥ २१ ॥
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजा।
गोपयन्तीह भूतानि सर्वाणीहायुगक्षयात् ॥ २२ ॥
एतेषामेव देवाना यथावीर्य यथातप।
यथायोग यथासत्त्व स एष तपति प्रभु ॥ २३ ॥

ग्रामणी, यक्ष ओर भूतगण (सूर्यदवसे) रश्मियोका सग्रह करते हैं, सर्प देवताआके ईश (सूर्य)-को वहन करते हैं आर राक्षस (उनके आगे-आगे) चलते हैं। बालखिल्य नामक मुनिगण सूर्यको आवृतकर उदयाचलसे अस्ताचलतक ले जाते हैं। (पूर्वम कहे गये) ये (द्वादश आदित्य) तपते, बरसते प्रकाश करते, बहते एव सृष्टि करते हैं। इनका कीर्तन करनपर ये प्राणियाके अशुभ कर्मोको दूर करते हैं। ये नित्य कामचारी तथा वायुके समान गतिवाले विमानपर सूर्यके साथ अपने अनुचरा-सहित आकाशम भ्रमण करत हैं। य क्रमश वषा ताप एव प्रजाको आनन्द प्रदान करते हुए प्रलयपर्यन्त सभी प्राणियाकी रक्षा करते है। ये प्रभु सूर्य इन्हीं दवाके वीर्य, तप योग और सत्त्वके अनुसार (प्राणिमात्रको) ताप देते हैं ॥ १९—२३ ॥

अहोरात्रव्यवस्थानकारण स प्रजापति।
पितृदेवमनुष्यादीन् स सदाप्याययेद् रवि ॥ २४ ॥
तत्र देवो महादेवो भास्वान् साक्षान्महेश्वर।
भासते वेदविदुषा नीलग्रीव सनातन ॥ २५ ॥
स एष देवो भगवान् परमेष्ठी प्रजापति।
स्थान तद् विदुरादित्य वेदज्ञा वेदविग्रहम् ॥ २६ ॥

व प्रजापति (सूर्य) दिन ओर रात्रिकी व्यवस्थाक कारण हैं। ये सूर्य पितरा, देवा तथा मनुष्य आदि सभीको सदा आप्यायित करते हैं। वदज्ञाके (आराध्य) सनातन नीलग्रीव महादेव साक्षात् देव महादव महेश्वर ही सूर्यके रूपम प्रकाशित हाते हैं। वेदज्ञ लाग आदित्य (सूर्य)-का वेदका विग्रह (शरीर ही) मानते हैं और यही वेदविग्रह आदित्य दव भगवान् परमेष्ठी प्रजापति हैं ॥ २४—२६ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या संहितायां पूर्वविभागे चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४० ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकावाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥
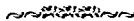
एकतालीसवाँ अध्याय

सूर्यकी प्रधान सात रश्मियोके नाम, इनके द्वारा ग्रहोका आप्यायन, सूर्यकी अन्य हजारो नाडियोका वर्णन तथा उनका कार्य, बारह महीनोके बारह सूर्योके नाम तथा छ ऋतुओमे उनका वर्ण, आठ ग्रहोका वर्णन, सोमके रथका वर्णन, देवोद्वारा चन्द्रकलाओका पान करना, पितरोद्वारा अमावस्याको चन्द्रमाकी कलाका पान, बुध आदि ग्रहोके रथका वर्णन

सूत उवाच

एवमेष महादेवो देवदेव पितामह ।
करोति नियत काल कालात्मा ह्यैश्वरी तनु ॥ १ ॥
तस्य ये रश्मयो विप्रा सर्वलाकप्रदीपका ।
तेषा श्रेष्ठा पुन सप्त रश्मयो ग्रहयोनय ॥ २ ॥

सूतजी बाले—इस प्रकार ये महादेव कालात्मा ऐश्वर्यमय विग्रहवाले देवाधिदेव पितामह (सूर्य) कालका नियमन करते हैं। विप्रो! सभी लोकाका प्रकाशित करनेवाली उनकी जो रश्मियाँ हैं, उनम भी ग्रहाकी यानिरूप सात रश्मियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं॥ १-२ ॥

सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचा पुनश्चान्य सयद्वसुरत पर ॥ ३ ॥
अर्वावसुरिति ख्यात स्वराडन्य प्रकीर्तित ।
सुषुम्न सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम् ॥ ४ ॥
तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्न परिपठ्यते।
हरिकेशस्तु य प्रोक्ता रश्मिर्नक्षत्रपोषक ॥ ५ ॥
विश्वकर्मा तथा रश्मिर्बुध पुष्णाति सर्वदा।
विश्वव्यचास्तु यो रश्मि शुक्र पुष्णाति नित्यदा॥ ६ ॥
सयद्वसुरिति ख्यात स पुष्णाति च लोहितम्।
बृहस्पति प्रपुष्णाति रश्मिरर्वावसु प्रभो ।
शनैश्चर प्रपुष्णाति सप्तमस्तु सुराट् तथा॥ ७ ॥

सुषुम्न हरिकेश विश्वकमा विश्वव्यचा सयद्वसु, अर्वावसु तथा स्वराड्—ये सात रश्मियाँ कही गया हैं। सुषुम नामक सूर्यकी रश्मि चन्द्रमाकी चाँदनीका पुष्ट करती है। यह सुषुम्न रश्मि तिरछे रूपसे ऊपरका जानेवाली कही गयी है। हरिकेश नामक जा रश्मि कही गयी है, वह नक्षत्राका पाषण करनेवाली है। विश्वकमा नामक रश्मि सदा बुध (ग्रह)-का पोषण करती है। विश्वव्यचा नामका जा रश्मि है वह नित्य शुक्र (ग्रह)-का पोषण करती है। सयद्वसु नामसे प्रसिद्ध रश्मि मगलका पोषण करती है और प्रभु सूर्यकी अर्वावसु नामक रश्मि बृहस्पतिका पोषण करती है तथा सातवीं सुराट् (स्वराड्) नामक रश्मि शनैश्चरका पोषण करती है॥ ३—७ ॥

एव सूर्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्रतारका ।
वर्धन्त वर्धिता नित्य नित्यमाप्याययन्ति च॥ ८ ॥
दिव्याना पार्थिवाना च नैशाना चैव सर्वश ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसा तमसा प्रभु ॥ ९ ॥
आदत्ते स तु नाडीना सहस्रेण समतत ।
नादेयाश्चैव सामुद्रान् कूप्याश्चैव सहस्रदृक्।
स्थावराञ्जङ्गमाश्चैव यच्च कुल्यादिक पय ॥ १० ॥
तस्य रश्मिसहस्र तच्छीतवर्षोष्णनिस्रवम्।
तासा चतु शत नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तय ॥ ११ ॥

इस प्रकार सूर्यके प्रभावसे सभी नक्षत्र एव तारे नित्य बढते हैं तथा वृद्धि प्राप्तकर नित्य दूसराको आप्यायित करते हैं। द्युलोक एव पृथ्वीसे सम्बद्ध समस्त तेज-समूह और निशा-सम्बन्धी तम—अन्धकारका नित्य आदान अर्थात् ग्रहण करनेके कारण प्रभु (सूर्य)-को आदित्य कहा जाता है। हजारो नेत्रवाले वे अपनी हजारा नाडिया (किरणा)-द्वारा चारा ओरके नदियो, समुद्रा कूपा स्थावर तथा जङ्गम और नहरा आदिके जलका ग्रहण करते हैं। उनकी हजारों रश्मियाँ शीत वर्षा एव उष्णताकी सृष्टि करनेवाली है और उनमे चार सौ विचित्र मूर्तिस्वरूपा रश्मियाँ वर्षा करती है॥ ८—११ ॥

वन्दनाश्चैव याज्याश्च केतना भूतनास्तथा।
अमृता नाम ता सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जना ॥ १२ ॥
हिमाद्वाहाश्च ता नाड्या रश्मयस्त्रिशत पुन ।
रश्म्या मेघ्यश्च पोष्यश्च ह्लादिन्या हिमसर्जना ।
चन्द्रास्ता नामत सर्वा पीताभा स्युर्गभस्तय ॥ १३ ॥

शुक्राश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा।
शुक्रास्ता नामत सर्वास्त्रिविधा घमसर्जना ॥१४॥

वन्दना, याज्या, केतना और भूतना—ये अमृता नामवाली सभी रश्मियाँ वर्षा करनेवाली हैं। नाडीम्वरूपिणी तीन सौ रश्मियाँ हिमकी सृष्टि करती है। मपी, पौपी तथा ह्रादिनी नामकी रश्मियाँ हिमकी सृष्टि करनवाली हैं। ये सभी रश्मियाँ पीत वर्णकी आर चन्द्रा नामवाली हैं। शुक्रा ककुभ् आर विश्वभृत् नामक सभी रश्मियाका नाम शुक्रा हे। ये तीनो प्रकारकी रश्मियाँ धूपकी सृष्टि करनवाली हे॥१२—१४॥

सम विभर्ति ताभि स मनुष्यपितृदवता ।
मनुष्यानोषधेनेह स्वधया च पितृनपि।
अमृतेन सुरान् सर्वास्त्रिभिस्त्रींस्तर्पयत्यसौ॥१५॥

उनके द्वारा व (सूर्य) समान-रूपमे मनुष्या पितरा तथा देवताआका पोषण करते ह। व (इन किरणाक माध्यमस) मनुष्योका औपधक द्वारा, पितराका स्वधाक द्वारा और देवताआका अमृतके द्वारा—इस प्रकार तीनाका तीन पदार्थोद्वारा सतृप्त करत ह॥१५॥

वसन्ते ग्रैष्मिके चैव शतै स तपति त्रिभि ।
शरद्यपि च वर्षासु चतुर्भि सम्प्रवर्षति।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभि ॥१६॥
वरुणो माघमासे तु सूर्य पूषा तु फाल्गुने।
चैत्र मासि भवेदशो धाता वैशाखतापन ॥१७॥
ज्येष्ठामूल भवदिन्द्र आपाढे सविता रवि ।
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्या भग स्मृत ॥१८॥
पर्जन्योऽश्वयुजि त्वष्टा कार्तिके मासि भास्कर ।
मार्गशीर्षे भवेन्मित्र पौष विष्णु सनातन ॥१९॥

वे (सूय) वसन्त एव ग्रीष्म ऋतुम तीन सो किरणासे तपत ह। शरद् आर वपा ऋतुम चार सा रश्मियाके द्वारा वर्षा करते ह तथा हमन्त एव शिशिर ऋतुम तीन सौ रश्मियास हिम प्रदान करते ह। माघ मासम सूर्यका नाम वरुण होता ह फाल्गुनम वे पूपा कहलात हैं। सूय चैत्र मासम अश वशाखमें धाता ज्यष्ठा-मूल अथात् ज्यष्ठ मासम इन्द्र आपाढम मविता श्रावणम विवस्वान् तथा भाद्रपद मासम भग कह जात ह। (य ही) सूय आश्विनम पजन्य कार्तिकम त्वष्टा मागशीर्षम मित्र और पौपम सनातन विष्णु कहलात हैं॥१६—१९॥

पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि।
पड्भि सहस्रै पूपा तु देवोऽश सप्तभिस्तथा॥२०॥
धाताष्टभि सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतु ।
विवस्वान् दशभि पाति पात्येकादशभिर्भग ॥२१॥
सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत्।
अर्यमा दशभि पाति पर्जन्या नवभिस्तपत्।
पड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वसृक्॥२२॥

वरुण (नामक सूय)-की पाँच हजार रश्मियाँ सूर्यका कार्य सम्पादित करती हैं। इसी प्रकार पूषा छ हजार, अश दव सात हजार धाता आठ हजार शतक्रतु इन्द्र नौ हजार विवस्वान् दस हजार आर भग ग्यारह हजार रश्मियास पालन करते हैं। मित्र नामक सूर्य सात हजार ओर त्वष्टा आठ हजार रश्मियास तपत हैं। अयमा दस हजार रश्मियोंसे पालन करते हैं ओर पर्जन्य नौ हजार रश्मियासे ताप प्रदान करत हैं। विश्वकी सृष्टि करनेवाले विष्णु (नामक सूर्य) छ हजार रश्मियासे तपते हैं॥२०—२२॥

वसन्ते कपिल सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभ ।
श्वतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुर शरदि प्रभु ।
हमन्ते ताम्रवर्ण स्याच्छिशिरे लोहितो रवि ॥२३॥
ओपधीपु बल धत्त स्वधामपि पितृष्वथ।
सूर्योऽमरत्वममृत त्रय त्रिपु नियच्छति॥२४॥

प्रभु सूर्य वसन्त ऋतुम कपिल (भूरे) वर्णके ग्रीष्ममें स्वर्णक समान वर्षाम श्वत शरद्मे पाण्डुर (सफेद-मिश्रित पीले) रगक हेमन्तम ताँबक समान वर्णवाले आर शिशिरमें सूर्य लोहित (लाल) वणके होते ह। सूर्य आपधियाम बलका आधान करते हैं पितरोको स्वधा और दवताआको अमरत्व—इस प्रकार तीनाका तीन पदार्थ प्रदान करते हैं॥२३-२४॥

अन्य चाष्टौ ग्रहा ज्ञया सूर्येणाधिष्ठिता द्विजा ।
चन्द्रमा सोमपुत्रश्च शुक्रश्चैव बृहस्पति ।
भौमो मन्दस्तथा राहु कतुमानपि चाष्टम ॥२५॥
सर्वे ध्रुवे निबद्धा व ग्रहास्त वातरश्मिभि ।
भ्राम्यमाणा यथायाग भ्रमन्त्यनुदिवाकरम्॥२[illegible]॥

अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरिता द्विजा ।
यस्माद् वहति तान् वायु प्रवहस्तेन स स्मृत ॥ २७ ॥
रथस्त्रिचक्र सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिन ।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन निशाकर ॥ २८ ॥
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रविर्यथा।
ह्रासवृद्धी च विप्रेन्द्रा ध्रुवाधाराणि सर्वदा ॥ २९ ॥
स सोम शुक्लपक्षे तु भास्करे परत स्थिते।
आपूर्यते परस्यान्त सतत दिवसक्रमात् ॥ ३० ॥

हे द्विजो! अन्य आठ ग्रहोको सूर्यसे अधिष्ठित जानना चाहिये। चन्द्रमा चन्द्रमाका पुत्र बुध, शुक्र, बृहस्पति, मगल, शनि, राहु तथा केतु नामक आठवाँ ग्रह है। वातरश्मियाके द्वारा ध्रुवमे आबद्ध वे सभी ग्रह (अपनी कक्षामे) भ्रमण करते हुए यथास्थान सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। द्विजो! वायुचक्रसे प्रेरित (ग्रहगण) अलातचक्रके समान भ्रमण करते हैं। चूँकि वायु उनका वहन करती हे इसलिये उसे 'प्रवह' कहा जाता है। सोमका रथ तीन चक्रावाला है। उसक वाम और दक्षिण भागम कुन्द पुष्पके समान वर्णवाले दस अश्व जुते हैं इसी रथसे निशाकर चन्द्रमा सूर्यके समान (अपनी) कक्षामे स्थित होकर नक्षत्राके मध्य परिभ्रमण करता है। हे विप्रन्द्रो! चन्द्रमाकी रश्मियोकी क्रमश ह्रास और वृद्धि होती रहती हे। दिनके क्रमानुसार शुक्लपक्षम चन्द्रमाके पर-भागम स्थित सूर्य साम (चन्द्र)-को निरन्तर आपूरित करता हे ॥ २५—३० ॥

क्षीणायित सुरै सोममाप्याययति नित्यदा।
एकेन रश्मिना विप्रा सुषुम्नाख्येन भास्कर ॥ ३१ ॥
एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनु ।
पौर्णमास्या स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात् ॥ ३२ ॥
सम्पूर्णमर्धमासेन त सोमममृतात्मकम्।
पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजना ॥ ३३ ॥
तत पञ्चदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके।
अपराह्ने पितृगणा जघन्य पर्युपासते ॥ ३४ ॥
पिबन्ति द्विकल काल शिष्टा तस्य कला तु या।
सुधामृतमयीं पुण्या तामिन्दोरमृतात्मिकाम् ॥ ३५ ॥

हे विप्रो! देवताओद्वारा (अमृत) पान किये जानेके कारण क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य सुषुम्न नामक एक रश्मि (किरण)-से नित्य आप्यायित करते है। सूर्यके तेजसे चन्द्रमाका यह (क्षीण) शरीर पुष्ट होता है अतएव दिनके क्रमानुसार पूर्णिमाको वह चन्द्रमा सम्पूर्ण रूपसे दिखायी देता है। हे विप्रो! देवता उस अमृतस्वरूप सम्पूर्ण सोमका आधे महीनेतक पान करते हैं, क्योकि वे (देवता) अमृतका भोजन करनेवाले होते हैं। तदनन्तर पन्द्रहवे भागके किंचित् कलात्मक भाग शेष बचनपर अपराह्णम पितृगण उस अन्तिम भागका सेवन करते हैं। पितृगण चन्द्रमाकी अवशिष्ट अमृतस्वरूपिणी अमृतमयी तथा पवित्र सुधा नामक कलाका दो लव (काल-विशेष)-तक पान करते हैं ॥ ३१—३५ ॥

नि सृत तदमावास्या गभस्तिभ्य स्वधामृतम्।
मासतृप्तिमवाप्याग्र्या पितर सन्ति निर्वृता ॥ ३६ ॥
न सोमस्य विनाश स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते।
एव सूर्यनिमित्तस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमा ॥ ३७ ॥
सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभि ।
वारिजै स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वत ॥ ३८ ॥

अमावस्याके दिन (चन्द्रमाकी) किरणोसे निकलनवाले स्वधा नामक अमृतका पान करनेसे पितर महीनेभरके लिये तृप्ति प्राप्त कर स्वस्थ हो जात हैं। दवताआके द्वारा (चन्द्रमाके) अमृतका पान किये जानपर सोमका विनाश नहीं होता। श्रेष्ठ जनो! इस प्रकार सूर्यके कारण चन्द्रमाक क्षय एव वृद्धिका क्रम चलता हे। सोमके पुत्र (बुध)-के रथमे वायुके समान वेगवाले जलसे उत्पन्न आठ घोडे जुते रहते हैं। वह बुध उसी रथसे सर्वत्र गमन करता है ॥ ३६—३८ ॥

शुक्रस्य भूमिजैरश्वै स्यन्दनो दशभिर्वृत ।
अष्टाभिश्चाथ भौमस्य रथो हैम सुशोभन ॥ ३९ ॥
बृहस्पतेरथाष्टाश्व स्यन्दना हेमनिर्मित ।
रथस्तमोमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मित ।
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा षड्भिर्हयैर्वृत ॥ ४० ॥

शुक्रका रथ भूमिसे उत्पन्न दस घोडासे और मगलका स्वर्णमय अत्यन्त सुन्दर रथ आठ घाडोसे युक्त रहता है। बृहस्पतिका भी आठ घोडावाला रथ स्वर्णसे निर्मित है। शनिका लोहेसे बना हुआ रथ तमामय ह और आठ घाडावाला है। सूर्यके शत्रु राहु और कतुके रथ छ -छ अश्वोसे युक्त हैं ॥ ३९-४० ॥

एते महाग्रहाणा वै समाख्याता रथा नव।
सर्वे ध्रुवे महाभागा नियद्धा यातरश्मिभि ॥४१॥
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे वद्धान्यशेषत ।
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येन सर्वाण्यनिलरश्मिभि ॥४२॥

इस प्रकार महाग्रहोके नौ रथाका वर्णन किया गया। ये सभी महाभाग (ग्रह) वायुकी रश्मियाक द्वारा ध्रुवम आबद्ध हैं। सभी ग्रह, नक्षत्र और तारागण भी ध्रुवमे पूर्णत नियद्ध है। वायुकी रश्मियाद्वारा परिचालित हाकर ये सभी परिभ्रमण करते रहते है ॥४१-४२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकचत्वारिंशोऽध्याय ॥४१॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकावाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

मह आदि सात लोको तथा सात पातालोका और वहाँके निवासियोका वर्णन, वैष्णवी तथा शाम्भवी शक्तियोका वर्णन

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोक कोटियोजनविस्तृत ।
कल्पाधिकारिणस्तत्र सस्थिता द्विजपुगवा ॥१॥
जनलोको महर्लोकात् तथा कोटिद्वयात्मक ।
सनन्दनादयस्तत्र सस्थिता ब्रह्मण सुता ॥२॥
जनलोकात् तपालोक कोटित्रयसमन्वित ।
वैराजास्तत्र वै देवा स्थिता दाहविवर्जिता ॥३॥
प्राजापत्यात् सत्यलोक कोटिषट्कन सयुत ।
अपुनर्मारकास्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृत ॥४॥
अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वतोमुख ।
आस्ते स योगिभिर्नित्य पीत्वा योगामृत परम्॥५॥

सूतजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठो! ध्रुवके ऊपर एक कराड योजन विस्तारवाला महर्लोक है। वहाँ कल्पके अधिकारीगण निवास करते हैं। इसी प्रकार महर्लोकमे ऊपर दो कराड योजनवाला जनलोक है। वहाँ ब्रह्माके (मानस) पुत्र सनन्दन आदि रहते हैं। जनलाकसे ऊपर तपोलाक तीन कराड योजनका है। वहाँ दाहरहित[1] वैराज नामक देवता रहते हैं। प्राजापत्यलोक अर्थात् तपोलोकके ऊपर छ करोड याजनका सत्यलोक है। वहाँ अपुनर्मारक (जन्म-मरणसे रहित जन) रहते हैं। वह ब्रह्मलोक कहा गया है। यहाँ परम योगामृतका पानकर विश्वतामुख विश्वात्मा लाकगुरु ब्रह्मा योगियाके साथ नित्य निवास करते हैं॥१—५॥

विशन्ति यतय शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिण ।
योगिनस्तापसा सिद्धा जापका परमेष्ठिनम्॥६॥
द्वार तद्योगिनामेक गच्छता परम पदम्।
तत्र गत्वा न शाचन्ति स विष्णु स च शकर ॥७॥

शान्त स्वभाववाले यतिगण, नैष्ठिक ब्रह्मचारी योगी, तपस्वी, सिद्ध तथा परमेष्ठीका जप करनेवाल यहाँ प्रवेश करत हैं। परमपदका प्राप्त करनेवाले योगियाका वह एकमात्र द्वार है। वहाँ पहुँचकर (लोग) शोक नहीं करते। वही (यहाँ निवास करनेवाला) विष्णु है, शकर है॥६-७॥

सूर्यकोटिप्रतीकाश पुर तस्य दुरासदम्।
न मे वर्णयितु शक्य ज्वालामालासमाकुलम्॥८॥
तत्र नारायणस्यापि भवन ब्रह्मण पुर।
शेते तत्र हरि श्रीमान् मायी मायामय पर ॥९॥
स विष्णुलोक कथित पुनरावृत्तिवर्जित ।
यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम्॥१०॥
ऊर्ध्वं तद् ब्रह्मसदनात् पुर ज्योतिर्मय शुभम्।
वह्निना च परिक्षिप्त तत्रास्ते भगवान् भव ॥११॥
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमाना मनीषिभि ।
योगिभि शतसाहस्त्रैर्भूतै रुद्रैश्च सवृत ॥१२॥

करोडा सूर्यके समान उन (ब्रह्मा)-का वह पुर अत्यन्त

१-दाह-तापसे रहित (दैहिक दैविक भौतिक तापासे सर्वथा मुक्त)।

दुर्गम है। अग्निशिखाकी मालाओसे समन्वित उस पुरका मैं वर्णन नहीं कर सकता। ब्रह्माके उस पुरमे नारायणका भी भवन है। वहाँ मायामय परम मायावान् श्रीमान् हरि शयन करते हैं। पुनरागमनसे रहित वह विष्णुलोक कहा गया है। जो जनार्दनके शरणागत हैं, वे महात्मा वहाँ जाते हैं। उस ब्रह्म-सदनसे ऊपर ज्योतिर्मय, अग्निसे व्याप्त कल्याणकारी पुर है। वहाँ सैकडो, हजारो योगिया, भूतो तथा रुद्रासे परिवृत, मनीषियोके द्वारा ध्यान किये जाते हुए वे भगवान् भव महादेव देवी पार्वतीके साथ निवास करते हैं॥ ८—१२॥

तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मचारिण।
महादेवपरा शान्तास्तापसा ब्रह्मवादिन॥ १३॥
निर्ममा निरहकारा कामक्रोधविवर्जिता।
द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोक स वै स्मृत॥ १४॥

वहाँ वे ही जात हैं जो सयमी ब्राह्मण हैं, ब्रह्मचारी हैं, महादेवपरायण हैं, शान्त तपस्वी और ब्रह्मवादी हैं, ममत्वरहित अहकारशून्य तथा काम-क्रोधसे रहित हैं। ब्रह्मज्ञानसम्पन्न ये (व्यक्ति इस लोकका) दर्शन करते हैं। उस लोकको रुद्रलोक कहा गया है॥ १३-१४॥

एते सप्त महालोका पृथिव्या परिकीर्तिता।
महातलादयश्चाध पाताला सन्ति वै द्विजा॥ १५॥
महातल च पाताल सर्वरत्नोपशोभितम्।
प्रासादैर्विविधै शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम्॥ १६॥
अनन्तेन च सयुक्त मुचुकुन्देन धीमता।
नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना॥ १७॥
शैल रसातल विप्रा शार्कर हि तलातलम्।
पीत सुतलमित्युक्त नितल विद्रुमप्रभम्।
सित हि वितल प्रोक्त तल चैव सितेतरम्॥ १८॥

हे द्विजो! पृथ्वीके ये सात महालोक कहे गये हैं। (पृथ्वीके) अधोभागमे महातल आदि (सात) पाताल हैं। महातल नामक पाताल सभी रत्नासे सुशाभित और अनक प्रकारके महलो और शुभ्र देवमन्दिरासे सम्पन्न है। वह (महातल) अनन्त (नाग), धीमान् मुचुकुन्द एव पाताल-स्वर्गवासी राजा बलिसे युक्त है। हे विप्रा! रसातल शैलमय है तलातल शर्करामय है। सुतल पीत वर्णका कहा गया है। नितल विद्रुम (मूँगे)-क समान वर्णवाला, वितल श्वेत वर्णका और तल कृष्ण वर्णका कहा गया है॥ १५—१८॥

सुपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्।
रसातलमिति ख्यात तथान्यैश्च निषेवितम्॥ १९॥
विरोचनहिरण्याक्षतक्षकाद्यैश्च सेवितम्।
तलातलमिति ख्यात सर्वशोभासमन्वितम्॥ २०॥
वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमै।
पूर्वदेवै समाकीर्णं सुतल च तथापरै॥ २१॥
नितल यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा।
महान्तकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च॥ २२॥
वितल चैव विख्यात कम्बलाहीन्द्रसेवितम्।
महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण वै तथा॥ २३॥
शकुकर्णेन सम्भिन्न तथा नमुचिपूर्वकै।
तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तल चैव सुशोभनम्॥ २४॥

हे मुनिश्रेष्ठो! शुभ रसातल गरुड, वासुकि (नाग) तथा अन्य (महात्माओ)-से सेवित कहा गया है। सभी शोभाओसे युक्त तलातल विरोचन, हिरण्याक्ष तथा तक्षक आदिके द्वारा सेवित कहा गया है। सुतल वैनतेय आदि पक्षी, कालनेमि प्रभृति दूसरे श्रेष्ठ असुरासे समाकीर्ण है। तारक, अग्निमुख आदि यवन और महान् अन्तक आदि नागा तथा असुर प्रह्लादसे नितल नामक पाताल सेवित है। वितल नामक प्रसिद्ध पाताल कम्बल नामक नागराज, महाजम्भ और वीर हयग्रीवसे सेवित है। तल नामक पाताल शकुकर्णसे युक्त तथा प्रधान नमुचि आदि दैत्यो और अन्य विविध प्रकारके नागासे सुशोभित है॥ १९—२४॥

तेषामधस्तान्नरका मायाद्या परिकीर्तिता।
पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितु क्षमा॥ २५॥
पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनु।
कालाग्निरुद्रो योगात्मा नारसिंहोऽपि माधव॥ २६॥
योऽनन्त पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दन।
तदाधारमिद सर्वं स कालाग्निमपाश्रित॥ २७॥
तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनोत्थित।
विषज्वालामयोऽन्तेऽसौ जगत् सहरति स्वयम्॥ २८॥

उन (पातालों)-के नीचे माया आदि नरक कहे गये है। उनम पापी लोग यातना पात हैं। उनका वर्णन नहीं किया

जा सकता। पाताललोकके नीचे शेष नामवाली वैष्णवी मूर्ति विद्यमान है। जिसे कालाग्नि रुद्र, योगात्मा, नारसिंह, माधव अनन्त देव और नागरूपी जनार्दन भी कहा जाता है। यह सब उन्हींके आधारपर (टिका) है और वे कालाग्निके आश्रित हैं। उनमें प्रविष्ट होकर और उनके मुखसे प्रकट हुई विषकी ज्वालारूप होकर महायोगी काल स्वयं अन्तमें जगत्का संहार करते हैं॥ २५—२८॥

सहस्रमायोऽप्रतिमः संहर्ता शंकरोद्भवः।
तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः॥ २९॥

हजारों मायावाला एवं शंकरसे उत्पन्न अद्वितीय (काल) संहार करनेवाला है। वह शम्भुकी तामसी मूर्ति है। काल ही लोकोंका संहार करता है॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

सात महाद्वीपों और सात महासागरोंका परिमाण, जम्बूद्वीप तथा मेरुपर्वतकी स्थिति, भारत तथा किंपुरुष आदि वर्षोंका वर्णन, वर्षपर्वतोंकी स्थिति, जम्बूद्वीपके नाम पड़नेका कारण, जम्बूद्वीपके नदी एवं पर्वतोंका और वहाँके निवासियोंका वर्णन

सूत उवाच

एतद् ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्दशविधं महत्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम्॥ १॥
जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मल एव च।
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥ २॥
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः।
द्वीपाद् द्वीपो महानुक्तः सागरादपि सागरः॥ ३॥
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः।
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः॥ ४॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समासतः॥ ५॥

...यह सात द्वीपोंसे परिवेष्टित है॥ १—५॥

जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः।
तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः॥ ६॥
चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ ७॥
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥ ८॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥ ९॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथा परे।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥ १०॥

दस योजन कम विस्तारवाले हैं। इनकी ऊँचाई दो हजार योजनकी है और उनका विस्तार भी उतना ही है॥ ६—१०॥

भारत दक्षिण वर्ष तत किपुरुष स्मृतम्।
हरिवर्ष तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजा ॥ ११ ॥
रम्यक चोत्तर वर्ष तस्यैवानुहिरण्मयम्।
उत्तरा कुरवश्चैव यथैते भरतास्तथा॥ १२ ॥

ह द्विजो! मेरुक दक्षिण भागम प्रथम भारतवर्ष तदनन्तर किपुरुष वर्ष और फिर हरिवर्ष तथा अन्य भी वैसे ही स्थित हैं। उसके उत्तरम रम्यक हिरण्मय एव उत्तरकुरु वर्ष स्थित है। ये सभी भारतवर्षके समान हे॥ ११-१२॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषा द्विजसत्तमा ।
इलावृत च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रित ॥ १३ ॥
मेरोश्चतुर्दिश तत्र नवसाहस्रविस्तृतम्।
इलावृत महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वता ।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिता ॥ १४ ॥
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादन ।
विपुल पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृत ॥ १५ ॥

द्विजश्रेष्ठो! इनमसे प्रत्यक नौ हजार याजनका है। इनके मध्यम इलावृत वर्ष है और इसके मध्यम उन्नत मरु पर्वत है। ह महाभागो! वहाँ मेरुके चारा आर नो हजार याजनका इलावृत नामक वर्ष हे। वहाँ चार पर्वत हैं। मेरके व्यासक रूपम विरचित इनकी ऊँचाई दस हजार याजन है। इसके पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमे गन्धमादन, पश्चिम पार्श्वमे विपुल और उत्तरम सुपार्श्व नामक पर्वत कहा गया है॥ १३—१५॥

कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षय ॥ १६ ॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्या फलानि च।
पतन्ति भूभृत पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वत ॥ १७ ॥
रसेन तस्या प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै।
सरित् प्रवर्तते चापि पीयते तत्र वासिभि ॥ १८ ॥
न स्वेदो न च दौर्गन्ध्य न जरा नेन्द्रियक्षय ।
तत्पानात् सुस्थमनसा नराणा तत्र जायत॥ १९ ॥
तीरमृत् तत्र सम्प्राप्य वायुना सुविशोषिता।
जाम्बूनदाख्य भवति सुवर्ण सिद्धभूषणम्॥ २० ॥

उसमे (सुपार्श्व पर्वतम) कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट वृक्ष हैं। हे महर्षियो! यही जम्बूवृक्ष जम्बूद्वीप नाम पडनेका कारण है। उस जम्बूवृक्षके फल महान् हाथीके प्रमाणवाले होते हैं। पर्वतके पृष्ठपर गिरनेसे वे विशीर्ण हो जाते हैं। वहाँ उनके रससे प्रवाहित होनेवाली नदी जम्बूनदीके नामसे विख्यात है। वहाँके निवासी उस रसका पान किया करते हैं। वहाँ उस रस (जल)-का पान करनेसे स्वस्थ मनवाल मनुष्याको न स्वेद (पसीना) होता है, न उनमें दुर्गन्धि होती है न वृद्धावस्था आती हे ओर न ही उनकी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। उस (जम्बू नदी)-के तटपर स्थित मिट्टीके रसका वायु शोषण कर लता है जिससे जाम्बूनद नामक सुवर्ण होता है सिद्धगण उसीका आभूषण धारण करते है॥ १६—२०॥

भद्राश्व पूर्वता मेरो कतुमालश्च पश्चिमे।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्य इलावृतम्॥ २१ ॥
वन चैत्ररथ पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम्।
वैभ्राज पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्॥ २२ ॥
अरुणोद महाभद्रमसितोद च मानसम्।
सरास्येतानि चत्वारि देवभाग्यानि सर्वदा॥ २३ ॥
सितान्तश्च कुमुद्वाश्च कुररी माल्यवास्तथा।
वैकङ्को मणिशैलश्च ऋक्षवाश्चाचलोत्तमा ॥ २४ ॥
महानीलोऽथ रुचक सबिन्दुर्मन्दरस्तथा।
वेणुमाश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वत ।
इत्येत देवरचिता सिद्धावासा प्रकीर्तिता ॥ २५ ॥

मेरक पूर्वमे भद्राश्व, पश्चिमम केतुमाल नामक दो वर्ष हैं। मुनिश्रेष्ठो! उन दोनाके मध्य इलावृत वर्ष हे। पूर्वम चैत्ररथ नामक वन दक्षिणम गन्धमादन, पश्चिमम वैभ्राज और उत्तरमे सवितृवन स्थित है। उन (वना)-म अरुणोद महाभद्र असिताद आर मानस नामक—ये चार सरावर हैं। ये सदा दवताओद्वारा उपभोग किये जाने याग्य है। सितान्त, कुमुद्वान्, कुररी माल्यवान्, वैकङ्क मणिशेल ऋक्षवान्, महानील, रुचक, सबिन्दु, मन्दर वणुमान्, मघ, निषध एव दवपवत—इन सभी श्रेष्ठ पर्वताकी रचना दवताओद्वारा हुई हे और इन्हे सिद्धाका आवास कहा जाता है॥ २१—२५॥

अरुणोदस्य सरस पूर्वत केसराचल ।
त्रिकूटशिखरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ॥ २६ ॥
निषधा वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिख शुभ ।
समूलो वसुधारश्च कुरवश्चैव सानुमान् ॥ २७ ॥
ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वत ।
एकशृङ्गो महाशैलो गजशैल पिशाचक ॥ २८ ॥
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तम ।
इत्येते देवचरिता उत्कटा पर्वतोत्तमा ॥ २९ ॥

अरुणोद सरोवरके पूर्वमे केसराचल, त्रिकूटशिखर पतङ्ग, रुचक, निषध, वसुधार, कलिग, शुभ त्रिशिख, समूल, वसुधार कुरव, सानुमान्, ताम्रात, विशाल, कुमुद वेणुपर्वत, एकशृग, महाशैल, गजशैल पिशाचक पञ्चशैल कैलास और पर्वतोमे उत्तम हिमवान्—ये सभी देवताओद्वारा सेवित अत्यन्त श्रेष्ठ पर्वत हैं ॥ २६—२९ ॥

महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचल ।
शिखिवासश्च वैदूर्य कपिला गन्धमादन ॥ ३० ॥
जारुधिश्च सुगन्धिश्च श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तम ।
सुपार्श्वश्च सुपक्षश्च कङ्क कपिल एव च ॥ ३१ ॥
पिञ्जरो भद्रशैलश्च सुरसश्च महाबल ।
अञ्जनो मधुमांस्तद्वत् कुमुदा मुकुटस्तथा ॥ ३२ ॥
सहस्रशिखरश्चैव पाण्डुर कृष्ण एव च ।
पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलोदक ॥ ३३ ॥
सुषेण पुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च ।
एते पर्वतराजान सिद्धगन्धर्वसेविता ॥ ३४ ॥

महाभद्र सरोवरके दक्षिणमें—केसराचल शिखिवास वैदूर्य कपिल गन्धमादन जारुधि, सुगन्धि, उत्तम पर्वत श्रीशृग सुपार्श्व, सुपक्ष कङ्क, कपिल, पिञ्जर, भद्रशैल, सुरस महाबल, अञ्जन मधुमान्, कुमुद, मुकुट, सहस्रशिखर, पाण्डुर, कृष्ण पारिजात महाशैल, कपिलोदक, सुषेण पुण्डरीक और महामेघ—ये सभी पर्वतराज सिद्धों और गन्धर्वोसे सेवित हैं ॥ ३०—३४ ॥

असितोदस्य सरस पश्चिमे केसराचल ।
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हसो नागस्तथा पर ॥ ३५ ॥
कालाञ्जन शुक्रशैला नील कमल एव च ।
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा ।
मयूर कपिलश्चैव महाकपिल एव च ॥ ३६ ॥
इत्येते देवगन्धर्वसिद्धसङ्घनिषेविता ।
सरसो मानसस्येह उत्तरे केसराचल ॥ ३७ ॥

असितोद सरोवरके पश्चिमम केसराचल, शङ्खकूट, वृषभ, हस, नाग, कालाञ्जन शुक्रशैल नील कमल, पुष्पक, सुमेघ, वाराह, विरजा मयूर, कपिल तथा महाकपिल—ये सभी (पर्वत) देव, गन्धर्व और सिद्धोंके समूहद्वारा सेवित हैं। मानसरोवरके उत्तरमे केसराचल नामक पर्वत है ॥ ३५—३७ ॥

एतेषा शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्य सरासि च वनानि च ॥ ३८ ॥
वसन्ति तत्र मुनय सिद्धाश्च ब्रह्मभाविता ।
प्रसन्ना शान्तरजस सर्वदु खविवर्जिता ॥ ३९ ॥

इन प्रधान शैलोंके मध्य क्रमानुसार घाटियाँ सरोवर और अनेक वन हैं। वहाँ प्रसन्न, रजोगुणरहित और सभी दु खोंसे विनिर्मुक्त ब्रह्मवादी मुनि और सिद्ध निवास करते हैं॥ ३८-३९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४३ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमे तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवॉ अध्याय

ब्रह्मा, शकर, इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओकी पुरियोका तथा वहॉके निवासियोका वर्णन, गङ्गाकी चार धाराओ और आठ मर्यादापर्वतोका वर्णन

सूत उवाच

चतुर्दशसहस्राणि योजनाना महापुरी।
मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधस ॥ १ ॥
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावन ।
उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशकरै ॥ २ ॥
तत्र देवेश्वरेशान विश्वात्मान प्रजापतिम्।
सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि ॥ ३ ॥
स सिद्धैर्ऋषिगन्धर्वै पूज्यमान सुरैरपि।
समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत्परमामृतम् ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—देवाधिदव ब्रह्माकी मेरु पर्वतके ऊपर चौदह हजार योजन विस्तारवाली महापुरी विख्यात है। वहॉं विश्वभावन विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा रहते हैं। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और शकर उनकी उपासना करते रहते हैं। वहॉं भगवान् सनत्कुमार नित्य ही ईशान देवेश्वर विश्वात्मा प्रजापतिकी उपासना करते हैं। वे (सनत्कुमार) योगात्मा सिद्ध ऋषि गन्धर्व तथा देवताओंसे पूजित होते हुए परम अमृतका पान करते हैं और वहॉं निवास करते हैं॥ १—४॥

तत्र देवादिदेवस्य शम्भोरमिततेजस ।
दीप्तमायतन शुभ्र पुरस्ताद् ब्रह्मण स्थितम् ॥ ५ ॥
दिव्यकान्तिसमायुक्त चतुर्द्वार सुशोभनम्।
महर्षिगणसकीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम् ॥ ६ ॥
देव्या सह महादेव शशाङ्कार्काग्निलोचन ।
रमते तत्र विश्वेश प्रमथै प्रमथेश्वर ॥ ७ ॥

वहॉं देवाके आदिदेव अमित तेजस्वी शकरका शुभ्र एव दीप्तियुक्त मन्दिर है, जो ब्रह्माके (आयतनके) सामने स्थित है। (यह मन्दिर) दिव्य कान्तिसे सुसम्पन्न, चार द्वारासे युक्त, अत्यन्त सुन्दर, महर्षियासे पूर्ण और ब्रह्मज्ञानियाद्वारा सेवित है। चन्द्रमा सूर्य एव अग्निस्वरूप (तीन) नेत्रोंवाले प्रमथेश्वर विश्वेश महादेव देवी (पार्वती) एव प्रमथगणाके साथ वहॉं रमण करते हैं॥ ५—७॥

तत्र वेदविद शान्ता मुनयो ब्रह्मचारिण ।
पूजयन्ति महादेव तापसा सत्यवादिन ॥ ८ ॥
तेषा साक्षान्महादेवो मुनीना ब्रह्मवादिनाम्।
गृह्णाति पूजा शिरसा पार्वत्या परमेश्वर ॥ ९ ॥
तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी।
नाम्नामरावती पूर्वे सर्वशोभासमन्विता ॥ १० ॥

वहॉं वेदज्ञ शान्तचित्त मुनि, ब्रह्मचारी, तपस्वी और सत्यवादी लोग महादेवकी पूजा करते हैं। इन ब्रह्मवादी मुनियाकी पूजाको पार्वतीके साथ साक्षात् परमेश्वर महादेव सिरसे आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं। वहीं श्रेष्ठ पर्वत (मेरु)-पर पूर्वकी ओर इन्द्रकी सभी शोभाआसे समन्वित अमरावती नामकी श्रेष्ठ पुरी है॥ ८—१०॥

तमिन्द्रमप्सर सङ्घा गन्धर्वा गीततत्परा ।
उपासते सहस्राक्ष देवास्तत्र सहस्रश ॥ ११ ॥
ये धार्मिका वेदविदो यागहोमपरायणा ।
तेषा तत् परम स्थान देवानामपि दुर्लभम् ॥ १२ ॥
तस्य दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजस ।
तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता ॥ १३ ॥
तत्रास्ते भगवान् वह्निर्भ्राजमान स्वतेजसा।
जपिना होमिना स्थान दानवाना दुरासदम् ॥ १४ ॥

अप्सराओका समूह, गान-परायण गन्धर्व तथा हजारो देवता हजार नेत्रावाले इन्द्रकी वहॉं उपासना करते हे। जो धार्मिक ह, वेदज्ञ है, यज्ञ एव होमपरायण है, उनका वह परम स्थान देवताओके लिये भी दुर्लभ है। उसक दक्षिण दिशामे अमित तेजस्वी अग्निकी दिव्य आश्चर्योंसे युक्त तेजोवती नामकी पुरी स्थित है। भगवान् वह्नि अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए वहॉं रहत है। जप करनेवाला तथा होम करनेवालोका वह स्थान दानवाके लिये दुष्प्राप्य है॥ ११—१४॥

दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी।
नाम्ना सयमनी दिव्या सिद्धगन्धर्वसेविता॥ १५॥
तत्र वेवस्वत देव देवाद्या पर्युपासते।
स्थान तत् सत्यसधाना लोके पुण्यकृता नृणाम्॥ १६॥
तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतेस्तु महात्मन।
रक्षोवती नाम पुरी राक्षसै सर्वतो वृता॥ १७॥
तत्र त निर्ऋति देव राक्षसा पर्युपासत।
गच्छन्ति ता धर्मरता ये वै तामसवृत्तय॥ १८॥
पश्चिमे पर्वतवरे वरुणस्य महापुरी।
नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसयुता॥ १९॥

श्रेष्ठ (मेरु) पर्वतपर दक्षिण भागम यमराजकी भी सिद्धो तथा गन्धर्वोसे सेवित सयमनी नामक दिव्य महापुरी है। वहाँ देवादिगण विवस्वान्[1] (सूर्य) देवकी उपासना करते रहते ह। वह स्थान ससारम पुण्य करनेवाले सत्यव्रती मनुष्याका है। उसके पश्चिम भागमे महात्मा निर्ऋतिकी रक्षावती नामक पुरी है, जो चारो ओरसे राक्षसास घिरी है। वहाँ राक्षस निर्ऋतिदवकी उपासना करते है तथा जो तमोगुणी जीविकावाले होते हुए भी धार्मिक होते ह, वे उसी पुरीमे जाते हैं। पश्चिममे इस श्रेष्ठ पवतपर सभी प्रकारकी कामनाओकी समृद्धिसे समन्वित वरुणकी शुद्धवती नामकी पुण्य महापुरी है॥ १५—१९॥

तत्राप्सरोगणै सिद्धै सव्यमानोऽमराधिप।
आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति यऽम्बुदा।
तीर्थयात्रापरा नित्य ये च लाकेऽघमर्षिण॥ २०॥

यहाँ अप्सराओं तथा सिद्धासे सेवित अमराधिप राजा वरुण रहते हैं। यहाँ व ही मनुष्य जाते हे जा ससारम नित्य जलदान करते हैं, तीर्थयात्रा-परायण रहते हैं और जो अघमर्षण किया करते है॥ २०॥

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी।
नाम्ना गन्धवती पुण्या तत्रास्तऽसौ प्रभञ्जन॥ २१॥
अप्सरोगणगन्धर्वै सव्यमानोऽमरप्रभु।
प्राणायामपरा मर्त्या स्थान तद् यान्ति शाश्वतम्॥ २२॥

उस (शुद्धवती पुरी)-के उत्तरभागम वायु देवताकी भी गन्धवती नामवाली पवित्र महापुरी स्थित है। वहाँ प्रभञ्जन (वायुदेवता) निवास करते हैं। देवोके स्वामी इन वायुदेवताकी अप्सराओके समूह और गन्धर्व सवा करते रहते हैं। जो प्राणायाम-परायण मनुष्य हैं वे इस शाश्वत स्थानम जाते हैं॥ २१-२२॥

तस्या पूर्वेण दिग्भाग सोमस्य परमा पुरी।
नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तत्र सोमो विराजते॥ २३॥
तत्र ये भोगनिरता स्वधर्म पर्युपासते।
तेषा तद् रचित स्थान नानाभोगसमन्वितम्॥ २४॥
तस्याश्च पूर्वदिग्भागे शकरस्य महापुरी।
नाम्ना यशोवती पुण्या सर्वेषा सुदुरासदा॥ २५॥
तत्रेशानस्य भवन रुद्रविष्णुतनो शुभम्।
गणेश्वरस्य विपुल तत्रास्ते स गणैर्वृत॥ २६॥
तत्र भोगाभिलिप्सूना भक्ताना परमेष्ठिन।
निवास कल्पित पूर्व देवदेवेन शूलिना॥ २७॥
विष्णुपादाद् विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्।
समन्ताद् ब्रह्मण पुर्यां गङ्गा पतति वै दिव॥ २८॥

उसके पूर्व दिशामे सोम (चन्द्रमा)-की कान्तिमती नामवाली शुभ श्रेष्ठ पुरी है, वहाँ चन्द्रमा विराजमान रहते हैं, जो भोगपरायण रहते हुए अपने धर्मका पालन करते हैं उन्हींक लिय वहाँपर अनेक प्रकारक भोगासे युक्त स्थान बना[2] है। उसके पूर्वकी ओर (भगवान् शकरकी यशोवती नामक पवित्र महापुरी है, जा सभीक लिय दुर्लभ है, वहाँ रुद्र एव विष्णुमय शरीरवाले गणाधिपति ईशान (शकर)-का विशाल भवन है। गणासे आवृत (शकरदेव) उसम रहते हैं। पूवकालम देवोंके देव शूल धारण करनवाले शकरने वहाँपर परमेष्ठीके भोगाभिलाषी भक्ताका निवास-स्थान बनाया था। विष्णुके चरणस निकली हुई गङ्गा चन्द्रमण्डलको आप्लावित कर स्वर्गस ब्रह्मपुराक चारा आर गिरती हैं॥ २३—२८॥

सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा ह्यभवद् द्विजा।
सीता चालकनन्दा च सुचक्षुर्भद्रनामिका॥ २९॥

१-विवस्वान्—विव-रश्मि किरणम युक्त सूर्य।

२-कुछ लाग एस हात ह जा धर्मनिष्ठ हात हैं पर जन्म-जन्मान्तरक सम्कारवश उनम मृत्युक समय भोगवासना शेष रह जाती है ऐसे लाग चन्द्रलोकको प्राप्त करत हैं।

पूर्वेण सीता शैलात् तु शैल यात्यन्तरिक्षत ।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति चार्णवम्॥ ३०॥

द्विजो! वे वहाँ गिरकर सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु एव भद्रा नामसे चार भागोमे (दिशाओमे) विभक्त हो गयी हैं। अन्तरिक्षसे निकलकर सीता नामक गङ्गा एक शैलसे दूसरे शैलपर जाती हुई पूर्व दिशामें भद्राश्ववर्षमे प्रवाहित होती हुई समुद्रमे जाती हैं॥ २९-३०॥

तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम्।
प्रयाति सागर भित्त्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमा ॥ ३१॥
सुचक्षु पश्चिमगिरीनतीत्य सकलास्तथा।
पश्चिम केतुमालाख्य वर्ष गत्वैति चार्णवम्॥ ३२॥
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तराश्च तथा कुरून्।
अतीत्य चोत्तराम्भोधि समभ्येति महर्षय ॥ ३३॥
आनीलनिषधायामौ माल्यवान् गन्धमादन ।
तयोर्मध्यगतो मेरु कर्णिकाकारसस्थित ॥ ३४॥
भारता केतुमालाश्च भद्राश्वा कुरवस्तथा।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यत ॥ ३५॥

हे द्विजोत्तमो! इसी प्रकार अलकनन्दा नामक गङ्गा दक्षिण दिशासे भारतवर्षमे आनेके बाद सात भागोम विभक्त होकर सागरमें जाती हैं। ऐसे ही सुचक्षु नामक गङ्गा पश्चिम दिशाके सभी पर्वतोका अतिक्रमण करके पश्चिम दिशाके केतुमाल नामक वर्षमे प्रवाहित होकर समुद्रमें जाती हैं। महर्षियो! भद्रा नामक गङ्गा उत्तर दिशाके पर्वतों और उत्तरकुरुवर्षका अतिक्रमणकर उत्तर समुद्रमे मिलती हैं। माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत नील तथा निषध पर्वतोके समान विस्तारवाल हैं। उन दोनाके मध्यमें कर्णिकाके आकारके समान मेरु (पर्वत) स्थित है। इन मर्यादापर्वतोके बाहरकी ओर ससाररूपी कमलके पत्रोके रूपमे भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष स्थित हैं॥ ३१—३५॥

जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ।
दक्षिणोत्तरमायामावानीलनिषधायतौ ॥ ३६॥
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ३७॥
निषध पारियात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ।
मेरो पश्चिमदिग्भागे यथापूर्वौ तथा स्थितौ॥ ३८॥
त्रिशृङ्गो जारुधिस्तद्वदुत्तरे वर्षपर्वतौ।
पूर्वपश्चायतावेतौ अर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३९॥

जठर एव देवकूट नामक दो मर्यादापर्वत नील और निषध पर्वतोतक दक्षिणोत्तर-दिशामे फैले हुए हैं। गन्धमादन और कैलास नामक दोना पर्वत पूर्व-पश्चिममे फैले हुए हैं, (ये) अस्सी योजन विस्तारवाले हैं और समुद्रके अदरतक स्थित हैं। निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत मेरुकी पश्चिम दिशामें पूर्वके पर्वतोंके समान स्थित हैं। इसी प्रकार उत्तरमे त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक दो वर्षपर्वत हैं। य पूर्व-पश्चिमम फैले हुए हैं तथा समुद्रके भीतरतक स्थित हैं॥ ३६—३९॥

मर्यादापर्वता प्रोक्ता अष्टाविह मया द्विजा ।
जठराद्या स्थिता मेरोश्चतुर्दिक्षु महर्षय ॥४०॥

हे द्विजो! मैने यहाँ इन आठ मर्यादापर्वतोको बतलाया। हे महर्षियो! मेरुके चारा दिशाआमे जठर आदि (वर्षपर्वत) स्थित हैं॥ ४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

केतुमाल, भद्राश्व, रम्यकवर्ष तथा वहाँके निवासियोका वर्णन, हरिवर्षमे स्थित विष्णुके विमानका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनमे भारतवर्षके कुलपर्वतो, महानदियो, जनपदो ओर वहाँके निवासियोका वर्णन, भारतवर्षमे चार युगोकी स्थितिका प्रतिपादन

सूत उवाच

कतुमाले नरा काला सर्वे पनसभोजना ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभा जीवन्ति च वर्षायुतम्॥ १॥
भद्राश्वे पुरुषा शुक्ला स्त्रियश्चन्द्रांशुसनिभा ।
दश वर्षसहस्राणि जीवन्ते आम्रभोजना ॥ २॥
रम्यक पुरुषा नार्यो रमन्ते रजतप्रभा ।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजना ॥ ३॥
हिरणमये हिरण्याभा सर्वे च लकुचाशना ।
एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव॥ ४॥

सूतजीने कहा—केतुमालवर्षक पुरुष कृष्णवर्णके होते हैं ओर सभी पनस (कटहल)-का भोजन करनेवाले हाते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ कमलपत्रके समान वणवाली होती हैं। ये सभी दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। भद्राश्ववर्षके पुरुष शुक्ल वर्णक होत हैं ओर स्त्रियाँ चन्द्रमाकी किरणा (चाँदनी)-के समान वणवाली हाती हैं। य सब आमका आहार करत हैं तथा दस हजार वपतक जीवित रहते हैं। रम्यकवर्षके पुरुष और स्त्रियाँ—सभी चाँदीकी प्रभाक समान दिखायी देत हैं। ये सत्त्वभावम स्थित रहनवाले हात हैं तथा वटवृक्षक फलका भोजन करत हैं और ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षोतक जीवित रहत हैं। हिरण्मयवपमें सानकी आभावाल निवास करत हैं सभी लकुच (बडहरक फल)-का भाजन करत हैं और बारह हजार पाँच सौ वपतक सभी स्त्री-पुरुष उसी प्रकार जीवित रहत हैं जेसे कि दवलोकमें स्थित हों॥ १—४॥

त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति कुरुवर्षे तु श्यामाङ्गा क्षीरभोजना ॥ ५॥
सर्वे ते मैथुनाज्जाता नित्य सुखनिषेविन ।
चन्द्रद्वीप महादव यजन्ति सतत शिवम्॥ ६॥
तथा किम्पुरुष विप्रा मानवा हमसनिभा ।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजना ॥ ७॥
यजन्ति सतत देव चतुर्मूर्ति चतुर्मुखम्।
ध्याने मन समाधाय सादर भक्तिसयुता ॥ ८॥
तथा च हरिवर्षे तु महारजतसनिभा ।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिन ॥ ९॥
तत्र नारायण देव विश्वयोनि सनातनम्।
उपासते सदा विष्णु मानवा विष्णुभाविता ॥ १०॥

कुरुवर्षम दुग्धाहार करनेवाले श्यामवर्णक (स्त्री पुरुष) चौदह हजार पाँच सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। वे सभी मैथुनसे उत्पन्न होते है, नित्य सुखोपभोगी होते हे और चन्द्रद्वीपमे महादेव शिवकी निरन्तर उपासना करते ह। हे विप्रो! इसी प्रकार किंपुरुषवर्षके मनुष्य स्वर्ण-वर्णके समान होते हैं। पाकड वृक्षक फलोका भोजन करनेवाले ये दस हजार वर्षतक जीवित रहते ह। ये भक्तियुक्त होकर आदरसहित मनको ध्यानमें समाधिस्थकर चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देव (ब्रह्मा)-की निरन्तर उपासना करते रहते हैं। इसी प्रकार हरिवर्षमे रहनेवाले महारजत[1] (स्वर्ण)-के समान आभावाले होते हैं। वे दस हजार वर्षतक जीवित रहते ह। ईखके रसका भोजन करते हैं। यहाँ ये मनुष्य विष्णुकी भावनासे भावित होकर विश्वयोनि नारायणदेव विष्णुकी सदा उपासना करते हैं॥ ५—१०॥

तत्र चन्द्रप्रभ शुभ्र शुद्धस्फटिकनिर्मितम्।
विमान वासुदेवस्य पारिजातवनाश्रितम्॥ ११॥
चतुर्द्वारमनौपम्य चतुस्तोरणसयुतम्।
प्राकारैर्दशभिर्युक्त दुराधर्षं सुदुर्गमम्॥ १२॥
स्फाटिकैर्मण्डपैर्युक्त देवराजगृहोपमम्।
स्वर्णस्तम्भसहस्रैश्च सर्वत समलकृतम्॥ १३॥
हेमसोपानसयुक्त नानारत्नोपशोभितम्।
दिव्यसिहासनोपेत सर्वशोभासमन्वितम्॥ १४॥
सरोभि स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम्।
नारायणपरै शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परै ॥ १५॥

१-महारजत शब्द स्वर्णका पर्याय है। (अमरकोश २। ९। ९०)

योगिभिश्च समाकीर्णं ध्यायद्भि पुरुष हरिम्।
स्तुवद्भि सतत मन्त्रैर्नमस्यद्भिश्च माधवम्॥१६॥

वहाँ पारिजातक वनमे शुद्ध स्फटिकका बना हुआ चन्द्रमाकी शुभ्र कान्तिके समान कान्तिवाला वासुदेवका एक विमान है। चार द्वारो, चार तोरणोसे समन्वित तथा दस प्राकारोसे युक्त (वह विमान) अनुपम दुराधर्ष और दुर्गम है। यह स्फटिकके मण्डपोसे युक्त देवराजके भवनके समान है तथा सभी ओरसे हजारो स्वर्ण-स्तम्भोसे अलकृत है। इसमे सोनेकी सीढियाँ हैं। यह दिव्य सिहासनोसे समन्वित, सभी प्रकारकी शोभाओसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके रत्नोसे सुशोभित है। स्वादिष्ट जलवाले सरोवरो और नदियोसे शोभित है। वह स्थान नारायण-परायण, पवित्र, वेदाध्ययनमे तत्पर, पुरुष हरिका ध्यान करनेवाले लोगो तथा निरन्तर मन्त्रोद्वारा माधवकी स्तुति करनेवाले और उन्हें नमस्कार करनेवाले योगियोसे व्याप्त रहता है॥ १२—१६॥

तत्र देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजस ।
राजान सर्वकाल तु महिमान प्रकुर्वते॥१७॥
गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोरमा ।
स्त्रियो यौवनशालिन्य सदा मण्डनतत्परा ॥१८॥
इलावृते पद्मवर्णा जम्बूफलरसाशिन ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणा वै स्थिरायुष ॥१९॥
भारते तु स्त्रिय पुसो नानावर्णा प्रकीर्तिता ।
नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वत।
परमायु स्मृत तेषा शत वर्षाणि सुव्रता ॥२०॥
नानाहाराश्च जीवन्ति पुण्यपापनिमित्तत ।
नवयोजनसाहस्र वर्षमेतत् प्रकीर्तितम्।
कर्मभूमिरिय विप्रा नराणामधिकारिणाम्॥ २१॥

वहाँ राजा लोग देवोके आदिदेव अमित तेजस्वी विष्णुकी महिमाका सभी कालोमे कीर्तन करते रहते हैं[1]। शृगार करनेमे तत्पर युवावस्थावाली एव विलासिनी मनोरम स्त्रियाँ यहाँ सदा नृत्य एव गान करती रहती हैं। इलावृतवर्षमे कमलके समान वर्णवाले जामुनके फलके रसका सेवन करनेवाले तथा तेरह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले व्यक्ति निवास करते हैं। भारतवर्षके स्त्री और पुरुष अनेक वर्णके बताये गये हैं। ये विविध प्रकारके देवताओकी आराधनामे निरत रहते हैं और अनेक प्रकारके कर्मोंको करते हैं। हे सुव्रतो! इनकी परम आयु सौ वर्षकी कही गयी है। अनेक प्रकारका आहार करनेवाले वे अपने पुण्य-पापके निमित्तसे जीवित रहते हैं। यह वर्ष नौ हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है। हे विप्रो! यह अधिकारी पुरुषोकी कर्मभूमि है॥ १७—२१॥

महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वता ॥२२॥
इन्द्रद्युम्न कशेरुमास्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुण ॥२३॥
अय तु नवमस्तेषा द्वीप सागरसवृत ।
योजनाना सहस्र तु द्वीपोऽय दक्षिणोत्तर ॥२४॥
पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्रास्तथैव च॥२५॥

महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये सात कुलपर्वत यहाँ हैं। इन्द्रद्युम्न कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप सौम्य गन्धर्व तथा वारुण—(इन आठ द्वीपोके अतिरिक्त) यह नवाँ द्वीप सागरसे घिरा हुआ है। यह द्वीप दक्षिणोत्तरमे एक हजार योजनमे फैला हुआ है। उसके पूर्वमे किरात पश्चिममे यवन और मध्यमे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र रहते है॥ २२—२५॥

इज्यायुद्धवाणिज्याभिर्वर्तयन्त्यत्र मानवा ।
स्रवन्ते पावना नद्य पर्वतेभ्यो विनि सृता ॥२६॥
शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहू ॥२७॥
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी लोहिता चैव हिमवत्पादनि सृता ॥२८॥
वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतघ्नी त्रिदिवा तथा।
पर्णाशा वन्दना चैव सदानीरा मनोरमा॥२९॥

---

[1] १-देवताओके विमान एक अति श्रेष्ठ प्रासादके समान ही सभी सुविधाओसे युक्त होते हैं—जैसे पुष्पक विमान कपिलके द्वारा देवहूतिको दिया गया कामग विमान आदि।

चर्मण्वती तथा दूर्या विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिप्रु स्वशिल्पापि तथा पारियात्राश्रया स्मृता ॥ ३०॥

यहाँके मनुष्य यज्ञ, युद्ध और वाणिज्यद्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं। (यहाँ) पर्वतासे निकली हुई पवित्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं। शतद्रु, चन्द्रभागा सरयू, यमुना इरावती, वितस्ता, विपाशा देविका कुहू, गोमती धूतपापा, बाहुदा दृषद्वती कौशिकी तथा लोहिता—ये सभी नदियाँ हिमालयकी तलहटीसे निकली हैं। वेदस्मृति वेदवती, व्रतघ्नी, त्रिदिवा पर्णाशा वन्दना सदानीरा, मनोरमा, चर्मण्वती, दूर्या विदिशा, वेत्रवती, शिप्रु तथा स्वशिल्पा—ये नदियाँ पारियात्र पर्वतका आश्रय लेनेवाली कही गयी हैं॥ २६-३०॥

नर्मदा सुरसा शोणा दशार्णा च महानदी।
मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी च पिशाचिका॥ ३१॥
चित्रोत्पला विपाशा च मञ्जुला वालुवाहिनी।
ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३२॥
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी।
वेण्या वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती॥ ३३॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ ३४॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वर्णा च मत्सरी।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च द्विजोत्तमाः।
दक्षिणापथगा नद्यः सह्यपादविनिःसृताः ॥ ३५॥

नर्मदा सुरसा शोणा दशार्णा महानदी मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी पिशाचिका चित्रोत्पला विपाशा मञ्जुला तथा वालुवाहिनी नामक ये ऋक्षवान् पर्वतके नीचेके भागसे निकली हुई नदियाँ मनुष्योंके सभी पापोंका हरण करनेवाली हैं। तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा, महानदी वेण्या वैतरणी बलाका कुमुद्वती तोया महागौरी दुर्गा और अन्तःशिला नामकी ये नदियाँ विन्ध्यके निचले भागसे निकली हैं और शुभ हैं तथा पवित्र जलवाली हैं। हे द्विजोत्तमो! गोदावरी भीमरथी कृष्णा वर्णा मत्सरी तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथा कावेरी—ये नदियाँ दक्षिणकी ओर जानेवाली तथा सह्यपर्वतके पादमूलसे निकली हैं॥ ३१—३५॥

ऋतुमाला ताम्रपर्णी पुष्पवत्युत्पलावती।
मलयाद्रिसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः ॥ ३६॥
ऋषिकुल्या त्रिसामा च मन्दगा मन्दगामिनी।
रूपा पालासिनी चैव ऋषिका वशकारिणी।
शुक्तिमत्पादसञ्जाताः सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३७॥

ऋतुमाला ताम्रपर्णी, पुष्पवती और उत्पलावती—मलय पर्वतसे निकली ये सभी नदियाँ शीतल जलवाली कही गयी हैं। ऋषिकुल्या त्रिसामा मन्दगा, मन्दगामिनी, रूपा पालासिनी ऋषिका तथा वशकारिणी—ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतके निम्न भागसे उत्पन्न हैं और मनुष्योंके सभी पापोंको हरण करनेवाली हैं॥ ३६-३७॥

आसां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ द्विजपुङ्गवाः।
सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु॥ ३८॥
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः ॥ ३९॥
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः।
तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथार्बुदाः ॥ ४०॥
मालकाः मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणाः शाल्वाः कल्पनिवासिनः ॥ ४१॥
मद्रा रामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकास्तथैव च।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा॥ ४२॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इन सभी (महानदियों)-की सैकड़ों नदियाँ और उपनदियाँ हैं, जो सभी पापोंको हरनेवाली तथा स्नान दान आदि कर्मोंमें पवित्र हैं। उनमें ये कुरु पाञ्चाल मध्यदेश आदिके लोग पूर्वके देशोंमें रहनेवाले कामरूपके निवासी पुण्ड्र कलिङ्ग तथा मगध देशके लोग, समस्त दाक्षिणात्य तथा (इनके अतिरिक्त) सौराष्ट्रवासी शूद्र आभीर अर्बुद (पर्वतीय जाति विशेषके लोग) मालक मालव पारियात्रमें रहनेवाले सौवीर सैन्धव हूण, शाल्व कल्पनिवासी मद्र राम अम्बष्ठ तथा पारसी लोग इन नदियोंके किनारे रहते हैं और इन (नदियों)-का जल पीते हैं॥ ३८—४२॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्॥ ४३॥

कवियों (मनीषियों)-ने भारतवर्षमें—कृत (सत्य) त्रेता द्वापर तथा कलि—इन चार युगोंको बताया है। ये (युग) अन्यत्र कहीं नहीं होते॥ ४३॥

यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षय ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेग क्षुद्भय न च॥ ४४॥
स्वस्था प्रजा निरातङ्का सर्वदु खविवर्जिता ।
रमन्ति विविधैर्भावै सर्वाश्च स्थिरयौवना ॥ ४५॥

हे महर्षियो। किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमे न शोक है, न परिश्रम है, न उद्वेग है और न भूखका भय है। (वहाँ) सारी प्रजा स्वस्थ, आतङ्करहित तथा सभी प्रकारके दु खोसे मुक्त रहती है। सभी स्थिर यौवनवाले होते हैं और अनेक प्रकारके भावासे रमण करते रहते हैं॥ ४४-४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहिताया पूर्वविभागे पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४५ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४५ ॥

छियालीसवॉ अध्याय

विभिन्न पर्वतोपर स्थित देवताओके पुरोका वर्णन तथा वहाँके निवासियो, नदियो, सरोवरो ओर भवनोका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनका उपसहार

सूत उवाच

हेमकूटगिरे शृङ्गे महाकूटै सुशोभनम्।
स्फाटिक देवदेवस्य विमान परमेष्ठिन ॥ १॥
अथ देवादिदेवस्य भूतेशस्य त्रिशूलिन ।
देवा सिद्धगणा यक्षा पूजा नित्य प्रकुर्वते॥ २॥
स देवो गिरिश सार्ध महादेव्या महेश्वर ।
भूतै परिवृतो नित्य भाति तत्र पिनाकधृक्॥ ३॥

सूतजी बोले—हेमकूट पर्वतके शिखरपर बडे-बडे गुबदासे सुशोभित स्फटिकसे बना हुआ देवाधिदेव परमेष्ठी (शिव)-का एक विमान है। वहाँ देवता सिद्धगण तथा यक्ष देवोके आदिदेव भूतेश त्रिशूलीकी नित्य पूजा करते हैं। वे पिनाक धारण करनेवाले गिरिश महेश्वर महादेवीके साथ भूतगणोसे आवृत होते हुए नित्य वहाँ सुशोभित होते हैं॥ १—३॥

विभक्तचारुशिखर कैलासो यत्र पर्वत ।
निवास कोटियक्षाणा कुबेरस्य च धीमत ।
तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतन महत्॥ ४॥
मन्दाकिनी तत्र दिव्या रम्या सुविमलोदका।
नदी नानाविधै पद्मैरनेकै समलकृता॥ ५॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनरै ।
उपस्पृष्टजला नित्य सुपुण्या सुमनोरमा॥ ६॥

जहाँ अलग-अलग सुन्दर शिखरावाला कैलास पर्वत है तथा जहाँ करोडो यक्षो तथा बुद्धिमान् कुबेरका निवास है वहींपर देवाधिदेव शकरका विशाल मन्दिर है। वहाँ नाना प्रकारके अनेक कमलासे अलकृत अत्यन्त स्वच्छ जलवाली दिव्य एव रमणीय मन्दाकिनी नदी है। देवता दानव गन्धर्व यक्ष, राक्षस और किंनर उस अत्यन्त पवित्र तथा मनोरम नदीके जलका नित्य स्पर्श (स्नान आचमन आदि) करते हैं॥ ४—६॥

अन्याश्च नद्य शतश स्वर्णपद्मैरलकृता ।
तासा कूलेषु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिन ।
देवर्षिगणजुष्टानि तथा नारायणस्य च॥ ७ ॥
सितान्तशिखरे चापि पारिजातवन शुभम्।
तत्र शक्रस्य विपुल भवन रत्नमण्डितम्।
स्फाटिकस्तम्भसयुक्त हेमगोपुरसयुतम्॥ ८ ॥
तत्राथ देवदेवस्य विष्णोर्विश्वामरशितु ।
सुपुण्य भवन रम्य सर्वरत्नोपशोभितम्॥ ९ ॥
तत्र नारायण श्रीमान् लक्ष्म्या सह जगत्पति ।
आस्ते सर्वामरश्रेष्ठ पूज्यमान सनातन ॥ १०॥

अन्य भी स्वर्णकमलासे सुशोभित वहाँ सैकडो नदियाँ हैं। इनके तटोपर देवताओ तथा ऋषिगणोसे सेवित परमेष्ठी देव और नारायणके मन्दिर हैं। (हेमकूटके) अन्तिम शुभ शिखरपर पारिजात वृक्षोका सुन्दर वन है। वहाँ स्फटिकोसे बने हुए खम्भोसे युक्त स्वर्णसे बना गोपुरवाला इन्द्रका रत्नमण्डित एक विशाल भवन है। वहाँपर समस्त देवताओके

नियामक देवाधिदेव विष्णुका एक अत्यन्त पवित्र और रमणीय भवन है, जो सभी रत्नासे सुशोभित है। वहाँ ससारके स्वामी, सभी देवताओमे श्रेष्ठ, पूज्यमान सनातन श्रीमान् नारायण लक्ष्मीके साथ निवास करते हैं॥ ७—१०॥

तथा च वसुधारे तु वसूना रत्नमण्डितम्।
स्थानानामष्टक पुण्य दुराधर्षं सुरद्विषाम्॥ ११॥
रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणा महात्मनाम्।
सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि तु॥ १२॥
तत्र हैम चतुर्द्वार वज्रनीलादिमण्डितम्।
सुपुण्य सुमहत् स्थान ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ॥ १३॥

इसी प्रकार वसुधार नामक पर्वतपर (आठ) वसुआके रत्नासे मण्डित, देवताआसे द्वेष करनेवाले असुरोके लिये अपराजेय पवित्र आठ स्थान है। रत्नधार नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सिद्धाके आवाससे युक्त महात्मा सप्तर्षियाके पवित्र सात आश्रम हैं। वहाँ अव्यक्तजन्मा ब्रह्माका सोनेसे बना हुआ चार द्वारोवाला हीरे एव नील मणि आदिसे मण्डित अत्यन्त पवित्र विशाल स्थान है॥ ११—१३॥

तत्र देवर्षयो विप्रा सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे।
उपासते सदा देव पितामहमज परम्॥ १४॥
स तै सम्पूजितो नित्य देव्या सह चतुर्मुख।
आस्ते हिताय लोकाना शान्ताना परमा गति॥ १५॥

हे विप्रो! वहाँ देवर्षि, ब्रह्मर्षि सिद्ध तथा दूसरे लोग अजन्मा परम पितामह देवकी सदा उपासना करते हैं। उनके द्वारा नित्य भलीभाँति पूजित शान्तचित्तवालाके परम गतिरूप वे चतुर्मुख ब्रह्मा देवीके साथ लोकाके कल्याणके लिये वहाँ रहते हैं॥ १४-१५॥

अथैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलकृतम्।
स्वच्छामृतजल पुण्य सुगन्ध सुमहत् सर॥ १६॥
जैगीषव्याश्रम तत्र योगीन्द्रैरुपशोभितम्।
तत्रासौ भगवान् नित्यमास्ते शिष्यै समावृत।
प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभि॥ १७॥

(उस हेमकूटके) एक ऊँचे शिखरपर महापद्मासे अलकृत सुगन्धित स्वच्छ एव अमृतके समान जलवाला एक पवित्र विशाल तालाब है। वहाँपर (महर्षि) जैगीषव्यका योगीन्द्राम सुशोभित एक आश्रम है। शान्त दोषावाले महान् ब्रह्मविज्ञानी एव महात्मास्वरूप शिष्यासे आवृत भगवान् (जैगीषव्य) वहाँ नित्य निवास करते हैं॥ १६-१७॥

शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिक कृष्ण एव च।
सुमना वेदनादश्च शिष्यास्तस्य प्रधानत॥ १८॥
सर्वे योगरता शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहा।
उपासते महावीर्या ब्रह्मविद्यापरायणा॥ १९॥
तेषामनुग्रहार्थाय यतीना शान्तचेतसाम्।
सानिध्य कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वर॥ २०॥

शङ्ख, मनोहर, कौशिक, कृष्ण, सुमना तथा वेदनाद उनके प्रधान शिष्य हैं। योगपरायण, शान्त भस्मसे उपलिप्त शरीरवाले, महावीर्य (उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न) तथा ब्रह्मविद्यापरायण वे सभी (भगवान्‌की) उपासना करते हैं। उन शान्तचित्त यतियोंपर अनुग्रह करनेके लिये महेश्वर देवीके साथ (उस स्थानपर) निवास करते हैं॥ १८—२०॥

अन्यानि चाश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे।
मुनीना युक्तमनसा सरासि सरितस्तथा॥ २१॥
तेषु योगरता विप्रा जापका सयतेन्द्रिया।
ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्परा॥ २२॥
आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्तान्तरमास्थितम्।
ध्यायन्ति देवमीशान येन सर्वमिद ततम्॥ २३॥
सुमेघे वासवस्थान सहस्रादित्यसनिभम्।
तत्रास्ते भगवानिन्द्र शच्या सह सुरेश्वर॥ २४॥
गजशैले तु दुर्गाया भवन मणितोरणम्।
आस्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी॥ २५॥
उपास्यमाना विविधै शक्तिभेदैरितस्तत।
पीत्वा योगामृत लब्ध्वा साक्षादानन्दमैश्वरम्॥ २६॥

उस उत्तम गिरिश्रेष्ठपर योगयुक्त मनवाले मुनियोके अन्य कई आश्रम तथा सरोवर और नदियाँ हैं। उनमे योगपरायण जप करनेवाले, सयत इन्द्रियोवाले एव ब्रह्मनिष्ठ मनवाले ज्ञानतत्पर विप्रगण रमण करते हैं (समाधिस्थ रहते हैं)। (वे) स्वयमे आत्मनिष्ठ होकर शिखाके अन्तिम मूलभाग(ब्रह्मरन्ध्र)-मे स्थित ईशान देवका ध्यान करते हैं, जिनसे इस सम्पूर्ण (जगत्)-का विस्तार हुआ है। सुमेघ (नामक पर्वत)-पर हजारो सूर्योके समान प्रकाशमान इन्द्रका एक स्थान है। देवताओके राजा भगवान् इन्द्र शचीके

साथ वहाँ निवास करते हैं। गजशैलपर दुर्गाका मणियोसे बने तोरणवाला एक भवन है। साक्षात् महेश्वरी भगवती दुर्गा वहाँ निवास करती हैं। योगामृतका पान करके अर्थात् योगको आत्मसात् कर लेनेके कारण साक्षात् योगेश्वरी और (ईश्वर अर्धनारीश्वर महेश्वरकी अर्धाङ्गिनी होनेके कारण) ईश्वरका साक्षात् आनन्द प्रासकर विविध प्रकारकी शक्तियोके रूपमें इतस्तत उपासित होती रहती हैं॥ २१—२६॥

सुनीलस्य गिरे शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वल।
राक्षसाना पुराणि स्यु सरासि शतशो द्विजा ॥ २७॥
तथा पुरशत विप्रा शतशृङ्गे महाचले।
स्फाटिकस्तम्भसयुक्त यक्षाणाममितौजसाम्॥ २८॥
श्वेतोदरगिरे शृङ्गे सुपर्णस्य महात्मन ।
प्राकारगोपुरोपेत मणितोरणमण्डितम्॥ २९॥
स तत्र गरुड श्रीमान् साक्षाद् विष्णुरिवापर ।
ध्यात्वास्ते तत् पर ज्योतिरात्मान विष्णुमव्ययम्॥ ३०॥

हे द्विजो! विविध धातुओसे देदीप्यमान सुनील पर्वतके शिखरपर राक्षसोके नगर तथा सैकडो सरोवर हैं। विप्रो! इसी प्रकार शतशृग नामक महान् पर्वतपर स्फटिक स्तम्भोसे बने हुए अमित तेजस्वी यक्षाके सौ नगर है। श्वेतोदर पर्वतके शिखरपर महात्मा सुपर्ण (गरुड)-का अनेक प्राकार और गोपुरासे युक्त तथा मणियासे बने तोरणासे मण्डित पुर ह। वहाँ साक्षात् दूसरे विष्णुके समान वे श्रीमान् गरुड उन परम ज्योति स्वरूप आत्मरूप अव्यय विष्णुका ध्यान करते रहते ह॥ २७—३०॥

अन्यच्च भवन पुण्य श्रीशृङ्गे मुनिपुगवा ।
श्रीदव्या सर्वरत्नाढ्य हैम सुमणितोरणम्॥ ३१॥
तत्र सा परमा शक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा।
अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्सम्मोहनोत्सुका॥ ३२॥
अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता।
विचिन्त्य जगतो यानि स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला॥ ३३॥
तत्रैव देवदवस्य विष्णोरायतन महत्।
सरासि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाश्रया॥ ३४॥

मुनिश्रेष्ठा! श्रीशृगपर श्रीदेवीका दूसरा भी एक पवित्र भवन है, जो सभी रत्नोंसे पूर्ण तथा स्वर्णसे बना हुआ है और सुन्दर मणियोसे बने तोरणवाला है। वहाँ विष्णुकी अति मनोरम परम शक्ति (वे लक्ष्मी) ससारके मूल कारण (विष्णु)-का चिन्तन करती हुई विशेषरूपसे निवास करती हैं। वे लक्ष्मी अनन्त ऐश्वर्यवाली, ससारको मोहित करनेम उत्सुक, देवताओ, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे वन्दित हैं और अपनी शक्तिकी किरणोंसे प्रकाशित हैं। वहीं देवाधिदेव विष्णुका विशाल भवन है तथा वहींपर विचित्र कमलोंवाले चार सरोवर हैं॥ ३१—३४॥

तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम्।
रत्नसोपानसयुक्त सरोभिश्चोपशोभितम्॥ ३५॥
नद्यो विमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकरा ।
कर्णिकारवन दिव्य तत्रास्ते शकरोमया॥ ३६॥
पारियात्रे महाशैले महालक्ष्म्या पुर शुभम्।
रम्यप्रासादसयुक्त घण्टाचामरभूषितम्॥ ३७॥
नृत्यद्भिरप्सर सङ्घैरितश्चेतश्च शोभितम्।
मृदङ्गमुरजोद्घुष्ट वीणावेणुनिनादितम्॥ ३८॥
गन्धर्वकिनराकीर्णं सवृत सिद्धपुगवै ।
भास्वद्भित्तिसमाकीर्णं महाप्रासादसकुलम्॥ ३९॥
गणेश्वराङ्गनाजुष्ट धार्मिकाणा सुदर्शनम्।
तत्र सा वसते देवी नित्य योगपरायणा॥ ४०॥
महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी।
त्रिनेत्रा सर्वशक्तीभि सवृता सदसन्मया।
पश्यन्ति तत्र मुनय सिद्धा ये ब्रह्मवादिन ॥ ४१॥

इसी प्रकार सहस्रशिखर (पर्वत)-पर रत्नाकी सीढियासे बने हुए और सरोवरासे सुशोभित विद्याधराके आठ पुर हैं। वहाँ स्वच्छ जलवाली नदियाँ तथा अनेक प्रकारके प्रफुल्लित नीलकमल हैं आर कर्णिकारका[1] एक दिव्य वन है उमाके साथ शकर वहाँ विराजमान रहत हैं। पारियात्र नामक महाशैलपर महालक्ष्मीका सुन्दर पुर ह जा रमणीय प्रासादास युक्त घण्टा एव चामरसे अलकृत, इतस्तत नृत्य करती हुई अप्सराआके समूहसे सुशोभित, मृदग एव मुरजकी ध्वनिसे गुञ्जित वीणा तथा वेणुकी झकारस निनादित गन्धर्व तथा किनरासे आकीर्ण श्रेष्ठ सिद्धास आवृत चमकत हुए

१-कर्णिकार—वृक्षविशेष कठचम्पा या कर्णियार नामसे कई जगहाम प्रसिद्ध।

दीवालास पूर्ण, बडे-बडे महलोसे घनीभूत गणेश्वरोकी अङ्गनाओंसे सेवित और धार्मिक जनोंके द्वारा सरलतापूर्वक प्रत्यक्ष करने योग्य है। वहाँ योगपरायण, श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाली, तीन नेत्रवाली, सभी शक्तियोंसे आवृत और मदसन्मयी देवी महालक्ष्मी महादेवी नित्य निवास करती हैं। वहाँ जो ब्रह्मवादी मुनि और सिद्ध हैं—वे उनका दर्शन करते हैं॥ ३५—४१॥

सुपार्श्वस्योत्तरे भागे सरस्वत्या पुरोत्तमम्।
सरासि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमा ॥४२॥
पाण्डुरस्य गिर शृङ्गे विचित्रद्रुमसकुले।
गन्धर्वाणा पुरशत दिव्यस्त्रीभि समावृतम्॥४३॥
तपु नित्य मदोत्सिक्ता वरनार्यस्तथैव च।
क्रीडन्ति मुदिता नित्य विलासैर्भोगतत्परा ॥४४॥

सुपार्श्वके उत्तरभागम सरस्वतीका उत्तम पुर है। श्रेष्ठ जनो! वहाँ देवताओंके उपभाग करने योग्य तथा सिद्धासे सेवित अनेक सरावर है। पाण्डुर पर्वतके शिखरपर अनेक प्रकारक वृक्षास भरे हुए और दिव्य स्त्रियासे परिपूर्ण गन्धर्वोंके सौ पुर ह। उनमे अनेक पकारक भागाम तत्पर और काम-मदस उन्मत्त श्रेष्ठ स्त्रियाँ तथा पुरुष अनेक प्रकारके विलासाद्वारा भागम तत्पर रहते ह और प्रसन्नतापूर्वक सदा क्रीडा (मनोविनोद) करत रहते हैं॥ ४२—४४॥

अञ्जनस्य गिर शृङ्गे नारीणा पुरमुत्तमम्।
वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रतिलालसा ॥४५॥
चित्रसनादयो यत्र समायान्त्यर्थिन सदा।
सा पुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्रवणैर्युता॥४६॥

अञ्जनगिरिक शिखरपर स्त्रियाका श्रेष्ठ पुर है जिसमे रतिकी इच्छा करनवाली रम्भा आदि अप्सराएँ निवास करती हैं। चित्रसन आदि (गन्धर्व) जहाँ सदा अभिलापीक रूपम आया करत हैं वह पुरी सभी रत्नास परिपूर्ण तथा अनेक झरनास सम्पन्न है॥ ४५-४६॥

अनकानि पुराणि स्यु कौमुद चापि सुव्रता।
रुद्राणा शान्तरजसामीश्वरार्पितचतसाम्॥४७॥
तपु रुद्रा महायागा महशान्तरचारिण।
समासत पर ज्यातिरारूढा स्थानमुत्तमम्॥४८॥

हे सुव्रता! कौमुद (पर्वत)-पर भी शान्त रजागुणवाले (रजागुणसे रहित शान्त चित्तवाले रहित) तथा शकरम अर्पित चित्तवाले रुद्राके अनेक पुर हैं, उनम परम ज्योति अर्थात् परब्रह्मका प्रत्यक्ष करनेवाले तथा महेशके अन्तरम विचरण करनेवाले महायोगी रुद्रगण रहत हैं, यह स्थान बहुत उत्तम है॥ ४७-४८॥

पिञ्जरस्य गिरे शृङ्गे गणेशाना पुरत्रयम्।
नन्दीश्वरस्य कपिले तत्रास्ते सुयशा यति ॥४९॥
तथा च जारुधे शृङ्गे देवदेवस्य धीमत।
दीप्तमायतन पुण्य भास्करस्यामितौजस ॥५०॥
तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम्।
रमते तत्र रम्योऽसौ भगवान् शीतदीधिति ॥५१॥

पिञ्जर गिरिके शिखरपर गणेशाके तीन पुर तथा (वहाँ) कपिल(शिखर)-पर नन्दीश्वरकी पुरी है, वहाँ उत्तम यशवाल यतिगण निवास करते ह। इसी प्रकार जारधि पर्वतक शिखरपर अमित तेजस्वी बुद्धिमान् देवाधिदेव भास्करका दीप्तियुक्त पवित्र भवन है। उसीक उत्तर दिग्भागमें चन्द्रमाका उत्तम स्थान है वहाँ शीत किरणवाले ये रम्य भगवान् (चन्द्रमा) रहते हैं॥ ४९—५१॥

अन्यच्च भवन दिव्य हसशैले महर्षय।
सहस्रयोजनायाम सुवर्णमणितोरणम्॥५२॥
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुत।
सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युत ॥५३॥
तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धाना पुरमुत्तमम्।
सनन्दनादयो यत्र वसन्ति मुनिपुगवा ॥५४॥

हे महर्षियो! हसशैलपर एक दूसरा दिव्य भवन है जो एक हजार याजन विस्तारवाला है और सुवर्ण तथा मणिसे निर्मित तोरणवाला है। वहाँ सिद्धाके समूहसे सेवित और वासुदव आदिस युक्त विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा सावित्रीके साथ रहते हैं। उसके दक्षिण दिग्विभागम सिद्धाका श्रेष्ठ पुर है जहाँ सनन्दन आदि श्रेष्ठ मुनि रहते हैं॥ ५२—५४॥

पञ्चशैलस्य शिखर दानवाना पुरत्रयम्।
नातिदूरेण तस्याथ दैत्याचार्यस्य धीमत ॥५५॥
सुगन्धशैलशिखर सरिद्भिरुपशाभितम्।
कर्दमस्याश्रम पुण्य तत्रास्त भगवानृषि ॥५६॥

पञ्चशैलके शिखरपर दानवाके तीन पुर हैं। उसके समीप ही सुगन्ध शैलके शिखरपर दैत्याके आचार्य बुद्धिमान

भगवान् कर्दम ऋपिका नदियोसे सुशोभित एक पवित्र आश्रम है॥ ५५-५६ ॥

तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद् वै दक्षिणाश्रिते।
सनत्कुमारो भगवास्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तम ॥५७॥
सर्वेष्वेतेपु शैलेपु तथान्येपु मुनीश्वरा ।
सरासि विमला नद्यो देवानामालयानि च॥५८॥
सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभि स्थापितानि तु।
वन्यान्याश्रमवर्याणि सख्यातु नैव शक्नुयाम्॥५९॥
एप सक्षेपत प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तर ।
न शक्य विस्तराद् वक्तु मया वर्पशतैरपि॥६०॥

उसीके पूर्व दिग्भागम कुछ दक्षिण दिशाकी ओर ब्रह्मज्ञानियाम श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार रहते हैं। हे मुनीश्वरो। इन सभी शैलो तथा अन्य शैलोम भी अनेक सरोवर, स्वच्छ जलवाली नदियाँ और देवताआके भवन हैं। वहाँ जो मुनियोद्वारा स्थापित पवित्र सिद्ध लिङ्ग, वन तथा श्रेष्ठ आश्रम हैं, उनकी गणना मैं नहीं कर सकता। यह सक्षेपमे जम्बूद्वीपका विस्तार बतलाया गया, सैकडो वर्षोंमे भी मैं इसके विस्तारका वर्णन नहीं कर सकता॥ ५७—६० ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे पट्साहस्त्र्या सहिताया पूर्वविभागे पट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

प्लक्ष आदि महाद्वीपो, वहाँके पर्वतो, नदियो तथा निवासियोका वर्णन, श्वेतद्वीपमे स्थित नारायणपुरका वर्णन, वहाँ वैकुण्ठमे रहनेवाले लक्ष्मीपति शेपशायी नारायणकी महिमाका ख्यापन

सूत उवाच

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्तत ।
सवेष्टयित्वा क्षारोद प्लक्षद्वीपो व्यवस्थित ॥१॥
प्लक्षद्वीपे च विप्रेन्द्रा सप्तासन् कुलपर्वता ।
ऋज्वायता सुपर्वाण सिद्धसङ्घनिपेविता ॥२॥
गोमेद प्रथमस्तेपा द्वितीयश्चन्द्र उच्यते।
नारदो दुन्दुभिश्चैव सोमश्च ऋपभस्तथा।
वैभ्राज सप्तम प्रोक्तो ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभ ॥३॥
तत्र देवर्पिगन्धर्वै सिद्धैश्च भगवानज ।
उपास्यत स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वसृक्॥४॥

सूतजी बोले—जम्बूद्वीपके विस्तारसे दुगुने विस्तारमें चारो ओरसे क्षार सागरको आवृतकर प्लक्षद्वीप स्थित है। श्रेष्ठ विप्रो। प्लक्षद्वीपम सीधे विस्तारवाले सुन्दर पर्वोवाले तथा सिद्धाके समूहास सेवित सात कुलपर्वत हैं। उनमे गोमेद पहला है, दूसरा चन्द्र पर्वत कहलाता है। इसी प्रकार नारद दुन्दुभि सोम, ऋपभ तथा सातवाँ वैभ्राज नामक पर्वत कहा गया है जो ब्रह्माको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ देवर्पियो गन्धर्वों तथा सिद्धाके द्वारा सबके साक्षी विश्वकी सृष्टि करनेवाले विश्वात्मा भगवान् अज (ब्रह्मा)-की उपासना की जाती है॥ १—४॥

तेपु पुण्या जनपदा नाधयो व्याधयो न च।
न तत्र पापकर्तार पुरुपा वा कथञ्चन॥५॥
तेपा नद्यश्च सप्तैव वर्पाणा तु समुद्रगा ।
तासु ब्रह्मर्पयो नित्य पितामहमुपासते॥६॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपापा त्रिदिवा कृता।
अमृता सुकृता चैव नामत परिकीर्तिता ॥७॥

उन (पर्वतो)-मे पवित्र जनपद हैं। वहाँ न कोई आधि है न कोई व्याधि। वहाँ रहनेवाले पुरुप किसी भी प्रकारका पाप नहीं करते हैं। समुद्रकी ओर जानेवाली उन वर्पपर्वतोकी सात नदियाँ हैं, उनम ब्रह्मर्पि नित्य पितामहकी उपासना करते है। (वे नदियाँ) अनुतप्ता, शिखी विपापा त्रिदिवा, कृता, अमृता और सुकृता नामवाली कही गयी है॥ ५—७॥

क्षुद्रनद्यस्त्वसख्याता सरासि सुबहून्यपि।
न चैतेपु युगावस्था पुरुपा वै चिरायुप ॥८॥
आर्यका कुरवाश्चैव विदशा भाविनस्तथा।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन् द्वीपे प्रकीर्तिता ॥९॥

इनके अतिरिक्त असख्य छोटी-छोटी नदियाँ तथा बहुतसे सरोवर भी वहाँपर हैं। यहाँ (सत्य, त्रेता आदि रूपम) युगाकी व्यवस्था नहीं है और सभी पुरुष दीर्घायु होते हैं। इस द्वीपमे आर्यक, कुरव, विदश तथा भावी नामक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र कहे गये है॥ ८-९॥

इज्यते भगवान् सोमो वर्णैस्तत्र निवासिभि ।
तेषा च सोमसायुज्य सारूप्य मुनिपुगवा ॥ १०॥
सर्वे धर्मपरा नित्य नित्य मुदितमानसा ।
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामया ॥ ११॥
प्लक्षद्वीपप्रमाण तु द्विगुणेन समन्तत ।
सवेष्ट्येक्षुरसाम्भोधि शाल्मलि सव्यवस्थित ॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! यहाँ रहनेवाले विभिन्न वर्णोंवालाके द्वारा भगवान् सोमकी पूजा की जाती है, उन्ह सोमका सायुज्य और सारूप्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है। वहाँके सभी लोग नित्य धर्मपरायण और नित्य प्रसन्नचित्त रहते हैं तथा रोगरहित होकर पाँच हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। प्लक्षद्वीपके दुगुने प्रमाणमे चारो ओर इक्षुरसके समुद्रको आवेष्टितकर शाल्मलि नामक द्वीप स्थित है॥ १०—१२॥

सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्वता ।
ऋज्वायता सुपर्वाण सप्त नद्यश्च सुव्रता ॥ १३॥
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहक ।
द्राण कङ्कस्तु महिष ककुद्वान् सप्त पर्वता ॥ १४॥
योनी ताया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचिनी।
निवृत्तिश्चेति ता नद्य स्मृता पापहरा नृणाम्॥ १५॥
न तषु विद्यते लोभ क्रोधो वा द्विजसत्तमा ।
न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामया ॥ १६॥
यजन्ति सतत तत्र वर्णा वायु सनातनम्।
तेषां तस्याथ सायुज्य सारूप्य च सलोकता॥ १७॥

वहाँ भी सात वष और सात ही कुलपवत हैं (व पवत) साथ फैल हुए और सुन्दर पर्वोवाले हैं। ह सुव्रता! (वहाँ) सात नदियाँ भा हैं। कुमुद उन्नत तीसरा बलाहक द्राण कङ्क महिष तथा ककुद्वान्—ये सात (कुल) पवत हैं। यानी ताया वितृष्णा चन्द्रा शुक्ला विमाचिनी तथा निवृत्ति—य सात नदियाँ मनुष्योंका पाप हरण करनवाली कहा गया हैं। ह द्विजश्रेष्ठो! उनम (यहाँके निवासियाम) न लोभ है, न क्रोध है और न (यहाँ) युगकी व्यवस्था ही है। यहाँके सभी लोग रोगरहित होकर जीवित रहते हैं। यहाँके सभी वर्णोंके लोग निरन्तर सनातन वायुदेवका यजन करते हैं, इन्हे उन (वायुदेव)-का सायुज्य, सारूप्य तथा सालोक्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है॥ १३—१७॥

कपिला ब्राह्मणा प्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा।
पीता वैश्या स्मृता कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजा ॥ १८॥
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्तत ।
सवेष्ट्य तु सुरोदाब्धि कुशद्वीपो व्यवस्थित ॥ १९॥
विद्रुमश्चैव हेमश्च द्युतिमान् पुष्पवास्तथा।
कुशेशयो हरिश्चाथ मन्दर सप्त पर्वता ॥ २०॥
धुतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मता तथा।
विद्युदम्भा मही चेति नद्यस्तत्र जलावहा ॥ २१॥

हे द्विजो! इस (शाल्मलि) द्वीपमे ब्राह्मण कपिल वर्णके और क्षत्रिय अरुण वर्णक कहे गये हैं। वैश्य पीतवर्णके तथा वृपल (शूद्र) कृष्ण वर्णके बतलाये गये हैं। शाल्मलद्वीपके दुगुने विस्तारम चारो ओरसे सुरोदसागरको आवेष्टित कर कुशद्वीप स्थित है। विद्रुम, हेम द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दर—ये सात (कुल) पर्वत हैं। यहाँ धुतपापा शिवा पवित्रा समता विद्युदम्भा और मही (नामक) जलस पूर्ण नदियाँ हैं॥ १८—२१॥

अन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मणिजला शुभा ।
तासु ब्रह्माणमीशान देवाद्या पर्युपासते॥ २२॥
ब्राह्मणा द्रविणो विप्रा क्षत्रिया शुष्मिणस्तथा।
वैश्या स्नहास्तु मन्दहा शूद्रास्तत्र प्रकीर्तिता ॥ २३॥
सर्वे विज्ञानसम्पन्ना मैत्रादिगुणसयुता ।
यथाक्तकारिण सर्वे सर्वे भूतहिते रता ॥ २४॥
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्रह्माण परमेष्ठिनम्।
तेषा च ब्रह्मसायुज्य सारूप्य च सलोकता॥ २५॥

हे विप्रा! यहाँ मणिक समान स्वच्छ जलवाली अन्य भी सैकडा नदियाँ हैं। इनम दवता आदि ईशान ब्रह्माका उपासना करते हैं। विप्रो! यहाँके ब्राह्मण द्रविण क्षत्रिय शुष्मिण वैश्य स्नह तथा शूद्र मन्दह कह गये हैं। यहाँके सभा लाग विशिष्ट ज्ञानस सम्पन्न मैत्रा आदि गुणोंसे समन्वित विहित कर्मोका करनेवाल तथा सभी प्राणियोंके

हित-चिन्तनमे लगे रहते हैं। ये विविध यज्ञोद्वारा परमष्ठी ब्रह्माका यजन करते हैं ओर उन्हे ब्रह्माका सायुज्य, सारूप्य तथा सालोक्य (मोक्ष) प्राप्त होता है॥ २२—२५॥

कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्तत ।
क्रौञ्चद्वीपस्ततो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्॥ २६॥
क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चान्धकारक ।
देवावृच्च विविन्दश्च पुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तम प्रोक्त पर्वतो दुन्दुभिस्वन ॥ २७॥
गौरी कुमुद्वती चैव सध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च नद्य प्राधान्यत स्मृता ॥ २८॥

हे विप्रो! कुशद्वीपक दुगुने विस्तारमे चारो ओर घृतसमुद्रका आवष्टित करके क्रौञ्चद्वीप स्थित है। क्रौञ्च वामनक, अन्धकारक, देवावृत्, विविन्द, पुण्डरीक तथा दुन्दुभिस्वन नामक सात पर्वत यहाँ कहे गये हैं। गौरी, कुमुद्वती, सध्या, रात्रि मनोजवा, ख्याति तथा पुण्डरीक—ये प्रधान नदियाँ यहाँ कही गयी हैं॥ २६—२८॥

पुष्करा पुष्कला धन्यास्तिष्यास्तस्य क्रमेण वै।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव द्विजोत्तमा ॥ २९॥
अर्चयन्ति महादेव यज्ञदानसमाधिभि ।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमै स्वाध्यायतर्पणै ॥ ३०॥
तेषा वै रुद्रसायुज्य सारूप्य चातिदुर्लभम्।
सलोकता च सामीप्य जायते तत्प्रसादत ॥ ३१॥

हे द्विजोत्तमो! ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र—ये क्रमश पुष्कर, पुष्कल, धन्य तथा तिष्य नामस यहाँ कहे जाते हैं। य यज्ञ, दान, समाधि व्रत, उपवास विविध होम, स्वाध्याय एव तर्पणद्वारा महादेवकी अर्चना करते हैं। इन्हे महादेवकी कृपासे उनका (रुद्रका) अति दुर्लभ सायुज्य सारूप्य, सालोक्य तथा सामीप्य (मोक्ष) प्राप्त होता है॥ २९—३१॥

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्तत ।
शाकद्वीप स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम्॥ ३२॥
उदयो रैवतश्चैव श्यामाकोऽस्तगिरिस्तथा।
आम्बिकेयस्तथा रम्य केशरी चेति पर्वता ॥ ३३॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका तथा।
इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चेति निम्नगा ॥ ३४॥
आसा पिबन्त सलिल जीवन्ते तत्र मानवा ।
अनामया ह्यशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता ॥ ३५॥

हे विप्रो! क्रौञ्चद्वीपके दुगुने विस्तारमें चारो ओरसे दधिसमुद्रको आवृतकर शाकद्वीप स्थित है। (यहाँ) उदय, रैवत, श्यामाक, अस्तगिरि, आम्बिकेय, रम्य तथा केशरी—ये पर्वत हैं। यहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षुका, धेनुका और गभस्ति—ये नदियाँ हैं। इनका जल पीकर यहाँके मनुष्य (सुखमय) जीवन व्यतीत करते हैं। ये रोगरहित शोकविहीन और राग-द्वेषसे मुक्त रहते हैं॥ ३२—३५॥

मगाश्च मगधाश्चैव मानवा मन्दगास्तथा।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चात्र क्रमण तु॥ ३६॥
यजन्ति सतत देव सर्वलोकैकसाक्षिणम्।
व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेव दिवाकरम्॥ ३७॥
तेषा सूर्येण सायुज्य सामीप्य च सरूपता।
सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादत॥ ३८॥

ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये क्रमश मग, मगध, मानव तथा मन्दग कहलाते हैं। ये सभी लोकाके एकमात्र साक्षी देवाधिदेव सूर्यदेवका विविध व्रत एव उपवासोद्वारा निरन्तर यजन करते हैं। हे विप्रेन्द्रो! सूर्यके अनुग्रहसे इन्हे उनकी सायुज्यता, सामीप्यता सारूप्यता और सालोक्यता प्राप्त होती है॥ ३६—३८॥

शाकद्वीप समावृत्य क्षीराद सागर स्थित ।
श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणा ॥ ३९॥
तत्र पुण्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विता ।
श्वेतास्तत्र नरा नित्य जायन्ते विष्णुतत्परा ॥ ४०॥

शाकद्वीपको आवृत करके क्षीरोद सागर स्थित है उसके मध्यमें श्वेतद्वीप है। वहाँ नारायण-परायण लोग रहते हैं। वहाँ नाना आश्चर्योंसे समन्वित अनेक पवित्र जनपद हैं। वहाँके मनुष्य श्वेतवर्णके और नित्य विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं॥ ३९—४०॥

नाधयो व्याधयस्तत्र जरामृत्युभय न च।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिता ॥ ४१॥
नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भागिन ।
नारायणपरा सर्वे नारायणपरायणा ॥ ४२॥
केचिद् ध्यानपरा नित्य योगिन सयतेन्द्रिया ।
केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद् विज्ञानिनोऽपर॥ ४३॥

अन्ये निर्वीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविता ।
ध्यायन्ति तत् पर व्योम वासुदव पर पदम् ॥ ४४ ॥

वहाँ न कोई आधि-व्याधि है, न वृद्धावस्था हे तथा न मृत्युका भय ही है। सभी लोग नारायणके भक्त तथा क्रोध-लोभसे रहित, माया एव मात्सर्यसे मुक्त, नित्य पुष्ट, आतङ्करहित, नित्य आनन्दयुक्त, भोग करनेवाले तथा नारायण-परायण रहते हैं। वहाँके कुछ निवासी जितेन्द्रिय एव नित्य ध्यानपरायण योगी हैं, कोई जप करते हैं, कोई तप करते हैं और कुछ लोग विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न हैं। दूसरे निर्बीज योगके द्वारा ब्रह्मभावसे भावित होकर उन परम व्योमरूप, परमपद वासुदेवका ध्यान करते हैं ॥ ४१—४४ ॥

एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवता परे।
पश्यन्ति परम ब्रह्म विष्ण्वाख्य तमस परम् ॥ ४५ ॥
सर्वे चतुर्भुजाकारा शङ्खचक्रगदाधरा ।
सुपीतवासस सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षस ॥ ४६ ॥

कुछ दूसरे अनन्यचेता अन्य आश्रयरहित महाभागवत लोग तम (अज्ञान)-से परे विष्णु नामक परम ब्रह्मका दर्शन करते हैं। ये सभी चार भुजाओवाले, शख चक्र तथा गदा धारण करनेवाले सुन्दर पीताम्बर धारण करनेवाले एव श्रीवत्ससे अङ्कित वक्ष स्थलवाले हैं ॥ ४५-४६ ॥

अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तका ।
स्वयोगोद्भूतकिरणा महागरुडवाहना ॥ ४७ ॥
सर्वशक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मला ।
वसन्ति तत्र पुरुषा विष्णोरन्तरचारिण ॥ ४८ ॥

अन्य (कुछ) लोग महेश्वरके भक्त हैं। वे मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं। वे अपने योगसे उत्पन्न रश्मियोसे लोकको प्रकाशित करते हैं और महागरुड उनके वाहन हैं। सभी शक्तियोसे सम्पन्न, नित्य आनन्दसे पूर्ण, शुद्धान्त करण तथा विष्णुके अन्तरमे विचरण करनेवाले पुरुष वहाँ रहते हैं ॥ ४७-४८ ॥

तत्र नारायणस्यान्यद् दुर्गम दुरतिक्रमम्।
नारायण नाम पुर व्यासाद्यैरुपशोभितम् ॥ ४९ ॥
हेमप्राकारसयुक्त स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम्।
प्रभासहस्रकलिल दुराधर्ष सुशोभनम्।
हर्म्यप्राकारसयुक्तमट्टालकसमाकुलम् ॥ ५० ॥
हेमगोपुरसाहस्त्रैर्नानारत्नोपशोभितै ।
शुभ्रास्तरणसयुक्त विचित्रै समलकृतम् ॥ ५१ ॥
नन्दनैर्विविधाकारै स्रवन्तीभिश्च शोभितम्।
सरोभि सर्वता युक्त वीणावेणुनिनादितम् ॥ ५२ ॥
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम्।
वीथीभि सर्वतो युक्त सोपानै रत्नभूषितै ॥ ५३ ॥

वहाँ व्यास आदिसे सुशोभित नारायणका दूसरा दुर्गम तथा दुर्लङ्घ्य नारायण नामक एक पुर है। वह पुर सोनेके परकोटेसे युक्त, स्फटिकके मण्डपोसे समन्वित, हजारो प्रकारकी प्रभाओसे अलकृत, अत्यन्त सुन्दर और दुराधर्ष है तथा सोनेके प्रासादोसे युक्त एव अनेक बडी-बडी अट्टालिकाओंसे व्याप्त है। वह पुर स्वर्णसे बने हजारों विचित्र गोपुरों[1] और नाना प्रकारके रत्नोसे सुशोभित है, साथ ही वह स्वच्छ आसनोसे युक्त एव विविध प्रकारसे अलकृत है। वह पुर विविध प्रकारके उद्यानो और नदियोसे शोभित हे। सब ओरसे सरोवरोसे युक्त और वीणा तथा वेणुकी ध्वनिसे निनादित है। विचित्र प्रकारकी अनेक पताकाओसे शोभित है। सब ओरसे वीथियो और रत्नसे विभूषित सीढियोसे युक्त है ॥ ४९—५३ ॥

नारीशतसहस्राढ्य दिव्यगेयसमन्वितम्।
हसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्य देवविद्विषाम् ॥ ५४ ॥
तत्र तत्राप्सर सङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम्।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभै ॥ ५५ ॥
नानाविलाससम्पन्नै कामुकैरतिकोमलै ।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसयुतै ॥ ५६ ॥
ईषत्स्मितै सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणै ।
अशेषविभवोपेतैर्भूषितैस्तनुमध्यमै ॥ ५७ ॥
सुराजहसचलनै सुवेषैर्मधुरस्वनै ।
सलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितै ॥ ५८ ॥
स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णितलोचनै ।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियै ॥ ५९ ॥

सैकडों हजारों स्त्रियोसे सम्पन्न तथा दिव्य गानसे

१-गोपुर—नगरका मुख्य फाटक अथवा फाटक मात्र।

समन्वित है। हस एव सारस पक्षियोस व्याप्त ह, चक्रवाकास सुशोभित है। उसम अनुपमय चार द्वार ह तथा वह सुरद्वेषी असुरांके लिये अगम्य है। (वह पुर) विविध प्रकारके गीताको जाननेवाले देवताआंके लिये भी दुर्लभ, नाना विलासासे सम्पन्न कामके अभिलापी, अतिकोमल पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले, नूपुरकी ध्वनिसे युक्त, मन्द मुसकानवाले, सुन्दर बिम्बके समान ओठवाले, मुग्ध मृगशावकके समान नेत्रवाले सम्पूर्ण ऐश्वर्योसे सम्पन्न, अलकृत क्षीण कटिभागवाले राजहसके समान सुन्दर चालवाले, अच्छे वेपवाले, मधुर स्वरवाले वाल-चालमे प्रवीण, दिव्य अलङ्कारोसे विभूपित, स्तनक भारसे कुछ झुके हुए, मदके कारण चञ्चल नेत्रावाले, अनक वर्णोके अङ्गरागसे सुशोभित अङ्गावाले नाना प्रकारक भोग और रतिमे अनुराग रखनेवाला ओर जहाँ-तहाँ नृत्य करते हुए अप्सरा-समूहोसे सुशाभित हैं॥ ५४—५९॥

प्रफुल्लकुसुमोद्यानैरितश्चेतश्च शोभितम्।
असख्येयगुण शुद्धमगम्य त्रिदशैरपि॥६०॥
श्रीमत्पवित्र देवस्य श्रीपतेरमितौजस ।
तस्य मध्येऽतितजस्कमुच्चप्राकारतोरणम्॥६१॥
स्थान तद् वैष्णाव दिव्य योगिनामपि दुर्लभम्।
तन्मध्य भगवानेक पुण्डरीकदलद्युति ।
शेतेऽशेषजगत्सूति शेपाहिशयने हरि ॥६२॥

प्रफुल्लित फूलावाल इधर-उधर विद्यमान सुन्दर उद्यानासे सुशाभित असख्य गुणावाला वह पवित्र पुर देवताओके लिये भी अगम्य है। अमित तजस्वी लक्ष्मीपति (विष्णु) देवका वह पुर श्रीसे सम्पन्न आर पवित्र हे। उसके मध्यमे अत्यन्त तजस सम्पन्न, ऊँच प्राकार तथा तोरणासे युक्त और यागियाके लिये भी दुर्लभ विष्णुका दिव्य स्थान है। उसके मध्यम कमलदलक समान द्युतिवाल सम्पूर्ण जगत्के उत्पादक भगवान् हरि शेपनागकी शय्यापर शयन करते हैं॥ ६०—६२॥

विचिन्त्यमानो योगीन्द्रै सनन्दनपुरोगमै ।
स्वात्मानन्दामृत पीत्वा पर तत् तमस परम्॥६३॥
सुपीतवसनोऽनन्तो महामायो महाभुज ।
क्षीरोदकन्यया नित्य गृहीतचरणद्वय ॥६४॥
सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया।
समास्ते तन्मना नित्य पीत्वा नारायणामृतम्॥६५॥

स्वात्मानन्दरूपी अमृतका पान करते हुए सनन्दन आदि योगीन्द्रोद्वारा तमोगुणसे अतीत श्रेष्ठ उन (श्रीहरि)-का चिन्तन किया जाता हे। क्षीरसागरकी कन्या लक्ष्मी सुन्दर पीताम्बर धारण करनेवाल अनन्त, महामायाक अधिपति तथा महान् भुजाआवाले विष्णुके दोना चरण नित्य पकडे रहती हैं। जगत्‌की वन्दनीया हरिप्रिया वे देवी नारायणामृतका पानकर उन्हींम मन लगाकर उनके चरणमूलम नित्य विराजमान रहती हें॥ ६३—६५॥

न तत्राधार्मिका यान्ति न च देवान्तराश्रया ।
वैकुण्ठ नाम तत् स्थान त्रिदशैरपि वन्दितम्॥६६॥
न मेऽत्र भवति प्रज्ञा कृत्स्नशस्तन्निरूपणे।
एतावच्छक्यते वक्तु नारायणपुर हि तत्॥६७॥
स एव परम ब्रह्म वासुदेव सनातन ।
शेते नारायण श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत्॥६८॥
नारायणादिद जात तस्मिन्नेव व्यवस्थितम्।
तमेवाभ्येति कल्पान्त स एव परमा गति ॥६९॥

वहाँ (श्वेतद्वीपके नारायणपुरमे) न अधार्मिक जा पात हैं ओर न दूसरे दवका आश्रय ग्रहण करनेवाले। देवताआसे भी वन्दित वह स्थान वैकुण्ठ नामस प्रसिद्ध हे। उसका सम्पूर्ण रूपसे वणन करनमे मरी वुद्धि समथ नहा हे। उस नारायणपुरका म इतना ही वर्णन कर सकता हूँ। परम ब्रह्म सनातन वासुदेव श्रीमान् नारायण अपनी मायाद्वारा ससारका माहित करते हुए वहाँ शयन करत हैं। यह सब कुछ नारायणसे ही उत्पन्न ह उन्हींम स्थित ह आर कल्पान्तम उन्हींका प्राप्त हाता हे। व ही परम गति ह॥ ६६—६९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे सेतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४७॥
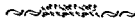
अडतालीसवाँ अध्याय

पुष्करद्वीपकी स्थिति तथा विस्तारका वर्णन, सक्षेपम अव्यक्तसे सृष्टिका प्रतिपादन

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणन व्यवस्थित ।
क्षीरार्णव समाश्रित्य द्वीप पुष्करसवृत ॥ १ ॥
एक एवात्र विप्रेन्द्रा पर्वतो मानसोत्तर ।
योजनाना सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छ्रित ।
तावदेव च विस्तीर्ण सर्वत परिमण्डल ॥ २ ॥
स एव द्वीप पश्चार्धे मानसोत्तरसज्ञित ।
एक एव महासानु सनिवेशाद् द्विधा कृत ॥ ३ ॥
तस्मिन् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ।
अपरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ।
महावीत स्मृत वर्ष धातकीखण्डमेव च ॥ ४ ॥
स्वादूदकनोदधिना पुष्कर परिवारित ।
तस्मिन् द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोधोऽमरपूजित ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—शाकद्वीपके दुगुने विस्तारम क्षीरसागरके आश्रित पुष्कर नामक द्वीप स्थित है। ह विप्रेन्द्रो! यहाँ मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह साढ पचास हजार योजन ऊँचा हे और चारा ओर विस्तारमे इसका परिमण्डल अर्थात् घरा भी उतने ही परिमाणका है। इस द्वीपक ही पश्चिमको आर आधे भागम मानसात्तर नामस एक ही महापर्वत अपनी विशेष स्थितिक कारण दो भागाम बँटा है। इस द्वीपम दा शुभ एव पवित्र जनपद कह गये हैं। वे दोना मानस पर्वतके अनु- मण्डल हें। (ये) महावीत तथा धातकी खण्ड नामक वर्ष कह गये ह। पुष्करद्वीप (स्वादूदक समुद्र) स्वादिष्ट जलवाल समुद्रस चारो आरसे घिरा हैं। उस द्वीपम देवताआद्वारा पूजित न्यग्रोध (वट)-का एक महान् वृक्ष ह॥ १—५॥

तस्मिन् निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावन ।
तत्रैव मुनिशार्दूला शिवनारायणालय ॥ ६ ॥
वसत्यत्र महादेवा हरोऽर्धहरिरव्यय ।
सम्पूज्यमानो ब्रह्माद्यै कुमाराद्यैश्च योगिभि ।
गन्धर्वै किनरर्यक्षैरीश्वर कृष्णपिङ्गल ॥ ७ ॥
स्वस्थास्तत्र प्रजा सर्वा ब्रह्मणा सदृशत्विष ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता ॥ ८ ॥
सत्यानृते न तत्रास्ता नोत्तमाधममध्यमा ।
न वर्णाश्रमधर्माश्च न नद्यो न च पर्वता ॥ ९ ॥
परेण पुष्करस्याथ समावृत्य स्थिता महान्।
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमा ॥ १० ॥

उसी (द्वीप)-म विश्वभावन विश्वात्मा ब्रह्मा रहत हैं। मुनिश्रेष्ठो! वहींपर शिवनारायणका मन्दिर है। यहाँ आधे भागमें हर (एव आधेमें) अव्यय हरिके रूपमें (अर्थात् हरिहरात्मक रूपमें) महादव निवास करत हैं। यहाँ ब्रह्मा आदि दवताओं कुमार (सनत्कुमार) आदि योगियों गन्धर्वों तथा किंनरों एव यक्षोद्वारा ईश्वर कृष्णपिङ्गल पूजित होते हैं। यहाँकी सारी प्रजा स्वस्थ है ब्रह्माक समान प्रभावान् है और राग शोक राग तथा द्वेषसे रहित है। यहाँ सत्य असत्य उत्तम मध्यम अधम (-का विभेद) नहीं है। न वणाश्रम धर्म है न नदियाँ हैं और न पर्वत हैं। हे द्विजसत्तमा! पुष्कर द्वीपके पर उस चारों आरस घरत हुए महान् स्वादूदक सागर स्थित है॥ ६—१०॥

परेण तस्य महती दृश्यते लोकसस्थिति ।
काञ्चनी द्विगुणा भूमि सर्वा चैव शिलोपमा ॥ ११ ॥
तस्या परेण शैलस्तु मर्यादात्मात्ममण्डल ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक स उच्यते ॥ १२ ॥

उसक अनन्तर महती लोकस्थिति दिखलायी पडती ह। वहाँकी द्विगुणित समस्त भूमि स्वर्णमयी ओर शिलाके समान है। उमके आगे सूर्यमण्डलकी मर्यादास्वरूप एक मर्यादा पवत है। (इसका एक भाग) प्रकाशित (तथा दूसरा) अप्रकाशित रहता है। इसीलिये वह लाकालोक (पर्वत) कहलाता है॥ ११-१२॥

योजनाना सहस्राणि दश तस्योच्छ्रय स्मृत ।
तावानेव च विस्तारा लाकालोका महागिरि ॥ १३ ॥
समावृत्य तु त शैल सर्वतो वै तम स्थितम्।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १४ ॥

एते सप्त महालोका पाताला सप्त कीर्तिता ।
ब्रह्माण्डस्यैष विस्तार सक्षेपेण मयोदित ॥ १५ ॥
अण्डानामीदृशाना तु कोट्यो ज्ञेया सहस्रश ।
सर्वगत्वात् प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मन ॥ १६ ॥

लोकालोक नामक इस महान् पर्वतकी ऊँचाई दस हजार योजन कही गयी है और उतना ही इसका विस्तार (फैलाव) भी है। इस पर्वतको सभी ओरसे आवृतकर अन्धकार स्थित है और यह अन्धकार अण्डकटाह (चारा ओर विद्यमान ब्रह्माण्डरूपी कटाह)-के द्वारा चारो ओरसे परिवेष्टित है। यह अण्डकटाह ही सात महालोक और सात पातालके रूपमे प्रसिद्ध है। मैंने सक्षेपम ब्रह्माण्डका यह विस्तार बतलाया। प्रधान कारणरूप और अव्ययात्माके सर्वव्यापी होनेके कारण इस प्रकारक हजारो करोड ब्रह्माण्ड हैं, ऐसा समझना चाहिये॥ १३—१६॥

अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश।
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादय ॥ १७ ॥
दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम् ।
समन्तात् सस्थित विप्रा यत्र यान्ति मनीषिण ॥ १८ ॥
अनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधन महत्।
अतीत्य वर्तते सर्वं जगत् प्रकृतिरक्षरम्॥ १९ ॥
अनन्तत्वमनन्तस्य यत सख्या न विद्यते।
तदव्यक्तमिति ज्ञेय तद् ब्रह्म परम पदम्॥ २० ॥

इन सभी ब्रह्माण्डाम चौदह भुवन होत हैं, इन सभीम चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि होते हैं। हे विप्रो! (ब्रह्माण्डके) चारों ओर सात आवरण हैं, वे परिमाणमे क्रमश एक दूसरसे दस गुना अधिक हैं। यहाँ मनीषी लोग जाते हैं। अनन्त, अद्वितीय, अव्यक्त, अनादिनिधन, महत् और जगत्के प्रकृतिस्वरूप अक्षर (ब्रह्म) इन सभी (आवरणों)-का अतिक्रमणकर विद्यमान रहते हैं। इनकी कोई सख्या नहीं होती इसीलिये इन्हे अनन्त कहा जाता है। इन्हे ही अव्यक्त समझना चाहिये। ये ही ब्रह्म परम पद (अन्तिम प्राप्तव्य) हैं॥ १७—२० ॥

अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते।
तस्य पूर्वं मयाप्युक्त यत्तन्माहात्म्यमव्ययम्॥ २१ ॥
गत स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु वर्तते।
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न सशय ॥ २२ ॥
तथा तमसि सत्त्वे च एष एव महाद्युति ।
अनेकधा विभक्ताङ्ग क्रीडते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥
महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिद जगत्॥ २४ ॥

ये अनन्त सर्वत्र सभी स्थानोंम हैं, ऐसा कहा गया है। इनका जो अव्यय माहात्म्य है, मैंने भी पूर्वमे उसका वर्णन किया है। वही ये (परमात्मा) ही भूमि, रसातल, आकाश वायु, अग्नि, सभी समुद्रा तथा स्वर्ग—सर्वत्र सभी स्थानामे विद्यमान हैं, इसम कोई सदेह नहीं। ये ही महाद्युतिमान् पुरुषोत्तम अन्धकार तथा (प्रकाशात्मा) सत्त्वम विद्यमान होते हुए अपने अङ्गाको अनेक रूपाम विभक्तकर क्रीडा करते हैं। महेश्वर अव्यक्तसे परे हैं। अण्ड अव्यक्तसे उत्पन्न होता हे। अण्डसे ब्रह्मा उत्पन्न हैं और उन्होंने इस ससारकी सृष्टि की है॥ २१—२४ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

स्वारोचिषसे वैवस्वत मन्वन्तरतकके देवता, सप्तर्षि, इन्द्र आदिका वर्णन, नारायणद्वारा ही विभिन्न मन्वन्तरोंमें सृष्टि आदिका प्रतिपादन, भगवान् विष्णुकी चार मूर्तियोंका विवेचन, विष्णुका माहात्म्य

ऋषय ऊचु

अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि तु।
तानि त्व कथयास्माक व्यासाश्च द्वापरे युग॥१॥
वदशाखाप्रणयन दवदवस्य धीमत ।
तथावतारान् धर्मार्थमीशानस्य कलो युग॥२॥
कियन्तो दवदेवस्य शिष्या कलियुगषु वै।
एतत् सर्व समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥३॥

ऋषियान कहा—(सूतजी!) आप हम बीते हुए तथा आनवाल जो मन्वन्तर हैं, उन्हें (बतलाइये) और द्वापर युगके व्यासोंको भी बतलाये। सूतजी! वेदकी शाखाओंका प्रणयन कैस हुआ धर्म (-की स्थापना)-क लिये कलियुगमें हुए दवाधिदव बुद्धिमान् ईशान (व्यास)-के कितने अवतार हुए और कलियुगोंमें देवाधिदेव (व्यास)-के कितने शिष्य हुए—यह सब भी आप सक्षेपमें बतलाये॥१—३॥

सूत उवाच

मनु स्वायम्भुव पूर्व तत स्वारोचिषो मनु ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥
षडते मनवोऽतीता साम्प्रत तु रवे सुत ।
वैवस्वतोऽय यस्यैतत् सप्तम वर्ततेऽन्तरम्॥५॥
स्वायम्भुव तु कथित कल्पादावन्तर मया।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्व मनो स्वारोचिषस्य तु॥६॥

सूतजी बाल—पहले स्वायम्भुव मनु थ। तदनन्तर स्वारोचिष मनु हुए। पुन उत्तम तामस रैवत तथा चाक्षुष मनु हुए। य छ बीत हुए मनु हैं। इस समय सूर्यक पुत्र वैवस्वतका यह सातवाँ मन्वन्तर प्रवृत्त है। कल्पके आदिमें होनेवाले स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन मैंने किया। इसके अनन्तर स्वारोचिष मनुका वर्णन सुनो॥४—६॥

पारावताश्च तुषिता देवा स्वारोचिषेऽन्तर।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्रो बभूवासुरसूदन ॥७॥
ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तो ऽथ वृषभस्तथा।
तिमिरश्चार्वरीवाश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥८॥

स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत तथा तुषित नामके देवता और असुरोंका विनाश करनेवाले विपश्चित् नामक देवेन्द्र हुए। ऊर्ज्ज स्तम्भ प्राण दान्त, वृषभ तिमिर और अर्वरीवान्—ये सात सप्तर्षि हुए॥७-८॥

चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुता स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तर शृणु चोत्तरम्॥९॥
तृतीयेऽप्यन्तरे विप्रा उत्तमो नाम वै मनु ।
सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षण ॥१०॥
सुधामानस्तथा सत्या शिवाश्चाथ प्रतर्दना ।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशका स्मृता ॥११॥
रजोर्ध्वश्चोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानयस्तथा।
सुतपा शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥१२॥

स्वारोचिषके चैत्र और किंपुरुष आदि पुत्र थे। इस प्रकार दूसरे मन्वन्तरको मैंने बतलाया अब इसके परवर्ती (मन्वन्तर)-का वर्णन सुनिये। हे विप्रो! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और शत्रुनाशक सुशान्ति नामवाले देवेन्द्र हुए। सुधामा, सत्य शिव प्रतर्दन और वशवर्ती—बारह बारह देवताओंवाले—ये पाँच गण कहे गये हैं। रज ऊर्ध्व, ऊर्ध्वबाहु सबल अनय सुतपा और शुक्र—ये सात सप्तर्षि हुए॥९—१२॥

तामसस्यान्तरे देवा सुरा वाहरयस्तथा।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणा ॥१३॥
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षण ।
बभूव शकरे भक्तो महादेवार्चने रत ॥१४॥
ज्योतिर्धर्मा पृथु काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा।
पीवरस्त्वृषयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे॥१५॥

तामस मन्वन्तरमें सुर वाहरि सत्य तथा सुधी—ये सत्ताईस-सत्ताईसकी सख्यावाले गणदेवता थे। इसी प्रकार सौ यज्ञोंको करनेवाले शिबि नामक इन्द्र थे। ये शकरके

भक्त और महादवकी आराधनामे रत रहते थे। उस मन्वन्तरम भी ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर नामक—ये सात ऋषि हुए॥ १३—१५॥

पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामत ।
मनुर्वसुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दन ॥ १६॥
अमिताभा भूतरया वैकुण्ठा स्वच्छमेधस ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश॥ १७॥
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च।
वेदबाहु सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनि ।
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे॥ १८॥
स्वारोचिषश्चात्तमश्च तामसा रैवतस्तथा।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनव स्मृता ॥ १९॥

विप्रेन्द्रा। पाँचवे मन्वन्तरम रैवत नामवाले मनु ओर असुराका मर्दन करनवाल वसु नामवाले इन्द्र हुए। अमिताभ, भूतरय वैकुण्ठ और स्वच्छमेधा—ये चौदह-चौदहकी सख्यावाले (चार) गणदवता थे। हे विप्रो। रैवत मन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वदश्री, ऊर्ध्वबाहु वदवाहु सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—ये सप्तर्षि हुए। स्वारोचिष उत्तम तामस तथा रैवत—ये चार मनु प्रियव्रतके वशज कह जाते हैं॥ १६—१९॥

षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजा ।
मनोजवस्तथैवन्द्रो दवानपि निबोधत॥ २०॥
आद्या प्रसूता भाव्याश्च पृथुगाश्च दिवौकस ।
महानुभावा लेख्याश्च पञ्चैते ह्यष्टका गणा ॥ २१॥
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधु ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्नृषय शुभा ॥ २२॥

हे द्विजो। छठे मन्वन्तरक मनु चाक्षुप हैं। इस मन्वन्तरक इन्द्रका नाम मनोजव है। (अब) देवताआको सुनो—आद्य प्रसूत भाव्य पृथुग और लेख्य—य पाँच महानुभाव आठ-आठकी सख्यावाले देवताआक गण हैं। सुमेधा विरजा हविष्मान्, उत्तम मधु, अतिनाम और सहिष्णु—ये सात कल्याणकारी ऋषि ह॥ २०—२२॥

विवस्वत सुतो विप्रा श्राद्धदेवो महाद्युति ।
मनु स वर्तते धीमान् साम्प्रत सप्तमेऽन्तर॥ २३॥
आदित्या वसवो रुद्रा दवास्तत्र मरुद्गणा ।
पुरदरस्तथैवेन्द्रा बभूव परवीरहा॥ २४॥
वसिष्ठ कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतम ।
विश्वामित्रो भरद्वाज सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ २५॥
विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ।
तदशभूता राजान सर्वे च त्रिदिवौकस ॥ २६॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाकूत्या मानस सुत ।
रुचे प्रजापतेर्यज्ञस्तदशेनाभवद् द्विजा ॥ २७॥
तत पुनरसौ देव प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे।
तुषिताया समुत्पन्नस्तुषितै सह दैवतै ॥ २८॥

विप्रो। विवस्वान्‌के पुत्र बुद्धिमान् एव महान् तेजस्वी श्राद्धदेव इस समय सातवे मन्वन्तरके मनु ह। आदित्य, वसुगण, रुद्र तथा मरद्गण इसम देवता हैं। इसी प्रकार वीर शत्रुआका नाश करनेवाले पुरन्दर नामवाले (इस मन्वन्तरक) इन्द्र हे। वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गातम विश्वामित्र तथा भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं। (इस मन्वन्तरम) विष्णुकी अनुपम सत्त्वगुणमयी शक्ति (सृष्टिकी) रक्षाके लिये स्थित है। सभी राजा ओर सभी देवगण इसी (विष्णुशक्ति)-क अशसे उत्पन्न हैं। द्विजा। स्वायम्भुव मन्वन्तरम सर्वप्रथम प्रजापति रुचिका आकृति (नामक पत्नी)-से यज्ञ नामक मानस पुत्र हुआ यह विष्णुका अश था। तदनन्तर पुन वे ही देव (विष्णु) स्वारोचिष मन्वन्तरके आनेपर तुषितासे तुषित नामके देवताआक साथ उत्पन्न हुए॥ २३—२८॥

औत्तमेऽप्यन्तरे विष्णु सत्यै सह सुरात्तमै ।
सत्यायामभवत् सत्य सत्यरूपो जनार्दन ॥ २९॥
तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि।
हर्याया हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरि ॥ ३०॥

औत्तम मन्वन्तरमे सत्यरूप जनार्दन विष्णु सत्य नामक श्रेष्ठ देवताआके साथ सत्य नामधारी सत्यासे उत्पन्न हुए और तामस नामक मन्वन्तर आनपर साक्षात् ये हरि ही हरि नामक देवताआके साथ हर्यासे हरि इस नामसे उत्पन्न हुए॥ २९-३०॥

रैवतेऽप्यन्तरे चैव सम्भूत्या मानसोऽभवत्।
सम्भूतो मानसै सार्धं देवै सह महाद्युति ॥ ३१॥
चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतै सह॥ ३२॥

मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे।
वामन कश्यपाद् विष्णुरदित्या सम्बभूव ह॥ ३३॥
त्रिभि क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना।
पुरन्दराय त्रैलोक्य दत्त निहतकण्टकम्॥ ३४॥

रैवत मन्वन्तरमे भी मानस नामक देवताओके साथ महान् द्युतिमान् हरि सम्भूतिसे मानस नामसे उत्पन्न हुए। चाक्षुष मन्वन्तरमे भी वे पुरुषोत्तम वैकुण्ठ नामक देवताओके साथ विकुण्ठासे वैकुण्ठ नामसे उत्पन्न हुए और वैवस्वत नामक मन्वन्तर आनेपर वे विष्णु कश्यप और अदितिसे वामन नामसे उत्पन्न हुए। इन्हीं महात्माने अपने तीन पगासे समस्त लोकोको जीतकर पुरन्दर इन्द्रको निष्कण्टक त्रैलोक्य (-का राज्य) प्रदान किया॥ ३२—३४॥

इत्येतास्तनवस्तस्य सप्त मन्वन्तरेषु वै।
सप्त चैवाभवन् विप्रा याभि सरक्षिता प्रजा॥ ३५॥
यस्माद् विष्टमिद कृत्स्न वामनेन महात्मना।
तस्मात् स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्धाता प्रवेशनात्॥ ३६॥
एष सर्वं सृजत्यादौ पाति हन्ति च केशव।
भूतान्तरात्मा भगवान् नारायण इति श्रुति॥ ३७॥

हे विप्रो! सात मन्वन्तरोमे ये ही सात उन (विष्णु)-के विग्रह हुए, जिनसे प्रजाओकी रक्षा हुई। महात्मा वामनने इस सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त किया था इसीलिये 'विश्' धातुका प्रवेश अर्थ होनेके कारण वे (वामन) विष्णु कहलाये। ये केशव प्रारम्भमे समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और (अन्तमे) उसका सहार करते हैं। भगवान् नारायण सभी प्राणियोकी अन्तरात्मा हैं—ऐसा वेदका कथन है॥ ३५—३७॥

एकाशेन जगत् सर्वं व्याप्य नारायण स्थित।
चतुर्धा सस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च॥ ३८॥
एका भगवतो मूर्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला।
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला॥ ३९॥
द्वितीया कालसज्ञान्या तामसी शेषसज्ञिता।
निहन्ति सकल चान्ते वैष्णवी परमा तनु॥ ४०॥
सत्त्वोद्रिक्ता तथैवान्या प्रद्युम्नेति च सज्ञिता।
जगत् स्थापयते सर्वं स विष्णु प्रकृतिर्ध्रुवा॥ ४१॥
चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्तिर्ब्राह्मीति सज्ञिता।
राजसी चानिरुद्धाख्या प्रद्युम्न सृष्टिकारिका॥ ४२॥

ये नारायण अपने एक अशसे सम्पूर्ण ससारको व्याप्तकर प्रतिष्ठित रहते हैं। ये निर्गुण होते हुए भी सगुण रूपसे चार भागोमे विभक्त होकर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हैं। (ये ही चार भाग भगवान् नारायणकी चार मूर्तियाँ हैं। इनमे) भगवान्की वासुदेव नामवाली पहली मूर्ति ज्ञानरूप कल्याणकारिणी, निर्मल, गुणातीत और कलारहित है। दूसरी काल और शेष नामवाली वह तामसी मूर्ति विष्णुकी परम विग्रहरूपा मूर्ति है। यही अन्तमे सबका सहार करती है। इसी प्रकार सत्त्वगुणमयी प्रद्युम्न नामवाली अन्य (तीसरी) मूर्ति सम्पूर्ण जगत्की स्थापना (पालन) करती है, यही विष्णुकी ध्रुवा प्रकृति है। इन तीनो मूर्तियोके अतिरिक्त वासुदेवकी ब्राह्मी तथा अनिरुद्ध नामवाली चौथी राजसी मूर्ति है यह प्रद्युम्न नामक मूर्ति सृष्टि करनेवाली है॥ ३८—४२॥

य स्वपित्यखिल भूत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभु।
नारायणाख्यो ब्रह्माऽसौ प्रजासर्ग करोति स॥ ४३॥
या सा नारायणतनु प्रद्युम्नाख्या मुनीश्वरा।
तया सम्मोहयेद् विश्व सदेवासुरमानुषम्॥ ४४॥
सैव सर्वजगत्सूति प्रकृति परिकीर्तिता।
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरि॥ ४५॥
प्रधान पुरुष कालस्तत्त्वत्रयमनुत्तमम्।
वासुदेवात्मक नित्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते॥ ४६॥

जो प्रभु सम्पूर्ण (सृष्टि)-के रूपमे होकर प्रद्युम्नके साथ शयन करते हैं नारायण नामवाले वे ही ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करते हैं। मुनीश्वरो! वह जो प्रद्युम्न नामवाली नारायणकी मूर्ति है उसके द्वारा वे (नारायण) देवता असुर तथा मनुष्योसे युक्त विश्वको मोहित करते हैं। वही सम्पूर्ण ससारको उत्पन्न करनेवाली प्रकृति कही गयी हैं। अनन्तात्मा वासुदेव हरि अद्वितीय एव निर्गुण हैं। प्रधान पुरुष और काल—ये श्रेष्ठ तीन तत्त्व नित्य वासुदेवमय हैं। इनको जान लेनेपर मुक्ति हो जाती है॥ ४३—४६॥

एक वेद चतुष्पादं चतुर्धा पुनरच्युत।
बिभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो हरिरव्यय॥ ४७॥

उन अच्युत वासुदेव नामक प्रद्युम्न अव्यय हरिने चतुष्पादात्मक एक वेदको चार भागोमे विभक्त किया॥ ४७॥

कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायण - स्वयम्।
अपान्तरतमा पूर्वं स्वेच्छया - ह्यभवद्धरि ॥४८॥
अनाद्यन्त पर ब्रह्म न देवा नर्षयो विदु ।
एकोऽय वेद भगवान् व्यासो नारायण प्रभु ॥४९॥

पूर्वकालमे स्वय अपान्तरतमा[1] नारायण हरि विष्णु ही स्वेच्छासे कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। आदि और अन्तरहित परम ब्रह्मको न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही, एकमात्र प्रभु नारायणरूप ये भगवान् व्यास ही उन्हे जानते हैं॥४८-४९॥

इत्येतद् विष्णुमाहात्म्यमुक्त वो- मुनिपुगवा ।
एतत् सत्य पुन सत्यमेव ज्ञात्वा न मुह्यति॥५०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने आप लोगाको यह विष्णुका माहात्म्य बतलाया यह सत्य है, पुन सत्य हे, ऐसा जाननेसे माह नहीं होता॥ ५०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहिताया पूर्वविभागे एकोनपञ्चाशोऽध्याय ॥ ४९ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

अट्ठाईस व्यासोका वर्णन, अट्ठाईसवे कृष्णद्वैपायनद्वारा वेदसहिताका विभाजन तथा पुराणेतिहासकी रचना, वेदकी शाखाओका विस्तार तथा विष्णुके माहात्म्यका कथन

सूत उवाच

अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं वर्तमाने महान् विभु ।
द्वापर प्रथमे व्यासो मनु स्वायम्भुवो मत ॥१॥
बिभेद बहुधा वेद नियोगाद् ब्रह्मण प्रभो ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यास प्रजापति ॥२॥
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद् बृहस्पति ।
सविता पञ्चमे व्यास षष्ठे मृत्यु प्रकीर्तित ॥३॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मत ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृत ॥४॥
एकादशे तु त्रिवृष शततेजास्तत पर ।
त्रयोदशे तथा धर्मस्तरक्षुस्तु चतुर्दशे॥५॥

सूतजी बोले—इस वर्तमान मन्वन्तरके प्रारम्भिक प्रथम द्वापरमे महान् विभु स्वायम्भुव मनुको व्यास माना गया है। प्रभु ब्रह्माकी आज्ञासे उन्होने वेदका अनेक प्रकारसे विभाजन किया। दूसरे द्वापरमे प्रजापति वेदव्यास हुए। तीसरेम शुक्राचार्य व्यास हुए और चौथेम बृहस्पति (व्यास) हुए। पाँचवम सूर्य व्यास हुए और छठेम मृत्युको व्यास कहा गया है। इसी प्रकार सातवम इन्द्र और आठवेमे वसिष्ठ (व्यास) माने गये हैं। नवेमे सारस्वत तथा दसवेम त्रिधामा (व्यास) माने गये हैं। ग्यारहवमे त्रिवृष तदनन्तर (बारहवमे) शततेजा, तेरहवेमे धर्म और चोदहवेमे तरक्षु (व्यास) कहे गये हैं॥ १—५॥

त्र्यारुणिर्वै पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जय ।
कृतञ्जय सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जय ॥ ६ ॥
ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतम ।
राजश्रवाश्चैकविंशस्तस्माच्छुष्मायण पर ॥ ७ ॥
तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्पर स्मृत ।
पञ्चविंशे तथा शक्ति षड्‌विंशे तु पराशर ॥ ८ ॥

पद्रहवेमे त्र्यारुणि, सालहवमें धनजय सत्रहवमे कृतजय और अठारहवम ऋतजयको व्यास कहा गया है। तदनन्तर (उन्नीसवेम) भरद्वाज व्यास हुए। उससे आगे (बीसवेम) गौतम हुए। राजश्रवा इक्कीसवें (द्वापर)-में और फिर (बाईसवेंमें) श्रेष्ठ शुष्मायण व्यास हुए। तेईसवेम तृणबिन्दु और उसके बाद (चौबीसवम) वाल्मीकिको व्यास कहा गया है।

१-अपान्तरतमा—यह आर्षप्रयोग 'अप्=जलके अन्तरतम अर्थात् जलके अन्तस्तलमें शयन करनेवालेके' अर्थमें हो सकता है। यदि 'अपारान्ततमा' पाठ हो तो जिनका अन्तनम-सर्वान्तिम शेष अपार है—अगम्य है—यह अर्थ मानकर प्रस्तुत प्रसग समञ्जस हो सकता है।

पच्चीसवेमें शक्ति और छब्बीसवेम पराशर ही व्यास हुए॥ ६—८॥

सप्तविंशे तथा व्यासो जातूकर्णो महामुनि ।
अष्टाविंशे पुन प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजा ।
पराशरसुतो व्यास कृष्णद्वैपायनोऽभवत्॥ ९ ॥
स एव सर्ववेदाना पुराणाना प्रदर्शक ।
पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरि ॥१०॥
आराध्य देवमीशान दृष्ट्वा साम्ब त्रिलोचनम्।
तत्प्रसादादसौ व्यास वेदानामकरोत् प्रभु ॥११॥
अथ शिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनि च सुमन्तु च वैशम्पायनमेव च।
पैल तेषा चतुर्थं च पञ्चम मा महामुनि ॥१२॥

हे द्विजो! सत्ताईसवेम महामुनि जातूकर्ण व्यास हुए और फिर इस अट्ठाईसव द्वापर युगम पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। वे ही सभी वेदो और पुराणोके प्रदर्शक है। पराशरके पुत्र महायोगी कृष्णद्वैपायन हरिने पार्वतीके साथ त्रिलोचन शकरकी आराधना करके उनका दर्शन किया और उन्हींक अनुग्रहसे उन प्रभु व्यासने वेदोका विभाग किया। तदनन्तर उन महामुनिन वेदके पारगत चार शिष्योको ग्रहण किया। (ये चार शिष्य) जैमिनि सुमन्तु, वैशम्पायन और चौथे पैल हैं। मुझे अपना पाँचवा शिष्य बनाया॥ ९—१२॥

ऋग्वेदश्रावक पैल जग्राह स महामुनि ।
यजुर्वेदप्रवक्तार वैशम्पायनमेव च॥१३॥
जैमिनि सामवेदस्य श्रावक सोऽन्वपद्यत।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तु मामयोजयत्॥१४॥

उन महामुनिने ऋग्वेदके श्रोता पैलको ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रवक्ता वैशम्पायनको यजुर्वेद ग्रहण कराया। इसी तरह उन्होने सामवेदके श्रोता जैमिनिको सामवद तथा अथर्ववदके श्रोता ऋषिश्रेष्ठ सुमन्तुको अथर्ववदका ग्रहण कराया। ऐसे ही इतिहास तथा पुराणाक प्रवचनमें मुझ श्रीकृष्णद्वैपायनने नियुक्त किया॥ १३-१४॥

एक आसीद्यजुर्वेदस्त चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूद् यस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥१५॥
आध्वर्यव यजुर्भि स्यादृग्भिर्होत्र द्विजोत्तमा ।
औद्गात्र सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्व चाप्यथर्वभि ॥१६॥
तत स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेद कृतवान् प्रभु ।
यजूषि च यजुर्वेद सामवद च सामभि ॥१७॥
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेद कृतवान् पुरा।
शाखाना तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत्॥१८॥
सामवद सहस्रेण शाखाना प्रबिभेद स ।
अथर्वाणमथो वेद बिभेद नवकेन तु॥१९॥

(प्रारम्भम) यजुर्वेद एक ही था। उसका चार भाग हुआ। उसीसे चातुर्होत्रकी उत्पत्ति हुई और उससे (श्रीव्यासने) यज्ञ किया। द्विजोत्तमो! (उस यज्ञम) यजुर्वेदके मन्त्रोद्वारा अध्वर्युस सम्बद्ध कर्म, ऋक्-मन्त्रोसे होताका कर्म साममन्त्रोंस उद्गाताका कर्म और अथर्वमन्त्रोके द्वारा ब्रह्माका कर्म सम्पन्न हुआ। तदनन्तर उन प्रभुन ऋचाओको अलग कर ऋग्वेदका प्रणयन किया। इसी प्रकार यजुर्मन्त्रोके समूहको यजुर्वेद[1] और साममन्त्रोके समूहको सामवेदसहिता बनायी। पहले उन्होंने ऋग्वेदको इक्कीस भागों (शाखाओ)-मे और यजुर्वेदको सौ शाखाओम विभक्त किया। इसी प्रकार उन्होंने सामवदको हजार शाखाओम विभक्त किया तथा अथर्ववेदको नौ भागों (शाखाओ)-म बाँटा॥ १५—१९॥

भेदैरष्टादशैर्व्यास पुराण कृतवान् प्रभु ।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेद पूर्वं पुरातनात्॥२०॥
ओङ्कारो ब्रह्मणो जात सर्वदोषविशोधन ।
वेदवेद्यो हि भगवान् वासुदेव सनातन ॥२१॥
स गीयते परो वेदे यो वेदैन स वेदवित्।
एतत् परतर ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम्॥२२॥
वेदवाक्योदित तत्त्व वासुदेव पर पदम्।
वेदवेद्यमिम वेत्ति वेद वेदपरो मुनि ॥२३॥

प्रभु व्यासन पुराणसहिताके अठारह भेद किये। पूर्वकालमें सभी दोषोको दूर करनेवाला पुरातन वही चतुष्पाद प्रणवरूप एक वद ब्रह्मासे आविर्भूत हुआ। सनातन भगवान् वासुदेव

१-यहाँ यजुर्वेद एव सामवदसे यजु सहिता एवं सामसहिता समझना चाहिए। वेदका दूसरा भाग 'ब्राह्मण' होता है। यह केवल मन्त्रोंका संग्रह नहीं है। वेद शब्द मन्त्र एव ब्राह्मण—दोनोंका बोधक होता है।

वेदोद्वारा जानने योग्य हैं। वेदाद्वारा उन्हीं परम (पुरुष)-का गान किया जाता है। जो इन्हे (परम पुरुषको) जानता है, वही वेदको जाननेवाला है। ये ही परात्पर ब्रह्म, ज्योतिरूप और श्रेष्ठ आनन्द हैं। वेदवाक्योद्वारा प्रतिपादित तत्त्व वासुदेव ही परमपद हैं। वेदपरायण मुनि वेदाद्वारा जानने योग्य इन्हीं (वासुदेवरूप) वेदको जानते हैं॥ २०—२३॥

अवेद परम वेत्ति वेदनिष्ठ सदेश्वर।
स वेदवेद्यो भगवान् वेदमूर्तिर्महेश्वर।
स एव वेदो वेद्यश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते॥ २४॥
इत्येदक्षर वेद्यमोङ्कार वेदमव्ययम्।
अवेद्य च विजानाति पाराशर्यो महामुनि॥ २५॥

जो परम अवेद्यको जानते हैं तथा वेदनिष्ठ, सदेश्वर, वेदमूर्ति, महेश्वर हैं वे भगवान् वेदोद्वारा ज्ञात होने योग्य हैं। वे ही भगवान् वेद हैं, वे ही (वेदसे) जानने योग्य हैं और उन्हींका आश्रय ग्रहण करनेसे मुक्ति मिलती है। पराशरके पुत्र महामुनि वेदव्यास (ही) इस अविनाशी जानने योग्य प्रणवस्वरूप अव्यय वेद और अवेद अर्थात् ज्ञात न हो सकने योग्य (परमतत्त्व)-को भी जानते हैं॥ २४-२५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चाशोऽध्याय ॥५०॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवॉ अध्याय

कलियुगमे महादेवके अवतारो तथा उनके शिष्योका वर्णन, भविष्यमे होनेवाले सात मन्वन्तरोका नाम-परिगणन, कूर्मपुराणके पूर्वविभागका उपसहार

सूत उवाच

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु।
महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रता॥ १॥
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युति।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद् वैवस्वतेऽन्तरे॥ २॥
हिमवच्छिखरे रम्ये छगले पर्वतोत्तमे।
तस्य शिष्या शिखायुक्ता बभूवुरमितप्रभा॥ ३॥
श्वेत श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्य श्वेतलोहित।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगा॥ ४॥

सूतजी बोले—सुव्रतो! द्वापरमें (होनेवाले) वेदव्यासके अवतारोंको कहा गया, अब (आपलोग) कलियुगमें होनेवाले महादेवके अवतारोको सुने—वैवस्वत मन्वन्तरके पहले कलियुगमे विप्राके हितार्थ अतितेजस्वी देवाधिदेव (शकर) श्वेत नामसे पर्वतोमें श्रेष्ठ हिमालयके रमणीय छगल नामक शिखरपर अवतरित हुए। उनके शिष्य शिखायुक्त और अमित प्रभावाले हुए। श्वेत -श्वेतशिख श्वेतास्य तथा श्वेतलोहित—ये चार वेदके पारगत महात्मा ब्राह्मण (प्रथम कलियुगमें) थे॥ १—४॥

सुभानो दमनश्चाथ सुहोत्र कङ्कणस्तथा।
लोकाक्षिरथ योगीन्द्रो जैगीषव्यस्तु सप्तमे॥ ५॥
अष्टमे दधिवाह स्यान्नवमे वृषभ प्रभु।
भृगुस्तु दशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्र पर स्मृत॥ ६॥
द्वादशेऽत्रि समाख्यातो बली चाथ त्रयोदशे।
चतुर्दशे गौतमस्तु वेदशीर्षा तत परम्॥ ७॥

सुभान, दमन सुहोत्र, कङ्कण और योगीन्द्र लोकाक्षिके रूपमें क्रमश दूसरेसे छठे कलियुगतक महादेवका अवतार हुआ तथा सातवे (कलियुग)-म जैगीषव्य नामसे महादेवका अवतार हुआ। आठवेमे दधिवाह, नवमे प्रभु वृषभ दसवमे भृगु और उसके आगे (ग्यारहवे कलियुगम) उग्रक रूपम महादेवका अवतार हुआ। बारहवेमें अत्रि, तेरहवमे बली, चौदहवेम गौतम और उसके बाद (पद्रहवें कलियुगम) वेदशीर्षाके रूपमे महादव अवतरित हुए॥ ५—७॥

गोकर्णश्चाभवत् तस्माद् गुहावास शिखण्ड्यथ।
जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली क्रमात्॥ ८॥
श्वेतस्तथा पर शूली डिण्डी मुण्डी च वै क्रमात्।
सहिष्णु सोमशर्मा च नकुलीशोऽन्तिमे प्रभु॥ ९॥

तदनन्तर क्रमश गाकर्ण गुहावास, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लाङ्गली ओर इनके बाद श्वत शूली, डिण्डी, मुण्डी, सहिष्णु, सोमशमा तथा अन्तिम प्रभु नकुलीशके रूपम महादवका अवतार हुआ॥ ८-९॥

वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिन ।
अष्टाविशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभो ।
तीर्थे कायावतारे स्याद् देवेशो नकुलीश्वर ॥१०॥
तत्र देवादिदेवस्य चत्वार सुतपोधना ।
शिष्या बभूवुश्चान्येषा प्रत्येक मुनिपुगवा ॥११॥
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमाश्रिता ।
क्रमेण तान् प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान्॥१२॥

वैवस्वत मन्वन्तरम त्रिशूल धारण करनेवाले प्रभु शम्भुके अट्ठाईस अवतार कहे गये ह। अन्तिम कलियुगम कायावतार नामक तीर्थम दवेश्वर नकुलीश्वरके रूपम महादवका अवतार हागा। मुनिपुगवा! उस समय देवाक आदिदव (महादेव)-क तीव्र तपस्याक धनी चार शिष्य हुए। (अन्य अवतारा)-मे भी प्रत्येकक (चार) शिष्य हुए। व सभी प्रसन्न मनवाले इन्द्रियनिग्रही और ईश्वरकी भक्ति करनेवाल थ। उन श्रेष्ठ याग जाननेवाल यागियाका मैं क्रमश वर्णन करता हूँ॥ १०—१२॥

श्वेत श्वतशिखश्चैव श्वेतास्य श्वतलाहित ।
दुन्दुभि शतरूपश्च ऋचीक कतुमास्तथा।
विकशश्च विशोकश्च विशाप शापनाशन ॥१३॥
सुमुखा दुर्मुखश्चैव दुर्दमा दुरतिक्रम ।
सन सनातनश्चैव कुमारश्च सनन्दन ॥१४॥
दालभ्यश्च महायागी धर्मात्माना महौजस ।
सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपात्रज एव च॥१५॥

श्वत श्वतशिख श्वतास्य श्वतलाहित दुन्दुभि शतरूप ऋचीक कतुमान्, विकश विशाक विशाप शापनाशन सुमुख दुमुख दुदम दुरतिक्रम सनक सनातन सनत्कुमार सनन्दन महायागी दालभ्य सुधामा विरजा और शङ्खपात्रज। (व धमात्मा और महान् ओजस्वी थ)॥१३—१५॥

सारस्वतस्तथा मघा घनवाह सुवाहन ।
कपिलश्चासुरिश्चैव वाढु पञ्चशिखा मुनि ॥१६॥
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
वलबन्धुर्निरामित्र केतुशृङ्गस्तपोधन ॥१७॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशक ।
सर्वज्ञ समबुद्धिश्च साध्य सत्यस्तथैव च॥१८॥
सुधामा काश्यपश्चेव वसिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठक ॥१९॥
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीर कुनेत्रक ।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पति ॥२०॥
उतथ्या वामदवश्च महाकायो महानिल ।
वाचश्रवा सुपीकश्च श्यावाश्व सपथीश्वर ॥२१॥

(एस ही) सारस्वत मघ घनवाह, सुवाहन, कपिल आसुरि वोढु मुनि पञ्चशिख पराशर, गर्ग, भार्गव अङ्गिरा-बलबन्धु, निरामित्र तपाधन कतुशृग लम्बादर, लम्ब, लम्बाक्ष लम्बकशक, सर्वज्ञ समबुद्धि साध्य सत्य सुधामा काश्यप वसिष्ठ विरजा अत्रि उग्र श्रवण श्रविष्ठक, कुणि कुणिबाहु कुशरीर, कुनत्रक कश्यप उशना, च्यवन बृहस्पति उतथ्य वामदव महाकाय महानिल वाचश्रवा सुपीक, श्यावाश्व और सपथीश्वर (नामक शिष्य महादवके अवताराक थे)॥१६—२१॥

हिरण्यनाभ कौशल्यो लाकाक्षि कुथुमिस्तथा।
सुमन्तुर्वर्चरी विद्वान् कबन्ध कुशिकन्धर ॥२२॥
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
भल्लापी मधुपिङ्गश्च श्वतकेतुस्तपानिधि ॥२३॥
उशिजो बृहदुक्थश्च दवल कविरेव च।
शालिहोत्रोऽग्निवश्यश्च युवनाश्व शरद्वसु ॥२४॥
छगल कुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहक ।
उलूका विद्युतश्चैव शाद्वला ह्याश्वलायन ॥२५॥
अक्षपाद कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
कुशिकश्चैव गगश्च मित्रको ऋष्य एव च॥२६॥

(इनक अतिरिक्त) हिरण्यनाभ कौशल्य लाकाक्षि कुथुमि सुमन्तु, बर्बरी विद्वान् कबन्ध कुशिकन्धर प्लक्ष दाभायणि कतुमान्, गौतम भल्लापी मधुपिङ्ग तपानिधि श्वतकतु, उशिज बृहदुक्थ दवल कपि शालिहात्र अग्निवश्य युवनाश्व शरद्वसु छगल कुण्डकर्ण कुम्भ प्रवाहक

उलूक, विद्युत, शाद्वल, आश्वलायन अक्षपाद कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और ऋष्य (नामक शिष्य थे)॥ २२—२६॥

शिष्या एते महात्मान सर्वावर्तेषु योगिनाम्।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणा ॥ २७॥
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणाना हिताय हि।
योगेश्वराणामादेशाद् वेदसस्थापनाय वै॥ २८॥
ये ब्राह्मणा सस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयु ॥ २९॥
इद वैवस्वत प्रोक्तमन्तर विस्तरेण तु।
भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च॥ ३०॥
दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्मसावर्ण एव च।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रोचमानस्त्रयोदश ।
भौत्यश्चतुर्दश प्रोक्तो भविष्या मनव क्रमात्॥ ३१॥

योगियो[1]के समस्त अवतारोकी आवृत्तिमे ये ही महात्मा शिष्य होते हैं। ये सभी शुद्ध, ब्रह्मभूयिष्ठ और ज्ञान-योगपरायण हैं। ब्राह्मणोके कल्याणके लिये तथा वेदोकी स्थापनाके लिये योगेश्वर(परब्रह्म)-के आदेशसे (ये महात्मा) अवतार धारण करते है। जो ब्राह्मण सर्वदा इनका स्मरण करते हैं, इन्हे नमस्कार करते हैं, इनका तर्पण करते हैं और इनकी पूजा करते हैं, वे ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरका विस्तारसे वर्णन किया। सावर्ण (आठवाँ) तथा (नवाँ) दक्षसावर्ण मन्वन्तर भविष्यमे होगे। दसवाँ ब्रह्मसावर्ण, ग्यारहवाँ धर्मसावर्ण, बारहवाँ रुद्रसावर्ण तथा तेरहवाँ रोचमान मन्वन्तर है। चौदहवाँ भौत्य मन्वन्तर कहा गया है। ये मनु क्रमसे भविष्यमे होगे॥ २७—३१॥

अय व कथितो ह्यश पूर्वो नारायणेरित ।
भूतभव्यैर्वर्तमानैराख्यानैरुपबृहित ॥ ३२॥
य पठेच्छृणुयाद् वापि श्रावयेद् वा द्विजोत्तमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मणा सह मोदते॥ ३३॥
पठेद् देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि।
नारायण नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम्॥ ३४॥
नमो देवादिदेवाय देवाना परमात्मने।
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥ ३५॥

मैंने नारायणद्वारा कहे गये भूत, भविष्य तथा वर्तमानके आख्यानोसे उपबृहित इस पूर्वभागको आप लोगोसे कहा। जो (ब्राह्मण) इसे पढेगा, सुनेगा अथवा श्रेष्ठ द्विजोको[2] सुनायेगा वह सभी पापोसे मुक्त होकर ब्रह्माके साथ आनन्द प्राप्त करेगा। स्नान करनेके अनन्तर नदियोके किनारोपर अथवा देवमन्दिरमे भक्तिभावसे पुरुषोत्तम नारायणको नमस्कारकर इसका पाठ करना चाहिये। देवोके आदिदेव, देवोके परमात्मा पुराण पुरुष कूर्मरूपी विष्णुको नमस्कार है॥ ३२—३५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायां पूर्वविभागे एकपञ्चाशोऽध्याय ॥५१॥

॥ पूर्वविभाग समाप्त ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके पूर्वविभागमे इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५१॥

॥ पूर्वविभाग समाप्त ॥

१- योगी-महादेव-विष्णु आदि। ये लोग परम योगी है।

२-द्विजोको आगे करके पुराण-श्रवण करानेकी विधि है। पुराण-श्रवणका अधिकार अन्य वर्णोंको भी है। द्विज मुख्यरूपसे सात्त्विक वृत्तिके होते हैं तथा प्राणिमात्रका कल्याण ही इनका लक्ष्य होता है, इसीलिये इसकी प्रमुखता है।
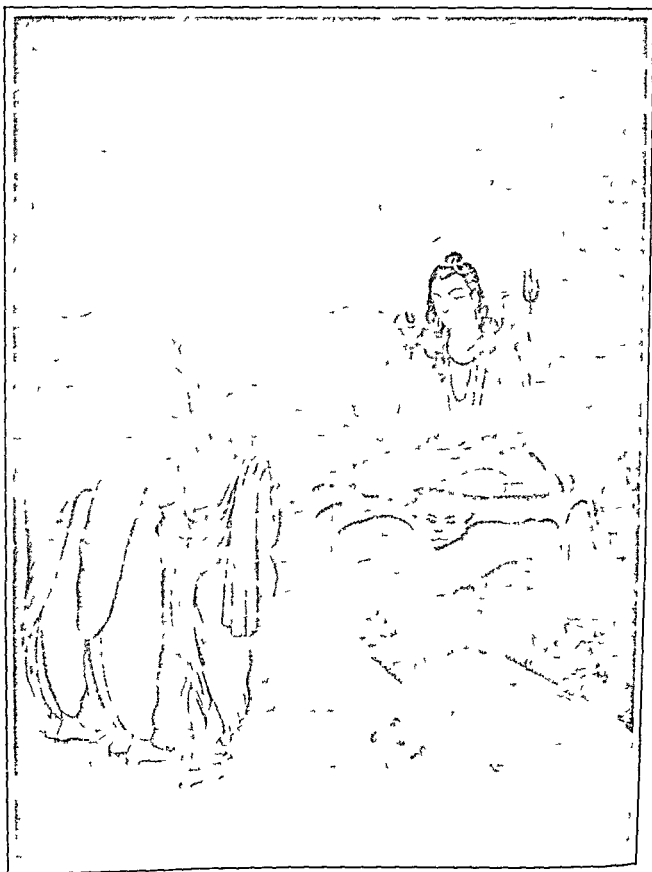
भगवान् शंकरद्वारा ईश्वरगीताका उपदेश

॥ श्रीहरि ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नम ॥

कूर्मपुराण

[उपरिविभाग]

पहला अध्याय

ईश्वर (शिव) तथा ऋषियोके सवादमे ईश्वरगीताका उपक्रम

(ईश्वरगीता प्रारम्भ)

ऋषय ऊचु

भवता कथित सम्यक् सर्ग स्वायम्भुवस्तत ।
ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तारो मन्वन्तरविनिश्चय ॥ १ ॥
तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परै ।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्य कथितस्त्वया ॥ २ ॥
तद्वदाशेषससारदु खनाशमनुत्तमम् ।
ज्ञान ब्रह्मैकविषय येन पश्येम तत्परम् ॥ ३ ॥
त्व हि नारायणात् साक्षात् कृष्णद्वैपायनात् प्रभो ।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वा पृच्छामहे पुन ॥ ४ ॥

ऋषियोंने कहा—(सूतजी!) आपने स्वायम्भुव मन्वन्तरकी सृष्टि तदुपरान्त इस ब्रह्माण्डका विस्तार और (अन्य विभिन्न) मन्वन्तरोंके विषयमें भलीभाँति बतलाया तथा उन (मन्वन्तरों)-में धर्मपरायण ज्ञानयोगी वर्णधर्मके अनुयायियोके नित्य आराध्य ईश्वरोके ईश्वर देवका भी वर्णन आपने किया। इसीके साथ ही आपने सम्पूर्ण ससारके दु खाको नष्ट करनेवाले एकमात्र ब्रह्मविषयक उस उत्तम ज्ञानका भी वर्णन किया, जिसके द्वारा हम उस परम तत्त्वको देख सकते हैं। प्रभो! आपने साक्षात् नारायण कृष्णद्वैपायन (व्यासजी)-से सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, इसलिये हम आपसे पुन पूछते हैं ॥ १—४ ॥

श्रुत्वा मुनीना तद् वाक्य कृष्णद्वैपायन प्रभुम्।
सूत पौराणिक स्मृत्वा भाषितु ह्युपचक्रमे ॥ ५ ॥
अथास्मिन्नन्तरे व्यास कृष्णद्वैपायन स्वयम्।
आजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्र समासते ॥ ६ ॥
त दृष्ट्वा वेदविद्वास कालमेघसमद्युतिम्।
व्यास कमलपत्राक्ष प्रणेमुर्द्विजपुगवा ॥ ७ ॥
पपात दण्डवद् भूमौ दृष्ट्वासौ रोमहर्षण ।
प्रदक्षिणीकृत्य गुरु प्राञ्जलि पार्श्वगोऽभवत् ॥ ८ ॥
पृष्टास्तेऽनामय विप्रा शौनकाद्या महामुनिम्।
समाश्वास्यासन तस्मै तद्योग्य समकल्पयन् ॥ ९ ॥

मुनियोंके उस वाक्यको सुनकर पौराणिक सूतजीने प्रभु कृष्ण-द्वैपायनका स्मरणकर कहना प्रारम्भ किया। इसी बीच कृष्णद्वैपायन व्यास स्वय वहाँ पहुँच गये, जहाँ श्रेष्ठ मुनिजन यज्ञ कर रहे थे। कृष्ण मेघके समान द्युतिवाले तथा कमलपत्रके समान नेत्रवाले उन वेदके विद्वान् व्यासजीको देखकर श्रेष्ठ द्विजोने उन्हे प्रणाम किया। रोमहर्षण सूतजीने भी उन्हे देखकर भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और गुरुकी प्रदक्षिणाकर हाथ जोडते हुए उनके पार्श्व-भागमे खडे हो गये। महामुनि (व्यास)-के द्वारा आरोग्यके विषयमें प्रश्न पूछे जानेपर उसका यथोचित उत्तर देकर शौनक आदि महामुनियाने व्यासजीको आश्वस्त किया तथा उनके योग्य आसन उन्हे प्रदान किया ॥ ५—९ ॥

अथैतानब्रवीद् वाक्य पराशरसुत प्रभु ।
कच्चिन्न तपसो हानि स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च ॥ १० ॥
तत स सूत स्वगुरु प्रणम्याह महामुनिम्।
ज्ञान तद् ब्रह्मविषय मुनीना वक्तुमर्हसि ॥ ११ ॥
इमे हि मुनय शान्तास्तापसा धर्मतत्परा ।
शुश्रूषा जायते चैषा वक्तुमर्हसि तत्त्वत ॥ १२ ॥

ज्ञान विमुक्तिद दिव्य यन्मे साक्षात् त्वयोदितम्।
मुनीना व्याहृत पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा॥१३॥
श्रुत्वा सूतस्य वचन मुनि सत्यवतीसुत।
प्रणम्य शिरसा रुद्र वच प्राह सुखावहम्॥१४॥

तदनन्तर पराशरजीके पुत्र प्रभु (व्यास)-ने उनसे पूछा— क्या आप लोगोके तप, स्वाध्याय तथा श्रवण किये गये वेदादिकी हानि तो नहीं हो रही है? तब उन सूतने अपने गुरु महामुनि (व्यास)-को प्रणामकर कहा—आप ब्रह्मविषयक ज्ञान मुनियाको बतलाय। ये मुनि शान्त, तपस्वी तथा धर्मपरायण हैं। इन्हे सुननेकी इच्छा है, आप (कृपया) यथार्थरूपसे ब्रह्मविषयक सर्वोच्च ज्ञानका उपदेश कर। मोक्ष प्रदान करनेवाले जिस दिव्य ज्ञानको आपने मुझे तथा पूर्वकालमे कूर्मरूप धारणकर विष्णुने मुनियोको बतलाया था (इस समय आप उसी ज्ञानका उपदेश दे)। सूतके वचन सुनकर सत्यवतीके पुत्र मुनि (व्यास)-ने रुद्रको मस्तकद्वारा प्रणामकर सुखदायक बचन कहा—॥१०—१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेव पृष्टा योगीश्वरै पुरा।
सनत्कुमारप्रमुखै स्वय यत् समभाषत॥१५॥
सनत्कुमार सनकस्तथैव च सनन्दन।
अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगु परमधर्मवित्॥१६॥
कणाद कपिलो योगी वामदवो महामुनि।
शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे सयतमानसा॥१७॥
परस्पर विचार्यैते सशयाविष्टचेतस।
तप्तवन्तस्तपो घोर पुण्ये बदरिकाश्रमे॥१८॥
अपश्यस्ते महायोगमृषि धर्मसुत शुचिम्।
नारायणमनाद्यन्त नरेण सहित तदा॥१९॥
सस्तूय विविधै स्तोत्रै सर्वे वेदसमुद्भवै।
प्रणेमुर्भक्तिसयुक्ता योगिनो योगवित्तमम्॥२०॥

व्यासजी बोले—प्राचीन कालमे सनत्कुमार आदि प्रमुख योगीश्वराद्वारा पूछनेपर स्वय प्रभु महादेवने जो कहा था उसीको मै कहता हूँ। सनत्कुमार सनक सनन्दन अगिरा रुद्रसहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद कपिल योगी महामुनि वामदव शुक्र तथा भगवान् वसिष्ठ—इन सभी सयमित चित्तवाले मुनियाने सशयान्वित हानपर परस्पर परामर्श करके पवित्र बदरिकाश्रमम घोर तप किया। तब उन ला आदि और अन्तसे रहित धर्मपुत्र महायोगी पवित्र नारा नामक ऋषिका नरक साथ दर्शन किया। उन भक्तिस योगियोने वदाम वर्णित विविध स्तोत्रोद्वारा स्तुति करके श्रेष्ठ योगीको प्रणाम किया॥१५—२०॥

विज्ञाय वाञ्छित तेषा भगवानपि सर्ववित्।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तप॥२१
अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मान सनातनम्।
साक्षान्नारायण देवमागत सिद्धिसूचकम्॥२

सर्वज्ञ भगवान् (नारायण)-ने उनके अभीष्टको जान पुन गम्भीर वाणीम उनसे पूछा कि आपलोग कि प्रयोजनसे तपस्या कर रहे हैं? प्रसन्न मनवाले ऋषिय जिनका शुभ आगमन अभीष्ट-सिद्धिकी निश्चित सूच देता है (ऐसे) उन विश्वात्मा, सनातन साक्षात् नारायणदेव कहा—॥२१-२२॥

वय, सशयमापन्ना सर्वे वै ब्रह्मवादिन।
भवन्तमेक शरण प्रपन्ना पुरुषोत्तमम्॥२३
त्व हि तद् वेत्थ परम सर्वज्ञो भगवानृषि।
नारायण स्वय साक्षात् पुराणोऽव्यक्तपूरुष॥२४
नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वर।
शुश्रूषास्माकमखिल सशय छेत्तुमर्हसि॥२५
कि कारणमिद कृत्स्न कोऽनुससरते सदा।
कश्चिदात्मा च का मुक्ति ससार किनिमित्तक॥२६
क ससारयतीशान को वा सर्वं प्रपश्यति।
कि तत् परतर ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि॥२७।

(भगवन्!) हम सभी ब्रह्मवादी सशयमे पड गये हैं आप पुरुषोत्तम हैं हम एकमात्र आपकी शरणमे आये हैं। आप उस परम तत्त्वको जाननेवाले है सर्वज्ञ भगवान्, ऋषि तथा स्वय साक्षात् नारायण अव्यक्त पुराणपुरुष हैं। परमश्वर। आपको छाडकर अन्य कोई दूसरा जाननेवाला नहीं है हम सुननेकी इच्छा है आप सम्पूर्ण सशयको दूर करनेम समर्थ हैं। इस सम्पूर्ण (कार्यरूप जगत्)-का कारण क्या है? कौन नित्य गतिशील रहता ह? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है और ससार (की रचना)-का क्या प्रयोजन है? इस ससारका चलानेवाला शासक कौन हैं? अथवा सबका द्रष्टा

कौन है? परात्पर ब्रह्म क्या है? यह सब आप हमे बतलाय॥ २३—२७॥

एवमुक्ते तु मुनय प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम्।
विहाय तापस रूप संस्थित स्वेन तेजसा॥ २८॥
विभ्राजमान विमल प्रभामण्डलमण्डितम्।
श्रीवत्सवक्षस देव तप्तजाम्बूनदप्रभम्॥ २९॥
शङ्खचक्रगदापाणि शार्ङ्गहस्त श्रियावृतम्।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा॥ ३०॥

ऐसा कहे जानेपर मुनियाने तपस्वी-रूपका परित्याग किये हुए, अपने तेजद्वारा प्रतिष्ठित, प्रकाशमण्डलसे मण्डित, वक्ष स्थलमें श्रीवत्स धारण किये हुए, तप्त स्वर्णके समान आभावाले और हाथोमे शख चक्र गदा तथा शार्ङ्ग नामका धनुष धारण किये हुए लक्ष्मीसहित विमल एव द्युतिमान् पुरुषोत्तम देवका दर्शन किया। उस समय उन्हींके तेजके कारण नर (ऋषि) नहीं दिखलायी पडे॥ २८—३०॥

तदन्तरे महादेव शशाङ्काङ्कितशेखर।
प्रसादाभिमुखो रुद्र प्रादुरासीन्महेश्वर॥ ३१॥
निरीक्ष्य ते जगन्नाथ त्रिनेत्र चन्द्रभूषणम्।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या त परमेश्वरम्॥ ३२॥

उसी समय चन्द्रमासे अकित मस्तकवाले महादव महेश्वर रुद्र प्रसन्नतापूर्वक प्रकट हुए। चन्द्रभूषण जगन्नाथ त्रिलोचनका दर्शनकर प्रसन्न मनवाले वे सभी (मुनि) भक्तिपूर्वक उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे—॥ ३१-३२॥

जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव।
जयाशषमुनीशान तपसाभिप्रपूजित॥ ३३॥
सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्तक।
जयानन्त जगज्जन्मत्राणसहारकारण॥ ३४॥
सहस्रचरणशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर॥ ३५॥

ईश्वरकी जय हो। भूतपति महादेव शिवकी जय हो। सभी मुनियाके स्वामी तथा तपस्याद्वारा भलीभाँति प्रपूजित होनेवाले आपकी जय हो। सहस्रमूर्ति! विश्वात्मन्! ससाररूपी यन्त्रक प्रवर्तक और ससारक जन्म रक्षा ओर सहारके कारण ह अनन्त! आपकी जय हो। हजारा चरणवाले ईशान शम्भु, यागीन्द्राद्वारा वन्दित अम्बिकापति! आपकी जय हो। परमेश्वरदेव! आपको नमस्कार है॥ ३३—३५॥

सस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सल।
समालिङ्ग्य हृषीकेश प्राह गम्भीरया गिरा॥ ३६॥
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिन।
इम समागता देश किं वा कार्यं मयाच्युत॥ ३७॥
आकर्ण्य भगवद्वाक्य देवदेवो जनार्दन।
प्राह देवो महादेव प्रसादाभिमुख स्थितम्॥ ३८॥
इमे हि मुनयो देव तापसा क्षीणकल्मषा।
अभ्यागता मा शरण सम्यग् दर्शनकाङ्क्षिण॥ ३९॥
यदि प्रसन्नो भगवान् मुनीना भावितात्मनाम्।
संनिधौ मम तज्ज्ञान दिव्य वक्तुमिहार्हसि॥ ४०॥

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् त्र्यम्बक ईशने हृषीकेशका आलिगनकर गम्भीर वाणीमे कहा—हे अच्युत! पुण्डरीकाक्ष! ये ब्रह्मवादी मुनीन्द्र किस कारणसे इस स्थानपर आये हैं अथवा मुझे क्या करना है? भगवान्‌के वाक्यको सुनकर देवाधिदेव जनार्दनदेवने कृपा करनेके लिये उद्यत सामने स्थित महादेवसे कहा—देव! ये सभी मुनिगण तपस्वी और निष्पाप हैं, ये लोग भलीभाँति तत्त्वदर्शनकी इच्छासे मेरी शरणमे आये हैं। हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न है तो मरे समीप इन भावनामय मुनियाको वह दिव्य ज्ञान प्रदान करे॥ ३६—४०॥

त्व हि वेत्थ स्वमात्मान न ह्यन्यो विद्यते शिव।
ततस्त्वमात्मनात्मान मुनीन्द्रेभ्य प्रदर्शय॥ ४१॥
एवमुक्त्वा हृषीकेश प्रोवाच मुनिपुगवान्।
प्रदर्शयन् योगसिद्धि निरीक्ष्य वृषभध्वजम्॥ ४२॥
संदर्शनान्महेशस्य शकरस्याथ शूलिन।
कृतार्थं स्वयमात्मान ज्ञातुमर्हथ तत्त्वत॥ ४३॥
प्रष्टुमर्हथ विश्वेश प्रत्यक्ष पुरत स्थितम्।
ममैव संनिधावेष यथावद् वक्तुमीश्वर॥ ४४॥
निशम्य विष्णुवचन प्रणम्य वृषभध्वजम्।
सनत्कुमारप्रमुखा पृच्छन्ति स्म महेश्वरम्॥ ४५॥

शिव! केवल आप ही अपने-आपको जानते हैं दूसरा काई आपको जाननवाला नहीं है। अत आप स्वय इन मुनीन्द्राको अपना स्वरूप दिखलाय। ऐसा कहकर हृषीकेशने योगसिद्धियाको दिखाते हुए वृषभध्वजकी आर दखकर

श्रेष्ठ मुनियोंसे कहा—(हे मुनिगणो!) त्रिशूल धारण करनेवाले शकर महेशके दर्शनसे आपलोग अपने-आपको कृतार्थ समझें। आपलोग यथार्थरूपसे ज्ञान प्राप्त करने योग्य हैं, सामने प्रत्यक्ष स्थित विश्वेशसे (उस तत्त्वज्ञानके विषयमे) पूछें। मेरी सनिधिमे ये यथार्थरूपसे वर्णन करनेमे समर्थ हैं। विष्णुका (यह) वचन सुनकर तथा वृषभध्वजको प्रणामकर सनत्कुमार आदि (ऋषियों)-ने महेश्वरसे पूछा—॥ ४१—४५ ॥

अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासन विमल शिवम्।
किमप्यचिन्त्य गगनादीश्वरार्हं समुद्बभौ ॥ ४६ ॥
तत्रासमाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत्।
तेजसा पूरयन् विश्व भाति देवो महेश्वर ॥ ४७ ॥
त ते देवादिदेवेश शकर ब्रह्मवादिन ।
विभ्राजमान विमले तस्मिन् ददृशुरासने ॥ ४८ ॥
य प्रपश्यन्ति योगस्था स्वात्मन्यात्मानमीश्वरम्।
अनन्यतेजस शान्त शिव ददृशिरे किल ॥ ४९ ॥
यत प्रसूतिर्भूताना यत्रैतत् प्रविलीयते।
तमासनस्थ भूतानामीश ददृशिरे किल ॥ ५० ॥
यदन्तरा सर्वमेतद् यतोऽभिन्नमिद जगत्।
स वासुदेवमासीन तमीश ददृशु किल ॥ ५१ ॥

इसी बीच आकाशसे ईश्वरके योग्य एक अचिन्त्य दिव्य निर्मल आसन प्रकट हुआ। विश्वकर्ता वे योगात्मा (महेश्वर) विष्णुसहित उस आसनपर बैठ गये। अपने तेजसे विश्वको पूरित करते हुए महेश्वर देव वहाँ सुशोभित हो रहे थे। उन ब्रह्मवादियोंने उन प्रकाशमान देवाधिदेव शकरका उस निर्मल आसनपर सुशोभित होते हुए दर्शन किया। योगमें स्थित लोग अपनी आत्मामें जिन आत्मस्वरूप ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन्हीं अनन्य तेजस्वी शान्तस्वरूप शिवको उन ब्रह्मवादियोंने देखा, जिनसे समस्त प्राणियोकी उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब विलीन हो जाता है, उन प्राणियाके ईशको ब्रह्मवादियोंने आसनपर विराजमान देखा। जिनके भीतर यह सम्पूर्ण ससार है और यह जगत् जिनसे अभिन्न है, उन परमेश्वरका वासुदेवके साथ आसनपर विराजमान देखा॥ ४६—५१ ॥

प्रोवाच पृष्टो भगवान् मुनीना परमेश्वर ।
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्ष स्वात्मयोगमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥
तच्छृणुध्व यथान्यायमुच्यमान मयानघा ।
प्रशान्तमानसा सर्वे ज्ञानमीश्वरभाषितम् ॥ ५३ ॥

मुनियोंके पूछनेपर परमेश्वर (महेश्वर) भगवान् पुण्डरीकाक्ष (विष्णु)-की ओर देखकर अपने श्रेष्ठ योगका वर्णन करने लगे। शान्त-मनवाले अनघ मुनियो! आप सभी लोग सुनें। मैं ईश्वरद्वारा कहे गये ज्ञानका वर्णन यथोचितरूपसे कर रहा हूँ ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमे (ईश्वरगीताका) प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

आत्मतत्त्वके स्वरूपका निरूपण, साख्य एव योगके ज्ञानका अभेद, आत्मसाक्षात्कारके साधनाका वर्णन

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् विज्ञानमात्मगुह्य सनातनम्।
यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातय ॥ १ ॥
इद ज्ञान समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमा ।
न ससार प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिन ॥ २ ॥
गुह्याद् गुह्यतम साक्षाद् गोपनीय प्रयत्नत ।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माक ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३ ॥

ईश्वरने कहा—द्विजो! देवता लोग प्रयत्न करनेपर भी जिसे नहीं जान पाते हैं मेरा यह विज्ञान अत्यन्त गुह्य है, सनातन है एव बतलाने योग्य (भी) नहीं है। इस ज्ञानका आश्रय ग्रहणकर श्रेष्ठ द्विजगणोंने ब्रह्मभावको प्राप्त किया है। (इस ज्ञानके कारण) पूर्वकालमे भी ब्रह्मवादियोको पुन ससारमे आना नहीं पडा (अर्थात् इस ज्ञानसे ब्रह्मभाव अवश्य प्राप्त होता है और ब्रह्मभाव प्राप्त करनेके अनन्तर पुन ससारमे

आगमन नहीं होता)। यह ज्ञान गुह्यसे भी गुह्यतम है, इस साक्षात् ज्ञानको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये। आप भक्तिसम्पन्न ब्रह्मवादियाको आज मैं यह ज्ञान बतलाऊँगा॥ १—३॥

आत्मा य केवल स्वस्थ शान्त सूक्ष्म सनातन ।
अस्ति सर्वान्तर साक्षाच्चिन्मात्रस्तमस पर ॥ ४ ॥
सोऽन्तर्यामी स पुरुष स प्राण स महेश्वर ।
स कालोऽग्निस्तदव्यक्त स एवेदमिति श्रुति ॥ ५ ॥

जो आत्मा अद्वितीय, स्वस्थ, शान्त, सूक्ष्म, सनातन, सभीका अन्तरतम साक्षात् चिन्मात्र और तमोगुणसे परे है, वही (आत्मा) अन्तर्यामी है, पुरुष है, वही प्राण है, वही महेश्वर है, वही काल तथा अग्नि है और वही अव्यक्त है—ऐसा श्रुतिका कथन है॥ ४-५॥

अस्माद् विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते।
स मायी मायया बद्ध करोति विविधास्तनू ॥ ६ ॥
न चाप्यय संसरति न च ससारयेत् प्रभु ।
नाय पृथ्वी न सलिलं न तेज पवनो नभ ॥ ७ ॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्त न शब्द स्पर्श एव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि॥ ८ ॥
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमा ।
न कर्ता न च भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थत ॥ ९ ॥

इसीसे ससार उत्पन्न होता है और इसीमे विलीन हो जाता है। वह मायाका नियामक मायासे आबद्ध होकर अपनी इच्छासे मायाको अङ्गीकार कर विविध शरीराको उत्पन्न करता है। यह प्रभु आत्मा म तो गतिशील है और न गतिप्रेरक है। न यह पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है और न आकाश ही है। यह न प्राण है, न मन है, न अव्यक्त है, न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप, न रस और न गन्ध ही है। न अभिमानी[१] है, न वाणी ही है। द्विजोत्तमो। यह न हाथ, न पैर, न पायु (शौचेन्द्रिय) और न उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), न कर्ता, न भोक्ता तथा प्रकृति-पुरुष भी नहीं है। माया भी नहीं है, प्राण भी नहीं है, अपितु परमार्थत चैतन्यमात्र है॥ ६—९॥

यथा प्रकाशतमसो सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदैक्य न सम्बन्ध प्रपञ्चपरमात्मनो ॥ १० ॥

जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकारका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार (सासारिक) प्रपञ्च और परमात्माका भी कोई ऐक्य (अभेद्य आदि) सम्बन्ध नहीं हो सकता॥ १०॥

छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ।
तद्वत् प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थत ॥ ११ ॥
यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात् स्वभावत ।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि॥ १२ ॥
पश्यन्ति मुनयो युक्ता स्वात्मान परमार्थत ।
विकारहीन निर्दु खमानन्दात्मानमव्ययम्॥ १३ ॥

जिस प्रकार ससारमे धूप और छाया एक दूसरेसे विलक्षण हैं, वैसे ही पुरुष तथा प्रपञ्च भी तत्त्वत एक दूसरेसे भिन्न हैं। यदि आत्मा स्वभावसे मलिन, अस्वस्थ तथा विकारयुक्त होता तो उसकी मुक्ति सैकडो जन्मोंमें भी नहीं होती। योगयुक्त मुनिजन परमार्थत अपने विकाररहित, दु खशून्य, आनन्दस्वरूप अव्यय आत्माका दर्शन करते हैं॥ ११—१३॥

अह कर्ता सुखी दु खी कृश स्थूलेति या मति ।
सा चाहकारकर्तृत्वादात्मन्यारोप्यते जनै ॥ १४ ॥
वदन्ति वेदविद्वास साक्षिण प्रकृते परम्।
भोक्तारमक्षर शुद्ध सर्वत्र समवस्थितम्॥ १५ ॥
तस्मादज्ञानमूलो हि ससार सर्वदेहिनाम्।
अज्ञानादन्यथा ज्ञान तच्च प्रकृतिसंगतम्॥ १६ ॥

मैं कर्ता हूँ, सुखी, दु खी कृश एव स्थूल हूँ—इस प्रकारकी जो बुद्धि है, वह मनुष्योके द्वारा अहकारके कारण ही अपनी आत्मामे आरोपित है। वेदके विद्वान् लोग (आत्माको) साक्षी, प्रकृतिसे परे, भोक्ता, अक्षर, शुद्ध तथा सर्वत्र सम रूपसे व्याप्त बतलाते हैं। अतएव यह ससार सभी प्राणियोंके अज्ञानके कारण ही है। अज्ञानसे अन्यथा (विपरीत) ज्ञान होता है अर्थात् अज्ञानका नाश ज्ञानसे ही होता है और

१-'अहम्' इस शब्दका प्रयोक्ता नहीं है न 'अहम्' यह शब्द ही है।

यह प्रकृतिसगत (प्राणियोके मूल स्वभावके सर्वथा अनुकूल शाश्वत शान्तिरूप) होता है॥ १४—१६॥

नित्योदित स्वय ज्योति सर्वग पुरुष पर।
अहकाराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते॥ १७॥
पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्त नित्य सदसदात्मकम्।
प्रधान प्रकृति बुद्ध्वा कारण ब्रह्मवादिन॥ १८॥
तेनाय सगतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जन।
स्वात्मानमक्षर ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वत॥ १९॥

अहकारसे उत्पन्न अविवेकके कारण स्वय ज्योतिरूप, नित्य प्रकाशयुक्त सर्वव्यापी परम पुरुष अपनेको 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है। ब्रह्मवादी ऋषिगण प्रधान, प्रकृति और कारणको समझकर सत् एव असत्-स्वरूप, अव्यक्त नित्यतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं। कूटस्थ एव निरञ्जन होते हुए भी यह आत्मा उस (प्रधान प्रकृति आदि)-से सगत होकर स्वात्मस्वरूप अक्षर ब्रह्मका यथार्थरूपसे ज्ञान नहीं कर पाता॥ १७—१९॥

अनात्मन्यात्मविज्ञान तस्माद् दु ख तथेतरम्।
रागद्वेषादयो दोषा सर्वे भ्रान्तिनिबन्धना॥ २०॥
कर्मण्यस्य भवेद् दोष पुण्यापुण्यमिति स्थिति।
तद्वशादेव सर्वेषा सर्वदेहसमुद्भव॥ २१॥
नित्य सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जित।
एक स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावत॥ २२॥

अनात्मतत्त्वमे आत्मविषयक विज्ञानसे ही दु ख होता है तथा इसी प्रकारकी भ्रान्तिके कारण ही राग द्वेष आदि सभी दोष उत्पन्न होते हैं। इसके (भ्रान्त पुरुषके) कर्ममे ही दोष होता है इसी कारण पाप-पुण्यकी स्थिति बनती है और उन कर्मोंके अनुसार ही सभी प्रकारके देहकी उत्पत्ति होती है। यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी कूटस्थ और दोषोसे रहित है। यह अद्वितीय आत्मा मायारूप शक्तिके कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है स्वभावत इसमे भेद नहीं है॥ २०—२२॥

तस्माद‌द्वैतमेवाहुर्मुनय परमार्थत।
भेदो व्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसश्रया॥ २३॥
यथा हि धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्।
अन्त करणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते॥ २४॥
यथा स्वप्रभया भाति केवल स्फटिकोऽमल।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते॥ २५॥
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद् विचक्षणा।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञा पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टय॥ २६॥

इसी कारण मुनिजन आत्माको परमार्थत अद्वैत ही कहते हैं। व्यक्त (महत्तत्त्व, अहतत्त्व आदि)-के स्वभावसे जो भेद दिखलायी पडता है और यह भेद मूलत माया (प्रकृति)-के कारण ही है तथा यह आत्मा (पुरुष)-के आश्रित होकर ही सब कुछ करती है। जैसे धुएँके सम्पर्कसे आकाश मलिन नहीं होता, वैसे ही अन्त करणसे उत्पन्न होनेवाले भावोसे आत्मा लिप्त नहीं होता। जैसे अद्वितीय शुद्ध स्फटिक अपनी आभासे प्रकाशित होता है, वैसे ही उपाधियोसे रहित निर्मल आत्मा (अपने ही प्रकाशमे) प्रकाशित होता है। विद्वान् लोग इस ससारको ज्ञानस्वरूप ही कहते हैं, परतु दूसरे कुत्सित दृष्टि रखनेवाले अज्ञानी लोग इसे अर्थस्वरूप (विषयस्वरूप) मानते हैं॥ २३—२६॥

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावत।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तदृष्टिभि॥ २७॥
यथा सलक्ष्यते रक्त केवल स्फटिको जनै।
रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत् परमपूरुष॥ २८॥
तस्मादात्माक्षर शुद्धो नित्य सर्वगतोऽव्यय।
उपासितव्यो मन्तव्य श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभि॥ २९॥
यदा मनसि चैतन्य भाति सर्वत्रग सदा।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम्॥ ३०॥

भ्रान्त दृष्टिवाले पुरुषोंके द्वारा स्वभावत कूटस्थ निर्गुण, सर्वव्यापी और चैतन्य आत्मा अर्थरूपसे ही देखा जाता है। जिस प्रकार शुद्ध स्फटिक गुञ्जा आदि उपाधिके कारण लोगोको लाल वर्णका-सा दिखलायी पडता है वैसे ही परम पुरुष भी (मायाके द्वारा नाम-रूपात्मक उपाधियुक्त प्रतीत होनेके कारण अनेक रूपोमे दिखलायी पडता) है। इस कारण मोक्षके अभिलाषियोको अक्षर, शुद्ध नित्य सर्वव्यापी तथा अव्यय उस आत्माका श्रवण मनन तथा उपासना करनी चाहिये। (जिससे माया (अज्ञान)-की निवृत्ति हो तथा शुद्ध आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो) योगीके

मनम जब सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला चैतन्य सदा प्रकाशित होता है, तब वह योगी बिना किसी व्यवधानक आत्मभाव प्राप्त कर लेता है॥ २७—३०॥

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मान ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३१॥
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति।
एकीभूत परेणासौ तदा भवति केवल ॥ ३२॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता ।
तदासावमृतीभूत क्षेम गच्छति पण्डित ॥ ३३॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तार ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३४॥
यदा पश्यति चात्मान केवल परमार्थत ।
मायामात्र जगत् कृत्स्न तदा भवति निर्वृत ॥ ३५॥

(योगी) जब सभी प्राणियाको अपनी आत्माम अच्छी प्रकार स्थित देख लेता है और सभी प्राणियामें अपनेको स्थित देखता है तब उसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति हा जाती है। जब (योगी) समाधिकी अवस्थामे किसी भी प्राणीको (अपनेसे भिन्न) नहीं देखता (अर्थात् समस्त प्रपञ्चमे आत्मदर्शन करता है) तब वह उस परतत्त्वसे एकात्मभाव प्राप्त कर लेता है और अद्वितीय हो जाता है। उसके हृदयमे स्थित सभी कामनाएँ जब समाप्त हो जाती हैं तब वह पण्डित अमृतस्वरूप होकर (परम) कल्याण प्राप्त कर लेता है। (योगी) जब प्राणियोके पार्थक्यको एक तत्त्वम स्थित देखता है और उसी (तत्त्व)-से उनका विस्तार होना समझता है, तब उसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। जब वह परमार्थत (सर्वत्र) केवल अद्वितीय आत्माको ही देखता है और सम्पूर्ण जगत्को मायामात्र समझता है, तब वह मुक्त हो जाता है॥ ३१—३५॥

यदा जन्मजरादु खव्याधीनामेकभेषजम्।
केवल ब्रह्मविज्ञान जायतेऽसौ तदा शिव ॥ ३६॥
यथा नदीनदा लोके सागरेणैकता ययु ।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकता व्रजेत्॥ ३७॥

जब योगीको जन्म जरा दु ख और समस्त व्याधियाक एकमात्र औषध अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान हो जाता है, तब वह शिवरूप हो जाता है। जिस प्रकार ससारमे नद एव नदियाँ सागरके साथ एकरूपताको प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार यह आत्मा (जीवात्मा) निष्कल अक्षर (ब्रह्म)-के साथ एकत्व प्राप्त करता है॥ ३६-३७॥

तस्माद् विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न ससृति ।
अज्ञानेनावृत लोको विज्ञान तेन मुह्यति॥ ३८॥
तज्ज्ञान निर्मल सूक्ष्म निर्विकल्प यदव्ययम्।
अज्ञानमितरत् सर्वं विज्ञानमिति मे मतम्॥ ३९॥
एतद् व परम साख्य भाषित ज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसार हि योगस्तत्रैकचित्तता॥ ४०॥

इसलिये विज्ञानका ही अस्तित्व है, प्रपञ्च और ससरणशील ससारका अस्तित्व नहीं है। विज्ञान अज्ञानसे आवृत रहता है, इसीसे ससार (जीव) मोहमे पडता है। ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्पक और अव्यय है, अज्ञानके अतिरिक्त जो कुछ है, वह विज्ञान है—ऐसा मेरा मत है। यह आप लोगोको साख्य नामक परमोत्तम ज्ञान बतलाया। यह सम्पूर्ण वेदान्तका सार है। इसमे चित्तकी एकाग्रता ही योग है॥ ३८—४०॥

योगात् सजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योग प्रवर्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्य विद्यते क्वचित्॥ ४१॥
यदेव योगिनो यान्ति साख्यैस्तदधिगम्यते।
एक साख्य च योग च य पश्यति स तत्त्ववित्॥ ४२॥

योगसे ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञानसे योग प्रवर्तित (स्थिर) होता है। योग तथा ज्ञानसम्पन्न (पुरुष)-के लिये कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। योगी जिसे प्राप्त करते है, साख्यवेत्ताओके द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। जो साख्य और योगको एक ही समझता है, वह तत्त्वज्ञानी होता है॥ ४१-४२॥

अन्ये च योगिनो विप्रा ऐश्वर्यासक्तचेतस ।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव न त्वात्मैषामिति श्रुति ॥ ४३॥
यत्तत् सर्वगत दिव्यमैश्वर्यमचल महत्।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात्॥ ४४॥
एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वर ।
कीर्तित सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुख ॥ ४५॥

विप्रो! ऐश्वर्य (आठ प्रकारकी सिद्धियां एवं अन्य वैभव आदि)-में आसक्तचित्त अन्य योगीजन उसीमें डूबे रहते हैं, अतएव उन्हें आत्मतत्त्व प्राप्त नहीं होता—ऐसा श्रुति-वचन है। जो सर्वव्यापी, दिव्य ऐश्वर्यरूप, अचल और महत् (सर्वश्रेष्ठ) है, उसे ज्ञान और योगसम्पन्न पुरुष देहान्त होनेपर प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें सर्वात्मा, सर्वतोमुखके रूपमें प्रतिपादित, अव्यक्त, मायावी (मायाका अधिष्ठाता) तथा परमेश्वर-स्वरूप मैं ही यह आत्मा हूँ॥ ४३—४५॥

सर्वकामः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः ।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः ॥ ४६ ॥
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः ।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाकर्णः शृणोम्यहम् ॥ ४७ ॥
वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ॥ ४८ ॥
पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः ।
निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ॥ ५० ॥

मैं अन्तर्यामी, सनातन, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर और सभी ओर हाथ-पैरवाला हूँ। हाथ और पैरके बिना भी मैं गति करने एवं ग्रहण करनेवाला हूँ। (सभी प्राणियोंके) हृदयमें स्थित हूँ। बिना नेत्रोंके भी देखता हूँ और बिना कानोंके भी मैं सुनता हूँ। मैं इस समस्त प्रपञ्चको जानता हूँ, परंतु मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं। सूक्ष्मदर्शी ऋषि गुणरहित और विशुद्धरूप आत्माके हेतुस्वरूप उस श्रेष्ठ ऐश्वर्य (सर्वोत्कृष्ट ज्ञान)-का दर्शन (साक्षात्कार) करते हैं। ब्रह्मवादियो! मेरी मायासे मोहित होनेके कारण देवता भी जिस (तत्त्व)-को नहीं जानते उसे मैं कहता हूँ, आप लोग ध्यान लगाकर सुनें॥ ४६—५०॥

नाहं प्रशास्ता सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः ।
प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदुः ॥ ५१ ॥
यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः ।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥ ५२ ॥
तेषां हि वशमापन्ना माया मे विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमां शुद्धिं निर्वाणं ते मया सह ॥ ५३ ॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद् वेदानुशासनम् ॥ ५४ ॥

मायातीत मैं स्वभावतः सबका अनुशास्ता नहीं हूँ, तथापि इस जगत्‌को मैं प्रेरित करता हूँ, विद्वान् लोग इसका कारण जानते हैं (वह कारण अहैतुकी कृपा ही है।)। मेरा जो अत्यन्त गुह्यतम तथा सर्वव्यापी देह है, तत्त्वदर्शी योगीजन उसमें प्रविष्ट होते हैं और मेरे अविनाशी सायुज्य (नामक मोक्षको) प्राप्त करते हैं। मेरी विश्वरूपिणी माया उनके वशमें रहती है। वे मेरे साथ (मेरा सायुज्य प्राप्तकर) परम शुद्धि और निर्वाणको प्राप्त करते हैं। मेरी कृपासे सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। योगीन्द्रो! यह वेदोंका अनुशासन है॥ ५१—५४॥

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभिः ।
मदुक्तमेतद् विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम् ॥ ५५ ॥

ब्रह्मवादियोंको चाहिये कि वे मेरे द्वारा कहे गये इस सांख्य-योग-समन्वित विज्ञानको (अपने) पुत्र[1], शिष्य एवं योगियोंके अतिरिक्त और किसी दूसरेको प्रदान न करें॥ ५५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

१-ब्रह्मवादीका पुत्र अनुशासित ही होगा, इसलिये पुत्रको ज्ञानका अधिकारी माना गया है।

अभिमानका मूल कारण) अहकार उत्पन्न होता है। वही एक महान्[1] आत्मा 'अहकार' कहलाता है। तत्त्वचिन्तकोके द्वारा वह 'जीव' तथा 'अन्तरात्मा' इस नामसे कहा गया है॥ १२-१३ ॥

तेन वेदयते सर्वं सुख दु ख च जन्मसु।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मन स्यादुपकारकम्॥ १४॥
तेनाविवेकतस्तस्मात् ससार पुरुषस्य तु।
स चाविवेक प्रकृतौ सङ्गात् कालेन सोऽभवत्॥ १५॥
काल सृजति भूतानि काल सहरति प्रजा।
सर्वे कालस्य वशगा न काल कस्यचिद् वशे॥ १६॥

जीवनमे उसीके द्वारा सुख एव दु ख आदि सभीका अनुभव होता है। वह विज्ञानस्वरूप (विविध सासारिक ज्ञानका मूल) है। उस (अहकार)-का उपकारक मन है। उससे अविवेक उत्पन्न होता है और फिर उस अविवेकसे पुरुषका ससार बनता है। 'प्रकृति'से कालका सम्पर्क होनेसे वह अविवेक उत्पन्न होता है। काल ही प्राणियोकी सृष्टि करता है और काल ही प्रजाओका सहार करता है। सभी कालके वशीभूत हैं, काल किसीके वशमे नहीं है॥ १४—१६ ॥

सोऽन्तरा सर्वमेवेद नियच्छति सनातन।
प्रोच्यते भगवान् प्राण सर्वज्ञ पुरुषोत्तम॥ १७॥
सर्वेन्द्रियेभ्य परम मन आहुर्मनीषिण।
मनसश्चाप्यहकारमहकारान्महान् पर॥ १८॥
महत परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुष पर।
पुरुषाद् भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिद जगत्॥ १९॥
प्राणात् परतर व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वर।
सोऽह सर्वत्रग शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वर।
नास्ति मत्त पर भूत मा विज्ञाय विमुच्यते॥ २०॥

वह सनातन (काल) अन्त प्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण (विश्व)-का नियमन करता है। इस कालको भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियोने मनको सभी इन्द्रियोसे उत्कृष्ट एव मनसे अधिक उत्कृष्ट अहकारको और अहकारसे उत्कृष्ट महान्‌को (महत्तत्त्व) बतलाया है। महत्‌से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्तसे उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुषसे उत्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। यह सम्पूर्ण ससार उसीसे है। प्राणसे परतर व्योम है और व्योमसे अतीत अग्नि ईश्वर है। मैं वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूँ। मुझसे उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। मुझे जान लेनेसे मुक्ति हो जाती है॥ १७—२० ॥

नित्य हि नास्ति जगति भूत स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्त व्योमरूप महेश्वरम्॥ २१॥
सोऽह सृजामि सकल सहरामि सदा जगत्।
मायी मायामयो देव कालेन सह सङ्गत॥ २२॥
मत्सनिधावेष काल करोति सकल जगत्।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद् वेदानुशासनम्॥ २३॥

इस ससारमे एकमात्र मुझ अव्यक्त, व्योमरूप महेश्वरको छोडकर कोई भी स्थावर-जगमात्मक तत्त्व नित्य नहीं है अर्थात् महेश्वरको छोडकर सब कुछ अनित्य है। वही मैं मायावी तथा मायामय देव कालके ससर्गसे सम्पूर्ण (ससार)-की सदा सृष्टि करता हूँ और (फिर) सहार करता हूँ। मेरे सानिध्यमे ही यह काल (तत्त्व) सम्पूर्ण जगत्‌की (सृष्टि) करता है। वेदका यह कथन है कि अनन्तात्मा ही उस (काल)-को (इस कार्यमें) नियोजित करता है॥ २१—२३ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे (ईश्वरगीताका) तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३ ॥

---

[1] १-सृष्टिमे अहङ्कारका महत्त्वपूर्ण स्थान होनेसे उसके लिये 'महान् आत्मा' यह लाक्षणिक प्रयोग है।

चौथा अध्याय

शिव-भक्तिका माहात्म्य, शिवोपासनाकी सुगमता, ज्ञानरूप शिवस्वरूपका वर्णन, शिवकी तीन प्रकारकी शक्तियोका प्रतिपादन, शिवके परम तत्त्वका निरूपण

ईश्वर उवाच

वक्ष्य समाहिता यूय शृणुध्व ब्रह्मवादिन ।
माहात्म्य देवदेवस्य येनेद सम्प्रवर्तते ॥ १ ॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मवादियो! आपलोग ध्यान लगाकर सुन। जिससे यह सभी प्रवर्तित होता ह, उस देवाधिदवके माहात्म्यको म बताता हूँ॥ १ ॥

नाह तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥ २ ॥
अह हि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वग ।
मा सर्वसाक्षिण लाको न जानाति मुनीश्वरा ॥ ३ ॥
यस्यान्तरा सर्वमिद यो हि सर्वान्तर पर ।
सोऽह धाता विधाता च कालाऽग्निर्विश्वतोमुख ॥ ४ ॥
न मा पश्यन्ति मुनय सर्वेऽपि त्रिदिवौकस ।
ब्रह्मा च मनव शक्रा ये चान्ये प्रथितौजस ॥ ५ ॥

मैं न तो विविध प्रकारके तपस न दानसे और न यज्ञासे ही जानने याग्य हूँ। बिना उत्तम भक्तिके मनुष्य मुझ जान नहीं सकता। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला मै सभी भावाके अन्त मे प्रविष्ट रहता हूँ। परतु मुनीश्वरो! मुझ सर्वसाक्षीको ससार जान नहीं पाता। जिसके भीतर यह सब प्रतिष्ठित है और जो परम तत्त्व सभीके अन्त म स्थित है, मैं वही धाता, विधाता काल अग्नि तथा सभी ओर मुखवाला हूँ। सभी मुनि, देवता ब्रह्मा, मनु, इन्द्र ओर जो अत्यन्त तेजस्वी ह व भी मुझे नहीं देख पाते॥ २—५ ॥

गृणन्ति सतत वेदा मामेक परमश्वरम्।
यजन्ति विविधैरग्नि ब्राह्मणा वैदिकैर्मखै ॥ ६ ॥
सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मा लाकपितामह ।
ध्यायन्ति योगिनो देव भूताधिपतिमीश्वरम् ॥ ७ ॥
अह हि सर्वहविषा भाक्ता चैव फलप्रद ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसस्थित ॥ ८ ॥
मा पश्यन्तीह विद्वासा धार्मिका वेदवादिन ।
तेषा सनिहिता नित्य य भक्त्या मामुपासत ॥ ९ ॥
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते।
तेषा ददामि तत् स्थानमानन्द परम पदम् ॥ १० ॥

वेद मुझ अद्वितीय परमेश्वरकी निरन्तर स्तुति किया करते हैं। ब्राह्मण अनेक प्रकारके वेदिक यज्ञाके द्वारा अग्निस्वरूप मेरा यजन करते ह। सभी लोक तथा लोकपितामह ब्रह्मा मुझे नमस्कार करते ह। योगी जन सभी प्राणियाके अधिपति (मुझ) ईश्वर दवका ध्यान करते हैं। सबकी आत्मा और सर्वव्यापी मं ही सभी देवाके शरीराको धारण कर सम्पूर्ण हवियाका भाक्ता एव सभी फलाका प्रदाता हूँ। धार्मिक वेदनिष्ठ विद्वान् मेरा दर्शन करते ह। जो भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, में नित्य उनके समीपम रहता हूँ। धार्मिक ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वेश्य मेरी उपासना करत हैं। मैं उन्ह आनन्दस्वरूप परमपद नामक स्थान प्रदान करता हूँ॥ ६—१० ॥

अन्येऽपि ये विकर्मस्था शूद्राद्या नीचजातय ।
भक्तिमन्त प्रमुच्यन्ते, कालेन मयि सगता ॥ ११ ॥
न मद्भक्ता विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषा ।
आदावेतत् प्रतिज्ञात न म भक्त प्रणश्यति ॥ १२ ॥
या वै निन्दति त मूढो देवदेव स निन्दति।
या हि त पूजयेद् भक्त्या स पूजयति मा सदा ॥ १३ ॥
पत्र पुष्प फल तोय मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियत स मे भक्त प्रियो मत ॥ १४ ॥

अन्य भी जा विपरीत कर्म करनेके कारण शूद्र आदि निम्न जातियाम है, भक्तिपरायण होनपर व भी मुक्त हा जाते ह आर यथासमय मुझम लीन हा जाते हैं। मरे भक्त विनाशको प्राप्त नहीं हाते, मरे भक्त पापास रहित हो जाते हैं। मेन प्रारम्भम ही यह प्रतिज्ञा कर रखी ह कि मरे भक्तका विनाश नहीं होता। जो उस (भक्त)-की निन्दा करता हे, वह मूढ देवाधिदेव (शकर)-की ही निन्दा करता ह आर जो उस (भक्त)-की भक्तिपूर्वक पूजा करता ह (समझा कि) वह सदा मेरी ही पूजा करता ह। मरी आराधनाके लिय जो

नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल मुझे प्रदान करता है, वह मेरा प्रिय भक्त है, ऐसा समझना चाहिये॥ ११—१४॥

अह हि जगतामादौ ब्रह्माण परमेष्ठिनम्।
विधाय दत्तवान् वेदानशेषानात्मनि सृतान्॥ १५॥
अहमेव हि सर्वेषा योगिना गुरुरव्यय।
धार्मिकाणा च गोप्ताह निहन्ता वेदविद्विषाम्॥ १६॥

मैंने ही ससारकी सृष्टिके प्रारम्भमे परमेष्ठी ब्रह्माको सृष्टिकर अपनेमे प्रादुर्भूत सम्पूर्ण वेदोका उन्हे प्रदान किया। मैं ही सभी योगियोका अव्यय गुरु, धार्मिक जनोका रक्षक तथा वेदसे द्वेष रखनेवालोको विनष्ट करनेवाला हूँ॥ १५-१६॥

अह वै सर्वससारान्मोचको योगिनामिह।
ससारहेतुरेवाह सर्वससारवर्जित॥ १७॥
अहमेव हि सहर्ता स्त्रष्टाह परिपालक।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी॥ १८॥

मैं ही योगियोको समस्त ससारसे मुक्त करनेवाला हूँ। मैं ही ससारका कारण और सम्पूर्ण ससारसे विवर्जित (असससृष्ट) हूँ। मैं ही सहार करनेवाला और मैं ही सृष्टि तथा पालन करनेवाला मायावी हूँ। मेरी शक्ति माया है, वह ससारको मोहित करनेवाली है॥ १७-१८॥

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते।
नाशयामि तया माया योगिना हृदि सस्थित॥ १९॥
अह हि सर्वशक्तीना प्रवर्तकनिवर्तक।
आधारभूत सर्वासा निधानममृतस्य च॥ २०॥
एका सर्वान्तरा शक्ति करोति विविध जगत्।
आस्थाय ब्रह्मणो रूप मन्मयी मदधिष्ठिता॥ २१॥

मेरी ही जो पराशक्ति है, वह 'विद्या' इस नामसे कही जाती है। योगियोके हृदयमे रहते हुए मैं उस मायाको नष्ट कर देता हूँ। सभी शक्तियोका प्रवर्तन करनेवाला तथा निवर्तन करनेवाला मैं ही हूँ। मैं सभीका आधार और अमृतका आश्रय-स्थान हूँ। मुझमे अधिष्ठित और मेरी स्वरूपभूता जो सबके अन्तरमे स्थित अद्वितीय शक्ति है, वह ब्रह्माका रूप धारणकर विविध प्रकारके ससारकी सृष्टि करती है॥ १९—२१॥

अन्या च शक्तिर्विपुला सस्थापयति मे जगत्।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मय॥ २२॥
तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकल जगत्।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी॥ २३॥

और जो मेरी दूसरी विपुल शक्ति है वह अनन्त, जगन्नाथ, जगन्मय और नारायणका रूप धारणकर ससारकी स्थापना (पालन आदि कार्य) करती है। मेरी तीसरी जो रुद्ररूपिणी काल नामक महती तामसी शक्ति है, वह समस्त जगत्का सहार करती है॥ २२-२३॥

ध्यानेन मा प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे॥ २४॥
सर्वेषामेव भक्तानामिष्ट प्रियतरो मम।
यो हि ज्ञानेन मा नित्यमाराधयति नान्यथा॥ २५॥
अन्ये च ये त्रयो भक्ता मदाराधनकाङ्क्षिण।
तेऽपि मा प्राप्नुवन्त्येव नावर्तन्ते च वै पुन॥ २६॥
मया ततमिद कृत्स्न प्रधानपुरुषात्मकम्।
मय्येव सस्थित विश्व मया सम्प्रेर्यते जगत्॥ २७॥

कुछ लोग ध्यानद्वारा कुछ दूसरे लोग ज्ञानद्वारा कुछ भक्तियोगके द्वारा और कुछ कर्मयोगके द्वारा मेरा दर्शन करते है। जो किसी अन्य प्रकारसे नहीं, अपितु केवल ज्ञानद्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, वह सभी भक्तोमे मुझे प्रिय है, प्रियतर है अर्थात् अत्यन्त प्रिय है। अन्य भी जो मेरी आराधना करनेके अभिलाषी तीन (प्रकारके) भक्त हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। मेरे द्वारा ही यह सम्पूर्ण प्रधान और पुरुषरूप ससार व्याप्त है। यह विश्व मुझमे ही स्थित है और मेरे द्वारा ही ससार प्रेरित किया जाता है॥ २४—२७॥

नाह प्रेरयिता विप्रा परम योगमाश्रित।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृत॥ २८॥
पश्याम्यशेषमेवेद वर्तमान स्वभावत।
करोति कालो भगवान् महायोगेश्वर स्वयम्॥ २९॥
योग सम्प्रोच्यते योगी माया शास्त्रेषु सूरिभि।
योगेश्वरोऽसौ भगवान् महादेवो महान् प्रभु॥ ३०॥

हे विप्रो! परम योगमे ही सदा निरत रहनेवाला मैं प्रेरक नहीं हूँ, तथापि सम्पूर्ण जगत्को मैं प्रेरित करता हूँ, इस (रहस्य)-को जो जानता है वह अमर हो जाता[१] है।

१ इसका आशय यह है कि महेश्वर प्रेरक होते हुए भी प्रेरणासे आसक्तिसे सर्वथा रहित हैं। अहैतुकी कृपावश ही प्रेरक बनते हैं।

अपने स्वभाववश प्रवर्तमान समस्त जगत्‌का मैं साक्षीमात्र हूँ। महायोगेश्वर भगवान् काल स्वय ही (जगत्‌की सृष्टि) करते है। विद्वानाने शास्त्रोम जिसे योग, योगी और माया कहा है, वह सब प्रभु महादेव भगवान् महायोगेश्वर ही हैं अर्थात् योगेश्वर महादेवमें ही यह सब कल्पित है॥ २८—३०॥

महत्त्वं सर्वतत्त्वानां परत्वात् परमेष्ठिन ।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महान् ब्रह्ममयोऽमल ॥ ३१ ॥
यो मामेव विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र सशय ॥ ३२ ॥
सोऽह प्रेरयिता देव परमानन्दमाश्रित ।
नृत्यामि योगी सतत यस्तद् वेद स वेदवित्॥ ३३ ॥

परमेष्ठी सभी तत्त्वोसे परे हैं अत सभी तत्त्वोका महत्त्व ही भगवान् ब्रह्माके रूपम प्रसिद्ध है और ये भगवान् ब्रह्मा ब्रह्ममय एव अमल हैं। जो मुझे ही महायोगेश्वराका भी ईश्वर समझता हे, वह निर्विकल्प (समाधि)-योगसे युक्त होता है, इसमे सदेह नहीं। परमानन्दका आश्रयण करनेवाला वही मैं प्रेरित करनेवाला देवता हूँ। मैं योगी निरन्तर नृत्य करता (प्राणिमात्रके हृदयमे सदा विद्यमान) रहता हूँ, जो ऐसा जानता है वह वेदज्ञ है॥ ३१—३३॥

इति गुह्यतम ज्ञान सर्ववेदेषु निष्ठितम्।
प्रसन्नचेतसे देय धार्मिकायाहिताग्नये॥ ३४॥

यह अत्यन्त गुह्य ज्ञान सभी वेदोम प्रतिष्ठित है। इसे प्रसन्नचित्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्रीको प्रदान करना चाहिये॥ ३४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) चतुर्थोऽध्याय ॥ ४॥
॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे (ईश्वरगीताका) चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषियोको दिव्य नृत्य करते हुए भगवान् शकरका आकाशमे दर्शन, मुनियोद्वारा महेश्वरकी भावपूर्ण स्तुति करना

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् योगिना परमेश्वर ।
ननर्त परम भावमैश्वर सम्प्रदर्शयन्॥ १ ॥
त ते ददृशुरीशान तेजसा परम निधिम्।
नृत्यमान महादेव विष्णुना गगनेऽमले॥ २ ॥
य विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसा ।
तमीश सर्वभूतानामाकाशे ददृशु किल॥ ३ ॥
यस्य मायामय सर्वं येनेद प्रेर्यते जगत्।
नृत्यमान स्वय विप्रैर्विश्वेश खलु दृश्यते॥ ४ ॥
यत्पादपङ्कज स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानज भयम्।
जहाति नृत्यमान त भूतेश ददृशु किल॥ ५ ॥

व्यासजी बोले—इतना कहकर योगियोंके परमेश्वर भगवान् (शिव) परम ऐश्वर्यमय भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे। उन मुनियाने परम तजोनिधि ईशान महादेवको विष्णुके साथ नृत्य करते हुए स्वच्छ आकाशम देखा। योगके तत्त्वको जाननेवाले सयतचित्त योगी ही जिन्हे जान पाते हैं, उन सभी प्राणियोंके ईशको आकाशम मुनियाने देखा। यह (सम्पूर्ण जगत्) जिनकी मायासे निर्मित है और जिनके द्वारा यह जगत् प्रेरित होता है, उन साक्षात् विश्वेशको विप्राने नृत्य करते हुए देखा। जिनके चरण-कमलका स्मरण करके पुरुष अज्ञानसे उत्पन्न भयसे छुटकारा पा लेता है, उन्हीं भूतेशको मुनियोंने नृत्य करते हुए देखा॥ १—५॥

य विनिद्रा जितश्वासा शान्ता भक्तिसमन्विता ।
ज्योतिर्मय प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल॥ ६॥
योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्र प्रसन्नो भक्तवत्सल ।
तमेव मोचक रुद्रमाकाशे ददृशु परम्॥ ७॥
सहस्रशिरस देव सहस्रचरणाकृतिम्।
सहस्रबाहु जटिल चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ८॥
वसान चर्म वैयाघ्र शूलासक्तमहाकरम्।
दण्डपाणि त्रयीनेत्र सूर्यसोमाग्निलोचनम्॥ ९॥

सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १०॥
र बाह्यमभ्यन्तर परम्।
दहन्तमखिल जगत्।
विश्वकर्माणमीश्वरम्॥ ११॥

ि, शान्त और भक्तिपरायण लोग
का दर्शन करते हैं, (विप्रजनाका)
ड। जो भक्तवत्सल (देव) प्रसन्न
े मुक्त कर देते हैं, उन्हीं मुक्त
हान) आकाशमे देखा। (ब्राह्मणाने)
चरणाकी आकृतिसे युक्त, हजारा
न्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले,
र धारण करनेवाले, महान् भुजामे
हाथम दण्ड धारण किये वेदत्रयी-
चन्द्रमा और अग्निरूप नेत्रधारी,
ह्माण्डको आवृतकर स्थित हुए,
करोडो सूर्योके समान आभावाले,
ौर अण्डके बाहर स्थित, परम
सर्वत्र व्याप्त, अग्निज्वाला उत्पन्न
जगत्को जलानवाले विश्वकर्मा
ाता) देवको नृत्य करते हुए

देवानामपि दैवतम्।
ज्योतिषा ज्योतिरव्ययम्॥ १२॥
भेषज भवरोगिणाम्।
र दवदेव महेश्वरम्॥ १३॥
योगानन्दमय परम्।
ज्ञानयोग सनातनम्॥ १४॥
धर्माधार दुरासदम्।
महर्षिगणवन्दितम्॥ १५॥
र महायोगेश्वरेश्वरम्।
योगिना योगवन्दितम्।
न्त योगमायासमावृतम्॥ १६॥
नि नारायणमनामयम्।
ब्रह्मवादिन ॥ १७॥

देव, पशुपति ईशान, ज्योतियोंके भी अविनश्वर ज्योति स्वरूप, पिनाकी, विशालाक्ष, भव-रोगियोके औषध, कालात्मा कालके भी काल, देवाधिदेव, महेश्वर, उमापति, विरूपाक्ष, परम योगानन्दमय, ज्ञान-वैराग्यके निधान, सनातन ज्ञानयोग, शाश्वत ऐश्वर्य एव विभवरूप, धर्मके आधार, दुरासद (दुष्प्राप्य), महेन्द्र तथा उपेन्द्र (विष्णु)-द्वारा नमस्कृत, महर्षिगणोंद्वारा वन्दित, सभी शक्तियोके आधार, महायोगेश्वरोंके भी ईश्वर, योगियोके परम ब्रह्म योगियोके योगद्वारा वन्दित, योगियोक हृदयम स्थित योगमायासे समावृत, जगत्के योनिरूप तथा अनामय नारायणका क्षणमात्रमें ईश्वर अर्थात् शकरके साथ एकाकार होते हुए देखा॥ १२—१७॥

दृष्ट्वा तदैश्वर रूप रुद्रनारायणात्मकम्।
कृतार्थं मेनिरे सन्त स्वात्मान ब्रह्मवादिन ॥ १८॥

सनत्कुमार सनको भृगुश्च
सनातनश्चैव सनन्दनश्च।
रुद्रोऽङ्गिरा वामदवोऽथ शुक्रो
महर्षिरत्रि कपिलो मरीचि ॥ १९॥

दृष्ट्वाथ रुद्र जगदीशितार
त पद्मनाभाश्रितवामभागम्।
ध्यात्वा हृदिस्थ प्रणिपत्य मूर्ध्ना
बद्ध्वाञ्जलि स्वेषु शिर सु भूय ॥ २०॥

रुद्रके उस ऐश्वर्यमय नारायणात्मक रूपको देखकर ब्रह्मवादी सताने अपने-आपको कृतार्थ माना। सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन रुद्र अंगिरा, वामदव शुक्र, महर्षि अत्रि कपिल तथा मरीचि—इन ऋषियोने पद्मनाभ विष्णुको वामभागमें विराजित किये हुए उन जगत्के नियामक रुद्रका दर्शन किया और हृदयम स्थित उनका ध्यान करक सिरसे विनयपूर्वक प्रणामकर पुन उपने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया॥ १८—२०॥

ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देव-
मन्त शरीरे निहित गुहायाम्।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभि-
रानन्दपूर्णायतमानसास्त ॥ २१॥

ओकारका उच्चारण करनेक उपरान्त अपने शरीरके

भीतर (हृदयरूपी) गुहामें निहित उन देवका दर्शन करके आनन्दसे परिपूर्ण विस्तृत आत्मावाले वे (मुनिगण) वैदिक मन्त्रोंके द्वारा (उन देवकी) स्तुति करने लगे—॥ २१ ॥

मुनय ऊचुः

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं
प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम्।
नमाम सर्वे हृदि संनिविष्टं
प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥ २२ ॥
त्वां पश्यन्ति मुनयो ब्रह्मयोनिं
दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे
कविं परेभ्यः परमं तत्परं च॥ २३ ॥
त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः
सर्वात्मभूस्त्वं परमाणुभूतः।
अणोरणीयान् महतो महीया-
स्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥ २४ ॥

मुनियोंने कहा—आप एकमात्र ईश्वर, पुराणपुरुष, प्राणेश्वर, अनन्त योगरूप, हृदयमें संनिविष्ट, प्रचेता, पवित्र एवं ब्रह्ममय रुद्रको हम सभी प्रणाम करते हैं। इन्द्रियोंका दमन करनेवाले तथा शान्त मुनिगण ध्यानके द्वारा अपने ही शरीरमें अचल, निर्मल स्वर्णके समान वर्णवाले, ब्रह्मयोनि उत्कृष्टसे भी अत्यन्त उत्कृष्ट (प्राणिमात्रके हृदयमें विद्यमान) आप कविका दर्शन करते हैं। संसारकी सृष्टि आपसे ही हुई है। आप सभीके आत्मरूप और परम अणु-रूप हैं। महापुरुष आपको ही सब कुछ और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा महान्‌से भी महान् कहते हैं॥ २२—२४॥

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा
त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः।
संजायमानो भवता विसृष्टो
यथाविधानं सकलं ससर्ज॥ २५ ॥
त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रसूता-
स्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वां जगतो हेतुभूतं
नृत्यन्तं स्वे हृदये संनिविष्टम्॥ २६ ॥
त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं
मायावी त्वं जगतामेकनाथः।
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना
योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम्॥ २७ ॥
पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये
नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः।
सर्वात्मानं बहुधा संनिविष्टं
ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय॥ २८ ॥

जगत्‌के अन्तरात्मा-स्वरूप हिरण्यगर्भ पुराणपुरुष आपसे उत्पन्न हुए हैं। आपद्वारा उत्पन्न किये गये उस (पुराण-पुरुष)-ने उत्पन्न होते ही यथाविधि सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि की। आपसे ही सभी वेद उत्पन्न हुए हैं और अन्तमें आपमें ही वे स्थिति पाते हैं। हम अपने हृदयमें स्थित जगत्‌के कारणरूप आपको नृत्य करते हुए देख रहे हैं। आपके द्वारा ही इस ब्रह्मचक्रको चलाया जाता है, आप मायावी और जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। हम दिव्य नृत्य करनेवाले आप योगात्मा चित्पतिकी शरणमें आये हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। परम आकाशके मध्यमें नृत्य कर रहे आपका हम दर्शन करते हैं और आपकी महिमाका स्मरण करते हैं। अनेक रूपोंमें स्थित सर्वात्मा ब्रह्मानन्दका हम बार-बार अनुभव कर रहे हैं॥ २५—२८॥

ॐकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं
त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः
स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रकाशम्॥ २९ ॥
स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा
नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः।
शान्तात्मानः सत्यसंधा वरिष्ठं
विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः॥ ३० ॥

आपका वाचक ओङ्कार मुक्तिका बीज है। आप अक्षर तथा प्रकृतिमें गूढरूपमें स्थित हैं। इसलिये संतजन आपको सत्यस्वरूप और आपके प्रकाशको स्वयं प्रकाशित बताते हैं। सभी वेद सतत आपकी स्तुति करते हैं। दोषरहित ऋषिगण आपको नमस्कार करते हैं तथा शान्त-चित्त, सत्यसंध ब्रह्मनिष्ठ यतिजन आपमें सबश्रेष्ठ प्रवेश करते हैं॥ २९-३०॥

बहुशाखो ह्यनन्त-
वैक बोधयत्येकरूपम्।
रण ये प्रपन्ना-
शान्ति शाश्वती नेतरेषाम्॥३१॥
स्तेजोराशि-
विश्व परमेष्ठी वरिष्ठ।
धिशेते
ज्योतिरचलो नित्यमुक्त॥३२॥
ला एक अनन्त वेद आपके अद्वितीय
कराता है। जो लोग जानने योग्य
करते हैं, उन्हींको शाश्वत शान्ति प्राप्त
ो नहीं। आप ईश, अनादि, तेजोराशि,
ी और वरिष्ठ हैं। नित्य मुक्त और स्वय
) स्वात्मानन्दका अनुभव कर (आपमें)
३२॥

करोषीह विश्व
ालयस्यखिल विश्वरूप।
ालय विन्दतीद
त्वा शरण सम्प्रपन्ना॥३३॥
रुद्र ही इस विश्वकी सृष्टि करते
सबका पालन करते हैं और यह
पमे ही विलीन हो जाता है। हम
हैं और आपके शरणागत हैं॥३३॥

कविमेकरुद्र
बृहन्त हरिमग्निमीशम्।
ेल चेकितान
ादित्यमनेकरूपम् ॥३४॥
रम वेदितव्य
विश्वस्य पर निधानम्।
शाश्वतधर्मगोप्ता
ास्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि॥३५॥
विष्णुश्चतुराननस्त्व
रुद्रा भगवानधीश।
प्रकृति प्रतिष्ठा
स्त्व परमेश्वरोऽसि॥३६॥
कवि एक रुद्र प्राण, बृहत्, हरि,
अग्नि, ईश, इन्द्र, मृत्यु, अनिल, चेकितान, धाता, आदित्य,
और अनेकरूप कहा जाता है। आप अविनाशी और परम
जानने योग्य हैं। आप ही इस विश्वके परम आश्रय हैं।
आप अव्यय, शाश्वत धर्मरक्षक, सनातन और पुरुषोत्तम हैं।
आप ही विष्णु और आप ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। आप ही
प्रधान स्वामी भगवान् रुद्र हैं। आप विश्वकी नाभि, प्रकृति
प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर और परम ईश्वर हैं॥ ३४—३६॥

त्वामेकमाहु पुरुष पुराण-
मादित्यवर्णं तमस परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
ख ब्रह्म शून्य प्रकृति निर्गुण च॥३७॥
यदन्तरा सर्वमिदं विभाति
यदव्यय निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिन्त्य तव रूपमेतत्
तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम्॥३८॥

आपको अद्वितीय, पुराणपुरुष, आदित्यके समान वर्णवाला,
तमोगुणसे अतीत, चिन्मात्र, अव्यक्त अचिन्त्यरूप,
आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति और निर्गुण कहते हैं। जिसके
भीतर यह सम्पूर्ण (जगत्) प्रकाशित होता है तथा जो
विकाररहित निर्मल और अद्वितीय रूप है वह आपका रूप
अचिन्त्य है और उसके भीतर समस्त तत्त्व प्रतीत होते
हैं॥ ३७-३८॥

योगेश्वर रुद्रमनन्तशक्ति
परायण ब्रह्मतनु पवित्रम्।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वा
प्रसीद भूताधिपते महेश॥३९॥
त्वत्पादपद्मस्मरणादशेष-
ससारबीज विलयं प्रयाति।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादयामो वयमेकमीशम्॥४०॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय
कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते
नमोऽग्नये देव नम शिवाय॥४१॥

हम सभी योगेश्वर, अनन्तशक्ति रुद्र उत्कृष्ट
आश्रयस्वरूप पवित्र ब्रह्ममूर्ति (आप)-को नमस्कार करते हैं।

भूताके अधिपति महेश! प्रसन्न होइये, हम आपकी शरणमे हैं। आपके चरणकमलका स्मरण करनेसे सम्पूर्ण ससारका बीज (अर्थात् कर्म) नष्ट हो जाता है। मनका नियमनकर, शरीरको सयमित कर हम सभी अद्वितीय ईश्वर आपको प्रसन्न करते हैं। भव, भवोद्भव, काल, सर्व तथा हर आपको नमस्कार है। जटाधारी आप रुद्रको नमस्कार है। अग्निरूप देव शिव! आपको नमस्कार है॥ ३९—४१॥

तत स भगवान् देव कपर्दी वृषवाहन ।
सहृत्य परम रूप प्रकृतिस्थोऽभवद् भव ॥४२॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर उन भगवान् कपर्दी वृषवाहन देव भवने (अपने उस) उत्कृष्ट (विराट्) रूपको समेट लिया और वे अपनी प्रकृतिमे स्थित हो गये॥ ४२॥

ते भव भूतभव्येश पूर्ववत् समवस्थितम्।
दृष्ट्वा नारायण देव विस्मिता वाक्यमब्रुवन्॥४३॥

मुनियोने पहलेके समान स्थित भूतभव्येश भव और नारायणदेवको देखकर आश्चर्यचकित होकर यह वाक्य कहा—॥ ४३॥

भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन।
दृष्ट्वा ते परम रूप निर्वृता स्म सनातन॥४४॥
भवत्प्रसादादमले परस्मिन् परमेश्वरे।
अस्माक जायते भक्तिस्त्वय्येवाव्यभिचारिणी॥४५॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्य तव शकर।
भूयोऽपि तव यन्नित्य याथात्म्य परमेष्ठिन ॥४६॥

भगवन्! भूतभव्येश! गोवृषाङ्कितशासन! सनातन! आपके परम रूपका दर्शनकर हमलोग सतुष्टचित्त हो गये हैं। आपकी कृपासे हम सभीको निर्मल, परात्पर, परमेश्वरस्वरूप आपकी अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न हुई है। शकर! इस समय हम लोग आप परमेष्ठीके उस माहात्म्यको एव जो नित्य यथार्थस्वरूप है (उसे) पुन सुनना चाहते हैं॥ ४४—४६॥

स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिना योगसिद्धिद ।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम्॥४७॥

योगसिद्धियोको प्रदान करनेवाले उन्होंने (महेश्वरने) उन योगियोका वचन सुनकर तथा विष्णुकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमे कहा—॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) पञ्चमोऽध्याय ॥ ५॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे (ईश्वरगीताका) पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

ईश्वर (शकर)-द्वारा ऋषिगणोको अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाना तथा अपनी भगवत्ताका और इस ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्तिका निरूपण करना

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे यथावत् परमेष्ठिन ।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्य यत्तद्वेदविदो विदु ॥१॥

ईश्वरने कहा—हे ऋषिगणो! आप सभी सुने। मैं परमेष्ठी ईशके उस माहात्म्यका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, जिसे वेदज्ञ लोग जानते हैं॥ १॥

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसहर्ता सर्वात्माह सनातन ॥२॥
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम्।
मध्ये चान्त स्थित सर्वं नाह सर्वत्र सस्थित ॥३॥

मैं सनातन सर्वात्मा सभी लोकोका एकमात्र निर्माण करनेवाला, सभी लोकोका एक अद्वितीय रक्षक ओर सभी लोकोका एकमात्र सहार करनेवाला हूँ। सभी वस्तुओका अन्तर्यामी पिता में ही हूँ। मध्य तथा अन्त सब कुछ मुझमे स्थित है, किंतु मैं सर्वत्र स्थित नहीं हूँ अर्थात् मेरी कोई सीमा नहीं है॥ २-३॥

भवद्भिरद्भुत दृष्ट यत्स्वरूप तु मामकम्।
ममैषा ह्युपमा विप्रा मायया दर्शिता मया॥४॥
सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थित ।
प्रेरयामि जगत् कृत्स्न क्रियाशक्तिरिय मम॥५॥
ययेद चेष्टते विश्व तत्स्वभावानुवर्ति च।
सोऽह कालो जगत् कृत्स्न प्रेरयामि कलात्मकम्॥६॥

विप्रो! आप लोगोंने मेरे जिस अद्भुत रूपको देखा है, वह केवल मेरी उपमा (प्रतीक) है, जिसे मैंने (अपनी) मायाद्वारा दिखलाया। मैं सभी पदार्थोंके भीतर स्थित (व्याप्त) रहते हुए सम्पूर्ण जगत्‌को प्रेरित करता हूँ। यह मेरी क्रियाशक्ति है। यह विश्व जिसके द्वारा चेष्टा करता है और जिसके स्वभावका अनुसरण करता है, कालरूप वही मैं सम्पूर्ण कलात्मक (अपने अंशरूप) जगत्‌को प्रेरित करता हूँ॥ ४—६॥

एकांशेन जगत् कृत्स्नं करोमि मुनिपुंगवाः।
संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु॥ ७॥
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्तकः।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ॥ ८॥
ताभ्यां संजायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते॥ ९॥
यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः।
हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः॥ १०॥

मुनिश्रेष्ठो! मैं एक अंशसे सम्पूर्ण संसारकी रचना करता हूँ और दूसरे रूप(अंश)-से संहार करता हूँ—इस प्रकारकी ये दोनों अवस्थाएँ मेरी ही हैं। आदि, मध्य और अन्तरहित माया-तत्त्वका प्रवर्तन करनेवाला मैं सृष्टिके आरम्भमें प्रधान तथा पुरुष—दोनोंको क्षुब्ध (प्रेरित) करता हूँ। उन दोनोंके परस्पर संयोगसे विश्व उत्पन्न होता है। महत्-तत्त्वादिके क्रमसे मेरा ही तेज विस्तारको प्राप्त होता है। जो सारे संसारके साक्षी और कालचक्रको चलानेवाले हिरण्यगर्भ मार्तण्ड (सूर्य) हैं, वे भी मेरे ही शरीरसे उत्पन्न हुए हैं॥ ७—१०॥

तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम्।
दत्तवानात्मजान् वेदान् कल्पादौ चतुरो द्विजाः॥ ११॥
स मन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः।
दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम्॥ १२॥
स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित्।
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसम्भवः॥ १३॥
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः।
ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम्॥ १४॥

द्विजो! कल्पके आदिमें मैंने ही उन्हें अपना दिव्य ऐश्वर्यमय सनातन ज्ञानयोग और अपनेसे उत्पन्न चारों वेद प्रदान किये। वे मेरे भावसे भावित देव ब्रह्मा मेरे आदेशसे मेरे उस दिव्य ऐश्वर्यको स्वयं सदा वहन करते हैं। सभी लोकोंका निर्माण करनेवाले और सब कुछ जाननेवाले आत्मसम्भव (मुझसे ही उत्पन्न) वे (ब्रह्मा) मेरे निर्देशसे चार मुखवाले होकर सृष्टिकी रचना करते हैं। जो लोकोंको उत्पन्न करनेवाले अव्यय अनन्त नारायण हैं और जगत्‌का परिपालन करते हैं, वे भी मेरी ही परम मूर्ति हैं॥ ११—१४॥

योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः।
मदाज्ञयासौ सततं संहरिष्यति मे तनुः॥ १५॥

सभी प्राणियोंका संहार करनेवाले जो प्रभु कालात्मक रुद्र हैं, वे मेरी ही आज्ञासे निरन्तर संहार करते रहते हैं, वे भी मेरी मूर्ति हैं॥ १५॥

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि।
पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः॥ १६॥
भुक्तमाहारजातं च पचते तदहर्निशम्।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः॥ १७॥

जो देवताओंको हव्य (हवनीय द्रव्य) पहुँचाते हैं और कव्य ग्रहण करनेवाले पितरोंको कव्य पहुँचाते हैं तथा जो पाकमें (सब कुछ पचा लेनेमें) समर्थ हैं वे अग्निदेव भी मेरी ही शक्तिसे प्रेरित होकर यह सब करते हैं। ईश्वर (शंकर)-के निर्देशसे ही भगवान् वैश्वानर अग्नि रात-दिन ग्रहण किये गये आहारको पचाते रहते हैं॥ १६-१७॥

योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुंगवः।
सोऽपि संजीवयेत् कृत्स्नमीशस्यैव नियोगतः॥ १८॥
योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवः प्रभञ्जनः।
मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि॥ १९॥
योऽपि संजीवनो नृणां देवानाममृताकरः।
सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्तते॥ २०॥

सम्पूर्ण जलके मूल कारण जो देवश्रेष्ठ वरुण हैं, वे भी ईश्वरके ही निर्देशसे सम्पूर्ण विश्वको जीवन (जल) प्रदान करते हैं, जो प्राणियोंके भीतर और बाहर वर्तमान रहनेवाले वायुदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञासे प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं। मनुष्योंको जीवित रखनेवाले जो देवताओंके अमृतके निधान सोमदेव (चन्द्रमा) हैं वे भी मेरे ही निर्देशसे प्रेरित होकर कार्य करते हैं॥ १८—२०॥

यः स्वभासा जगत् कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा।
सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयम्भुवः॥ २१॥
योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः।
यज्वनां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २२॥

य प्रशास्ता ह्यसाधूना वर्तत नियमादिह।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगत ॥ २३ ॥
योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनाना सम्प्रदायक ।
सोऽपीश्वरनियोगन कुबरो वर्तते सदा ॥ २४ ॥
य सर्वरक्षसा नाथस्तामसाना फलप्रद ।
मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋति सदा ॥ २५ ॥

जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण ससारको सदा प्रकाशित करत हैं, वे सूर्यदव भी स्वयम्भू (इश्वर)-की आज्ञास सृष्टिका विस्तार करते हैं। जा सारे ससारके शासक, सभी देवताआके ईश्वर तथा यज्ञ करनेवालाको फल प्रदान करनेवाले इन्द्रदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञासे प्रवृत्त हाते हैं। जो दुष्टाक शासक हैं और नियमक अनुसार व्यवहार करनेवाले विवस्वान्‌क पुत्र यमदेव हैं, वे भी देवाधिदव (शकर)-क निर्देशसे व्यवहार करते हैं। जो सभी प्रकारके सम्पत्तियाक स्वामी और धन प्रदान करनवाल कुबर हैं, व भी इश्वरके नियोगसे ही सदा प्रवृत्त होते हैं। जा सभी राक्षसाक स्वामी हैं तथा तमागुणियाको (अपने कर्मका) फल प्रदान करनेवाले हैं, वे निर्ऋतिदेव मेरे ही निर्देशसे सदा प्रवर्तित होते हैं ॥ २१—२५ ॥

वेतालगणभूताना स्वामी भोगफलप्रद ।
ईशान किल भक्ताना सोऽपि तिष्ठन्ममाज्ञया ॥ २६ ॥
यो वामदवोऽङ्गिरस शिष्यो रुद्रगणाग्रणी ।
रक्षको योगिना नित्य वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ॥ २७ ॥
यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तत विघ्नकारक ।
विनायको धर्मनता सोऽपि मद्वचनात् किल ॥ २८ ॥
योऽपि ब्रह्मविदा श्रेष्ठो दवसेनापति प्रभु ।
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्य स्वयम्भूर्विधिचोदित ॥ २९ ॥
ये च प्रजाना पतयो मरीच्याद्या महर्षय ।
सृजन्ति विविध लोक परस्यैव नियोगत ॥ ३० ॥

जा वेतालगणा और भूताके स्वामी और भक्तोको भोगरूपी फल प्रदान करनेवाले इशानदेव हैं, व भी मेरी आज्ञाम स्थित रहते हैं। जा अङ्गिराक शिष्य, रुद्रदवके गणामे अग्रगण्य और योगियोके रक्षक हैं, वे वामदेव भी मेरी ही आज्ञाद्वारा नित्य व्यवहार करते हैं। जा सम्पूर्ण ससारक पूज्य, विघ्नकारक धर्मनेता विनायक है, वे भी मेरे आदशस चलत हैं। जो ब्रह्मज्ञानियाम श्रेष्ठ, दवाके सेनापति स्वयम्भू प्रभु स्कन्द हैं, वे भी नित्य विधिकी प्ररणासे प्रेरित होते हैं। जो प्रजाआके पति मरीचि आदि महर्षि हैं, वे भी परात्पर (परमेश्वर)-की आज्ञास ही विविध लाकोकी सृष्टि करते हैं ॥ २६—३० ॥

या च श्री सर्वभूताना ददाति विपुला श्रियम्।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥
वाच ददाति विपुला या च देवी सरस्वती।
सापीश्वरनियोगेन चोदिता सम्प्रवर्तते ॥ ३२ ॥
याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात् तारयिष्यति।
सावित्री सस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी ॥ ३३ ॥
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी।
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ॥ ३४ ॥

जा सभी प्राणियोकी श्री (शोभा) हैं और विपुल ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, वे नारायणकी पत्नी (लक्ष्मी) मेरे ही अनुग्रहसे व्यवहार करती हैं। जो सरस्वतीदेवी विपुल वाणी प्रदान करती ह, वे भी ईश्वरके नियोगसे प्रेरित होकर प्रवर्तित होती हैं। जो सभी पुरुषाको घोर नरकासे तारनेवाली सावित्रीदेवी कही गयी हैं, वे भी दवकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाली हैं। ध्यान करनेपर ब्रह्मविद्याको प्रदान करनेवाली जो श्रेष्ठ पार्वतीदेवी हैं, वे भी विशेषरूपसे मेरे ही वचनाका पालन करती हैं ॥ ३१—३४ ॥

योऽनन्तमहिमानन्त शेषोऽशेषामरप्रभु ।
दधाति शिरसा लोक सोऽपि देवनियोगत ॥ ३५ ॥
योऽग्नि सवर्तको नित्य वडवारूपसस्थित ।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगत ॥ ३६ ॥
ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन् मनव प्रथितौजस ।
पालयन्ति प्रजा सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगत ॥ ३७ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ।
अन्याश्च देवता सर्वा मच्छास्त्रेणैव धिष्ठिता ॥ ३८ ॥
गन्धर्वा गरुडा ऋक्षा सिद्धा साध्याश्च चारणा ।
यक्षरक्ष पिशाचाश्च स्थिता शास्त्रे स्वयम्भुव ॥ ३९ ॥
कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसा क्षपा ।
ऋतव पक्षमासाश्च स्थिता शास्त्रे प्रजापते ॥ ४० ॥

अनन्त महिमावाले और सभी देवताआके स्वामी जो अनन्त शेष हैं वे भी देव (शकर)-के निर्देशसे ही ससारका सिरपर धारण करते हैं। जो सवर्तक अग्नि नित्य

बडवाके रूपमे स्थित हैं, वे भी ईश्वरकी आज्ञासे ही सम्पूर्ण समुद्रको पीते रहते हैं। इस ससारमे अत्यन्त तेजस्वी जो चौदह मनु हैं, वे सभी मुझ (इश्वर)-के आदेशसे सभी प्रजाओंका पालन करते हैं। आदित्य, वसुगण, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा अन्य सभी देवता मेरी ही आज्ञाम प्रतिष्ठित हैं। गन्धर्व गरुड, ऋक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष राक्षस तथा पिशाच—ये सभी स्वयम्भूकी आज्ञामे ही स्थित हैं। कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, ऋतुएँ, पक्ष तथा मास—ये मुझ प्रजापति (शिव)-के शासनमे स्थित हैं॥ ३५—४०॥

युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथा परे॥ ४१॥
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नियोगादेव वर्तन्ते देवस्य परमात्मन ॥ ४२॥
पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात्।
ब्रह्माण्डानि च वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुव ॥ ४३॥
अतीतान्यप्यसख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया।
प्रवृत्तानि पदार्थौघै सहितानि समन्तत ॥ ४४॥
ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगै ।
वहिष्यन्ति सदैवाज्ञा परस्य परमात्मन ॥ ४५॥
भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्तते॥ ४६॥

युग, मन्वन्तर, पर तथा परार्ध—ये सभी तथा अन्य कालके सभी भेद मेरे ही शासनमे स्थित रहते हैं। (स्वेदज, अण्डज, ऊद्भिज्ज तथा जरायुज ये) चार प्रकारके प्राणी और स्थावर-जगमात्मक जगत् मुझ परमात्मा देवके निर्देशसे ही प्रवर्तित होते हैं। सभी पाताल और भुवन, सभी ब्रह्माण्ड स्वयम्भू परमेश्वरकी आज्ञासे प्रवर्तित हैं। बीते हुए भी जो पदार्थोंके समूहोसहित असख्य ब्रह्माण्ड थे वे मेरी ही आज्ञासे सर्वत्र प्रवृत्त थे। आगे भी जो ब्रह्माण्ड होंगे, वे भी सदैव परात्पर परमात्माकी आज्ञाका आत्मगत (अपने अधीन) वस्तुओंके[1] द्वारा पालन करेंगे। पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, मन, बुद्धि, भूतादि[2] (तामस अहङ्कार) और आदि प्रकृति—ये सभी मेरी आज्ञासे कार्य करते हैं॥ ४१—४६॥

याशेषजगता योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
माया विवर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगत ॥ ४७॥
यो वै देहभृता देव पुरुष पठ्यते पर ।
आत्मासौ वर्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगत ॥ ४८॥

जो सम्पूर्ण ससारकी योनि और सभी देहधारियोंको मोहित करनेवाली माया है, वह भी ईश्वरके निर्देशसे ही नित्य (विभिन्न रूपोमें) विवर्तित होती रहती है। जो देहधारियोंके आत्मस्वरूप परात्पर पुरुष देव कहे जाते हैं, वे भी नित्य ईश्वरके नियोगसे ही कार्य करते हैं॥ ४७-४८॥

विधूय मोहकलिल यया पश्यति तत् पदम्।
सापि विद्या महेशस्य नियोगवशवर्तिनी॥ ४९॥
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मक जगत्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्न मय्येव प्रलय व्रजेत्॥ ५०॥
अह हि भगवानीश स्वय ज्योति सनातन ।
परमात्मा पर ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ५१॥

जिसके द्वारा मोहरूपी कल्मषको धोकर उस परमपदका दर्शन होता है, वह विद्या भी महेशकी आज्ञाके वशमें रहनेवाली है। इस विषयमे और अधिक क्या कहा जाय, यह ससार मेरी ही शक्तिसे शक्तिमान् है। मेरे द्वारा ही सम्पूर्ण (जगत्) प्रेरित किया जाता है और मुझमें ही उसका लय भी हो जाता है। मैं ही भगवान्, ईश स्वय प्रकाश, सनातन और परमात्मा परम ब्रह्म हूँ, मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है॥ ४९—५१॥

इत्येतत् परम ज्ञान युष्माक कथित मया।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मससारबन्धनात्॥ ५२॥

इस प्रकार यह परम ज्ञान मैंने आप लोगोसे कहा, इसे जान लेनेसे प्राणी जन्म तथा ससारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ५२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

१-अपने अधीन जो भी सामग्री होगी उसमें पूर्ण समर्पणभावसे आज्ञापालन करना यहाँ अभिप्रेत है।

२-तामस अहङ्कारकी भूतादि सज्ञा साख्यशास्त्रमें प्रसिद्ध है—भूतादेस्तन्मात्र ... ' । (साख्यकारिका २५)

सातवाँ अध्याय

ईश्वर (शकर)-द्वारा अपनी विभूतियोका वर्णन तथा प्रकृति, महत् आदि चौबीस तत्त्वो, तीन गुणो एव पशु, पाश ओर पशुपति आदिका विवेचन

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे प्रभाव परमेष्ठिन ।
य ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न ससारे पतेत् पुन ॥ १ ॥

ईश्वर बोले—ऋषियो! आप सभी परमेष्ठीके प्रभावको सुने, जिसे जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है और फिर ससारमे नहीं गिरता॥ १ ॥

परात् परतर ब्रह्म शाश्वत निष्कल ध्रुवम्।
नित्यानन्द निर्विकल्प तद्धाम परम मम॥ २ ॥
अह ब्रह्मविदा ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुख ।
मायाविनामह देव पुराणो हरिरव्यय ॥ ३ ॥
योगिनामस्म्यह शम्भु स्त्रीणा देवी गिरीन्द्रजा।
आदित्यानामह विष्णुर्वसूनामस्मि पावक ॥ ४ ॥
रुद्राणा शकरश्चाह गरुड पततामहम्।
ऐरावतो गजेन्द्राणा राम शस्त्रभृतामहम्॥ ५ ॥

जो परसे परतर, शाश्वत, निष्कल, ध्रुव, नित्यानन्द, निर्विकल्प ब्रह्म हे, वह मेरा परम धाम हे। मे ब्रह्मज्ञानियामे सर्वतोमुख स्वयम्भू ब्रह्मा हूँ। मायावियोंमे मैं अव्यय पुराण देव हरि हूँ। योगियोंमें मैं शम्भु और स्त्रियामे गिरिराज पुत्री पार्वती हूँ। मैं (द्वादश) आदित्योंमे विष्णु तथा (अष्ट) वसुआमें पावक हूँ। मे रुद्रोंमे शकर, उडनेवाले पक्षियोंमे गरुड, गजन्द्रामें ऐरावत तथा शस्त्रधारियामे परशुराम हूँ॥ २—५ ॥

ऋषीणा च वसिष्ठोऽह देवाना च शतक्रतु ।
शिल्पिना विश्वकर्माह प्रह्लादोऽस्म्यमरद्विषाम्॥ ६ ॥
मुनीनामप्यह व्यासो गणाना च विनायक ।
वीराणा वीरभद्रोऽह सिद्धाना कपिला मुनि ॥ ७ ॥
पर्वतानामह मेरुर्नक्षत्राणा च चन्द्रमा ।
वज्र प्रहरणाना च व्रताना सत्यमस्म्यहम्॥ ८ ॥
अनन्तो भोगिना देव सेनानीना च पावकि ।
आश्रमाणा च गार्हस्थमीश्वराणा महेश्वर ॥ ९ ॥
महाकल्पश्च कल्पाना युगाना कृतमस्म्यहम्।
कुबेर सर्वयक्षाणा गणेशाना च वीरक ॥ १० ॥

ऋषियामे मैं वसिष्ठ, देवताआमे इन्द्र, शिल्पियोंमे विश्वकर्मा और सुरद्वेषी राक्षसोमे प्रह्लाद हूँ। मे मुनियोमे व्यास, गणोमे विनायक, वीरामे वीरभद्र और सिद्धोमे कपिल मुनि हूँ। मैं पर्वतामे सुमेरु, नक्षत्रामे चन्द्रमा, प्रहार करनेवाले शस्त्रामे वज्र और व्रतोमे सत्य व्रत हूँ। मैं सर्पोंमे अनन्तदेव, सेनानियामे कार्तिकेय, आश्रमोमे गृहस्थाश्रम और ईश्वरामे महश्वर हूँ। मैं कल्पामे महाकल्प, युगोमे सत्ययुग, सभी यक्षामे कुबेर और गणेश्वरोमे वीरक हूँ॥ ६—१० ॥

प्रजापतीना दक्षोऽह निर्ऋति सर्वरक्षसाम्।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपाना पुष्करोऽस्म्यहम्॥ ११ ॥
मृगेन्द्राणा च सिहोऽह यन्त्राणा धनुरेव च।
वेदाना सामवेदोऽह यजुषा शतरुद्रियम्॥ १२ ॥
सावित्री सर्वजप्याना गुह्याना प्रणवोऽस्म्यहम्।
सूक्ताना पौरुष सूक्त ज्येष्ठसाम च सामसु॥ १३ ॥
सर्ववेदार्थविदुषा मनु स्वायम्भुवोऽस्म्यहम्।
ब्रह्मावर्तस्तु देशाना क्षेत्राणामविमुक्तकम्॥ १४ ॥
विद्यानामात्मविद्याह ज्ञानानामैश्वर परम्।
भूतानामस्म्यह व्योम सत्त्वाना मृत्युरेव च॥ १५ ॥

मैं प्रजापतियामे दक्ष, सभी राक्षसामे निर्ऋति, बलवानामे वायु और द्वीपोमे पुष्कर द्वीप हूँ। मैं मृगेन्द्रामे सिह, यन्त्रामें धनुष, वेदामे सामवेद और यजुर्मन्त्रोमे शतरुद्रिय हूँ। मैं जपनीय सभी मन्त्रामे सावित्री मन्त्र, गोपनीयामे प्रणव, (वैदिक) सूक्तोमे पुरुषसूक्त, साममन्त्रामे ज्येष्ठसाम हूँ। मैं सभी वेदके अर्थको जाननेवाले विद्वानामे स्वायम्भुव मनु, देशामे ब्रह्मावर्त और क्षेत्रोमे अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्र हूँ। मैं विद्याआमे आत्मविद्या, ज्ञानामे परम ईश्वरीय ज्ञान, (पञ्च) भूतामे आकाश और सत्त्वामे मृत्यु[1] हूँ॥ ११—१५ ॥

पाशानामस्म्यह माया काल कलयतामहम्।
गतीना मुक्तिरेवाह परेषा परमेश्वर ॥ १६ ॥

१-यहाँ मृत्युसे यमराज या धर्मराजको समझना चाहिये जो प्राणिमात्रकी अन्तिम गतिके कारण एव निर्णायक हैं।

यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम्।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम्॥ १७॥
आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः॥ १८॥
मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः॥ १९॥
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्॥ २०॥

मैं (बन्धनकारक) पाशोंमें माया, संहार करनेवालोंमें काल, गतियोंमें मुक्ति और उत्कृष्टोंमें परमेश्वर हूँ। इस संसारमें अन्य जो कुछ भी अधिक तेज और बलसे सम्पन्न सत्त्व पदार्थ हैं उन सबको मेरे ही तेजसे सम्पन्न जानना चाहिये। संसारमें रहनेवाले सभी जीवोंको पशु[1] कहा गया है, मैं देव उनका पति (स्वामी) हूँ, इसलिये विद्वानोंद्वारा 'पशुपति' कहा जाता हूँ। मैं मायारूपी पाशके द्वारा अपनी लीलासे इन पशुओं (जीवों)-को बन्धनमें डालता हूँ। वेदज्ञ लोग मुझे ही पशुओंको मुक्त करनेवाला मोचक कहते हैं। मायाके पाशसे आबद्ध जीवोंको मुक्त करनेवाला मुझ भूतोंके अधिपति अव्यय परमात्माको छोड़कर अन्य कोई नहीं है॥ १६—२०॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म गुणा इति।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुबन्धनाः॥ २१॥
मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे॥ २२॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैव तु पञ्चमम्।
पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता॥ २३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि तु॥ २४॥

(प्रकृति-महत्-अहंकार आदि) चौबीस तत्त्व माया, कर्म तथा गुण—ये पशुपतिके पाश और पशुओं (जीवों)-को बन्धनमें डालनेवाले क्लेश हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये आठ प्रकृति हैं और दूसरे सभी पदार्थ विकार या विकृति हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ तथा पाँचवीं नासिका, गुदा, जननेन्द्रिय, हाथ, पैर तथा दसवीं इन्द्रिय वाणी और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये तेईस तत्त्व प्राकृत अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले हैं॥ २१—२४॥

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम्॥ २५॥
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तं प्रकृतिं विदुः॥ २६॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रजो मिश्रमुदाहृतम्।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद् वैषम्यं कवयो विदुः॥ २७॥

चौबीसवाँ तत्त्व अव्यक्त किंवा प्रधान है, वह गुणोंसे लक्षित होनेवाला आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित और जगत्का परम कारण है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कहे गये हैं। इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको अव्यक्त प्रकृति जानना चाहिये। सत्त्वगुणको ज्ञानस्वरूप, तमोगुणको अज्ञानस्वरूप और रजोगुणको मिश्ररूप अर्थात् ज्ञान और अज्ञान दोनोंका मिश्रित रूप कहा गया है। बुद्धिकी विषमतासे गुणोंका भी वैषम्य होता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ २५—२७॥

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ बन्धसंज्ञितौ।
मय्यर्पितानि कर्माणि निबन्धाय विमुक्तये॥ २८॥
अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशकम्।
क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान्॥ २९॥
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति॥ ३०॥

बन्ध नामवाले दो पाशोंको धर्म और अधर्म कहा गया है। मुझे अर्पित किये गये कर्म बन्धनसे मुक्तिके लिये होते हैं। आत्माको बन्धनमें करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश—इन क्लेश नामवाले पाँच अचल (दीर्घकालतक स्थायी-सा रहने वाले) तत्त्वोंको पाश कहा गया है। मायाको इन (पाँचों) पाशोंका कारण कहा जाता है। अव्यक्त मूलप्रकृतिरूप शक्ति मुझमें प्रतिष्ठित रहती है॥ २८—३०॥

स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः॥ ३१॥

१ अज्ञानमें आवृत होनेके कारण जीव पशु हैं।

स एव बन्ध स च बन्धकर्ता
स एव पाश पशव स एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता
तमाहुरग्र्य पुरुष पुराणम्॥ ३२॥

यह मूल प्रकृति, प्रधान, पुरुष महत्, अहकार आदि विकारयुक्त तत्त्व—ये सब देवाधिदेव सनातनके ही रूप हैं। यही (सनातन पुरुष) बन्धन है, यही बन्धनमे डालनेवाला है। यही पाश और यही पशु है। यही सब कुछ जानता है, परतु इसे जाननेवाला कोई नही है। इसे ही आदि पुराणपुरुष कहा जाता है[१]॥ ३१-३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) सप्तमोऽध्याय ॥ ७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमे (ईश्वरगीताका) सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

महेश्वरका अद्वितीय परमेश्वरके रूपमे निरूपण, साख्य-सिद्धान्तसे तत्त्वोका सृष्टिक्रम, महेश्वरके छ अङ्ग, महेश्वरके स्वरूपके ज्ञानसे परमपदकी प्राप्ति

ईश्वर उवाच

अन्यद् गुह्यतम ज्ञान वक्ष्ये ब्राह्मणपुंगवा ।
येनासौ तरते जन्तुर्घोर ससारसागरम्॥ १॥

ईश्वर बोले—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं दूसरे गुह्यतम ज्ञानको बताता हूँ, जिससे यह प्राणी घोर ससार-सागरको पार कर लेता है॥ १॥

अह ब्रह्ममय शान्त शाश्वतो निर्मलोऽव्यय ।
एकाकी भगवानुक्त केवल परमेश्वर ॥ २॥
मम योनिर्महद् ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम्।
मूल मायाभिधान तु ततो जातमिद जगत्॥ ३॥
प्रधान पुरुषो ह्यात्मा महान् भूतादिरेव च।
तन्मात्राणि महाभूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे॥ ४॥

मैं ब्रह्ममय, शान्त, शाश्वत, निर्मल, अव्यय, एकाकी, अद्वितीय परमेश्वर तथा भगवान् कहलाता हूँ। महद्ब्रह्म मेरी योनिरूप है, मैं उसमे मूल माया नामक गर्भ धारण करता हूँ और उससे यह ससार उत्पन्न हुआ है। (उसीसे) प्रधान, पुरुष आत्मा महत्तत्त्व, भूतादि (तामस अहकार), तन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत तथा इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ २—४॥

ततोऽण्डमभवद्धैम सूर्यकोटिसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्या चोपबृंहित ॥ ५॥
ये चान्ये बहवो जीवा मन्मया सर्व एव ते।
न मा पश्यन्ति पितर मायया मम मोहिता ॥ ६॥
याश्च योनिषु सर्वासु सम्भवन्ति हि मूर्तय ।
तासा माया परा योनिर्मामेव पितर विदु ॥ ७॥
यो मामेव विजानाति बीजिन पितर प्रभुम्।
स धीर सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति॥ ८॥

तदनन्तर करोडो सूर्यके समान प्रकाशमान हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमे मेरी शक्तिसे उपबृंहित महाब्रह्मा उत्पन्न हुए। अन्य भी जो बहुतसे प्राणी हैं, वे सभी मेरे ही स्वरूप हैं। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे पितामह-स्वरूपको नहीं देख पाते। सभी योनियोमे जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उनकी योनि परामाया है और मुझे ही पितृस्वरूप विद्वान् लोग जानते हैं। इस प्रकार जो मुझे ही बीजरूप पितृस्वरूप प्रभु जानता है, वह सभी लोकोमे धीर होता है और मोहको प्राप्त नहीं होता॥ ५—८॥

ईशान सर्वविद्याना भूताना परमेश्वर ।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानह ब्रह्मा प्रजापति ॥ ९ ॥
सम सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्त परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्त य पश्यति स पश्यति॥ १०॥

१-यहाँ बन्धन आदिका सनातनपुरुषमें कल्पित मात्र बताकर अद्वैतभावकी प्रतिष्ठा की गयी है।

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम्॥ ११॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्ग च महेश्वरम्।
प्रधानविनियोगज्ञ पर ब्रह्माधिगच्छति॥ १२॥

मैं ही सभी विद्याओका स्वामी, प्राणियोका परम ईश्वर, ओङ्कारमूर्ति प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ। जो पुरुष विनष्ट होनेवाले सभी (चराचर)भूतोमे परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे देखता है, वही यथार्थ देखता है। जो पुरुष सबमे समभावसे स्थित परमेश्वरको समानरूपसे देखता है, वह स्वयद्वारा स्वयको नष्ट नहीं करता, इस कारण वह परम गति प्राप्त करता है। सात सूक्ष्म तत्त्वो एव छ अङ्गोवाले महेश्वरको जानकर प्रधान तथा विनियोगको जाननेवाला परम ब्रह्मको प्राप्त करता है॥ ९—१२॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥ १३॥
तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि
सूक्ष्माण्याहु सप्त तत्त्वात्मकानि।
या सा हेतु प्रकृति सा प्रधान
बन्ध प्रोक्तो विनियोगोऽपि तेन॥ १४॥
या सा शक्ति प्रकृतौ लीनरूपा
वेदेषूक्ता कारण ब्रह्मयोनि।
तस्या एक परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वर पुरुष सत्यरूप॥ १५॥

सर्वज्ञता तृप्ति अनादि ज्ञान स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त-शक्ति तथा अनन्तशक्ति—ये विभु महेश्वरके छ अङ्ग कहे गये हैं। पाँच तन्मात्राएँ (शब्द स्पर्श रूप रस तथा गन्ध) मन और आत्मा—ये सात सूक्ष्म तत्त्व कहे गये हैं। जो हेतुरूपा प्रकृति है, वह प्रधान है और उससे होनेवाले बन्धनको ही विनियोग कहा जाता है। प्रकृतिमे लीन रहनेवाली जो शक्ति है, उसे वेदोंमें ब्रह्मयोनि और कारणरूप कहा गया है। अद्वितीय, परमेष्ठी, परात्पर, सत्यरूप महेश्वर उसके पुरुष हैं॥ १३—१५॥

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान्
व्योमव्यापी वेदवेद्य पुराण।
एको रुद्रो मृत्युरव्यक्तमेक
बीज विश्व देव एक स एव॥ १६॥
तमेवैक प्राहुरन्येऽप्यनेक
त्वेकात्मान केचिदन्यत्तथाहु।
अणोरणीयान् महतोऽसौ महीयान्
महादेव प्रोच्यते वेदविद्भि॥ १७॥
एव हि यो वेद गुहाशय पर
प्रभु पुराण पुरुष विश्वरूपम्।
हिरण्मय बुद्धिमतां परा गति
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥ १८॥

वे ही अद्वितीय देव ब्रह्मा, योगी, परमात्मा, महीयान्, व्योमव्यापी, वेदोद्वारा ज्ञात होने योग्य, पुराण, पुरुष अद्वितीय रुद्र मृत्यु, अव्यक्त, एक बीज और विश्वरूप हैं। उन्हे ही कोई एक और कोई अनेक कहते हैं। दूसरे कुछ लोग उन्हे ही अद्वितीय आत्मा कहते है। वेदज्ञ लोग उन्हे अणुसे अणुतर और महान्से भी महत्तर महादेव कहते हैं। हृदयरूप गुहामे स्थित, परात्पर, पुराणपुरुष विश्वरूप हिरण्मय और बुद्धिमानोंकी परमगति प्रभुको जो इस प्रकार जानता है वह बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिको पार कर जाता है अर्थात् परमपद प्राप्त करता है॥ १६—१८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) अष्टमोऽध्याय॥ ८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

महादेवके विश्वरूपत्वका वर्णन तथा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका प्रतिपादन

ऋषय ऊचु

निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रिय परमेश्वर ।
तन्नो वद महादेव विश्वरूप कथ भवान्॥ १ ॥

ऋषियाने पूछा—महादेव! आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य तथा निष्क्रिय होनेपर भी विश्वरूप कैसे हैं, इसे हम लोगोको बतलाये॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

नाह विश्वो न विश्व च मामृते विद्यते द्विजा ।
मायानिमित्तमत्रास्ति सा चात्मानमपाश्रिता॥ २ ॥
अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तसमाश्रया।
तन्निमित्त प्रपञ्चोऽयमव्यक्तादभवत् खलु॥ ३ ॥
अव्यक्त कारण प्राहुरानन्द ज्योतिरक्षरम्।
अहमेव पर ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ४ ॥
तस्मान्मे विश्वरूपत्व निश्चित ब्रह्मवादिभि ।
एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥ ५ ॥
अह तत् परम ब्रह्म परमात्मा सनातन ।
अकारण द्विजा प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा॥ ६ ॥

ईश्वर बोले—द्विजो! मैं विश्व नहीं हूँ और मुझसे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है। यह सब मायाके निमित्तसे है और वह माया भी आत्माको आश्रित कर रहती है। आदि और अन्तसे रहित शक्तिरूप माया अव्यक्त (परमात्मा)-के आश्रित है, उसी (माया)-के कारण अव्यक्तसे यह प्रपञ्चरूप ससार उत्पन्न हुआ है। (मुझ) अव्यक्तको कारण कहा जाता है। मैं ही आनन्दस्वरूप, प्रकाशरूप, अक्षर परम ब्रह्म हूँ। मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्मवादियाने मेरा विश्वरूपत्व निश्चित किया है। एक रूप तथा भिन्नरूपके विषयमे इस उदाहरणका[१] वर्णन किया गया है। द्विजो! मैं कारणरहित, सनातन, परम ब्रह्म परमात्मा हूँ, अत मुझमे कोई दोष नहीं है। तात्पर्य यह है कि जगत्मे विषमता, क्रूरता आदि दोषोका असाधारण कारण मनुष्यकृत कर्म है, ईश्वर नहीं। ईश्वर तो सामान्य कारण है, अत वह दोषरहित है॥ २—६ ॥

अनन्ता शक्तयोऽव्यक्ते मायाद्या सस्थिता ध्रुवा ।
तस्मिन् दिवि स्थित नित्यमव्यक्त भाति केवलम्॥ ७ ॥
याभिस्तल्लक्ष्यते भिन्नमभिन्न तु स्वभावत ।
एकया मम सायुज्यमनादिनिधन ध्रुवम्॥ ८ ॥
पुसोऽभूदन्यया भूतिरन्यया तत्तिरोहितम्।
अनादिमध्य तिष्ठन्त युज्यतेऽविद्यया किल॥ ९ ॥
तदेतत् परम व्यक्त प्रभामण्डलमण्डितम्।
तदक्षर पर ज्योतिस्तद् विष्णो परम पदम्॥ १० ॥
तत्र सर्वमिद प्रोतमोत चैवाखिल जगत्।
तदेव च जगत् कृत्स्न तद् विज्ञाय विमुच्यते॥ ११ ॥

अव्यक्तमे ही माया आदि अनन्त ध्रुव शक्तियाँ प्रतिष्ठित है और वह अव्यक्त अकेले ही विशुद्ध शब्दतन्मात्रारूप आकाशतत्त्वमे स्थित रहते हुए सदा प्रकाशित रहता है। स्वभावत वह अभिन्न (अव्यक्त) तत्त्व जिनके द्वारा अनेक रूपामे प्रतिभासित होता है, उनकी मूल एक (परम) शक्तिसे आदि और अन्तरहित मेरा ध्रुव सायुज्य प्राप्त होता है। पुरुषकी दूसरी शक्तिसे भूति (ऐश्वर्य)-की उत्पत्ति तथा अन्य शक्तिसे उसका (भूतिका) लोप होता है। आदि एव मध्यरहित सर्वत्र विद्यमान (पुरुष) ही अविद्यासे (स्वेच्छया) युक्त होता है। प्रभामण्डलसे मण्डित वह परम व्यक्त, अक्षर, परम ज्योतिरूप है और वह विष्णुका परमपद है। उसमे ही यह सारा जगत् ओतप्रोत है। वही सम्पूर्ण जगत् है। उसे जान लेनेसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ७—११ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कुतश्चन॥ १२ ॥
वेदाहमेत पुरुष महान्त-
मादित्यवर्णं तमस परस्तात्।
तद् विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्
नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूत ॥ १३ ॥

मनके साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है, उस आनन्दस्वरूप ब्रह्मको जाननेवाला कहीं भयभीत नहीं

१-विवर्त विश्वकी दृष्टिसे महादेव अनेक रूप हैं तथा परमार्थत एक होनेसे एक रूप हैं।

न भूमिरापो न मनो न वह्नि
प्राणोऽनिलो गगन नोत बुद्धि ।
न चेतनोऽन्यत् परमाकाशमध्ये
विभाति देव शिव एव केवल ॥ १६ ॥

सभी वेद पुरुषको नित्य आनन्दरूप, अमृतरूप और विशुद्ध सत्यस्वरूप कहते हैं। वेदार्थका निश्चय किये हुए लोग 'ॐ' इस प्रणवके द्वारा उस नियामकका ध्यान करते हैं। परम आकाशके मध्यमें एकमात्र अद्वितीय देव शिव ही प्रकाशित होते हैं, वहाँ न भूमि है, न जल है, न मन है और न अग्नि ही है। इसी प्रकार प्राण, वायु, आकाश, बुद्धि तथा अन्य कोई चेतन-तत्त्व वहाँ नहीं है॥ १५-१६ ॥

इत्येतदुक्त परम रहस्य
ज्ञानामृत सर्ववेदेषु गूढम्।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे
युञ्जीत योग प्रयतो ह्यजस्रम्॥ १७॥

यह मैंने सभी वेदोंमें निहित परम रहस्यमय ज्ञानरूपी अमृतका वर्णन किया। किसी निर्जन प्रदेशमें निरन्तर प्रयत्नपूर्वक साधना करनेवाला योगी ही इस ज्ञानको जानता है॥ १७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १०॥
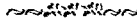
ग्यारहवाँ अध्याय

योगकी महिमा, अष्टाङ्गयोग, यम, नियम आदि योगसाधनाका लक्षण, प्राणायामका विशेष प्रतिपादन, ध्यानके विविध प्रकार, पाशुपत-योगका वर्णन, वाराणसीमें प्राणत्यागकी महिमा, शिव-आराधनकी विधि, शिव और विष्णुके अभेदका प्रतिपादन, शिवज्ञान-योगकी परम्पराका वर्णन, ईश्वरगीताकी फलश्रुति तथा उपसहार

ईश्वर उवाच

अत पर प्रवक्ष्यामि योग परमदुर्लभम्।
येनात्मान प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम्॥ १॥

ईश्वरने कहा—इसके अनन्तर उस परम दुर्लभ योगको कहता हूँ, जिससे सूर्यके समान ईश्वररूप आत्माका दर्शन होता है अर्थात् सूर्यका जैसे प्रत्यक्ष हो रहा है वैसे ही ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है॥ १॥

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेष पापपञ्जरम्।
प्रसन्न जायते ज्ञान साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥ २॥
योगात् सजायते ज्ञान ज्ञानाद् योग प्रवर्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसादति महेश्वर ॥ ३॥
एककाल द्विकाल वा त्रिकाल नित्यमेव वा।
ये युञ्जन्तीह मद्योग ते विज्ञेया महेश्वरा ॥ ४॥

योगरूपी अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पापपञ्जरको भस्म कर देता है और (उसके बाद) साक्षात् मुक्तिरूप सिद्धि प्रदान करनेवाला प्रसन्न (निर्मल) ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। योगसे ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञानसे योग प्रवर्तित होता है। योग तथा ज्ञानसे सम्पन्न व्यक्तिपर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो नित्य एक समय दो समय या तीनों समय मेरे योगका साधन करते हैं, उन्हें महेश्वर समझना चाहिये॥ २—४॥

योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभाव प्रथमो मत ।
अपरस्तु महायोग सर्वयोगोत्तमोत्तम ॥ ५॥
शून्य सर्वनिराभास स्वरूप यत्र चिन्त्यते।
अभावयोग स प्रोक्तो येनात्मान प्रपश्यति॥ ६॥
यत्र पश्यति चात्मान नित्यानन्द निरञ्जनम्।
मयैक्य स महायोगो भाषित परमेश्वर ॥ ७॥

योग दो प्रकारका समझना चाहिये पहला अभावयोग है और सभी योगोंमें उत्तमोत्तम महायोग कहलाता है। जिसमें

सभी आभासोसे रहित शून्यमय (निर्विकल्पक) स्वरूपका चिन्तन होता है और जिसके द्वारा आत्माका साक्षात्कार होता है, वह अभावयोग कहा गया है। जिसम नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्माका दर्शन होता है और मेरे साथ एकता होती है, वह परमेश्वररूप महायोग कहा गया है॥ ५—७॥

ये चान्ये योगिना योगा श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कला नार्हन्ति षोडशीम्॥ ८॥
यत्र साक्षात् प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम्।
सर्वेषामेव योगाना स योग परमो मत ॥ ९॥
सहस्रशोऽथ शतशो ये चेश्वरबहिष्कृता ।
न ते पश्यन्ति मामेक योगिनो यतमानसा ॥ १०॥

अन्य जिन योगियाके योगाका ग्रन्थामे विस्तार हुआ है, वे सभी ब्रह्मयोगकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। जिस योगमे मुक्त पुरुष विश्वको साक्षात् ईश्वरके रूपमे देखते हैं, वह सभी योगोंम श्रेष्ठ योग माना जाता है। जो सैकडा, हजारा अन्य प्रकारके मनको सयमित करनेवाले ईश्वरबहिष्कृत (वेदबाह्य) योगी हैं, वे मुझ अद्वितीयका दर्शन नहीं करते॥ ८—१०॥

प्राणायामस्तथा ध्यान प्रत्याहारोऽथ धारणा।
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमो नियम आसनम्॥ ११॥
मय्येकचित्ततायोगो वृत्त्यन्तरनिरोधत ।
तत्साधनान्यष्टधा तु युष्माक कथितानि तु॥ १२॥

मुनिश्रेष्ठो! अन्य वृत्तियोका निरोधकर मेरेमे एकचित्तता ही योग है और इस योगके जो आठ साधन मैंने आप लोगाका बताये हैं वे ये हैं—प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, यम, नियम तथा आसन[1]॥ ११-१२॥

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ
यमा सक्षेपत प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्॥ १३॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजनन प्रोक्त त्वहिंसा परमर्षिभि ॥ १४॥
अहिंसाया परो धर्मो नास्त्यहिंसा पर सुखम्।
विधिना या भवेद्धिसा त्वहिंसैव प्रकीर्तिता॥ १५॥
सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथार्थकथनाचार सत्य प्रोक्त द्विजातिभि ॥ १६॥
परद्रव्यापहरण चौर्याद् वाथ बलेन वा।
स्तेय तस्यानाचरणादस्तेय धर्मसाधनम्॥ १७॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्याग ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ १८॥

अहिसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—सक्षेपम इन्हे यम कहा गया है। ये मनुष्योके चित्तकी शुद्धि करनेवाले हैं। मन, वाणी तथा कर्मसे सभी प्राणियाको सर्वदा किसी भी प्रकारका क्लेश प्रदान न करना—इसे श्रेष्ठ ऋषियाने अहिसा कहा है। अहिसासे श्रेष्ठ (कोई) धर्म नहीं है और अहिसासे बढकर कोई सुख नहीं है। वेदविहित हिसाको अहिसा ही कहा गया है। सत्यके द्वारा सब कुछ प्राप्त हो जाता है, सत्यमे ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। द्विजातियाके द्वारा यथार्थ कथनके आचारको सत्य कहा गया है। चोरीसे अथवा बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है, उसका (स्तेयका) आचरण न करना अस्तेय है, यह धर्मका साधन है। मन, वाणी तथा कर्मद्वारा सभी अवस्थाआमे सर्वदा सर्वत्र मैथुनका त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है॥ १३—१८॥

द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि यथेच्छया।
अपरिग्रह इत्याहुस्त प्रयत्नेन पालयेत्॥ १९॥
तप स्वाध्यायसतोषा शौचमीश्वरपूजनम्।
समासान्नियमा प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिन ॥ २०॥
उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभि ।
शरीरशोषण प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥ २१॥

आपत्तिकालम भी इच्छापूर्वक द्रव्योका ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। प्रयत्नपूर्वक उस अपरिग्रहका पालन करना चाहिये। तप, स्वाध्याय, सतोष, शौच तथा ईश्वरका पूजन—सक्षेपम नियम बतलाये गये हैं, ये योगसिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। तपस्वियाने पराक आदि उपवासा तथा कृच्छ्रचान्द्रायणादि (व्रता)-के द्वारा शरीरके शोषणको उत्तम

[1] १-यद्यपि अष्टाङ्ग योगके साधन ऊपर निर्दिष्ट क्रमसे ही मूलमे वर्णित हैं पर यह वर्णन छन्दकी दृष्टिसे है। वास्तवम साधनाका क्रम इस प्रकार है—यम नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान एव समाधि।

तप कहा है॥ १९—२१॥

वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजप बुधा।
सत्त्वशुद्धिकर पुसा स्वाध्याय परिचक्षते॥ २२॥
स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपाशुमानसा।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्य प्राहुर्वेदार्थवेदिन॥ २३॥
य शब्दबोधजनन परेषा शृण्वता स्फुटम्।
स्वाध्यायो वाचिक प्रोक्त उपाशोरथ लक्षणम्॥ २४॥
ओष्ठयो स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधक।
उपाशुरेष निर्दिष्ट साहस्रो वाचिकाज्जप॥ २५॥
यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम्।
चिन्तन सर्वशब्दाना मानस त जप विदु॥ २६॥
यदृच्छालाभतो नित्यमल पुसो भवेदिति।
या धीस्तामृषय प्राहु सतोष सुखलक्षणम्॥ २७॥

विद्वान् लोगाने वेदान्तशास्त्र, शतरुद्रिय और प्रणव आदिके जपको पुरुषाके लिये सत्त्वकी शुद्धि करनेवाला 'स्वाध्याय' कहा है। स्वाध्यायके तीन भेद हैं—वाचिक, उपाशु और मानस। वेदार्थ जाननेवालाने इन तीनोंमे उत्तरोत्तरका वैशिष्ट्य कहा है अर्थात् वाचिक स्वाध्यायसे उपाशु स्वाध्याय श्रेष्ठ और उपाशु स्वाध्यायसे मानस स्वाध्याय श्रेष्ठ है। दूसरे सुननेवालेको स्पष्टरूपसे शब्दका ज्ञान उत्पन्न करानेवाला स्वाध्याय 'वाचिक' कहलाता है। (अर्थात् वह स्वाध्याय वाचिक है जो दूसराको स्पष्ट सुनायी पडे।) अब उपाशुका लक्षण बतलाया जाता है। ओठोंमे केवल स्पन्दन होनेके कारण दूसरेको शब्दका बोध न करानेवाला स्वाध्याय 'उपाशु' कहा गया है। यह वाचिक जपसे हजार गुना श्रेष्ठ है। (अर्थात् वही स्वाध्याय उपाशु है जिसमे ओठामे मात्र स्पन्दन हो, शब्दाका उच्चारण न हो।) स्पन्दनरहित अक्षर एव उस पदकी सगतिके अनुसार सभी शब्दाके चिन्तनको विद्वान् मानस जप कहते हैं (अर्थात् मानस जप (स्वाध्याय) वही है जिसमें स्वाध्यायके शब्दापर केवल मन केन्द्रित हो बाकी सर्वथा व्यापारशून्य हो)। पुरुषको जो यदृच्छापूर्वक मिल जाता है उस ही पर्याप्त समझनेवाली बुद्धिको ऋषिलाग नित्य सुख लक्षणवाला सतोष कहते हैं॥ २२—२७॥

बाह्यमाभ्यन्तर शौच द्विधा प्रोक्त द्विजोत्तमा।
मृज्जलाभ्या स्मृत बाह्य मन शुद्धिरथान्तरम्॥ २८॥
स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मन कायकर्मभि।
सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीश्वरपूजनम्॥ २९॥
यमा सनियमा प्राक्ता प्राणायाम निबोधत।
प्राण स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥ ३०॥
उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधाय प्रतिपादित।
स एव द्विविध प्रोक्त सगर्भोऽगर्भ एव च॥ ३१॥
मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रिक।
मध्यम प्राणसरोध षट्त्रिंशन्मात्रिकोत्तम॥ ३२॥

द्विजश्रेष्ठो! बाह्य और आभ्यन्तर-भेदसे शौच दो प्रकारका कहा गया है। मिट्टी और जलसे होनेवाला शौच बाह्य शौच और मनकी शुद्धि आभ्यन्तर शौच है। मन, वाणी तथा कर्मद्वारा स्तुति, स्मरण तथा पूजा करते हुए शिवमे अचल भक्ति रखना—यह ईश्वरका पूजन है। नियमाके साथ यमाको बतलाया गया, अब प्राणायामके विषयमे सुनो। अपनी देहसे उत्पन्न वायुको प्राण कहते हैं और उस वायुका निरोध करना आयाम है। उत्तम, मध्यम तथा अधमके भेदसे यह तीन प्रकारका कहा गया है। वही सगर्भ और अगर्भ-भेदसे दो प्रकारका है। द्वादश मात्रा (अर्थात् प्रणवका बारह बार जप करनेतक)-के कालको मन्द प्राणायाम, चौबीस मात्रा (के प्राणनिरोध)-को मध्यम और छत्तीस मात्रातकके कालतक प्राणनिरोधको उत्तम प्राणायाम कहा जाता है॥ २८—३२॥

प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकत्व यथाक्रमम्।
मन्दमध्यममुख्यानामानन्दादुत्तमोत्तम॥ ३३॥
सगर्भमाहु सजपमगर्भं विजप बुधा।
एतद् वै योगिनामुक्त प्राणायामस्य लक्षणम्॥ ३४॥
सव्याहृति सप्रणवा गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिर्जपेदायतप्राण प्राणायाम स उच्यते॥ ३५॥
रेचक पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भक।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसै॥ ३६॥

मन्द मध्यम तथा मुख्य अर्थात् उत्तम नामके प्राणायामोंमें क्रमसे प्रस्वेद (पसीना) कम्पन तथा उत्थान होता है। इनसे तत्त्व-प्राप्तिमे क्रमश आनन्दातिशयकी अनुभूति होती है। विद्वान् जपयुक्त प्राणायामको सगर्भ और जप-रहितको अगर्भ कहते हैं। योगियाके प्राणायामका यही लक्षण कहा गया है। प्राणधारणपूर्वक व्याहृति (भू भुव

स्व , मह , जन , तप , सत्यम्), प्रणव और शीर्षमन्त्रसहित गायत्रीका तीन बार जप (सगर्भ) प्राणायाम कहा जाता है। मनको सयत करनेवाले योगियाने सभी शास्त्रामे रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायामका वर्णन किया है॥ ३३—३६॥

रेचकोऽजस्त्रनि श्वासात् पूरकस्तन्निरोधत ।
साम्येन सस्थितिर्या सा कुम्भक परिगीयते॥ ३७॥
इन्द्रियाणा विचरता विषयेषु स्वभावत ।
निग्रह प्रोच्यते सद्भि प्रत्याहारस्तु सत्तमा ॥ ३८॥
हृत्पुण्डरीके नाभ्या वा मूर्ध्नि पर्वतमस्तके।
एवमादिषु दशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥ ३९॥
देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या वृत्तिसतति ।
वृत्त्यन्तरैरसस्पृष्टा तद्ध्यान सूरयो विदु ॥ ४०॥
एकाकार - समाधि स्याद् देशालम्बनवर्जित ।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम्॥ ४१॥
धारणा द्वादशायामा ध्यान द्वादश धारणा ।
ध्यान द्वादशक यावत् समाधिरभिधीयते॥ ४२॥

वायुके सतत बाहर निकालनेको रेचक और उसके रोकनेको पूरक तथा बादकी सम अवस्थाकी जो स्थिति है, उसे कुम्भक कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियो! सज्जनाने स्वभावत विषयोमे विचरण करनेवाली इन्द्रियाके निग्रहको प्रत्याहार कहा है। हृदयकमल, नाभिदेश, मूर्धा तथा पर्वतशिखर आदि स्थानोमे चित्तके बन्धनका धारणा कहा जाता है। किसी देश (स्थान) विशेषका अवलम्बनकर उसमे बुद्धिकी जो एकतान वृत्ति बनी रहती है और दूसरी वृत्तियासे कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है, उसे विद्वानोने ध्यान कहा है। किसी दश या अन्य आलम्बनसे रहित चित्तकी एकाकारता समाधि है। इसमे ध्येयमात्रका भान होता है। यह योगका उत्तम साधन है। बारह प्राणायामपर्यन्त धारणा, बारह धारणापर्यन्त ध्यान और बारह ध्यानपर्यन्त समाधि कही जाती है॥ ३७—४२॥

आसनं स्वस्तिक प्रोक्त पद्ममर्धासन तथा।
साधनाना च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम्॥ ४३॥
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्रा कृत्वा पादतल उभे।
समासीतात्मन पद्ममतदासनमुत्तमम्॥ ४४॥
एक पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि सत्तमा ।
आसीतार्धासनमिद योगसाधनमुत्तमम्॥ ४५॥
उभे कृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि।
समासीतात्मन प्रोक्तमासन स्वस्तिक परम्॥ ४६॥

स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा अर्धासन-भेदसे आसन (तीन प्रकारका) कहा गया है। सभी साधनामे यह साधन उत्तम है। विप्रेन्द्रा! अपने दोना ऊरुआके ऊपर दोना पादतलाको रखकर बैठनेको उत्तम पद्म नामक आसन कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियो! एक पैरको दूसरे जाँघके ऊपर रखकर बैठनेको अर्धासन कहा जाता है। यह योगका उत्तम साधन है। दोना पैराको जानुओ एव ऊरुआके भीतर करके बैठनेका श्रेष्ठ स्वस्तिक नामक आसन कहा जाता है॥ ४३—४६॥

अदेशकाले योगस्य दर्शन हि न विद्यते।
अग्न्यभ्याशे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा॥ ४७॥
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे।
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसचये॥ ४८॥
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते।
नाचरेद् देहबाधे वा दौर्मनस्यादिसम्भवे॥ ४९॥
सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहाया पर्वतस्य तु।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा॥ ५०॥
गृहे वा सुशुभे रम्ये विजने जन्तुवर्जिते।
युञ्जीत योगी सततमात्मान मत्परायण ॥ ५१॥

विपरीत देश (स्थान) और विपरीत कालमे योगतत्त्वका दर्शन भी नहीं होता। अग्निके समीप, जलमे, सूखे पत्तोंके ढेरके मध्य जन्तुआसे भरे स्थानमें, श्मशानमें, पुराने गोष्ठमे, चौराहेमे, कोलाहल और भययुक्त स्थानमें, चैत्यके समीप, दीमकासे पूर्ण स्थान, अशुभ स्थान, दुर्जनोंसे व्याप्त और मच्छर आदिसे भरे स्थान तथा देह-सम्बन्धी कष्ट और मनकी अस्वस्थताकी दशामें योग-साधन नहीं करना चाहिये। अच्छी प्रकार रक्षित शुभ स्थान, पर्वतकी गुफा, नदीके किनारे, पुण्यदेश, देवमन्दिर, घर, शुभ, रमणीय, जनशून्य, जन्तुआसे रहित स्थानामें योगीको सतत अपनेको मेरे परायण रखते हुए योग-साधना करनी चाहिये॥ ४७—५१॥

नमस्कृत्य तु योगीन्द्रान् सशिष्याश्च विनायकम्।
गुरु चैवाथ मा योगी युञ्जीत सुसमाहित ॥५२॥

आसन स्वस्तिक बद्ध्वा पद्ममर्धमथापि वा।
नासिकाग्रे समा दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षण ॥ ५३ ॥
कृत्वाथ निर्भय शान्तस्त्यक्त्वा मायामय जगत्।
स्वात्मन्यवस्थित देव चिन्तयेत् परमेश्वरम् ॥ ५४ ॥

योगीको चाहिये कि वह शिष्यासहित श्रेष्ठ योगियो, विनायक, गुरु तथा मुझे प्रणाम करके समाहित-मन होकर योग-साधना करे। स्वस्तिक, पद्म अथवा अर्धासन बाँधकर नासिकाके अग्रभागम कुछ-कुछ खुली हुई आँखासे दृष्टिको स्थिर करके निर्भय तथा शान्त होकर मायामय ससार (के चिन्तन)-का परित्यागकर अपने आत्माम स्थित परमेश्वर देवका चिन्तन करना चाहिये॥ ५२—५४॥

शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम्।
धर्मकन्दसमुद्भूत ज्ञाननाल सुशोभनम् ॥ ५५ ॥
ऐश्वर्याष्टदल श्वेत पर वैराग्यकर्णिकम्।
चिन्तयेत् परम काश कर्णिकाया हिरण्मयम् ॥ ५६ ॥
सर्वशक्तिमय साक्षाद् य प्राहुर्दिव्यमव्ययम्।
आकारवाच्यमव्यक्त' रश्मिजालसमाकुलम् ॥ ५७ ॥
चिन्तयेत् तत्र विमल पर ज्योतिर्यदक्षरम्।
तस्मिन् ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मान तदभेदत ॥ ५८ ॥
ध्यायीताकाशमध्यस्थमीश परमकारणम्।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥ ५९ ॥

शिखाके अग्रभागम बारह अगुलके प्रदेशम धर्मस्वरूप कन्दसे प्रादुर्भूत, ज्ञानरूप नालवाले, ऐश्वर्य-रूप आठ दलावाले, वैराग्यरूपी कर्णिकासे युक्त अत्यन्त श्वेत एव सुन्दर कमलकी कल्पना करे और उस कमलकी कर्णिकामे हिरण्मय श्रेष्ठ कोशका ध्यान करे। उस (कोश)-म विशुद्ध अविनाशी साक्षात् परम ज्योतिका ध्यान कर, जिसे सर्वशक्तिसम्पन्न, दिव्य अव्यय, आकारसे वाच्य, अव्यक्त और प्रकाशकी किरणमालाआसे व्याप्त कहा गया है। उस ज्योतिम अपने आत्माकी अभेदभावना कर आकाशक मध्यम स्थित परम कारणस्वरूप परमेश्वरका ध्यान कर और परमेश्वररूप एव सवव्यापी हाकर किसी भी अन्य वस्तुका चिन्तन न कर॥ ५५—५९॥

एतद् गुह्यतम ध्यान ध्यानान्तरमथोच्यत।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्त हृदय पद्ममुत्तमम् ॥ ६० ॥
आत्मानमथ कर्तार तत्रानलसमत्विषम्।
मध्ये वह्निशिखाकार पुरुष पञ्चविंशकम् ॥ ६१ ॥
चिन्तयेत् परमात्मान तन्मध्ये गगन परम्।
ओंकारबोधित तत्त्व शाश्वत शिवमच्युतम् ॥ ६२ ॥

यह अत्यन्त गुह्य ध्यान है। अब दूसरा ध्यान कहा जाता है। अपने हृदयदेशम पूर्वमे कहे गये उत्तम कमलका चिन्तनकर उस कमलम अग्निके समान तेजस्वी, कर्तारूप, पचीसवे तत्त्व पुरुषात्मक परमात्मरूप आत्माका चिन्तन करना चाहिये। उस परमात्माके भीतर परम आकाश (अवकाश) है (क्याकि परमेश्वर विभु विराट् हैं)। आकारसे बोधित सनातन तत्त्व अच्युत शिव कहलाता है॥ ६०—६२॥

अव्यक्त प्रकृतौ लीन पर ज्योतिरनुत्तमम्।
तदन्त परम तत्त्वमात्माधार निरञ्जनम् ॥ ६३ ॥
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूप महेश्वरम्।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुन ॥ ६४ ॥
सस्थाप्य मयि चात्मान निर्मले परमे पदे।
प्लावयित्वात्मनो देह तेनैव ज्ञानवारिणा ॥ ६५ ॥
मदात्मा मन्मयो भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम्।
तेनोद्धृत्य तु सर्वाङ्गमग्निरित्यादिमन्त्रत ।
चिन्तयेत् स्वात्मनीशान पर ज्योति स्वरूपिणम् ॥ ६६ ॥

उसके भीतर अव्यक्त, प्रकृतिमे लीन, उत्तम परम ज्याति, परम तत्त्व, आत्माधार, निरञ्जन,- नित्य, एकरूप महेश्वरका तन्मय होकर ध्यान करना चाहिये। अथवा प्रणवके द्वारा पुन सभी तत्त्वाका शोधनकर विशुद्ध परम-पदरूप मुझम अपने आत्माको स्थापित करे और उसी ज्ञानरूपी जलसे अपनी देहको आप्लावित करके मुझम चित्त आसक्त करे तथा मेरे परायण होकर अग्निहोत्रका भस्म ग्रहण करे और 'अग्नि०' इत्यादि मन्त्रक द्वारा भस्मसे अपने सम्पूर्ण शरीरको उपलिप्त कर अपने आत्माम परम ज्योति-स्वरूप इशानका चिन्तन करे॥ ६३—६६॥

एष पाशुपता याग पशुपाशविमुक्तय।
सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रममिति श्रुति ॥ ६७ ॥
एतत् परतर गुह्य मत्सायुज्योपपादकम्।
द्विजातीना तु कथित भक्ताना ब्रह्मचारिणाम् ॥ ६८ ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमा शौच तपा दम ।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह ।
शारीर केवल कर्म कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम्॥ ८३॥

चित्तसे सभी कर्मोको मुझमे अर्पितकर मत्परायण होते हुए आशा एव ममताकी आसक्तिसे रहित होकर एकमात्र मेरी ही शरण ग्रहण करना चाहिये। कर्मफलकी आसक्तिका सर्वथा परित्यागकर नित्य सतृप्त और (अन्य) आश्रयरहित (एकमात्र परमेश्वरको ही आश्रय समझनेवाला) व्यक्ति कर्मोंमे प्रवृत्त होते हुए भी उन कर्मोके द्वारा बन्धनमे नहीं पडता। आशारहित, सयमित चित्तवाला सब प्रकारके परिग्रहो (सचयो)-का परित्यागकर केवल शरीर (रक्षा)-के निमित्त कर्म करते हुए भी (व्यक्ति) उस पद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है॥ ८१—८३॥

यदृच्छालाभतुष्टस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि।
कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म ससारनाशनम्॥ ८४॥
मन्मना मन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायण ।
मामुपैष्यति योगीश ज्ञात्वा मा परमेश्वरम्॥ ८५॥
मद्बुद्धयो मा सतत बोधयन्त परस्परम्।
कथयन्तश्च मा नित्य मम सायुज्यमाप्नुयु ॥ ८६॥
एव नित्याभियुक्ताना मायेय कर्मसान्वगम्।
नाशयामि तम कृत्स्न ज्ञानदीपेन भास्वता॥ ८७॥

अनायास जो उपलब्ध हो उसीमे सतुष्ट रहनेवाले और सभी प्रकारके सुख-दु खादि द्वन्द्वोसे रहित रहनेवाले पुरुषके द्वारा केवल मेरी प्रसन्नताके लिये किये गये कर्म ससार (रूपी बन्धन)-का विनाश करनेवाले हैं। मुझमे मन लगानेवाला मुझे नमस्कार करनेवाला, मेरा पूजन करनेवाला और मुझे ही अपना परम अयन (आश्रय) समझनेवाला (योगी) मुझ योगके ईश परमेश्वरको जानकर मुझे प्राप्त कर लेता है। मुझमे बुद्धि रखनेवाले (साधक) सतत परस्पर मेरा बोध कराते हुए और नित्य मेरा वर्णन करते हुए मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नित्य योगयुक्त पुरुषके माया (अज्ञान)-से उत्पन्न तथा उनसे भी उत्पन्न कर्मरूप समस्त अन्धकारका प्रकाशमान ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मैं नाश कर देता हूँ॥ ८४—८७॥

मद्बुद्धयो मा सतत पूजयन्तीह ये जना ।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम्॥ ८८॥
येऽन्ये च कामभोगार्थं यजन्ते ह्यन्यदेवता ।
तेषा तदन्त विज्ञेय देवतानुगत फलम्॥ ८९॥
ये चान्यदेवताभक्ता पूजयन्तीह देवता ।
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि भावत ॥ ९०॥
तस्मादनीश्वरानन्यास्त्यक्त्वा देवानशेषत ।
मामेव सश्रयेदीश स याति परम पदम्॥ ९१॥

मुझमे बुद्धि लगानेवाले जो मनुष्य सतत मेरी पूजा करते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषोके योग-क्षेमका मैं निर्वाह करता हूँ और जो दूसरे लोग अभिलषित विषयोके उपभोगके लिये ही भिन्न-भिन्न देवताओका पूजन करते हैं, उनका अन्त विषयभोगतक ही समझना चाहिये, क्योकि देवताके अनुसार ही फल भी होता है[1]। जो दूसरे देवोके भक्त है, वे यदि मेरी भावनासे युक्त होकर (दूसरे) देवताओकी पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवोमे मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी (मुझमे) भावना करनेके कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर[2] देवताओका परित्यागकर जो मुझ ईशका ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपदको प्राप्त करता है॥ ८८—९१॥

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेह नि शोको निष्परिग्रह ।
यजेच्चामरणाल्लिङ्गे विरक्त परमेश्वरम्॥ ९२॥
येऽर्चयन्ति सदा लिङ्ग त्यक्त्वा भोगानशेषत ।
एकेन जन्मना तेषा ददामि परमैश्वरम्॥ ९३॥
परानन्दात्मक लिङ्ग केवल सन्निरञ्जनम्।
ज्ञानात्मक सर्वगत योगिना हृदि सस्थितम्॥ ९४॥

पुत्र (स्त्री गृह) आदिमे आसक्तिका परित्यागकर और

१-देवताके अनुसार फलका तात्पर्य यह है कि जैसी भावनासे देवताकी आराधना की जाती है वैसी भावनाके अनुसार ही देवता फल देते हैं जिस रूपमे हम देवताको समझेंगे उसी रूपमें देवता हमें लाभ देंगे। तत्-तत् फलोके अधिष्ठाता रूपमे ही देवताकी आराधना करनेपर फलमात्र देकर देवता विरत हो जाते हैं।

२-एक ही देवता पूजककी दृष्टिमें तबतक अनीश्वर है जबतक पूजक उसे किसी तुच्छ फलका अधिष्ठाता मात्र समझता है। यदि उसी देवताको परमेश्वरके भावसे निष्काम होकर पूर्ण समर्पण-भावके साथ पूजा जाय तो वह देवता अनीश्वर नहीं है सर्वथा सवनीय है।

शोकरहित होकर तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुषको मृत्युपर्यन्त (शिव) लिङ्गम परमेश्वरकी आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगाका परित्यागकर सर्वदा लिङ्गका पूजन करते रहते हैं, उन्ह मे एक जन्ममे ही परम ऐश्वर-पद (मोक्ष) प्रदान करता हूँ। परम आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, सद्रूप निरञ्जन, ज्ञानात्मक और सर्वत्र व्याप्त (शिव) लिङ्ग योगियाके हृदय-प्रदेशमे अवस्थित रहता है॥ ९२—९४॥

ये चान्ये नियता भक्तो भावयित्वा विधानत ।
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्चयन्ति महेश्वरम्॥ ९५॥
जले वा वह्निमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽथ चान्यत ।
रत्नादौ भावयित्वेशमर्चयेल्लिङ्गमैश्वरम्॥ ९६॥
सर्वं लिङ्गमय ह्येतत् सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।
तस्माल्लिङ्गेऽर्चयेदीश यत्र क्वचन शाश्वतम्॥ ९७॥

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधिपूर्वक जहाँ-कहीं भी (शिवलिङ्गकी) भावना करते हुए उस महेश्वर लिङ्गकी अर्चना करते हैं। जलम, अग्निक मध्यमे, आकाशम, सूर्यमे, रत्न आदिमे अथवा अन्यत्र कहीं भी ईशकी भावना करके लिङ्गरूप ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये। यह सब कुछ लिङ्गमय है और सब कुछ लिङ्गमे प्रतिष्ठित है, अतएव जहाँ-कहीं भी लिङ्गरूपमे शाश्वत ईशका अर्चन करना चाहिये॥ ९५—९७॥

अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्।
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणा हृदि लिङ्ग तु योगिनाम्॥ ९८॥
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्त प्रीतिसयुत ।
यावज्जीव जपेद् युक्त प्रणव ब्रह्मणो वपु ॥ ९९॥
अथवा शतरुद्रीय जपेदामरणाद् द्विज ।
एकाकी यतचित्तात्मा स याति परम पदम्॥ १००॥
वसेद् वामरणाद् विप्रो वाराणस्या समाहित ।
सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत् परम पदम्॥ १०१॥
तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामव देहिनाम्।
ददाति तत् पर ज्ञान येन मुच्येत बन्धनात्॥ १०२॥

क्रियाशीलाका[1] (लिङ्ग) अग्निमे, मनीषियाका[2] जल, आकाश और सूर्यम, अज्ञानियाका[3] काष्ठ आदिम और योगियाका[4] लिङ्ग हृदयम स्थित रहता है। यदि (ब्रह्म) विज्ञान उत्पन्न न हुआ हो तो विरक्त होकर (द्विजको) अत्यन्त प्रीतिसे ब्रह्मके प्रणवरूपी शरीरका यावज्जीवन जप करते हुए रहना चाहिये। अथवा एकाकी एव सयत-चित्तवाले द्विजका मरणपर्यन्त शतरुद्रियका जप करना चाहिये, इससे उसे परम पद प्राप्त होता है। अथवा विप्रको[5] चाहिये कि मरणपर्यन्त समाहितचित्त होकर वाराणसीमे निवास करे। वह भी ईश्वर (शकर)-के अनुग्रहसे उत्कृष्ट परमपदको प्राप्त करता है। वहाँ (वाराणसीमे) सभी प्राणियोको उनके प्राण निकलते समय (भगवान् शकर) उस परम ज्ञानको प्रदान करते है, जिससे वे (पुनर्जन्मके) बन्धनसे मुक्त हो जाते हे॥ ९८—१०२॥

वर्णाश्रमविधि कृत्स्न कुर्वाणो मत्परायण ।
तेनैव जन्मना ज्ञान लब्ध्वा याति शिव पदम्॥ १०३॥
येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वा पापयोनय ।
सर्वे तरन्ति ससारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजा ॥ १०४॥
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्।
धर्मं समाश्रयेत् तस्मान्मुक्तये नियत द्विजा ॥ १०५॥
एतद् रहस्य वेदाना न देय यस्य कस्यचित्।
धार्मिकायैव दातव्य भक्ताय ब्रह्मचारिणे॥ १०६॥

सम्पूर्ण वर्णाश्रम-विधिका पालन करते हुए मर परायण

१- क्रियाशील'से उन द्विजाको समझना चाहिय जो श्रौत-स्मार्त क्रियाआम दत्तचित्त हैं। इनका प्रमुख आराध्य अग्नि हाता है।

२- मनीषी'से उन्ह समझना चाहिये जो यथाविधि श्रौत-स्मार्त क्रियाओक अनुष्ठानसे शुद्धान्त करण होकर ब्रह्मनिष्ठाकी ओर अग्रसर हे।

३-'अज्ञानी शब्दसे उन्ह समझना चाहिये जो वद-शास्त्रक प्रति निष्ठावान् है पर ऐहलौकिक विविध ऐश्वर्योंके प्रति आसक्त हैं इन्ह प्राप्त करनेके लिय उत्कण्ठित ह।

४- योगी शब्दसे ब्रह्मनिष्ठको समझना चाहिय। ब्रह्मनिष्ठ होनेक पूर्व सयत एव एकाग्रचित्त अनासक्त साधकको एक भूमिका हाती है। इस भूमिकाके लाग भी यहाँ योगी समझे जा सकत ह।

५-सर्वप्रमुख होनेसे यहाँ विप्र' मात्रका उल्लेख है। यह 'विप्र' शब्द प्राणिमात्रका उपलक्षक है।

रहनेवाला अपने उसी जन्ममें (जिस जन्ममें वर्णाश्रम-धर्मका पालन कर रहा है) ज्ञान प्राप्तकर शिवपदको प्राप्त करता है। द्विजो! नीच अथवा पापयोनिवाले भी जो प्राणी वहाँ (वाराणसीमें) निवास करते हैं वे सभी ईश्वर (शंकर)-के अनुग्रहसे संसारको पार कर लेते हैं किंतु जो पापाक्रान्त चित्तवाले हैं उन्हें बहुत विघ्न होते हैं। इसलिये द्विजो! मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निरन्तर धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यह वेदोंका रहस्य है इसे जिस किसीको नहीं देना चाहिये। धार्मिक तथा ब्रह्मचारी भक्तको ही प्रदान करना चाहिये॥ १०३—१०६॥

व्यास उवाच

इत्येतदुक्त्वा भगवानात्मयोगमनुत्तमम्।
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम्॥ १०७॥
मयैतद् भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम्।
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम्॥ १०८॥
उक्त्वैवमथ योगीन्द्रानब्रवीद् भगवानजः।
हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः॥ १०९॥
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम्।
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम॥ ११०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उत्तम आत्मयोगका वर्णन करके भगवान् (शंकर)-ने वहीं बैठे हुए प्रसन्नचित्त नारायणसे कहा—मैंने ब्रह्मवादियोंके कल्याणार्थ इस ज्ञानको कहा है। आप इस कल्याणकारी ज्ञानको शान्तचित्त शिष्योंको प्रदान करें। अजन्मा भगवान् (शंकर)-ने ऐसा कहनेके उपरान्त श्रेष्ठ योगियोंसे कहा—द्विजोत्तमो! सभी द्विजाति भक्तोंके कल्याणके लिये आप लोग भी मेरे कहनेसे सभी भक्त शिष्योंको मेरे ज्ञानका विधिपूर्वक उपदेश करें॥ १०७—११०॥

अयं नारायणो [illegible] नात्र संशयः।
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम्॥ १११॥
ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता [illegible]॥ ११२॥
ये [illegible] प्रपश्यन्ति [illegible] जनाः।
न ते मां सम्प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः॥ ११३॥
ये त्विमं विष्णुमव्यक्तं मां वा देवं महेश्वरम्।
[illegible] पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥ ११४॥
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि॥ ११५॥

जो ये नारायण हैं, वह मैं ईश्वर ही हूँ। इसमें संदेह नहीं है। जो (हम दोनोंमें) कोई भेद नहीं देखता उसीको यह परम (ज्ञान) देना चाहिये। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह परम मूर्ति सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। लोकमें जो भेददृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं करते हैं और बार-बार (संसारमें) जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वरको एकीभावसे देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये अनादिनिधन (आदि और अन्तसे रहित) आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो॥ १११—११५॥

येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति मत्वेमं देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः॥ ११६॥
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्॥ ११७॥
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि॥ ११८॥

जो लोग इन (विष्णु)-को दूसरा देवता मानकर मुझे दूसरा देवता समझकर देखते हैं वे घोर नरकोंमें जाते हैं मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो पण्डित हो ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले (प्रत्येक)-को मैं मुक्त कर देता हूँ, किंतु जो नारायणकी निन्दा करनेवाला है उसे मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करनेके लिये इन महायोगी पुरुषोत्तमकी अर्चना अवश्य करें और इन्हें नमस्कार अवश्य करें॥ ११६—११८॥

एवमुक्त्वा समालिङ्ग्य वासुदेवं पिनाकधृक्।
अन्तर्हितोऽभवत् तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्॥ ११९॥
नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम्।
जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः॥ १२०॥

[illegible]

सभी योगियोंसे कहा— ॥ ११९-१२० ॥

ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात् परमेष्ठिनः ।
साक्षादेव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम् ॥ १२१ ॥
गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः ।
प्रवर्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः ॥ १२२ ॥
इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये।
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः ॥ १२३ ॥
एवमुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ।
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ॥ १२४ ॥

आप लोगोंने परमेष्ठी (महेश्वर)-की कृपासे संसार (बन्धन)-को नष्ट करनेवाला उन्हीं साक्षात् महेशका निर्मल ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिये मुनीश्वरो! विगतज्वर होकर आप सभी जायँ और धार्मिक शिष्योंमें परमेष्ठीके ज्ञानको प्रवर्तित करें। इस ईश्वर-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञानको विशेष रूपसे शान्त भक्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा कहकर योगियोंमें परम श्रेष्ठ वे महायोगी विश्वात्मा नारायण स्वयं अन्तर्हित हो गये॥ १२१—१२४॥

तेऽपि देवादिदेवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम्।
नारायणं च भूतादिं स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ १२५॥
सनत्कुमारो भगवान् संवर्ताय महामुनिः ।
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रताय तु॥ १२६॥
सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये।
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः ॥ १२७॥
अङ्गिरा वेदविदुषे भरद्वाजाय दत्तवान्।
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च॥ १२८॥
पराशरोऽपि सनकात् पिता मे सर्वतत्त्वदृक्।
लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद् वाल्मीकिराप्तवान्॥ १२९॥
मामुवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः ।
वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक्॥ १३०॥

वे (मुनिगण) भी देवोंके आदिदेवेश्वर महेश्वरको और भूतादि (समस्त प्रपञ्चके मूलकारण) नारायणको नमस्कार कर अपने स्थानोंकी ओर चले गये। महामुनि भगवान् सनत्कुमारने संवर्तको ईश्वरीय ज्ञान (शिवज्ञानका उपदेश) प्रदान किया। उन्होंने भी (वह ज्ञान) सत्यव्रतको दिया। योगीन्द्र सनन्दनने महर्षि पुलहको और प्रजापति पुलहने गौतमको ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया। अङ्गिराने वेदोंके ज्ञाता भरद्वाजको और कपिलने जैगीषव्य तथा पञ्चशिखको (वह ज्ञान) दिया। सभी तत्त्वोंके द्रष्टा मेरे पिता पराशरने भी वह परम ज्ञान सनकसे प्राप्त किया और उनसे वाल्मीकिने प्राप्त किया। प्राचीन कालमें अर्धनारीश्वर भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न महायोगी वामदेवजीने मुझसे कहा, जो साक्षात् पिनाकधारी रुद्रस्वरूप हैं॥ १२५—१३०॥

नारायणोऽपि भगवान् देवकीतनयो हरिः ।
अर्जुनाय स्वयं साक्षात् दत्तवानिदमुत्तमम्॥ १३१॥
यदहं लब्धवान् रुद्राद् वामदेवादनुत्तमम्।
विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्॥ १३२॥
शरण्यं शरणं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः ।
भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम्॥ १३३॥
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम्।
प्रपद्यध्वं सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम्॥ १३४॥
वर्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयोगेन शंकरम्।
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं भूतिभूषणम्॥ १३५॥

देवकीके पुत्र हरि भगवान् नारायणने भी स्वयं साक्षात् अर्जुनको यह उत्तम ज्ञान प्रदान किया। जब मैंने वामदेव रुद्रसे इस श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त किया, तभीसे मेरी गिरिशमें विशेष भक्ति हो गयी। मैंने शरणागतोंके रक्षक, शरण (प्राणिमात्रके आश्रय) भूतोंके ईश गिरिश स्थाणु, देवाधिदेव त्रिशूली रुद्रकी विशेषरूपसे शरण ग्रहण की है। पत्नी तथा पुत्रोंके साथ आप सब लोग भी उन 'गोवृषवाहन'[1] कल्याणकारी भगवान् शम्भुकी शरणमें जायँ। उनकी कृपासे कर्मयोगके द्वारा व्यवहार[2] करें और विभूतिभूषण गोपति (इन्द्रियोंके पति) महादेव शंकरकी पूजा करें॥ १३१—१३५॥

१-'गोवृषवाहन'—धर्मस्वरूप गोजातिक वृषको महेश्वरने अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया है। इसलिये महेश्वरको 'गोवृषवाहन' कहा गया है।

२-'कर्मयोगके द्वारा व्यवहार'का तात्पर्य है—अनासक्त-भावसे (कर्मफलकी कामनाके बिना) कर्तव्यबुद्धिसे अधिकारानुसार वेदादि शास्त्रोक्त कर्मोंका पालन करना।

एवमुक्तेऽथ मुनय शौनकाद्या महेश्वरम्।
प्रणमु शाश्वत स्थाणु व्यास सत्यवतीसुतम्॥ १३६॥
अब्रुवन् हृष्टमनस कृष्णद्वैपायन प्रभुम्।
साक्षादेव हृषीकेश सर्वलोकमहेश्वरम्॥ १३७॥

ऐसा कहे जानेपर उन शौनक आदि (महर्षियों)-ने पुन शाश्वत स्थाणु सनातन महेश्वर एव सत्यवतीके पुत्र व्यासको प्रणाम किया और प्रसन्न-मन होकर वे सभी लोकोंके महेश्वर, साक्षात् हृषीकेश प्रभु कृष्णद्वैपायन (व्यास)-से कहने लगे— ॥ १३६-१३७॥

भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे।
इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा॥ १३८॥
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम्।
येनासौ भगवानीश समाराध्यो मुमुक्षुभि ॥ १३९॥
त्वत्सनिधावेष सूत शृणोतु भगवद्वच ।
तद्वदाखिललोकाना रक्षण धर्मसग्रहम्॥ १४०॥
यदुक्त देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा।
पृष्टेन मुनिभि पूर्वं शक्रेणामृतमन्थने॥ १४१॥

(भगवन्!) आपकी ही कृपासे शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोवृषध्वज (भगवान् शकर)-की वह अविचल भक्ति हमें प्राप्त हो गयी है जो देवताओंको भी दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ! आप श्रेष्ठ कर्मयोग हमें बतलायें जिसके द्वारा मोक्षार्थी लोग इन भगवान् ईशकी आराधना करते हैं[१]। आप (वेदव्यास)-की सनिधिमें हो रोमहर्षण सूतजी भगवान् (महेश्वर)-के वचनोंको सुन लें, जो वचन समस्त लोकोंके रक्षक हैं और जिनमें समस्त धर्मोंका सग्रह हुआ है। अत इनका वर्णन करें। इसके अतिरिक्त आप यह भी बतायें जो पूर्वकालमें अमृतमन्थनके समय इन्द्रके द्वारा तथा मुनियोंके द्वारा पूछे जानेपर कूर्मरूपी देवाधिदेव श्रीविष्णुने कहा था (आप उसी कर्मयोगका वर्णन करें)॥ १३८—१४१॥

श्रुत्वा सत्यवतीसूनु कर्मयोग सनातनम्।
मुनीना भाषित कृष्ण प्रोवाच सुसमाहित ॥ १४२॥

इस प्रकार मुनियोंने जो कहा उसे सुनकर सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासजीने समाहित होकर (मुनियोंको) सनातन कर्मयोग बतलाया॥ १४२॥

य इम पठते नित्य सवाद कृत्तिवासस ।
सनत्कुमारप्रमुखै सर्वपापै प्रमुच्यते॥ १४३॥
श्रावयेद् वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमा गतिम्॥ १४४॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्य भक्तियुक्तो दृढव्रत ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ १४५॥

श्रीसनत्कुमार आदि प्रमुख मुनियों एव भगवान् कृत्तिवासा (शकर)-के मध्य सम्पन्न इस सवादको जो नित्य पढता है वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। अथवा जो ब्रह्मचर्यपरायण विशुद्ध द्विजोंको इस (सवाद)-को सुनाता है, या जो इस सवादके अर्थका अनुसधान करता है वह परमगतिको प्राप्त करता है। जो दृढव्रती भक्ति-सम्पन्न होकर इस (सवाद)-को नित्य सुनता है वह सभी पापोंसे मुक्त होते हुए ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १४३—१४५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभि ।
श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणै सदा॥ १४६॥

इसलिये विद्वानोंको सभी प्रयत्नोंके द्वारा नित्य इसका पठन श्रवण एव विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको इसका सदा मनन करना चाहिये॥ १४६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां सहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) एकादशोऽध्याय ॥ ११॥

(ईश्वरगीता समाप्ता)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बारहवॉ अध्याय

ब्रह्मचारीका धर्म, यज्ञोपवीत आदिके सम्बन्धमे विविध विवरण, अभिवादनकी विधि, माता-पिता एव गुरुकी महिमा, ब्रह्मचारीके सदाचारका वर्णन

व्यास उवाच

शृणुध्वमृपय सर्वे वक्ष्यमाण सनातनम्।
कर्मयोग ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्॥ १॥

व्यासजी बाले—ऋपियो! आप लोग ब्राह्मणोका आत्यन्तिक (शाश्वत) फल प्रदान करनेवाले, अभी कहे जा रहे सनातन कर्मयोगको सुनें॥ १॥

आम्नायसिद्धमखिल ब्रह्मणानुप्रदर्शितम्।
ऋषीणा शृण्वता पूर्व मनुराह प्रजापति ॥ २॥
सर्वपापहर पुण्यमृपिसङ्घैर्निषेवितम्।
समाहितधियो यूय शृणुध्व गदतो मम॥ ३॥
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमा ।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानत ॥ ४॥
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनि ।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥ ५॥

पूर्वकालम प्रजापति मनुने सुननेकी इच्छा रखनेवाले ऋपियाको समस्त वेदामे प्रसिद्ध, ब्रह्माद्वारा बतलाये गये, सभी पापाको दूर करनेवाले तथा पवित्र ऋपि-समूहाद्वारा सेवित इस सम्पूर्ण कर्मयोगको बतलाया था। मेरे द्वारा कहे जानेवाले इस कर्मयोगको समाहित-बुद्धि होकर आप लाग भी सुन। द्विजोत्तमो! गर्भसे आठवे अथवा (जन्मसे) आठव वर्पकी अवस्थाम अपने-अपने गृह्यसूत्राक्त विधानके अनुसार यज्ञापवीत-सस्कारसे युक्त होकर दण्ड, मखला, यज्ञापवीत तथा कृष्णमृगचर्म धारणकर मुनिवृत्तिवाल (ब्राह्मण-बालक)-को चाहिये कि वह भिक्षान्न ग्रहण करते हुए, गुरुक हितम तत्पर रहकर गुरुके समीपम उनकी ओर देखते हुए वदाका अध्ययन कर॥ २—५॥

कार्पासमुपवीतार्थं निर्मित ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणाना त्रिवृत् सूत्र कौश वा वास्त्रमेव वा॥ ६॥
सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखा द्विज ।
अन्यथा यत् कृत कर्म तद् भवत्ययथाकृतम्॥ ७॥

प्राचीन कालम ब्रह्माने यज्ञोपवीतक लिये कपासका निर्माण किया। ब्राह्मणोका यज्ञोपवीत तिहरा होना चाहिये, वह कुशका हो अथवा वस्त्रका हो। द्विजको सदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये तथा शिखा बाँधे रखना चाहिये। अन्यथा (वह) जो कर्म करता है, वह न किये हुएके ही समान ह अर्थात् निष्फल है॥ ६-७॥

वसेदविकृत वास कार्पास वा कषायकम्।
तदेव परिधानीय शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम्॥ ८॥
उत्तर तु समाख्यात वास कृष्णाजिन शुभम्।
अभावे दिव्यमजिन रौरव वा विधीयते॥ ९॥

कपास या रेशमका बना हुआ विकाररहित (जला-कटा न हो) वस्त्र पहनना चाहिये। ऐसे ही स्वच्छ, छिद्ररहित तथा उत्तम (शास्त्रविधिके अनुसार) वस्त्रको धारण करना चाहिये। उत्तरीय वस्त्रके रूपम कृष्णमृगचर्म शुभ कहा गया है। इसके अभावमे दिव्य चर्म अथवा रुरु मृगके चर्मका विधान किया गया है॥ ८-९॥

उद्धृत्य दक्षिण बाहु सव्ये बाहौ समर्पितम्।
उपवीत भवेन्नित्य निवीत कण्ठसज्जने॥ १०॥
सव्य बाहु समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृत द्विजा ।
प्राचीनावीतमित्युक्त पित्र्ये कर्मणि योजयत्॥ ११॥
अग्न्यगारे गवा गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च।
स्वाध्याय भाजन नित्य ब्राह्मणाना च सनिधौ॥ १२॥
उपासन गुरूणा च सध्ययो साधुसगमे।
उपवीती भवन्नित्य विधिरेप सनातन ॥ १३॥
मौञ्जी त्रिवृत् समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मखला।
मुञ्जाभाव कुशनाहुर्ग्रन्थिनैकन वा त्रिभि ॥ १४॥
धारयद् वैल्वपालाशौ दण्डौ कशान्तकौ द्विज ।
यज्ञार्हवृक्षज वाथ सौम्यमव्रणमव च॥ १५॥

दाहिना हाथ उठाकर बाय हाथक ऊपर (बाय कधपर) स्थापित यज्ञसूत्रको 'उपवीत' कहा जाता ह। नित्य एस रहना चाहिये। कण्ठम (मालाकी तरह) लटक रहनपर (यज्ञसूत्र) 'निवीत' कहा जाता ह। द्विजो! बायाँ हाथ बाहर

निकालकर दाहिने बाहुके ऊपर (दाहिने कंधेके ऊपर) रखे हुए यज्ञसूत्रको 'प्राचीनावीत' (अपसव्य) कहा जाता है। इसका प्रयोग पितृकर्ममें करना चाहिये। यज्ञशाला, गोशाला, होम, जप, स्वाध्याय, भोजन, ब्राह्मणोंकी संनिधि, गुरुओंकी उपासना, दोनों संध्याओं और साधुओंके समागम (सत्संग)-के समय नित्य उपवीती रहना चाहिये यह सनातन विधि है। विप्र (वटु)-की मेखला मूँजसे बनी हुई, तिहरी, बराबर तथा चिकनी बनानी चाहिये। मूँजके अभावमें कुशकी एक या तीन ग्रन्थियोंसे युक्त मेखला बनानी चाहिये। द्विजको केशान्तपर्यन्त बिल्व अथवा पलाशका चाहे किसी यज्ञीय वृक्षका सुन्दर (चिकना) तथा छिद्र आदिसे रहित दण्ड धारण करना चाहिये॥ १०—१५॥

सायं प्रातर्द्विजः संध्यामुपासीत समाहितः।
कामाल्लोभाद् भयान्मोहात् त्यक्तेन पतितो भवेत्॥ १६॥
अग्निकार्यं ततः कुर्यात् सायं प्रातः प्रसन्नधीः।
स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा॥ १७॥
देवताभ्यर्चनं कुर्यात् पुष्पैः पत्रेण वाम्बुभिः।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः॥ १८॥
असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः॥ १९॥
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः॥ २०॥

द्विजको सायं तथा प्रातः समाहित होकर संध्या करनी चाहिये। काम, लोभ, भय अथवा मोहसे संध्याका त्याग करनेसे वह (द्विज) पतित हो जाता है। तदनन्तर प्रसन्न-मनसे सायं और प्रातः हवन करना चाहिये। स्नानके उपरान्त देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पत्र पुष्प अथवा जलसे देवताओंका पूजन करना चाहिये। आयु तथा आरोग्यकी प्राप्तिके लिये आलस्य आदिसे सर्वथा मुक्त होकर 'यह मैं अमुक नामवाला आपको प्रणाम करता हूँ'—इस प्रकार धर्मपूर्वक वृद्धजनोंका नित्य अभिवादन करना चाहिये। अभिवादन किये जानेपर विप्रको 'आयुष्मान् भव सौम्य' अर्थात् 'सौम्य! तुम दीर्घायु होओ' इस प्रकार अभिवादनका उत्तर देना चाहिये। उसके नामके अन्तिम स्वर अथवा नामके अन्तिम अक्षरके व्यञ्जन होनेपर उसके ठीक पूर्वके स्वरको प्लुत (दीर्घतर) स्वरमें बोलना चाहिये॥ १६—२०॥

न कुर्याद् योऽभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ २१॥
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः॥ २२॥
लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव वा।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्॥ २३॥
नोदकं धारयेद् भैक्षं पुष्पाणि समिधस्तथा।
एवंविधानि चान्यानि न दैवाद्येषु कर्मसु॥ २४॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु॥ २५॥

जो द्विज अभिवादन करनेपर प्रत्यभिवादन (अभिवादनका उत्तर) नहीं करता, उसका अभिवादन विद्वान्‌को नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह शूद्रके समान ही है। अभिवादनके समय गुरुके चरणोंका स्पर्श व्यत्यस्तपाणि होकर करना चाहिये अर्थात् बायें हाथसे बायें पैरको और दाहिने हाथसे दाहिने पैरको स्पर्श करना चाहिये। जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया हो उस (गुरु)-का सर्वप्रथम अभिवादन करना चाहिये। देवपूजन (दैव पित्र्य) आदि कर्मोंमें भिक्षामें प्राप्त जल पुष्प तथा समिधा अथवा इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंका ग्रहण (प्रयोग) नहीं करना चाहिये। (मिलनेपर) ब्राह्मणसे उसका 'कुशल' पूछना चाहिये, इसी प्रकार क्षत्रियसे 'अनामय' (रोगराहित्य), वैश्यसे 'क्षेम' और शूद्रसे 'आरोग्य' पूछना चाहिये॥ २१—२५॥

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः।
मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ।
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः॥ २६॥
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः।
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः॥ २७॥
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः।
अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः॥ २८॥

उपाध्याय[1], पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, ससुर, रक्षक, मातामह, पितामह, अपनसे श्रेष्ठ वर्णवाले तथा चाचा—ये लोग गुरु कहे गये हैं। माता, मातामही, गुरुपत्नी पिता एव माताकी बहिन (बुआ एव मौसी), सास, पितामही तथा ज्येष्ठ धात्री (शैशवावस्थामे पालन करनेवाली)—ये सभी स्त्रियाँ गुरु हैं। द्विजो! माता और पिताके सम्बन्धसे यह गुरुवर्ग कहा गया है अर्थात् माताके पक्षसे तथा पिताके पक्षसे जो लोग श्रेष्ठ कोटिमे हैं उन्हे बताया गया। मन, वाणी और कर्मद्वारा इनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये॥ २६—२८॥

गुरु दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलि ।
नैतैरुपविशेत् सार्ध विवदेन्नात्मकारणात्॥ २९॥
जीवितार्थमपि द्वेषाद् गुरुभिर्नैव भाषणम्।
उदिताऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यध ॥ ३०॥

गुरुको देखते ही आसनसे उठ जाना चाहिये और अभिवादनकी विधिसे उन्हे अभिवादन करना चाहिये, अनन्तर उनकी आज्ञा पाकर हाथ जोडकर सम्मुख बैठना चाहिये, पर इनके साथ एक आसनपर नही बैठना चाहिये और अपने लिये (व्यक्तिगत स्वार्थके लिये) इनसे विवाद भी नही करना चाहिये। प्राणधारणके लिये भी द्वेषवश गुरुजनोसे विवाद न करे। अन्य गुणोके विद्यमान रहनेपर भी गुरुसे द्वेष करनेवालाका अध पतन होता है अर्थात् गुरुद्वेषीके सभी गुण व्यर्थ होते है॥ २९-३०॥

गुरूणामपि सर्वेषा पूज्या पञ्च विशेषत ।
तेषामाद्यास्त्रय श्रेष्ठास्तेषा माता सुपूजिता॥ ३१॥
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरव स्मृता ॥ ३२॥
आत्मन सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुन ।
पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता॥ ३३॥

अभी बताये गये सभी गुरुओमे भी पाँच विशेषरूपसे पूजनीय हैं। उनमे प्रथम तीन श्रेष्ठ हैं उनमे भी माता अधिक पूज्य होती है। उत्पादक (पिता), उत्पन्न करनेवाली (माता), विद्याका उपदेश देनेवाले (गुरु), बडे भाई और भरण-पोषण करनेवाले स्वामी—ये पाँच गुरु कहे गये हैं। कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको अपने सभी प्रयत्नोके द्वारा प्राण ही क्यो न त्यागना पडे, पर इन पाँचो (गुरुओ)-का विशेषरूपसे पूजन (आदर) करना चाहिये॥ ३१—३३॥

यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ।
तावत् सर्व परित्यज्य पुत्र स्यात् तत्परायण ॥ ३४॥
पिता माता च सुप्रीतौ स्याता पुत्रगुणैर्यदि।
स पुत्र सकल धर्ममाप्नुयात् तेन कर्मणा॥ ३५॥
नास्ति मातृसम दैव नास्ति पितृसमो गुरु ।
तयो प्रत्युपकारोऽपि न कथञ्चन विद्यते॥ ३६॥

जबतक माता और पिता ये दोनो निर्विकार[2] रहे, तबतक सब कुछ छोडकर पुत्रको उनके परायण रहना चाहिये। यदि पुत्रके गुणो (सत्कर्मनिष्ठा-सेवाभाव आदि)-के कारण पिता-माता पुत्रपर प्रसन्न रहते हैं तो वह पुत्र अपने इन सत्कर्मनिष्ठा आदि कर्म (गुणो)-से सम्पूर्ण धर्मको प्राप्त कर लेता है (अर्थात् यज्ञ, दान आदि बडे-बडे कर्मोसे होनेवाले सभी पुण्य माता-पिताकी प्रसन्नताके कारण पुत्रको प्राप्त होते हैं)। माताके समान कोई देवता नहीं है, पिताके समान कोई गुरु नहीं है। उनके उपकारका कोई भी प्रत्युपकार नहीं है॥ ३४—३६॥

तयोर्नित्य प्रिय कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा।
न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्य समाचरेत्॥ ३७॥
वर्जयित्वा मुक्तिफल नित्य नैमित्तिक तथा।
धर्मसार समुद्दिष्ट प्रेत्यानन्तफलप्रद ॥ ३८॥
सम्यगाराध्य वक्तार विसृष्टस्तदनुज्ञया।
शिष्यो विद्याफल भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि॥ ३९॥
यो भ्रातर पितृसम ज्येष्ठ मूर्खोऽवमन्यते।
तेन दोषेण स प्रेत्य निरय घोरमृच्छति॥ ४०॥

उन दोनो (अर्थात् माता-पिता)-का मन वाणी तथा

---

[1] १-वेदके एकदेश मन्त्र या ब्राह्मण तथा वेदाङ्ग व्याकरण आदिको जो ब्राह्मण वृत्त्यर्थ (जीविकाके लिये) अध्यापन करते हैं वे उपाध्याय कहे जाते हैं (मनु० २। १४१)।

[2] २-यहाँ निर्विकारका अर्थ है गोहत्या गुरुहत्या ब्राह्मणहत्या-जैसे परिगणित महापातकोसे रहित। दुर्भाग्यवश यदि माता-पिता महापातकी हो जाते हैं तो उन्हे प्रायश्चित्तके लिये पुत्रादिसे अलग रहना ही पडता है। उस समय उनकी सेवा आदिसे पुत्रको भी वञ्चित होना ही पडता है। ऐसे समयसे अतिरिक्त समयमे तो पुत्रको माता-पिताके परायण अवश्य रहना ही चाहिये। माता-पिताके सविकार होनेका निर्णय शास्त्रोके अनुसार अधिकारी विद्वान् लोग ही करते हैं। यह निर्णय पुत्रके अधीन नहीं है।

कमसे नित्य ही प्रिय करना चाहिये। मोक्षसाधक (कर्मों) और नित्य-नैमित्तिक कर्मोको छोडकर बिना उनकी आज्ञा प्राप्त किये दूसरे किसी धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। (उनकी सेवाको) धर्मका सार और मृत्युके अनन्तर मोक्ष-फल देनेवाला बताया गया है। उपदेष्टा (गुरु)-की अच्छी प्रकार आराधना करनेके अनन्तर उनकी आज्ञासे ब्रह्मचर्याश्रमका परित्यागकर गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेवाला स्नातक शिष्य विद्याके फलका उपभोग करता है और मृत्युके उपरान्त स्वर्गलोक प्राप्त करता है अर्थात् अभ्युदय (ऐहलौकिक उन्नति) तथा निःश्रेयस (पारलौकिक उन्नति) दोनो यथावत् प्राप्त करता है। जो पितृतुल्य बडे भाईका मूर्ख समझता है मरनेपर वह उस दोषके कारण घोर नरक प्राप्त करता है॥ ३७—४०॥

पुंसा वर्त्मनिविष्टेन पूज्यो भर्ता तु सर्वदा।
याति दातरि लोकेऽस्मिन् उपकाराद्धि गौरवम्॥ ४१॥
ये नरा भर्तृपिण्डार्थं स्वान् प्राणान् सत्यजन्ति हि।
तेषामथाक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान् मनुः॥ ४२॥

अच्छे मार्गमे स्थित (सत्कर्तव्यपरायण) पुरुषके लिये भरण-पोषण करनेवाला भर्ता (स्वामी) सदा पूज्य (आदरविशेषके योग्य) होता है। उपकार करनेके कारण दाता इस लोकमे अत्यधिक गौरव प्राप्त करता ही है। जो लोग भर्तासे प्राप्त जीविकाके बदले अपने प्राणोतकका परित्याग कर देते हैं, उन्हे अक्षय लोक प्राप्त होते हैं, ऐसा भगवान् मनुने कहा है॥ ४१-४२॥

मातुलाश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून्।
असावहमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः॥ ४३॥
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्।
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्॥ ४४॥
अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च।
ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा॥ ४५॥

अपनेसे अल्प अवस्थावाले मामा, चाचा, ससुर तथा ऋत्विज्के प्रति प्रत्युत्थानपूर्वक (आसनसे उठकर) 'मैं अमुक नामवाला हूँ'—केवल ऐसा ही कहकर अपना सम्मानभाव व्यक्त करना चाहिये, इन्हे अभिवादन-विधिसे अभिवादन नहीं करना चाहिये[1]। जो अपनसे छोटा भी (यज्ञादिमे) दीक्षित (पुरुष) हो तो उसका नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको 'भो भवत्' अर्थात् 'आप' शब्दका प्रयोग कर इसके (दीक्षितके) साथ सम्भाषण करना चाहिये। ऐश्वर्यकी अभिलाषा करनेवाले क्षत्रियादिकोके लिये ब्राह्मण सदा ही आदरपूर्वक अभिवादन करने योग्य, पूजन करने योग्य तथा सिरसे वन्दन करने योग्य है॥ ४३—४५॥

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन।
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः॥ ४६॥
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्थितिः।
सवर्णेषु सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम्॥ ४७॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः॥ ४८॥

विप्रको कभी भी क्षत्रियादिका अभिवादन नहीं करना चाहिये, भले ही वे ज्ञान, कर्म एवं गुणोकी दृष्टिसे उत्कृष्ट हो। ब्राह्मणको सभी वर्णोके प्रति 'स्वस्ति' अर्थात् कल्याण हो—ऐसा कहना चाहिये—यह विधान है। समान वर्णोमे (कनिष्ठ व्यक्तियोंको ज्येष्ठ व्यक्तियोका) अभिवादन करना चाहिये[2]। द्विजातियोके गुरु अग्नि और सभी वर्णोके गुरु ब्राह्मण है। स्त्रियोके एकमात्र गुरु उनके पति हैं और अतिथि सबका गुरु है॥ ४६—४८॥

विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम्।
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्॥ ४९॥
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥ ५०॥

विद्या, कर्म, अवस्था, बन्धु तथा पाँचवाँ धन—ये सम्मान प्राप्त करनेके पाँच स्थान कहे गये है। इनमे बादकी अपेक्षा पूर्व-पूर्वकी गुरुता[3] है। (ब्राह्मणादि) तीन वर्णोके

१-मनुस्मृति (२। १३०)-में यही श्लोक है। वहाँ कुल्लूकभट्टने जो अर्थ किया है तदनुसार ही यहाँ अर्थ समझना चाहिये। वहाँ ऋत्विक्से अतिरिक्त गुरुको नहीं गिना गया है। श्लोकमे गिनाये गये मामासे ऋत्विक्तकके लिये भी 'गुरु' शब्दका उल्लेख है।

२-यहाँ अभिवादनका अर्थ इतना ही है कि दोनों हाथोसे पादस्पर्शकर प्रणाम करे। पूर्वोक्त अभिवादन-विधिके अनुसार नाम, गोत्र आदिका उच्चारण नहीं करना चाहिये।

३-विद्या—वेदार्थतत्त्वज्ञान, कर्म—श्रौत-स्मार्त क्रियाओका पालन, अवस्था—अधिक वयस्क होना, बन्धु—पितृव्य (चाचा), मामा आदि, वित्त—न्यायार्जित धन—ये पाँच मान्यताके कारण हैं, पर इनमे उत्तर—उत्तरकी अपेक्षा पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ है।

जिस व्यक्तिमे ये पाँच गुण (मान्यताके स्थान) अधिक हो तथा प्रबल हो वह अपेक्षाकृत माननीय होता है (अर्थात् श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम होता है)। दशमी अर्थात् नब्बे वर्षसे अधिक अवस्थाको प्राप्त शूद्र भी मान देनेके योग्य हो जाता है (अर्थात् ऐसे शूद्रके आनेपर उसे बैठनेके लिये आसन आदि आदरभावपूर्वक देना चाहिये)॥ ४९-५०॥

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे।
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च॥५१॥
भिक्षामाहृत्य शिष्टाना गृहेभ्य प्रयतोऽन्वहम्।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद् वाग्यतस्तदनुज्ञया॥५२॥

ब्राह्मण, स्त्री, राजा, नेत्रहीन व्यक्ति, वृद्ध, भारसे पीडित व्यक्ति, रोगी तथा दुर्बलके लिये रास्ता छोड देना चाहिये (अर्थात् एक ही रास्तेपर आमने-सामने होनेपर स्वय हटकर इन्हे रास्ता दे देना चाहिये। इनके निकल जानेपर स्वय जाना चाहिये)। (ब्रह्मचारीको) प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन शिष्टाके[१] घरोसे भिक्षा लाकर गुरुको निवेदितकर उनकी (गुरुकी) आज्ञा प्राप्तकर मौन होकर भोजन करना चाहिये॥ ५१-५२॥

भवत्पूर्वं चरेद् भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तम।
भवन्मध्य तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥५३॥
मातर वा स्वसार वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्।
भिक्षेत भिक्षा प्रथम या चैन न विमानयेत्॥५४॥
सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा।
भैक्ष्यस्य चरण प्रोक्त पतितादिषु वर्जितम्॥५५॥

उपनयन-सस्कार होनेपर (ब्रह्मचारी) ब्राह्मणको पूर्वमे 'भवत्' शब्दका प्रयोगकर ('भवति! भिक्षा देहि' ऐसा कहकर) भिक्षा माँगनी चाहिये। क्षत्रियको बीचमे ('भिक्षा भवति! देहि' ऐसा कहकर) तथा वैश्यको अन्तमे 'भवत्' शब्द कहकर ('भिक्षा देहि भवति!' ऐसा कहकर) भिक्षा माँगनी चाहिये[२]। अपनी माता, बहन तथा मौसीसे अथवा जो इस ब्रह्मचारीकी अवमानना न करे, उससे पहली (उपनयन-सस्कारकी अङ्गभूत प्रथम) भिक्षा माँगनी चाहिये[३]। अपनी जातिके घरासे अथवा अपनेसे उच्च वर्णवाले सभी लोगोके घरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, किंतु पतित आदि व्यक्तियाके घरसे भिक्षाका ग्रहण करना वर्जित है॥५३—५५॥

वेदयज्ञैरहीनाना प्रशस्ताना स्वकर्मसु।
ब्रह्मचार्याहरेद् भैक्ष गृहेभ्य प्रयतोऽन्वहम्॥५६॥
गुरो कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु।
अलाभे त्वन्यगेहाना पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्॥५७॥
सर्वं वा विचरेद् ग्राम पूर्वोक्तानामसम्भवे।
नियम्य प्रयतो वाच दिशस्त्वनवलोकयन्॥५८॥

ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक ऐसे लोगोके घरासे भिक्षा ग्रहण करे, जिनके घरामे वेद एव यज्ञ आदिका लोप नहीं हुआ हो और जो (वेदशास्त्रानुसार) अपने कर्मोके पालनके कारण प्रशस्त हो। गुरुके कुल (सपिण्ड) तथा (अपने) बन्धुक कुल अर्थात् अपने कुल और बान्धवो (मातुल आदिक घर)-से भिक्षा नहीं माँगनी चाहिये। दूसराका घर न मिलनेपर पहले-पहलेका त्याग करना चाहिये। अर्थात् पहले बन्धु-बान्धवा (मातुल आदि)-के घर, यदि वहाँ भिक्षा न मिले तो अपने कुलमे और वहाँ भी न मिले तो अन्तमे गुरुके कुलमे भिक्षा माँगनी चाहिये। पहलेके कहे गये घरासे भी न मिलनेपर प्रयत्नपूर्वक वाणीको नियन्त्रित कर-दिशाआमे न देखते हुए, सम्पूर्ण ग्राममे भिक्षा-हेतु विचरण करना चाहिये (पर पातकी एव हीन जातिवालेके घरकी भिक्षा न ले)॥५६—५८॥

समाहृत्य तु तद् भैक्ष यावदर्थममायया।
भुञ्जीत प्रयतो नित्य वाग्यतोऽनन्यमानस॥५९॥
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्य नैकान्नादी भवेद् व्रती।
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता॥६०॥

अपनी आवश्यकताके अनुसार बिना किसी छल-कपटके उस भिक्षाको एकत्रितकर प्रयत्नपूर्वक नित्य मौन होकर एकाग्रतापूर्वक भोजन करना चाहिये। (ब्रह्मचारी)

१-अपने वर्णके तथा अपने वर्णसे उच्च वर्णके जो लोग यथासम्भव आस्तिक सदाचारी हो महापातक आदिसे दूषित न हो वे ही यहाँ शिष्टरूपमें अभिप्रेत हैं।

२-शास्त्रानुसार ब्रह्मचारी गृहस्थके घरमे भिक्षा माँगने जाता है। घरमे माताएँ रहती हैं अत भवति!' इस रूपमे माताओंका सम्बोधन कर भिक्षा माँगता है।

३-उपनयन-सस्कार जब होता है तब भिक्षा माँगनेका विधान है। यह सर्वप्रथम भिक्षा माँगना है। इसीके लिये यह वचन है।

नित्य भिक्षासे जीविकाका निर्वाह कर। ब्रह्मचारीका नित्य एक अन्न[1] नहीं ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचारीकी भिक्षान्नसे की गयी वृत्ति उपवासके समान ही कही गयी है॥५९-६०॥

पूजयेदशन नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदच्च प्रतिनन्दच्च सर्वश ॥६१॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्य लोकविद्विष्ट तस्मात् तत्परिवर्जयत्॥६२॥

नित्य अन्न (प्राप्त भिक्षान्न)-का पूजन (प्राणधारक रूपमे विष्णुस्वरूप समझकर ध्यान) कर आर निन्दा न करते हुए उसे ग्रहण करे। (भाजनको) दखकर हर्षित आर प्रसन्न होना चाहिये तथा सर्वथा उसकी (अन्नकी) प्रशसा करनी चाहिये। अत्यधिक भोजन करना आरोग्य, आयुष्य, स्वर्ग और पुण्यका नाश करनेवाला तथा लोकम (अधिक भाजीक रूपम) निन्दा करानवाला है, इसलिय अतिभाजनका परित्याग करना चाहिय॥ ६१-६२॥

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्य विधिरेष सनातन ॥६३॥
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत्।
शुचौ दशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशत्॥६४॥

नित्य पूर्वकी आर मुख करक अथवा सूर्यकी आर मुख करक भाजन कर। उत्तरकी आर मुखकर भोजन न करे—यह सनातन विधि है। दोनो हाथ एव पाँव धाकर भाजनक आरम्भम दो आचमन कर। पवित्र स्थानपर बैठकर भाजन करनेक अनन्तर पुन दो बार आचमन करना चाहिय॥ ६३-६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायामुपरिविभागे द्वादशोऽध्याय ॥ १२॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमे बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारीके नित्यकर्मकी विधि, आचमनका विधान, हाथोंमे स्थित तीर्थ, उच्छिष्ट होनेपर शुद्धिकी प्रक्रिया, मूत्र-पुरीषोत्सर्गके नियम

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च॥१॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे ।
ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा॥२॥
चत्वर वा श्मशान वा समाक्रम्य द्विजोत्तम ।
सध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत् पुन ॥३॥
चण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे।
उच्छिष्ट पुरुष स्पृष्ट्वा भोज्य चापि तथाविधम्।
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च॥४॥
भोजने सध्ययो स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयो ।
आचान्तोऽप्याचमेत् सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यत ॥५॥

व्यासजी बाल—भोजन करक जल इत्यादि पीकर शयनकर उठनेके बाद स्नान करके तथा मार्गमे गमनके समय, रोमरहित दोनो ओष्ठोका स्पर्शकर वस्त्र धारणकर, वीर्य, मल-मूत्रका त्यागकर अनुपयुक्त भाषण करनेपर, थूकनेके बाद, अध्ययनारम्भमे खाँसी या श्वास आनेपर चौराहे अथवा श्मशानको पार करनेपर, इसी प्रकार दोनो सध्याआमे श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह आचमन किये रहनेपर भी पुन आचमन करे। चाण्डाल और म्लेच्छसे बात करनेपर स्त्री शूद्र और जूठे मुखवालेसे भाषण करनेपर जूठे मुँहवाले पुरुषका तथा इसी प्रकार उच्छिष्ट भोजनका स्पर्श होनेपर, आँसू तथा रक्तके गिरनेपर भाजनक समय, दोनो सध्याओंम स्नानकर और जल आदिके पीनेपर तथा मल-मूत्रक उत्सर्गपर आचमन किय हानेपर भी आचमन करे। सोनेसे जगनेक बाद एक बार आर अन्य समयोंमे अनेक बार आचमन करना चाहिय॥ १—५॥

[1] १-एक अन्न नित्य ग्रहण करनेसे उसम आसक्ति हो जाती ह आर किसी भी प्रकारकी आसक्ति वर्जित है।

अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा।
स्त्रीणामथात्मन स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च॥६॥
उपस्पृशेज्जल वार्द्रं तृण वा भूमिमेव वा।
केशाना चात्मन स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च॥७॥

अग्निका गोका स्पर्श होनेपर, किसी परिश्रम करनेवालेका, स्त्रीका तथा अपना स्पर्श होनेपर (अपने जिस अङ्गका स्पर्श आवश्यक या अनिवार्य न हो उसका कामत यदि स्पर्श किया जाय) नीवी (कटि-कमरका वस्त्र) पहिनकर, अपने केशा तथा बिना धोये वस्त्रका स्पर्श करनेपर जल, हरे तृण या भूमिका स्पर्श करना चाहिये॥ ६-७॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरदुष्टाभिश्च धर्मत ।
शौचेप्सु सर्वदाचामेदासीन प्रागुदङ्मुख ॥ ८ ॥
शिर प्रावृत्य कण्ठ वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा।
अकृत्वा पादयो शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥ ९ ॥
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी वाचमेद् बुध ।
न चैव वर्षधाराभिर्न तिष्ठन् नोद्धृतोदकै ॥१०॥
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुन ।
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा॥११॥

धर्मकी दृष्टिसे शुद्धिकी अभिलाषावालको चाहिये कि वह सदा पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके बैठकर शीतल, फेनरहित तथा दोषवर्जित जलसे आचमन करे। सिर या कानको ढकने और शिखा तथा कच्छ (पिछोटा) खुलनेपर, बिना पेर धोये आचमन करनेपर भी अशुद्ध रहता है (अर्थात् इन स्थितियाम पहले पाँवोको धोना चाहिये। अनन्तर हाथाको धोकर आचमन करना चाहिये)। बुद्धिमान् व्यक्तिको जूता पहने हुए, जलमे स्थित होनेपर, सिरपर पगडी इत्यादि धारणकर आचमन नहीं करना चाहिये। (इसी प्रकार) न वर्षाके जलसे, न खड होकर न उठाये हुए जलसे, न एक हाथसे अर्पित जलसे अर्थात् किसी अन्यके द्वारा अञ्जलिसे नहीं केवल एक हाथसे दिये गये जलसे, बिना यज्ञोपवीतके, न पादुकासनपर बैठे हुए (पाँवमे धारण की जानेवाली पादुकाका आसन बनाकर उसीपर बेठकर) अथवा न जानुओक बाहर हाथ निकाले हुए आचमन करना चाहिये॥ ८—११॥

न जल्पन् न हसन् प्रेक्षन् शयान प्रह्व एव च।
नावीक्षिताभि फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा॥१२॥
शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्न क्षाराभिस्तथैव च।
न चैवाङ्गुलिभि शब्द न कुर्वन् नान्यमानस ॥१३॥
न वर्णरसदुष्टाभिर्न चैव प्रदरोदकै ।
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा॥१४॥

बोलते हुए, हँसते हुए, देखते हुए (किसी अन्यकी ओर देखते हुए), सोते हुए और झुककर आचमन नहीं करना चाहिये। बिना देखे[1] हुए अथवा फेन आदिवाले जलसे आचमन नहीं करना चाहिये। शूद्र[2] अथवा अपवित्र व्यक्तिके हाथासे दिये हुए एव खारे जलसे और अगुलियोसे शब्द करते हुए तथा अन्यमनस्क होकर आचमन नहीं करना चाहिये। जिस जलका अपना स्वाभाविक वर्ण या रस विकृत हो गया हे, उससे आचमन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही प्रदरोदक (अत्यल्प जल)-से आचमन नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त किसी पात्रमे रखे हुए उस जलसे भी आचमन नहीं करना चाहिये। जो पूरा हाथ डालकर क्षुभित कर दिया गया हो, यदि कच्छ (पिछोटा) धोतीसे बाहर निकल जाय तो उस स्थितिमे आचमन नही करना चाहिय। कच्छको धोतीके भीतर करनेके अनन्तर ही आचमन करनेका विधान है॥ १२—१४॥

हृद्गाभि पूयते विप्र कण्ठ्याभि क्षत्रिय शुचि ।
प्राशिताभिस्तथा वैश्य स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्तत ॥१५॥

(आचमनम) ब्राह्मण हृदयतक पहुँचनेवाले क्षत्रिय कण्ठतक पहुँचनवाले जलसे और वैश्य मुखके भीतर प्रविष्ट (कण्ठतक न भी पहुँचे)जलसे शुद्ध होते ह, स्त्री,

१-जलमे कोई ऐसी वस्तु नहीं हानी चाहिये जो उसे अपवित्र करती है इसलिये अच्छी प्रकार निरीक्षित जलसे ही आचमन करना चाहिये।

२-शक्ति रहनपर किसी भी शूद्रके द्वारा लाय गये जलसे आचमन नहीं करना चाहिये। अशक्त होनेपर तथा त्रैवर्णिकके कथमपि उपलब्ध न होनेपर शूद्र (जिस शूद्रका पात्र धर्मशास्त्रके अनुसार ग्राह्य होता है)-क द्वारा लाये गये जलको कुश आदिसे पवित्रकर उससे आचमन किया जा सकता है।

शूद्र तो केवल (जिह्वा, ओष्ठके अन्ततक) जलके स्पर्शमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं॥ १५॥

अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखाया ब्राह्ममुच्यते।
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्यो पितृणा तीर्थमुत्तमम्॥ १६॥
कनिष्ठामूलत पश्चात् प्राजापत्य प्रचक्षते।
अङ्गुल्यग्रे स्मृत दैव तदेवार्ष प्रकीर्तितम्॥ १७॥
मूले वा दैवमार्षं स्यादाग्नेय मध्यत स्मृतम्।
तदेव सौमिक तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति॥ १८॥
ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजा नित्यमुपस्पृशेत्।
कायेन वाथ दैवेन न तु पित्र्येण वै द्विजा ॥ १९॥
त्रि प्राश्नीयादप पूर्वं ब्राह्मण प्रयतस्तत ।
सम्मृज्याङ्गुष्ठमूलेन मुख वै समुपस्पृशेत्॥ २०॥

अँगूठेके मूलकी रेखामे ब्राह्मतीर्थ, तर्जनी और अँगूठेके मध्यभागमे उत्तम पितृतीर्थ, कनिष्ठाके मूलभागमे प्राजापत्यतीर्थ कहलाता है। अँगुलियोके अग्रभागमे देवतीर्थ और वही आर्षतीर्थ भी कहा जाता है। अथवा (अँगुलियोके) मूल भागको देव या आर्षतीर्थ, मध्यभागको आग्नेयतीर्थ कहा गया है। इसी (आग्नेयतीर्थ)-को सौमिकतीर्थ कहा गया है। इसे जानकर मोह नही प्राप्त होता अर्थात् यथाविधि इसके अनुसार अनुष्ठान करनेपर अन्त करण शुद्ध होनेसे अज्ञान नष्ट हो जाता है। द्विजो! द्विजको चाहिये कि वह ब्राह्मतीर्थसे ही नित्य आचमन करे अथवा कायतीर्थ (प्राजापत्यतीर्थ) या देवतीर्थसे करे पितृतीर्थसे कभी भी आचमन न करे। ब्राह्मण संयत होकर पहले तीन बार जलका आचमन करे अनन्तर मुडे हुए अँगूठेके मूलसे मुखका स्पर्श करे यही सम्मार्जन है॥ १६—२०॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्या तु स्पृशेन्नेत्रद्वय तत ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्॥ २१॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्।
सर्वासामथ योगेन हृदय तु तलेन वा।
संस्पृशेद् वा शिरस्तद्वदङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम्॥ २२॥
त्रि प्राश्नीयाद् यदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवता ।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम॥ २३॥
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्।
संस्पृष्टयोर्लोचनयो प्रीयेते शशिभास्करौ॥ २४॥

तदनन्तर अँगूठे और अनामिकासे दोनो नेत्रोका स्पर्श करे और तर्जनी तथा अँगूठेके योगसे दोनो नासापुटो (नाक)-का स्पर्श करे। कनिष्ठा और अँगूठेके योगसे दोनो कानोका स्पर्श करे। तदनन्तर मिली हुई सभी अँगुलियोसे अथवा हथेलीसे हृदयका स्पर्श करे। तदुपरान्त सिरका भी वैसे ही स्पर्श करे अथवा दोनो अँगूठोसे स्पर्श करे। आचमनमे तीन बार जो जल पिया जाता है, उससे ब्रह्मा विष्णु तथा महेश—ये तीन देवता प्रसन्न होते हैं—ऐसा हमने सुना है। मार्जन करनेसे गङ्गा और यमुना नदियाँ प्रसन्न होती हैं। नेत्रोके स्पर्शसे सूर्य तथा चन्द्रमा प्रसन्न होते है॥ २१—२४॥

नासत्यदस्त्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये।
कर्णयो स्पृष्टयोस्तद्वत् प्रीयेते चानिलानलौ॥ २५॥
संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवता ।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेक प्रीत स पुरुषो भवेत्॥ २६॥

दोनो नासापुटोका स्पर्श करनेसे नासत्य और दस्र (दोनो अश्विनीकुमार) प्रसन्न होते हैं इसी प्रकार दोनो कानोका स्पर्श करनेसे अग्नि तथा वायुदेवता प्रसन्न होते हैं। हृदयका स्पर्श होनेपर सभी देवता प्रसन्न होते हैं। सिरका स्पर्श करनेसे वे अद्वितीय पुरुष विष्णु प्रसन्न होते हैं॥ २५-२६॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्ग नयन्ति या ।
दन्तवद् दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेऽशुचिर्भवेत्॥ २७॥
स्पृशन्ति बिन्दव पादौ य आचामयत परान्।
भूमिगैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ २८॥
मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोष प्राह वै मनु ॥ २९॥
प्रचरन्नान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नर ।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत्॥ ३०॥

(आचमन आदिके समय) अङ्गपर गिरे हुए जलकणोसे शरीर उच्छिष्ट नहीं होता। दाँतोके भीतर स्थित पदार्थ दाँतोके समान ही होता है परंतु जिह्वाके स्पर्श होनेपर व्यक्ति अपवित्र हो जाता है। आचमन करनेके समय या दूसरोको आचमन कराते समय पैरोपर गिरे हुए जलको भूमिपर गिरे हुएके समान समझना चाहिये। उससे मनुष्य अपवित्र नहीं होता। मनुने मधुपर्क (यथाविधि मिश्रित दधि, मधु, घी) सोम ताम्बूल-भक्षण फल मूल तथा इक्षुको

दण्ड ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं कहा है, इन्हें कोई भी दे, ग्रहण किया जा सकता है। हम चल रहे हैं तथा हमारे हाथमें ऐसी वस्तु है जो उच्छिष्टस्पर्शसे दूषित हो सकती है तो हम अन्न, जल ग्रहण करते समय उस वस्तुको भूमिपर यथास्थान रख देना चाहिये तथा अन्न, जल ग्रहण करनेके अनन्तर आचमन करनेके बाद भूमिपर रखी हुई वस्तुका प्रोक्षण करना चाहिये, अनन्तर उस वस्तुको लेकर चलना चाहिये॥ २७—३०॥

तैजसं वै समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत्॥ ३१॥
यद्यमत्रं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
अनिधायैव तद् द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्।
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात् तत्संस्पृष्ट्वाचमेदिह॥ ३२॥
अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि।
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति॥ ३३॥

तैजस[1] पदार्थ (घी) लिये हुए यदि ब्राह्मण (द्विज) (खाने-पीनेके कारण) उच्छिष्ट हो जाय तो उस तैजस द्रव्य (घी)-को भूमिपर रखकर आचमन करे, पुनः उस द्रव्य (घी)-का प्रोक्षण करे। यदि कोई (द्रव्य-सहित) अमत्र (पात्र) लिये हुए मनुष्य उच्छिष्ट हो जाय तो उस द्रव्य (पात्र)-को (भूमिपर) रखे बिना आचमन कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है (पात्र अपवित्र नहीं होता)। परंतु वस्त्र आदिके सम्बन्धमें विकल्प है। उसका स्पर्श होनेपर आचमन करना चाहिये। उच्छिष्ट दशामें वस्त्रका स्पर्श होनेपर आचमन एवं वस्त्रका प्रोक्षण करना चाहिये। जंगलमें, जलहीन स्थानमें, रात्रिमें और चोर तथा व्याघ्र आदिसे आक्रान्त मार्गमें मल-मूत्र करनेपर भी व्यक्ति आचमन प्रोक्षण आदि शुद्धिके अभावमें भी दूषित नहीं होता साथ ही उसके हाथमें रखा हुआ द्रव्य भी अशुचि नहीं होता (पर शुद्धिका अवसर मिल जानेपर यथाशास्त्र शुद्धि आवश्यक है।)॥ ३१—३३॥

निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः।
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः॥ ३४॥
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठतृणेन वा।
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ ३५॥

दाहिने कानपर यज्ञोपवीत चढ़ाकर दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके तथा रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। पृथ्वीको लकड़ी, पत्ता, ढेला अथवा घाससे ढककर तथा शिरको वस्त्रसे आवृतकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ३४—३५॥

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भःपथि भस्मसु।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत्॥ ३६॥
न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले।
न तिष्ठन् न निर्वासा न च पर्वतमस्तके॥ ३७॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत्॥ ३८॥
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च।
न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे॥ ३९॥
नोद्यानादसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ।
न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके॥ ४०॥
न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन॥ ४१॥

छायामें, कूपमें या उसके अति समीप नदीमें, गोशाला, चैत्य (गाँवके सीमाका वृक्षसमूह, ग्राम्य देवताका स्थान-टीला, डीह आदिपर), जल, मार्ग, भस्म, अग्नि तथा श्मशानमें मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। गोबरमें जुती हुई भूमिमें महान् वृक्षके नीचे, हरी घाससे युक्त मैदानमें और पर्वतकी चोटीपर तथा खड़े होकर एवं नग्न होकर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। न जीर्ण देवमन्दिरमें, न दीमककी बाँबीमें न जीवास युक्त गड्ढेमें और न चलते हुए मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। धान इत्यादिकी भूसी जलते हुए अंगार कपाल[2], राजमार्ग खेत गड्ढ, तीर्थ, चौराहे उद्यान, जलके समीप, ऊपर भूमि और अत्यधिक अपवित्र स्थानमें मल-मूत्रका त्याग न करे। जूता या खड़ाऊँ पहन, छाता लिये अन्तरिक्षमें (भूमि-आकाशके

---

[1] 'तेजो वै घृतम्' के अनुसार घीको तैजस (तेजस्वी बनानेवाला) माना जाता है।

[2] कपालके ये अर्थ हैं—सिरकी अस्थि घटके दोनों अर्धभाग मिट्टीका भिक्षापात्र यज्ञमें पुरोडाशको पकानेके लिये मिट्टीका बना हुआ पात्रविशेष।

मध्यम), स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौंके सामने, देवविग्रह तथा देवमन्दिर आर जलक समीपम तो कभी भी मल-मूत्रका विसर्जन न करे॥ ३६—४१॥

न ज्योतींषि निरीक्षन् वा न सध्याभिमुखोऽपि वा।
प्रत्यादित्य प्रत्यनल प्रतिसोम तथैव च॥ ४२॥
आहृत्य मृत्तिका कूलाल्लेपगन्धापकर्षणम्।
कुर्यादतन्द्रित शौच विशुद्धैरुद्धृतोदकै ॥ ४३॥

नक्षत्राका देखत हुए, सध्याकालका समय आनेपर, सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी आर मुख करके मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। आलस्य छोडकर (नदी या तालाबक) किनारेसे मिट्टी लकर उसके द्वारा तथा शुद्ध कूप आदिसे निकाले हुए जलके[1] द्वारा (मल-मूत्र) लेप और गन्ध जबतक दूर न हो, तबतक शुद्धि करनी चाहिये॥ ४२-४३॥

नाहरेन्मृत्तिका विप्र पाशुलान्न च कर्दमात्।
न मार्गान्नोषराद् देशाच्छौचशिष्टा परस्य च॥ ४४॥
न देवायतनात् कूपाद् ग्रामान्न च जलात् तथा।
उपस्पृशेत् ततो नित्य पूर्वोक्तेन विधानत ॥ ४५॥

विप्र (द्विज)-को चाहिय कि वह शौचके लिये धूलकी ढेर एव कीचडयुक्त स्थान रास्ते, ऊपर भूमि, दूसरके शौच करनस बची हुई मन्दिर, कुएँ, ग्राम[2] और जलके अदरसे मिट्टी ग्रहण न कर। शौचक अनन्तर पहल बताये गये विधानके अनुसार नित्य आचमन कर॥ ४४-४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकावाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे तरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारीके आचारका वर्णन, गुरुसे अध्ययन आदिकी विधि, ब्रह्मचारीका धर्म, गुरु तथा गुरुपत्नीके साथ व्यवहारका वर्णन, वेदाध्ययन और गायत्रीकी महिमा, अनध्यायोका वर्णन, ब्रह्मचारीधर्मका उपसहार

व्यास उवाच

एव दण्डादिभिर्युक्त शौचाचारसमन्वित ।
आहूतोऽध्ययन कुर्याद् वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥ १॥
नित्यमुद्यतपाणि स्यात् साध्वाचार सुसयत ।
आस्यतामिति चोक्त सन्नासीताभिमुख गुरो ॥ २॥
प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुख ॥ ३॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार दण्ड आदिस युक्त और शौचाचारस सम्पन्न (ब्रह्मचारी)-को गुरुजीके द्वारा बुलाय जानेपर उनक अभिमुख होकर अध्ययन करना चाहिये। सदाचारसम्पन्न और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी नित्य उत्तरीयसे दाहिना हाथ बाहर निकाले हुए गुरुक द्वारा बैठनेक लिय कहे जानेपर उनके सम्मुख[3] बैठे। सोते हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए, खडे होकर तथा गुरुकी ओर पीठ करके उनकी किसी आज्ञाका ग्रहण या उनसे बातचीत नहीं करनी चाहिये॥ १—३॥

नीच शय्यासन चास्य सर्वदा गुरुसनिधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्॥ ४॥

१-प्रवाहशून्य कहीं गड्ढे आदिमे एकत्र जल अपवित्र होता है। अपवित्र हाथ आदि साक्षात् नदी तालाब आदिमें डालकर नहीं धोना चाहिये। किसी पात्रसे जल निकालकर ही धोना चाहिये।

२-ग्रामके अदरकी भूमि-लेप चलने थूकन आदिसे अपवित्र होती है। ग्रामके अदरकी मिट्टी लनेसे अनपेक्षित गड्ढा आदि होता है जो लोगोके त्रासका कारण बनता है।

३-यह श्लोक मनुस्मृति (२। १९३)-म उपलब्ध है। वहाँ 'नित्यमुद्धृतपाणि' पाठ है। यही उपयुक्त है। इसका तात्पर्य यही है कि उत्तरीय (ऊपरसे चद्दर) धारण कर ही अध्ययन करना चाहिये तथा दाहिने हाथको चद्दरसे बाहर रखना चाहिये क्योंकि अध्ययनमे दाहिने हाथका उपयोग होता है।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम्॥५॥

गुरुके पासमे शिष्यकी शय्या या आसन सदा गुरुकी शय्या एव आसनकी अपेक्षा नीचा (कम ऊँचा) होना चाहिये। गुरुके देखते रहनेपर मनमाने ढगसे नहीं बैठना चाहिये। इनका (गुरुका) केवल नाम (सम्मानबोधक उपाधि आदिसे शून्य नाम) परोक्षमे भी नहीं लेना चाहिये। इनके चलनकी क्रिया, बात करनेके ढग और अन्य क्रियाओकी नकल उपहासकी दृष्टिसे नहीं करनी चाहिये॥ ४-५॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा चापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्य वा ततोऽन्यत ॥६॥
दूरस्थो नार्चयेदन न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रिया।
न चैवास्योत्तर ब्रूयात् स्थितो नासीत सनिधौ॥७॥

गुरुका जहाँ परीवाद (विद्यमान दोषका कथन) हो रहा हो अथवा जहाँ उनकी निन्दा हो रही हो, वहाँ अपने दोनो कानोको बद कर ले अथवा वहाँसे अन्यत्र चला जाय। दूर विद्यमान शिष्य (किसी अन्यको गुरुकी पूजाके लिये नियुक्त कर उसके द्वारा) गुरुकी पूजा न करवाये, (यदि स्वय गुरुके समीप जाकर पूजा करनेमें समर्थ हो। स्वय गुरुके समीप जानेमे असमर्थ होनेपर तो अन्यके द्वारा भी गुरुकी पूजा करवायी जा सकती है)। क्रोधके आवेशमे रहनेपर शिष्यको स्वय भी गुरुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि गुरु स्त्रीके समीप हो तो उस समय उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये। गुरुकी बातका उत्तर नहीं देना चाहिये और गुरुके निकट रहनेपर उनकी आज्ञाके बिना बैठना भी नहीं चाहिये॥ ६-७॥

उदकुम्भ कुशान् पुष्प समिधोऽस्याहरेत् सदा।
मार्जन लेपन नित्यमङ्गाना वै समाचरेत्॥ ८॥
नास्य निर्माल्यशयन पादुकोपानहावपि।
आक्रमेदासन चास्य छायादीन् वा कदाचन॥ ९॥
साधयेद् दन्तकाष्ठादीन् लब्ध चास्मै निवेदयेत्।
अनापृच्छ्य न गन्तव्य भवेत् प्रियहिते रत ॥१०॥

(शिष्यको चाहिये कि) गुरुके लिये सर्वदा जलसे पूर्ण घडा कुश पुष्प तथा समिधा लाये और नित्य उनके अङ्गोका मार्जन (गुरुको स्नान कराना) तथा (गन्धादिद्वारा) लेपन (शरीरका सुगन्धीकरण) करे। उनके निर्माल्य (गुरुको सेवामे समर्पित माला आदि) शय्या, खडाऊँ, जूता, आसन तथा छाया आदिका कभी भी लघन नहीं करना चाहिये। गुरुके लिये दन्तकाष्ठ (दाँतोको स्वच्छ करनेके लिये दतुअन) आदि लाये और (भिक्षादिमे) प्राप्त पदार्थोको गुरुको निवेदित करे। गुरुसे बिना पूछे कहीं जाये नही तथा सदा गुरुके प्रिय तथा हित करनेमे लगा रहे॥ ८—१०॥

न पादौ सारयेदस्य सनिधाने कदाचन।
जृम्भित हसित चैव कण्ठप्रावरण तथा।
वर्जयेत् सनिधौ नित्यमवस्फोटनमेव च॥११॥
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरु।
आसीताधो गुरो कूर्चे फलके वा समाहित ॥१२॥
आसने शयने याने नैव तिष्ठेत् कदाचन।
धावन्तमनुधावेत गच्छन्तमनुगच्छति॥१३॥

गुरुके समीप कभी भी पैर फैलाकर बैठना नहीं चाहिये और उनके समीप जँभाई हँसी कण्ठाच्छादन (सुन्दर माला, हार आदि गलेमे पहनना) तथा ताली इत्यादिकी ध्वनि (ताल ठोकना आदि निरर्थक एव उद्दण्डतासूचक हलचल) न करे। अध्ययन तबतक करते रहना चाहिये, जबतक गुरु बेमन न हो जायँ (अध्यापनके प्रति मोत्साह रहें)। सावधानीपूर्वक गुरुके सम्मुख नीचे कुशासन या काष्ठासन इत्यादिपर बैठना चाहिये। गुरुके आसन, शय्या तथा यानपर कभी भी नहीं बैठना चाहिये। गुरुके दौडनेपर उनके पीछे दौडे और चलनेपर उनके पीछे चलना चाहिये॥ ११—१३॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च॥१४॥
जितेन्द्रिय स्यात् सतत वश्यात्माक्रोधन शुचि।
प्रयुञ्जीत सदा वाच मधुरा हितभाषिणीम्॥१५॥

बैल, ऊँट एव घोडेकी सवारी, प्रासाद प्रस्तर चटाई, शिलाखण्ड तथा नौकामे गुरुके साथ समान आसनपर बैठा जा सकता है (ऐसी जगहोंपर भी नीचे ही बैठा जाय ऐसा नियम नहीं है)। ब्रह्मचारी सदा जितेन्द्रिय रहे अपने मनको वशमे रखे, क्रोध न करे पवित्र रहे सदा मधुर और हित करनेवाली वाणीका प्रयोग करे॥ १४-१५॥

गन्धमाल्य रस कल्या शुक्त प्राणिविहिंसनम्।
अभ्यङ्ग चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च॥१६॥

काम लोभ भय निद्रा गीतवादित्रनर्तनम्।
आतर्जनं परीवाद स्त्रीप्रेक्षालम्भन तथा।
परोपघात पैशुन्य प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ १७॥

ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक सुगन्धित पदार्थों, माला, रस (तीखे रसवाले गुड आदि), मद्य, शुक्त[1] अर्थात् गुड आदिके मिश्रणसे बने मादक तीक्ष्ण पदार्थ, प्राणियाकी हिसा, तैल आदिका मदन, अञ्जन, जूता, छाताका धारण करना, काम, लाभ, भय, निद्रा, गायन, वादन तथा नृत्य, डाँट-फटकार लगाना, निन्दा ,स्त्रीदर्शन तथा उसका स्पर्श, दूसराको मारना और चुगुलखोरी आदिका परित्याग करे॥ १६-१७॥

उदकुम्भ सुमनसो गोशकृन्मृत्तिका कुशान्।
आहरद् यावदर्थानि भैक्ष्य चाहरहश्चरेत्॥ १८॥
कृत च लवण सर्वं वर्ज्यं पर्युषित च यत्।
अनृत्यदर्शी सतत भवेद् गीतादिनि स्पृह ॥ १९॥
नादित्य वै समीक्षेत न चरेद् दन्तधावनम्।
एकान्तमशुचिस्त्रीभि शूद्रान्त्यैरभिभाषणम्॥ २०॥

जलका घडा, पुष्प, गावर, मिट्टी और कुश—इन्ह प्रयोजन भर ही लाना चाहिये। प्रतिदिन भिक्षा माँगनी चाहिये। कृत्रिम लवण और जो भी बासी वस्तु हो, उन सबका त्याग करना चाहिये। (ब्रह्मचारीको) नृत्य नहीं देखना चाहिये और गायन आदिसे नि स्पृह रहना चाहिये। सूर्यकी ओर (उदय-अस्तके समय तथा अपवित्र दशामे) नहीं देखना चाहिये एव दन्तधावन नहीं करना चाहिये। एकान्तम अपवित्र स्त्रिया, शूद्रा तथा अन्त्यजासे सम्भाषण नहीं करना चाहिये॥ १८—२०॥

गुरूच्छिष्ट भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामत ।
मलापकर्षणस्नान नाचरेद्धि कदाचन॥ २१॥
न कुर्यान्मानस विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन।
मोहाद् वा यदि वा लोभात् त्यक्तेन पतितो भवेत्॥ २२॥
लौकिक वैदिक चापि तथाध्यात्मिकमव च।
आददीत यता ज्ञान न त द्रुह्यत् कदाचन॥ २३॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानत ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्याग समब्रवीत्॥ २४॥

गुरुस बचा हुआ भोजन लाभवश नहीं करना चाहिये। कभी भी शरीरके मैलका दूर करते हुए रागवश स्नान नहीं करना चाहिये। (ब्रह्मचर्यव्रतका अङ्गभूत स्नान ही यथा-विधि करना चाहिय)। विप्रको (द्विजको) गुरुका कभी मनसे भी त्याग करनेका विचार नहीं करना चाहिये। मोह या लोभसे इनका (गुरुका) त्याग करनेसे वह (द्विज) पतित हा जाता है। जिसस लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी प्रकारका ज्ञान प्राप्त करे उससे कभी भी द्राह न कर। महापातकयुक्त कार्य और अकार्यको न जाननेवाले तथा कुमार्गगामी गुरुका त्याग[2] करना चाहिय—ऐसा मनुका कहना है॥ २१—२४॥

गुरोर्गुरौ सनिहिते गुरुवद् भक्तिमाचरेत्।
न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत्॥ २५॥
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्ति स्वयोनिषु।
प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धित चोपदिशत्स्वपि॥ २६॥
श्रेयस्सु गुरुवद् वृत्ति नित्यमेव समाचरेत्।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु॥ २७॥

गुरुके गुरुका यदि सनिधान प्राप्त हो तो उनके प्रति गुरुके समान ही अभिवादन आदि व्यवहार करना चाहिये और (गुरगृहमे रहते हुए शिष्यको) गुरुकी अनुमतिके बिना अपने (माता-पितादि) गुरुजनाका अभिवादन नहीं करना चाहिये। विद्या देनेवाले गुरुआ (उपाध्यायो), अपने जन्मके कारण-रूप (माता-पितादि), अधर्मसे रोकनेवालो और हितकारी धर्मतत्त्वका उपदेश देनेवालोके प्रति नित्य इसी प्रकारका गुरुके समान ही आचरण करना चाहिये। विद्या एव तपमे अपनी अपेक्षा अधिक समृद्ध लोगोके प्रति,

१-कुल्लूकभट्टके अनुसार शुक्त वह वस्तु है जो स्वभावत मधुर हो पर कालवश जलमे रखने आदिसे खट्टी हो गयी हो। (मनु० २। १७७ की व्याख्या)

२-यहाँ त्यागका तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे गुरुके ससर्गसे स्वयमं दोष आ सकते हैं अत अपनी रक्षाकी दृष्टिसे, ऐसे गुरुके ससर्गमें नहीं रहना चाहिये तथा ऐसे गुरुके प्रति उदासीन-भाव अपना लेना चाहिये द्वेषभाव कथमपि नहीं होना चाहिये।

अपनी अवस्थाकी दृष्टिसे बड़े, समान-जातीय गुरुपत्नी-पुत्राके प्रति और गुरुकी ज्ञाति (बन्धु-बान्धव) पितृव्य (चाचा) आदिके प्रति सदा गुरुके समान ही आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये॥ २५—२७॥

बाल समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति॥ २८॥
उत्सादन वै गात्राणा स्नापनोच्छिष्टभोजने।
न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयो शौचमेव च॥ २९॥
गुरुवत् परिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषित ।
असवर्णास्तु सम्पूज्या प्रत्युत्थानाभिवादनै ॥ ३०॥

अपनसे छोटा गुरुका पुत्र अथवा समान अवस्थावाला तथा यज्ञकर्मम (अपना) शिष्य होनेपर भी यदि वह अध्यापन करता हो तो गुरुके समान ही सम्मान प्राप्त करने योग्य है। किंतु गुरु-पुत्रके शरीरकी मालिश, उसे स्नान कराना, उसका उच्छिष्ट भाजन तथा उसके पादका प्रक्षालन नहीं करना चाहिये। गुरुकी सवर्ण[१] स्त्रियाँ गुरुके समान ही पूज्य हैं, पर (गुरुकी) असवर्ण पत्नियाकी केवल प्रत्युत्थान (उनके आनेपर खड़े हो जाना) एव अभिवादनके द्वारा ही पूजा करनी चाहिये॥ २८—३०॥

अभ्यञ्जन स्नापन च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशाना च प्रसाधनम्॥ ३१॥
गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयो ।
कुर्वीत वन्दन भूम्यामसावहमिति ब्रुवन्॥ ३२॥
विप्रोष्य पादग्रहणमन्वह चाभिवादनम्।
गुरुदारेषु कुर्वीत सता धर्ममनुस्मरन्॥ ३३॥
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा।
सम्पूज्या गुरुपत्नीव समास्ता गुरुभार्यया॥ ३४॥
भ्रातुर्भार्योपसग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि।
विप्रोष्य तूपसग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषित ॥ ३५॥

गुरु-पत्नीके शरीरमे उबटन लगाना उन्हे स्नान कराना उनके शरीरकी मालिश और केशोके सँवारनेका कार्य नहीं करना चाहिये। यदि गुरुपत्नी युवावस्थावाली हो तो उनके चरणोको छूकर प्रणाम नहीं करना चाहिये। 'मैं अमुक हूँ' ऐसा कहते हुए उनके सम्मुख पृथ्वीपर प्रणाम करना चाहिये। पर यदि शिष्य प्रवाससे आये तो शिष्टोके आचारका स्मरण करते हुए युवती गुरुपत्नीका पादग्रहणपूर्वक ही अभिवादन करे। मौसी, मामी, सास और बुआ (फुआ)—ये गुरुकी पत्नीके समान पूज्य हैं। ये सभी गुरुपत्नीके समान ही हैं। भाईकी सवर्ण स्त्री (भाभी)-को प्रतिदिन अवश्य प्रणाम करना चाहिये। ज्ञाति (पितापक्षके चाचा आदि), सम्बन्धी (मातापक्षके नाना आदि)-की पत्नियोका तो प्रवाससे आनेपर अवश्य अभिवादन करना चाहिये॥ ३१—३५॥

पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्या च स्वसर्यपि।
मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥ ३६॥
एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् ।
वेदमध्यापयेद् धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यश ॥ ३७॥

माता-पिताकी बहिन तथा अपनी बड़ी बहिनके प्रति भी माताके समान व्यवहार करना चाहिये, किंतु माता इनसे श्रेष्ठ होती है। इस प्रकारके सदाचारसे सम्पन्न, आत्मवान् तथा दम्भरहित (ब्रह्मचारी)-को ही नित्य वेद, धर्मशास्त्र, पुराण और वेदाङ्गोको पढ़ाना चाहिये॥ ३६-३७॥

सवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्।
हरते दुष्कृत तस्य शिष्यस्य वसतो गुरु ॥ ३८॥
आचार्यपुत्र शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिक शुचि ।
शक्तोऽन्नदोऽर्थी स्व साधुरध्याप्या दश धर्मत ॥ ३९॥
कृतज्ञश्च तथाद्रोही मेधावी शुभकृन्नर ।
आप्त प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातय ।
एतेषु ब्राह्मणो दानमन्यत्र तु यथोदितान्॥ ४०॥

एक वर्षसे यथाविधि गुरुकी सेवा करते हुए उनके समीप निवास करनेवाले शिष्यको यदि गुरु ज्ञानका उपदेश देना प्रारम्भ नहीं करते हैं तो शिष्यके दुष्कृत उनमे आ जाते हैं। आचार्यका पुत्र, सेवा-शुश्रूषा करनेवाला, ज्ञान प्रदान करनेवाला (एक विद्या देकर दूसरी विद्या लेनेवाला), धार्मिक पवित्र, शक्तिसम्पन्न (अध्ययनके सामर्थ्यसे युक्त), अन्नदाता (गुरुकी अपेक्षाके अनुसार पर्याप्त अन्न देनेवाला), अर्थी (गुरुकी सेवामे पर्याप्त धन देनेवाला) साधु (शीलवान्) तथा आत्मीय—ये दस धर्मकी मर्यादासे अध्यापन

१-कलियुगसे भिन्न युगोमे असवर्ण विवाह किया जा सकता है। इससे न पुण्य होता है न पाप। यह असवर्ण विवाह भी अपनेसे ऊँची जातिमे नहीं होता है।

करान योग्य ह। कृतज्ञ, अद्राही, मधासम्पन्न, कल्याण करनेवाला, विश्वस्त तथा प्रिय व्यक्ति—ये छ प्रकारके द्विजाति भी विधिपूवक पढान याग्य हैं। इन्ह ब्रह्मज्ञान, वेदज्ञान प्रदान करना चाहिय। इनसे अतिरिक्त जो जिज्ञासु हा उन्ह अन्य यथापेक्ष ज्ञान देना चाहिये॥ ३८—४०॥

आचम्य सयतो नित्यमधीयीत उदङ्मुख।
उपसगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद् विरामाऽस्त्विति चारमेत्॥४१॥

आचमन करके सयत हाकर उत्तरकी आर मुख करके गुरुके चरणामे प्रणामकर उनक मुखकी आर देखत हुए नित्य अध्ययन करना चाहिये। (गुरुके द्वारा) 'पढा' कहनपर अध्ययन प्रारम्भ कर आर 'विराम हो' ऐसा कहनपर अध्ययन वद कर द॥ ४१॥

प्राक्कूलान् पर्युपासीन पवित्रैश्चैव पावित।
प्राणायामस्त्रिभि पूतस्तत आङ्कारमर्हति॥४२॥
ब्राह्मण प्रणव कुर्यादन्त च विधिवद् द्विज।
कुर्यादध्ययन नित्य स ब्रह्माञ्जलिपूर्वत॥४३॥
सर्वेषामेव भूताना वेदश्चक्षु सनातनम्।
अधीयीताप्यय नित्य ब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा॥४४॥

पूव दिशाकी आर अग्रभागवाल कुशाक आसनपर वठकर, दोना हाथाम विद्यमान पवित्र कुशास पावित (पवित्रीकृत) हाकर तथा तान प्राणायामाद्वारा पवित्र हानक अनन्तर हा (द्विज) अध्ययनक लिय आकारक उच्चारणका अधिकारा हाता ह। द्विजन्मा (ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य)-का (स्वाध्यायक) आरम्भ और अन्तम विधिपूवक प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। नित्य अञ्जलिवद्ध हाकर ही अध्ययन (स्वाध्याय) करना चाहिय। सभी प्राणियाक लिय वद सनातन नत्र-रूप हैं। (ब्राह्मणका) नित्य इनका अध्ययन करना चाहिय। अन्यथा वह ब्राह्मणत्वस च्युत हा जाता ह॥ ४२—४४॥

योऽधीयीत ऋचा नित्य क्षाराहुत्या स दवता।
प्रीणाति तपयन्त्यन कामैस्तृप्ता सदैव हि॥४५॥
यजूष्यधात नियत दध्ना प्राणाति दवता।
सामान्यधीत प्राणाति घृताहुतिभिरन्वहम्॥४६॥
अथर्वाङ्गिरसा नित्य मध्वा प्राणाति दवता।
धर्माङ्गानि पुराणानि मासस्तपयत सुरान्॥४७॥

जो द्विज नित्य ऋग्वेदका अध्ययन करता ह और दवताआको क्षीरकी आहुतियासे प्रसन्न करता है देवता उसकी कामनाएँ पूर्णकर सदव तृप्त करते ह। (ऐस ही) जो द्विज नियमपूर्वक याजुष मन्त्रोंका अध्ययन करता हे आर दधि (की आहुतिया)-से देवताआका प्रसन्न करता हे, उसकी भी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इसी प्रकार जो द्विज साममन्त्राका अध्ययन करता ओर प्रतिदिन घृतकी आहुतियासे देवाको प्रसन्न करता हे ता उसकी भी कामनाएँ पूर्ण हाती हैं। अथर्ववेदका भी अध्ययन करनवाला (द्विज) मधु (की आहुतिया)-द्वारा दवताआको प्रसनकर अभिलषित प्राप्त करता ह। धमशास्त्र, वेदाङ्गा तथा पुराणाका अध्ययन करनेवाले यथापलब्ध पदार्थोसे दवताआको सतृप्तकर इष्ट प्राप्त करत हैं॥ ४५—४७॥

अपा समीपे नियता नैत्यक विधिमाश्रित।
गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्य समाहित॥४८॥
सहस्रपरमा दवी शतमध्या दशावराम्।
गायत्रीं वै जपेन्नित्य जपयज्ञ प्रकीर्तित॥४९॥
गायत्रीं चैव वेदाश्च तुलयाऽतोलयत् प्रभु।
एकतश्चतुरा वदान् गायत्रीं च तथैकत॥५०॥

नित्यकर्मकी विधिका आश्रय लकर वनम जाकर सावधानीपूर्वक जलक समीप नियमितरूपस गायत्री (मन्त्र)-का जप भी कर। गायत्रीदवा (मन्त्र)-का हजार वार जप करना श्रेष्ठ, सौ वारका जप मध्यम तथा दस वार जप करना निम्न काटिका हे। गायत्राका नित्य जप करना चाहिये। इसे जपयज्ञ कहा गया ह। ईश्वरन गायत्री आर वदाका तुलामे ताला। तुलाम एक आर चारा वदाका और एक आर गायत्रीका रखा (समग्र वदाका सार गायत्रा-मन्त्र वदाक समान हा रहा)॥ ४८—५०॥

ओंकारमादित कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम्।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्र श्रद्धयान्वित॥५१॥
पुराकल्प समुत्पन्ना भूर्भुव स्व सनातना।
महाव्याहृतयस्तिस्र सर्वाशुभनिबर्हणा॥५२॥

आदिमे ओंकार लगाकर तदनन्तर (भूर्भुव स्व) महाव्याहृतियोंके साथ गायत्री (मन्त्र)-का श्रद्धापूर्वक एकाग्रमनसे जप करना चाहिये। प्राचीन कल्पमे सभी प्रकारके अमङ्गलाको

दूर करनेवाली 'भू' 'भुव' तथा 'स्व' ये तीन सनातन महाव्याहृतियाँ समुद्भूत हुईं। ये तीनो व्याहृतियाँ क्रमश प्रधान, पुरुष तथा काल और विष्णु, ब्रह्मा, महेश्वर एव सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप कही गयी है॥ ५१-५२॥

प्रधान पुरुष काला विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वर ।
सत्त्व रजस्तमस्तिस्र क्रमाद् व्याहृतय स्मृता ॥५३॥
आकारस्तत् पर ब्रह्म सावित्री स्यात् तदक्षरम्।
एष मन्त्रो महायोग सारात् सार उदाहृत ॥५४॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येता गायत्रीं वेदमातरम्।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमा गतिम्॥५५॥

आकार परम ब्रह्मस्वरूप और सावित्री अविनश्वर परम तत्त्वरूप है। इस मन्त्रको महायाग और साराका भी सार-रूप कहा गया है। जो ब्रह्मचारी (गायत्री मन्त्रके) अर्थको जानत हुए प्रत्येक दिन इन वदमाता गायत्रीका अध्ययन करता है (जप करता है), उसे परमगति प्राप्त होती है॥ ५३—५५॥

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्या पर जप्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते॥५६॥

गायत्री वदाकी माता और लाकको पवित्र करनेवाली है। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र जपने याग्य नहीं है। इसके ज्ञानसे मुक्ति मिल जाती है॥ ५६॥

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्या द्विजोत्तमा ।
आषाढ्या प्रोष्ठपद्या वा वेदोपाकरण स्मृतम्॥५७॥
उत्सृज्य ग्रामनगर मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौ दशे ब्रह्मचारी समाहित ॥५८॥
पुष्ये तु छन्दसा कुर्याद् बहिरुत्सर्जन द्विज ।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमऽहनि॥५९॥
छन्दास्यूर्ध्वमथोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षपु वै द्विज ।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्ष च मानवम्॥६०॥

श्रेष्ठ द्विजा! श्रावण आषाढ अथवा भाद्रपद मासकी पौणमासीको (अपने-अपने गृह्यसूत्रानुसार) वदाका उपाकर्म (सस्कारपूर्वक वेदग्रहण) करना बतलाया गया है। ग्राम और नगरको छोड़कर ब्रह्मचारी ब्राह्मण (द्विजमात्र)-का एकाग्रचित्तस पवित्र स्थानम साढ पाँच महीनतक (वदाका) अध्ययन करना चाहिये। द्विजका चाहिय कि वह (पौष मासके) पुष्य नक्षत्रम अथवा माघ मासके प्रथम दि पूर्वाह्णमे (ग्रामके) बाहर वेदाका उत्सर्जन (उत्सर्ग नाम सस्कारविशेष) करे। इसके बाद द्विजको शुक्ल पक्ष वेदाका और कृष्णपक्षम वेदाङ्गा, पुराण तथा मानवधर्मशा (मनुस्मृति आदि)-का अभ्यास करना चाहिये॥ ५७—६०

इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापन च कुर्वाणो ह्यभ्यस्यन्नपि यत्नत ॥६१
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्काना च सम्प्लवे।
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापति ॥६२
एतानभ्युदितान् विद्याद् यदा प्रादुष्कृताग्निषु।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने॥६३
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषा चोपसर्जने।
एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृतावपि॥६४
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने।
सज्योति स्यादनध्याय शेषरात्रौ यथा दिवा॥६५

अध्ययन करनेवालेको इन (अग्रनिर्दिष्ट) अनध्याया अध्ययनका सदा परित्याग करना चाहिये। इसी प्रक अध्यापन और अभ्यास करते हुए भी प्रयत्नपूर्वक अनध्याया अध्ययनका त्याग करना चाहिय। प्रजापति (ब्रह्मा)-ने क है कि रात्रिम कानासे सुन जाने याग्य वायुक बहते रहनेप दिनम धूलके समूहका उडा लनम समर्थ वायुक बह रहनेपर विद्युत्की चमक एव (मघ) गर्जनके साथ व होनेपर आर बडी-बडी उल्काआके इधर-उधर गि रहनेपर आकालिक (जबसे ये निमित्त आरम्भ हा तब अग्रिम दिन सूर्योदयपर्यन्त) अनध्याय हाता है। अग्निहोत्र लिय प्रज्वलित अग्निकी अवस्था (प्रात -साय-सध्याकाल) म जब य सभी (उत्पात) एक साथ प्रकट हा अ विना ऋतुक मघ दिखलायी पड ता अनध्याय समझ चाहिये। वज्रपात भूकम्प सूय-चन्द्रका ग्रहण एव अ ताराआके उपसर्ग (टूटना आदि) हानपर, ऋतु हानपर भ आकालिक (इन निमित्तकि प्रारम्भस अग्रिम दिन सूर्योदयपयन्त अनध्याय समझना चाहिय। अग्निक प्रकट हान बिजला चमकन तथा मघक गजन हानपर प्रकाश रहनपर

अनध्याय होता है। दिनके समान ही रात्रिमें भी अनध्याय होता है॥ ६१—६५॥

नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः॥६६॥
अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च॥६७॥
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विसर्जने।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥६८॥
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम्।
त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके॥६९॥
यावदेकोऽनुद्दिष्टस्य स्नेहो गन्धश्च तिष्ठति।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत्॥७०॥

धर्ममें निपुणता प्राप्त करनेकी इच्छावालोंके लिये नगर, ग्राम एवं दुर्गन्धयुक्त स्थानमें नित्य ही अनध्याय होता है। ग्राममें शव पड़े रहनेपर, अधार्मिक जनके समीप रहनेपर, रुदन होने और मनुष्योंका समूह (कार्यान्तरके लिये) एकत्र होनेपर अनध्याय होता है। जलके मध्य, आधी रातमें, मल-मूत्रके विसर्जनके समय, उच्छिष्ट अवस्थामें और श्राद्धमें भोजन करनेपर (श्राद्धमें निमन्त्रणसे लेकर श्राद्ध-भोजनके दिन-राततक) मनसे भी (वेदादिका) चिन्तन नहीं करना चाहिये। विद्वान् द्विजको एकोद्दिष्टका निमन्त्रण स्वीकार कर, राजाके पुत्रजन्म आदिके सूतक तथा राहुके (ग्रहणजन्य) सूतकमें तीन दिनतक वेदका अध्ययन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणके शरीरमें जबतक एकोदिष्ट-श्राद्ध-सम्बन्धी[1] भोजनके समयका (घृत आदि) स्निग्ध द्रव्य एवं (सुगन्धित द्रव्यका) लेप रहे तबतक विद्वान् ब्राह्मणको वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये॥ ६६—७०॥

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च॥७१॥
नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरपि।
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च॥७२॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्।
अष्टकासु त्वहोरात्रं ऋत्वन्त्यासु च रात्रिषु॥७३॥
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च।
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः॥७४॥
श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च।
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः॥७५॥

सोते हुए, उकड़ूँ बैठे हुए (आसनारूढपाद), दोनों जानुओंको वस्त्रादिसे बाँधे हुए, मांस और सूतकादिसे सम्बन्धित अन्न खाकर, कुहरा पड़ते रहनेपर, बाणका शब्द होते समय, दोनों संध्याकालमें, अमावास्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी तथा अष्टमी तिथियोंमें (अनध्याय होता है अतः) अध्ययन नहीं करना चाहिये। उपाकर्म और उत्सर्ग नामक कर्म करनेके अनन्तर तीन राततक अनध्याय होता है। अष्टकाओंमें[2] एक दिन-रात और ऋतुकी अन्तिम रात्रियोंमें अनध्याय होता है। विद्वानोंने मार्गशीर्ष (अगहन), पौष और माघमासके कृष्ण पक्षमें तीन अष्टकाओंका वर्णन किया है। लिसोढ़ा, सेमल, महुआ, कचनार और कैथ वृक्षकी छायामें कभी भी (वेदका) अध्ययन नहीं करना चाहिये॥ ७१—७५॥

समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि।
आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्॥७६॥
छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः।
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान् विवर्जयेत्॥७७॥

अपने समान विद्या पढ़नेवाले, अपने ही समान सहपाठी ब्रह्मचारीकी मृत्यु होनेपर और आचार्यके अपने यहाँ आनेपर तीन रातका अनध्याय कहा गया है। जो अनध्याय बतलाये गये हैं, वे ब्राह्मणों (द्विजों)-के छिद्र-रूप हैं। इन अवसरोंपर राक्षस प्रहार करते हैं, इसलिये इनका परित्याग करना चाहिये॥ ७६-७७॥

नैत्यिके नास्त्यनध्यायः संध्योपासन एव च।
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि॥७८॥
एकामृचमथैकं वा यजुः सामाथवा पुनः।
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति॥७९॥
अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः।
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत्॥८०॥

१-मूलमें 'एको ऽनुद्दिष्ट' पाठ है। कुल्लूकभट्ट (मनुस्मृति व्याख्याकार)-के अनुसार 'अनुद्दिष्ट' का उच्छिष्ट अर्थ है।
२-अगहन, पौष और माघ मासोंके कृष्णपक्षकी सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन तिथियोंके समुदायको 'अष्टका' कहा जाता है।

एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणाम्।
ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम्॥८१॥

नित्य-कर्मों, पञ्चमहायज्ञ, उपाकर्म, आरण्यकके अध्ययनमें और होमके मन्त्रोंमें अनध्याय नहीं होता (अर्थात् अनध्यायकालमें भी इनसे सम्बद्ध मन्त्र बोले जाते हैं)। अष्टकाओं और प्रबल वायुके चलनेपर भी ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेदके एक मन्त्रका पाठ (अवश्य) करना चाहिये। वेदांगों और इतिहास-पुराणके अध्ययन और अन्य धर्मशास्त्रोंके अध्ययनमें अनध्याय नहीं होता, किंतु पर्वोंमें इनके अध्ययनका त्याग करना चाहिये। संक्षेपमें यह ब्रह्मचारियोंका धर्म बतलाया गया। पूर्वकालमें ब्रह्माने इसे शुद्धात्मा ऋषियोंको बतलाया था॥ ७८—८१॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः।
न सम्मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥८२॥
न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेद् द्विजः।
पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति॥८३॥
योऽधीत्य विधिवद् वेदं वेदार्थं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते॥८४॥

जो द्विज वेदका अध्ययन न कर अन्यत्र (दूसरे शास्त्रोंका पढ़नेमें) प्रयत्न करता है, उस वेदबाह्य मूढ व्यक्तिके साथ द्विजातियोंका सम्भाषण नहीं करना चाहिये[1]। द्विजको वेदके पाठमात्रसे संतुष्ट नहीं होना चाहिये। पाठमात्रसे वेदाध्ययनको समाप्त करनेवाला कीचड़में फँसी गौके समान कष्ट पाता है। जो विधिपूर्वक वेदका अध्ययन कर वेदके अर्थपर विचार नहीं करता है, वह अपने वंशके साथ शूद्रके समान है। वह (वास्तवमें) पात्रता (योग्यता)-को नहीं प्राप्त करता है (अर्थात् वेदाध्ययन करनेवाला वेदार्थ अवश्य जाने यही तात्पर्य है)॥८२—८४॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात्॥८५॥
गत्वा वने वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्।
अभ्यसेत् सदा नैष्ठं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः॥८६॥
सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः।
अभ्यसेत् सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः॥८७॥

यदि गुरुके पास ही यावज्जीवन रहनेकी इच्छा हो तो शरीरके अन्त होनेतक बड़े ही प्रयत्नपूर्वक इनकी (गुरुकी) सेवा करनी चाहिये। अथवा (गुरु, गुरुपुत्र या उनके किसी सम्बन्धीके न रहनेपर) वनमें जाकर विधिपूर्वक अग्निमें हवन करना चाहिये और समाहित होकर ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठा रखते हुए नित्य वेदाभ्यास करना चाहिये। नित्य भस्मस्नान करते हुए गायत्री, शतरुद्रीय और वेदान्त-शास्त्रोंका विशेष रूपसे निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये॥८५—८७॥

एतद् विधानं परमं पुराणं
वेदागमे सम्यगिहेरितं वः।
पुरा महर्षिप्रवराभिपृष्टः
स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः॥८८॥
एवमीश्वरसमर्पितान्तरो
योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवित्।
मोहजालमपहाय सोऽमृतो
याति तत् पदमनामयं शिवम्॥८९॥

वेदशास्त्रमें प्रतिपादित यह सनातन विधान आप लोगोंको बतलाया गया, प्राचीन कालमें श्रेष्ठ महर्षियोंके पूछनेपर भगवान् स्वायम्भुव मनुने स्वयं ही इसे कहा था। इस प्रकार अपने अन्तःकरणको ईश्वरमें समर्पित करके विधानको जाननेवाले जो पुरुष इस (ब्रह्मचर्य) विधिका अनुष्ठान (यथावत् पालन) करता है, वह क्रमशः समस्त मोह-जालका परित्यागकर, अमर होते हुए अनामय शिवपदको प्राप्त करता है तथा अमर हो जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होकर कृतकृत्य हो जाता है॥८८-८९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १४॥

१-वेदाध्ययन द्विजको शास्त्राध्ययनके पूर्व अवश्य करना चाहिये यही तात्पर्य है।

पंद्रहवाँ अध्याय

गृहस्थधर्म तथा गृहस्थके सदाचारका वर्णन, धर्माचरण एवं सत्यधर्मकी महिमा

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदान् वा चतुरो द्विजाः।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तम॥१॥
गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा सशक्तः स्नातुमर्हति॥२॥

व्यासजीने कहा—द्विजो! द्विजोत्तमको चाहिये कि वह एक वेद, दो वेद (तीन) वेद अथवा वेदोंका अध्ययन कर और वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्तकर स्नान (संस्कार-विशेष—समावर्तन) करे। गुरुको दक्षिणा निवेदित कर उनकी आज्ञासे स्नान (समावर्तन) करे। व्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) पूर्णकर उसके फलस्वरूप शक्तिसम्पन्न युक्तात्मा द्विज स्नान (समावर्तन)-का अधिकारी होता है॥ १-२॥

वैणवीं धारयेद् यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम्।
यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम्॥३॥
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ।
रौक्मे च कुण्डले वेदं कृत्तकेशनखः शुचिः॥४॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत्।
अन्यत्र काञ्चनाद् विप्रो न रक्तां बिभृयात् स्रजम्॥५॥

(स्नातकको) बाँसकी छड़ी कौपीन धोती तथा उत्तरीय वस्त्र (चद्दर), दो यज्ञोपवीत, जलपूर्ण कमण्डलु, छाता, सुन्दर स्वच्छ पगड़ी, खड़ाऊँ, जूता, दो स्वर्णकुण्डल और वेद (कुशमुष्टि) धारण करना चाहिये तथा केश और नखोंको कटवाकर स्वच्छ रहना चाहिये। (स्नातकको) नित्य स्वाध्याय करना चाहिये। केशकलापसे बाहर माला नहीं धारण करनी चाहिये[1]। सोनेकी मालाको छोड़कर ब्राह्मणको रक्तवर्णकी माला धारण नहीं करनी चाहिये॥ ३—५॥

शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद् वै विभवे सति॥६॥
न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डिकाम्।
नापानहौ स्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत्॥७॥
उपवीतमलंकारं दर्भान् कृष्णाजिनानि च।
नापसव्यं परीदध्याद् वासो न विकृतं वसेत्॥८॥

उसे नित्य सफेद एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये तथा सुगन्धित द्रव्य-इत्र आदि धारणकर सदा सुगन्धयुक्त एवं सुवेशसे प्रियदर्शन होना चाहिये। धन रहनेपर पुराना और मैला वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये। उद्वेगजनक अधिक लाल और दूसरोंद्वारा प्रयोग किया हुआ वस्त्र, कमण्डलु, जूता, माला तथा खड़ाऊँ नहीं धारण करना चाहिये। इसी प्रकार उसे (स्नातकको) दूसरे द्वारा (प्रयुक्त) यज्ञोपवीत, अलङ्कार कुश और कृष्णमृगचर्मको धारण नहीं करना चाहिये।[2] अपसव्य नहीं रहना चाहिये, उसे विकृत (कटे-फटे) वस्त्रोंका धारण नहीं करना चाहिये॥ ६—८॥

आहरेद् विधिवद् दारान् सदृशानात्मनः शुभान्।
रूपलक्षणसंयुक्तान् योनिदोषविवर्जितान्॥ ९ ॥
अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम्।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम्॥१०॥

अपने समान (कुलके अनुरूप) शुभ, अच्छे रूप और लक्षणोंसे सम्पन्न योनि-सम्बन्धी दोषोंसे रहित पत्नीको विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। ब्राह्मण (द्विज)-को अपनी माताके गोत्रमें जो उत्पन्न न हो तथा जो अपने आर्ष गोत्रमें उत्पन्न न हो ऐसी शील और सदाचारसे सम्पन्न भार्याको ग्रहण करना चाहिये॥ ९-१०॥

ऋतुकालाभिगामी स्याद् यावत् पुत्रोऽभिजायते।
वर्जयेत् प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु॥११॥
षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम्।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि॥१२॥

१-मनुस्मृति (४। ७२)-के अनुसार 'बहिर्माल्य'का अर्थ है—केशकलापसे बाहर माला। इसका आशय यह है कि सिरके ऊपर माला न पहने। सिरके नीचे कण्ठमें माला पहननी चाहिये।

२-दाहिने कंधेके ऊपर तथा बायें हाथके नीचे यज्ञोपवीत जब रहता है तब अपसव्य कहा जाता है। ऐसा श्राद्ध आदि विशेष अवसरपर ही विहित है।

पुत्रके उत्पन्न होनेतक ऋतुकालमे अपनी स्त्रीसे सहवास करना चाहिये, किंतु निषिद्ध दिनाका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमाको ओर इसी प्रकार जन्मदिनसे तीन दिनपर्यन्त सदा ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये॥ ११-१२॥

आदधीतावसथ्याग्नि जुहुयाज्जातवेदसम्।
व्रतानि स्नातको नित्य पावनानि च पालयत्॥१३॥
वेदोदित स्वक कर्म नित्य कुर्यादतन्द्रित ।
अकुर्वाण पतत्याशु नरकानतिभीषणान्॥१४॥
अभ्यसेत् प्रयतो वेद महायज्ञान् न हापयेत्।
कुयाद् गृह्याणि कर्माणि सध्योपासनमेव च॥१५॥

आवसथ्य (सस्कार-विशषसे सस्कृत स्मार्त अग्नि) नामक अग्निकी स्थापना कर उसम प्रतिदिन हवन करना चाहिये और नित्य पवित्र व्रताका पालन करना चाहिय। वेदम बतलाये गये अपने कर्मोको नित्य आलस्यरहित हाकर करना चाहिये। इन्ह न करनपर (स्नातक) शीघ्र ही अत्यन्त भयकर नरकाम गिरता है। प्रयत्नपूर्वक वदाका अभ्यास कर। (पञ्च) महायज्ञाका परित्याग न कर। अपने गृह्यसूत्राम प्रतिपादित कर्मोको करे और सध्योपासन कर्म कर॥ १३—१५॥

सख्य समाधिकै कुर्यादुपेयादीश्वर सदा।
दैवतान्यपि गच्छेत कुयाद् भार्याभिपोषणम्॥१६॥
न धर्म ख्यापयेद् विद्वान् न पाप गूहयेदपि।
कुर्वीतात्महित नित्य सर्वभूतानुकम्पक ॥१७॥
वयस कर्मणाऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेत् सदा॥१८॥
श्रुतिस्मृत्युदित सम्यक् साधुभिर्यश्च सवित ।
तमाचार निषेवेत नेहतान्यत्र कर्हिचित्॥१९॥

अपने समान अथवा श्रेष्ठ व्यक्तिसे मित्रता करे। ईश्वरकी आराधना करे। देवताआकी भी पूजा करे और अपनी भायाका भलाभाँति पोषण करे। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि (अपन द्वारा अनुष्ठित) धर्मका वर्णन न करे और न अपने द्वारा किय गय पापको ही छिपाय। आत्मकल्याणका प्रयत्न कर आर सदव सभी प्राणियापर दया करे। अपनी अवस्था कर्म सम्पत्ति, ज्ञान और कुलके अनुसार सदा वेष धारण कर तथा सयत-वाणी और बुद्धिस यथोचित आचरण करते हुए लौकिक व्यवहारका निर्वाह करे। वदो तथा धर्मशास्त्रोमें जो कहा गया हो और जो सत्पुरुषासे भलीभाँति अनुष्ठित हा, उसी सदाचारका पालन करना चाहिय। इसके अतिरिक्त कभी भी दूसरे आचारका पालन नहीं करना चाहिये॥ १६—१९॥

यनास्य पितरो याता येन याता पितामहा ।
तेन यायात् सता मार्ग तेन गच्छन् न रिष्यति॥२०॥

यदि शास्त्रासे अपने मार्गका निर्धारण करनेमे किसी कारण असामर्थ्य हो ता (शास्त्रोक्त) जिस मार्गसे माता-पिता गये हा और पितामह आदिने जिस मार्गका अवलम्बन किया हो, उसी मार्गका स्वय भी अनुसरण करना चाहिये। यही सज्जनाका माग है। इस मार्गका अवलम्बन करनेवालेका पतन नहीं होता॥ २०॥

नित्य स्वाध्यायशील स्यान्नित्य यज्ञोपवीतवान्।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२१॥
सध्यास्नानपरो नित्य ब्रह्मयज्ञपरायण ।
अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थ प्रेत्य वर्धते॥२२॥
वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जित ।
सावित्रीजाप्यनिरत श्राद्धकृन्मुच्यते गृही॥२३॥
मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रत ।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥२४॥
त्रिवर्गसेवी सतत देवताना च पूजनम्।
कुर्यादहरहर्नित्य नमस्येत् प्रयत सुरान्॥२५॥

नित्य स्वाध्यायपरायण रहे, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहे। सत्य बालनेवाला एव क्रोधपर विजय प्राप्त करनेवाला, ब्रह्मस्वरूप हो जाता हे। नित्य स्नान आर सध्या करनेवाला, ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-परायण रहनेवाला, असूयारहित, मृदु तथा जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोकम अभ्युदय प्राप्त करता है। राग, भय आर क्रोधसे रहित, लोभ एव माहस शून्य, गायत्रीक जपमे तत्पर रहनवाला आर श्राद्ध करनवाला गृहस्थ मुक्त हा जाता ह। माता, पिता गौ आर ब्राह्मणके हित करनेम निरत रहनवाला, जितेन्द्रिय यजन करनेवाला तथा देवताआका भक्त ब्रह्मलाकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता हे। निरन्तर (धर्म, अर्थ एव कामरूप) त्रिवर्गका पालन ओर देवताआका पूजन करना चाहिय तथा प्रयत्नपूर्वक नित्य

देवताओंको नमस्कार करना चाहिये॥ २१—२५॥

विभागशील सतत क्षमायुक्तो दयालुक ।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥ २६॥
क्षमा दया च विज्ञान सत्य चैव दम शम ।
अध्यात्मनिरत ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥ २७॥
एतस्मात्र प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तम ।
यथाशक्ति चरन् कर्म निन्दितानि विवर्जयेत्॥ २८॥

अपनी सम्पत्तिका (शास्त्रानुसार यथायोग्य) सदा विभाग करनेवाला[1], क्षमावान्, दयायुक्त व्यक्ति ही गृहस्थ कहलाता है। केवल गृहमें रहनेसे कोई गृहस्थ नहीं कहलाता। क्षमा, दया, विशिष्ट ज्ञान (लौकिक एव शास्त्रीय ज्ञान), सत्य, दम शम और अध्यात्मज्ञानमे निरत होना—यह ब्राह्मणका लक्षण है। यथाशक्ति (विहित) कर्मोको करते हुए निन्दित कर्मोका परित्याग करना चाहिये॥ २६—२८॥

विधूय मोहकलिल लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धात् नात्र कार्या विचारणा॥ २९॥
विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् ।
अन्यमन्युसमुत्थाना दोषाणा मर्षण क्षमा॥ ३०॥

विशेषरूपसे श्रेष्ठ द्विजको इस सम्बन्धमे प्रमाद नही करना चाहिये। मोहरूपी कल्मषको धोकर और श्रेष्ठ योगको प्राप्तकर गृहस्थ बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसमे सशय नहीं करना चाहिये। दूसरेके क्रोधसे उत्पन्न अपनी निन्दा अनादर, दोषारोपण हिसा, बन्धन और ताडनस्वरूप दोषोको सहना ही क्षमा है॥ २९-३०॥

स्वदु खष्विव कारुण्य परदु खेषु सौहृदात्।
दयेति मुनय प्राहु साक्षाद् धर्मस्य साधनम्॥ ३१॥
चतुर्दशाना विद्याना धारणं हि यथार्थत ।
विज्ञानमिति तद् विद्याद् येन धर्मो विवर्धते॥ ३२॥
अधीत्य विधिवद् विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद् विज्ञानमिष्यते॥ ३३॥

सौहार्दवश अपने दु खके समान ही दूसरोंके दु खमे उनके प्रति करुणाभावको मुनियोने 'दया' इस नामसे कहा है। यह धर्मका साक्षात् साधन है। चौदह[2] विद्याओको यथार्थरूपसे धारण करनेको ही विज्ञान समझना चाहिये। इससे धर्मकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक विद्याको ग्रहण कर लेने और उसके अर्थका भलीभाँति ज्ञान लेनेपर भी यदि (कोई व्यक्ति) धर्म-कार्योंसे निवृत्त (विरत) रहता है, उन्हें नहीं करता तो उसका वह (अध्ययन) विज्ञान नहीं कहलाता है॥ ३१—३३॥

सत्येन लोकाञ्जयति सत्य तत्परम पदम्।
यथाभूतप्रवाद तु सत्यमाहुर्मनीषिण ॥ ३४॥
दम शरीरोपरम शम प्रज्ञाप्रसादज ।
अध्यात्ममक्षर विद्याद् यत्र गत्वा न शोचति॥ ३५॥

सत्यके आचरणसे लोकोपर विजय प्राप्त होती है, सत्य ही वह (सर्वोच्च) परमपद है। जो जैसा है उसका उसी रूपमे कथन ही मनीषियोंने सत्य कहा है। शरीरका उपरम (शरीरकी चेष्टाओका नियन्त्रण अर्थात् इन्द्रियोका निग्रह) दम है और शम (मनका नियन्त्रण) प्रज्ञा (प्रकृष्ट ज्ञान)-के विशद अवभाससे उत्पन्न होता है। अध्यात्म (आत्म-सम्बन्धी) ज्ञानको ही अविनश्वर तत्त्व समझना चाहिये जहाँ पहुँचनेपर शोक नहीं होता॥ ३४-३५॥

यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते पर ।
साक्षाद् देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥ ३६॥
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधन शुचि ।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥ ३७॥
धर्मस्यायतन यत्नाच्छरीर परिपालयेत्।
न हि देह विना रुद्र पुरुषैर्विद्यते पर ॥ ३८॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विज ।
न धर्मवर्जित काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥ ३९॥
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्।
धर्मो हि भगवान् देवो गति सर्वेषु जन्तुषु॥ ४०॥
भूतानां प्रियकारी स्यात् न परद्रोहकर्मधी ।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात् तैश्च न सवसेत्॥ ४१॥

१-सम्पत्तिके पाँच भाग—(१) धर्मके लिये (२) यशके लिये (३) सम्पत्तिको बढानेके लिये (४) अपने भोगके लिये (५) स्वजनके लिये—करनेसे इस लोक तथा परलोकमें सुख प्राप्त होता है।

२-चार वेद छ वेदाङ्ग (शिक्षा कल्प, व्याकरण निरुक्त छन्द शास्त्र ज्योतिष) पुराण न्यायशास्त्र मीमांसा धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं।

जिस विद्याके द्वारा वे परात्पर देवाधिदेव साक्षात् भगवान् महादेव जाने जाते हैं, उस ही ज्ञान कहा गया है। उनमें निष्ठा रखनेवाला उनके परायण रहनेवाला, कभी भी क्रोध न करनेवाला, पवित्र, (पञ्च) महायज्ञोंको करनेवाला विद्वान् विप्र उस श्रेष्ठ तत्त्वको प्राप्त करता है। धर्मके आयतन इस शरीरका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। बिना देहके मनुष्य उस परात्पर रुद्रको नहीं जान सकता। नियत (संयत) द्विजको नित्य धर्म, अर्थ एवं कामकी साधनामें लगे रहना चाहिये। धर्मसे रहित काम अथवा अर्थका मनसे भी स्मरण नहीं करना चाहिये। धर्मके पालनमें कष्ट पाते हुए भी (उसका परित्यागकर) अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। धर्मदेवता ही सभी प्राणियोंके भगवान् और गति हैं। (इसलिये) प्राणियोंका प्रिय करनेवाला बनना चाहिये। दूसरोंसे द्रोह करनेकी बुद्धिवाला नहीं होना चाहिये। वेदकी तथा देवताओंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये और (जो इनकी निन्दा करता है), उसके साथ रहना (भी) नहीं चाहिये॥ ३६—४१॥

यस्त्विमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचि।
अध्यापयेत् श्रावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते॥४२॥

जो विप्र पवित्रतापूर्वक नित्य इस धर्माध्यायका अध्ययन, अध्यापन अथवा उपदेश करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

सदाचारका वर्णन

व्यास उवाच

न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित्।
नाहितं नाप्रियं वाक्यं न स्तेनः स्याद् कदाचन॥१॥
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥२॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रपतितादपि।
न चान्यस्मादशक्तश्च निन्दितान् वर्जयेद् बुधः॥३॥

व्यासजीने कहा—किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये और कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिये। अहितकर और अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये और कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिये। दूसरेके तृण, शाक मिट्टी अथवा जलका भी अपहरण करनेवाला प्राणी नरक प्राप्त करता है। राजा[1], शूद्र तथा पतित व्यक्तिसे दान नहीं लेना चाहिये। अशक्त होनेपर भी दूसरेसे याचना नहीं करनी चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको निन्दितों (पापमें रत)-का परित्याग करना चाहिये॥ १—३॥

नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत्।
प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्मतिः॥४॥
न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः।
ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन॥५॥

नित्य याचना करनेवाला नहीं होना चाहिये और एक ही व्यक्तिसे दुबारा नहीं माँगना चाहिये। याचना करनेवाला दुर्बुद्धि व्यक्ति (दाताके) प्राणोंका ही हरण[2] करता है। विशेषरूपसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देवसम्बन्धी द्रव्यका अपहरण नहीं करना चाहिये। आपत्ति पड़नेपर भी ब्राह्मणके धनका कभी भी अपहरण न करे॥४-५॥

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत् ततः॥६॥
पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले फले तृणे।
अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः॥७॥

१-राजासे दान लेनेपर तेजका ह्रास होता है— 'राजान्नं हरते तेजः'।

२-पुनः-पुनः याचनासे दाताको कष्ट होना स्वाभाविक है। अतः यहाँ दाताके प्राण-हरणसे तात्पर्य कष्ट पहुँचानेसे है।

विषको विष नहीं कहा जाता बल्कि ब्राह्मणका धन ही विष-रूप है। इसी प्रकार देवसम्बन्धी स्वत्वका भी प्रयत्नपूर्वक सदा त्याग करना चाहिये। प्रजापति मनुने पुष्प, शाक जल, लकडी, मूल फल तथा तृण—इन सभी पदार्थोंको (इनके स्वामीद्वारा) बिना दिये ग्रहण कर लेनेको अस्तेय कहा है (अर्थात् पुष्प, शाक आदि यदि दूसरेके हैं तब भी अत्यावश्यक होनेपर धर्मार्थ या प्राणरक्षार्थ इनका प्रयोजनानुसार ग्रहण करनेपर चोरीका दोष नहीं लगता)॥ ६-७॥

ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम्॥ ८ ॥
तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद् बुधः।
धर्मार्थं केवलं विप्रा ह्यन्यथा पतितो भवेत्॥ ९ ॥
तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः।
क्षुधार्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः॥ १०॥

द्विजो! देवपूजाके लिये अन्य स्वामीका पुष्प ग्रहण किया जा सकता है। परंतु केवल एक ही स्थानसे बिना आज्ञाके प्रतिदिन पुष्प नहीं ग्रहण करना चाहिये। विप्रो! विद्वान् व्यक्ति केवल धर्मकार्यके लिये तृण, काष्ठ फल, पुष्प प्रकट-रूपसे ग्रहण कर सकता है, अन्य प्रकारसे ग्रहण करनेपर वह पतित हो जाता है। ब्राह्मणो! धर्म जाननेवालोंने यह मर्यादा स्थिर की है कि केवल भूखसे पीडित व्यक्ति रास्तेमें स्थित तिल, मूँग तथा यव आदि पदार्थोंको एक मुट्ठी मात्र ग्रहण कर सकता है। दूसरे जो भूखसे पीडित नहीं हैं ऐसा नहीं कर सकते॥ ८—१०॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम्॥ ११॥
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥ १२॥

पाप करके धर्मके बहाने किसी व्रतका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। व्रतके द्वारा पापको छिपाकर जो स्त्री और शूद्रोंका प्रवञ्चन करता है, वह विप्र इहलोक तथा परलोकमें ब्रह्मवादियोंद्वारा निन्दित होता है। छलके द्वारा किया गया व्रत राक्षसोंको प्राप्त होता है॥ ११-१२॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति।
स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ १३॥
बैडालव्रतिनः पापा लोके धर्मविनाशकाः।
सद्यः पतन्ति पापेषु कर्मणस्तस्य तत् फलम्॥ १४॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथैव च।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १५॥

यदि (यज्ञोपवीतादि) लिङ्गका अनधिकारी व्यक्ति इन लिङ्गों (चिह्नों-लक्षणों)-को धारणकर वेष बनाकर जीविकाका निर्वाह करता है तो वह इन लिङ्गोंके वास्तविक अधिकारी पुरुषोंके पापोंका भागी होता है और तिर्यक् (पक्षी आदि) योनिको प्राप्त करता है। लोकमें धर्मके विनाशक बैडालव्रती[1] (ढोंगी) पापी लोग शीघ्र ही पापयोनिमें जाते हैं। उनके दुष्कर्मका यही फल है। पाखंडी (वेदशास्त्राननुमत-व्रत लिङ्गधारी), निषिद्ध कर्म करनेवाले, वाममार्गी, पाञ्चरात्र और पाशुपत व्रतवालोंका वाणीमात्रसे भी सत्कार नहीं करना चाहिये[2]॥ १३—१५॥

वेदनिन्दारतान् मर्त्यान् देवनिन्दारतांस्तथा।
द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ १६॥
याजनं योनिसम्बन्धं सहवासं च भाषणम्।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद् यत्नेन वर्जयेत्॥ १७॥
देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकम्॥ १८॥
गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः॥ १९॥
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २०॥

वेदकी निन्दामें परायण, देवताओंकी निन्दामें निरत और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेमें संलग्न मनुष्योंका मनसे भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। इनका यज्ञ कराना, इनके साथ विवाह

१-विडालव्रतसे जो अपनी जीविका चलाता है वह बैडालव्रती है। इसका आशय यह है कि जैसे विडाल (बिल्ली) मूषक आदिको पकडकर खानेके लिये ध्याननिष्ठकी तरह विनीतकी भाँति बैठता है वैसे ही जो दूसरेको धोखा देकर अपने स्वार्थकी सिद्धिमात्रके लिये ध्यान, विनयभाव आदिका स्वाँग रचता है वह बैडालव्रती है।

२-अतिथि-सत्कारकालमें इनके उपस्थित होनेपर अतिथिके समान इनका सत्कार नहीं करना चाहिये। जो लोग आदर योग्य नहीं हैं उन्हें भी जीविका-निर्वाहके लिये यथाशक्ति देनेका विधान होनेसे जीवनोपयोगी वस्तु देनेका निषेध यहाँ नहीं है।

आदि (योनि)-का सम्बन्ध, सहवास तथा बात करनेसे प्राणी पतित हो जाता है, अतः प्रयत्नपूर्वक इनका परित्याग करना चाहिये। देवताके द्रोहसे गुरुका द्रोह करोड़ो गुना अधिक दोषपूर्ण होता है। उस गुरुद्रोहसे भी शास्त्रीय ज्ञानकी निन्दा करना और नास्तिकताका भाव करोड़ गुना अधिक दोषपूर्ण है। गायसे, देवताओंसे, ब्राह्मणोंसे, कृषिसे तथा राजाकी सेवासे जीविका-निर्वाह करनेवाले व्यक्तियोंका कुल दोषपूर्ण हो जाता है, क्योंकि ये वृत्तियाँ धर्मकी दृष्टिसे हीन वृत्तियाँ हैं। कुविवाह (नित्य अथवा धार्मिक) क्रियाओंका लोप, वेदोंके अध्ययन न करने और ब्राह्मणोंके अनादर करनेसे कुल दोषपूर्ण हो जाता है॥ १६—२०॥

अनृतात् पारदार्याच्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्।
अश्रौतधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २१॥
अश्रोत्रियेषु वै दानाद् वृषलेषु तथैव च।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २२॥

झूठ बोलने, परदाराभिगमन, अभक्ष्य-भक्षण और वेदविरुद्ध धर्मोंका आचरण करनेसे कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अश्रोत्रिय, शूद्र तथा विहित आचारसे रहित (द्विज)-को दान देनेसे दाताका कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ २१-२२॥

नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्।
न शूद्राराज्ये निवसन्न पाषण्डजनैर्वृते॥ २३॥
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं पूर्वपश्चिमयोः शुभम्।
मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः॥ २४॥
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः॥ २५॥

अधार्मिकों तथा पाखण्डीजनोंसे युक्त और अत्यधिक रोगसे आक्रान्त ग्राममें तथा शूद्रके राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि वह हिमालय एवं विन्ध्यपर्वतके मध्यके देश और पूर्व तथा पश्चिम दिशाके समुद्रके तटवर्ती शुभ प्रदेशोंको छोड़कर अन्यत्र निवास नहीं करे। अथवा जहाँ स्वाभाविकरूपसे नित्य कृष्ण (कृष्णसार मृग-जातिविशेषके मृग) मृग विचरण करते हों और जहाँ वेदशास्त्र-प्रसिद्ध पुण्यजलवाली नदियाँ प्रवाहित होती हों, द्विजको वहाँ निवास करना चाहिये॥ २३—२५॥

अर्धक्रोशान्नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः।
नान्यत्र निवसेत् पुण्यं नान्त्यजग्रामसंनिधौ॥ २६॥
न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुक्कसैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥ २७॥
एकशय्यासनं पङ्क्तिभाण्डपक्वान्नमिश्रणम्।
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम्॥ २८॥
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च।
एकादश समुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥ २९॥
समीपे वा व्यवस्थानात् पापं संक्रमते नृणाम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साङ्कर्यं परिवर्जयेत्॥ ३०॥

श्रेष्ठ द्विजको नदीके किनारेसे आधे कोसतककी भूमिका परित्यागकर अन्य किसी पवित्र स्थानपर नहीं रहना चाहिये और न अन्त्यजोंके ग्रामके समीपमें रहना चाहिये। पतित, चाण्डाल, पुकस, मूर्ख, अभिमानी (धन आदिके मदसे गर्वित), अन्त्यज (म्लेच्छ, रजक आदि) और अन्त्यावसायीके साथ नहीं रहना चाहिये[1]। (इनके साथ) एक शय्यापर और एक आसनपर बैठना, एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करना, बर्तनों और पके हुए भोजनका मेल (मिश्रण, परस्पर आदान-प्रदान), यज्ञ करना, अध्यापन, विवाहादिका सम्बन्ध, साथमें भोजन करना और दसवाँ साथमें अध्ययन करना तथा साथमें यज्ञ कराना—ये ग्यारह 'सांकर्य' नामवाले दोष बतलाये गये हैं। इन सांकर्य-दोषयुक्त व्यक्तियोंके समीपमें भी रहनेसे मनुष्यमें पापका संक्रमण हो जाता है। अतः सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे सांकर्य (दोष)-का परित्याग करना चाहिये॥ २६—३०॥

एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥ ३१॥
अग्निना भस्मना चैव सलिलेनावसेकतः।
द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पङ्क्तिर्विभिद्यते॥ ३२॥
न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम्।
परक्षेत्रे गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित्।
न संवदेत् सूतके च न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्॥ ३३॥

एक पंक्तिमें बैठे रहनेपर भी जो एक दूसरेका स्पर्श नहीं करते हों और बीचमें भस्मके द्वारा रेखारूप मर्यादा खींचे हों, उनमें सांकर्य-दोष नहीं होता। अग्नि, भस्म, जलके छिड़काव, द्वार, स्तम्भ तथा मार्ग—इन छः के द्वारा पंक्तिका खण्डन हो जाता है। अकारण शत्रुता, विवाद तथा

[1] १-यहाँ घृणाका भाव नहीं है। जन्मान्तरकृत कर्मोंके आधारपर यह केवल एक व्यवस्था है।

चुगुलखोरी नहीं करनी चाहिये। दूसरेके खेतमे चरती हुई गायको किसीको बतलाना नहीं चाहिये। सूतक (अशौच)-युक्त व्यक्तिसे बात न करे और किसीके भी मर्मका स्पर्श न करे[1]॥ ३१—३३॥

न सूर्यपरिवेष वा नन्द्रचाप शवाग्निकम्।
परस्मै कथयद् विद्वान् शशिन वा कदाचन॥ ३४॥
न कुर्याद् बहुभि सार्धं विरोध बन्धुभिस्तथा।
आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्॥ ३५॥

विद्वान् व्यक्ति दूसराको सूर्यमण्डल, इन्द्रधनुष, चिताग्नि तथा चन्द्रमा (चन्द्रमण्डल) न बतलाये, न दिखलाये। बहुत लोगोके साथ और बन्धु-बान्धवाके साथ विरोध नहीं करना चाहिय। स्वयक प्रति जैसा आचरण प्रतिकूल हो, वैसा आचरण दूसराके प्रति न करे॥ ३४-३५॥

तिथि पक्षस्य न ब्रूयात् न नक्षत्राणि निर्दिशेत्।
नादक्यामभिभाषेत नाशुचि वा द्विजोत्तम ॥ ३६॥
न देवगुरुविप्राणा दीयमान तु वारयेत्।
न चात्मान प्रशसेद् वा परनिन्दा च वर्जयेत्।
वेदनिन्दा दवनिन्दा प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३७॥

पक्षकी तिथिको न कह, न नक्षत्राका निर्देश करे। श्रेष्ठ द्विज रजस्वला स्त्रीसे बात न करे और न ही अपवित्र व्यक्तिसे बात करे। देवता, गुरु तथा ब्राह्मणाको दी जा रही वस्तुका निषेध न करे। अपनी प्रशसा न करे और दूसरकी निन्दाका त्याग करे। वेदनिन्दा तथा दवनिन्दाका प्रयत्नपूर्वक (सर्वथा) परित्याग कर॥ ३६-३७॥

यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान् वा निन्दति द्विज ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वरा ॥ ३८॥
निन्दयेद् वै गुरु दव वद वा सोपबृहणम्।
कल्पकोटिशत साग्र रौरवे पच्यत नर ॥ ३९॥
तूष्णीमासीत निन्दाया न ब्रूयात् किंचिदुत्तरम्।
कर्णौ पिधाय गन्तव्य न चैतानवलोकयत्॥ ४०॥

मुनीश्वरा! जो द्विज दवताओ ऋषियो, ब्राह्मणा अथवा वदाकी निन्दा करता है, उसक लिये इस लाकमे कोई प्रायश्चित शास्त्राम दिखलायी नहीं दता। गुरु दवता वद उपबृहण (इतिहास-पुराण)-की निन्दा करनवाला व्यक्ति सैकडा, करोडा वर्षोसे भी अधिक समयतक रौरव नरकमे कष्ट भोगता है। (देवता, शास्त्र आदिकी) निन्दा होनेपर (यदि उत्तर देनका सामर्थ्य न हो तो) चुपचाप रहना चाहिय, उत्तरमे (दुराग्रहीसे) कुछ भी नहीं बोलना चाहिये। अथवा उस समय कान बदकर अन्यत्र चला जाय और उन निन्दकाको ओर दखे भी नहीं॥ ३८—४०॥

वर्जयेद् वै रहस्यानि परेषा गूहयेद् बुध ।
विवाद स्वजनै सार्धं न कुर्याद् वै कदाचन॥ ४१॥
न पाप पापिना ब्रूयादपाप वा द्विजोत्तमा ।
स तेन तुल्यदोष स्यान्मिथ्या द्विर्दोषवान् भवेत्॥ ४२॥
यानि मिथ्याभिशस्ताना पतन्त्यश्रूणि रोदनात्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषा मिथ्याभिशसिनाम्॥ ४३॥
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे।
दृष्ट विशोधन वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशसने॥ ४४॥

विद्वान् व्यक्तिका दूसराक रहस्याको जाननेका प्रयास नहीं करना चाहिये और (जाननेपर) उन्हे छिपाना चाहिये। अपने आत्मीय जनोंके साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिय। हे द्विजोत्तमो! पापियोके पापकी चर्चा न कर, न अपाप (पापरहित)-पर पापी होनेका आरोप लगाये क्याकि ऐसा करनेसे वह उसी (पापी)-के समान दोषयुक्त होकर तथा मिथ्याभिभाषणरूप दोषसे युक्त[2] होकर दो दोषाका भागी हो जाता है। मिथ्यादोषारोपणयुक्त व्यक्तियोके रोनेसे जो अश्रुबिन्दु गिरते हैं, वे मिथ्या दोषारोपण करनेवाले व्यक्तिके पुत्रो तथा पशुओका नाश कर देते हैं। ब्रह्महत्या सुरापान, चोरी और गुरु-पत्नीगमन—इन महापापोकी शुद्धि वृद्धजनोद्वारा देखी गयी है (अर्थात् बतायी गयी है), किंतु मिथ्यादोषारोपण करनेवालेकी कोई शुद्धि नहीं है अर्थात् इनकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं है॥ ४१-४४॥

नक्षेतोद्यन्तमादित्य शशिन चानिमित्तत ।
नास्त यान्त न वारिस्थ नोपसृष्ट न मध्यगम्।
तिरोहित वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम्॥ ४५॥

बिना किसी प्रयोजनक उगते हुए सूर्य और चन्द्रमाको नहीं दखना चाहिय। (ऐस ही अकारण) अस्त होते हुए, जलमे प्रतिबिम्बित आकाशक मध्य स्थित, ग्रहणयुक्त,

१-मर्मस्पर्शका तात्पर्य है—किसीके रहस्यको प्रकाशित कर उसे पीडा पहुचाना।

२-इसका आशय यह है कि किसीके पापकी चर्चासे स्वयमें पाप सक्रमित होते हैं तथा वस्तुत निष्पापमे पापकी कल्पना मिथ्याकल्पना है और इस कल्पनाके आधारपर पापका कथन मिथ्याभाषण है ही।

वस्त्राच्छादित अथवा दर्पण आदिमे प्रतिबिम्बित सूर्य-चन्द्रमाको नहीं देखना चाहिये॥४५॥

न नग्ना स्त्रियमीक्षेत पुरुष वा कदाचन।
न च मूत्र पुरीष वा न च सस्पृष्टमैथुनम्।
नाशुचि सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयद् बुध ॥४६॥
पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान् नावलोकयेत्।
नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वावगुण्ठित ॥४७॥
न पश्येत् प्रेतसस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्।
न तैलोदकयोश्छाया न पत्नीं भोजने सति।
नामुक्तबन्धनाङ्गा वा नोन्मत्त मत्तमेव वा॥४८॥
नाश्नीयात् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणा वा नासनस्था यथासुखम्॥४९॥
नोदके चात्मनो रूप न कूल श्वभ्रमव वा।
न लङ्घयेच्च मूत्र वा नाधितिष्ठेत् कदाचन॥५०॥

नग्न स्त्री अथवा पुरुषको कभी भी न देखे। मल-मूत्र विसर्जित कर रहे तथा मैथुनासक्त व्यक्तिको न देखे। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपवित्रताकी स्थितिमे सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहोको नहीं देखना चाहिये। पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल एव उच्छिष्ट (मुखवाले) व्यक्तियाको नहीं देखना चाहिये। उच्छिष्ट दशामे अथवा मुख ढककर दूसरेसे बात नहीं करनी चाहिये। शवका स्पर्श किय हुए व्यक्तिको (जबतक स्नानादिसे शुद्ध नहीं हो जाता है तबतक), क्रुद्ध गुरुके मुखको तेल या जलमे पडनेवाली छायाको, भोजन करते समय पत्नीको, खुले हुए अङ्गावाली स्त्रीको, पागल एव मतवाले व्यक्तिको नहीं देखना चाहिये। पत्नीके साथ भोजन नहीं करना चाहिये और उसे भोजन करते हुए, छींकते हुए, जम्हाई लेते हुए तथा आसनपर आरामसे बैठे रहनेकी अवस्थाम नहीं देखना चाहिये। जलमें अपना रूप तथा (नदी आदिके) किनारे और गर्त (गहरा गड्ढा)-को नहीं दखना चाहिये। मूत्रका लाँघना नहीं चाहिये और न कभी उसपर बैठना चाहिये॥ ४६—५०॥

न शूद्राय मति दद्यात् कृशर पायस दधि।
नोच्छिष्ट वा मधु घृत न च कृष्णाजिन हवि ॥५१॥
न चैवास्मै व्रत दद्यान्न च धर्मं वदेद् बुध ।
न च क्रोधवश गच्छेद् द्वेष राग च वर्जयेत्॥५२॥
लोभ दम्भ तथा यत्नादसूया ज्ञानकुत्सनम्।
ईर्ष्यां मद तथा शोक मोह च परिवर्जयेत्॥५३॥
न कुर्यात् कस्यचित् पीडा सुत शिष्य च ताडयेत्।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित्॥५४॥
नात्मान चावमन्येत दैन्य यत्नेन वर्जयेत्।
न विशिष्टानसत्कुर्यात् नात्मान वा शपेद् बुध ॥५५॥

शूद्रका दृष्टार्थोपदेश (लौकिक विषयका उपदेश[1]) नहीं देना चाहिये। साथ ही कृशर अर्थात् तिल, चावल आदिसे मिश्रित पदार्थ, खीर, दही[2], जूठी[3] वस्तु, मधु, घृत कृष्णमृगचर्म[4] तथा हवनकी सामग्री नहीं देनी चाहिये। विद्वान् व्यक्ति इसे (शूद्रको) व्रत एव धर्म-सम्बन्धी उपदेश न दे। क्रोधके वशीभूत नहीं होना चाहिये और राग-द्वेषको छोड देना चाहिये। लोभ, दम्भ, असूया (गुणम दापदर्शन), ज्ञानकी निन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक तथा मोहको प्रयत्नपूर्वक छोड देना चाहिये। किसीको भी पीडा न पहुँचाये। पुत्र और शिष्यको योग्य बनानेके पवित्रभावसे ताडन[5] करे। कभी हीन व्यक्तिया और तीक्ष्ण (उद्धत) बुद्धिवाले व्यक्तियाका आश्रय ग्रहण न करे। विद्वान्को अपना अपमान नहीं करना चाहिये अर्थात् हीनभाव नहीं अपनाना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक दीनताका परित्याग करना चाहिये। विशिष्ट जनोका निरादर नहीं करना चाहिये और अपनेको (क्रोधावेशसे) शाप नहीं देना चाहिये॥५१—५५॥

न नखैर्विलिखेद् भूमि गा च सवेशयेन्न हि।
न नदीषु नदीं ब्रूयात् पर्वतेषु च पर्वतान्॥५६॥
आवासे भोजने वापि न त्यजेत् सहयायिनम्।
नावगाहेदपो नग्नो वह्नि नातिव्रजेत् पदा॥५७॥

१-यहाँ उपदेशका निषेध है। सलाह (सम्मति राय) देनका निषेध नहीं है। उपदेश द्विजको सामने करके ही करना चाहिये। शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार साक्षात् उपदेश लनेका अधिकारी शूद्र नहीं है। यह मात्र व्यवस्था है द्वेषभाव नहीं है। 'न शूद्राय मति दद्यात्' मनुस्मृति (४। ८०)-की कुल्लूकभट्टकी व्याख्याके अनुसार।

२-आहुति देनेसे अवशिष्ट तिल आदि हविष्य शूद्रको नहीं देना चाहिये।

३-जो शूद्र अपना सेवक नहीं है उसे उच्छिष्ट देनेका निषेध है।

४-कृष्णमृगचर्मका ब्राह्मण ही अधिकारी है।

५-यहाँ तात्पर्य यह है कि पुत्र एव शिष्यका योग्य बनानेका उत्तरदायित्व होता है अत आवश्यक होनेपर करुणाका भाव रखते हुए ताड़न किया जा सकता है।

शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलनाङ्गं न लेपयेत्।
न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत स्वानि खानि न संस्पृशेत्।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत्॥५८॥
न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत्।
न शिश्नोदरचापल्यं न च श्रवणयोः क्वचित्॥५९॥
न चाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन॥६०॥

नखोंसे भूमिपर नहीं लिखना (कुरेदना) चाहिये। गौको पकड़ना नहीं चाहिये। किसी नदीके समीप दूसरी नदियों तथा किसी पर्वतपर दूसरे पर्वतोंकी चर्चा (प्रशंसा) नहीं करनी चाहिये। भोजन अथवा निवासके समय सहयात्रीको छोड़ना नहीं चाहिये (अर्थात् साथमें रहनेवालेको छोड़कर न एकाकी भोजन करना चाहिये न एकाकीके लिये निवासकी व्यवस्था करनी चाहिये)। जलमें नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये और पैरसे आगका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। सिरपर लगानेसे बचे हुए तेलका शरीरपर लेपन नहीं करना चाहिये। सर्प एवं शस्त्रसे खेल नहीं करना चाहिये। अपनी इन्द्रियों एवं गुप्तस्थानोंके रोमोंका स्पर्श (जब चाहे तब) नहीं करना चाहिये। अशिष्ट व्यक्तिके साथ कहीं नहीं जाना चाहिये। कभी भी हाथ पैर, वाणी और नेत्र-सम्बन्धी चंचलताका आश्रय न ले। इसी प्रकार लिंग तथा उदर और कान-सम्बन्धी चंचलता नहीं करनी चाहिये। अंग एवं नखकी आवाज न करे। अंजलिसे (जल) न पिये। कभी भी हाथ अथवा पैरसे जलको न पीटे॥५६—६०॥

न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च।
न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम्॥६१॥
न भेदनमवस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्।
कुर्याद् विमर्दनं धीमान् नाकस्मादेव निष्फलम्॥६२॥
नोत्सङ्गे भक्षयेद् भक्ष्यं वृथा चेष्टां च नाचरेत्।
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्॥६३॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।
न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद् बाह्यजैरपि॥६४॥
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत्।
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्॥६५॥

ईंटा और फलके द्वारा फलोंको नहीं तोड़ना चाहिये। म्लेच्छ भाषाकी शिक्षा न ले, पैरसे आसनको न खींचे। (नखोंद्वारा) काटने, छेदन, फाड़न तथा लिखने-सम्बन्धी क्रियाएँ नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अकस्मात् बिना प्रयोजनके शरीर या (अङ्गोंका) मर्दन (मरोड़नेकी क्रिया) नहीं करना चाहिये। (कोई पदार्थ) गोदमें रखकर नहीं खाना चाहिये। व्यर्थकी कोई चेष्टा नहीं करना चाहिये। नृत्य, गायन तथा वादन (जब चाहे तब) नहीं करना चाहिये। दोनों हाथोंसे अपना सिर नहीं खुजलाना चाहिये। लौकिक तथा बाह्य (विदेशी) भाषाकी स्तुतियोंसे देवताओंको संतुष्ट (करनेका प्रयास) नहीं करना चाहिये[1]। पाशोंसे (जूआ) न खेले, न दौड़े जलमें मल-मूत्रका विसर्जन न करे। जूठे मुख नहीं रहना चाहिये और कभी भी नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये॥६१—६५॥

न गच्छेन्न पठेद् वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्।
न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात् सुप्तं न बाधयेत्॥६६॥
न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत्।
नैकः सुप्याच्छून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत्॥६७॥
नाकारणाद् वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत्।
न पादक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदाचन॥६८॥
नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ न कांस्ये धावयेद् बुधः।
नाभिप्रसारयेद् देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा।
वाय्वग्निगुरुविप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥६९॥
अशुद्धः शयनं यानं स्वाध्यायं स्नानवाहनम्।
बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कथञ्चन॥७०॥

(नग्न अवस्थामें) न कहीं जाय, न पढ़े और न अपने सिरका स्पर्श करे। दाँतोंके द्वारा नख या रोमोंको नहीं काटना चाहिये। सोये हुए व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। उगते हुए सूर्यके धूपका सेवन नहीं करना चाहिये। चिताके धुएँसे दूर रहना चाहिये। शून्य गृहमें अकेले नहीं सोना चाहिये। स्वयं अपने जूतोंको नहीं ढोना चाहिये। अकारण

१-इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग संस्कृतके अध्ययनके अधिकारी हैं उन्हें अवश्य संस्कृतका अध्ययन करना चाहिये और वेदादिशास्त्रोंमें निर्दिष्ट स्तुतियोंसे ही देवताओंकी स्तुति करनी चाहिये। अनधिकारके कारण या सर्वथा सामर्थ्यके अभावमें श्रद्धातिशयमें जिस-किसी भाषाके द्वारा स्तुति करनी ही चाहिये। यहाँ यथाधिकार संस्कृत शास्त्रोक्त अवश्य अध्ययनमें तात्पर्य है। लौकिक भाषा आदिसे स्तुतिके निषेधमें तात्पर्य नहीं है।

नहीं थूकना चाहिये। तैरकर नदीको पार नहीं करना चाहिये। कभी भी पैरद्वारा पैरको नहीं धोना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अग्निसे पैर नहीं सकना चाहिये। काँसेके पात्रमे पैर नहीं धोना चाहिये। देवताकी ओर, ब्राह्मणाकी ओर एव गौ, वायु, अग्नि, गुरु, विप्र, सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर पर नहीं फैलाना चाहिये। कभी भी अपवित्र अवस्थाम सोना, दूरकी यात्रा, स्वाध्याय, स्नान, सवारीपर बैठना और घरसे वाहर नहीं निकलना चाहिये॥ ६६—७०॥

स्वप्नमध्ययन स्नानमुद्वर्तं भोजन गतिम्।
उभयो सध्ययोर्नित्य मध्याह्ने चैव वर्जयत्॥७१॥
न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्।
न चासन पदा वापि न देवप्रतिमा स्पृशेत्॥७२॥
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान् कीर्तयदृषीन्।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नानिमित्तत ॥७३॥
न वामहस्तेनाद्धृत्य पिबेद् वक्त्रेण वा जलम्।
नोत्तरदनुपस्पृश्य नाप्सु रेत समुत्सृजेत्॥७४॥
अमेध्यलिप्तमन्यद् वा लोहित वा विषाणि वा।
व्यतिक्रमेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्।
चैत्य वृक्ष न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमाचरेत्॥७५॥

दोनो सध्या-समया तथा मध्याह्नकालमे शयन, अध्ययन, स्नान, उवटन लगाना, भोजन तथा गमनका नित्य त्याग करना चाहिये। ब्राह्मणको[1] चाहिये कि वह जूठे मुँह-हाथस गौ, ब्राह्मण, अग्नि, आसन तथा देव-प्रतिमाका स्पर्श न करे। इसी प्रकार पैरसे भी इनका स्पर्श न करे। अपवित्रताकी स्थितिमे अग्निकी परिचर्या न करे, देवताओ तथा ऋषियो (-के नाम आदि)-का कीर्तन न करे। गहरे जलमे स्नान न करे और बिना कारण (मल-मूत्रादिका वेग) न रोके। वाय हाथसे उठाकर अथवा मुखसे (पशुके समान) जल नहीं पीना चाहिये। बिना आचमन किये उत्तर न दे और जलमे वीर्यका त्याग नहीं करना चाहिये। अपवित्र वस्तुसे लिप्त किसी वस्तु, रक्त (खून), विष तथा वेगवाली नदीका उल्लघन नहीं करना चाहिये। जलम मैथुन नहीं करना चाहिये। अश्वत्थ वृक्षको[2] नहीं काटना चाहिये। जलमे थूकना नहीं चाहिये॥ ७१—७५॥

नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्।
तुषाङ्गारकरीष वा नाधितिष्ठेत् कदाचन॥७६॥
न चाग्नि लङ्घयेद् धीमान् नोपदध्यादध क्वचित्।
न चैन पादत कुर्यान्मुखेन न धमेद् बुध ॥७७॥
न कूपमवरोहेत नावेक्षेताशुचि क्वचित्।
अग्नौ न च क्षिपेदग्नि नाद्भि प्रशमयेत् तथा॥७८॥
सुहृन्मरणमार्तिं वा न स्वय श्रावयेत् परान्।
अपण्य कूटपण्य वा विक्रये न प्रयोजयेत्॥७९॥

हड्डी, भस्म, कपाल, केश (बाल), कण्टक, भूसी, अगार और शुष्क गोबरपर कभी भी बैठना नहीं चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अग्निका लघन नहीं करना चाहिये। अग्निको कभी भी (शय्या, आसन आदिके) नीचे न रखे, न ही पैरकी ओर रख और न मुखसे ही फूँके। कभी भी कुएँके अदर न उतरे और न ही अपवित्र अवस्थामे उसे देखे। अग्निमे अग्निको नही फकना चाहिये और पानीसे इसे बुझाना नहीं चाहिये। मित्रके मरण तथा उसके दु खको, (अपने दु खको) स्वय दूसरोको न सुनाये। जो विक्रय-योग्य न हो तथा जा पदार्थ छलद्वारा प्राप्त हो उसे विक्रय नहीं करना चाहिये॥ ७६—७९॥

न वह्नि मुखनि श्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुध ।
पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्त वा कृषेन्न तु॥८०॥

विद्वान्को चाहिये कि वह अग्निको मुखके नि श्वाससे प्रज्वलित न करे। अपवित्रताकी स्थितिम पवित्र तीर्थमे, जलवाले स्थानम नहीं जाना चाहिये और (ग्राम आदिके) सीमा-समाप्तिकी भूमिको नही जोतना चाहिये॥ ८०॥

न भिन्द्यात् पूर्वसमयमभ्युपेत कदाचन।
परस्पर पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत्॥८१॥
परबाध न कुर्वीत जलवातातपादिभि ।
कारयित्वा स्वकर्माणि कारून् पश्चान्न वञ्चयेत्।
सायप्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघट्टयेत्॥८२॥
बहिर्माल्य बहिर्गन्ध भार्यया सह भोजनम्।
विगृह्य वाद कुद्वारप्रवेश च विवर्जयेत्॥८३॥

पहले की गयी प्रतिज्ञा या नियमको कभी भी ताडना नहीं चाहिय। पशु, सर्प एव पक्षियाको परस्पर लडानेके लिये उत्तजित नहीं करना चाहिये। जल, वायु तथा धूप आदिके द्वारा किसी दूसरेको बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये। अपने कार्योको

१-सर्वप्रथम होनेसे ब्राह्मणका निर्देश है। यहाँ ब्राह्मणप्रमुख मानवमात्रको लेना चाहिये।
२-चैत्यवृक्ष (अश्वत्थवृक्ष)—चैत्यस्तदाख्यया प्रसिद्धो वृक्ष । अश्वत्थवृक्ष इति रत्नमाला। (शब्दकल्पद्रुम)

करवाकर शिल्पियोंका बादमें ठगना नहीं चाहिये। भिक्षाके लिये सायंकाल और प्रातः (दूसरोंके) घरके दरवाजोंको खटखटाना नहीं चाहिये। दूसरोंके द्वारा प्रयुक्त माला[1], गन्ध और भार्याके साथ भोजन, विग्रहपूर्वक विवाद एवं कुत्सित दरवाजेसे प्रवेश—इनका त्याग करना चाहिये॥ ८१—८३॥

न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठन्न जल्पेद् वा हसन् बुधः।
स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशन्नाप्सु चिरं वसेत्॥ ८४॥
न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत॥ ८५॥

बुद्धिमान् ब्राह्मणको[2] खाते हुए खड़ा नहीं होना चाहिये और न ही हँसते हुए बोलना चाहिये। अपने हाथोंद्वारा अपनी अग्निका स्पर्श नहीं करना चाहिये और देरतक जलमें नहीं रहना चाहिये। अग्निको न पखेकी हवासे प्रज्वलित करना चाहिये, न सूप (-की हवा)-से और न हाथसे (हिलाकर)। मुखसे (फुँकनीद्वारा) अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये क्योंकि मुखसे ही अग्नि उत्पन्न हुआ है॥ ८४-८५॥

परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् द्विजः।
नैकश्चरेत् सभां विप्रः समवायं च वर्जयेत्॥ ८६॥
न देवायतनं गच्छेत् कदाचिद् वाप्रदक्षिणम्।
न वीजयेद् वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत्॥ ८७॥
नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह।
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितेन वा॥ ८८॥
नोपानद्वर्जितो वाथ जलादिरहितस्तथा।
न रात्रौ नारिणा सार्धं न विना च कमण्डलुम्।
नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् क्वचित्॥ ८९॥

दूसरेकी स्त्रीसे बात नहीं करनी चाहिये और द्विज (ब्राह्मण)-को चाहिये कि जो यज्ञ करने योग्य नहीं है उसका यज्ञ न कराये। विप्रको अकेले सभामें नहीं जाना चाहिये और समूहका त्याग करना चाहिये। बायेंसे देव-मन्दिरमें प्रवेश नहीं करना चाहिये। अर्थात् देवमन्दिरको अपने दाहिने करके प्रवेश करना चाहिये। वस्त्रद्वारा पखा नहीं झलना चाहिये और देवमन्दिरमें सोना नहीं चाहिये। मार्गमें अकेले नहीं चलना चाहिये और न अधार्मिक व्यक्तियोंके साथ ही कहीं जाना चाहिये। इसी प्रकार व्याधिग्रस्त, शूद्र और पतितोंके साथ भी मार्गमें नहीं जाना चाहिये[3]। जूता और जल आदिके बिना मार्गमें नहीं चलना चाहिये। न रात्रिमें, न शत्रुके साथ और न बिना कमण्डलुके चलना चाहिये। अग्नि, गौ, ब्राह्मण आदिके बीचमेंसे होते हुए नहीं निकलना चाहिये॥ ८६—८९॥

न वत्सतन्त्रीं विततामतिक्रामेत् क्वचिद् द्विजः।
न निन्देद् योगिनः सिद्धान् व्रतिनो वा यतींस्तथा॥ ९०॥
देवतायतनं प्राज्ञो देवानां चैव सत्रिणाम्।
नाक्रामेत् कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि॥ ९१॥
स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत् कदाचन॥ ९२॥
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयं च पिबेद् द्विजः॥ ९३॥

द्विज (मानवमात्र)-को चाहिये कि वह कभी भी बछड़ेको दूध पिलाती हुई गाय तथा गायको बाँधनेवाली रस्सी अथवा उसकी पूँछका उल्लङ्घन न करे। योगियों, सिद्धों, व्रतपरायणों तथा संन्यासियोंकी निन्दा न करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको देवमन्दिर, देवताओं यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों तथा गायकी परछाईंको इच्छापूर्वक लाँघना नहीं चाहिये। पतित आदिसे तथा रोगियोंसे अपनी परछाईंका उल्लङ्घन नहीं होने देना चाहिये। अगार भस्म तथा केश आदिपर कभी भी बैठना नहीं चाहिये। झाड़ूकी धूल, स्नानके वस्त्र तथा (स्नानसे बचे) घड़ेके जलके छींटेसे बचना चाहिये (उसे अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहिये)। द्विज (मानवमात्र)-को चाहिये कि वह अभक्षणीय पदार्थको खाये नहीं और न ही अपेय पदार्थको पीये॥ ९०—९३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १६॥
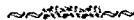
१-शब्दकल्पद्रुममें यह श्लोक है। वहाँ 'बहिर्माल्य' का अर्थ 'कण्ठसे बाहर निकाली हुई माला' किया गया है। इससे अन्यके द्वारा धारित तथा अपने द्वारा भी धारित पुष्पमालाका पुनः धारण निषिद्ध है यह स्पष्ट होता है।

२-सामान्य स्थितिमें यह निषेध सबके लिये है ब्राह्मणका उल्लेख प्रमुखताकी दृष्टिसे है।

३-यहाँ घृणाका भाव नहीं है। व्यक्ति एवं समाजके दूरगामी सुपरिणाम (कल्याण)-की दृष्टिसे यह एक सुविचारित व्यवस्था है।

सत्रहवाँ अध्याय

भक्ष्य एव अभक्ष्य-पदार्थोका वर्णन

व्यास उवाच

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद् वा यदि वान्यत ।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि॥ १॥
षण्मासान् यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृत श्वा चाभिजायते॥ २॥

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणको मोहसे अथवा अन्य किसी दूसरे कारणसे शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये। जो अनापत्तिकालमें शूद्रका अन्न भक्षण करता है, वह शूद्रयोनिको प्राप्त होता है। जो द्विज छ महीनेतक लगातार शूद्रका गर्हित अन्न खाता है, वह जीते हुए शूद्र हो जाता है और मृत्युके बाद श्वान-योनिमे जन्म लेता है॥ १-२॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वरा ।
यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इनमेसे जिसका अन्न मृत्युके समय जिसके उदरमे रहता है, उसे उसीकी योनि प्राप्त होती है (अर्थात् ब्राह्मणका अन्न उदरमे मृत्युके समय है तो ब्राह्मण-योनि प्राप्त होगी आदि-आदि)॥ ३॥

राजान्नं नर्तकान्नं च तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिण ।
गणान्नं गणिकान्नं च षण्ढान्नं चैव वर्जयेत्॥ ४॥
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा।
गान्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नं च वर्जयेत्॥ ५॥

राजा, नर्तक, बढई, चर्मकार, गण[1] (सौ ब्राह्मणोका सघ), गणिका और नपुसकके अन्नका परित्याग करना चाहिये। चक्रके आधारपर अपनी जीविका चलानेवाला (तैलिक-तेली)[2], धोबी, चोर, ध्वजी[3] (मद्यविक्रयजीवी), गायक, लौहकार और सूतकके अन्नका त्याग करना चाहिये॥ ४-५॥

कुलालचित्रकर्मान्नं वार्धुषे पतितस्य च।
पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशस्तस्य चैव हि॥ ६॥
सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च।
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डिकस्य च॥ ७॥
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च।
सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषत ॥ ८॥
भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे।
उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिन ॥ ९॥

कुम्भकार, चित्रकार, वार्धुषि[4] (कर्ज देकर सूदसे जीविका चलानेवाले), पतित, विधवाके पुनर्विवाहके अनन्तर अथवा पति-परित्यक्तासे उत्पन्न पुरुष[5], छत्रिक (नापित)[6], अभिशस्त (चोरी मैथुन आदि आरोपसे ग्रस्त), स्वर्णकार, नट, व्याध, बन्धन-प्राप्त, आतुर (रोगी), चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री तथा दण्डधर (दण्ड देनेवाले, नियामक—जल्लाद आदि)-का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये। चोर, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमलता-विक्रयी तथा विशेषरूपसे चाण्डालका और स्त्रीके वशीभूत तथा जिसके घरमे उस स्त्रीका उपपति हो, (समाजद्वारा) परित्यक्त, कृपण और जूठा भोजन करनेवालेका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये॥ ६—९॥

१-मनुस्मृति (४। २०९)-की कुल्लूकभट्टकी व्याख्याके अनुसार 'गण'का अर्थ 'शतब्राह्मणसघ' है। शत सख्याको अनेक सख्यापरक मानकर ब्राह्मण-समूहका अन्न परित्याज्य समझना चाहिये।

२-मनुस्मृति (४। ८४)-के अनुसार चक्रोपजीवीका अर्थ तैलिक है।

३-मनुस्मृति (४। ८४)-के अनुसार ध्वजीका अर्थ मदिराविक्रयके द्वारा जिस जातिके लोग जीविका चलाते हैं उस जातिके लोग हैं। इन्हे सस्कृतमे 'शौण्डिक' कहते हैं।

४-अमरकोष (२। ९। ५)-के अनुसार।

५-मनुस्मृति (९। १७५)-के अनुसार।

६-शब्दकल्पद्रुमके अनुसार।

अपाङ्क्त्यान्नं च सङ्घान्नं शस्त्राजीवस्य चैव हि।
क्लीबसन्न्यासिनोश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षुतम्॥ १०॥
ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च।
वृथापाकस्य चैवान्नं शावान्नं श्वशुरस्य च॥ ११॥
अप्रजानां तु नारीणां भृतकस्य तथैव च।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥ १२॥

पङ्क्तिसे बहिष्कृत, समूहके आश्रित, शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला क्लीव (नपुंसक), संन्यासी, मत्त उन्मत्त भयभीत रोते हुए व्यक्तिके तथा अभिशप्त एवं छींकसे अशुद्ध अन्नको ग्रहण नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणसे द्वेष करनेवाला, पापबुद्धि श्राद्ध तथा अशौचसम्बन्धी अन्न निष्प्रयोजन बने हुए भोजन (ईश्वर-समर्पणबुद्धिसे न बना हुआ) शव-सम्बन्धी तथा ससुरका[१] अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये। बिना संतानवाली स्त्री, भृत्य, शिल्पी (कारीगर[२]) तथा शस्त्रविक्रयीका अन्न विशेष-रूपसे त्याग करना चाहिये॥ १०—१२॥

शौण्डान्नं घाटिकान्नं च भिषजामन्नमेव च।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवित्त्यन्नमेव च॥ १३॥
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः।
अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्।
गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्॥ १४॥
दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥ १५॥

शौण्ड (मद्य बनानेवाले जातिविशेषके लोग) स्तुति करनेवाले 'भाट'-जातिके लोगों, भिषक् (जिससे रोग भयभीत हो), विद्धलिंगी और ज्येष्ठ भाईके अविवाहित रहनेपर विवाह कर लेनेवाले छोटे भाईका अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। दो बार विवाह करनेवाली स्त्री[३] तथा ऐसी स्त्रीके पतिका अन्न विशेषरूपसे त्याज्य है। अनादरपूर्वक दिया गया, तिरस्कारपूर्वक दिया गया, रोष एवं अभिमानपूर्वक दिया हुआ अन्न, इसी प्रकार गुरुके संस्कारहीन अन्नको ग्रहण नहीं करना चाहिये। मनुष्यका किया हुआ सारा पाप अन्नमें स्थित रहता है। इसलिये जो जिसका अन्न ग्रहण करता है, वह उसके पापका ही भक्षण करता है॥ १३—१५॥

आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥ १६॥
कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एव च।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः॥ १७॥
पायसं स्नेहपक्वं यद् गोरसं चैव सक्तवः।
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः॥ १८॥

आर्द्धिक (जो शूद्र द्विजातिके घर हल जोतकर उसके पारिश्रमिक-रूपमें अन्न प्राप्त करता है), कुलमित्र (पिता-पितामहकी परम्परासे जो द्विजातिके घर रहता आया है तथा अभिन्न सहयोगी है), जो अपने गौओंका पालन करनेवाला है नापित तथा जिस शूद्रने मन, वाणी और कर्मसे सर्वथा स्वयंको 'मैं आपका ही हूँ'-इस रूपमें समर्पित कर दिया है—ऐसे शूद्रका अन्न ग्रहण किया जा सकता है। बुद्धिमान् व्यक्तिको शूद्रोंमें नाटक आदिसे जीविका चलानेवाले (चारण कत्थक) कुम्हार और खेतमें काम करनेवालोंका अन्न थोड़ा मूल्य देकर ग्रहण करना चाहिये। द्विजातियोंद्वारा दूधका[४] विकार—मक्खन-खोआ आदि, घृतमें पके पदार्थ, गोरस (दूध) सत्तू, पिण्याक (खली शिलाजीत, केसर, हींग इत्यादि) तथा तेल—ये पदार्थ शूद्रासे ग्रहण किये जा सकते हैं॥ १६—१८॥

१-आलसी या प्रमादी होकर श्वशुरगृहमें स्थायीरूपसे रहनेके साथ वहाँका अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है।

२-बढ़ई जुलाहा नाई धोबी और चमकार—इन पाँचको 'कारु' या 'शिल्पी' कहा जाता है।

३-मूलमें 'पुनर्भू' शब्द है। इसका पर्याय 'दिधिषू' है। ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। इनका अर्थ दो बार विवाह करनेवाली स्त्री है (शब्दकल्पद्रुम अमरकोश)।

४-मूलमें 'पायस' शब्द है। इसका अर्थ खीर नहीं करना चाहिये। शब्दकल्पद्रुममें उद्धृत तिथितत्त्वके वराहपुराणीय वचनके अनुसार यहाँ पायसका अर्थ दुग्धविकार ही है।

वृन्ताक नालिकाशाक कुसुम्भाश्मन्तक तथा।
पलाण्डु लशुन शुक्त निर्यास चैव वर्जयेत्॥ १९॥
छत्राक विड्वराह च शेलु पेयूषमेव च।
विलय सुमुख चैव कवकानि च वर्जयेत्॥ २०॥
गृञ्जन किशुक चैव ककुभाण्ड तथैव च।
उदुम्बरमलाबु च जग्ध्वा पतति वै द्विज ॥ २१॥

बेगन, नालिकासाग[1], कुसुम्भ (पुष्प-विशेष), अश्मन्तक[2], प्याज, लहसुन, शुक्त[3] और वृक्षके गोदका परित्याग करना चाहिये। छत्राक, विड्वराह (ग्राम्य-सूकर), शेलु[4] (वनमेथी), पेयूष[5], विलय, सुमुख[6], कवक (कुकुरमुत्ता), किशुक (पलाश), ककुभाण्ड, उदुम्बर (गूलर) तथा अलाबु (वर्तुलाकार—गोल लौकी)-का भक्षण करनेसे द्विज पतित हो जाता है॥ १९—२१॥

वृथा कृशरसयाव पायसापूपमेव च।
अनुपाकृतमास च देवान्नानि हवींषि च॥ २२॥
यवागू मातुलिङ्ग च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्।
नीपं कपित्थ प्लक्ष च प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ २३॥
पिण्याक चोद्धृतस्नेह देवधान्य तथैव च।
रात्रौ च तिलसम्बद्ध प्रयत्नेन दधि त्यजेत्॥ २४॥
नाश्नीयात् पयसा तक्र न बीजान्युपजीवयेत्।
क्रियादुष्ट भावदुष्टमसत्सग च वर्जयेत्॥ २५॥

देवताके उद्देश्यसे नहीं केवल अपने लिये पकाये गये कृशरान्न (तिल-चावलके बने पदार्थ), सयाव (लपसी), खीर एव पुआका तथा देवान्न (देवताके लिये समर्पित अन्न), हवनके योग्य द्रव्य (पुरोडाश आदि) यवागू (जौकी काँजी), मातुलिंग (बिजौरा नीबू), देव-पित्र्यकर्ममे कदम्ब, कपित्थ (कैथ) और प्लक्ष (पर्कटी-पाकड)-का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। तेल निकाली हुई खली, देवताका धान्य और रात्रिमे तिल-सम्बन्धी पदार्थ तथा दहीका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। दूधके साथ मट्ठेका सेवन नहीं करना चाहिये। बीजोके द्वारा जीविकाका निर्वाह नहीं करना चाहिये। कर्मसे दूषित और भावसे दूषित तथा दुर्जनोसे सम्बन्धका परित्याग करना चाहिये॥ २२—२५॥

केशकीटावपन्न च सहृल्लेख च नित्यश ।
श्वाघ्रात च पुन सिद्ध चण्डालावेक्षित तथा॥ २६॥
उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च।
अनर्चित पर्युषित पर्यायान्न च नित्यश ॥ २७॥
काककुक्कुटसस्पृष्ट कृमिभिश्चैव सयुतम्।
मनुष्यैरप्यवघ्रात कुष्ठिना स्पृष्टमेव च॥ २८॥
न रजस्वलया दत्त न पुश्चल्या सरोषया।
मलवद्वाससा वापि परवासोऽथ वर्जयेत्॥ २९॥
विवत्सायाश्च गो क्षीरमौष्ट्र वानिर्दश तथा।
आविक सन्धिनीक्षीरमपेय मनुरब्रवीत्॥ ३०॥

केश (बाल) और कीडासे युक्त, जिस अन्नको लेकर मनम विचिकित्सा हो, कुत्तेद्वारा सूँघा हुआ, दुबारा पकाया गया, चाण्डाल, रजस्वला तथा पतितके द्वारा देखा गया और गाय-बैल आदि गोजातिद्वारा सूँघा हुआ, अनादरपूर्वक प्राप्त, बासी तथा पर्यायान्नका[7] नित्य परित्याग करना चाहिये। कौआ एव मुर्गासे स्पृष्ट, कृमियुक्त,

---

१-'नालिकाशाक' मूलमे पठित है। सुश्रुत (१। ४६)-म इसकी चर्चा है। ग्राम्य भाषामे इसे 'भँसीड' कहते हैं। यह तालाबमें होता है। इसमें पत्ते नहीं होते हैं। मात्र डठल होता है। डठलके भीतर छिद्र होते हैं। आप्तपरम्परामें इसका भक्षण निषिद्ध माना जाता है।

२-अश्मन्तक—तृणविशेष 'अम्लकुचाई' लोकभाषा। पर्याय 'अम्लोटक' (रत्नमाला) इसके गुण राजनिर्घण्टमे वर्णित हैं। (शब्दकल्पद्रुम)

३-'शुक्त' उसे कहते हैं जो स्वभावत मधुर हो तथा कालवश (समयानुसार) खट्टी हो जाय। जैसे काँजी (प्रायश्चित्तविवेक)। मनुस्मृति (२। १७७)-के अनुसार भी जो स्वभावत मधुर हो, पर समयवश जल आदिमे रखनेसे अम्ल (खट्टी)-हो जाय वह शुक्त है। किंतु शुक्तके रूपमें दही और दहीसे बननेवाले मट्ठा आदि पदार्थ भक्ष्य हैं।

४-शेलु—श्लेष्मातक (लोकभाषा—लिसोढा) अमरकोश।

५-पेयूष—नवप्रसूता गौका अग्निसयोगसे कठिन किया गया दूध (फेनुप इन्नर लोकभाषाम) यह भैंस-बकरीका भी निषिद्ध है।

६-सुमुख—शाकविशेष। इसका पर्याय—वनवर्व्वरिका वर्व्वर है। (राजनिर्घण्ट) (शब्दकल्पद्रुम)।

७-(क) मूलमे 'पर्यायान्न' शब्द है। इसका अर्थ याज्ञ० स्मृ० आचा० १६८ वे श्लोकको मिताक्षरा व्याख्याके अनुसार वह अन्न है

मनुष्योंद्वारा सूँघे गये तथा कुष्ठ रोगीसे स्पर्श किये गये अन्नका परित्याग करना चाहिये। रजस्वलासे प्राप्त, क्रोधयुक्त व्यभिचारिणी स्त्रीद्वारा दिया गया और मलिन वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्तिके द्वारा (दिये अन्नका) और दूसरेके वस्त्रका परित्याग करना चाहिये। मनुने बताया है कि बछडे-रहित गौ, ऊँटनी और दस दिनोंके भीतर ब्यायी हुई (गौ इत्यादि)-का दूध तथा भेडी एवं गर्भिणी गौका दूध पीने योग्य नहीं है॥ २५—३०॥

बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा।
कुररं च चकोरं च जालपादं च कोकिलम्॥ ३१॥
वायसं खञ्जरीटं च श्येनं गृध्रं तथैव च।
उलूकं चक्रवाकं च भासं पारावतानपि।
कपोतं टिट्टिभं चैव ग्रामकुक्कुटमेव च॥ ३२॥
सिंहव्याघ्रं च मार्जारं श्वानं शूकरमेव च।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभं च न भक्षयेत्॥ ३३॥
न भक्षयेत् सर्वमृगान् पक्षिणोऽन्यान् वनेचरान्।
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥ ३४॥
गोधा कूर्मः शशः श्वाविच्छल्यकश्चेति सत्तमाः।
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३५॥
मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥ ३६॥
मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम्।
वाध्रीणसं वकं भक्ष्यं मीनहंसपराजिताः॥ ३७॥
शफरं सिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ।
मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणाय द्विजोत्तमाः॥ ३८॥
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया।
यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये॥ ३९॥
भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते।
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्॥ ४०॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत्॥ ४१॥
अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ ४२॥
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः॥ ४३॥
भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः।
नाधिकारी भवेत् तावद् यावद् तन्न जहात्यधः॥ ४४॥
तस्मात् परिहरन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।
अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम्॥ ४५॥

द्विजोंके लिये मद्य न दान देने योग्य है, न पीने योग्य है, न स्पर्श करने योग्य है और न ही देखने योग्य है—ऐसी हमेशाके लिये मर्यादा बनी है। इसलिये सब प्रकारसे मद्यका नित्य ही परित्याग करना चाहिये। मद्य पानसे द्विज कर्मोंसे पतित और बातचीत करनेके अयोग्य हो जाता है। अभक्ष्यका भक्षण करने और अपेय पदार्थोंका पान करनेसे द्विज तबतक अपने कर्मका अधिकारी नहीं होता, जबतक उसका पाप दूर नहीं हो जाता। इसलिये प्रयत्नपूर्वक नित्य ही विप्र (द्विज)-को अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। यदि द्विज ऐसा करता है अर्थात् इन्हें ग्रहण करता है तो उसे रौरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४४—४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥

जो अन्यस्वामिक है और अन्यको दिया जाय। जैसे ब्राह्मणस्वामिक अन्नको शूद्र दे, शूद्रस्वामिक अन्नको ब्राह्मण दे। ऐसा अन्न ग्रहण करनेपर चान्द्रायणव्रत प्रायश्चित्त है।

(ख) एक दूसरे मतके अनुसार एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवालोंमें किसी एकके उठकर आचमन कर लेनेके उपरान्त सभी भोजन करनेवालोंके अन्नको 'पर्यायान्न' कहा जाता है।

अठारहवाँ अध्याय

गृहस्थके नित्य-कर्मोंका वर्णन, प्रातःस्नानकी महिमा, छः प्रकारके स्नान, सन्ध्योपासनकी महिमा तथा सन्ध्योपासनविधि, सूर्योपस्थानका माहात्म्य, सूर्यहृदयस्तोत्र, अग्निहोत्रकी विधि, तर्पणकी विधि, नित्य किये जानेवाले पञ्चमहायज्ञोंकी महिमा तथा उनका विधान

ऋषय ऊचुः

अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने।
तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात्॥ १॥

ऋषियोंने कहा—महामुने! आप द्विजोंके प्रतिदिन किये जानेवाले उन कर्मोंका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करें, जिनका अनुष्ठान करनेसे बन्धनसे मुक्ति प्राप्त होती है॥ १॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं गदतो मम।
अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां क्रमाद् विधिम्॥ २॥
ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थं च चिन्तयेत्।
कायक्लेशं तदुद्भूतं ध्यायीत मनसेश्वरम्॥ ३॥
उषःकालेऽथ सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि॥ ४॥
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत्॥ ५॥

व्यासजी बोले—मैं बतला रहा हूँ। आप लोग ध्यानपूर्वक मेरे द्वारा कहे जा रहे ब्राह्मणोंके प्रतिदिन किये जानेवाले कर्मोंको और उनके विधानको सुनें[1]। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म और अर्थ एवं (उनकी सम्पन्नताके लिये) अपेक्षित शारीरिक आयास (क्या कब कैसे करना है आदि)-का चिन्तन करे तथा मनसे ईश्वरका ध्यान करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि ऊषाकाल होनेपर आवश्यक कर्मोंको करके विधिपूर्वक शौच आदिसे निवृत्त होकर शुद्ध जलवाली नदियोंमें स्नान करे। प्रातःस्नान करनेसे पाप करनेवाले व्यक्ति भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे प्रातःकाल स्नान करना चाहिये॥ २—५॥

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं शुभम्।
ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातःस्नानान्न संशयः॥ ६॥
मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि।
ततो नैवाचरेत् कर्म अकृत्वा स्नानमादितः॥ ७॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः॥ ८॥
न च स्नानं विना पुंसां पावनं कर्म सुस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत्॥ ९॥
अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते।
आर्द्रेण वाससा वाथ मार्जनं कापिलं स्मृतम्॥ १०॥

दृष्ट और अदृष्ट फल देनेवाले प्रातःकालीन शुभ स्नानकी सभी प्रशंसा करते हैं। नित्य प्रातःकाल स्नान करनेसे ही ऋषियोंका ऋषित्व है, इसमें संशय नहीं, क्योंकि सोये व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार बहती रहती है, अतः सर्वप्रथम स्नान किये बिना कोई कर्म नहीं करना चाहिये। प्रातः-स्नानसे अलक्ष्मी, कालकर्णी[2] (अलक्ष्मीविशेष) दुःस्वप्न, बुरे विचार और अन्य पाप दूर हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। बिना स्नानके मनुष्योंको पवित्र करनेवाला कोई कर्म नहीं बतलाया गया है। अतः होम तथा जपके समय विशेष-रूपसे स्नान करना चाहिये। असमर्थताकी स्थितिमें सिरको छोडकर स्नान करनेका विधान किया गया है। अथवा भीगे वस्त्रसे शरीरका मार्जन करना चाहिये इसे कपिलस्नान कहा गया है॥ ६—१०॥

असामर्थ्ये समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत्।
ब्राह्मादीनि यथाशक्तो स्नानान्याहुर्मनीषिणः॥ ११॥
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च।

१-इस अध्यायमें गृहस्थके प्रायः सभी अनुष्ठानोंका वर्णन है पर क्रमसे नहीं है। क्रमका ज्ञान गृह्यसूत्र आह्निकसूत्रावली नित्यकर्मविधि आदि ग्रन्थोंसे करना चाहिये। इस अध्यायका उद्देश्य सभी कर्मोंका परिचय कराना है। कर्मोंका क्रम बताना उद्देश्य नहीं है।

२-कालकर्णी—अलक्ष्मी (शब्दकल्पद्रुम)

वारुणं यौगिकं तद्वत् षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्॥ १२॥
ब्राह्मं तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूलनम्॥ १३॥
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते॥ १४॥
वारुणं चावगाहस्तु मानसं त्वात्मवेदनम्।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगो विष्णुविचिन्तनम्॥ १५॥

सामर्थ्य न रहनेपर यही (कपिल) स्नान करना चाहिये। मनीषियोंने यथाशक्ति किये जानेवाले ब्राह्म आदि स्नानोंको बतलाया है। ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण तथा यौगिक—ये छः स्नान कहे गये हैं। कुशोंके द्वारा जलबिन्दुओंसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक मार्जन करना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। मस्तकसे पैरोंतक समस्त देहमें भस्मका उपलेपन करना आग्नेय-स्नान है। गायोंकी धूलसे सम्पन्न उत्तम स्नानको वायव्य-स्नान कहा गया है। धूपमें वर्षाके जलसे जो स्नान किया जाता है, वह दिव्य-स्नान कहलाता है। (जलमें) डुबकी लगाकर किया गया स्नान वारुण-स्नान और मनसे आत्मतत्त्वका चिन्तन करना यौगिक-स्नान कहा गया है। विष्णुका चिन्तन ही योग है॥ ११—१५॥

आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः।
मनःशुचिकरं पुंसां नित्यं तत् स्नानमाचरेत्॥ १६॥
शक्तश्चेद् वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तथैव च।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः॥ १७॥

ब्रह्मवादियोंसे सेवित इस (यौगिक) स्नानको आत्मतीर्थ कहा गया है। यह मनुष्योंके मनको पवित्र बनानेवाला है। इसलिये यह स्नान नित्य करना चाहिये। समर्थ होनेपर विद्वान्‌को वारुण तथा प्राजापत्य (ब्राह्म)-स्नान करना चाहिये। दन्तकाष्ठको धोकर विधिपूर्वक उसका भक्षण (चर्वण) करना चाहिये। १६-१७॥

आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम्॥ १८॥
सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात् तदग्रेण तु धावयेत्।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्।
अपामार्गं च बिल्वं च करवीरं विशेषतः॥ १९॥
वर्जयित्वा निन्दितानि गृहीत्वैकं यथोदितम्।
परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद् वै विधानवित्॥ २०॥
नोत्पाटयेद् दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्या धावयेत् क्वचित्।
प्रक्षाल्य भङ्क्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥ २१॥

(दतुअन करके) आचमनकर (मुख-प्रक्षालनकर) प्रयत्नपूर्वक नित्य प्रातःस्नान करना चाहिये। मध्यमा अंगुलिके समान मोटा और बारह अंगुलके बराबर लंबा छिलके-युक्त दन्तकाष्ठके अग्रभागसे मुखशुद्धि करनी चाहिये। विशेषरूपसे दूधवाले वृक्ष, मालती (चमेली), अपामार्ग, बिल्व तथा करवीर (कनेर)-की लकड़ीका दन्तकाष्ठ शुभ होता है। विधिके ज्ञाताको चाहिये कि दोषपूर्ण (निषिद्ध) दिनको छोड़कर तथा निन्दित काष्ठोंको छोड़कर बताये गये दन्तकाष्ठोंमेंसे किसी एकको ग्रहणकर दन्तधावन करना चाहिये। दन्तकाष्ठको उखाड़ना नहीं चाहिये (अर्थात् किसी छोटे पौधेको पूरा उखाड़कर उससे दन्तधावन नहीं करना चाहिये) और न कभी अँगुलीसे दतुअन करना चाहिये। (मुख) धोनेके उपरान्त उसे (दन्तकाष्ठको) तोड़कर सावधानीसे किसी पवित्र स्थानमें (यथास्थान) त्याग देना चाहिये॥ १८—२१॥

स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आचम्य मन्त्रवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः॥ २२॥
सम्मार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आपो हि ष्ठा व्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥ २३॥
ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद् भास्करं प्रति तन्मनाः॥ २४॥
प्राक्कूलेषु समासीनो दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत् संध्यामिति श्रुतिः॥ २५॥

अनन्तर पवित्र देशमें स्नान करके आचमनपूर्वक देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको यथाधिकार मन्त्रपूर्वक यथाविधि तृप्त करना चाहिये। तदनन्तर पुनः आचमन करे और संयतवाणीवाला होकर 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्र, व्याहृतियों, गायत्रीमन्त्र तथा वरुण-सम्बन्धी शुभ मन्त्रोंका पाठ करते हुए जलबिन्दुओंसे युक्त कुशोंके द्वारा अपना मार्जन करे। ओंकार एवं व्याहृतियोंसे युक्त वेदमाता गायत्री (मन्त्र)-का जप करके तन्मय होकर सूर्यको जलाञ्जलि देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्वकी ओर खिंचे हुए कुशासनपर

सावधानीपूर्वक बेठकर तीन प्राणायाम करक सध्याका ध्यान करना चाहिये। ऐसा श्रुतिका विधान है॥ २२—२५॥

या सध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी तु पराशक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा॥ २६॥
ध्यात्वार्कमण्डलगता सावित्रीं वै जपन् बुध।
प्राङ्मुख सतत विप्र सध्योपासनमाचरेत्॥ २७॥
सध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुत किञ्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात्॥ २८॥
अनन्यचेतस शान्ता ब्राह्मणा वदपारगा।
उपास्य विधिवत् सध्या प्राप्ता पूर्वं परा गतिम्॥ २९॥
योऽन्यत्र कुरुते यत्न धर्मकार्ये द्विजात्तम।
विहाय सध्याप्रणति स याति नरकायुतम्॥ ३०॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सध्योपासनमाचरत्।
उपासितो भवेत् तेन देवा योगतनु पर॥ ३१॥

जा सध्या है वही जगत्को उत्पन्न करनवाली है, मायातीत है, निष्कल हे और तीन तत्त्वासे उत्पन्न हानेवाली इश्वरकी पराशक्ति हे। विद्वान् ब्राह्मण (द्विज)-को पूर्वाभिमुख हाकर सूर्यमण्डलम प्रतिष्ठित सावित्री (गायत्री-मन्त्र)-का ध्यानपूर्वक जप करत हुए सध्योपासना करनी चाहिये। सध्यासे हीन व्यक्ति (द्विज) नित्य अपवित्र और सभी कर्मोको करनक लिये अयाग्य हाता ह। वह जो भी कार्य करता है, उसका उस कोई फल प्राप्त नहीं होता। पूर्वकालम वदके पारगत शान्त ब्राह्मणान अनन्य-मनमे सध्यापामना करके परम गतिको प्राप्त किया था। जा द्विजात्तम सध्यावन्दनका छाडकर दूसर धार्मिक कार्योके लिये प्रयत्न करता ह वह सहस्रा नरकोम जाता है। इसलिये सभी प्रयत्नासे सध्यापासना करनी चाहिय। उस उपासनासे यागविग्रह परमदवकी उपासना हो जाती है॥ २६—३१॥

सहस्रपरमा नित्य शतमध्या दशावराम्।
सावित्रीं वै जपद् विद्वान् प्राङ्मुख प्रयत स्थित॥ ३२॥
अथापतिष्ठेदादित्यमुदयन्त ममाहित।
मन्त्रैस्तु विविधे सौरैर्ऋग्यजु सामसम्भवे॥ ३३॥
उपस्थाय महायोग देवदेव दिवाकरम्।
कुर्वीत प्रणति भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रत॥ ३४॥

विद्वान् व्यक्तिको नित्य पूर्वाभिमुख होकर सावित्री (मन्त्र)-का सावधानीपूर्वक जप करना चाहिये। हजार बारका जप उत्कृष्ट, सो बार किया गया जप मध्यम तथा दस बारका जप निम्नकाटिका हाता हे। इसके बाद खडे हाकर ध्यान लगाकर उदित होते हुए सूर्यकी ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदम वर्णित सूर्य-सम्बन्धी विविध मन्त्राद्वारा उपासना करनी चाहिये। महायागरूप देवाधिदेव दिवाकरका उपस्थान करके उसी मन्त्रद्वारा भूमिपर मस्तक झुकाकर प्रणाम करना चाहिय ओर निम्नलिखित मन्त्रास प्रार्थना करनी चाहिय—॥ ३२—३४॥

आ खखाल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मान नमस्ते ज्ञानरूपिणे।
नमस्ते घृणिने तुभ्य सूर्याय ब्रह्मरूपिणे॥ ३५॥
त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्याती रसोऽमृतम्।
भूर्भुव स्वस्त्वमाङ्कार सर्वे रुद्रा सनातना।
पुरुष सन्महोऽतस्त्वा प्रणमामि कपर्दिनम्॥ ३६॥
त्वमेव विश्व बहुधा सदसत् सूयते च यत्।
नमा रुद्राय सूर्याय त्वामह शरण गत॥ ३७॥
प्रचतसे नमस्तुभ्य नमा मीढुष्टमाय ते।
नमो नमस्त रुद्राय त्वामह शरण गत॥ ३८॥
हिरण्यबाहव तुभ्य हिरण्यपतये नम।
अम्बिकापतय तुभ्यमुमाया पतय नम॥ ३९॥
नमाऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्य पिनाकिने।
विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय त नम॥ ४०॥

म आकाररूप शान्त कारणत्रयक[1] हेतुरूप खखाल्क[2] (सूर्य)-के प्रति अपनका समर्पित करता हूँ। ज्ञानरूपी आप (सूय)-का नमस्कार ह। ब्रह्मरूपी घृणि[3] सूर्य! आपका नमस्कार ह। आप हा परम ब्रह्म अप्, ज्याति रस आर

१- यहाँ कारणत्रयसे मन बुद्धि एव अहकार विवक्षित ह। इन तीनाका क्रियाशील बनानेमे सूर्य एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं।

२- खखाल्क—ख (आकाश) ख (इन्द्रिया)-मे क्रमश सूर्य तथा आत्मारूपसे जो उल्काके समान बाहर-भीतर प्रकाशक-रूपमे विद्यमान हैं वे खखाल्क हे। काशीखण्ड ५० वे अध्यायमे खखाल्क नामके सूर्यका वर्णन ह। ये काशीमे स्थित हैं।

३-घृणि—सूर्यका नाम है—जिघर्ति दीप्यते इति घृणि दीप्तिशाली।

अमृतस्वरूप ह। आप ही भू , भुव स्व आकार तथा समस्त सनातन रुद्र हैं। आप सत्स्वरूप और महान् पुरुष हैं। आप कपर्दीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप ही अनेक रूपवाले सत्-असत्रूप समस्त विश्वका उत्पन्न करते हैं। सूर्यरूप रुद्रका नमस्कार है। मैं आपकी शरणमे आया हूँ। आप प्रचेताको नमस्कार है। मीढुष्टम[१]। आपको नमस्कार है। रुद्रके लिये बार-बार नमस्कार है। मैं आपकी शरणमे आया हूँ। आप हिरण्यबाहु तथा हिरण्यपतिको नमस्कार है। अम्बिकाके पति तथा उमाके पति आपको नमस्कार है। नीलग्रीवको नमस्कार है तथा आप पिनाकीको नमस्कार है। विलोहित भर्ग तथा सहस्राक्ष। आपको नमस्कार है॥ ३५—४०॥

नमो हंसाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते।
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमोऽस्तु ते॥ ४१॥
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम्।
हिरण्मयं गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम्॥ ४२॥
नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परां गतिम्।
विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्॥ ४३॥
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने।
उग्राय सर्वभक्ताय त्वां प्रपद्ये सदैव हि॥ ४४॥

आप हंसको नित्य नमस्कार है। आदित्य ! आपको नमस्कार है। वज्रहस्त तथा त्र्यम्बक। आपको नमस्कार है। मैं आप विरूपाक्ष महान् परमेश्वरकी शरणमें हूँ। सभी देहधारियोंके हिरण्मय गृहमें (हृदयमें) आप अपनेको गुह्यरूपसे प्रतिष्ठित किये हैं। परम ज्योतिरूप परमगति विश्वरूप पशुपति भीम तथा अर्धनारीश्वररूपवाले आप ब्रह्माको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रकाशमान सूर्यरूप परमेष्ठी रुद्रको नमस्कार है। उग्र तथा सभीके भजनीय[२] आपकी मैं सदा ही शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४१—४४॥

एतद् वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम्।
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद् दिवाकरम्॥ ४५॥

इस सूर्यहृदय (नामक) उत्तम स्तोत्रका प्रातःकाल तथा मध्याह्नकालमें जपकर दिवाकरको नमस्कार करना चाहिये॥ ४५॥

इदं पुत्राय शिष्याय धार्मिकाय द्विजातये।
प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्॥ ४६॥
सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम्।
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्॥ ४७॥

ब्रह्माके द्वारा प्रदर्शित, सभी पापोंका शमन करनेवाले, वेदोंके सारसे प्रकट हुए, ब्राह्मणोंके हितकारी पवित्र और ऋषिसमूहोंद्वारा सेवित इस सूर्यहृदय (स्तोत्र)-का द्विजाति-कुलोत्पन्न धार्मिक पुत्र एवं शिष्यके लिये उपदेश करना चाहिये॥ ४६-४७॥

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥ ४८॥
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयुर्वा यथाविधि॥ ४९॥
पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरोत्तरः।
अनन्यमानसो वह्निं जुहुयात् संयतेन्द्रियः॥ ५०॥

तदनन्तर घर आकर ब्राह्मण (द्विज)-को विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि प्रज्वलित कर यथाविधि अग्निमें हवन (अग्निहोत्र) करना चाहिये। (अग्न्याधान करनेवाला यजमान द्विजाति यदि किसी अपरिहार्य कारणवश स्वयं अग्निहोत्र नहीं कर सकता है तो उसके प्रतिनिधि-रूपमें) ऋत्विक्का पुत्र (यज्ञोपवीत-संस्कार-सम्पन्न पुत्र), पत्नी, शिष्य (यज्ञोपवीती) अथवा (यज्ञोपवीती) सहोदर भाई भी विशेषरूपसे आज्ञा प्राप्तकर विधिपूर्वक हवन (अग्निहोत्र) कर सकता है। हाथमें पवित्री धारणकर, पवित्रात्मा होकर, शुक्लवर्णका वस्त्र एवं उत्तरीय वस्त्र धारणकर एकाग्रमनसे इन्द्रियोंको संयमित करते हुए अग्निमें हवन करे॥ ४८—५०॥

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्भवेत् सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्॥ ५१॥

बिना कुशके और बिना यज्ञोपवीतके जो भी कर्म किया जाता है वह सब राक्षसी कर्म होता है वह न इस लोकमें फल देता है और न परलोकमें॥ ५१॥

---

१. मीढुष्टम—शिवका नाम है (श्रीमद्भागवत स्कन्ध ४ अ० ६)। सूर्यमें सभी देवताओंकी भावना एवं उपासनाका विधान होनेसे सूर्यको मीढुष्टम कहा गया है। रुद्र आग्निक रूपमें सूर्यके उल्लेखका भी यही कारण है।

२. सर्वे भक्ता यस्य सः' बहुव्रीहि समास हुआ है। इससे अभिप्राय यह निकलता है कि रुद्र सबके लिये भजनीय हैं।

दैवतानि नमस्कुर्याद् देयसारान्निवेदयेत्।
दद्यात् पुष्पादिक तेषा वृद्धाश्चैवाभिवादयेत्॥५२॥
गुरु चैवाप्युपासीत हित चास्य समाचरेत्।
वेदाभ्यास तत कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विज ॥५३॥
जपेदध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत्।
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम ।
वैदिकाश्चैव निगमान् वेदाङ्गानि विशेषत ॥५४॥

देवताओको नमस्कार करना चाहिये। उन्हे प्रदान की जानेवाली (शास्त्रविहित) वस्तुआम उत्तमोत्तम वस्तुओको ही निवेदित करना चाहिये। उन्हे (देवताओको) पुष्प आदि (पदार्थ) समर्पित करना चाहिये और वृद्धजनाका अभिवादन करना चाहिये। गुरुकी भी उपासना करनी चाहिये, उनका हित करना चाहिये। तदनन्तर द्विजको यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक वेदोका अभ्यास करना चाहिये। द्विजोत्तमको जप करना चाहिये। शिष्योको पढाना चाहिये। (पढे विषयोको) धारण करना चाहिये और (उसपर) विचार करना चाहिय। शास्त्राका अवलोकन तथा धर्मका—विशेषरूपसे वैदिक तथा वेदसम्मत शास्त्रा और वेदाङ्गाका चिन्तन करना चाहिये॥ ५२-५४॥

उपेयादीश्वर चाथ योगक्षेमप्रसिद्धये।
साधयेद् विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे ततो द्विज ॥५५॥

अनन्तर योग (अप्राप्तकी प्राप्ति), क्षेम (प्राप्तकी रक्षा)-के लिये ईश्वर (धार्मिक राजा अथवा श्रीमान्)-के समीप जाना चाहिये और द्विजको कुटुम्बक भरण-पोषणके लिये विविध प्रकारकी सम्पत्तियाका (न्यायपूर्वक) साधन (चिन्तन, अर्जन) करना चाहिये॥ ५५॥

ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत्।
पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोमय शुद्धमेव च॥५६॥
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च।
स्नान समाचरेन्नित्य गर्तप्रस्रवणेषु च॥५७॥
परकीयनिपानेषु न स्नायाद् वै कदाचन।
पञ्चपिण्डान् समुद्धृत्य स्नायाद् वासम्भवे पुन ॥५८॥
मृदैकया शिर क्षाल्य द्वाभ्या नाभेस्तथापरि।
अधश्च तिसृभि काय पादौ षड्भिस्तथैव च॥५९॥
मृत्तिका च समुद्दिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रिका।
गोमयस्य प्रमाण तत् तेनाङ्ग लेपयेत् तत ॥६०॥

तदनन्तर मध्याह्न-समयमे स्नानके लिये मिट्टी, पुष्प, अक्षत, कुश, तिल तथा शुद्ध गोबर लाना चाहिये। नदिया (पुराण आदिमे प्रसिद्ध देव, ऋषिनिर्मित), अगाध जलवाले कुण्डो, (जलाशया), सरोवरो, झरनो तथा बावलियामे नित्य स्नान करना चाहिये। दूसराके तालाब आदिमे कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये। (अन्यत्र स्नान) असम्भव होनेपर (तालाब आदिमेसे) मिट्टीके पाँच पिण्डोको निकालकर स्नान करना चाहिये। मिट्टीसे एक बार सिर धोकर दो बार नाभिके ऊपर (क अङ्गोको) धोना चाहिये। नीचेका शरीर तीन बार तथा छ बार पाँवाको धोना चाहिये। आँवलेके बराबर गीली मिट्टी लेनेका विधान है। गोबरका भी इतना ही प्रमाण है। उससे अङ्गोका लेपन करे॥ ५६—६०॥

लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रत ।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् तत स्नायात् समाहित ॥६१॥

(नदी आदिके) किनारे बैठकर तल्लिङ्गक[१] मन्त्राके द्वारा (अङ्गाम मृत्तिका आदिका यथाविधि) लेपकर विधिपूर्वक प्रक्षालन एव आचमन करके सावधानीपूर्वक स्नान करना चाहिये॥ ६१॥

अभिमन्त्र्य जल मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणै शुभै ।
भावपूतस्तदव्यक्त ध्यायन् वै विष्णुमव्ययम्॥६२॥
आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायन पुन ।
तस्मान्नारायण देव स्नानकाले स्मरेद् बुध ॥६३॥
प्राच्य सोंकारमादित्य त्रिर्निमज्जेज्जलाशये।
आचान्त पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥६४॥
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वतोमुख ।
त्व यज्ञस्त्व वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥६५॥

तल्लिङ्गक शुभ वरुण-सम्बन्धी मन्त्राक द्वारा जलका अभिमन्त्रणकर पवित्र भावसे उन अव्यक्त अविनाशी विष्णुका ध्यान करे। 'अप्'की उत्पत्ति नारायणसे ही हुई है, पुन वही

१-स्मार्तकर्मोंमे वे मन्त्र गृह्यसूत्रानुसार विनियुक्त होते हैं जिनमे स्मार्तकर्म-वाचक शब्द श्रुत हो। यह आवश्यक नहीं होता कि उन मन्त्रोंमें स्मार्तकर्मका प्रतिपादन हो। इसलिये स्मार्तकर्मक मन्त्र स्मार्तकर्मविषयक नहीं किंतु स्मार्तकर्मलिङ्गक होते हैं। 'अक्षन्नमी० मन्त्रमें अक्षत शब्द कथञ्चित् श्रुत होनसे उसका अक्षत चढानेमे विनियोग होता है वह 'अक्षत' चढाने-रूप कर्मका प्रतिपादक नहीं है अतएव अक्षत -विषयक नहीं है। मात्र अक्षतलिङ्गक है।

जल उन (नारायण)-का अयन (निवास) हुआ, अत स्नानके समय विद्वान्‌को चाहिये कि वह नारायणदेवका स्मरण करे। आकारके साथ आदित्यका उच्चारण करके जलके भीतर तीन बार डुबकी लगानी चाहिये। आचमन किये रहनेपर भी मन्त्रवेत्ताको पुन इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये।—अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वतोमुख । त्व यज्ञस्त्व वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥ अर्थात् (हे भगवन्!) सभी ओर मुखवाले आप सभी प्राणियोके भीतर (हृदयरूपी) गुहामे विचरण करते हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही वषट्कार, अप्, ज्योति, रस तथा अमृतरूप हैं॥ ६१-६५॥

द्रुपदा वा त्रिरभ्यसेद् व्याहृतिप्रणवान्विताम्।
सावित्रीं वा जपेद् विद्वान् तथा चैवाघमर्षणम्॥ ६६॥
तत सम्मार्जन कुर्यादापो हि ष्ठा मयोभुव ।
इदमाप प्र वहत व्याहृतिभिस्तथैव च॥ ६७॥
ततोऽभिमन्त्र्य तत् तीर्थमापो हि ष्ठादिमन्त्रकै ।
अन्तर्जलगतो मग्नो जपत् त्रिरघमर्षणम्॥ ६८॥
त्रिपदा वाथ सावित्रीं तद्विष्णो परम पदम्।
आवर्तयेद् वा प्रणव देव वा सस्मरेद्धरिम्॥ ६९॥

अथवा विद्वान् व्यक्तिको तीन बार द्रुपदा (दो चरणवाली) या व्याहृति अथवा प्रणवसे युक्त गायत्री और अघमर्षण मन्त्रका जप करना चाहिये। तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा मयोभुव ०'[1] 'इदमाप प्र वहत०'[2] इन मन्त्रो और व्याहृतियोद्वारा मार्जन करना चाहिये। तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रासे उस जल (स्नानीय नदी आदिके जल)-का अभिमन्त्रण करके जलके भीतर डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण-मन्त्रका जप करना चाहिये। अथवा त्रिपदा गायत्री मन्त्र 'तद्विष्णो परम पदम्०[3]' इस मन्त्र या प्रणवका जप करे। अथवा भगवान् विष्णुका स्मरण करे॥ ६६-६९॥

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठित ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापै प्रमुच्यते॥ ७०॥
अप पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत् तोय मुच्यते सर्वपातकै ॥ ७१॥
यथाश्वमेध क्रतुराट् सर्वपापापनोदन ।
तथाघमर्षण सूक्त सर्वपापापनोदनम्॥ ७२॥

यजुर्वेदम 'द्रुपदादिव०'[4] इस प्रकारसे जो मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसका जलके भीतर तीन बार जप करनेसे सभी पापासे मुक्ति हो जाती है। मार्जन करनेके बाद हाथमे जल लेकर मन्त्र (द्रुपदादिव०) जपपूर्वक उस जलको सिरपर रखनेसे (अघमर्षण करनेसे) सम्पूर्ण पापासे मुक्ति हो जाती है। जिस प्रकार अश्वमेध-यज्ञ समस्त यज्ञाके राजाके समान है और समस्त पापाका दूर करनेवाला है, उसी प्रकार अघमर्षणसूक्त[5] भी (सभी सूक्ताका सम्राट् और) सभी पापाको दूर करनेवाला है॥ ७०—७२॥

अथोपतिष्ठेदादित्य मूर्ध्नि पुष्पान्विताञ्जलिम्।
प्रक्षिप्यालोकयद् देवमुद्वय तमसस्परि॥ ७३॥
उदु त्य चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रत ।
हस शुचिषदतेन सावित्र्या च विशेषत ॥ ७४॥
अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रै सौरै पापप्रणाशनै ।
सावित्रीं वै जपत् पश्चाज्जपयज्ञ स वै स्मृत ॥ ७५॥

इसक बाद सूर्योपस्थान करना चाहिये। (इसकी प्रक्रिया यह है—) पुष्पयुक्त अञ्जलि मस्तकसे लगाकर उस फूलको ऊपर (सूर्य)-की ओर उछालकर उन सूर्यका दर्शन करत हुए 'उद्वय तमसस्परि[6]०' 'चित्र०[7]', 'उदु त्य०',[8] 'तच्चक्षु ०[9]', 'हस शुचिषद्'[10] एव विशेष-

१-आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ (यजु० ११। ५०)
२-इदमाप प्र वहतावद्य च मल च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृत यच्च शपे अभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनस पवमानश्च मुञ्चतु। (यजु० ६। १७)
३-तद्विष्णो परम पद स्सदा पश्यन्ति सूरय । दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६। ५)
४-द्रुपदादिव मुमुचान स्विन्न स्नातो मलादिव। पूत पवित्रेणवाज्यमाप शुन्धन्तु मैनस ॥ (यजु० २०। २०)
५-ऋत च सत्य चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत तत समुद्रो अर्णव । मथो स्व ॥ (ऋग्वेद १०। १९०। १—३)
६-उद्वय तमसस्परि स्व पश्यन्त उत्तरम्। देव देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (यजु० २०। २१)
७-उदु त्य जातवेदस देव वहन्ति केतव । दृशे विश्वाय सूर्य स्वाहा॥ (यजु० ७। ४१)
८-चित्र देवानामुदगादनीक चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने ।आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ (यजु० ७। ४२)
९-तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत शृणुयाम।
शरद शत प्रब्रवाम शरद शतमदीना स्याम शरद शत भूयश्च शरद शतात्॥ (यजु० ३६। २४)
१०-हस शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋत बृहत्॥ (यजु० १०। २४)

रूपसे सावित्री-मन्त्र और सूर्य-सम्बन्धी अन्य भी पापको नष्ट करनेवाले वैदिक मन्त्रोके जपके द्वारा सूर्यको प्रसन्न किया जाय, यही सूर्योपस्थान है। इसके अनन्तर गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। इस (गायत्रीजपको) ही जपयज्ञ कहा गया है॥ ७३-७५॥

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च।
शतरुद्रीयमथर्वशिर सौराश्च शक्तित ॥७६॥
प्राक्कूलेषु समासीन कुशेषु प्राङ्मुख शुचि ।
तिष्ठश्चेदीक्षमाणोऽर्कं जप्य कुर्यात् समाहित ॥७७॥
स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षै पुत्रजीवसमुद्भवै ।
कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता॥७८॥

पूर्वाग्र कुशोपर पूर्वाभिमुख पवित्र होकर बैठना चाहिये और सूर्यका दर्शन करते हुए समाहित-चित्त होकर विविध पवित्र मन्त्रो, गुह्यविद्याओ, शतरुद्रिय, अथर्वशिरस् एव सूर्यदेवताके मन्त्रोका जप करना चाहिये। स्फटिक, इन्द्राक्ष (इन्द्र वृक्ष-विशेषके फलकी माला) रुद्राक्ष तथा पुत्रजीवकी (वृक्ष-विशेषके फलकी माला[१]) अक्षमाला बनानी चाहिये। इनमे पूर्वसे बादवाली माला क्रमश उत्तम कही गयी है॥७६-७८॥

जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद् बुध ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवा दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥७९॥
गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभ यत ।
एकान्ते सुशुभे देशे तस्माज्जप्य समाचरेत्॥८०॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह जप करते समय बोले नहीं, दूसरे लोगोकी ओर न देखे। सिर और गरदनको न हिलाये और न ही दाँतोको दिखलाये, क्योकि (ऐसा करनेसे) गुह्यक, राक्षस तथा सिद्ध उस जपके फलका बलात् हरण कर लेते हैं, अत किसी एकान्त अत्यन्त शुभ स्थानमे जप करना चाहिये॥ ७९-८०॥

चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत्।
तैरेव भाषण कृत्वा स्नात्वा चैव जपेत् पुन ॥८१॥
आचम्य प्रयतो नित्य जपेदशुचिदर्शने।
सौरान् मन्त्रान् शक्तितो वै पावमानीस्तु कामत ॥८२॥
यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत्।
अन्यथा तु शुचौ भूम्या दर्भेषु सुसमाहित ॥८३॥

चाण्डाल, आशौच-युक्त व्यक्ति तथा पतितको देखनेपर आचमन करके पुन जप करना चाहिये। इनके साथ बात करनेपर स्नान करनेके बाद ही पुन जप करना चाहिये। अपवित्र पदार्थके दिख जानेपर आचमन करके प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति नित्य सूर्यसम्बन्धी मन्त्रो और पावमानी मन्त्रोका इच्छानुसार (मनस्तुष्टिपर्यन्त) जप करना चाहिये। यदि भीगे वस्त्र पहने हो तो जलके मध्य स्थित होकर जप करना चाहिये। अन्यथा पवित्र भूमिमे कुशासनके ऊपर बैठकर एकाग्रतापूर्वक जप करना चाहिये॥ ८१-८३॥

प्रदक्षिण समावृत्य नमस्कृत्वा तत क्षितौ।
आचम्य च यथाशास्त्र शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥८४॥
तत सतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणास्तथा।
आदावोकारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि व ॥८५॥

(जप पूरा करनेके बाद) प्रदक्षिणा करके पृथ्वीपर नमस्कार करके और आचमन करके शास्त्रानुसार यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिये, तदनन्तर देवताओ, ऋषियो तथा पितरोका तर्पण करना चाहिये। प्रारम्भमे ओकारका उच्चारण कर और अन्तमें 'नम ' लगाकर 'आपका तर्पण करता हूँ' (व तर्पयामि)—ऐसा कहना चाहिये॥ ८४-८५॥

देवान् ब्रह्मऋर्षींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकै ।
तिलोदकै पितृन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानत ॥८६॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
देवर्षीस्तर्पयेद् धीमानुदकाञ्जलिभि पितृन्॥८७॥
यज्ञोपवीती देवाना निवीती ऋषितर्पणे।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावत ॥८८॥

देवताओ तथा ब्रह्मर्षियोका तर्पण अक्षत और जलसे करना चाहिये और अपने गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार पितरोका तर्पण तिल और जलसे भक्तिपूर्वक करना चाहिये। बुद्धिमान् (आस्तिक अधिकारी व्यक्ति)-को सव्य (बाँयें) हाथसे अन्वारब्ध (सम्बद्ध) दाहिने हाथसे अर्थात् दोनों हाथोकी अञ्जलिद्वारा जलसे देवताओ, ऋषियो एव पितरोका

१-माला-विशेषोका विस्तृत वर्णन पद्मोत्तरखण्ड अध्याय १०८ में द्रष्टव्य है।

तर्पण करना चाहिये। यज्ञोपवीती[1] अर्थात् सव्य होकर देवताओंका, निवीती[2] होकर अर्थात् मालाकी तरह कण्ठमें यज्ञोपवीत धारणकर ऋषियोंका और प्राचीनावीती[3] अर्थात् अपसव्य होकर भक्तिभावसे (देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके) अपने-अपने तीर्थोंसे[4] तर्पण करना चाहिये॥ ८६—८८॥

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु समाचम्य च वाग्यतः।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः॥८९॥
ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनोऽत्वरः॥९०॥

स्नानके वस्त्रको[5] निचोडकर संयतवाणीसे युक्त होकर आचमन करके तत्तद् मन्त्रोंसे पत्र, पुष्प तथा जलके द्वारा देवताओंका पूजन करना चाहिये। क्रोध और शीघ्रताका सर्वथा परित्यागकर भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, शंकर, सूर्य, विष्णु तथा अन्य जो भी अभीष्ट देवता हों, उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ८९-९०॥

प्रदद्याद् वाथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरुषेण तु।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः॥९१॥
ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै दैवतानि समाहितः।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद् वै पृथक् पृथक्॥९२॥
न विष्ण्वाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्॥९३॥

पुरुषसूक्तके द्वारा पुष्प अर्पित करना चाहिये। अथवा जल सभी देवताओंका स्वरूप है, अतः उसके द्वारा पूजन करनेसे सभी देवताओंकी भलीभाँति पूजा हो जाती है। एकाग्रमनसे प्रणवका उच्चारण कर देवताओंका ध्यान करना चाहिये। नमस्कारकर पृथक्-पृथक् देवोंपर पुष्प चढाना चाहिये। विष्णुकी आराधनासे अधिक पुण्यप्रद और कोई वैदिक कर्म नहीं है। इसलिये आदि, मध्य और अन्तसे रहित विष्णुकी नित्य आराधना करनी चाहिये॥ ९१—९३॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु।
नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि॥९४॥
निवेदयेत स्वात्मानं विष्णावमलतेजसि।
तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः॥९५॥
अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम्।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम्॥९६॥

'तद्विष्णो ०'[6] इस मन्त्रसे तथा पुरुषसूक्तसे श्रीविष्णुकी आराधना करनी चाहिये। चारों वेदोंमें भी इन दोनों ('तद्विष्णो ०' एवं 'पुरुष सूक्त') मन्त्रोंके सदृश अन्य कोई मन्त्र नहीं कहा गया है 'तद्विष्णो ०' इस मन्त्रके द्वारा तदात्मा और तन्मय होकर शान्तिपूर्वक अपनेको विशुद्ध तेज स्वरूप विष्णुमें निवेदित करना चाहिये। अथवा पवित्र भावनासे सनातन भगवान् ईशान महेश्वरदेव महादेवकी आराधना करनी चाहिये॥ ९४—९६॥

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः।
ईशानेनाथ वा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः॥९७॥
पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम्।
उक्त्वा नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन योजयेत्॥९८॥
नमस्कुर्यान्महादेवं ऋतं सत्यमितीश्वरम्।
निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम्॥९९॥

१-बाँये कंधेके ऊपर रखते हुए दाहिने हाथ (दाहिनी भुजा)-के नीचे रखे हुए ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को उपवीत या यज्ञोपवीत कहते हैं और इस प्रकार ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको उपवीती या यज्ञोपवीती कहते हैं।

२-मालाकी तरह कण्ठसे सीधे वक्ष स्थलकी ओर लम्बित ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को निवीत कहते हैं और इस ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको निवीती कहते हैं

३-दाहिने कंधेके ऊपर रखते हुए बायें हाथ (बायीं भुजा)-के नीचे रखे हुए ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को प्राचीनावीत कहते हैं और इस प्रकार ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको प्राचीनावीती कहते हैं।

४-देवताओंका तर्पण देवतीर्थ (अङ्गुलियोंके अग्रभाग)-से ऋषियों-मनुष्योंका तर्पण काय-तीर्थ (कनिष्ठिका अंगुलिके मूल)-से और पितरोंका तर्पण पितृतीर्थ (अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अँगुलीके मूलों)-से करना चाहिये।

५-तर्पणके पूर्व स्नानके वस्त्रोंको सुखानेके लिये निचोडना नहीं चाहिये अन्यथा पितर निराश होकर चले जाते हैं। इसीलिये यहाँ तर्पणके अनन्तर स्नानके वस्त्रोंको निचोडनेकी बात कही गयी है।

६-तद्विष्णोः परमं पदः सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् (यजु० ६। ५)

प्रदक्षिण द्विज कुर्यात् पञ्च ब्रह्माणि वै जपन्।
ध्यायीत देवमीशान व्योममध्यगत शिवम्॥१००॥

रुद्रगायत्री, प्रणव, ईशान-मन्त्र, रुद्र तथा त्र्यम्बक-मन्त्रसे एकाग्र-मन होकर पुष्प, पत्र, जल तथा चन्दन आदिके द्वारा महेश्वरकी आराधना करनी चाहिये और मन्त्रका उच्चारणकर मन्त्रके साथ 'नम शिवाय' को जोडना चाहिये। तदनन्तर ऋत एव सत्यस्वरूप ईश्वर महादेवको नमस्कार करना चाहिय और 'यो ब्रह्माण०[1]' इस मन्त्रके द्वारा अपनेको ईश्वरके लिये समर्पित करे। द्विजको पाँच ब्रह्म (शिवके पाँच नामो[2])-का जप करत हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये और आकाशके मध्य स्थित ईशानदेव शिवका ध्यान करना चाहिये॥ ९७-१००॥

अथावलोकयदर्क हस शुचिषदित्यृचा।
कुर्यात् पञ्च महायज्ञान् गृह गत्वा समाहित ॥१०१॥
देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ तथैव च।
मानुष्य ब्रह्मयज्ञ च पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते॥१०२॥

इसके अनन्तर 'हस शुचिषद्०' इस ऋचासे सूर्यका दर्शन कर आर घर जाकर ध्यानपूर्वक पञ्चयज्ञाको करे। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—ये पाँच (महा) यज्ञ कह गये हैं॥ १०१-१०२॥

यदि स्यात् तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञ कृतो न हि।
कृत्वा मनुष्ययज्ञ वै तत स्वाध्यायमाचरेत्॥१०३॥
अग्न पश्चिमतो देश भूतयज्ञान्त एव वा।
कुशपुञ्जे समासीन कुशपाणि समाहित ॥१०४॥
शालाग्नौ लौकिके वाग्नौ जले भूम्यामथापि वा।
वैश्वदेव तत कुर्याद् देवयज्ञ स वै स्मृत ॥१०५॥
यदि स्याल्लौकिके पक्व ततोऽन्न तत्र हूयते।
शालाग्नौ तत्र देवान्न विधिरेष सनातन ॥१०६॥
दवेभ्यस्तु हुतादन्नाच्छषाद् भूतवलि हरेत्।
भूतयज्ञ स वै ज्ञेयो भूतिद सर्वदेहिनाम्॥१०७॥
श्वभ्यश्च श्वपचभ्यश्च पतितादिभ्य एव च।
दद्याद् भूमौ वलि त्वन्न पक्षिभ्याऽथ द्विजोत्तम ॥१०८॥
साय चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्र वलि हरत्।
भूतयज्ञस्त्वय नित्य साय प्रातर्विधीयते॥१०९॥
एक तु भोजयेद् विप्र पितृनुद्दिश्य सत्तमम्।
नित्यश्राद्ध तदुद्दिष्ट पितृयज्ञो गतिप्रद ॥११०॥

यदि तर्पणसे पहले ब्रह्मयज्ञ न किया हो तो मनुष्ययज्ञ करनेके बाद स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये अथवा भूतयज्ञके अन्तमे एकाग्रचित्त हाकर हाथमे कुश लेकर अग्निके पश्चिमकी दिशामे कुशपुजपर बैठकर यज्ञशालाकी अग्नि, लौकिकाग्नि अथवा जलमे या भूमिपर वैश्वदव करना चाहिये। यह देवयज्ञ कहलाता है। यदि लौकिक अग्निम अन्न पकाया गया हो तो उसीमे हवन किया जाता है और यदि शालाकी अग्निम अन्न तैयार किया गया हा तो शालाग्निम ही वैश्वदेव होम करना चाहिये। यही सनातन विधि हे। वैश्वदेव होमके पश्चात् वचे हुए अन्नद्वारा भूतबलिकर्म करना चाहिये। इसे भूतयज्ञ जानना चाहिये। यह सर्वप्राणियोका ऐश्वर्य प्रदान करता है। द्विजोत्तमको (घरक बाहर) भूमिपर कुत्ता चाण्डाल, पतित आदि तथा पक्षियोंको अन्नकी बलि दनी चाहिये। पत्नी सायकाल पके हुए अन्नकी बलि बिना मन्त्रक प्रदान करे, यही भूतयज्ञ है, जो नित्य सायकाल आर प्रात काल किया जाता है। पितराके उद्देश्यसे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणका प्रतिदिन भोजन कराना चाहिये, इसे नित्य-श्राद्ध कहा गया है। यह पितृयज्ञ (उत्तम) गति प्रदान करनेवाला है॥ १०३—११०॥

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्न समाहित ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवापपादयत्॥१११॥
पूजयेदतिथि नित्य नमस्येदर्चयेद् द्विजम्।
मनोवाक्कर्मभि शान्तमागत स्वगृह तत ॥११२॥
हन्तकारमथाग्र वा भिक्षा वा शक्तितो द्विज ।
दद्यादतिथय नित्य बुध्येत परमेश्वरम्॥११३॥

अथवा यथाशक्ति कुछ अन्न निकालकर वेदक तत्त्वार्थको जाननेवाल ब्राह्मणका समाहित हाकर दना चाहिये। तदनन्तर अपन घर आय हुए शान्त द्विज अतिथिका मन वाणी तथा कर्मक द्वारा नित्य नमस्कार, पूजन एव अर्चन करना चाहिय। द्विज अतिथिका यथाशक्ति नित्य 'हन्तकार' 'अग्र' अथवा

१-यो ब्रह्माण विदधाति पूर्वं यो वै वदाश्च प्रहिणाति तस्मै। त ह देवमात्मबुद्धिप्रकाश मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्य॥ (श्वताश्वतर० ६। १८)
२-इशान [1] सवविद्यानाम् इश्वर [2] सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपति [3] ब्रह्मणोऽधिपति [4] ब्रह्मा[5] शिवा मे अस्तु सदा शिवोम्॥

भिक्षा प्रदान करे और उसे परमेश्वरका रूप समझे॥ १११—११३॥

भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमग्रं तस्याश्चतुर्गुणम्।
पुष्कलं हन्तकारं तु तच्चतुर्गुणमुच्यते॥ ११४॥
गोदोहमात्रं कालं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम्।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं यथा॥ ११५॥

ग्रासमात्र (अन्न)-को भिक्षा और उसके चौगुने अर्थात् चार ग्रासके बराबर अन्नका अग्र कहा जाता है। अग्रके चौगुने अर्थात् सोलह ग्रासके बराबर पर्याप्त अन्नको हन्तकार कहा जाता है। गोदोहनकालपर्यन्त अतिथिकी स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार अतिथिकी[1] पूजा की जाती है, उसी प्रकार अभ्यागतोंकी[2] भी यथाशक्ति पूजा (सेवा) करनी चाहिये॥ ११४-११५॥

भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद् विधिवद् ब्रह्मचारिणे।
दद्यादन्नं यथाशक्ति त्वर्थिभ्यो लोभवर्जितः॥ ११६॥
सर्वेषामप्यलाभे तु अन्नं गोभ्यो निवेदयेत्।
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥ ११७॥

ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा प्रदान करे। लोभरहित होकर याचकोंको यथाशक्ति अन्न प्रदान करे, इन सभीके न मिलनेपर गौओंको अन्न निवेदित करे। तदनन्तर भोजनकी निन्दा न करते हुए बन्धुओंके साथ मौन होकर भोजन करे॥ ११६-११७॥

अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमाः।
भुञ्जीत चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति॥ ११८॥
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा।
नाशयत्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा॥ ११९॥
यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरेष्वभिजायते॥ १२०॥

द्विजोत्तमो! यदि द्विज पञ्च महायज्ञोंको बिना किये ही भोजन करता है तो वह मूढात्मा तिर्यग्योनि प्राप्त करता है। प्रतिदिन यथाशक्ति किया गया वेदोंका अभ्यास, महायज्ञ कर्म, क्षमाका भाव और देवताओंका पूजन—ये शीघ्र ही पापोंका नाश करते हैं। जो मोहपूर्वक अथवा आलस्यसे देवताओंकी पूजा किये बिना भोजन करता है, वह नरकोंको प्राप्त करता है और बादमें शूकरकी योनिमें जन्म लेता है॥ ११८—१२०॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजाः।
भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं स याति परमां गतिम्॥ १२१॥

द्विजो! इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा (नित्य) (अपने अधिकारानुसार शास्त्र-विहित) कर्मोंको (श्रद्धापूर्वक) करनेके बाद स्वजनोंके साथ भोजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला परमगति प्राप्त करता है॥ १२१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भोजन-विधि, ग्रहणकालमें भोजनका निषेध, शयन-विधि, गृहस्थके नित्य-कर्मोंके अनुष्ठानका महत्त्व

व्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
आसीनस्त्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय तु॥ १॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः॥ २॥

व्यासजीने कहा—पवित्र आसनपर बैठकर पाँवोंको भूमिपर रखकर पूर्वकी ओर अथवा सूर्याभिमुख होकर अन्न (भोजन) ग्रहण करना चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर भोजन करनेसे लम्बी आयु, दक्षिणाभिमुख होकर भोजन करनेसे यश, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेसे सम्पत्ति और

१-अज्ञातपूर्वगृहागत व्यक्ति (अकस्मात् घरपर आ जानेवाला) अतिथि है। (श्रीधरस्वामी)

२-ज्ञातपूर्वगृहागत व्यक्ति (जिसका पहलेसे घरपर आना ज्ञात है ऐसा व्यक्ति) अभ्यागत है।

उत्तरकी ओर मुख करके भोजन करनेसे सत्यकी प्राप्ति होती है॥ १-२॥

पञ्चार्द्रो भोजन कुर्याद् भूमौ पात्र निधाय तु।
उपवासेन तत्तुल्य मनुराह प्रजापति ॥३॥
उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोध पञ्चार्द्रो भोजन चरेत्॥४॥
महाव्याहृतिभिस्त्वन्न परिधायादकेन तु।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रिया चरेत्॥५॥

पाँच अङ्गो (दोना हाथ, दोना पेर तथा मुख)-का प्रक्षालनकर (भोजन) पात्रको भूमिपर रखकर भोजन करना चाहिये। प्रजापति मनुने इस प्रकारके भोजनको उपवासके समान बताया है। दोनो हाथ, पेर एव मुखको धोनेके बाद आचमनकर (गोबर इत्यादिसे) लीपे गये पवित्र स्थानमे (बैठकर) क्रोधरहित होकर भोजन करना चाहिये। महाव्याहृतियाका उच्चारण करते हुए जलसे अन्नको परिवेष्टितकर 'अमृतोपस्तरणमसि' ऐसा कहकर आपोशान[१] (आचमन) क्रिया (सम्पन्न) करे॥ ३-५॥

स्वाहाप्रणवसयुक्ता प्राणायाद्याहुति तत ।
अपानाय ततो हुत्वा व्यानाय तदनन्तरम्॥६॥
उदानाय तत कुर्यात् समानायेति पञ्चमीम्।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषा जुहुयादात्मनि द्विज ॥७॥
शेषमन्न यथाकाम भुञ्जीतव्य जनैर्युतम्।
ध्यात्वा तन्मनसा देवमात्मान वै प्रजापतिम्॥८॥
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादप पिबेत्।
आचान्त पुनराचामेदाय गौरिति मन्त्रत ॥९॥
द्रुपदा वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशिनीम्।
प्राणाना ग्रन्थिरसीत्यालभेद् हृदय तत ॥१०॥

तदनन्तर स्वाहा एव प्रणवके साथ 'प्राणाय' का उच्चारण कर (ॐ प्राणाय स्वाहा) कहकर पहली आहुति देनी चाहिये। तदुपरान्त 'ॐ अपानाय स्वाहा' और फिर 'ॐ व्यानाय स्वाहा', पुन 'ॐ उदानाय स्वाहा' और अन्तमे 'ॐ समानाय स्वाहा' कहकर पाँचवीं आहुति देनी चाहिये। इनका रहस्य समझते हुए द्विजको आत्मामे आहुति देनी चाहिये[२]। फिर देव प्रजापति तथा आत्माका मनसे ध्यान करते हुए अवशिष्ट अन्न (भोजन)-का बन्धुओके साथ इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। (भोजन कर लेनेके बाद) 'अमृतापिधानमसि' यह मन्त्र पढकर जल पीना (आचमन करना) चाहिये। आचमनके उपरान्त पुन 'आय गौ[३]०' इस मन्त्रको पढते हुए आचमन करना चाहिये। तदनन्तर सभी प्रकारके पापोका नाश करनेवाली 'द्रुपदा०' का तीन बार पाठकर 'प्राणाना ग्रन्थिरसि' इस मन्त्रसे हृदयका स्पर्श करे॥ ६-१०॥

आचम्याङ्गुष्ठमात्रेति पादाङ्गुष्ठेऽथ दक्षिणे।
नि स्रावयेद् हस्तजलमूर्ध्वहस्त समाहित ॥११॥
हुतानुमन्त्रण कुर्यात् श्रद्धायामिति मन्त्रत ।
अथाक्षरेण स्वात्मान योजयेद् ब्रह्मणेति हि॥१२॥
सर्वेषामेव यागानामात्मयाग पर स्मृत ।
योऽनेन विधिना कुर्यात् स याति ब्रह्मण क्षयम्॥१३॥

ऊपर हाथ किये हुए समाहित-मन होकर आचमन करके 'अङ्गुष्ठमात्रेति' मन्त्रद्वारा दाहिने पैरके अँगूठेपर हाथका जल गिराना चाहिये। 'श्रद्धायाम्०' इस मन्त्रसे हुतानुमन्त्रण करे। तदनन्तर 'ब्रह्मणा०' इस मन्त्रसे अपनी आत्माका अक्षर-तत्त्वसे योग करना चाहिये। सभी यागोमे आत्मयाग श्रेष्ठ कहा गया है। जो इस विधिसे (आत्मयाग) करता है, वह ब्रह्मधाममे जाता है॥ ११—१३॥

यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालकृत शुचि ।
सायप्रातर्नान्तरा वै सध्याया तु विशेषत ॥१४॥
नाद्यात् सूर्यग्रहात् पूर्वमह्नि साय शशिग्रहात्।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयात् तु मुक्तया ॥ १५॥
मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तगतयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि॥१६॥

यज्ञोपवीती होकर अर्थात् सव्य होकर तथा माला (एव चन्दनकी) सुगन्धिसे अलकृत होकर पवित्रतापूर्वक भोजन करना चाहिये। सायकाल प्रात काल मध्याह्नकाल और

१-भोजनके आरम्भ एव अन्तमे आपोशान (आचमन) करके अन्नको अनग्न एव अमृत किया जाता है।
२-आत्मामे आहुति देनेकी भावनासे भोजनके प्रारम्भमे छोटे-छोटे पाँच ग्रास मुखमे 'प्राणाय स्वाहा' आदि पाँच मन्त्रोसे देना चाहिये।
३-आय गौ पृश्निरक्रमीदसदन् मातर पुर । पितर च प्रयन्त्स्व । (यजु० ३। ६)

विशेषरूपसे संध्याकाल (प्रदोषकाल)-के समय भोजन नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणसे पहले दिनमें, चन्द्रग्रहणसे पूर्व सायंकालमें तथा ग्रहणकालमें भोजन नहीं करना चाहिये। ग्रहणकी मुक्ति हो जानेपर स्नान करनेके अनन्तर भोजन करना चाहिये। चन्द्रमाके ग्रहणसे मुक्त हो जानेपर यदि अर्धरात्रि न हो तो भोजन करना चाहिये। बिना ग्रहणसे मुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके अस्त हो जानेपर दूसरे दिन उनका दर्शन करके भोजन करना चाहिये॥ १४-१६॥

नाश्नीयात् प्रेक्षमाणानामप्रदायैव दुर्मतिः।
न यज्ञशिष्टादन्यद् वा न क्रुद्धो नान्यमानसः॥ १७॥
आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्॥ १८॥
यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥ १९॥
नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्।
न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा॥ २०॥
न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु।
नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्धानं स्पृशेदपि॥ २१॥

देखनेवालों (भूखे व्यक्तियों)-को बिना दिये हुए तथा दुर्मना होकर भोजन नहीं करना चाहिये। यज्ञसे अवशिष्ट अन्नसे भिन्न अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। अन्यमनस्क होकर तथा क्रुद्ध होकर भोजन नहीं करना चाहिये। जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाता है, जो केवल कामसुखके लिये ही मैथुन करता है और जो केवल आजीविका प्राप्त हो जाय—इस उद्देश्यसे अध्ययन करता है, उसका जीवन निष्फल ही है। जो सिर ढककर भोजन करता है, उत्तरकी ओर मुख करके भोजन करता है और जूता पहनकर भोजन करता है, उसके इस प्रकार किये गये भोजनको आसुरी भोजन समझना चाहिये। ठीक अर्धरात्रि ठीक मध्याह्न अजीर्ण होनेपर, गीले वस्त्र धारणकर दूसरेके लिये निर्दिष्ट आसनपर, सोते हुए, खड़े होकर, टूटे-फूटे पात्रमें, भूमिपर तथा हाथपर भोजन नहीं करना चाहिये। जूठे होकर न तो घृत ग्रहण करे और न सिरका ही स्पर्श करे॥ १७-२१॥

न ब्रह्म कीर्तयन् वापि न निःशेषं न भार्यया।
नान्धकारे न चाकाशे न च देवालयादिषु॥ २२॥
नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन् विलपन्नपि॥ २३॥

(भोजन करते हुए) वेदका उच्चारण नहीं करना चाहिये और बिना कुछ[1] भोजन छोड़े ही अर्थात् पूर्ण भोजन न करे तथा भार्याके साथ भी भोजन न करे। न अन्धकारमें, न आकाशके नीचे (शून्य स्थानमें), न देवमन्दिरमें ही भोजन करे। एक वस्त्र पहनकर, सवारी या शय्यापर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। बिना खड़ाऊँ उतारे और हँसते हुए तथा रोते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिये॥ २२-२३॥

भुक्त्वैवं सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत्।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत्॥ २४॥
ततः संध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना द्विजः।
आसीनस्तु जपेद् देवीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति॥ २५॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नास्ते संध्यां तु पश्चिमाम्।
स शूद्रेण समो लोके सर्वधर्मविवर्जितः॥ २६॥

इस प्रकार भोजन करके सुखपूर्वक बैठकर उस अन्नको पचाना चाहिये और इतिहास तथा पुराणोंके द्वारा वेदके रहस्योंको विस्तारपूर्वक समझना चाहिये। तदनन्तर द्विजको पूर्वमें बतलायी गयी विधिके अनुसार संध्योपासना करनी चाहिये। पश्चिमकी ओर मुख करते हुए आसनपर बैठकर गायत्री देवीका जप करना चाहिये। जो व्यक्ति पूर्वकी अर्थात् प्रातःकालकी और पश्चिमकी अर्थात् सायंकालकी संध्या नहीं करता है वह सभी धर्मोंसे रहित होता हुआ लोकमें शूद्रके समान होता है॥ २४-२६॥

हुत्वाग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि॥ २७॥
नोत्तराभिमुखः स्वप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च।

[1] १-गृहस्थको भोज्य पदार्थ यथायोग्य अवशिष्ट रखकर भोजन करना चाहिये। इसका आशय यह है कि भोजन कर लेनेके अनन्तर यदि कोई ऐसा व्यक्ति आ जाय जिसे स्वयं भोजन कर लेनेके बाद भी उसकी अपेक्षाके अनुसार भोजन कराया जा सके जिससे भोज्य पदार्थके अभावमें वह भूखा न रह जाय।

न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित्॥ २८॥
न शीर्णाया तु खट्वाया शून्यागारे न चैव हि।
नानुवश न पालाशे शयन वा कदाचन॥ २९॥

मन्त्राके द्वारा विधिपूर्वक अग्निमे हवन करके यज्ञसे बचे अन्नको बन्धु-बान्धव तथा भृत्यजनोके साथ ग्रहणकर रात्रिमे सूखे पैर होकर (अर्थात् गीला पैर न रहे) शयन करना चाहिये। न तो उत्तरकी ओर सिर करके और न पश्चिमकी ओर सिर करके सोना चाहिये। खुले आकाशके नीचे (अथवा शून्य स्थानमे), नग्न होकर, अपवित्र अवस्थामे और बैठनेके आसनपर कभी नहीं सोना चाहिये। टूटी-फूटी चारपाईपर, सूनसान घरमे तथा बाँस या पलाससे बनी खाटपर कभी नहीं सोना चाहिये॥ २७-२९॥

इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया।
ब्राह्मणाना कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम्॥ ३०॥
नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति य।
स याति नरकान् घोरान् काकयोनौ च जायते॥ ३१॥
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधि स्वकम्।
तस्मात् कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिन॥ ३२॥

इस प्रकार मैंने ब्राह्मणा (द्विजा)-के मोक्षदायक प्रतिदिन किये जानेवाले सम्पूर्ण कृत्या (दैनिक कर्मों)-का पूर्णरूपसे वर्णन किया। जो ब्राह्मण (द्विज) नास्तिकता अथवा आलस्यके कारण इन कर्मोंको नहीं करता, वह घोर नरकामे जाता है और काकयोनिमे जन्म लेता है। अपने आश्रमकी विधिको छोडकर अन्य कोई दूसरा मुक्तिका मार्ग नहीं है। इसलिये परमेष्ठी (परब्रह्म)-की प्रसन्नताके लिये (विहित) कर्मोको करना चाहिये॥ ३०-३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनविंशोऽध्याय ॥ १९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमे उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरण—श्राद्धके प्रशस्त दिन, विभिन्न तिथियो, नक्षत्रो ओर वारोमे किये जानेवाले श्राद्धोका विभिन्न फल, श्राद्धके आठ भेद, श्राद्धके लिये प्रशस्त स्थान, श्राद्धमे विहित तथा निषिद्ध पदार्थ

व्यास उवाच

अथ श्राद्धममावास्या प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमै।
पिण्डान्वाहार्यक भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १॥
पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध क्षीणे राजनि शस्यते।
अपराह्णे द्विजातीना प्रशस्तेनामिषेण च॥ २॥

व्यासजी बोले—द्विजोत्तमाको अमावास्या आनपर भक्तिपूर्वक भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला पिण्डान्वाहार्यक[1] नामक श्राद्ध करना चाहिये। चन्द्रमाके क्षीण होनेपर अथात् अमावास्या तिथिके अपराह्ण-कालमे द्विजातियाके लिये पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना प्रशस्त होता है॥ १-२॥

प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथय कृष्णपक्षके।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तरा॥ ३॥
अमावास्याष्टकास्तिस्र पौषमासादिषु त्रिषु।
तिस्रश्चान्वष्टका पुण्या माघी पञ्चदशी तथा॥ ४॥
त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु तु विशेषत।
शस्यपाकश्राद्धकाला नित्या प्रोक्ता दिने दिने॥ ५॥

कृष्णपक्षमे चतुदशीको छोडकर प्रतिपदादि अन्य तिथियाँ उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं। पौष, माघ तथा फाल्गुन मासकी तीनो अष्टकाएँ (तीना कृष्णाष्टमी) और अमावास्या तीनो अन्वष्टकाएँ (नवमी) और माघ मासकी पूर्णिमा तिथि (श्राद्धके लिये) पुण्य तिथियाँ है। वर्षाऋतुमे मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशी तिथि

[1] १-मनुस्मृति (३। १२२)-के अनुसार पिण्डान्वाहार्यक एक स्वतन्त्र श्राद्ध है। इसे अग्निहोत्री लोग ही कर सकते हैं। यह पिण्डपितृयज्ञके बाद किया जाता है इसलिये इसका नाम पिण्डान्वाहार्यक है। यह प्रतिमास किया जाता है। यह नित्य-श्राद्ध है।

और फसलके पकनेका समय विशेषरूपसे श्राद्ध करनेका काल होता है। ये सभी श्राद्ध नित्य और प्रतिदिन किये जानेवाले नित्य-श्राद्ध हैं॥ ३-५॥

नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
बान्धवानां च मरणे नारकी स्यादतोऽन्यथा॥६॥
काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु।
अयने विषुवे चैव व्यतीपातेऽप्यनन्तकम्॥७॥
सङ्क्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि।
नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं विशेषतः॥८॥

चन्द्र और सूर्यके ग्रहणकाल तथा बान्धवोंके मरनेपर नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा न करनेपर नारकीय गति प्राप्त होती है। ग्रहण आदिके समय किये गये काम्य श्राद्ध प्रशस्त माने गये हैं। उत्तरायण एवं दक्षिणायनके समय विषुव तथा व्यतीपात योगमें किया हुआ श्राद्ध भी अनन्त फल देनेवाला होता है। सङ्क्रान्ति तथा जन्मके समय किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। सभी नक्षत्रोंमें विशेषरूपसे काम्य श्राद्ध करना चाहिये॥ ६—८॥

स्वर्गं च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमः।
अपत्यमथ रोहिण्यां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम्॥९॥
रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायां शौर्यमेव च।
पुनर्वसौ तथा भूमिं श्रियं पुष्ये तथैव च॥१०॥
सर्वान् कामांस्तथा सार्पे पित्र्ये सौभाग्यमेव च।
अर्यम्णे तु धनं विन्द्यात् फाल्गुन्यां पापनाशनम्॥११॥
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुतान्।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम्॥१२॥
मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च।
मूले कृषिं लभेद् यानसिद्धिमाप्ये समुद्रतः॥१३॥
सर्वान् कामान् वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यं तु श्रवणे पुनः।
श्रविष्ठायां तथा कामान् वारुणे च परं बलम्॥१४॥
अजैकपादे कुप्यं स्यादहिर्बुध्न्ये गृहं शुभम्।
रेवत्यां बहवो गावो ह्यश्विन्यां तुरगास्तथा।
याम्येऽथ जीवनं तत् स्याद्यदि श्राद्धं प्रयच्छति॥१५॥

श्रेष्ठ द्विज कृत्तिका नक्षत्रमें श्राद्ध कर स्वर्ग प्राप्त करता है। रोहिणीमें श्राद्ध करनेसे संतान और मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति होती है। आर्द्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे रौद्र कर्मोंकी सिद्धि तथा शौर्यकी प्राप्ति होती है। पुनर्वसु नक्षत्रमें भूमि और पुष्य नक्षत्रमें लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। आश्लेषा नक्षत्रमें (श्राद्ध करनेसे) सभी कामनाओं और मघा नक्षत्रमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार उत्तराफाल्गुनीमें धनकी प्राप्ति होती है और पूर्वाफाल्गुनीमें पापका नाश होता है। हस्त नक्षत्रमें किये गये श्राद्धसे अपनी जातिमें श्रेष्ठता और चित्रामें बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। स्वातीमें व्यापारकी सिद्धि और विशाखामें सुवर्णकी प्राप्ति होती है। अनुराधामें श्राद्ध करनेसे बहुतसे मित्रोंकी तथा ज्येष्ठामें राज्यकी प्राप्ति होती है। मूल नक्षत्रमें कृषि तथा पूर्वाषाढामें समुद्रतककी सफल यात्रा होती है। उत्तराषाढामें सभी कामनाओंकी सिद्धि और श्रवण नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है। धनिष्ठामें सभी कामनाओं और शतभिषामें परम बलकी प्राप्ति होती है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे कुप्य अर्थात् सोना-चाँदीसे भिन्न धातुएँ और उत्तराभाद्रपदमें शुभ गृह प्राप्त होता है। रेवती नक्षत्रमें किये गये श्राद्धसे बहुत-सी गौएँ और अश्विनीमें श्राद्ध करनेसे घोड़ोंकी प्राप्ति होती है। भरणी नक्षत्रमें यदि श्राद्ध किया जाय तो आयुकी प्राप्ति होती है॥ ९-१५॥

आदित्यवारे त्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च।
कौजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् बुधस्य तु॥१६॥
विद्यामभीष्टां जीवे तु धनं वै भार्गवे पुनः।
शनैश्चरे लभेदायुः प्रतिपत्सु सुतान् शुभान्॥१७॥
कन्यका वै द्वितीयायां तृतीयायां तु वन्दिनः।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान् सुतान्॥१८॥
षष्ठ्यां द्युतं कृषिं चापि सप्तम्यां लभते नरः।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा॥१९॥
स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं बहु।
एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥२०॥
द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु कुप्रजाः।
पञ्चदश्यां सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा॥२१॥

रविवारको (श्राद्ध करनेसे) आरोग्य, सोमवारको सौभाग्य

मगलवारको सर्वत्र विजय और बुधवारको श्राद्धसे सभी कामनाओकी सिद्धि होती है। बृहस्पतिवारके दिन श्राद्धसे अभीष्ट विद्या, शुक्रवारके दिन श्राद्धसे धन और शनैश्चरको (श्राद्ध करनेसे) आयु प्राप्त होती है। प्रतिपदा तिथिको (श्राद्ध करनेसे) शुभ पुत्र प्राप्त होत हैं। द्वितीयामें श्राद्धसे कन्या, तृतीयामे वन्दीजनो, चतुर्थीमे क्षुद्र पशु और पञ्चमीको श्राद्ध करनेसे सुन्दर पुत्राकी प्राप्ति होती है। षष्ठीमे श्राद्ध करनेसे द्यूत (मे विजय) और सप्तमीमे श्राद्धसे कृषिकी प्राप्ति होती है। अष्टमीको श्राद्ध करनेवाला सदा वाणिज्य (मे लाभ) प्राप्त करता है। नवमीम श्राद्धसे एक खुरवाले और दशमीम श्राद्ध करनेसे दो खुरवाले बहुतसे पशु मिलते हैं। एकादशीको (श्राद्ध करनेसे) रौप्य (रजत) पदार्थ तथा ब्रह्मवर्चस्वी पुत्राकी प्राप्ति होती है। द्वादशीको (श्राद्ध करनेसे) जातरूप (स्वर्ण), चाँदी तथा कुप्य, त्रयोदशीको जातिमे श्रेष्ठता ओर चतुर्दशीको श्राद्ध करनेसे कुप्रजाकी प्राप्ति होती है। पञ्चदशी (पूर्णिमा एव अमावास्या)-को श्राद्ध करनेवाला सदा सभी कामनाओको प्राप्त करता है॥ १६—२१॥

तस्माच्छ्राद्ध न कर्तव्य चतुर्दश्या द्विजातिभि ।
शस्त्रेण तु हताना वै तत्र श्राद्ध प्रकल्पयेत्॥ २२॥
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियम कृत ।
तस्माद् भोगापवर्गार्थं श्राद्ध कुर्युर्द्विजातय ॥ २३॥

इसलिये द्विजातियाको चतुर्दशीके दिन श्राद्ध नहीं करना चाहिये। शस्त्र (आदि)-द्वारा जो मरे हुए हो, उनका श्राद्ध (इस चतुर्दशी तिथिको) करना चाहिये। द्रव्य एव ब्राह्मणके उपलब्ध रहनेपर कालसम्बन्धी कोई नियम नहीं बताया गया है (अर्थात् कभी भी श्राद्ध किया जा सकता हे)। इसलिये भोग और मोक्षकी प्राप्तिक लिये द्विजातियाको श्राद्ध (अवश्य) करना चाहिये॥ २२-२३॥

कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादाभ्युदय पुन ।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्ध पार्वण पर्वणि स्मृतम्॥ २४॥
अहन्यहनि नित्य स्यात् काम्य नैमित्तिक पुन ।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेय वृद्धिश्राद्ध तु पार्वणम्॥ २५॥
एतत् पञ्चविध श्राद्ध मनुना परिकीर्तितम्।
यात्राया षष्ठमाख्यात तत्प्रयत्नेन पालयेत्॥ २६॥
शुद्धये सप्तम श्राद्ध ब्रह्मणा परिभाषितम्।
दैविक चाष्टम श्राद्ध यत्कृत्वा मुच्यते भयात्॥ २७॥
सध्यारात्र्योर्न कर्तव्य राहोरन्यत्र दर्शनात्।
देशाना च विशेषेण भवेत् पुण्यमनन्तकम्॥ २८॥

सभी (शुभ) कर्मोके प्रारम्भमे तथा पुत्रजन्म आदि समयोमे आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। पर्वके दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। मनुने प्रतिदिन किये जानेवाले नित्य-श्राद्ध, काम्य-श्राद्ध (कामना-विशेषकी सिद्धिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध), एकोद्दिष्टादि नैमित्तिक श्राद्ध, वृद्धि-श्राद्ध और पार्वण श्राद्ध—इन पाँच प्रकारके श्राद्धोका वर्णन किया है। यात्राके समय (किया जानेवाला) छठा श्राद्ध कहा गया है, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। ब्रह्माने शुद्धिके लिये सातवे श्राद्धका वर्णन किया है। आठवाँ दैविक नामक श्राद्ध हे, जिसे करनेसे भयसे मुक्ति हो जाती है। सध्या और रात्रिमे श्राद्ध नहीं करना चाहिये। किंतु राहु और केतुद्वारा सूर्य-चन्द्रके ग्रस्त किये जानेपर रात्रिमे भी श्राद्ध किया जा सकता है। देश-विशेषके कारण श्राद्ध अनन्त पुण्य फल देनेवाला होता है॥ २४—२८॥

गङ्गायामक्षय श्राद्ध प्रयागेऽमरकण्टके।
गायन्ति पितरो गाथा कीर्तयन्ति मनीषिण ॥ २९॥
एष्टव्या बहव पुत्रा शीलवन्तो गुणान्विता ।
तेषा तु समवताना यद्येकोऽपि गया व्रजेत्॥ ३०॥
गया प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्ध समाचरेत्।
तारिता पितरस्तेन स याति परमा गतिम्॥ ३१॥

गङ्गा, प्रयाग तथा अमरकण्टकमे किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता हे। पितर इस गाथाका गान करते हैं और मनीषी ऐसा कीर्तन करते रहते हैं कि 'शीलवान् तथा गुणवान् बहुतसे पुत्राकी इच्छा करनी चाहिये, क्याकि उनमसे कोई एक भी किसी प्रसगवश गया चला जाय और गया पहुँचकर यदि श्राद्ध कर दे तो उसके द्वारा पितर तार दिय जाते हैं (अर्थात् पितरोंको उत्तमात्तम गति प्राप्त हाती है) आर वह (श्राद्धकर्ता) परमगतिको प्राप्त करता है'॥ २९—३१॥

वराहपर्वते चैव गङ्गाया वै विशेषत ।
वाराणस्या विशेषेण यत्र देव स्वय हर ॥ ३२॥

गङ्गाद्वारे प्रभासे च बिल्वके नीलपर्वते।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये॥ ३३॥
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च।
सरस्वत्या विशेषेण पुष्करेषु विशेषतः॥ ३४॥
नर्मदायां कुशावर्ते श्रीशैले भद्रकर्णके।
वेत्रवत्यां विपाशायां गोदावर्यां विशेषतः॥ ३५॥
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।
नदीनां चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा॥ ३६॥

वराह[1] पर्वत, विशेषरूपसे गङ्गा तथा जहाँ स्वयं भगवान् हर निवास करते हैं विशेषतया उस वाराणसी, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रभास, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, कुरुक्षेत्र कुब्जाम्रतीर्थ, भृगुतुङ्ग, महालय केदारपर्वत, फल्गुतीर्थ नैमिषारण्य विशेषरूपसे सरस्वती नदी तथा पुष्कर, नर्मदा, कुशावर्त श्रीशैल भद्रकर्णक, वेत्रवती, विपाशा तथा विशेषरूपसे गोदावरी नदी आदि स्थानो तथा अन्य तीर्थो, पुलिनो[2] और नदियोके तटोपर किये गये श्राद्धसे पितर सदा संतुष्ट होते हैं॥ ३२—३६॥

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च यवैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्‌गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्॥ ३७॥
आम्रान् पानेरतानिक्षून् मृद्वीकाश्च सदाडिमान्।
विदार्यांश्च भरण्डाश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत्॥ ३८॥
लाजान् मधुयुतान् दद्यात् सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटककशेरुकान्॥ ३९॥
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु॥ ४०॥
षण्मासाश्छागमांसेन पार्षतेनाथ सप्त वै।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु॥ ४१॥
दशमासास्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु॥ ४२॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन तु।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ ४३॥
कालशाकं महाशल्कं खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ ४४॥
क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वा द्विजः।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते॥ ४५॥
पिप्पलीं क्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्ताकान् भूस्तृणं सुरसं तथा॥ ४६॥
कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च।
राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषं च विवर्जयेत्॥ ४७॥
कोद्रवान् कोविदारांश्च पालक्यान् मरिचांस्तथा।
वर्जयेत् सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः॥ ४८॥

व्रीहि, जौ, उड़द, जल, मूल, फल, श्यामाक (सावाँ), यव, शाक, नीवार, प्रियङ्गु, गोधूम, तिल तथा मुद्‌गद्वारा किये गये श्राद्धसे पितर एक महीनेतक प्रसन्न रहते हैं। आम, पानेरत (पानेण, करमईद अर्थात् करौंदा या करमर्द), ईख, द्राक्षा (अंगूर), दाडिम, विदारी (भूमिकुष्माण्ड) तथा भरण्ड—इन्हें श्राद्धके समय प्रदान करना चाहिये। मधुयुक्त लाजा, शर्कराके साथ सत्तू, सिंघाड़ा तथा कसेरू—इन्हें श्राद्धमें प्रयत्नपूर्वक देना चाहिये। श्राद्धमें पिप्पली, सुपारी, मसूर, कूष्माण्ड, (वर्तुलाकार—गोल) लौकी, बैगन रसयुक्त भूस्तृण कुसुम्भ, पिण्डमूल (गजर), तन्दुलीयक (चौंराई शाकविशेष) राजमाष (बर्वट, बर्वटी, कड़ाई लोकभाषामें) और भैंसके दूधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजको श्राद्धमें कोदो, कोविदार (कचनार), पालक तथा मरिचका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये॥ ३७—४८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

१-वराहपर्वतकी चर्चा वह्निपुराणमें तथा महाभारत (२। २१। २)-में है।

२-पुलिन—(नदीके किनारेका वह भाग जहाँसे जल हटा हो—(तोयोत्थितं तत् पुलिनम्)। (अमरकोश)

इक्कीसवॉ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरणमे निमन्त्रणके योग्य पक्तिपावन ब्राह्मणो तथा त्याज्य पक्ति-दूषकोके लक्षण

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्त सतर्प्य पितृश्चन्द्रक्षये द्विज ।
पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध कुर्यात् सौम्यमना शुचि ॥ १ ॥
पूर्वमेव परीक्षेत ब्राह्मण वेदपारगम् ।
तीर्थं तद् हव्यकव्याना प्रदाने चातिथि स्मृत ॥ २ ॥

व्यासजी बोले—द्विजको चाहिये कि चन्द्रमाके क्षय होनेपर अर्थात् अमावास्याको स्नानकर यथोक्त रीतिसे पितराका तर्पण करके शान्तचित्त होकर तथा पवित्रतापूर्वक पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करे। (श्राद्धसे) पूर्व ही वेदमे पारगत विद्वान् ब्राह्मणका अन्वेषण करना चाहिय, क्याकि उसे ही (वेदपारग ब्राह्मणको ही) हव्य, कव्य, तीर्थ और दानका अतिथि (अधिकारी) कहा गया है ॥ १-२ ॥

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञा शान्तचेतस ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिन ॥ ३ ॥
पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च ।
बह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वाथ यो भवेत् ॥ ४ ॥
त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषत ॥ ५ ॥

जो सोमपायी, रजागुणसे हीन, धर्मको जाननेवाले, शान्तचित्त, व्रतपरायण, नियममे स्थित, ऋतुकालम गमन करनेवाले हैं (वे ब्राह्मण पक्तिपावन हैं)। पञ्चाग्निका सेवन करनेवाला, अध्ययनशील, यजुर्वेदका ज्ञाता, बह्वृच् (ऋग्वेदी) त्रिसौपर्ण[1] तथा त्रिमधु[2] अर्थात् ऋग्वेदके अश-विशेषका अध्येता, त्रिणाचिकेत[3] (यजुर्वेदके अश-विशेषका अध्येता), छन्दाग[4] (सामवेदका ज्ञाता) ज्येष्ठसामग[5]—ज्येष्ठसाम (सामगान) तथा अथर्ववेदका अध्येता और विशेषरूपसे रुद्राध्यायका अध्ययन करनेवाला (ब्राह्मण पक्तिपावन होता है) ॥ ३-५ ॥

अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडङ्गवित् ।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद् धर्मपाठक ॥ ६ ॥
ऋषिव्रती ऋषीकश्च तथा द्वादशवार्षिक ।
ब्रह्मदेयानुसतानो गर्भशुद्ध सहस्रद ॥ ७ ॥
चान्द्रायणव्रतचर सत्यवादी पुराणवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्पर ॥ ८ ॥
विमुक्त सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तम ।
महादेवार्चनरतो वैष्णव पक्तिपावन ॥ ९ ॥
अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा ।
सत्रिणो दाननिरता विज्ञेया पक्तिपावना ॥ १० ॥

अग्निहोत्रपरायण विद्वान्, न्यायवेत्ता, वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष—इन छ अङ्गोको जाननेवाला, वेदके मन्त्र-भाग एव ब्राह्मण-भागको जाननेवाला तथा धर्मशास्त्रको पढनेवाला, ऋषियाके व्रताका पालन करनेवाला, ऋषीक[6], बारह वर्षोतक चलनेवाले व्रत, यज्ञ (सत्र)-का करनेवाला, ब्राह्म-[7]विवाहद्वारा उत्पन्न

१-ऋग्वेदका विशेष वदभाग एव उसका व्रत त्रिसुपर्ण कहा जाता है अत इसके सम्बन्धस ब्राह्मणको त्रिसुपर्ण या त्रिसापर्ण कहा जाता है। (मनु० ३। १८५)।

२-तीन बार मधु शब्द जिन ऋचाओमे आया है वे 'मधुव्वाता ' आदि तीन ऋचाएँ (शब्दकल्पद्रुम)।

३-अध्वर्युवदभाग (यजुर्वेदका भाग-विशेष) एव उसक व्रत त्रिणाचिकेत हैं। इन दानाके सम्बन्धसे ब्राह्मण भी 'त्रिणाचिकेत' कहा जाता है (मनु० ३। १८५)।

४-छन्द (वेद-विशेष साम)-के गानमे कुशल अथवा सामवेदका अध्यता 'छन्दोग' है (शब्दकल्पद्रुम)।

५-'ज्येष्ठसाम सामवेद या उसके अध्ययनका अङ्ग व्रत है इसका सम्बन्ध जिस ब्राह्मणसे है वह 'ज्येष्ठसामग' है।

६- ऋषीक का अर्थ ऋषिपुत्र' है। प्रकृतमे ऋषि-परम्परामें उत्पन्न अर्थ समझना चाहिय।

७-मूलमे 'ब्रह्मदेयानुसतान' शब्द है। इसका 'जिसकी कुलपरम्परामें ब्रह्म (वेद)-के अध्ययनाध्यापनकी परम्परा अविच्छिन्नरूपसे चल रही हो —यह अर्थ भी किया जा सकता है।

सतान, गर्भाधानादि सस्कारसे शुद्ध और सहस्रो (शिष्योंको विद्या) दान करनेवाला (ब्राह्मण) पक्तिपावन होता है। चान्द्रायणव्रत करनेवाला सत्यवादी, पुराण जाननेवाला, गुरु देवता और अग्निकी पूजामे आसक्त ज्ञानपरायण आसक्ति आदिसे सर्वथा मुक्त, धीर, ब्रह्मज्ञानी, महादेवकी पूजामे निरत रहनेवाला तथा वैष्णव श्रेष्ठ द्विज पक्तिपावन होता है। नित्य अहिसा-व्रतपरायण, अप्रतिग्रही, यज्ञ[1] करनेवाले और दान दनेवाले (ब्राह्मणो)-को पक्तिपावन जानना चाहिये॥ ६-१०॥

युवान श्रोत्रिया स्वस्था महायज्ञपरायणा ।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणा पक्तिपावना ॥११॥
कुलीना श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विन ।
अग्निचित्स्नातका विप्रा विज्ञेया पक्तिपावना ॥१२॥
मातापित्रोर्हिते युक्त प्रात स्नायी तथा द्विज ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेय पक्तिपावन ॥१३॥
ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तक ।
श्रद्धालु श्राद्धनिरतो ब्राह्मण पक्तिपावन ॥१४॥
वेदविद्यारत स्नातो ब्रह्मचर्यपर सदा।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मण पक्तिपावन ॥१५॥
असमानप्रवरको ह्यसगात्रस्तथैव च।
असम्बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मण पक्तिपावन ॥१६॥

श्रोत्रिय स्वस्थ महायज्ञ[2]-परायण गायत्री-जप करनेमे निरत ब्राह्मण युवक (सामर्थ्यसम्पन्न) पक्तिपावन हाते हैं। कुलान ज्ञानवान्, शीलवान्, तपस्वी एव अग्निका चयन[3] करनेवाले स्नातक[4] ब्राह्मणोको पक्तिपावन जानना चाहिय। माता-पिताके हितमें लगे हुए, प्रात स्नान करनेवाले, अध्यात्मवत्ता, मुनि एव दान्त ब्राह्मणोको पक्तिपावन समझना चाहिये। ज्ञाननिष्ठ, महायोगी, वदान्तके अर्थका विशेष चिन्तन करनेवाले, श्रद्धासम्पन्न तथा श्राद्धनिरत ब्राह्मण पक्तिपावन होते हैं। वेदविद्यामे निरत, सदा ब्रह्मचर्य-परायण अथर्ववेदका अध्ययन करनेवाला, मुमुक्षु, स्नातक ब्राह्मण पक्तिपावन होता है। असमान प्रवर, असमान गोत्र (मे सम्बन्ध करनेवाला) और असम्बन्धी (निषिद्ध सम्बन्धरहित) ब्राह्मणको पक्तिपावन समझना चाहिये॥ ११-१६॥

भोजयेद् योगिन पूर्वं तत्त्वज्ञानरत यतिम्।
अलाभे नैष्ठिक दान्तमुपकुर्वाणक तथा॥१७॥
तदलाभे गृहस्थ तु मुमुक्षु सङ्गवर्जितम्।
सर्वालाभे साधक वा गृहस्थमपि भोजयेत्॥१८॥

सर्वप्रथम तत्त्वज्ञानमे निरत सयतचित्त योगीको भोजन कराना चाहिय। अभाव होनेपर (अर्थात् ऐसा ब्राह्मण न मिलनेपर) इन्द्रियजयी नैष्ठिक ब्रह्मचारी (जो ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकारकर यावज्जीवन गुरुकुलमे ही निवास करता है)-को और ऐसे ब्राह्मणके अभावमे उपकुर्वाणक (जो ब्रह्मचर्यव्रत पूर्णकर गृहस्थाश्रमम प्रवेश करनेवाला है ऐसे ब्रह्मचारी) ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। उसका भी अभाव होनेपर आसक्तिरहित मुमुक्षु गृहस्थ ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। इन सभीके अभाव होनेपर साधक (ब्राह्मण) गृहस्थको भोजन कराना चाहिय॥ १७-१८॥

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हवि ।
फल वेदविदा तस्य सहस्रादतिरिच्यते॥१९॥
तस्माद् यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम्।
भोजयेद् हव्यकव्येषु अलाभादितरान् द्विजान्॥२०॥

प्रकृतिके गुण और तत्त्वको जाननेवाला (तत्त्ववत्ता) यति (सयतचित्त ब्राह्मण) जिस (व्यक्ति)-का भोजन करता है उसे (सहस्रों) वेदज्ञोंका भोजन करानेकी अपेक्षा भी सहस्रगुना अधिक फल मिलता है। इसलिये ईश्वरज्ञानमे तत्पर श्रेष्ठ योगीको देवकार्य एव पितृकार्यमे प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिय। इनकी प्राप्ति न होनेपर दूसरे

१-मूलमें 'सत्री' शब्द है। इसका अर्थ यज्ञ यज्ञविशेष दान परायण कथाश्रवण एव अनेक दिन साध्य अनुष्ठान आदि हैं। इन सबके अनुष्ठाता ब्राह्मणको सत्री कहा जायगा।

२- महायज्ञ पञ्चमहायज्ञोंको कहा जाता है जो इस प्रकार हैं— (१) ब्रह्मयज्ञ (वेदका अध्ययनाध्यापन) (२) पितृयज्ञ (तर्पण) (३) देवयज्ञ (होम) (४) भूतयज्ञ (भूतबलि) और (५) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-पूजन)।

३-मूलमें 'अग्निचित्' शब्द है। इसका अर्थ है— अग्निहोत्री।

४-सर्वविध ब्रह्मचर्यव्रत पूर्णकर स्नान विशेषरूप संस्कारके अनन्तर गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट या अप्रविष्ट द्विज स्नातक होता है। यहाँ ऐसे ब्रह्मचारीको संज्ञा है।

ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये॥ १९-२०॥

एष वै प्रथम कल्प प्रदाने हव्यकव्ययो।
अनुकल्पस्त्वय ज्ञेय सदा सद्भिरनुष्ठित ॥ २१॥
मातामह मातुल च स्वस्रीय श्वशुर गुरुम्।
दौहित्र विट्पति बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥ २२॥

हव्य और कव्य प्रदान करनेमे यह प्रथम कल्प है। (इसके अभावमे) सज्जनो (वेदशास्त्रनिष्ठो)-द्वारा सदा अनुष्ठित इस अनुकल्पको जानना चाहिये—मातामह (नाना), मातुल (मामा), भाजा, ससुर, गुरु दुहितापुत्र (नाती) विट्पति (जामाता), बन्धु (मौसी, बूआ एव मामी आदिके पुत्र), ऋत्विक् तथा यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणको भोजन कराया जाय॥ २१-२२॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्र धनै कार्योऽस्य सग्रह।
पैशाची दक्षिणा सा हि नैवामुत्र फलप्रदा॥ २३॥
काम श्राद्धेऽर्चयेन्मित्र नाभिरूपमपि त्वरिम्।
द्विषता हि हविर्भुक्त भवति प्रेत्य निष्फलम्॥ २४॥

श्राद्धमे मित्रको भोजन नही कराना चाहिये। इनका सरक्षण (सग्रह) धनके आदान-प्रदानद्वारा करना चाहिये। (यदि श्राद्धमे मित्रको भोजन कराकर दक्षिणा दी जाय तो) ऐसी दक्षिणा पैशाची होती है। यह परलोकमे कोई फल नहीं देती। (किसी विशेष स्थिति या उपर्युक्त कल्प-अनुकल्पके अभावमे) श्राद्धम भले ही मित्रका (यथोचित) सत्कार करे, किंतु अभिरूप (विद्वान्, मनोज्ञ) पात्र होनेपर भी शत्रुका सत्कार नहीं करना चाहिये, (क्योंकि) द्वेष रखनेवालेके द्वारा भुक्त हवि परलोकमे निष्फल होती है॥ २३-२४॥

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्य न दातव्य न हि भस्मनि हूयते॥ २५॥
यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथानृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम्॥ २६॥
यावतो ग्रसते पिण्डान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलास्त्वयोगुडान्॥ २७॥

(वेदादिका) अध्ययन न करनेवाला ब्राह्मण तृणमे लगी अग्निके समान शान्त (निस्तेज) हो जाता है। उस हव्य (यथासम्भव देव-पित्र्य-कार्यमे भोजनके लिये निमन्त्रण) नहीं देना चाहिये, क्योंकि भस्ममे हवन नहीं किया जाता है। जिस प्रकार ऊसर भूमिमे बीज बोनेवाला कुछ फल नहीं प्राप्त करता, उसी प्रकार वेद न जाननेवालेको हवि देनेसे दाताको कोई फल नहीं मिलता। मन्त्रको न जाननेवाला वह ब्राह्मण देव और पितृकार्यमे जितने पिण्डो (ग्रासों)-को ग्रहण करता है, मृत्युके अनन्तर वह उतने ही स्थूल और प्रज्वलित लोहेके पिण्डो (ग्रासो)-का भक्षण करता है॥ २५-२७॥

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमा।
यत्रैते भुञ्जते हव्य तद् भवदासुर द्विजा॥ २८॥
यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्।
स वै दुर्ब्राह्मणो नार्ह श्राद्धादिषु कदाचन॥ २९॥
शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजक।
वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धव॥ ३०॥

हे द्विजो! विद्या-सम्पन्न तथा उत्तम कुलमे उत्पन्न होनेपर भी आचारहीन नीच मनुष्य दैव और पित्र्यकार्यमे जो हव्य आदि ग्रहण करते हैं, वह (हव्यादि) आसुरी हो जाता है। जिसकी तीन पीढीतक वेद और यज्ञ आदिका उच्छेद हो जाता है, वह दुर्ब्राह्मण होता है, वह श्राद्ध आदिमें कभी भी पूजाके योग्य नहीं होता। शूद्रका नोकर, राजासे वेतन लेनेवाला, पतित (अधार्मिक), गाँवके पुरोहित, वध और बन्धनद्वारा जीविका चलानेवाले—ये छ ब्रह्मबन्धु होते हैं॥ २८-३०॥

दत्तानुयोगान् वृत्त्यर्थं पतितान् मनुरब्रवीत्।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिता॥ ३१॥
श्रुतिविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवा।
असमानान् याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्तिता॥ ३२॥
असस्कृताध्यापका ये भृत्या वाध्यापयन्ति ये।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिता॥ ३३॥
वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्था पञ्चरात्रविदो जना।
कापालिका पाशुपता पाषण्डा ये च तद्विधा॥ ३४॥
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसा।
न तस्य तद् भवच्छ्राद्ध प्रेत्य चेह फलप्रदम्॥ ३५॥

मनुने जीविकाके लिये नौकरी करनेवालेको पतित बतलाया है। ये सभी एव वेदका विक्रय करनेवाले (ब्राह्मण) श्राद्ध आदि कार्योंमे निन्दित हैं। जो वेदका

विक्रय करनेवाले, हीन अथवा उच्चवर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न तथा असमान वर्णोका पौरोहित्य करनेवाल हैं, व पतित कह गये हें। जो असस्कृता (सस्काररहिता)-के अध्यापक हैं, वेतनके लिये अध्यापन तथा वेदाध्ययन करनेवाले हैं, वे पतित कह गय हैं। वृद्ध श्रावक अर्थात् बौद्ध, निर्ग्रन्थ अर्थात् जैन, पाञ्चरात्रके ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत (सम्प्रदाय-विशेपके) और उसी प्रकारके पाखडी, तमोगुणी, दुरात्मा व्यक्ति—ये जिसके हविष्यानका भक्षण करते हैं, उसका किया श्राद्ध न तो इस लोकम फल देनेवाला होता है और न परलोकम॥ ३१-३५॥

अनाश्रमी यो द्विज स्यादाश्रमी वा निरर्थक ।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेया पक्तिदूपका ॥३६॥

जा द्विज (ब्राह्मण) यथाविधि आश्रमको स्वीकार करनेवाले नहीं हैं, अथवा नाममात्रक लिये किसी आश्रमका आश्रय लिये हैं, वे मिथ्याश्रमी कहे गये हैं, उन्ह पक्तिदूपक समझना चाहिये॥ ३६॥

दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्चित्री च श्यावदन्तक ।
विद्धप्रजननश्चैव स्तेन क्लीबोऽथ नास्तिक ॥३७॥
मद्यपो वृपलीसक्तो वीरहा दिधियूपति ।
आगारदाही कुण्डाशी सामविक्रयिणो द्विजा ॥३८॥

विकारयुक्त चर्म एव नखवाला, कुष्ठरोगी, श्वेत कुष्ठरोगी, स्वभावत काले दाँतवाला, विद्ध लिङ्गवाला, चोर नपुसक, नास्तिक, मद्य पीनवाला, शूद्रा स्त्रीम आसक्त, वीरहा (वह अग्निहोत्री जिसका अग्निहोत्र नष्ट हा गया है) विधवा स्त्रीसे विवाह करनेवाला घरका जलानेवाला, कुण्ड (पतिके जीवित रहते अन्य पुरुपसे उत्पन्न सतान)-का भोजन करनेवाला तथा सामलताका विक्रय करनेवाला—इस प्रकारके ब्राह्मण (श्राद्धादिम त्याज्य हैं)॥ ३७-३८॥

परिवत्ता तथा हिंस्र परिवित्तिर्निराकृति ।
पौनर्भव कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शक ॥३९॥

परिवत्ता अथात् बड भाइक अविवाहित अथवा अनग्निक रहते हुए विवाह तथा अग्नि स्वीकार करनेवाला छोटा भाई हिसा करनवाला परिवित्ति—(छोट भाईके विवाहित हानेस पहल अविवाहित रहनवाला बडा भाई) निराकृति अर्थात् पञ्चमहायज्ञाका अनुष्ठान न करनवाला पानर्भव[१] (दूसरे पतिस उत्पन पुत्र) ब्याज लनेवाला तथा नक्षत्रदर्शक (ज्योतिपसे जीविका चलानेवाले)-का श्राद्धादिम परित्याग करना चाहिये॥ ३९॥

गीतवादित्रनिरतो व्याधित काण एव च।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णिस्तथैव च॥४०॥
कन्यादूपी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ दवल ।
मित्रधुक् पिशुनश्चैव नित्य भार्यानुवर्तक ॥४१॥

गाने-वजानेम निरत, रागी, काना, हीन अङ्गावाला, अधिक अङ्गावाला अवकार्णी (स्त्रीस सम्पर्ककर ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट करनेवाला), कन्याको दूपित करनेवाला, कुण्ड (पतिके जीवित रहते परपुरुपसे उत्पन्न सतान), गोलक (पतिकी मृत्युक बाद उपपतिस उत्पन्न सतान), अभिशस्त (मिथ्यापवादग्रस्त) (देवल)-मन्दिर आदिसे आजाविका प्राप्त करनेवाले (पुजारी आदि), मित्रद्रोही, चुगली करनेवाला ओर नित्य भार्याके वशीभूत रहनेवाला—ये श्राद्धादिमे त्याज्य हैं॥ ४०-४१॥

मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च।
गात्रभिद् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैव च॥४२॥
अनपत्य कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवक ।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदक ॥४३॥
देवनिन्दापरश्चैव वदनिन्दारतस्तथा।
द्विजनिन्दारतश्चैत वर्ज्या श्राद्धादिकर्मसु॥४४॥
कृतघ्न पिशुन क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दक ।
मित्रधुक् कुहकश्चैव विशेपात् पक्तिदूपका ॥४५॥

माता, पिता गुरु तथा पत्नीका त्याग करनेवाला सगोत्र (भाई-बन्धु)-में भेद-बुद्धि पैदा करनेवाला, शौचभ्रष्ट (शौचाचारहीन) शस्त्रजीवी सतानहीन, झूठी गवाही देनेवाला याचक रगद्वारा जीविकापार्जन करनवाला (चित्रकार, नाट्यकार) समुद्रकी यात्रा करनेवाला कृतघ्न आर प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेवाला देवनिन्दापरायण वदनिन्दाम निरत तथा द्विजकी निन्दा करनेवाला—ये सभी श्राद्धादि कर्मोमे त्याज्य हैं। कृतघ्न चुगली करनेवाला क्रूर, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, मित्रद्रोही तथा ऐन्द्रजालिक (मायावी दाम्भिक)—ये विशेपरूपसे पक्तिदूपक हैं॥ ४२—४५॥

सर्वे पुनरभाज्याश्चास्त्वदानार्हाश्च कर्मसु।
ब्रह्मभावनिरस्ताश्च वर्जनीया प्रयत्नत ॥४६॥

(उपर्युक्त) सभी प्रकारक व्यक्ति श्राद्धम भोजन न कराने याग्य आर सभी कर्मोम दानके अयाग्य होत हैं।

१-मनुस्मृति (९। १७५)-के अनुसार।

ब्रह्मभावसे शून्य अर्थात् ब्राह्मणत्वसे च्युत व्यक्तियोंका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये॥ ४६॥

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सध्योपासनवर्जितः।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः॥४७॥
अधीतनाशनश्चैव स्नानहोमविवर्जितः।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः॥४८॥

शूद्रके अन्न एवं रससे पुष्ट हुए अङ्गोंवाला, सध्योपासनासे रहित पञ्चमहायज्ञोंसे शून्य ब्राह्मण पङ्क्तिदूषक होता है। पढ़े गये वेदादिका विस्मरण करनेवाला, स्नान एवं होमसे रहित, तमोगुणी तथा रजोगुणी ब्राह्मण पङ्क्तिदूषक होता है॥ ४७-४८॥

बहुनात्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते।
निन्दितानाचरन्त्येते वर्जनीया प्रयत्नतः॥४९॥

अधिक क्या कहा जाय। जो शास्त्रविहित स्वकर्मोंको नहीं करते और शास्त्रनिषिद्ध (निन्दित) कर्मोंका आचरण करते हैं, वे प्रयत्नपूर्वक त्याग करने योग्य हैं॥ ४९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरणमें ब्राह्मण निमन्त्रित करनेकी विधि, निमन्त्रित ब्राह्मणके कर्तव्य, श्राद्ध-विधि, श्राद्धमें प्रशस्त पात्र, पितरोंकी प्रार्थना, श्राद्धके दिन निषिद्ध कर्म, वृद्धि-श्राद्धका विधान, श्राद्ध-प्रकरणका उपसंहार

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः।
संनिपत्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः संनिमन्त्रयेत्॥१॥
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च।
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्॥२॥

व्यासजी बोले—सावधानीपूर्वक गोबर और जलसे (श्राद्ध) भूमिको शुद्धकर सभी ब्राह्मणोंकी सेवामें पहुँचकर सज्जन पुरुषोंद्वारा उन्हें निमन्त्रित करना चाहिये। श्राद्धके पहले दिन ब्राह्मणोंकी (नम्रभावसे आदरपूर्वक) पूजाकर उनसे कहना चाहिये—'कल हमारे यहाँ श्राद्ध होगा (आपलोग कृपाकर पधारें)'। ऐसा असम्भव होनेपर दूसरे (दिन) अर्थात् श्राद्धके ही दिन यथोक्त लक्षणोंसे समन्वित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये॥ १-२॥

तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः॥३॥
ब्राह्मणैस्ते सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥४॥
आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते।
वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः॥५॥

मनके समान शीघ्र गतिवाले पितर जब यह सुन लेते हैं कि श्राद्धकाल उपस्थित है, तब परस्पर विचारकर श्राद्धकर्ताके यहाँ एकत्र हो जाते हैं। अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले पितर वायुरूपसे स्थित रहते हैं, ब्राह्मणोंके साथ भोजन करते हैं और भोजन करके परमगति प्राप्त करते हैं। श्राद्धका समय आनेपर सभी आमन्त्रित ब्राह्मणोंको संयमी और ब्रह्मचर्यपरायण होकर रहना चाहिये॥ ३—५॥

अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः।
भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद् वर्जयेज्जपम्॥६॥

श्राद्ध करनेवालेको क्रोध, उतावलापन तथा प्रमादका त्यागकर समाहित होना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। उसे भारका ढोना, मैथुन, मार्गगमन (यात्रा आदि) और जपका (किसी कामनापरक यज्ञादिका श्राद्धके समय) परित्याग करना चाहिये॥ ६॥

आमन्त्रितो ब्राह्मणो वा योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम्।
स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च॥७॥
आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं चामन्त्रयेद् द्विजम्।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते॥८॥
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ च जायते॥९॥

निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं पांशुभोजनाः ॥ १० ॥

(पहलेसे ही) निमन्त्रित ब्राह्मण (यदि) किसी दूसरेका निमन्त्रण स्वीकार करता है तो वह घोर नरकमें जाता है और बादमें सूकरकी योनि प्राप्त करता है। (किसी एक) ब्राह्मणको आमन्त्रित करके जो मोहसे दूसरेको आमन्त्रित करता है, वह व्यक्ति उससे भी अधिक पापी होता है (जो निमन्त्रित होनेपर भी दूसरी जगह जाता है) और विष्ठाका कीड़ा होता है। श्राद्धमें निमन्त्रित जो ब्राह्मण मैथुन करता है, वह ब्रह्महत्या (के पाप)-को प्राप्त करता है और बादमें तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न होता है। श्राद्धमें निमन्त्रित जो दुर्बुद्धि ब्राह्मण यात्रा करता है, उसके पितर उस महीने धूलिका भक्षण करते हैं॥ ७—१० ॥

निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे प्रकुर्यात् कलहं द्विजः।
भवन्ति तस्य तन्मासं पितरो मलभोजनाः ॥ ११ ॥
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः।
अक्रोधनः शौचपरः कर्ता चैव जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥

श्राद्धमें निमन्त्रित जो ब्राह्मण कलह करता है, उस महीनेमें उसके पितर मलका भोजन करते हैं, इसलिये श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणको नियतात्मा, क्रोधशून्य तथा शौचपरायण रहना चाहिये और श्राद्धकर्ताको भी जितेन्द्रिय होना चाहिये॥ ११-१२ ॥

श्वोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान् समाहितः।
समूलानाहरेद् वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान्॥ १३ ॥
दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तं शुभलक्षणम्।
शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत्॥ १४ ॥
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव सानुषु।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा॥ १५ ॥

श्राद्ध-दिनके पूर्व दिन समाहित होकर दक्षिण दिशामें जाकर अत्यन्त निर्मल जडसहित और दक्षिणकी ओर झुके हुए कुशा और जलको लाना चाहिये। दक्षिणकी ओर झुके हुए, स्निग्ध अन्यके सम्बन्धसे रहित (अर्थात् स्व-स्वत्ववाले) शुभ लक्षणोंवाले, पवित्र तथा एकान्त स्थानको गोमयसे उपलेपन करना चाहिये। नदियोंके किनारों तीर्थों अपनी भूमिमें, पर्वतके शिखरों तथा एकान्त स्थानोंपर श्राद्ध करनेसे पितर सदा संतुष्ट रहते हैं॥ १३—१५ ॥

पारक्ये भूमिभागे तु पितॄणां नैव निर्वपेत्।
स्वामिभिस्तद् विहन्येत मोहाद्यत् क्रियते नरैः ॥ १६ ॥
अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ॥ १७ ॥
तिलान् प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान्।
असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुध्यत्यजेन वा॥ १८ ॥

दूसरेकी भूमिमें पितरोंका श्राद्ध नहीं करना चाहिये। यदि मोहवश मनुष्योंके द्वारा ऐसा किया जाता है तो वह कर्म (भूमिके) स्वामीके द्वारा विफल (नष्ट) कर दिया जाता है। जंगल, पर्वत, पुण्यतीर्थ, देवमन्दिर—ये सभी स्थान बिना स्वामीवाले (अर्थात् सार्वजनिक) कहे जाते हैं। इनपर किसीका स्वामित्व नहीं होता। (श्राद्ध-भूमिमें) सर्वत्र तिलोंको फैलाना चाहिये। तिलोंके द्वारा असुरोंसे उपहत अर्थात् आक्रान्त (श्राद्धभूमि) शुद्ध हो जाती है। १६—१८ ॥

ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमच्युतम्।
चोष्यपेयसमृद्धं च यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥ १९ ॥
ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तलोमनखान् द्विजान्।
अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद् दन्तधावनम्॥ २० ॥

तदनन्तर अनेक प्रकारसे शुद्ध किये गये प्रशस्त अन्नसे ऐसे अनेक प्रकारके भोज्य पक्वान्न बनाने चाहिये, जो चोष्य, पेय आदि उत्तमोत्तम व्यंजनोंसे यथाशक्ति समृद्ध हों। तदनन्तर मध्याह्नकाल व्यतीत होनेपर कृतक्षौर (नख और बाल कटाये हुए) द्विजों (ब्राह्मणों)-से मार्गमें मिलकर उन्हें दन्तधावन प्रदान करे॥ १९-२० ॥

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम्।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद् वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥ २१ ॥
ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
पाद्यमाचमनीयं च सम्प्रयच्छेद् यथाक्रमम्॥ २२ ॥
ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहितानि च॥ २३ ॥
दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च।
दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ॥ २४ ॥
तेषूपवेशयेदेतानासनं स्पृश्य स द्विजम्।
आसध्वमिति संजल्पन् आसनास्ते पृथक् पृथक्॥ २५ ॥

वैश्वदैवत्य मन्त्रका उच्चारण कर उन्हे उदुम्बरके पात्रोद्वारा अभ्यञ्जनके लिये उपयोगी तैल, स्नानके लिये जल अलग-अलग दे। तदुपरान्त उनके स्नान कर लेनेपर उठकर हाथ जोडते हुए उन्हे क्रमश पाद्य एव आचमन देना चाहिये। विश्वेदेवाके निमित्त जो ब्राह्मण पहले निमन्त्रित हैं, उन्हे तीन कुश रखकर पूर्वाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिये। पितृ-ब्राह्मणाको दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तिलोदकसे प्रोक्षितकर दक्षिणाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिये। श्राद्धकर्ता आसनका स्पर्श करते हुए 'आसध्वम्'—'बैठिये' इस प्रकार कहकर उन पितृ-ब्राह्मणोको पृथक्-पृथक् आसनपर बिठाये[1]॥ २१—२५॥

द्वौ दैवे प्राड्मुखौ पित्र्ये त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा।
एकैक वा भवेत् तत्र देवमातामहेष्वपि॥ २६॥
सत्क्रिया देशकालौ च शौच ब्राह्मणसम्पदम्।
पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥ २७॥
अपि वा भोजयेदेक ब्राह्मण वेदपारगम्।
श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम्॥ २८॥

(विश्वेदेव) देवसम्बन्धी दो ब्राह्मणाको पूर्वाभिमुख, पित्र्यसम्बन्धी तीन ब्राह्मणोको उत्तराभिमुख बैठाना चाहिये अथवा देवसम्बन्धी और मातामह (पित्र्यसम्बन्धी)-के भी निमित्त एक-एक ब्राह्मणको बैठाना चाहिये। (श्राद्धमे) सत्कार देश, काल, पवित्रता और ब्राह्मणसम्पद्—इन पाँचोका (अधिक) विस्तारके कारण नाश होता है, अत विस्तारकी इच्छा नहीं करनी चाहिये[2], विस्तारकी अपेक्षा श्रुत-शील आदिसे सम्पन्न अनपेक्षित क्षणोसे रहित वेदके पारगत एक ही ब्राह्मणको भाजन कराना उचित हे॥ २६—२८॥

उद्धृत्य पात्रे चान्न तत् सर्वस्मात् प्रकृतात् पुन।
देवतायतन चास्मै निवेद्यान्यत् प्रवर्तयेत्॥ २९॥
प्रास्येदग्नौ तदन्न तु दद्याद् वा ब्रह्मचारिणे।
तस्मादेकमपि श्रेष्ठ विद्वास भोजयेद् द्विजम्॥ ३०॥

किसी पात्रमे समस्त प्रकृत वस्तुओ (श्राद्धीय भोज्य पदार्थोमेसे उचित मात्रामे भोज्य लेकर) देवमन्दिरमे देवताके उद्देश्यसे प्रथम निवेदित करके अन्य कार्य प्रारम्भ करना चाहिये, उस (श्राद्धीय लवणरहित सिद्ध) अन्नको अग्निमे छोडना चाहिये अथवा ब्रह्मचारीको देना चाहिये। अत एक भी श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये॥ २९-३०॥

भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थित।
उपविष्टेषु य श्राद्धे काम तमपि भोजयेत्॥ ३१॥
अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्ध प्रशस्यते।
तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजै॥ ३२॥

श्राद्धम निमन्त्रित ब्राह्मणोके बैठ जानेपर भोजनके निमित्त उपस्थित हुए भिक्षुक अथवा ब्रह्मचारीको भी उनकी इच्छानुसार (श्राद्धमे जो यथेष्ट हो वह) भोजन कराना चाहिये। जिसके श्राद्धम अतिथि भोजन नहीं करता, उसका श्राद्ध प्रशसनीय नहीं होता। इसलिये द्विजोको प्रयत्नपूर्वक श्राद्धोमे अतिथियाका पूजन करना चाहिये॥ ३१-३२॥

आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातय।
काकयोनि व्रजन्त्येते दाता चैव न सशय॥ ३३॥
हीनाङ्ग पतित कुष्ठी व्रणी पुक्कसनास्तिकौ।
कुक्कुटा शूकरा श्वानो वर्ज्या श्राद्धेषु दूरत॥ ३४॥
बीभत्सुमशुचि नग्न मत्त धूर्त रजस्वलाम्।
नीलकाषायवसन पाषण्डाश्च विवर्जयेत्॥ ३५॥

जो द्विज (ब्राह्मण) आतिथ्यरहित श्राद्धमे भोजन करते हैं, वे कौएकी योनिम जाते हैं और दाताकी भी यही गति होती है, इसमे सदेह नहीं। श्राद्धमे हीन अङ्गवाला, पतित, कुष्ठरोगी, व्रणयुक्त, पुक्कस (जातिविशेष), नास्तिक, कुक्कुट, शूकर तथा कुत्ता—ये दूरसे ही हटा देने योग्य हैं। बीभत्स, अपवित्र नग्न, मत्त, धूर्त, रजस्वला स्त्री, नीला और कषाय वस्त्र धारण करनेवाले-तथा पाखडीका परित्याग करना चाहिये॥ ३३—३५॥

यत् तत्र क्रियते कर्म पैतृक ब्राह्मणान् प्रति।
तत्सर्वमेव कर्तव्य वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥ ३६॥

१-सामान्यत ब्राह्मणकी जगह कुशपर श्राद्ध किया जाता है किंतु सपात्रिक श्राद्धमे ब्राह्मणको बैठाकर श्राद्ध करनेका विधान है।

२-इसका आशय यह है कि श्राद्धके अवसरपर अधिक विस्तार करनेपर यथायोग्य सत्कार उचित देश श्राद्धक शास्त्रविहित काल यथाशास्त्र पवित्रता तथा श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणकी सुलभता निश्चित ही सदिग्ध हो जाती है।

यथापविष्टान् सर्वांस्तानलकुर्याद् विभूषणै ।
स्रग्दामभि शिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनै ॥३७॥

श्राद्धमे पितृ-ब्राह्मणोके प्रति जो भी कर्म किया जाता है, वह सब वैश्वदेवकर्मके अनन्तर करना चाहिये। यथा-विधि (श्राद्धीय भोजनमे) बैठे हुए उन सभी (ब्राह्मणो)-को आभूषण, माला, यज्ञसूत्र, शिरोवेष्टन, धूप, वस्त्र तथा अनुलेपन आदिके द्वारा अलकृत करना चाहिये॥ ३६-३७॥

ततस्त्वावाहयेद् देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया।
उदड्मुखो यथान्याय विश्वे देवास इत्यृचा॥ ३८॥
द्वे पवित्रे गृहीत्वाथ भाजने क्षालिते पुन ।
श नो देव्या जल क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवास्तथा॥ ३९॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत्।
प्रदद्याद् गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तित ॥४०॥

तदनन्तर ब्राह्मणाकी आज्ञासे उत्तराभिमुख होकर यथा-विधि 'विश्वे देवास०' इस ऋचाका पाठकर देवाका आवाहन करना चाहिये। दो पवित्र (कुश) ग्रहणकर 'श नो देवी०'—यह मन्त्र पढकर प्रक्षालित पात्रमे जल डाले और 'यवोऽसीति०' मन्त्रसे यव (जौ) भी डाले। 'या दिव्या०' इस मन्त्रसे (ब्राह्मणके) हाथपर अर्घ (अर्घपात्रका जल) छोडे और यथाशक्ति गन्ध, माला, धूप तथा दीप आदि प्रदान करे॥ ३८—४०॥

अपसव्य तत कृत्वा पितॄणा दक्षिणामुख ।
आवाहन तत कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुध ॥४१॥
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदा यन्तु नस्तत ।
श नो देव्योदक पात्रे तिलोऽसीति तिलास्तथा॥४२॥
क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वै पुन ।
सस्रवाश्च तत सर्वान् पात्रे कुर्यात् समाहित ।
पितृभ्य स्थानमेतेन न्युब्ज पात्र निधापयेत्॥४३॥
अग्नौ करिष्येत्यादाय पृच्छत्यन्न घृतप्लुतम्।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवान्॥४४॥
यज्ञोपवीतिना होम कर्तव्य कुशपाणिना।
प्राचीनावीतिना पित्र्य वैश्वदेव तु होमवत्॥४५॥

तदनन्तर विद्वान् व्यक्तिको अपसव्य एव दक्षिणाभिमुख होकर 'उशन्तस्त्वा०' इस ऋचासे पितरोका आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके उनकी आज्ञासे 'आ यन्तु न ०' इस मन्त्रका जप करना चाहिये। 'श नो देवी०' इस मन्त्रसे पात्रमे जल डाले और 'तिलाऽसि०' इस मन्त्रसे तिल भी छोडे। पहलेके समान अर्घ प्रदानकर अथवा ब्राह्मणाके हाथमे (जलादि) प्रदानकर समाहित होकर पात्रमे सस्रव-अर्घका अवशिष्ट जल रखे। तदनन्तर 'पितृभ्य स्थानम्०' इस मन्त्रसे पात्रको अधोमुख (उलटकर) रखे। घृतयुक्त अन्न लेकर 'अग्नौ करिष्ये' ऐसा पूछे और (उन ब्राह्मणाद्वारा) 'कुरुष्व—करो' ऐसी आज्ञा प्राप्त होनेपर उपवीती (सव्य होकर) हवन (अग्नौकरण) करे। हाथमे कुश लेकर और यज्ञोपवीती (सव्य) होकर होम करना चाहिये। पितृसम्बन्धी कार्य प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर करे और वैश्वदेवसम्बन्धी कार्य होमके समान अर्थात् सव्य होकर करे॥ ४१—४५॥

दक्षिण पातयेज्जानु देवान् परिचरन् पुमान्।
पितॄणा परिचर्यासु पातयेदितर तथा॥४६॥
सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन्।
अग्नये कव्यवाहाय स्वधेति जुहुयात् तत ॥४७॥

पुरुषको दाहिना जानु जमीनपर रखकर देवाकी परिचर्या करनी चाहिये और पितराकी परिचर्याम बायाँ जानु जमीनपर रखना चाहिये। तब 'सोमाय वै पितृमते स्वधा नम ' इस मन्त्रका उच्चारणकर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा' ऐसा कहकर हवन करे॥ ४६-४७॥

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्।
महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहित ॥४८॥
ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणा दिशम्।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं स्थान कृत्वा तु सैकतम्॥४९॥
मण्डल चतुरस्र वा दक्षिणावनत शुभम्।
त्रिरुल्लिखेत् तस्य मध्य दर्भेणैकेन चैव हि॥५०॥
तत सस्तीर्य तत्स्थाने दर्भान् वै दक्षिणाग्रकान्।
त्रीन् पिण्डान् निर्वपेत् तत्र हवि शेषात् समाहित ॥५१॥

अग्निके अभाव होनेपर सावधानचित्त होकर ब्राह्मणके हाथपर, महादेवके समीप अथवा गोशालामे हवनीय द्रव्य रखना चाहिये। तदनन्तर उनकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षिण दिशामे जाकर भूमिको गोमय (गोबर)-से लीपकर उस स्थानमे बालू बिछाये। तदनन्तर उस स्थानपर दक्षिणकी ओर झुकी हुई गोल अथवा चौकोर शुभ (बालुकामय)

वेदी बनाये, उस वेदीके बीचमें एक कुशसे तीन रेखा खींचे और उस स्थान (वेदी)-पर दक्षिणाग्र कुशाको बिछाकर हविके बचे हुए अंशसे निर्मित तीन पिण्ड उस (वेदी)-पर प्रदान करे॥ ४८—५१॥

न्युप्य पिण्डांस्तु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्।
तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिरायम्य शनैरसून्।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित्॥५२॥
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः॥५३॥

पिण्ड-प्रदानके अनन्तर लेपभागके अधिकारी[1] पितरोंके लिये पिण्डाधार-कुशाके मूलमें उस (पिण्ड-शेषसे संसृष्ट) हाथका प्रोक्षण करे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि आचमन करे और धीरे-धीरे श्वास खींचकर अपने बायसे पीछे मुख करके धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए पिण्डोंके सामने अपना मुख कर पूरा श्वास छोड़े तथा उस अन्न एवं पितरोंको नमस्कार करे। पुनः पिण्डके समीप (ऊपर) धीरे-धीरे (अर्घपात्रका) शेष जल छोड़े (इसे अवनेजन कहते हैं)। तदनन्तर सावधानीके साथ रखे हुए उन पिण्डोंको झुककर क्रमानुसार सूँघे (और पाकपात्रमें रख दे।)॥ ५२-५३॥

अथ पिण्डावशिष्टान्नं विधिना भोजयेद् द्विजान्।
मांसान्यपूपान् विविधान् दद्यात् कृसरपायसम्॥५४॥
सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि घृतं मधु।
अन्नं चैव यथाकामं विविधं भक्ष्यपेयकम्॥५५॥

पिण्डदानसे बचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक खिलाना चाहिये। पूआ, कृसर, पायस (तिलके साथ पकाये चावलकी खीर), सूप, शाक, फल, ईख, दूध, दही, घृत, मधु, अन्न तथा अनेक प्रकारके खाने और पीने योग्य पदार्थ उनकी (ब्राह्मणोंकी) रुचिके अनुसार खिलाने चाहिये॥ ५४-५५॥

यद् यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत्।
धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा॥५६॥
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यस्तथैव च॥५७॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो-जो रुचिकर हो (और श्राद्धमें विहित हो) वह सब देना चाहिये। साथ ही अनेक प्रकारके धान्य, तिल तथा शर्कराका दान करना चाहिये। कल्याण प्राप्त करनेकी इच्छावाले (श्राद्धकर्ताको चाहिये कि) ब्राह्मणोंको फल, मूल और पानक (विविध स्वादयुक्त पेय पदार्थ-विशेष)-को छोड़कर अन्य सभी अन्न उष्ण-अवस्थामें (गरम-गरम) प्रदान करे॥ ५६-५७॥

नाश्रूणि पातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत्॥५८॥
क्रोधेन चैव यद् दत्तं यद् भुक्तं त्वरया पुनः।
यातुधाना विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम्॥५९॥
स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ तु द्विजन्मनाम्।
न चात्र श्येनकाकादीन् पक्षिणः प्रतिषेधयेत्।
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः॥६०॥

(श्राद्धकर्ता) कभी भी अश्रुपात न करे, न कोप करे, न झूठ बोले, पाँवसे अन्नको स्पर्श न करे और न अन्नका (पैरोंसे) अवधूनन (मर्दन) करे। क्रोध करके जो दिया जाता है, जल्दी-जल्दी जो भोजन किया जाता है और बोलते हुए जो खाया जाता है, उस पदार्थको राक्षस हर लेते हैं। ब्राह्मणोंके समीप स्वेदयुक्त शरीरसे न रहे। श्राद्धस्थलसे श्येन, कौआ आदि पक्षियोंको हटाना नहीं चाहिये, क्योंकि (सम्भव है) इनके ही रूपमें पितृगण वहाँ खानेकी इच्छासे आये हों॥ ५८—६०॥

न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः॥६१॥
काञ्चनेन तु पात्रेण राजतौदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः॥६२॥
पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः॥६३॥

१- पितामहके ऊपरके प्रपितामह आदि तीसरी परम्परासे आगेके सभी पितर पिण्डके अधिकारी नहीं होते हैं अपितु पिण्ड बनाते समय हाथमें जो पिण्डका शेष अन्न संसृष्ट (लगा) रहता है उसीको ग्रहण करनेके अधिकारी होते हैं, अतः प्रपितामहके आगेकी पीढ़ीवाले पितरोंको 'लेपभागभुक्' कहा जाता है। इनकी तृप्ति तभी होती है जब प्रपितामहतक तीन परम्पराको पिण्ड प्रदान कर लेनेके अनन्तर पिण्डोंके आधार-कुशोंके मूलमें उन दोनों हाथोंका प्रोक्षण किया जाय, जिनसे पिण्डोंको बनाया गया है।

वहाँ (श्राद्धमे) हाथसे प्रत्यक्ष लवण नहीं देना चाहिये। लोहेके पात्रद्वारा और अश्रद्धासे कोई वस्तु नहीं देनी चाहिये। स्वर्ण, रजत या औदुम्बरके पात्रसे तथा विशेष रूपसे खड्ग नामके पात्र-विशेपसे दिया हुआ पदार्थ अक्षय होता है। जो व्यक्ति श्राद्धमे मिट्टीके वर्तनोंमे पितराको भोजन कराता है, वह घोर नरकमे जाता है, ऐसे ही भोजन करनेवाले ब्राह्मण तथा (श्राद्ध करानेवाले) पुरोहित भी नरकमे जाते हैं॥ ६१—६३॥

न पक्त्या विषम दद्यान्न याचन्न च दापयेत्।
याचिता दापिता दाता नरकान् यान्ति दारुणान्॥ ६४॥
भुञ्जीरन् वाग्यता शिष्टा न ब्रूयु प्राकृतान् गुणान्।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणा॥ ६५॥

एक पक्तिमे (भोजन करनेवालोंके साथ परोसनम) विषम व्यवहार नहीं करना चाहिये। सबको समान रूपसे देना चाहिये। (भोजन करनेवालाको भी विषम दृष्टिसे) न तो माँगना चाहिये न किसी दूसरेको दिलाना चाहिये, क्याकि ऐसा (करनेपर) माँगनेवाला, दिलानेवाला और देनेवाला—ये तीनो भीषण नरकोमे जाते है। शिष्ट लोगाको मौन होकर भोजन करना चाहिये। (अन्नके) प्राकृत गुणोका वर्णन नहीं करना चाहिये। पितर तभीतक भोजन करते हैं, जबतक भोज्य पदार्थके गुणोका वर्णन नहीं होता॥ ६४-६५॥

नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथम द्विज।
बहूना पश्यता सोऽज्ञ पक्त्या हरति किल्बिषम्॥ ६६॥
न किञ्चिद् वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तम।
न मास प्रतिषेधेत न चान्यस्यान्नमीक्षयेत्॥ ६७॥
यो नाश्नाति द्विजो मास नियुक्त पितृकर्मणि।
स प्रेत्य पशुता याति सम्भवानेकविशतिम्॥ ६८॥
स्वाध्याय श्रावयेदेषा धर्मशास्त्राणि चैव हि।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पाश्च शोभनान्॥ ६९॥
ततोऽन्नमुत्सृजेद् भुक्ते अग्रता विकिरन् भुवि।
पृष्ट्वा तृप्ता स्थ इत्येव तृप्तानाचामयेत् तत॥ ७०॥

अग्रासनपर (प्रथम पक्तिमे) बैठे हुए किसी एक द्विजको उस पक्ति या अन्य पक्तिमे बैठे द्विजा (ब्राह्मणा)-के देखते-देखते (उनके द्वारा भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व) पहले अकले भोजन आरम्भ नहीं करना चाहिये (अर्थात् अपनी तथा अन्य पक्तियाम बैठे हुए सभी ब्राह्मणाक साथ ही भोजन आरम्भ करना चाहिये)। क्याकि ऐसा करनेपर वह अज्ञ (द्विज) पक्तिमे बैठे हुए देखनेवालाके पापका भागी होता है। श्राद्धमे नियुक्त श्रेष्ठ द्विजको किसी वस्तुका बहिष्कार नहीं करना चाहिये और दूसरेके अन्नकी ओर नहीं देखना चाहिये। श्राद्धमे भोजन करते हुए ब्राह्मणाको वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास-पुराण तथा शुभ श्राद्धकल्पा (श्राद्धीय-नियमा)-को सुनाना चाहिये। ब्राह्मणाके भोजन कर लेनेपर उनसे 'क्या आप लोग तृप्त हो गये?' इस प्रकार पूछना चाहिये और उनके भोजनपात्रके सम्मुख परिवेषणसे अवशिष्ट अन्नका विकिरण करना चाहिये (साथ ही वृद्ध प्रपितामह आदि लेपभागके अधिकारी पितराके लिये श्राद्धीय सिद्ध अन्नका उत्सर्ग करना चाहिये)। तदनन्तर तृप्त ब्राह्मणाको आचमन कराना चाहिये॥ ६६—७०॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति।
स्वधाऽस्त्विति च त ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्॥ ७१॥
ततो भुक्तवता तेषामन्नशेष निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु वै द्विजै॥ ७२॥

आचमन कर लनेपर उन्हें 'चतुर्दिक् रमण करे' ऐसा कहना चाहिये। तब ब्राह्मण उसे 'स्वधाऽस्तु' कहकर आशीर्वाद दे। उनके (ब्राह्मणाके) भोजन करनेसे शेष बचे अन्नको (उन ब्राह्मणोको ही) निवेदित करे। अनन्तर वे ब्राह्मण जैसा कहे, वैसा ही उनकी आज्ञामे करे[1]॥ ७१-७२॥

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाक्य गोष्ठेषु सूनृतम्।
सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि॥ ७३॥

पित्र्यकार्य (माता-पिताके एकोद्दिष्ट श्राद्ध)-मे 'स्वदितम्', गोष्ठीश्राद्धमे[2] 'सूनृतम्', आभ्युदयिक[3] श्राद्धमे 'सम्पन्नम्'

१-ब्राह्मण-भोजनके अनन्तर शेषान्न कि कर्तव्यम्? पूछना चाहिये। ब्राह्मणको कहना चाहिये 'इष्टै सह भोक्तव्यम्।

२-बारह श्राद्धोमे गोष्ठीश्राद्ध विश्वामित्रके द्वारा बताया गया है।

३-आभ्युदयिक श्राद्ध-वृद्धिश्राद्ध (विवाह यज्ञोपवीत-सस्कार आदिमें करणीय नान्दीश्राद्ध)।

तथा दैव (देवश्राद्ध[१])-में 'रोचते' ऐसा कहना चाहिये॥ ७३॥

विसृज्य ब्राह्मणास्तान् वै दैवपूर्वं तु वाग्यत ।
दक्षिणा दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन्॥ ७४॥
दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेय च नोऽस्त्विति॥ ७५॥

निमन्त्रित ब्राह्मणोको बिदाकर मौन होकर दैवकार्य (पूर्वाभिमुख आचमन, विष्णुस्मरण आदि पुन) करके दक्षिणाभिमुख होकर पितरोसे इन वराकी याचना करे—हमारे (कुलमे) दान देनेवालोकी, वेद (ज्ञान)-की तथा सततिकी वृद्धि हो। (शास्त्रो, ब्राह्मणो, पितरो, देवो आदिमे) हमारी श्रद्धा हटे नहीं। मेरे पास दान देनेके लिये बहुतसे पदार्थ हो॥ ७४-७५॥

पिण्डास्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।
मध्यम तु तत पिण्डमद्यात् पत्नी सुतार्थिनी॥ ७६॥
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण तोपयेत्।
ज्ञातिष्वपि च तुष्टेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत् तत ।
पश्चात् स्वय च पत्नीभि शेषमन्न समाचरेत्॥ ७७॥

(श्राद्धके) पिण्डाको गाय, अज (बकरा) अथवा ब्राह्मणको दे, ऐसा सम्भव न होनेपर अग्नि अथवा जलमे विसर्जित करना चाहिये। पुत्रकी इच्छा करनेवाली (श्राद्धकर्ताकी) पत्नीको मध्यम पिण्डका भक्षण करना चाहिये। तदनन्तर हाथाको धोकर आचमन करके अवशिष्ट भोज्य पदार्थोंसे अपनी जातीय बान्धवाको तृप्त करे, उन जातीय बन्धुआके तृप्त हो जानेपर अपने भृत्यजनोको भोजन कराये। तत्पश्चात् पत्नियाके साथ स्वय भी शेष अन्नको ग्रहण करे॥ ७६-७७॥

नोद्वासयेत् तदुच्छिष्ट यावन्नास्तगतो रवि ।
ब्रह्मचारी भवेता तु दम्पती रजनीं तु ताम्॥ ७८॥
दत्त्वा श्राद्ध तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्।
महारौरवमासाद्य कीटयोनि व्रजेत् पुन ॥ ७९॥
शुचिरक्रोधन शान्त सत्यवादी समाहित ।
स्वाध्याय च तथाध्वान कर्ता भोक्ता च वर्जयेत्॥ ८०॥

(श्राद्धस्थलसे) जूठा अन्न तबतक नहीं उठाना चाहिये, जबतक सूर्यास्त न हो जाय। श्राद्धकी उस रात्रिमे पति-पत्नीको ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिये। श्राद्ध करके और श्राद्धका भोजन करके जो मैथुन करता है, वह महारौरव नामक नरकमे जाता है, तदुपरान्त कीडेकी योनिमे जन्म लेता है। श्राद्धकर्ता तथा श्राद्धके भोजन करनेवालेको पवित्र, क्रोधरहित, शान्त, सत्यवादी तथा सावधान रहना चाहिये और स्वध्याय तथा यात्राका त्याग करना चाहिये॥ ७८—८०॥

श्राद्ध भुक्त्वा परश्राद्ध भुञ्जते ये द्विजातय ।
महापातकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहून्॥ ८१॥
एष वो विहित सम्यक् श्राद्धकल्प सनातन ।
आमेन वर्तयेन्नित्यमुदासीनोऽथ तत्त्ववित्॥ ८२॥

(किसी एक) श्राद्धमें भोजन करनेके बाद जो ब्राह्मण दूसरे श्राद्धमे भोजन करते हैं, वे महापातकियोके समान हैं और बहुतसे नरकामे जाते हैं। इस प्रकार आप लोगोसे मैंने इस सनातन श्राद्धकल्पका वर्णन किया। उदासीन (अनासक्त) तत्त्ववेत्ताको नित्य अपक्व अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये॥ ८१-८२॥

अनग्निरध्वगो वापि तथैव व्यसनान्वित ।
आमश्राद्ध द्विज कुर्याद् विधिज्ञ श्रद्धयान्वित ।
तेनाग्नौकरण कुर्यात् पिण्डास्तेनैव निर्वपेत्॥ ८३॥
योऽनेन विधिना श्राद्ध कुर्यात् सयतमानस ।
व्यपेतकल्मषो नित्य योगिना वर्तते पदम्॥ ८४॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्ध कुर्याद् द्विजोत्तम ।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातन ॥ ८५॥

अग्निहोत्रसे रहित, यात्रा करनेवाले अथवा व्यसनसे युक्त (किसी प्रकारकी आपत्ति या रोगसे ग्रस्त) श्रद्धालु और विधिको जाननेवाले द्विजको आम-श्राद्ध (अपक्व अन्नसे किया जानेवाला श्राद्ध) करना चाहिये। वह उसी अपक्व अन्नसे 'अग्नौकरण'[२] करे और उसीसे पिण्डदान भी करे। जो इस विधिसे शान्त-मन होकर श्राद्ध करता है, वह सभी कल्मषोसे दूर होता हुआ योगियाके नित्य पदको प्राप्त करता है। इसलिये द्विजोत्तमको सभी प्रयत्नासे श्राद्ध करना चाहिये। इसमे सनातन ईशकी सम्यक् रूपसे आराधना हो जाती है॥ ८३—८५॥

१-भविष्यपुराणमे देवताओके उद्देश्यसे श्राद्धका विधान है। (द्रष्टव्य मनु० ३। २५४ व्याख्या कुल्लूकभट्टी)

२-यह अग्नौकरण' ब्राह्मणके हाथपर होता है। (मनु० ३। २१२)

अपि मूलैर्फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विज ।
तिलोदकैस्तर्पयेद् वा पितॄन् स्नात्वा समाहित ॥८६॥
न जीवत्पितृको दद्याद्धोमान्त चाभिधीयते।
येषा वापि पिता दद्यात् तेषा चैके प्रचक्षते॥८७॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
यो यस्य म्रियते तस्मै देय नान्यस्य तेन तु॥८८॥
भोजयद् वापि जीवन्त यथाकाम तु भक्तित ।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति श्रूयते श्रुति ॥८९॥

सर्वथा निर्धन द्विजका मूल अथवा फलासे श्राद्ध करना चाहिय। अथवा स्नानकर समाहित होकर तिल और जलद्वारा पितरोका तर्पण करना चाहिये। जिसक पिता जीवित हा उसे श्राद्ध नहीं करना चाहिय अथवा उसके लिये होमपर्यन्त श्राद्ध करनेका विधान है। कुछ लोगाका कहना है कि पिता जिन्हे पिण्डदान करते हा उन्ह ही (वह) पिण्डदान कर। पिता, पितामह तथा प्रपितामहमेसे जिसकी मृत्यु हुई हो उसीके निमित्त श्राद्धकर्ताको पिण्डदान करना चाहिये, न कि अन्य किसी (जीवित व्यक्ति)-के निमित्त। अथवा जीवित पुरुपको इसकी अभिरुचिके अनुसार भक्तिपूर्वक भोजन कराये। श्रुतिमे कहा गया है कि (पितादि) जीवित व्यक्तिका अतिक्रमणकर पिण्डदान नही करना चाहिये॥ ८६—८९॥

द्वयामुष्यायणिको दद्याद् बीजिक्षेत्रिकयो समम्।
रिक्थादर्धं समादद्यान्नियोगोत्पादितो यदि॥९०॥
अनियुक्त सुतो यश्च शुल्कतो जायते त्विह।
प्रदद्याद् बीजिने पिण्ड क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा॥९१॥
द्वौ पिण्डौ निर्वपेत् ताभ्या क्षत्रिणे बीजिने तथा।
कीर्तयेदथ चैकस्मिन् बीजिन क्षेत्रिण तत ॥९२॥

द्वयामुष्यायणिक[1] पुत्र बीजी[2] एव क्षेत्री[3] दोनो पिताओको पिण्डदान करे। यह पुत्र सम्पत्तिका आधा भाग ले सकता है। जो पुत्र नियोग-विधिसे उत्पन्न नहीं है, शुल्क[4] (मूल्य) देकर गृहीत है, वह बीजी (जिस पुरुपके बीजसे उत्पन्न हुआ है वह बीजी है)-को पिण्डदान करेगा और क्षेत्राधिकारी पिताके पिण्डदानका उसे अधिकार नहीं होता। (नियोगसे उत्पन्न पुत्रको) क्रमश क्षेत्री और बीजीको दो पिण्ड देने चाहिये। एक-एक पिण्ड देते समय क्रमश अलग-अलग दोनोका नाम कीर्तन करना चाहिये[5]॥ ९०—९२॥

मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्ट विधानत ।
अशौचे स्वे परिक्षीणे काम्य वै कामत पुन ॥९३॥
पूर्वाह्णे चैव कर्तव्य श्राद्धमभ्युदयार्थिना।
देववत्सर्वमेव स्याद् यवै कार्या तिलक्रिया॥९४॥
दर्भाश्च ऋजव कार्या युग्मान् वै भोजयेद् द्विजान्।
नान्दीमुखास्तु पितर प्रीयन्तामिति वाचयेत्॥९५॥

(पिताकी) मृत्यु-तिथिम विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। अपना अशौच समाप्त होनेपर इच्छानुसार काम्य श्राद्ध किये जा सकते हैं। अभ्युदयकी कामना करनेवालेको पूर्वाह्णम ही आभ्युदयिक (नान्दी) श्राद्ध करना चाहिय। दवकार्यके समान इसम सभी कार्य करन चाहिय। तिलाका कार्य जौसे करना चाहिये। इसमे सीधे कुशाका प्रयोग करे (मोटकके रूपमे द्विगुणीकृत कुशोका प्रयोग न करे)। युग्म ब्राह्मणाको भोजन कराये और 'नान्दीमुखा पितर प्रीयन्ताम्' अर्थात् नान्दीमुख नामक पितर तृप्त हो—ऐसा कहना चाहिय॥ ९३—९५॥

१-शास्त्रीय विधिसे विवाहके लिये किसी योग्य वरको चुना जाय और उसे यह वचन दे दिया जाय कि मैं अपनी कन्याका विवाह तुमसे करूँगा' वह वर दैववश यदि गत हो जाय तो शास्त्रानुसार उस वागूदत्ता कन्याका पुनर्विवाह सम्भव नहीं है किंतु दिवगत वरको पिण्ड देनक लिय और उसका सम्पत्तिक स्वामित्वके लिये पुत्रकी आवश्यकता हो तो उस वागूदत्ता कन्याका देवर या सगोत्रसे विवाह करना शास्त्रविहित है। यही नियोग-विवाह है। इससे उत्पन्न पुरुषको द्वयामुष्यायणिक कहते हैं।

२-वागूदत्ता कन्यासे नियोग-विधिसे विवाह करनेवाला देवर आदि बीजी है अर्थात् विद्यमान पिता।

३-वाग्दत्ता कन्याका दिवगत वर क्षेत्री है अर्थात् दिवङ्गत पिता।

४-औरस आदि बारह प्रकारके पुत्र धर्मशास्त्रमे बताये गये हैं। उनमें एक क्रीत पुत्र होता है। यह मूल्य देकर माता-पितासे ले लिया जाता है और अपने पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया जाता है। यही पुत्र शुल्कसे गृहीत पुत्ररूपमें यहाँ निर्दिष्ट है।

५-क्षत्री एव बाजी दोनाको पिण्डदान नियोगसे उत्पन्न वही पुत्र करेगा, जिसकी उत्पत्तिके पूर्व देवर आदि तथा वाग्दत्ता कन्याने परस्पर यह सविदा कर ली हो कि यह उत्पन्न होनेवाला पुत्र हम दोनाका होगा।

मातृश्राद्ध तु पूर्वं स्यात् पितृणा स्यादनन्तरम्।
ततो मातामहाना तु वृद्धौ श्राद्धत्रय स्मृतम्॥ ९६॥
देवपूर्वं प्रदद्याद् वै न कुर्यादप्रदक्षिणम्।
प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डानुपवीती समाहित ॥ ९७॥

पहले मातृश्राद्ध तदनन्तर पितृश्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद मातामहादिका श्राद्ध होता है। वृद्धिश्राद्धमे इन्हीं तीन प्रकारके श्राद्धोका वर्णन हुआ है[1]। देवकार्य (विश्वेदेव कार्य) करनेके अनन्तर पिण्डदान करना चाहिये। दाहिनी ओरसे ही विश्वेदेवकार्य करना चाहिये। एकाग्रचित्तसे[2] सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो पिण्डदान करना चाहिये॥ ९६-९७॥

पूर्वं तु मातर पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वरा।
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु॥ ९८॥
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि।
पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रय बुध ॥ ९९॥
अकृत्वा मातृयाग तु य श्राद्ध परिवेषयेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातर ॥ १००॥

सर्वप्रथम (नान्दीश्राद्धके पूर्व) भक्तिपूर्वक गणेश्वरोसे युक्त (षोडश) मातृकाओका पूजन करना चाहिये। मनोरम स्थण्डिल, प्रतिमा अथवा ब्राह्मणामे पुष्प, धूप, नैवेद्य, गन्ध तथा अलकारों आदिके द्वारा (षोडश मातृकाओका) पूजन करना चाहिये। मातृगणोकी पूजाकर विद्वान्‌को चाहिये कि वह तीनो श्राद्ध[3] करे। मातृपूजन किये बिना जो श्राद्ध करता है, (षोडश) मातृकाएँ क्रुद्ध होकर उससे अप्रसन्न हो जाती हैं॥ ९८—१००॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

आशौच-प्रकरणमे जननाशौच और मरणाशौचकी क्रिया-विधि, शुद्धि-विधान, सपिण्डता, सद्य शौच, अन्त्येष्टि-सस्कार, सपिण्डीकरण-विधि, मासिक तथा सावत्सरिक श्राद्ध आदिका वर्णन

व्यास उवाच

दशाह प्राहुराशौच सपिण्डेषु विपश्चित।
मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणाना द्विजोत्तमा ॥ १॥
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषत।
न कुर्याद् विहित किञ्चित् स्वाध्याय मनसापि च॥ २॥

व्यासजीने कहा—हे द्विजोत्तमो! विद्वानोने ब्राह्मणोके लिये सपिण्डोकी मृत्यु अथवा जन्म होनेपर दस दिनका आशौच कहा है (आशौचमे) विशेषरूपसे विहित नित्य तथा काम्य कुछ भी कर्म न करे। मनसे भी स्वाध्याय (वेदाध्ययन) न करे॥ १-२॥

शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान्।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतान जुहुयात् तथा॥ ३॥

यज्ञशालाके अग्निकार्यके लिये पवित्र, क्रोधरहित, भूमिदेवरूप ब्राह्मणोको नियुक्त करना चाहिये। शुष्क अन्न अथवा फूलाके द्वारा वैतानाग्निमें हवन (श्रौत होम) करना चाहिये॥ ३॥

न स्पृशेयुरिमानन्ये न च तेभ्य समाहरत्।
चतुर्थे पञ्चमे वाह्नि सस्पर्श कथितो बुधै ॥ ४॥
सूतके तु सपिण्डाना सस्पर्शो, न प्रदुष्यति।
सूतक सूतिका चैव वर्जयित्वा नृणा पुन ॥ ५॥

दूसरे लोग इन आशौचग्रस्त व्यक्तियोको स्पर्श न कर

१-पुत्रादिकी उत्पत्तिके समय होनेवाले विशेष श्राद्धके लिय यह व्यवस्था है। सामान्यत सभी श्राद्धोमे प्रथम पिता आदिका, अनन्तर माता आदिका श्राद्ध होता है।

२-यह किसी विशेष श्रौतकर्मके पिण्डदानकी व्यवस्था है। सामान्यत पिण्डदान दक्षिणाभिमुख एव अपसव्य होकर किया जाता है।

३-ये तीन श्राद्ध—पिता आदि तीन माता आदि तीन तथा मातामह आदि तीनकी समझना चाहिये। नान्दीश्राद्धमें ये तीनो श्राद्ध होते हैं।

और न कोई वस्तु ही उनसे ले। विद्वानोने चौथे अथवा पाँचवे दिन इनके स्पर्शका विधान किया है। (सपिण्डाके) जननाशौचमें सपिण्डोको स्पर्श करनेमे दोष नहीं होता। तथापि उत्पन्न हुए बालक और उसे जन्म देनेवाली (सद्य) प्रसूता स्त्रीका मनुष्याको स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ४-५॥

अधीयानस्तथा यज्वा वेदविच्च पिता भवेत्।
सस्पृश्या सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहत ॥ ६ ॥
दशाह निर्गुणे प्रोक्तमशौच चातिनिर्गुणे।
एकद्वित्रिगुणैर्युक्त चतुस्त्र्येकदिनै शुचि ॥ ७ ॥
दशाहात् तु पर सम्यगधीयीत जुहोति च।
चतुर्थे तस्य सस्पर्श मनुराह प्रजापति ॥ ८ ॥
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥ ९ ॥
त्रिरात्र दशरात्र वा ब्राह्मणानामशौचकम्।
प्राक्सस्कारात् त्रिरात्र स्यात् तस्मादूर्ध्वं दशाहकम्॥ १०॥

जननाशौचमे वेदका अध्ययन करनेवाला, यज्ञ करनेवाला और वेद जाननेवाला पिता—ये सभी स्नान करनेसे स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं। माता दस दिनोके बाद (स्पर्श-योग्य होती है) निर्गुण[1] अथवा अति-निर्गुण लोगोंके लिये दस दिनोंका आशौच कहा गया है। एक[2], दो अथवा तीन गुणवालाके लिये चार, तीन या एक दिनमे शुद्धिका विधान है। दस दिन हो जानेपर सम्यक्‌रूपसे अध्ययन एव हवन करना चाहिये। प्रजापति मनुने चौथे दिन (एक गुणवाले अशौची)-के स्पर्शका विधान किया है। क्रियाहीन, मूर्ख, महारोगी और मनमाना आचरण करनेवाले व्यक्तियाका आशौच मरणपर्यन्त कहा[3] गया है। ब्राह्मणाका आशौच तीन रात अथवा दस राततकका होता है। (उपनयन) सस्कार होनेके पूर्व (तथा चूडासस्कारके अनन्तर मृत्यु होनेपर) तीन रातका और (उपनयन) सस्कार होनेपर दस रातका अशौच होता है॥ ६—१०॥

ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तनिर्गुण ॥ ११ ॥
अदन्तजातमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते।
जातदन्ते त्रिरात्र स्याद् यदि स्याता तु निर्गुणौ॥ १२॥
आदन्तजननात् सद्य आचौलादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनात् सपिण्डानामुदाहृतम्॥ १३॥
जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरण पितु ।
मातुश्च सूतक तत् स्यात् पिता स्यात् स्पृश्य एव च॥ १४॥
सद्य शौच सपिण्डाना कर्तव्य सोदरस्य च।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाह सोदरो यदि निर्गुण ॥ १५॥

दो वर्षसे कम अवस्थावाले बालकके मरनेपर केवल माता-पिताको तीन रातका अशौच होता है। अत्यन्त निर्गुण (सपिण्डकी मृत्यु) होनेपर तीन रातमे शुद्धि होती है। बिना दाँतवाले शिशुके मरनेपर माता-पिताको एक दिनका अशौच कहा गया है। यदि माता-पिता निर्गुण हो तो दाँत उत्पन्न हुए शिशुकी मृत्यु होनेपर उन्हे तीन रातका अशौच होता है। दाँत उत्पन्न होनेके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्य चूडाकरण-सस्कारके पूर्वतक एक रात तथा उपनयनसे पूर्वतक तीन रातका आशौच सपिण्डोके लिये कहा गया है। उत्पन्न होते ही बालककी मृत्यु होनेपर पिता और माताको अशौच होता है, किंतु पिता (स्नानके बाद) स्पर्शके योग्य होता है। सपिण्डो और सहोदर भाईकी (जन्मसे) दस दिनांके भीतर मृत्यु होनेपर (स्नानमात्रसे) सद्य पवित्रता होती है। दस दिनके पश्चात् (मृत्यु होनेपर) एक दिनका अशौच उस सहोदरको होगा जो निर्गुण होता है॥ ११—१५॥

अथोर्ध्वं दन्तजननात् सपिण्डानामशौचकम्।
एकरात्र निर्गुणाना चौलादूर्ध्वं त्रिरात्रकम्॥ १६॥
अदन्तजातमरण सम्भवेद् यदि सत्तमा ।
एकरात्र सपिण्डाना यदि तेऽत्यन्तनिर्गुणा ॥ १७॥
व्रतादेशात् सपिण्डानामर्वाक् स्नान विधीयते।
सर्वेषामेव गुणिनामूर्ध्वं तु विषम पुन ॥ १८॥

१-वेदाध्ययन एव अग्निहोत्रादि कर्मसे रहितको निर्गुण कहा जाता है।

२-जो स्मार्ताग्निमान् है वह एक गुणवाला है। जो स्मार्ताग्निमान् तथा वेदाध्ययनसम्पन्न है, वह दो गुणवाला है। जो इन दोनाके साथ श्रौताग्निमान् है, वह तीन गुणावाला है। (मनु० ३। ५९ कुल्लूकभट्ट)

३-इस वचनका तात्पर्य क्रियाहीनता आदिकी निन्दामे है।

तदनन्तर दाँत निकलनेतक निर्गुण सपिण्डाको एक रातका अशौच होता है। चौलकर्मके उपरान्त (सपिण्डोंके मरनेपर) तीन रातका अशौच होता है। श्रेष्ठ जनो! सपिण्डी (यदि) अत्यन्त निर्गुण हो तो बिना दाँत निकले उनकी मृत्यु होनेपर एक रातका अशौच होता है। उपनयनके पूर्व सपिण्डाकी मृत्यु होनेपर सभी गुणवानोके लिये स्नानका विधान है, किंतु उपनयनके बाद मृत्यु होनेपर भिन्नस्थिति (अलग-अलग अशौचकी व्यवस्था) होती है॥ १६—१८॥

अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम्॥ १९॥
ततः ऊर्ध्वं तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम्।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च वा ततः॥ २०॥

छः महीनेसे पूर्व यदि स्त्रियोंका गर्भस्राव हो जाता है तो जितने महीनेका गर्भ रहता है, उतने ही दिनोंतकका उनका (स्त्रियोंका) अशौच कहा गया है, उसके बाद गर्भपात होनेपर स्त्रियोंके लिये बारह रात्रिका और सपिण्डोंके लिये सद्यः शौचका विधान है॥ १९-२०॥

गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे।
यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः॥ २१॥
यदि स्यात् सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत्।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम्॥ २२॥
मरणोत्पत्तियोगे तु मरणाच्छुद्धिरिष्यते।
अघवृद्धिमदाशौचमूर्ध्वं चेत् तेन शुध्यति॥ २३॥
अथ चेत् पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्।
अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुध्यति॥ २४॥

गर्भस्राव तथा अत्यन्त निर्गुण सपिण्डीकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्रका और मनमाने आचरणवाले जाति-बन्धुके (यहाँ गर्भस्राव होनेपर) तीन रातका अशौच निश्चित है। यदि जननाशौचके मध्य दूसरा जननाशौच हो जाय और मरणाशौचके बीचमें दूसरा मरणाशौच पड़ जाय तो प्रथम अशौचके जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनोंमें दूसरे अशौचकी भी शुद्धि हो जाती है। किंतु प्रथम अशौच एक ही दिनका बचा हो तो तीन रातका आशौच होता है। मरणाशौचके मध्य जननाशौच होनेपर अथवा जननाशौचके बीचमें मरणाशौच आ जानेपर मरणाशौचके पूरा होनेपर ही शुद्धि होती है। यदि पूर्वका अशौच वृद्धिमद् (बड़ा गुरुतर) अशौच हो तो पूर्वके अशौचकी शुद्धिसे ही दोनों अशौचोंकी शुद्धि होती है। यदि पाँचवीं रात्रि बीत जानेपर वृद्धिमद् अशौच हो तो दूसरे अशौचकी शुद्धि पूर्वके ही अशौचसे हो जाती है॥ २१—२४॥

देशान्तरगतः श्रुत्वा सूतकं शावमेव तु।
तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेषः समाप्यते॥ २५॥
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम्।
तथैव मरणे स्नानमूर्ध्वं संवत्सराद् यदि॥ २६॥

देशान्तरमें गये हुएको जननाशौच या मरणाशौच-सम्बन्धी समाचार सुननेके बाद उतने समयतक संयम (अशौचके नियमका पालन) करना चाहिये जबतक शेष दिन समाप्त न हो जाय। (एक वर्षके भीतर) व्यतीत हुए मरणाशौचका समाचार सुननेपर सपिण्डोंको तीन रातका अशौच होता है, उसी प्रकार एक वर्ष बीतनेके बाद समाचार मिलनेपर मरणाशौचमें स्नानमात्र करना चाहिये॥ २५-२६॥

वेदान्तविच्चाधीयानो योऽग्निमान् वृत्तिकर्षितः।
सद्यः शौचं भवेत् तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा॥ २७॥

वेदान्तको जाननेवाला (ब्रह्मनिष्ठ), अध्ययनकर्ता (गुरुकुलमें निवास करनेवाला ब्रह्मचारी), अग्निहोत्री तथा वृत्तिहीन लोगोंको सभी अवस्थाओंमें सदा सद्यः शौच होता है॥ २७॥

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु प्रदानात् पूर्वतः सदा।
सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारे भर्तुरेव हि॥ २८॥
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम्।
ऊनद्विवर्षान्मरणे सद्यः शौचमुदाहृतम्॥ २९॥
आदन्तात् सोदरे सद्य आचौलादेकरात्रकम्।
आप्रदानात् त्रिरात्रं स्याद् दशरात्रमतः परम्॥ ३०॥

अविवाहित स्त्रियों (कन्याओं)-की पाणिग्रहणसे पूर्व मृत्यु होनेपर सपिण्डोंके निमित्त सदा तीन रातका अशौच होता है और विवाह-संस्कारके अनन्तर मृत्यु होनेपर केवल पति और पतिकुलमें अशौच होता है। वाग्दानसे पूर्व कन्याओंकी मृत्यु होनेपर एक दिनका अशौच कहा गया है और दो वर्षसे कम अवस्थावाली कन्याके मरनेपर सद्यः शौच बताया गया है। दाँत निकलनेसे पूर्व कन्याकी मृत्यु होनेपर सहोदर भाईको सद्यः शौच होता है और चूडाकरणके

कालतक मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशौच होता है। कन्यादानके पूर्व (कन्याका मरण होनेपर) तीन रातका और विवाहके बाद मरण होनेपर दस रातका (पतिकुलमें) अशौच होता है॥ २८—३०॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम्।
एकोदकानां मरणे सूतके चैतदेव हि॥ ३१॥
पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च।
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि॥ ३२॥
प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद् विषये स्थितिः।
गृहे मृतासु दत्तासु कन्यकासु त्र्यहं पितुः॥ ३३॥
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च।
त्रिरात्रं स्यात् तथाचार्ये स्वभार्यास्वन्यगासु च॥ ३४॥
आचार्यपुत्रे पत्न्यां च अहोरात्रमुदाहृतम्।
एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेऽपि च॥ ३५॥

मातामहकी मृत्यु होनेपर (दौहित्रको) तीन रातका अशौच होता है। समानोदकोंके[1] मरण या जन्ममें भी तीन रातका ही अशौच होता है। योनि-सम्बन्धवालों (भांजा, मामा, मौसी, बूआ-कुलके लोग आदि) तथा बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर पक्षिणी (आगामी तथा वर्तमान दिनसे युक्त रात्रि)-तक अशौच होता है[2]। गुरु एवं सहपाठी (के मरणमें) एक रात्रिका अशौच बतलाया गया है। जिस देशमें निवास करता हो, उस देशके राजाकी मृत्यु होनेपर सज्योतिकालतकका[3] अशौच होता है और पिताके घरमें विवाहित कन्याकी मृत्यु होनेपर पिताको तीन रातका अशौच होता है। पूर्वमें अन्यकी भार्या रहनेवाली स्त्री, उसके पुत्र तथा कृत्रिम पुत्रके मरणमें तीन रातका आशौच होता है। इसी प्रकार आचार्यके मरणमें भी तीन रातका आशौच होता है। गुरुपुत्र तथा गुरुपत्नीका एक अहोरात्रका और उपाध्याय तथा अपने ग्राममें श्रोत्रियकी मृत्यु होनेपर भी एक दिनका आशौच होता है॥ ३१—३५॥

त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च।
एकाहं चास्ववर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते॥ ३६॥
त्रिरात्रं श्वश्रूमरणे श्वशुरे वै तदेव हि।
सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति॥ ३७॥
शुध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥ ३८॥
क्षत्रविद्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते॥ ३९॥
राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु।
स्वमेव शौचं कुर्यातां विशुद्ध्यर्थमसंशयम्॥ ४०॥

अपने घरमें रहनेवाले असपिण्डोंकी मृत्यु होनेपर तीन रातका अशौच होता है और अपने घरमें (स्वेच्छासे रहनेवाले) अन्य किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर एक दिनका अशौच होता है। सास एवं ससुरके मरनेपर तीन रातका और अपने घरमें स्थित रहनेवाले सगोत्रके मरणमें सद्यः शौच कहा गया है। ब्राह्मणकी शुद्धि दस दिनमें, क्षत्रियकी बारह दिनमें, वैश्यकी पंद्रह दिनमें और शूद्रकी एक माहमें शुद्धि होती है। ब्राह्मणद्वारा क्षत्राणी, वैश्या और शूद्रासे उत्पन्न बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मणकी शुद्धि दस दिनोंमें होती है। क्षत्रिय और वैश्यको भी हीनवर्णकी स्त्रियोंसे उत्पन्न बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर पूर्ण शुद्धिके लिये अपने वर्णके अनुसार विहित शौच-विधिका पालन करना चाहिये[4]॥ ३६—४०॥

सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्युरादृताः।
तद्वर्णविधिदृष्टेन स्वं तु शौचं स्वयोनिषु॥ ४१॥
षड्रात्रं वा त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण हि।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु॥ ४२॥
अर्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुंगवाः।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्येष्वाशौचमिष्यते॥ ४३॥

१-सातवीं परम्परासे चौदहवीं परम्परातकके लोग समानोदक होते हैं।

२-इस प्रसंगमें यह विवेक है—दिनमें मरण होनेपर वह दिन उसके बादकी रात्रि उसके बाद दूसरे दिन नक्षत्रदर्शनतक अशौच होगा। रात्रिमें मरण होनेपर वह रात्रि बादका दिन पुनः उसके बादकी रात्रितक पक्षिणी माना जायगा और तबतक अशौच होगा।

३-दिनमें मरण होनेपर रात्रिमें स्नानसे शुद्धि और रात्रिमें मरण होनेपर दिनमें स्नानसे शुद्धि यही 'सज्योतिकाल' से अशौचमें शुद्धिका अर्थ है।

४-यह अन्य युग-विषयक है। अपने वर्णसे इतर वर्णमें विवाह कलियुगमें सर्वथा निषिद्ध है।

षड्रात्र वै दशाह च विप्राणा वैश्यशूद्रयो ।
अशौच क्षत्रिये प्रोक्त क्रमेण द्विजपुगवा ॥४४॥
शूद्रविद्क्षत्रियाणा तु ब्राह्मणे सस्थिते सति।
दशरात्रेण शुद्धि स्यादित्याह कमलोद्भव ॥४५॥

सभी वर्णके व्यक्तियोको उत्तर वर्णके लिये विहित आशौचका आदरपूर्वक पालन करना चाहिये। किंतु अपने वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न बन्धुकी मृत्यु होनेपर अपने ही वर्णके अनुसार अशौचका पालन करना चाहिये। शूद्र सपिण्डकी मृत्यु या जन्म होनेपर वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणोको क्रमानुसार छ रात, तीन रात और एक रातका आशौच होता है। द्विजश्रेष्ठो! वैश्य सपिण्डके जन्म या मृत्युपर शूद्र, क्षत्रिय और ब्राह्मणाको क्रमश आधे मास, छ रात तथा तीन रातका आशौच होता है। द्विजश्रेष्ठो! क्षत्रिय सपिण्डके जन्म या मरणमे क्रमश ब्राह्मणका छ दिन और वैश्य तथा शूद्रको दस दिनोका आशौच होता है। ब्रह्माजीने कहा है कि ब्राह्मण (सपिण्ड)-का (जन्म-मरण होनेपर) शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रियकी शुद्धि दस रातमे होती है[1]॥ ४१—४५॥

असपिण्ड द्विज प्रेत विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुध्यति॥४६॥
यद्यन्नमत्ति तेषा तु त्रिरात्रेण तत शुचि ।
अनदन्नन्नमह्नैव न च तस्मिन् गृहे वसेत्॥४७॥
सोदकेष्वेतदेव स्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु।
दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुध्यति॥४८॥
यदि निर्हरति प्रेत प्रलोभाक्रान्तमानस ।
दशाहेन द्विज शुध्येद् द्वादशाहेन भूमिप ॥४९॥
अर्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति।
षड्रात्रेणाथवा सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुन ॥५०॥

असपिण्ड द्विजकी मृत्यु होनेपर बन्धुवत् उसके प्रेतकर्ममे सम्मिलित होकर भोजन एव निवास करनेवाला ब्राह्मण दस रातमे शुद्ध होता है। मृत व्यक्तिके यहाँ भोजन करनेपर तीन रातमे शुद्धि होती है। अन्न न खानेवालेकी उसी दिन शुद्धि हो जाती है, परतु उसके घरमे निवास नहीं करना चाहिये। समानोदक तथा माताके श्रेष्ठ बान्धवाक मरणमे शव वहन करनवाला सपिण्ड व्यक्ति दस दिनामे शुद्ध होता है। यदि कोई व्यक्ति लोभके वशीभूत हो शवको ढोता है तो वह यदि ब्राह्मण है तो दस दिनोमे, क्षत्रिय है तो बारह दिनामे, वैश्य है तो आधे मासमे और शूद्र है तो एक मासमे शुद्ध होता है अथवा सभी वर्णके व्यक्ति छ रात या तीन रातमे शुद्ध हो जाते हैं॥ ४६—५०॥

अनाथ चैव निर्हृत्य ब्राह्मण धनवर्जितम्।
स्नात्वा सम्प्राश्य तु घृत शुध्यन्ति ब्राह्मणादय ॥५१॥
अवरश्चेद् वर वर्णमवर वा वरो यदि।
अशौचे सस्पृशेत् स्नेहात् तदाशौचेन शुध्यति॥५२॥
प्रेतीभूत द्विज विप्रो योऽनुगच्छेत कामत ।
स्नात्वा सचैल स्पृष्ट्वाग्नि घृत प्राश्य विशुध्यति॥५३॥
एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्च द्व्यहेन तु।
शूद्रे दिनत्रय प्रोक्त प्राणायामशत पुन ॥५४॥

धनहीन अनाथ ब्राह्मणके शवका वहन आदि कर्म करनेवाले ब्राह्मणादि स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। स्नेहवश यदि हीनवर्णके व्यक्ति उच्च वर्णके शवका और उच्च वर्णके व्यक्ति हीनवर्णके शवका स्पर्श करते है तो वे उस मृतवर्णके निर्धारित अशौच (नियमपालन)-से शुद्ध होते हैं। यदि ब्राह्मण अपनी इच्छासे मरे हुए द्विजका अनुगमन करता है (शव-यात्रामें जाता है) तो वह वस्त्रसहित स्नानकर, अग्निका स्पर्श करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्ध हो जाता है। (द्विजके शवका अनुगमन करनेपर) क्षत्रियकी शुद्धि एक दिनमे, वैश्यकी दो दिनमें, शूद्रकी तीन दिनामे कही गयी है। (अशौचके दिन बीतनेके बाद) सौ बार प्राणायाम (भी शुद्धिके लिये) करना चाहिये॥ ५१—५४॥

अनस्थिसचिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मण स्वकै ।
त्रिरात्र स्यात् तथाशौचमेकाह त्वन्यथा स्मृतम्॥५५॥
अस्थिसचयनादर्वागेकाह क्षत्रवैश्ययो ।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव तु॥५६॥
अनस्थिसचिते विप्रे ब्राह्मणो रौति चेत् तदा।
स्नानेनैव भवेच्छुद्धि सचैलेन न सशय ॥५७॥

शूद्रके अस्थिसचय होनेसे पहले यदि ब्राह्मण उसके स्वजनाके साथ विलाप करता है तो उसे तीन रातका अशौच

[1] यह अशौचकी व्यवस्था घनिष्ठ सम्पर्क एक साथ रहने अथवा परस्पर उपकार्य-उपकारक-भाव रहनपर है।

नैष्ठिकाना वनस्थाना यतीना ब्रह्मचारिणाम्।
नाशौच कीर्त्यते सद्भि पतिते च तथा मृते॥७१॥
पतिताना न दाह स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसचय ।
न चाश्रुपातपिण्डौ वा कार्यं श्राद्धादिक क्वचित्॥७२॥

विद्वानोने नैष्ठिक अर्थात् जीवनभर ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करनेवाले ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी, यति तथा ब्रह्मचारीकी मृत्यु होनेपर और पतित व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर अशौच नहीं बताया है। पतित व्यक्तियोका न दाह होता है, न अन्त्येष्टि-सस्कार होता है और न अस्थिसचय ही होता है। उनके लिये अश्रुपात, पिण्डदान तथा श्राद्धादि कार्य भी कभी नहीं करने चाहिये॥ ७१-७२॥

व्यापादयेत् तथात्मान स्वय योऽग्निविषादिभि ।
विहित तस्य नाशौच नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥७३॥
अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभि ।
तस्याशौंच विधातव्य कार्यं चैवोदकादिकम्॥७४॥
जाते कुमारे तदह काम कुर्यात् प्रतिग्रहम्।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलान्नगुडसर्पिषाम् ॥७५॥

जो व्यक्ति अग्नि तथा विष आदिके द्वारा स्वय अपनी आत्महत्या करता है, उसके निमित्त अशौच, दाह तथा उदकदान आदिका विधान नहीं है। यदि कोई प्रमादवश अग्नि अथवा विष आदिद्वारा मर जाता है, उसके (सम्बन्धियोंके) लिये अशौचका विधान है और उदकदान आदि भी करना चाहिये। पुत्रका जन्म होनेपर उस दिन स्वर्ण, धान्य, गौ, वस्त्र, तिल, अन्न, गुड तथा घृत—इन वस्तुओंका इच्छापूर्वक (कार्पण्यरहित होकर) दान करना चाहिये॥ ७३—७५॥

फलानि पुष्प शाक च लवण काष्ठमेव च।
तोय दधि घृत तैलमौषधं क्षीरमेव च।
आशौचिना गृहाद् ग्राह्य शुष्कान्न चैव नित्यश ॥७६॥
आहिताग्निर्यथान्याय दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभि ।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जन ॥७७॥
देहाभावात् पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृति पुन ।
दाह कार्यो यथान्याय सपिण्डै श्रद्धयान्वितै ॥७८॥

आशौची व्यक्तियोंके घरोसे फल, पुष्प, शाक, लवण काष्ठ, मट्ठा, दही, घी, तेल, औषधि तथा क्षीर और शुष्कान्नको नित्य ग्रहण किया जा सकता[१] है। आहिताग्नि श्रोत्रियका दाह-सस्कार तीनो अग्नियोसे यथाविधि करना चाहिये और अनाहिताग्निका[२] दाह गृह्याग्निसे तथा दूसरे सामान्य लोगाका दाह लौकिक अग्निसे करना चाहिये। (मृत व्यक्तिके) देहका अभाव (शव न मिलनेपर) होनेपर पलाशके पत्तोसे उसके ही समान आकृति बनाकर सपिण्डीजनोको चाहिये कि वे श्रद्धायुक्त होकर विधिपूर्वक दाह-सस्कार करे॥ ७७-७८॥

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदक नामगोत्रेण वाग्यता ।
दशाह बान्धवै सार्धं सर्वे चैवार्द्रवासस ॥७९॥
पिण्ड प्रतिदिन दद्यु साय प्रातर्यथाविधि।
प्रेताय च गृहद्वारि चतुर्थे भोजयेद् द्विजान्॥८०॥

सभी बान्धवोको सयमपूर्वक दस दिनोतक (मृत व्यक्तिके) नाम तथा गोत्रका उच्चारण करते हुए स्नानके गीले वस्त्र पहने हुए ही एक बार जलदान करना चाहिये। प्रेतके निमित्त यथाविधि प्रात से सायकाल (अर्थात् दिनमे किसी भी समय) प्रतिदिन पिण्डदान करना चाहिये और चौथे दिनसे घरके द्वारपर (अभ्यागत) ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये॥ ७९-८०॥

द्वितीयेऽहनि कर्तव्य क्षुरकर्म सबान्धवै ।
चतुर्थे बान्धवै सर्वैरस्थ्ना सचयन भवेत्।
पूर्वं तु भोजयेद् विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन्॥८१॥
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि।
अयुग्मान् भोजयेद् विप्रान् नवश्राद्ध तु तद्विदु ॥८२॥
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावत ।
द्वादशे वाथ कर्तव्यमनिन्द्ये त्वथवाहनि।
एक पवित्रमेकोऽर्घ पिण्डपात्र तथैव च॥८३॥

दूसरे दिन बान्धवाके साथ क्षौरकर्म करना चाहिये। चौथे दिन बन्धुओसहित अस्थिसचयन करना चाहिये। अस्थिसचयनसे पूर्व श्रद्धापूर्वक पवित्र अयुग्म (विषम सख्यावाले) ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये। पाँचवे, नवें तथा ग्यारहवे दिन अयुग्म (विषम सख्यामे) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसे नवश्राद्ध जानना चाहिये। प्रेतके निमित्त ग्यारहवें, बारहवे अथवा किसी अनिन्दित दिनमें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्धमे एक पवित्र, एक अर्घ और एक ही पिण्डपात्र होता है॥ ८१—८३॥

१-यहाँ नित्य ग्रहणका इतना ही अर्थ है कि अनिवार्य होनेपर ये वस्तुएँ कभी भी ली जा सकती हैं। सामान्यत इन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये।
२-स्मार्त अग्न्याधान करनेवालेको भी अनाहिताग्नि ही माना जाता है।

एवं मृताह्नि कर्तव्य प्रतिमास तु वत्सरम्।
सपिण्डीकरण प्रोक्त पूर्णे सवत्सरे पुन ॥८४॥
कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमा ।
प्रेतार्घं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत् तत ॥८५॥

इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक महीनेमें मृत्युकी तिथिको श्राद्ध करना चाहिये। सवत्सर (वर्ष)-के पूर्ण हो जानेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध करनेका विधान किया गया है। हे द्विजोत्तमो! प्रेतादि अर्थात् प्रेत, पितामह, प्रपितामह तथा वृद्ध प्रपितामहके उद्देश्यसे चार अर्घपात्र बनाना चाहिये और पितृपात्रोंमे प्रेतपात्रका अर्घ डालना चाहिये॥ ८४-८५॥

ये समाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि।
सपिण्डीकरण श्राद्ध देवपूर्वं विधीयते॥८६॥
पितॄनावाहयेत् तत्र पुन प्रेत च निर्दिशेत्।
ये सपिण्डीकृता प्रेता न तेषा स्यात् पृथक्क्रिया ।
यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्ड पितृहा सोऽभिजायते॥८७॥

'ये समाना ०' इन दो मन्त्रोंका उच्चारणकर पितामहादिके पिण्डोंमें प्रेतपिण्डको मिलाना चाहिये। देवश्राद्ध करनेके अनन्तर सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिये। पहले पितरोंका आवाहनकर पुन प्रेतका आवाहन करना चाहिये। जिन प्रेतोंका सपिण्डीकरण कर लिया जाता है उनकी श्राद्धक्रिया पृथक् नहीं होती। जो (सपिण्डीकृत प्रेतका) पृथक् पिण्डदान करता है, वह पितृघाती कहलाता है॥ ८६-८७॥

मृते पितरि वै पुत्र पिण्डमब्द समाचरेत्।
दद्याच्चान्न सोदकुम्भ प्रत्यह प्रेतधर्मत ॥८८॥
पार्वणेन विधानेन सावत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसवत्सरं कार्यं विधिरेष सनातन
मातापित्रो सुतै कार्यं पिण्डदानादिक च यत्
पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे सहोदर
अनेनैव विधानेन जीवन् वा श्राद्धमाचरेत्
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्त समाहित

पिताके मर जानेपर पुत्रको वर्षपर्यन्त पिण्डदान चाहिये। प्रतिदिन प्रेतधर्मानुसार उदककुम्भ एव अन्न करना चाहिये। प्रत्येक वर्ष पार्वण-विधानके सावत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये। यही सनातन वि पुत्रोंको माता-पिताका पिण्डदान आदि जो कार्य है, करना चाहिये। पुत्रक अभाव होनेपर पत्नी करे और अभाव होनेपर सहोदर भाई करे। अथवा (पुत्रादि श्र कर सके या इनके अभावमें) सभी दान आदि कर्म बाद समाहित होकर मनुष्यको श्रद्धापूर्वक यथाविधान हुए ही श्राद्ध कर लेना चाहिये (इससे श्राद्धकी अनि स्पष्ट है)॥ ८८—९१॥

एष च कथित सम्यग् गृहस्थाना क्रियाविधि ।
स्त्रीणा तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्य इहेष्यते॥
स्वधर्मपरमो नित्यमीश्वरार्पितमानस ।
प्राप्नोति तत् पर स्थान यदुक्त वेदवादिभि ॥

इस प्रकार मैंने आप लोगोंको गृहस्थोंकी क्रिया सम्यक्‌रूपसे बतलायी। स्त्रियोंका तो पतिकी सेवा करना एकमात्र धर्म है, उनका अन्य कोई धर्म नहीं कहा गया नित्य अपने धर्मका पालन करनेवाला और भगव समर्पित मनवाला वेदज्ञोंद्वारा बताये गये उस परम प प्राप्त करता है[२]॥ ९२-९३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या संहितायामुपरिविभागे त्रयोविंशोऽध्याय ॥ २३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २३

१-इस वचनका तात्पर्य प्रतिवर्ष पार्वणश्राद्धमें है। सावत्सरिक (एकोद्दिष्टश्राद्ध)-की विधि पार्वणविधिसे भिन्न है।

२-इस अध्यायमें श्राद्ध एव अशौचका विधान सक्षेपमें सांकेतिक मात्र है। इसी आधारपर निर्णय नहीं लेना चाहिये। विभिन्न निबन्धग्रन्थोंमें श्राद्ध एव अशौच-सम्बन्धी समस्त वचनोंका समाकलन कर सामान्य एव अपवाद वचनादिकोंकी व्यवस्थाकर निष्कृष्ट निर्णय किया गया अत उन्हींके आधारपर अन्तिम निर्णय लेना चाहिये। निबन्धग्रन्थोंमें सभी वचनोंका समन्वयकर युग, देश काल आदिकी दृष्टिसे स्पष्ट व्यव

चौबीसवाँ अध्याय

अग्निहोत्रका माहात्म्य, अग्निहोत्रीके कर्तव्य, श्रौत एव स्मार्तरूप द्विविध धर्म, तृतीय शिष्टाचारधर्म, वेद, धर्मशास्त्र और पुराणसे धर्मका ज्ञान तथा इनपर श्रद्धा रखना आवश्यक

व्यास उवाच

अग्निहोत्र तु जुहुयादाद्यन्तेऽहर्निशो सदा।
दर्शेन चैव पक्षान्ते पौर्णमासेन चैव हि॥१॥
शस्यान्ते नवशस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरै ।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सौमिकैर्मखै ॥२॥
नानिष्ट्वा नवशस्येष्ट्या पशुना वाग्निमान् द्विज ।
नवान्नमद्यान्मास वा दीर्घमायुर्जिजीविषु ॥३॥
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नय ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिन ॥४॥
सावित्रान् शान्तिहोमाश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यश ।
पितॄश्चैवाष्टकास्वर्चन् नित्यमन्वष्टकासु च॥५॥

व्यासजीने कहा—सदैव साय और प्रात अग्निहोत्र करना चाहिये। पक्षके अन्तमे अमावास्या और पौर्णमासीको हवन (दर्शेष्टि एव पौर्णमासेष्टि) करना चाहिये। द्विजको फसल कट जानेपर नवशस्येष्टि, ऋतुकी समाप्तिपर (किया जाने वाला) यज्ञ एव अयनके अन्तमे अर्थात् छ -छ महीनेपर सवत्सरके अन्तमे सौमिक याग करना चाहिये। दीर्घ आयुकी इच्छा करनेवाले अग्निहोत्री द्विजको नवशस्येष्टि किये बिना नया अन्न नहीं खाना चाहिय। नवीन अन्नका अग्निमे हवन किये बिना नवान्न खानेका इच्छुक व्यक्ति अपने प्राणोको ही खाना चाहता है। प्रत्येक पर्वोमे नित्य ही सावित्री-होम, शान्ति-होम करना चाहिये तथा अष्टकाआ और अन्वष्टकाआमे नियमसे नित्य पितरोकी अर्चना करनी चाहिये॥ १—५॥

एष धर्म परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते।
त्रयाणामिह वर्णाना गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥६॥
नास्तिक्यादथवालस्याद् योऽग्नीन् नाधातुमिच्छति।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून्॥७॥

गृहस्थाश्रममे निवास करनेवाले तीनो वर्णों (द्विजाति)-का यह नियमित श्रेष्ठ धर्म है, अन्य धर्म अपधर्म कहलाता है। नास्तिकता अथवा आलस्यक कारण जो अग्नियोका आधान एव यज्ञसे यजन नहीं करना चाहता, वह बहुतसे नरकोमे जाता है॥ ६-७॥

तामिस्रमन्धतामिस्र महारौरवरौरवौ।
कुम्भीपाक वैतरणीमसिपत्रवन तथा॥८॥
अन्याश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्यान्ते सुदुर्मति ।
अन्त्यजाना कुले विप्रा शूद्रयोनौ च जायते॥९॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषत ।
आधायाग्नि विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥१०॥
अग्निहोत्रात् परो धर्मो द्विजाना नेह विद्यते।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥११॥
यश्चाधायाग्निमालस्यान्न यष्टु देवमिच्छति।
सोऽसौ मूढो न सम्भाष्य किं पुनर्नास्तिको जन ॥१२॥

विप्रो! (अग्न्याधान आदि कृत्य न करनेवाला) वह दुर्मति तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन तथा अन्य घोर नरकोको प्राप्तकर बादमे अन्त्यजाके कुल तथा शूद्रयोनिमे जन्म लेता है। अत विशेषरूपसे विशुद्धात्मा ब्राह्मणोको सभी प्रकारके प्रयत्नोद्वारा अग्निका आधानकर परमेश्वरका यजन-पूजन करना चाहिये। द्विजोके लिये अग्निहोत्रसे श्रेष्ठ कोई अन्य धर्म नहीं है। इसलिय अग्निहोत्रके द्वारा नित्य शाश्वत (पुरुष)-की आराधना करनी चाहिये। जो अग्निका आधानकर फिर आलस्यवश यज्ञद्वारा देवताकी आराधना नहीं करना चाहता, वह व्यक्ति मूढ होता है, उससे बात नहीं करनी चाहिये। अधिक क्या, वह मनुष्य नास्तिक होता है॥ ८—१२॥

यस्य त्रैवार्षिक भक्त पर्याप्त भृत्यवृत्तये।
अधिक चापि विद्येत स सोम पातुमर्हति॥१३॥

एष वै सर्वयज्ञाना सोम प्रथम इष्यते।
सोमेनाराधयेद् देव सामलोकमहेश्वरम्॥ १४॥
न सोमयागादधिको महेशाराधने क्रतु ।
समो वा विद्यते तस्मात् सोमेनाभ्यर्चयेत् परम्॥ १५॥

जिसके पास सेवकाके पोपणहेतु तीन वर्पतकके लिये पर्याप्त अथवा उससे भी अधिक (भोजन) सामग्री विद्यमान हो, वह सोमपानका अधिकारी होता है। सभी यज्ञोमें सोमयाग सबसे श्रेष्ठ है। सोमद्वारा सोमलोकमे स्थित महेश्वरदेवकी आराधना करनी चाहिये। महेश्वरकी आराधनाके लिये मोमयागसे बडा अथवा उसके समान कोई यज्ञ नहीं है। इसलिये सोमके द्वारा श्रेष्ठ देवकी आराधना करनी चाहिये॥ १३—१५॥

पितामहेन विप्राणामादावभिहित शुभ ।
धर्मो विमुक्तये साक्षाच्छ्रौत स्मार्तो द्विधा पुन ॥ १६॥
श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात् स्मार्त पूर्वं मयोदित ।
श्रेयस्करतम श्रौतस्तस्माच्छ्रौत समाचरेत्॥ १७॥
उभावभिहितौ धर्मौ वेदादेव विनि सृतौ।
शिष्टाचारस्तृतीय स्याच्छ्रुतिस्मृत्योरलाभत ॥ १८॥

ब्राह्मणोकी मुक्तिके लिये साक्षात् पितामहने आरम्भम ही शुभ धर्म बतलाया है, वह श्रौत तथा स्मार्त नामसे दो पकारका है। तीन (आहवनीय दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि) अग्नियाके सम्बन्धसे श्रौतधर्म होता है। स्मार्तधर्मको मेंने पूर्वमे बता दिया है। श्रौतधर्म अधिक श्रेयस्कर है, इसलिये श्रौतधर्मका पालन करना चाहिय। कहे गये ये दोनो धर्म वेदस ही निकले हुए हें। श्रुति तथा स्मृतिके अभावम शिष्टाचार ही तीसरा धर्म होता[1] है॥ १६—१८॥

धर्मेणाभिगतो यैस्तु वेद सपरिबृहण ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा प्रोक्ता नित्यमात्मगुणान्विता ॥ १९॥
तेषामभिमतो य स्याच्चेतसा नित्यमेव हि।
स धर्म कथित सद्भिर्नान्येषामिति धारणा॥ २०॥

परिबृहण (रामायण, महाभारत एव पुराणादि ग्रन्थ) सहित वेदोका धर्मपूर्वक ज्ञान प्राप्त करनेवाले और (दया, अहिसा, सत्य आदि आठ) आत्मिक गुणोसे सम्पन्न ब्राह्मण सदैव शिष्ट कहे गये हैं। इनके (शिष्टजनोंके) अन्त - करणद्वारा जो समर्थित होता है, विद्वानोंद्वारा उसे ही धर्म कहा गया है। अन्य लोगोके अभिमतको धर्म नहीं कहा जाता यही निश्चित सिद्धान्त है॥ १९-२०॥

पुराण धर्मशास्त्र च वेदानामुपबृहणम्।
एकस्माद् ब्रह्मविज्ञान धर्मज्ञान तथैकत ॥ २१॥
धर्म जिज्ञासमानाना तत्प्रमाणतर स्मृतम्।
धर्मशास्त्र पुराण तद् ब्रह्मज्ञाने परा प्रमा॥ २२॥
नान्यतो जायते धर्मो ब्रह्मविद्या च वैदिकी।
तस्माद् धर्मं पुराण च श्रद्धातव्य द्विजातिभि ॥ २३॥

पुराण तथा धर्मशास्त्र वेदोके उपबृहण (विस्तार) हैं। एकसे ब्रह्मका विशेष ज्ञान होता है और दूसरेसे धर्मका ज्ञान होता है। धर्मकी जिज्ञासा करनेवालाके लिये धर्मशास्त्र श्रेष्ठ प्रमाण कहा गया है और ब्रह्मज्ञानके लिये पुराण उत्कृष्ट प्रमाण है। वेदसे अतिरिक्त अन्य किसीसे धर्मका तथा वैदिक ब्रह्मविद्याका ज्ञान नहीं होता, इसलिये द्विजातियोको धर्मशास्त्र तथा पुराणपर श्रद्धा रखनी चाहिये॥ २१—२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २४॥

---
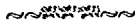
[1] १-शिष्टाचारका भी मूल श्रुति एव तन्मूलक स्मृति ही होती है। श्रुतियाँ अनन्त हैं उनमें वर्णित धर्मोंका क्रमसे प्रसगानुसार सग्रह करनेवाली स्मृतियाँ भी अनेक हैं। अत सभी श्रुतियों एव तन्मूलक स्मृतियोका ज्ञान अल्पज्ञ मानवको नहीं भी हो सकता है। ऐसी स्थितिमें धर्माधर्म-विवेकम कठिनाई होना अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिये शिष्टोंके आचारसे धर्माधर्मका निर्णय करना पडता है और इस निर्णयक मूलम यही भाव निहित है कि शिष्ट वही आचरण करते हैं जो श्रुति एव तन्मूलक स्मृतिम प्रतिपादित है।

पचीसवाँ अध्याय

गृहस्थ ब्राह्मणकी मुख्य वृत्ति तथा आपत्कालकी वृत्ति, गृहस्थके साधक तथा असाधक दो भेद, न्यायोपार्जित धनका विभाग एव उसका उपयोग

व्यास उवाच

एष वोऽभिहित कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिन ।
द्विजाते परमो धर्मो वर्तनानि निबोधत ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—यह मैंने आप लोगोको गृहस्थाश्रममे निवास करनेवाले द्विजातियाका सम्पूर्ण श्रेष्ठ धर्म बतलाया, अब उनकी वृत्तियोका वर्णन सुने ॥ १ ॥

द्विविधस्तु गृही ज्ञेय साधकश्चाप्यसाधक ।
अध्यापन याजन च पूर्वस्याहु प्रतिग्रहम्।
कुसीदकृषिवाणिज्य प्रकुर्वीतास्वयकृतम् ॥ २ ॥
कृषेरभावाद् वाणिज्य तदभावात् कुसीदकम्।
आपत्कल्पो ह्यय ज्ञेय पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते ॥ ३ ॥
स्वय वा कर्षण कुर्याद् वाणिज्य वा कुसीदकम्।
कष्टा पापीयसी वृत्ति कुसीद तद् विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

साधक तथा असाधक-भेदसे (ब्राह्मण) गृहस्थको दो प्रकारका समझना चाहिये। पहले (साधक गृहस्थकी आजीविका) अध्ययन कराना, यज्ञ कराना और (दान लेना) है। इसके अतिरिक्त वे अपने द्वारा न किये गये कुसीद (ब्याजका लेन-देन), कृषि तथा वाणिज्य भी अन्यके द्वारा करा सकते है। कृषिक अभावमे वाणिज्य और उसके अभावमे कुसीदका आश्रय लिया जा सकता है। इसे आपत्कल्प कहा गया है और पहलेको मुख्यवृत्ति कही गयी है। अथवा (आपत्कालमे अन्य उपाय न होनेपर) स्वय कृषि, वाणिज्य अथवा कुसीद-वृत्तिका आश्रय ले। कुसीद-वृत्ति (सूद लेना) अत्यन्त कष्टकारक और पापकी वृत्ति है, इसलिये इसका परित्याग करना चाहिये ॥ २—४ ॥

क्षात्रवृत्ति परा प्राहुर्न स्वय कर्षण द्विजै ।
तस्मात् क्षात्रेण वर्तेत वर्तनेनापदि द्विज ॥ ५ ॥
तेन नावाप्यजीवस्तु वैश्यवृत्ति कृषि व्रजेत्।
न कथचन कुर्वीत ब्राह्मण कर्म कर्षणम् ॥ ६ ॥
लब्धलाभ पितॄन् देवान् ब्राह्मणाश्चापि पूजयेत्।
ते तृप्तास्तस्य त दोष शमयन्ति न सशय ॥ ७ ॥

क्षात्रवृत्तिको (कृषिवृत्तिकी अपेक्षा) श्रेष्ठ वृत्ति कहा गया है, किंतु द्विजोको स्वय कर्षण नहीं करना चाहिये। अतएव द्विजको आपत्तिम (ही) क्षात्रधर्मसे भी जीविकाका निर्वाह करना चाहिये। उस क्षात्रवृत्ति (शस्त्र-जीविका)-द्वारा भी निर्वाह न होनेपर कृषिस्वरूप वैश्यवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, किंतु ब्राह्मणको कभी भी खेत जोतनेका कार्य नहीं करना चाहिये। लाभ होनेपर (विशेषकर अन्य वर्णकी जीविकासे लाभ मिलनेपर अवश्य ही) पितरा, देवताओ तथा ब्राह्मणाका पूजन करना चाहिये। तृप्त होनेपर वे उसके उस (कर्मजन्य) दोषको शान्त कर देते हैं, इसमे सशय नहीं ॥ ५—७ ॥

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद् भाग तु विंशकम्।
त्रिंशद्भाग ब्राह्मणाना कृषि कुर्वन् न दुष्यति ॥ ८ ॥
वणिक् प्रदद्याद् द्विगुण कुसीदी त्रिगुण पुन ।
कृषीवलो न दोषेण युज्यते नात्र सशय ॥ ९ ॥

देवताओ और पितरोको (कृषिसे प्राप्त लाभका) बीसवाँ भाग (५ प्रतिशत) और ब्राह्मणोको तीसवाँ भाग (३⅓ प्रतिशत) देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें कृषिकर्म करनेवाला दोषी नहीं होता। वाणिज्य करनेपर (कृषिजन्य लाभसे दिये जानेवाले अशकी अपेक्षा) दुगुना, कुसीद-वृत्तिपर तिगुना दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे कृषि करनेवाला निस्सदेह दोषी नहीं होता ॥ ८-९ ॥

शिलोञ्छ वाप्याददीत गृहस्थ साधक पुन ।
विद्याशिल्पादयस्त्वन्ये बहवो वृत्तिहेतव ॥ १० ॥
असाधकस्तु य प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसस्थित ।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभि ॥ ११ ॥
अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि।
अयाचित स्यादमृत मृत भैक्ष तु याचितम् ॥ १२ ॥

अथवा साधक (ब्राह्मण) गृहस्थको शिलोञ्छवृत्तिका[1]

१-जिस धान्यपर पशु-पक्षीतकका भी अधिकार नहीं है उसके एक-एक कण (कणसमूह-मजरीको छोड देना है)-को प्रतिदिन उगुलीसे उठाकर एकत्र किया जाय और उसीमे जीविका निर्वाह किया जाय—यह उञ्छवृत्ति है और यदि धान्य-समूहरूप मजरीका भी सग्रह प्रतिदिन करके जीविकानिर्वाह किया जाय तो यह 'शिल' वृत्ति है। ये दोना वृत्तियाँ ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ हैं। इनमें भी प्रथम वृत्ति सर्वोत्तम है।

आश्रय लेना चाहिये। विद्या तथा शिल्प आदि भी अन्य बहुतसे जीविकाके साधन हैं। गृहस्थाश्रमम रहनेवाला जो असाधक (नामका दूसरा गृहस्थ) कहा गया है, श्रेष्ठ महर्षियोद्वारा उसके लिये शिल तथा उञ्छ नामक दो वृत्तियाँ कही गयी हैं। अमृत अथवा मृत साधनद्वारा जीवनयापन करना चाहिये। अयाचित पदार्थ अमृत और याचनाद्वारा भिक्षास्वरूप प्राप्त वस्तु मृत होती है॥ १०—१२॥

कुशूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव च॥ १३॥
चतुर्णामपि चैतेषां द्विजाना गृहमेधिनाम्।
श्रेयान् पर परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तम ॥ १४॥
षट्कर्मको भवत्येषां त्रिभिरन्य प्रवर्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥ १५॥

ब्राह्मणको कुसूलधान्यक (तीन वर्षोंतकके लिये सचित धान्यवाला), कुम्भीधान्यक (एक वर्षतकके लिये सचित धान्यवाला), त्र्यैहिक (तीन दिनोंतकके लिये सचित धान्यवाला) अथवा अश्वस्तनिक (अगले दिनक लिये भी धान्य सचित न करनेवाला) होना चाहिये। इन (उपर्युक्त) चार प्रकारके गृहस्थ द्विजों (ब्राह्मणा)-में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है (ऐसा ब्राह्मण) अपने धर्मके कारण श्रेष्ठ लोकजयी (स्वर्ग आदि लोकोको जीतनेवाला) होता है। इनम कोई (जिनके पास पोष्य-वर्ग अधिक है) द्विज (ब्राह्मण) षट्कर्मोंसे[1] अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, दूसरे (अल्प परिग्रहवाले) कुछ द्विज (ब्राह्मण) तीन साधनासे[2] निर्वाह करते हैं, कुछ दो[3] साधनोसे और चौथे प्रकारके ब्राह्मण ब्रह्मयज्ञ (अध्यापन)-द्वारा आजीविका चलाते हैं॥ १३—१५॥

वर्तयस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायण।
इष्टी पार्वायणान्तीया केवला निर्वपेत् सदा॥ १६॥
न लोकवृत्ति वर्तेत वृत्तिहेतो कथचन।
अजिह्मामशठा शुद्धा जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्॥ १७॥

जो ब्राह्मण केवल उञ्छ या शिल-वृत्तिसे अपना निर्वाह करे यह (धनसाध्य अन्य कर्मोंके अनुष्ठानम असमर्थ होनेके कारण) केवल नित्य-कर्म अग्निहोत्रको ही करता रहे तथा पर्व एव अयनके मध्य सम्पन्न की जानेवाली दर्शपौर्णमास एव आग्रयण इष्टियाँ करता रहे। ब्राह्मण जीविकाके लिये लोकवृत्ति (विचित्र हास-परिहास आदिसे युक्त लोककथा आदि)-का आश्रयण कभी न करे। अजिह्म (किसीकी झूठी निन्दा-स्तुति आदिके वर्णनरूप पापसे रहित), अशठ (दम्भ आदि अनेक प्रकारके बनावटी व्यवहारसे शून्य), शुद्ध (वैश्य आदिकी जीवनवृत्तिसे असम्बद्ध) शास्त्रीय वृत्तिका ही आश्रयण करना चाहिये॥ १६-१७॥

याचित्वा वापि सद्भ्योऽन्न पितॄन् देवास्तु तोषयेत्।
याचयेद् वा शुचि दान्त न तृप्येत स्वय तत ॥ १८॥
यस्तु द्रव्यार्जन कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु।
देवान् पितॄंश्च विधिना शुना योनि व्रजत्यसौ॥ १९॥

उस (ब्राह्मणको) सज्जनोंसे अन्न माँगकर भी पितरों तथा देवताओंको सतुष्ट करना चाहिय। अथवा पवित्र इन्द्रियजयी व्यक्तियोंमे याचना करे, किंतु उससे स्वय तृप्त न होवे (अर्थात् उस याचित द्रव्यका उपयोग स्वयके लिये न करे)। जो गृहस्थ द्रव्योपार्जन करके देवताओ तथा पितराका विधिपूर्वक सतुष्ट नहीं करता है, वह कुत्तेकी योनिमें जाता है॥ १८-१९॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च श्रेयो मोक्षश्चतुष्टयम्।
धर्माविरुद्ध काम स्याद् ब्राह्मणाना तु नतर ॥ २०॥
योऽर्थो धर्माय नात्मार्थ सोऽर्थोऽनर्थस्तथेतर।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद् वै जुहुयाद् यजेत्॥ २१॥

धर्म, अर्थ काम तथा कल्याणकारी मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ हैं। ब्राह्मणोंका काम (नामक पुरुषार्थ) धर्मका अविरोधी होना चाहिये, इससे भिन्न (अर्थात् धर्मविरोधी कथमपि) नहीं होना चाहिये। जो अर्थ धर्मके लिये होता है अपने लिये नहीं वह (वास्तविक) अर्थ है इससे भिन्न प्रकारका अर्थ तो अनर्थ है। इसलिये (धर्मपूर्वक) अर्थ प्राप्त होनेपर दान हवन तथा यज्ञ करना चाहिये॥ २०-२१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५॥
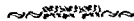
१-ऋत (उञ्छ शिल) अयाचित भैक्ष कृषि वाणिज्य तथा कुसीद—ये ही षट्कर्म हैं।

२-याजन अध्यापन परिग्रह—ये तीन साधन हैं।

३-याजन अध्यापन—ये दो साधन हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

दानधर्मका निरूपण एव नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल-चतुर्विध दान-भेद, दानके अधिकारी तथा अनधिकारी, कामना-भेदसे विविध देवताओकी आराधनाका विधान, ब्राह्मणकी महिमा तथा दानधर्मप्रकरणका उपसहार

व्यास उवाच

अथात सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्।
ब्रह्मणाभिहित पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम्॥ १॥

व्यासजीने कहा—अब मैं श्रेष्ठ दानधर्मका वर्णन करूँगा। इसे पूर्वमें ब्रह्माजीने ब्रह्मवादी ऋषियोंसे कहा था—॥ १॥

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २॥
यद् ददाति विशिष्टेभ्य श्रद्धया परया युत।
तद् वै वित्तमह मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ ३॥
नित्यं नैमित्तिक काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ ४॥

उदित अर्थात् वेदवेदाङ्गाध्ययन करनेवाले प्रशस्त पात्रमें अर्थके श्रद्धापूर्वक प्रतिपादनको दान कहा गया है। यह भोग तथा मोक्ष-रूप फलको देनेवाला है। विशिष्ट अर्थात् सदाचारसम्पन्न व्यक्तियो (ब्राह्मणों)-को अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होकर जो धन दिया जाता है, उसे ही मैं धन मानता हूँ। अवशिष्ट धन (तो किसी दूसरेका ही है, वह) किसी अन्यकी रक्षा करता है। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इस प्रकारसे दान तीन प्रकारका कहा गया है। चौथा दान विमल-दान कहा गया है, जो सभी दानोंमें उत्तमोत्तम है॥ २—४॥

अहन्यहनि यत् किंचिद् दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥ ५॥
यत् तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषा करे।
नैमित्तिक तदुद्दिष्ट दान सद्भिरनुष्ठितम्॥ ६॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानं तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥ ७॥
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दान तद् विमल शिवम्॥ ८॥

प्रत्येक दिन बिना किसी फल-प्राप्तिरूप प्रयोजनके अर्थात् नि स्वार्थभावसे (कर्तव्य समझकर) जो कुछ भी अनुपकारी (जिससे अपना उपकार करानेकी तनिक भी आशा न हो ऐसे) ब्राह्मणको दिया जाता है, वह नित्य-दान कहलाता है। पापके शमन करनेके लिये विद्वान् (ब्राह्मणो)-के हाथम जो दिया जाता है, उसे नैमित्तिक दान कहा गया है। सज्जनाद्वारा इसका अनुष्ठान किया जाता है। सतान, विजय, ऐश्वर्य तथा स्वर्ग-प्राप्तिके लिये जो दान दिया जाता है, वह धर्मविचारक ऋषियोंके द्वारा काम्य-दान कहा गया है। ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये धर्मभावनासे ब्रह्मज्ञानियोको जो दिया जाता है, वह कल्याणकारी दान विमल-दान कहलाता है॥ ५—८॥

दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तित।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्र यत् तारयति सर्वत॥ ९॥
कुदुम्बभक्तवसनाद् देय यदतिरिच्यते।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद् दानं फलप्रदम्॥ १०॥

सत्पात्र उपलब्ध होनेपर यथाशक्ति दानधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये क्योंकि वह सत्पात्र कदाचित् ही सौभाग्यसे उपलब्ध होता है जो दाताका हर तरहसे उद्धार कर देता है। कुटुम्बके भरण-पोषणसे अधिक अवशिष्ट पदार्थका दान करना चाहिये। इससे भिन्न प्रकारका दिया जानेवाला दान फलप्रद नहीं होता॥ ९-१०॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।
वृत्तस्थाय दरिद्राय प्रदेय भक्तिपूर्वकम्॥ ११॥
यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये।
स याति परम स्थान यत्र गत्वा न शोचति॥ १२॥
इक्षुभि सतता भूमि यवगोधूमशालिनीम्।
ददाति वेदविदुषे य स भूयो न जायते॥ १३॥
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमि सम्प्रयच्छति।
ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापै प्रमुच्यते॥ १४॥
भूमिदानात् पर दान विद्यते नेह किञ्चन।
अन्नदान तेन तुल्य विद्यादान ततोऽधिकम्॥ १५॥

श्रोत्रिय, कुलीन, विनयी, तपस्वी, सदाचारी तथा धनहीन (ब्राह्मण)-को भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। जो अग्निहोत्री ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भूमिका दान करता है, वह उस परमपदको प्राप्त करता है, जहाँ जानेपर शोक नहीं करना पडता। इख, जौ तथा गेहूँसे फली हुई विस्तृत भूमिको जो वेदज्ञ (ब्राह्मण)-को दानमे देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अथवा गोचर्म[1] (भूमिकी एक विशेष माप)-के बराबर भूमि जो धनहीन ब्राह्मणको दानम देता है, वह सभी पापोसे मुक्त हो जाता है। इस ससारमे भूमिदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। उसके समान ही अन्नदान है और विद्यादान उससे बडा है॥ ११—१५॥

यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशालिने।
ददाति विद्या विधिना ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥
दद्यादहरहस्त्वन्न श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मण स्थानमाप्नुयात्॥ १७॥
गृहस्थायान्नदानेन फल प्राप्नोति मानव।
आममेवास्य दातव्य दत्त्वाप्नोति परा गतिम्॥ १८॥

जो पवित्र, शान्त, धर्माचरणसम्पन्न ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्या प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोकम प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ब्रह्मचारीको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अन्नदान करना चाहिये। इससे (दाता) सभी पापोसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। गृहस्थ (ब्राह्मण)-को अन्नदान करनेसे मनुष्य (महान्) फल प्राप्त करता है। इसे आमान्न अर्थात् अपक्व अन्न ही देना चाहिये, दान देकर वह परम गति प्राप्त करता है॥ १६—१८॥

वैशाख्या पौर्णमास्या तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
उपोष्य विधिना शान्त शुचि प्रयतमानस॥ १९॥
पूजयित्वा तिलै कृष्णैर्मधुना च विशेषत।
गन्धादिभि समभ्यर्च्य वाचयेद् वा स्वय वदेत्॥ २०॥
प्रीयता धर्मराजेति यद् वा मनसि वर्तते।
यावज्जीवकृत पाप तत्क्षणादेव नश्यति॥ २१॥

वैशाखमासकी पूर्णमासीको सयतचित्तसे उपवासकर शान्ति और पवित्रतापूर्वक सात या पाँच ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक काले तिला विशेषरूपसे मधु तथा गन्ध आदि उपचारोसे अच्छी प्रकारसे पूजा करे तथा (सविधि भोजन कराकर) जो मनम है उसका स्मरण करते हुए उन ब्राह्मणासे 'प्रीयतां धर्मराज' अर्थात् 'धर्मराज प्रसन्न हों' यह वाक्य कहलाये अथवा स्वय कहे। इससे सम्पूर्ण जीवनमें किया हुआ पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है॥ १९—२१॥

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्य मधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ २२॥
कृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्या च विशेषत।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्॥ २३॥
सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥
माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्या समुपोषित।
शुक्लाम्बरधर कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्॥ २५॥
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलानेव समाहित।
जन्मप्रभृति यत्पाप सर्वं तरति वै द्विज॥ २६॥

कृष्णाजिन नामके वृक्ष विशेषसे निर्मित पात्रमे तिल, स्वर्ण मधु तथा घृत रखकर जो ब्राह्मणको देता है, वह सभी पापासे पार हो जाता है। विशेषरूपसे वैशाख मासकी पूर्णिमाको ब्राह्मणाको जो कृतान्न-पक्वान्न (अथवा सत्तू) तथा जलसे भरा घडा धर्मराजके उद्देश्यसे देता है, वह भयसे मुक्त हो जाता है। जो सात अथवा पाँच ब्राह्मणोको स्वर्ण तथा तिलसे युक्त जलपूर्ण घडोसे सतुष्ट करता है, वह ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। माघमासकी (कृष्ण) द्वादशीको उपवास करके शुक्ल वस्त्र धारणकर काले तिलोंसे अग्निम हवन कर जो विप्र (द्विज) समाहित होकर ब्राह्मणोंको (कृष्ण) तिल दान करता है, वह (द्विज) जन्मसे आजतकके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २२—२६॥

१-आचार्य बृहस्पतिने 'गोचर्म-भूमि' कितनी लम्बी-चौडी होती है—इसे बताते हुए कहा है कि दस हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन होता है और दस निवर्तन विस्तारवाली भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। इस प्रकार (१० हाथ=एक दण्ड तीस दण्ड=३०० हाथ या एक निवर्तन और १० निवर्तन=३००० हाथ) तीन हजार हाथ या लगभग १⅓ कि० मी० लम्बी-चौडी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। गोचर्म-भूमिका एक अन्य परिमाप देते हुए कहा गया है कि एक वृषभ तथा बछडे-बछडियोंसहित एक हजार गायें जितनी भूमिमे आरामसे इधर-उधर टहल सके घूम-फिर सके उतनी लम्बी-चौडी भूमि गोचर्म-भूमि कहलाती है।

अमावस्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किंचिद् देवदेवेशं दद्याद्योद्दिश्य शंकरम्॥ २७॥
प्रीयतामीश्वर सोमो महादेव सनातन।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ २८॥

अमावास्या आनेपर जो देवदेवेश भगवान् शंकरको उद्दिष्ट कर 'प्रीयतामीश्वर सोमो महादेव सनातन' अर्थात् (इस दानसे) 'सनातन महादेव ईश्वर सोम प्रसन्न हों' ऐसा कहकर तपस्वी ब्राह्मणको जो कुछ भी दान देता है, उससे सात जन्मोंमें किया हुआ उसका पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है॥ २७-२८॥

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भव॥ २९॥
कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये।
स्नात्वाभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभि॥ ३०॥
प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्त प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ३१॥

जो कृष्ण चतुर्दशीको स्नान करनेके अनन्तर भगवान् पिनाकीकी आराधनाकर ब्राह्मणको भोजन कराता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। विशेषरूपसे कृष्णपक्षकी अष्टमीको स्नान करके पादप्रक्षालन आदिके द्वारा विधिपूर्वक धार्मिक द्विजाति (ब्राह्मण)-की अर्चना करके जो 'प्रीयतां मे महादेवो' ऐसा कहकर अपना द्रव्य प्रदान करता है वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करता है॥ २९—३१॥

द्विजै कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषत।
अमावास्यायां भक्तैस्तु पूजनीयस्त्रिलोचन॥ ३२॥
एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
अर्चयेद् ब्राह्मणमुखे स गच्छेत् परमं पदम्॥ ३३॥
एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद् द्वादशी शुक्लपक्षके।
तस्यामाराधयेद् देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्॥ ३४॥
यत्किञ्चिद् देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम्॥ ३५॥

भक्त द्विजोंको कृष्ण चतुर्दशी विशेषरूपसे कृष्णाष्टमी और अमावास्याको त्रिलोचन (महादेव)-की पूजा करनी चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीके दिन ब्राह्मणको भोजन कराकर जो पुरुषोत्तमकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त करता है। शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि वैष्णवी तिथि है। इस तिथिको प्रयत्नपूर्वक भगवान् जनार्दनकी आराधना करनी चाहिये। भगवान् ईशान (शंकर)-को अथवा विष्णुको उद्दिष्ट कर पवित्र ब्राह्मणको जो कुछ दान दिया जाता है, वह अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ३२—३५॥

यो हि यां देवतामिच्छेत् समाराधयितुं नर।
ब्राह्मणान् पूजयेद् यत्नात् स तस्यां तोषयेत् तत॥ ३६॥

जो मनुष्य जिस देवताकी आराधना करना चाहता है, वह यत्नपूर्वक (उस आराध्य देवताकी प्रतिमूर्ति-रूपमें) ब्राह्मणोंकी पूजा करे इससे वह आराध्य देवता संतुष्ट हो जाते हैं॥ ३६॥

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवता।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित्॥ ३७॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत् तत् फलमभीप्सता।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषत॥ ३८॥

देवता नित्य ही ब्राह्मणोंके शरीरका आश्रय ग्रहणकर प्रतिष्ठित रहते हैं। कभी ब्राह्मणोंके प्राप्त न होनेपर प्रतिमा आदिमें भी उन देवताओंकी पूजा की जाती है। इसलिये उन-उन फलोंकी प्राप्तिकी इच्छासे सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे विशेषरूपसे ब्राह्मणोंमें देवताओंकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ३७—३८॥

विभूतिकाम सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम्।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुक॥ ३९॥
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद् वै विनायकम्॥ ४०॥

ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको सर्वदा इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मतेज और ब्रह्मप्राप्तिके अभिलाषीको ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये। आरोग्यकी इच्छावालेको सूर्यकी, धनाभिलाषीको अग्निकी और कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त करनेकी (अपने कार्यकी निर्विघ्न सम्पन्नताकी) इच्छावालेको विनायककी पूजा करनी चाहिये॥ ३९-४०॥

भोगकामस्तु शशिनं बलकाम समीरणम्।
मुमुक्षु सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्॥ ४१॥
यस्तु योगं तथा मोक्षमन्विच्छेज्ज्ञानमैश्वरम्।
सोऽर्चयेद् वै विरूपाक्षं प्रयत्नेनेश्वरेश्वरम्॥ ४२॥

ये वाञ्छन्ति महायोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम्।
ते पूजयन्ति भूतेशं केशवं चापि भोगिन ॥ ४३ ॥

भोग-प्राप्तिकी इच्छावालेको चन्द्रमाकी, बलप्राप्तिकी इच्छावालेको वायुकी और समस्त ससारसे मुक्तिके अभिलाषीको प्रयत्नपूर्वक विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो, उसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वरोके भी ईश्वर विरूपाक्ष (शकर)-की पूजा करनी चाहिये। जो महायोग और ज्ञानकी इच्छा करते हैं, वे भूताधिपति महेश्वरकी पूजा करते हैं और योगीजन केशवकी आराधना करते हैं॥ ४१—४३ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नद ।
तिलप्रद प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥ ४४॥
भूमिद सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यद ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ ४५॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वद ।
अनडुद श्रिय पुष्टा गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥ ४६॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रद ।
धान्यद शाश्वतं सौख्य ब्रह्मदो ब्रह्मसात्म्यताम्॥ ४७॥
धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥ ४८॥

जलदान करनेवाला तृप्ति प्राप्त करता है, अन्नदान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलदान करनेवाला इच्छित सतान प्राप्त करता है और दीपदान करनेवाला उत्तम ज्योति (चक्षु) प्राप्त करता है। भूमिदान करनेवाला सब कुछ प्राप्त करता है। स्वर्णदाता दीर्घ आयु, गृह-दान करनेवाला ऊँचे महल तथा चाँदी दान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है। वस्त्र दान करनेवाला चन्द्रलोकम निवास करता है और अश्व-दान करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोकमे जाता है। वृषभ-दान करनेवालेको पुष्ट लक्ष्मी और गो-दान करनेवालेको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। यान (सवारी) और शय्या-दान करनेवालेको भार्या तथा अभयदाताको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्यदाता शाश्वत सौख्य तथा वेदविद्याका दान करनेवाला ब्रह्म-तादात्म्यको प्राप्त करता है। विशिष्ट वेदज्ञाता ब्राह्मणोको यथाशक्ति धान्य भी प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृत्युके अनन्तर स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ४४—४८ ॥

गवा घासप्रदानेन सर्वपापै प्रमुच्यते।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नर ॥ ४९॥
फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्त सदा भवेत्॥ ५०॥
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये।
ददानो रोगरहित सुखी दीर्घायुरेव च॥ ५१॥
असिपत्रवन मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्।
तीव्रतापं च तरति छत्रोपानत्प्रदो नर ॥ ५२॥
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता॥ ५३॥

गौओंको घास प्रदान करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधनका दान करनेसे मनुष्य प्रदीप्त (जाठर) अग्निवाला (उत्तम पाचनशक्ति-सम्पन्न) होता है। जो ब्राह्मणोंको फल, मूल, शाक तथा विविध भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, वह सर्वदा आनन्दित रहता है। रोगीके रोग-शान्तिके लिये जो उन्हें औषधि, स्नेह (तेल, घृत आदि) तथा आहार प्रदान करता है वह रोगरहित, सुखी तथा दीर्घ आयुवाला होता है। छाता और जूता प्रदान करनेवाला मनुष्य छुरेकी धारसे पूर्ण असिपत्रवनके मार्गमे तीव्र तापको पार कर लेता है। ससारमें जो-जो भी स्वयको अत्यन्त अभीष्ट हो और जो घरमें सबके लिये अत्यन्त प्रिय वस्तु हो, उस-उस वस्तुको गुणवान् ब्राह्मणको दानम देना चाहिये ऐसा करनेसे अभीष्ट एव प्रिय वस्तु अक्षय होकर प्राप्त होती है॥ ४९—५३ ॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्त भवति चाक्षयम्॥ ५४॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥ ५५॥

अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), विषुव (मेष और तुला-सक्रान्ति), चन्द्र और सूर्यग्रहण तथा (अन्य) सक्रान्ति आदि समयोमे दिया हुआ दान अक्षय होता है। प्रयाग आदि तीर्थों, पवित्र मन्दिरा, नदियोंके किनारो तथा (नैमिष आदि पुण्यप्रद) अरण्योंमे दान देनेसे अक्षय (फल) प्राप्त होता है॥ ५४-५५ ॥

दानधर्मात् परो धर्मो भूताना नेह विद्यते।
तस्माद् विप्राय दातव्य श्रोत्रियाय द्विजातिभि ॥ ५६॥

स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये।
मुमुक्षुणा च दातव्य ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम्॥५७॥

इस ससारमे प्राणियोके लिये दानसे बढकर कोई अन्य धर्म नहीं है। इसलिये द्विजातियोको श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान देना चाहिये। स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यका अभिलाषी और पापकी शान्तिके इच्छुक तथा मोक्षार्थी पुरुषको प्रतिदिन ब्राह्मणोके निमित्त दान करना चाहिये॥ ५६-५७॥

दीयमान तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च।
निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनि व्रजेत् तु स ॥५८॥
यस्तु द्रव्यार्जन कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान्।
सर्वस्वमपहृत्यैन राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत्॥५९॥
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्य न प्रयच्छति।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्राह्मण स तु गर्हित ॥६०॥
न तस्मात् प्रतिगृह्णीयुर्न विशेयुश्च तेन हि।
अङ्कयित्वा स्वकाद् राष्ट्रात् त राजा विप्रवासयेत्॥६१॥
यस्त्वसद्भ्यो ददातीह स्वद्रव्य धर्मसाधनम्।
स पूर्वाभ्यधिक पापी नरके पच्यते नर ॥६२॥

जो व्यक्ति मोहवश गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओके निमित्त दिये जा रहे दानको रोकता है, वह पापात्मा तिर्यग्योनिमे जाता है। जो द्रव्यका अर्जन करके ब्राह्मणो तथा देवताओकी पूजा नहीं करता है (अर्थात् धर्मसम्मत लोकसम्मत-रूपमे धनका उपयोग नहीं करता है तो) उसका सर्वस्व अपहरण करके उसे राष्ट्रसे बाहर निकाल देना राजाका कर्तव्य है। जो व्यक्ति दुर्भिक्षके समय मरणप्राय विप्राको अन्न आदि नहीं देता, वह ब्राह्मण[1] (या मनुष्य) निन्दित होता है, उसके साथ न आदान-प्रदानका व्यवहार करना चाहिये और न उसके साथ बैठना ही चाहिये। राजा उसको चिह्नितकर[2] अपने राष्ट्रसे बाहर निकाल दे। ससारमे अपने धर्मके साधनरूप द्रव्यको जो असज्जनो (दानके अयोग्यो)-को दान करता है, वह मनुष्य पूर्वसे (पूर्वोक्त वर्णित सभी पापियोसे) भी अधिक पापी होता है और नरकमे पडता है॥ ५८—६२॥

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रिया ।
सत्यसयमसयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमा ॥६३॥
सुभुक्तमपि विद्वास धार्मिक भोजयेद् द्विजम्।
न तु मूर्खमवृत्तस्थ दशरात्रमुपोषितम्॥६४॥

हे द्विजोत्तमो! जो ब्राह्मण स्वाध्यायनिरत, विद्यावान्, जितेन्द्रिय तथा सत्य और सयम-सम्पन्न है, उसे दान देना चाहिये। भोजन किये रहनेपर भी विद्वान् धार्मिक द्विजको भोजन कराना चाहिये, किंतु मूर्ख और सदाचारहीन ब्राह्मणको दस दिनोका भूखा होनेपर भी भोजन नहीं कराना[3] चाहिये॥ ६३-६४॥

सनिकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रिय य प्रयच्छति।
स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तम कुलम्॥६५॥
यदि स्यादधिको विप्र शीलविद्यादिभि स्वयम्।
तस्मै यत्नेन दातव्य अतिक्रम्यापि सनिधिम्॥६६॥
योऽर्चित प्रतिगृह्णीयाद् दद्यादर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छत स्वर्ग नरक तु विपर्यये॥६७॥
न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च।
पाषण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्॥६८॥

जो समीपमे स्थित श्रोत्रियकी अवमानना कर अन्य (ब्राह्मण)-को दान देता है, वह पापी अपने उस पापके कारण अपने सात पीढीतकको दग्ध कर डालता है। यदि कोई ब्राह्मण शील, विद्या आदिमें अधिक गुणसम्पन्न हो, तो समीपके ब्राह्मणका भी अतिक्रमण कर यत्नपूर्वक उसे दान देना चाहिये। जो आदरपूर्वक दान ग्रहण करता है और जो आदरपूर्वक देता है, वे दोनो स्वर्ग प्राप्त करते है। इसके विपरीत करनेवाले नरक जाते हैं। धर्मज्ञको नास्तिक, कुतर्की सभी पाखडिया तथा वेदज्ञानसे हीन व्यक्तिके निमित्त जलका भी दान नहीं करना चाहिये[4]॥ ६५—६८॥

अपूप च हिरण्य च गामश्व पृथिवीं तिलान्।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत्॥६९॥

१-मूलमे 'ब्राह्मण' शब्द है। पर यह मनुष्यमात्रका उपलक्षण है।
२-अपराधसूचक चिह्नसे अपराधीको अङ्कित करना भी दण्ड देनेके अन्तर्गत एक शास्त्रीय प्रक्रिया है।
३-यह अनुष्ठानके अङ्गभूत भोजनका निषेध है। सामान्यत तो किसी भी भूखेको भोजन कराना गृहस्थका अनिवार्य कर्तव्य है।
४-यहाँ जलके दानका निषेध है। प्यासेको पानी पिलानेका निषेध नहीं है। दानके लिये ही योग्य पात्रकी अपेक्षा है।

द्विजातिभ्यो धन लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तम ।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात् कथञ्चन॥७०॥

अपूप (पुआ), स्वर्ण, गौ, अश्व, पृथ्वी तथा तिलका दान ग्रहण करनेवाला अविद्वान् व्यक्ति लकडीके समान भस्म हो जाता है (अर्थात् दान लेनेकी योग्यता न रहनेपर लोभवश दान नहीं लेना चाहिये)। श्रेष्ठ द्विजको प्रशस्त द्विजातियोसे धनकी इच्छा करनी चाहिये अथवा अपनी जातिवालोसे ही धन ग्रहण करना चाहिये, किंतु शूद्रसे किसी प्रकार धन नहीं लेना चाहिये॥ ६९-७०॥[1]

वृत्तिसकोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥७१॥
वेदानधीत्य सकलान् यज्ञाश्चावाप्य सर्वश ।
न ता गतिमवाप्नोति सकोचाद् यामवाप्नुयात्॥७२॥
प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात् यात्रार्थं तु समाहरेत्।
स्थित्यर्थादधिक गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥७३॥

ब्राह्मणका वृत्तिके सकोचकी इच्छा रखनी चाहिये, उसे धनका विस्तार करनेकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। धनके लोभम आसक्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोका अध्ययन करने और सभी यज्ञोको कर लेनेपर भी वह गति नहीं प्राप्त होती जो (वृत्तिके) सकोचसे प्राप्त होती है (अर्थात् जीवननिर्वाहके लिये जीविकाका अधिक-से-अधिक विस्तार उचित नहीं है)। दान लेनेम रुचि नहीं होनी चाहिये। मात्र जीवन-निर्वाहके लिये धन ग्रहण करना चाहिये। अपनी स्थितिमात्रसे अधिक धन लेनेवाला ब्राह्मण अधोगति प्राप्त करता है (अर्थात् अपने तथा अपने परिवारके पोषणके लिये जितना अत्यावश्यक है उतना ही लेना चाहिये।)॥ ७१—७३॥

यस्तु याचनको नित्य न स स्वर्गस्य भाजनम्।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव स॥७४॥
गुरून् भृत्याश्चोज्जिहीर्षुरर्चिष्यन् देवतातिथीन्।
सर्वत प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत् स्वय तत॥७५॥

जो नित्य याचना करता है, वह स्वर्गका भागी नहीं होता। वह प्राणियोको उद्विग्न करता है, वह चोरके ही समान होता है। गुरुजना तथा सेवकोंके उद्धारकी इच्छा करनेवाला तथा देवता और अतिथियाकी आराधना करनेवाला सबसे दान ग्रहण कर सकता है, किंतु उस दानसे वह अपनी तृप्ति न करे॥ ७४-७५॥

एव गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजक ।
वर्तमान सयतात्मा याति तत् परम पदम्॥७६॥
पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वारण्य तु तत्त्ववित्।
एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीन समाहित॥७७॥
एष व कथितो धर्मो गृहस्थाना द्विजोत्तमा ।
ज्ञात्वानुतिष्ठेन्नियत तथानुष्ठापयेद् द्विजान्॥७८॥

इस प्रकार सयत आत्मावाला, देवताओं तथा अतिथियोंकी पूजा करनेवाला युक्तात्मा गृहस्थ परमपदको प्राप्त करता है। अथवा पुत्रको अपना सर्वस्व समर्पित कर तत्त्वज्ञानी पुरुषको वनमें जाकर समाहित होकर, विरक्तभावसे नित्य एकाकी विचरण करना चाहिये। हे द्विजोत्तमो! यह मैंने आप लोगाको गृहस्थाका धर्म बतलाया। इसे जानकर इसका नियमपर्वूक स्वय अनुष्ठान करना चाहिये और अन्य द्विजासे इसका पालन करवाना चाहिये॥ ७६—७८॥

इति देवमनादिमेकमीश
गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम्।
समतीत्य स सर्वभूतयोनि
प्रकृति याति पर न याति जन्म॥७९॥

इस प्रकार गृहस्थधर्मके द्वारा अनादि अद्वितीय देव ईश्वरकी सतत आराधना करनी चाहिये। (ऐसा करनेवाला) वह व्यक्ति समस्त प्राणियोंके मूल कारण प्रकृतिका अतिक्रमण कर परमपदको प्राप्त कर लेता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ७९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे षड्विंशोऽध्याय ॥ २६॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६॥

१-शूद्र छोटा भाई है इसलिये उससे धन लेनेका निषेध किया है। छोटेसे माँगना उचित नहीं होता।

सत्ताईसवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम तथा वानप्रस्थ-धर्मका वर्णन, वानप्रस्थीके कर्तव्योका निरूपण

व्यास उवाच

एव गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीय भागमायुष ।
वानप्रस्थाश्रम गच्छेत् सदार साग्निरेव च॥१॥
निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद् वनमथापि वा।
दृष्ट्वापत्यस्य चापत्य जर्जरीकृतविग्रह ॥२॥
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे प्रशस्ते चोत्तरायणे।
गत्वारण्य नियमवास्तप कुर्यात् समाहित ॥३॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार आयुके द्वितीय भागतक गृहस्थाश्रममें रहकर (तृतीय भागम) अग्नि तथा भार्यासहित वानप्रस्थ-आश्रममे प्रवेश करना चाहिये। अथवा पुत्रके भी पुत्रको देखकर और शरीरके जर्जर हो जानेपर अपनी पत्नीको पुत्रोके सरक्षणमे रख दे तथा स्वय वनमे चला जाय। प्रशस्त उत्तरायणमे शुक्लपक्षके पूर्वाह्णम वनम जाकर नियम ग्रहणकर समाहित होकर तप करना चाहिये॥ १—३ ॥

फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत्।
यताहारो भवेत् तेन पूजयेत् पितृदेवता ॥४॥
पूजयित्वातिथि नित्य स्नात्वा चाभ्यर्चयेत् सुरान्।
गृहादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहित ॥५॥
जटाश्च बिभृयान्नित्य नखरोमाणि नोत्सृजेत्।
स्वाध्याय सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद् वाचमन्यत ॥६॥

नित्य पवित्र फल-मूलोको आहारके लिये स्वीकार करना चाहिये और इस प्रकार सयत आहारवाला होकर उसी फल-मूल आदिसे पितरा तथा देवताआका पूजन (सतर्पण) करना चाहिये। स्नान करके नित्य अतिथियोका पूजन करके देवताओंका पूजन करे। घरसे लाकर एकाग्रतापूर्वक आठ ग्रास भोजन करे। नित्य जटा धारण करे नख तथा रोम न कटवाये। सर्वदा स्वाध्याय करे और अन्य विषयासे वाणीको रोके॥ ४—६ ॥

अग्निहोत्र च जुहुयात् पञ्चयज्ञान् समाचरेत्।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यै शाकमूलफलेन वा॥७॥
चीरवासा भवेन्नित्य स्नायात् त्रिषवण शुचि ।
सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जित ॥८॥
दर्शेन पौर्णमासेन यजेत नियत द्विज ।
ऋक्षेष्व्याग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्।
उत्तरायण च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च॥९॥
वासन्तै शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नै स्वयमाहृतै ।
पुरोडाशाश्चरूश्चैव विधिवन्निर्वपेत् पृथक्॥१०॥
देवताभ्यश्च तद् हुत्वा वन्य मेध्यतर हवि ।
शेष समुपभुञ्जीत लवण च स्वय कृतम्॥११॥

अग्निहोत्र करे और (वनमे स्वय उत्पन्न होनेवाले) मुनियोके विविध प्रकारके पवित्र अन्नो एव शाक, मूल अथवा फलोसे पञ्चमहायज्ञोको सम्पन्न करे। नित्य चीररूपी (अचला, कौपीनमात्र) वस्त्र धारण करे, तीनो सध्याओमें पवित्रतापूर्वक स्नान करे। सभी प्राणियापर दया रखे और दान ग्रहण न करे। (वानप्रस्थी) द्विजको नियमसे दर्श-पौर्णमासयाग, नक्षत्रयाग, आग्रयण (नवशस्येष्टि) और चातुर्मासयाग करना चाहिये तथा क्रमश उत्तरायण एव दक्षिणायन याग करना चाहिये। वसन्त तथा शरत्कालमे उत्पन्न स्वय लाये हुए पवित्र मुन्यन्नासे पृथक्-पृथक् पुरोडाश एव चरु बनाकर देवताआ (तथा पितरो)-को अतिपवित्र वन्य हवि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर अवशिष्ट उस हविको लवण मिलाकर स्वय भक्षण करना चाहिये॥ ७—११ ॥

वर्जयेन्मधुमासानि भौमानि कवकानि च।
भूस्तृण शिग्रुक चैव श्लेष्मातकफलानि च॥१२॥
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च॥१३॥

मधु, मास भूमिम उत्पन्न कवक (कुकुरमुत्ता), भूस्तृण (शाकविशेष) शिग्रुक (सहिजन) तथा श्लेष्मातक (लिसोढा)-के फलाका त्याग करना चाहिये। हलसे जोती हुई भूमिमे उत्पन्न और दूसराके द्वारा परित्यक्त पदार्थका भक्षण नहीं करना चाहिये। कष्टम होते हुए भी ग्रामम उत्पन्न पुष्पा-फलाका भक्षण नहीं करना चाहिये॥ १२-१३ ॥

श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत् सदा।
न द्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्॥ १४॥
न भक्षं किंचिदश्नीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत्।
जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत्॥ १५॥

सर्वदा श्रावणी विधिके अनुसार अग्निकी परिचर्या करे। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करे, द्वन्द्वोंसे परे और भयरहित रहे। रातमें कुछ भी भोजन न करे रात्रिमें केवल ध्यानपरायण रहे। नित्य इन्द्रियजयी क्रोधजयी तत्त्वज्ञानका चिन्तक तथा ब्रह्मचर्यपरायण रहे। पत्नीका भी आश्रय न ले॥ १४-१५॥

यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत्।
तद् व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ १६॥
तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः।
न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि॥ १७॥
अधः शयीत सततं सावित्रीजाप्यतत्परः।
शरण्यः सर्वभूतानां संविभागपरः सदा॥ १८॥

जो (द्विज) वनमें जाकर कामवश पत्नीके साथ मैथुन करता है तो वह व्रत (वानप्रस्थव्रत)-से च्युत हो जाता है और प्रायश्चित्तका भागी होता है। वहाँ (वानप्रस्थाश्रममें) जो संतान उत्पन्न होती है, वह द्विजातियोंके द्वारा स्पर्शके योग्य नहीं होती। उसका वेदमें अधिकार नहीं होता और उसके वंशमें भी यही स्थिति रहती है। (वानप्रस्थीको) नित्य भूमिपर शयन करना चाहिये। गायत्रीके जपमें तत्पर रहना चाहिये। सभी प्राणियोंको शरण देनेवाला होना चाहिये और दानशील होना चाहिये॥ १६—१८॥

परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत्।
एकाग्निरनिकेतः स्यात् प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत्॥ १९॥
मृगैः सह चरेद् वासं तैः सहैव च संवसेत्।
शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः॥ २०॥
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा।
षण्माससंचयो वा स्यात् समानिचय एव वा॥ २१॥

परिवाद (परनिन्दा), असत्यभाषण, निद्रा तथा आलस्यका परित्याग करना चाहिये। एकाग्नि और घरसे रहित होना चाहिये। प्रोक्षित की गयी भूमिपर रहना चाहिये। (वनमें) मृगोंके साथ विचरण करना चाहिये और उन्हींके साथ रहना चाहिये (अर्थात् असंग हो वनमें ही रहे)। शिला या बालूके ऊपर शयन करना चाहिये और सदा समाहितचित्त रहना चाहिये। शीघ्र ही समाप्त होने योग्य फल-मूल आदिका संग्रह करनेवाला होना चाहिये अथवा एक महीनेतक छः महीनेतक या एक वर्षतक उपयोग किये जानेवाले (फल-मूलादि)-का संग्रह करनेवाला होना चाहिये॥ १९—२१॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वसंचितम्।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च॥ २२॥
दन्तोलूखलिको वा स्यात् कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत्।
अश्मकुट्टो भवेद् वापि कालपक्वभुगेव वा॥ २३॥
भक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद्वाप्यष्टमकालिकः॥ २४॥
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् यवागूं क्वथितां सकृत्॥ २५॥

पूर्वसंचित पदार्थों, जीर्ण वस्त्र तथा शाक, फल मूल आदिका आश्विनमासमें परित्याग कर देना चाहिये। दाँतोंको ही ऊखल (तथा मूसल) समझना चाहिये। कापोतीवृत्ति (कबूतरकी तरह दाना चुगकर खानेवाली वृत्ति)-का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। अथवा पत्थरपर ही कूटकर अन्नका भक्षण करनेवाला होना चाहिये या समयानुसार पके हुए (फल-मूलादि)-का भक्षण करनेवाला होना चाहिये। यथाशक्ति दिनमें अन्न (फल-मूलादि) लाकर रात्रिमें भक्षण करना चाहिये अथवा चतुर्थकालिक या अष्टमकालिक भोजन करनेवाला होना चाहिये। अथवा शुक्ल और कृष्णपक्षमें चान्द्रायणविधिसे रहे। या प्रत्येक पक्षमें एक बार उबाले गये यवागूका भक्षण करे॥ २२—२५॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत् सदा।
स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः॥ २६॥
भूमौ वा परिवर्तेत तिष्ठेद् वा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद् धैर्यमुत्सृजेत्॥ २७॥
ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद् वर्षास्वभ्रावकाशकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः॥ २८॥

अथवा सर्वदा वैखानस (वानप्रस्थ) व्रतका पालन करते

हुए केवल स्वाभाविक रीतिसे अपने-आप (वृक्षसे) गिरे हुए पुष्प, मूल एव फलासे निर्वाह करता रहे। भूमिपर लेटना एव रहना चाहिये। दिनमे पजोके बल उठना, बैठना या चलना चाहिये। धैर्य कभी भी न छोडे। ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि-तप (तप-विशेषका सेवन) करे। वर्षाके दिनोमे खुले आकाशके नीचे रहे और हेमन्तमे गीले वस्त्र धारण करे—इस प्रकार क्रमश तपस्याको बढाता रहे॥ २६—२८॥

उपस्पृश्य त्रिषवण पितृदेवांश्च तर्पयेत्।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन् वा पिबेत् तदा॥२९॥
पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मप सोमपोऽपि वा।
पय पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु गोमयम्।
शीर्णपर्णाशनो वा स्यात् कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत् सदा॥३०॥

आचमनकर तीनों सध्याओंमे स्नान तथा पितरो और देवताओका तर्पण (एव पूजन) करे। उस समय एक पैरसे खडा रहे अथवा सूर्यकिरणोका पान करे। पञ्चाग्निका सेवन करे अथवा धुएँका पान करे या ऊष्माका पान करे अथवा सोमपान करे। शुक्लपक्षमे दुग्ध-पान करे और कृष्णपक्षमें गोमयका सेवन करे अथवा गिरे हुए पत्तोका सेवन करे या सदा कृच्छ्रव्रतका पालन करता रहे॥ २९-३०॥

योगाभ्यासरतश्च स्याद् रुद्राध्यायी भवेत् सदा।
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्पर ॥३१॥
यमान् सेवेत सतत नियमाश्चाप्यतन्द्रित ।
कृष्णाजिनी सोत्तरीय शुक्लयज्ञोपवीतवान्॥३२॥
अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्पर ।
अनग्निरनिकेत स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत्॥३३॥

सदा योगका अभ्यास करता रहे, रुद्राध्यायका अध्ययन करता रहे। अथर्वशिरस्के अध्ययन और वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर रहे। आलस्यरहित होकर निरन्तर यमों और नियमाका पालन करे। कृष्ण-मृगचर्म उत्तरीय और शुक्ल यज्ञोपवीत धारण करे। अग्नियोको अपनी आत्मामे प्रतिष्ठित कर ध्यान-परायण रहे। अग्नि (गृह्याग्नि) और गृहका परित्याग कर दे और मुनिव्रतद्वारा मोक्षकी प्राप्तिका प्रयत्न करता रहे॥ ३१—३३॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिक भैक्षमाहरेत्।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु॥३४॥
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन्।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा॥३५॥

जीवन-निर्वाहके लिये तपस्वी ब्राह्मणोसे ही भिक्षा माँगे। अथवा अन्य गृहस्थो तथा वनवासी द्विजोसे भिक्षा लेनी चाहिये। अथवा वनमे रहते हुए ग्रामसे लाकर मात्र आठ ग्रास भोजन करना चाहिये। पत्ताके दोने, हाथ अथवा कसोरे (मिट्टीके पात्र) इत्यादिके टुकडेमे ही भोजन ग्रहण करना चाहिये॥ ३४-३५॥

विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत्।
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्याय तथैव च॥३६॥
महाप्रास्थानिक चासौ कुर्यादनशन तु वा।
अग्निप्रवेशमन्यद् वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थित ॥३७॥

आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये (विधिपूर्वक) विविध उपनिषदोका निरन्तर पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार विशिष्ट विद्याओं, गायत्री तथा रुद्राध्यायकी आवृत्ति करनी चाहिये। अथवा ब्रह्मार्पण-विधिमें स्थित रहते हुए महाप्रस्थान (मृत्यु-पथ)-के उद्देश्यसे अनशन करे या अग्निमे प्रवेश करे॥ ३६-३७॥

यस्तु सम्यगिममाश्रम शिव
सश्रयेदशिवपुञ्जनाशनम् ।
तापस स परमैश्वर पद
याति यत्र जगतोऽस्य सस्थिति ॥३८॥

जो तपस्वी अमगल-समूहका नाश करनेवाले तथा कल्याणकारी इस (वानप्रस्थ) आश्रमका भलीभाँति आश्रयण करता है, वह उस परम ऐश्वर पदको प्राप्त करता है, जिसमें इस जगत्की स्थिति है॥ ३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सन्यासधर्मका प्रतिपादन, सन्यासियोके भेद तथा सन्यासीके कर्तव्योका वर्णन

व्यास उवाच

एव वनाश्रमे स्थित्वा तृतीय भागमायुप ।
चतुर्थमायुयो भाग सन्यासेन नयेत् क्रमात्॥ १॥
अग्नीनात्मनि सस्थाप्य द्विज प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरत शान्तो ब्रह्मविद्यापरायण ॥ २॥
यदा मनसि सजात वैतृष्ण्य सर्ववस्तुषु।
तदा सन्यासमिच्छेच्च पतित स्याद् विपर्यये॥ ३॥
प्राजापत्या निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुन ।
दान्त पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयत्॥ ४॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रममे आयुके तीसरे भागको व्यतीतकर क्रमश आयुके चौथे भागको सन्यास-आश्रमद्वारा व्यतीत करना चाहिये। अग्नियोंको आत्मामें प्रतिष्ठित कर द्विजको सन्यास ग्रहण करना चाहिये। उसे योगाभ्यासमे निरत शान्त तथा ब्रह्मविद्यापरायण रहना चाहिये। जब सभी वस्तुओके प्रति मनम वितृष्णा उत्पन्न हो जाय, तब सन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा करनी चाहिये। इसके विपरीत करनेसे (अर्थात् स्वल्प भी तृष्णाके रहते सन्यास ग्रहण करनेपर) मनुष्य पतित हो जाता है। प्राजापत्य अथवा आग्नेय याग करके इन्द्रियनिग्रही एव पूर्ण वैराग्यवान् द्विजको ब्रह्माश्रम (सन्यासाश्रम)-का आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १—४॥

ज्ञानसन्यासिन केचिद् वेदसन्यासिन परे।
कर्मसन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधा परिकीर्तिता ॥५॥
य सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भय ।
प्रोच्यते ज्ञानसन्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थित ॥६॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्य निराशी निष्परिग्रह ।
प्रोच्यते वदसन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रिय ॥७॥
यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विज ।
ज्ञेय स कर्मसन्यासी महायज्ञपरायण ॥८॥
त्रयाणामपि चैतेषा ज्ञानी त्वभ्यधिको मत ।
न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्ग वा विपश्चित ॥९॥

कुछ ज्ञानसन्यासी होते हैं कुछ वेदसन्यासी होते हैं और कुछ कर्मसन्यासी होते हैं। इस प्रकार तीन प्रकारके सन्यासी कहे गये हैं। जो सभी आसक्तियोंसे मुक्त है, सुख-दु खादि द्वन्द्वासे रहित है और निर्भय है, अपनी आत्माम ही प्रतिष्ठित रहनवाला है, वह ज्ञानसन्यासी कहलाता है। जो नित्य वेदका ही अभ्यास (स्वाध्याय) करता रहता है, आशारहित है, सग्रहशून्य है, जितन्द्रिय है तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाला है, वह वेदसन्यासी कहा जाता है। जो अग्नियाको आत्मसात्कर ब्रह्मार्पणतत्पर रहता है, उस महायज्ञपरायण (सतत ब्रह्मचिन्तन-परायण) द्विजको कर्मसन्यासी जानना चाहिये। इन तीनोंमें ज्ञानी (ज्ञान-सन्यासी)-को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। उस (ज्ञानी)-का न कोई कर्तव्य (शेष) रह जाता है और न कोई चिह्न ही होता है॥ ५—९॥

निर्ममो निर्भय शान्तो निर्द्वन्द्व पर्णभोजन ।
जीर्णकौपीनवासा स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्पर ॥१०॥

सन्यासीको ममताशून्य, भयरहित, शान्त, द्वन्द्वासे परे, पत्तोका ही आहार करनेवाला, जीर्ण कौपीनको वस्त्र-रूपमें धारण करनेवाला अथवा नग्न और ध्यान-परायण होना चाहिये॥ १०॥

ब्रह्मचारी मिताहारो ग्रामादन्न समाहरेत्।
अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निरामिष ॥११॥
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह।
नाभिनन्देत मरण नाभिनन्देत जीवितम्॥१२॥
कालमेव प्रतीक्षेत निदेश भृतको यथा।
नाध्येतव्य न वक्तव्य श्रोतव्य न कदाचन।
एव ज्ञात्वा परो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पत॥१३॥

(सन्यासी) ब्रह्मचर्यका पालन करे, सीमित मात्रामे आहार ग्रहण करे ग्रामसे अन्न माँगकर लाये। अध्यात्म (ज्ञान)-मे बुद्धि रखे, निरपेक्ष रह तथा निरामिष रहे। अपनी ही सहायतासे अर्थात् स्वावलम्बी होकर आत्मतुष्टिके लिये इस ससारमे विचरण करे, न तो मृत्युका ही अभिनन्दन करे और न जीवनका अभिनन्दन करे। जिस प्रकार सवक (अपने स्वामीके) आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे भी कालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। न कभी अध्ययन करे न प्रवचन करे और न कुछ श्रवण ही

करे। इस प्रकारका ज्ञान रखकर (आत्मनिष्ठ होकर) वह श्रेष्ठ योगी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ११—१३॥

एकवासाथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा।
मुण्डी शिखी वाथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रह ।
काषायवासा सतत ध्यानयोगपरायण ॥१४॥
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा।
सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्य नैकान्नादी भवेत् क्वचित्॥१५॥

विद्वान् सन्यासी (कौपीनके साथ) एक वस्त्र (उत्तरीय) धारण करे अथवा कौपीनमात्रसे शरीरका आच्छादन करे। मुण्डित सिर अथवा जटाधारी रहे। त्रिदण्डी रहे, सचयवृत्तिसे शून्य रहे। काषाय वस्त्र ही धारण करे और निरन्तर ध्यानयोगमें परायण रहे। उसे (सन्यासीको) ग्रामकी सीमापर, वृक्षके मूलमें अथवा किसी देवमन्दिरमे रहना चाहिये। शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमे समान रहना चाहिये। नित्य भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करे। कभी भी उसे किसी एक ही व्यक्तिका अन्न खानेवाला नहीं होना चाहिये॥ १४-१५॥

यस्तु मोहेन वालस्यादेकान्नादी भवेद् यति ।
न तस्य निष्कृति काचिद् धर्मशास्त्रेषु कथ्यते॥१६॥
रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चन ।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात् सर्वनिस्पृह ॥१७॥
दृष्टिपूतं न्यसेत् पाद वस्त्रपूत जल पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद् वाणीं मन पूत समाचरेत्॥१८॥

जो सन्यासी मोह या आलस्यवश किसी एक ही व्यक्तिका अन्न भक्षण करता है, उसकी मुक्तिका कोई उपाय धर्मशास्त्रोंमे नहीं बतलाया गया है। (सन्यासीको) राग-द्वेषसे मुक्त, मिट्टी, पत्थर और सोनेमे समान भाव रखनेवाला, प्राणियोकी हिंसासे निवृत्त, मौनी और सब प्रकारसे आसक्तिशून्य होना चाहिये, अच्छी तरह देखकर पैर रखना चाहिये, वस्त्रसे छानकर जल पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र वाणी बोलनी चाहिये और मनसे शुद्ध आचरण करना चाहिये॥ १६—१८॥

नैकत्र निवसेद् देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुक ।
स्नानशौचरतो नित्य कमण्डलुकर शुचि ॥१९॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत्।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेन्द्रिय ॥२०॥
दम्भाहकारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जित ।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥२१॥
अभ्यसेत् सतत वेद प्रणवाख्य सनातनम्।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु॥२२॥

सन्यासीको वर्षाऋतुके अतिरिक्त (अन्य ऋतुओंमें) किसी एक ही स्थानपर नहीं रहना चाहिये। नित्य स्नान एव शौचमे तत्पर, हाथमें कमण्डलु धारण करनेवाला तथा पवित्र होना चाहिये। नित्य ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिये, वनवासी ही रहना चाहिये तथा मोक्षविषयक शास्त्राध्ययनमे निरत रहते हुए ब्रह्मसूत्री (यज्ञोपवीतसे युक्त दण्डधारी) और जितेन्द्रिय रहना चाहिये। दम्भ-अहकारसे मुक्त रहे, निन्दा तथा पिशुनता (चुगलखोरी)-का सर्वथा परित्याग करे। आत्मज्ञानसम्बन्धी गुणोंसे सम्पन्न रहे—ऐसा सन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है। विधिपूर्वक स्नानोपरान्त आचमन करके पवित्रतापूर्वक देवालयोंमे प्रणव नामक सनातन वेद (मन्त्र)-का निरन्तर अभ्यास (जप) करे॥ १९—२२॥

यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणि समाहित ।
धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुह ॥२३॥
अधियज्ञ ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिक च सतत वेदान्ताभिहित च यत्॥२४॥
पुत्रेषु वाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनि ।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्य स याति परमा गतिम्॥२५॥

यज्ञोपवीती, शान्तात्मा, हाथमे कुश धारण करनेवाला, एकाग्रचित्त, धुला हुआ काषाय वस्त्र धारण करनेवाला और भस्मसे धूसरित देहवाला रहना चाहिये[1]। सन्यासीको वेदान्त-प्रतिपादित अधियज्ञ (समस्त यज्ञोंके अधिष्ठान) आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ब्रह्म (मन्त्र-प्रणव)-का सतत जप करना चाहिये। अथवा मननशील तथा ब्रह्मचारी यतिको पुत्रोंके बीच रहते हुए नित्य वेदका ही अभ्यास करना चाहिये, इससे उसे परम गति प्राप्त होती है॥ २३—२५॥

अहिसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यं तप परम्।
क्षमा दया च सतोषो व्रतान्यस्य विशेषत ॥२६॥

१-कुटीचक सन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (नारदपरिव्राजकोपनिषद्-५)

यस्माद् भवन्ति भूतानि यद् गत्वा नेह जायते।
स तस्मादीश्वरो देव परस्माद् योऽधितिष्ठति॥ २३॥
यदन्तरे तद् गगन शाश्वत शिवमव्ययम्।
यदंशस्तत्परो यस्तु स देव स्यान्महेश्वर ॥ २४॥
व्रतानि यानि भिक्षूणा तथैवोपव्रतानि च।
एकैकातिक्रमे तेपा प्रायश्चित्त विधीयते॥ २५॥

अतएव नित्य ध्यानमें निरत और आत्मविद्यापरायण होते हुए ब्रह्मज्ञानका अभ्यास करते रहना चाहिये। इसके कारण बन्धनसे मुक्ति होती है। अपनी आत्माको सबसे भिन्न (शाश्वत-नित्य) समझकर उसकी अद्वितीय, अजर, आनन्दरूप, श्रेष्ठ ज्ञानरूपताका पुन -पुन ध्यान करना चाहिये। जिनसे चर-अचर समस्त प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है, जिन्हे प्राप्तकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति हो जाती है और इसी कारण जो ईश्वर है, देव है, सर्वोत्कृष्ट हैं, सबके अधिष्ठाता हैं, वे ही महेश्वर हैं। जिनके अन्तर्गत शाश्वत, शिव, अव्यय गगन विद्यमान है, जगन्नियन्ता परमात्मा जिनके अश हैं, वे ही देव महेश्वर हैं (इनका पुन -पुन ध्यान यतिको करना चाहिये)। भिक्षुओ (सन्यासियो)-के जो व्रत और उपव्रत है, उनमेसे एक-एकका अतिक्रमण करनेपर प्रायश्चित्तका विधान किया गया है॥ २१—२५॥

उपेत्य च स्त्रिय कामात् प्रायश्चित्त समाहित ।
प्राणायामसमायुक्त कुर्यात् सातपन शुचि ॥ २६॥
ततश्चरेत नियमात् कृच्छ्र सयतमानस ।
पुनराश्रममागम्य चरेद् भिक्षुरतन्द्रित ॥ २७॥

कामवश स्त्रीप्रसग करनेपर समाहित होकर प्राणायाम कर पवित्रतापूर्वक प्रायश्चित्तके लिये सातपन नामक व्रत करना चाहिये। तदनन्तर सयतमानस होकर नियमसे कृच्छ्र (चान्द्रायण)-व्रत करे। पुन अपने आश्रममे आकर आलस्यका परित्याग कर भिक्षुको आश्रमोचित आचरण करना चाहिये॥ २६-२७॥

न धर्मयुक्तमनृत हिनस्तीति मनीषिण ।
तथापि च न कर्तव्य प्रसगो ह्येष दारुण ॥ २८॥
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशत तथा।
उक्त्वानृत प्रकर्तव्य यतिना धर्मलिप्सुना॥ २९॥
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यत ।
स्तेयादभ्यधिक कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृति ।
हिंसा चैषापरा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका॥ ३०॥

विद्वानोका यह कहना है कि धर्मयुक्त असत्यसे व्रतभङ्ग नहीं होता, तथापि ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योकि इसमें आसक्ति रखना दारुण कर्म है। धर्माभिलाषी यतिको चाहिये कि वह असत्यभाषण करनेपर एक रात्रि उपवास तथा सौ प्राणायाम करे। अत्यन्त सकटमे होनेपर भी भिक्षुको किसी अन्य प्रयोजनस भी चोरी नहीं करनी चाहिये। चोरीसे बढकर दूसरा कोई अधर्म नहीं है, यही सबसे बडी हिंसा भी है, क्योकि इससे आत्मज्ञान विनष्ट हो जाता है, ऐसा स्मृतियोंका सिद्धान्त है॥ २८—३०॥

यदेतद् द्रविण नाम प्राणा ह्येते बहिश्चरा ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥ ३१॥
एव कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युत ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३२॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन सवत्सरमिति श्रुति ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद् भिक्षुरतन्द्रित ॥ ३३॥

यह जो द्रविण—धन नामकी वस्तु है, यह बाहरी प्राण ही है इसलिये जो जिसके धनका अपहरण करता है, वह उसके प्राणोका ही हरण करता है। निश्चित ही धन हरण करनेवाला दुष्टात्मा आचारसे भ्रष्ट और व्रतसे च्युत हो जाता है। श्रुतिका विधान है कि यदि कोई अपने व्रतसे च्युत व्यक्ति अपने पुन व्रतभङ्गपर पश्चात्ताप करे तो शास्त्रानुकूल विधिसे आलस्यरहित होकर एक वर्षतक चान्द्रायणव्रत करे॥ ३१—३३॥

अकस्मादेव हिंसा तु यदि भिक्षु समाचरेत्।
कुर्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्र तु चान्द्रायणमथापि वा॥ ३४॥
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रिय दृष्ट्वा यतिर्यदि।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश।
दिवास्कन्दे त्रिरात्र स्यात् प्राणायामशत तथा॥ ३५॥

यदि भिक्षुसे अकस्मात् हिंसा हो जाय तो उसे पश्चात्तापपूर्वक कृच्छ्रव्रत, अतिकृच्छ्रव्रत अथवा चान्द्रायण-व्रत (हिंसाके स्वरूपके अनुसार) करना चाहिये। इन्द्रियकी दुर्बलताके कारण यदि स्त्रीको देखकर यति स्खलित हो

जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करना चाहिये। दिनमे स्खलन होनेपर तीन रातका उपवास और सौ प्राणायाम करना चाहिये॥ ३४-३५॥

एकान्ने मधुमासे च नवश्राद्धे तथैव च।
प्रत्यक्षलवणे चोक्त प्राजापत्य विशोधनम्॥ ३६॥
ध्याननिष्ठस्य सतत नश्यते सर्वपातकम्।
तस्मान्महेश्वर ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥ ३७॥
यद् ब्रह्म परम ज्योति प्रतिष्ठाक्षरमद्वयम्।
योऽन्तरात्र पर ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वर ॥ ३८॥
एष देवो महादेव केवल परम शिव।
तदेवाक्षरमद्वैत तदादित्यान्तर परम्॥ ३९॥
यस्मान्महीयते देव स्वधाम्नि ज्ञानसज्ञिते।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्तत स्मृत ॥ ४०॥

एकका ही अन्न भक्षण करने, मधु ग्रहण करने, नवश्राद्ध-सम्बन्धी अन्न तथा प्रत्यक्ष लवण खानेपर प्राजापत्यव्रतको (पापकी) शुद्धिका उपाय बतलाया गया है। निरन्तर ध्याननिष्ठ पुरुषके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं, इसलिये महेश्वरका ज्ञान प्राप्तकर उनके ध्यानमें परायण रहना चाहिये। जो ब्रह्म परम ज्योतिरूप, सभीका अधिष्ठान, अक्षर अद्वितीय है तथा जो सभीके भीतर स्थित है, परम ब्रह्म है, उसे महेश्वर जानना चाहिये। ये ही महेश्वर देव, महादेव एव अद्वितीय परम शिव हैं। ये ही अविनाशी, अद्वैत हैं और ये ही आदित्यके भीतर प्रतिष्ठित परम (तत्त्व) हैं। आत्मयोग नामसे प्रसिद्ध, स्वप्रकाश, नित्य-ज्ञान नामसे भी विख्यात परम तत्त्वरूप अपने धाममें सर्वाधिक पूजनीय-रूपसे ये महेश्वर प्रतिष्ठित हैं, इसीलिये महादेव कहे जाते हैं॥ ३६—४०॥

नान्यद् देवान्महादेवाद् व्यतिरिक्त प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति य स याति पर पदम्॥ ४१॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मान विभिन्न परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति त देव वृथा तेषा परिश्रम ॥ ४२॥

जो महादेवसे भिन्न किसी दूसरे देवको नहीं जानता और इन्हींको अपनी आत्मा मानता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो अपनी आत्माको परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उस देवका दर्शन नहीं करते हैं, उनका परिश्रम व्यर्थ होता है॥ ४१-४२॥

एकमेव पर ब्रह्म विज्ञेय तत्त्वमव्ययम्।
स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते॥ ४३॥
तस्माद् यतेत नियत यति सयतमानस।
ज्ञानयोगरत शान्तो महादेवपरायण ॥ ४४॥

परम ब्रह्म एक ही हैं, इन्हें ही अव्यय तत्त्वके रूपमें जानना चाहिये। ये अव्यय तत्त्व ब्रह्म ही देव हैं, महादेव हैं, इन्हे जान लेनेपर बन्धन नहीं होता। इसलिये यतिको सयतमन होकर (इन्हे प्राप्त करनेके लिये) प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञानयोगमें रत रहना चाहिये, शान्त रहना चाहिये और महादेवके परायण रहना चाहिये॥ ४३-४४॥

एष व कथितो विप्रा यतीनामाश्रम शुभ।
पितामहेन विभुना मुनीना पूर्वमीरितम्॥ ४५॥
नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम्।
ज्ञान स्वयम्भुवा प्रोक्त यतिधर्माश्रय शिवम्॥ ४६॥

हे विप्रो! यह आप लोगोंको सन्यासियाके कल्याणकारी आश्रम (सन्यासाश्रम)-के विषयमे बतलाया। पूर्वकालमे पितामह विभुने मुनियोसे इसे कहा था। ब्रह्माजीद्वारा कहे गये यतिधर्मविषयक इस कल्याणकारी उत्तम ज्ञानको पुत्र, शिष्य तथा योगियोंके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देना चाहिये॥ ४५-४६॥

इति यतिनियमानामेतदुक्त विधान
पशुपतिपरितोषे यद् भवेदेकहेतु।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाश
प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति॥ ४७॥

इस प्रकार सन्यासियोके नियमाके इस विधानको बतलाया गया। यह पशुपति (शकर)-को सतुष्ट करनेका एकमात्र उपाय है। जो अव्यग्रभावसे एकाग्रतापूर्वक इसका नित्य आचरण करते हैं, उनका पुन जन्म अथवा मरण कुछ भी नहीं होता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे एकोनत्रिशोऽध्याय ॥ २९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमें प्रायश्चित्तका स्वरूपनिरूपण, पाँच महापातकोंके नाम तथा ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तका संक्षिप्त निरूपण

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये॥ १॥

व्यासजीने कहा—इसके अनन्तर अब मैं सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये और दोषोंके विनाशके लिये शुभ प्रायश्चित्त-विधिका वर्णन करूँगा॥ १॥

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम्॥ २॥
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित्।
यद् ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत्॥ ३॥
वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान् द्विजः।
स एव स्यात् परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति॥ ४॥
अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः।
यद् ब्रूयुर्धर्मकामास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५॥

विहित कर्मोंको न करने और निन्दित कर्मोंको करनेसे पुरुष दोष (पाप)-का भागी होता है। इसकी निवृत्ति प्रायश्चित्त करनेसे होती है। ब्राह्मणको बिना प्रायश्चित्त किये कभी भी नहीं रहना चाहिये। शान्त एवं विद्वान् ब्राह्मण जो कहें उसे करना चाहिये। वेदार्थज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, शान्त धर्मपालनको ही सर्वस्व माननेवाला एक भी अग्निहोत्री ब्राह्मण जो अपने आचरणमें लाता है, वही श्रेष्ठ धर्म होता है। वेदार्थमें पारंगत धर्मपरायण अनाहिताग्नि[1] तीन ब्राह्मण जो कहें उसे धर्मका साधन समझना चाहिये॥ २—५॥

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः।
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्तिताः॥ ६॥
मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः।
एकविंशतिसंख्याता प्रायश्चित्तं वदन्ति वै॥ ७॥

अनेक धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता ऊहापोहमें दक्ष (शास्त्रीय विभिन्न सिद्धान्तोंके आकलन तथा समन्वयमें कुशल) तथा वेदाध्ययनशील सात ब्राह्मण धर्ममें प्रमाण कहे गये हैं। मीमांसाज्ञानके तत्त्वज्ञ (वेदवाक्यार्थ-विचार एवं श्रौत-स्मार्त-कर्मकाण्डके रहस्यको जाननेवाले) तथा वेदान्तके ज्ञानमें कुशल (पारमार्थिक तत्त्व अद्वैतके रहस्यवेत्ता) संख्यामें इक्कीस ब्राह्मण प्रायश्चित्तका विधान कर सकते हैं॥ ६-७॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह संवसेत्॥ ८॥
संवत्सरं तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः।
यानशय्यासनैर्नित्यं जानन् वै पतितो भवेत्॥ ९॥
याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः।
कृत्वा सद्यः पतेज्ज्ञानात् सह भोजनमेव च॥ १०॥

ब्रह्मघाती, मद्यपायी, चोर, गुरुतल्पगामी तथा इनके साथ निवास करनेवाले—(ये सभी) महापातकी होते हैं। जो एक वर्षपर्यन्त नित्य सब कुछ जानते हुए भी पतितोंके साथ यान (सवारी) शय्या तथा आसन-सम्बन्धी संसर्ग करता है, वह पतित हो जाता है। जानते हुए भी (पतितोंका) यज्ञ कराने अध्यापन करने, उनके साथ योनि अर्थात् विवाह आदिका सम्बन्ध रखने और भोजन करनेसे द्विज शीघ्र ही पतित हो जाता है॥ ८—१०॥

अविज्ञायाथ यो मोहात् कुर्यादध्यापनं द्विजः।
संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च॥ ११॥
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्ष्यमात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्॥ १२॥
ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत्।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तं च संस्मरन्॥ १३॥
असंकल्पितयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्।
विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भुक्तवज्जने॥ १४॥
एककालं चरेद् भैक्षं दोषं विख्यापयन् नृणाम्।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्तयेद् धैर्यमाश्रितः॥ १५॥

जो द्विज अज्ञानमें मोहवश इनके साथ अध्ययन अथवा अध्यापन करता है, वह एक वर्षमें पतित

१-स्मार्त अग्निहोत्र करनेवाले भी अनाहिताग्नि होते हैं। श्रौत अग्निहोत्र करनेवाले ही आहिताग्नि कहे जाते हैं।

हो जाता है। आत्मशुद्धिके लिये ब्रह्मघातीको बारह वर्षोंतक कुटी बनाकर वनमे रहना चाहिये और शवके सिरको ध्वजाके समान धारणकर भिक्षा माँगनी चाहिये। (ब्रह्मघातीको) ब्राह्मणोके निवासस्थानो तथा देवमन्दिरोम नहीं जाना चाहिये और स्वय अपनी आत्माकी निन्दा करते हुए तथा जिस ब्राह्मणको मारा है, उसका स्मरण करते हुए पहलेसे असकल्पित (अनिश्चित), धूएँसे रहित, शान्त अग्निवाले तथा जहाँ लोगोंने भोजन कर लिया है—ऐसे सात घरोसे नित्य धीरे-धीरे भिक्षा माँगनी चाहिये। उसे मनुष्योको अपना दोष (पाप) बताते हुए एक समय भिक्षा माँगनी चाहिये अथवा धैर्य रखते हुए वन्य मूल-फलोद्वारा निर्वाह करना चाहिये॥ ११—१५॥

कपालपाणि खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायण।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ १६॥
अकामत कृते पापे प्रायश्चित्तमिद शुभम्।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित्॥ १७॥

हाथमें कपाल लिये हुए और खट्वाङ्ग (चारपाईके टुकडेको) धारणकर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर ब्रह्महत्या दूर होती है। अनिच्छापूर्वक किये गये पापका यह प्रायश्चित्त है, इससे कल्याण होता है, किंतु इच्छापूर्वक किये गये पापसे शुद्धि अनेक प्रायश्चित्तके बाद मृत्युके अनन्तर ही समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे नहीं॥ १६-१७॥

कुर्यादनशन वाथ भृगो पतनमेव वा।
ज्वलन्त वा विशेदग्निं जल वा प्रविशेत् स्वयम्॥ १८॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु॥ १९॥
दीर्घामयान्वित विप्र कृत्वानामयमेव तु।
दत्त्वा चान्न स दुर्भिक्षे ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ २०॥

अथवा (ब्रह्मघातीको) स्वय अनशन (व्रत) करना चाहिये या भृगु-पतन करे (उच्च स्थानसे गिरे) अथवा प्रज्वलित अग्नि या जलमे प्रविष्ट हो जाय। दूसरे प्रकारसे अर्थात् बुद्धिपूर्वक ब्राह्मणहत्या करनेपर ब्रह्महत्या दूर करनेके लिये, ब्राह्मण अथवा गोके निमित्त भलीभाँति अपने प्राणोका परित्याग कर देना चाहिये। दीर्घ रोगसे ग्रस्त ब्राह्मणको रोगसे मुक्त करने तथा दुर्भिक्षके समय अन्न प्रदान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है॥ १८—२०॥

अश्वमेधावभृथक स्नात्वा वा शुध्यते द्विज।
सर्वस्व वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय तु॥ २१॥
सरस्वत्यास्त्वरुणया सगमे लोकविश्रुते।
शुध्येत् त्रिषवणस्नानात् त्रिरात्रोपोषितो द्विज॥ २२॥

अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिपर होनेवाले अवभृथ-स्नानसे अथवा वेदज्ञ ब्राह्मणको अपना सर्वस्व दान कर देनेसे द्विज (ब्रह्महत्याके पापसे) मुक्त हो जाता है। सरस्वती एव अरुणा नदीके लोकप्रसिद्ध सगमम तीनो सध्याओमे स्नान करने और तीन रात्रि उपवास करनेसे द्विज (ब्रह्महत्याजनित पापसे) शुद्ध हो जाता है॥ २१-२२॥

गत्वा रामेश्वर पुण्य स्नात्वा चैव महोदधौ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्र विमुच्यते॥ २३॥
कपालमोचन नाम तीर्थं देवस्य शूलिन।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् भक्त्या ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ २४॥
यत्र देवादिदेवेन भैरवेणामितौजसा।
कपाल स्थापित पूर्वं ब्रह्मण परमेष्ठिन॥ २५॥
समभ्यर्च्य महादेव तत्र भैरवरूपिणम्।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ २६॥

ब्रह्मचर्य आदिसे युक्त द्विज पवित्र (तीर्थ) रामेश्वर जाकर वहाँ सागरमे स्नान करके शकरका दर्शन करके (ब्रह्महत्याके पापसे) मुक्त हो जाता है। त्रिशूलधारी भगवान् शकरके कपालमोचननामक तीर्थमे स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोकी पूजा करनेसे (ब्रह्मघाती) ब्रह्महत्याके पापसे दूर हो जाता है। पूर्वकालम वहाँ (कपालमोचन तीर्थम) अमित तेजस्वी देवादिदेव भैरवने परमेष्ठी ब्रह्माके कपालको स्थापित किया। वहाँ स्नान करके भैरवरूपी महादेवको भलीभाँति अर्चना करके एव पितराका तर्पण करके ब्रह्महत्या (के पाप)-से मुक्ति हो जाती है॥ २३—२६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे त्रिंशोऽध्याय॥ ३०॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमे कपालमोचन-तीर्थका आख्यान

ऋषय ऊचु

कथ देवन रुद्रेण शकरेणामितौजसा।
कपाल ब्रह्मण पूर्व स्थापित देहज भुवि॥ १॥

ऋषियोने पूछा—अमित तेजस्वी देव शकर रुद्रने पूर्वकालमे किस प्रकार ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न कपालको पृथ्वीपर स्थापित किया? ॥ १ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषय पुण्या कथा पापप्रणाशिनीम्।
माहात्म्य देवदेवस्य महादेवस्य धीमत ॥ २॥

सूतजी बोले—ऋषियो! आप लोग पापको नष्ट करनेवाली इस पुण्य कथा एव धीमान् देवाधिदेव महादेवके माहात्म्यको सुनें॥ २॥

पुरा पितामह देव मेरुशृङ्गे महर्षय ।
प्रोचु प्रणम्य लोकादि किमेक तत्त्वमव्ययम्॥ ३॥
स मायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भव ।
अविज्ञाय पर भाव स्वात्मान प्राह धर्षिणम्॥ ४॥
अह धाता जगद्योनि स्वयम्भूरेक ईश्वर ।
अनादिमत्पर ब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते॥ ५॥
अह हि सर्वदेवाना प्रवर्तकनिवर्तक ।
न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन॥ ६॥

प्राचीन कालमे मेरुशृगपर लोकोंके मूल कारण देव पितामहको प्रणाम कर महर्षियोने उनसे पूछा—अव्यय अद्वितीय तत्त्व क्या है? महेश्वरकी मायासे मोहित, लोकोको उत्पन्न करनेवाले उन ब्रह्माने (महर्षियोके) परम भावको न जानते हुए अभिमानपूर्वक स्वयको ही (अव्यय) तत्त्व बतलाया (और कहा-) मैं ही जगत्का मूल कारण धाता स्वयम्भू तथा अद्वितीय अनादि परम ब्रह्म ईश्वर हूँ। मेरी आराधना करनेसे मुक्ति हो जाती है। मैं ही सभी देवोका प्रवर्तक तथा निवर्तक हूँ। लोकोंमें मुझसे महान् और कोई नहीं है॥ ३—६॥

तस्यैव मन्यमानस्य जज्ञे नारायणाशज ।
प्रोवाच प्रहसन् वाक्यं रोषताम्रविलोचन ॥ ७॥
कि कारणमिद ब्रह्मन् वर्तते तव साम्प्रतम्।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वतदुचित तव॥ ८॥
अह धाता हि लोकाना यज्ञो नारायण प्रभु ।
न मामृतेऽस्य जगतो जीवन सर्वदा क्वचित्॥ ९॥
अहमेव पर ज्योतिरहमेव परा गति ।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्ट भुवनमण्डलम्॥ १०॥

(पितामह अहभावपूर्वक) ऐसा कह ही रहे थे कि नारायणके अशसे उत्पन्न यज्ञ भगवान्ने क्रोधसे आरक्त-नेत्र होकर परिहास करते हुए यह वाक्य कहा—ब्रह्मन्! सम्प्रति आपके ऐसे व्यवहारका क्या कारण है? आप अज्ञानसे युक्त हैं, आपके लिये यह उचित नहीं है। मैं लोकोंका धाता यज्ञरूप नारायण प्रभु हूँ, मेरे बिना इस ससारमे जीवन कभी भी नहीं रह सकता। मैं ही परम ज्योति हूँ, मैं ही परम गति हूँ, मेरे द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर आपने इस भुवनमण्डलकी रचना की है॥ ७—१०॥

एव विवदतोर्मोहात् परस्परजयैषिणो ।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि॥ ११॥
अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मान च सस्थितम्।
प्रोचु सविग्नहृदया याथात्म्य परमेष्ठिन ॥ १२॥

परस्पर विजयके अभिलाषी उन दोनोंके मोहपूर्वक इस प्रकार विवाद करते समय ही जहाँ वे दोनों देव (पितामह एव यज्ञ भगवान्) थे, वहाँ चारो वेद (मूर्तिमान् होकर) आ गये। देव ब्रह्मा तथा यज्ञात्मा विष्णुको स्थित देखकर सविग्न-हृदय होकर उन्होंने ब्रह्मासे यथार्थ तत्त्व कहा—॥ ११-१२॥

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्त स्थानि भूतानि यस्मात् सर्व प्रवर्तते।
यदाहुस्तत्पर तत्त्व स देव स्यान्महेश्वर ॥ १३॥

(मूर्तिमान्) ऋग्वेदने कहा—जिसके भीतर सभी प्राणी प्रतिष्ठित हैं जिससे सभीकी प्रवृत्ति होती है और जिसे परम तत्व कहा गया है उन्हें ही महेश्वर देव समझना चाहिये॥ १३॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते।
यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यात् पिनाकधृक्॥ १४॥

यजुर्वेदने कहा—जो ईश सभी यज्ञों तथा योगके द्वारा अर्चित होते हैं और जिन देवको ईश्वर कहा गया है, वे देव ही पिनाक धारण करनेवाले (शंकर) हैं॥ १४॥

सामवेद उवाच

येनेदं भ्राम्यते चक्रं यदाकाशान्तरं शिवम्।
योगिभिर्विद्यते तत्त्वं महादेवः स शंकरः॥ १५॥

सामवेदने कहा—जिसके द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डरूपी चक्र प्रवर्तित है, जो (निरतिशय अवकाशस्वरूप) आकाशके मध्य प्रतिष्ठित है, शिवस्वरूप है, योगियोंके द्वारा वेद्य है, वह परम तत्त्व ही शंकर हैं, महादेव हैं॥ १५॥

अथर्ववेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति योगेशं यतन्तो यतयः परम्।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः॥ १६॥

अथर्ववेदने कहा—यति लोग प्रयत्नपूर्वक जिन परम योगेश्वर महेशका दर्शन करते हैं, वे पुरुष रुद्र ही देव भगवान् भव हैं॥ १६॥

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम्।
श्रुत्वाह प्रहसन् वाक्यं विश्वात्मापि विमोहितः॥ १७॥
कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम्।
रमते भार्यया सार्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः॥ १८॥

इस प्रकार विश्वात्मा होनेपर भी वे भगवान् ब्रह्मा मोहित होनेके कारण वेदोंके द्वारा बताये गये कल्याणकारी तत्त्वको सुननेपर भी हँसते हुए कहने लगे—जब वे परम ब्रह्म महेश सभी आसक्तियोंसे रहित हैं तो कैसे अपनी भार्याके साथ रमण करते हैं तथा अतिगर्वित अपने प्रमथगणोंके साथ सुख-सुविधाओंका भोग करते हैं?॥ १७-१८॥

इतीरितेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातनः।
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा वचः प्राह पितामहम्॥ १९॥

ऐसा कहे जानेपर सनातन अमूर्त भगवान् प्रणवने मूर्तिमान् होकर पितामहसे कहा—॥ १९॥

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवान् पत्न्या स्वात्मनो व्यतिरिक्तया।
कदाचिद् रमते रुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः॥ २०॥
अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः।
स्वानन्दभूता कथिता देवी नागन्तुका शिवा॥ २१॥

प्रणव बोले—ये वे महेश्वर हैं, जो स्वात्माराम हैं। ये अपनी आत्मामें ही रमण करते हैं। इनकी आत्मा ही इनकी पत्नी हैं। यही वे भगवान् ईश स्वयंज्योति, सनातन हैं और देवी शिवा आत्मानन्द-स्वरूपिणी कही गयी हैं, वे आगन्तुक (देवी उन भगवान्से पृथक्) नहीं हैं॥ २०-२१॥

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञमूर्तेरजस्य च।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया॥ २२॥
तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः।
प्रापश्यदद्भुतं दिव्यं पूरयन् गगनान्तरम्॥ २३॥
तन्मध्यसंस्थं विमलं मण्डलं तेजसोज्ज्वलम्।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः॥ २४॥

इस प्रकार कहे जानेपर भी उस समय ईश्वरकी ही मायासे (मोहित) यज्ञमूर्ति भगवान् तथा ब्रह्माका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। इसी बीच विश्वभावन ब्रह्माने आकाशमध्यको व्याप्त करते हुए अद्भुत एवं दिव्य महाज्योतिका दर्शन किया। द्विजोत्तमो! उस (महाज्योति)-के मध्य स्थित तेजसे उज्ज्वल दिव्य निर्मल मण्डल आकाशके मध्यमें प्रकट हुआ॥ २२—२४॥

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यं मूर्ध्नि लोकपितामहः।
तेन तन्मण्डलं घोरमालोकयदनिन्दितम्॥ २५॥
प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
क्षणाददृश्यत महान् पुरुषो नीललोहितः॥ २६॥
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान्।
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शंकरं नीललोहितम्॥ २७॥
जानामि भवतः पूर्वं ललाटादेव शंकर।
प्रादुर्भावं महेशान मामेव शरणं व्रज॥ २८॥

वह अनिन्दित मण्डल दिव्य था और तेजोमय होनेके कारण घोर (भीषण) था तथा मूर्धा (सबसे ऊपर)-पर स्थित था। उसे देखकर ब्रह्माने अपने मुखका, सबसे ऊपर विद्यमान उस मण्डलके आलोकसे आलोकित किया, पर उसी समय अज्ञानवश अति कुपित ब्रह्माके ही अति कोपसे उन (ब्रह्मा)-का पाँचवाँ सिर जलने लगा। उसी क्षण भगवान् नीललोहित रुद्र (महेश्वरके गणके देवविशेष) प्रकट हुए। वे रुद्रदेव त्रिशूल धारण किये हुए थे

पिङ्गलवर्णके थे तथा सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उन नीललोहित शंकर रुद्रसे भगवान् ब्रह्माने कहा—हे महेशान! आपका मेरे ही ललाटसे सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ था यह मैं जानता हूँ। आप मेरी शरणमें आयें॥ २५—२८॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः।
प्राहिणोत् पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम्॥ २९॥
स कृत्वा सुमहद् युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः।
चकर्त तस्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम्॥ ३०॥

तदनन्तर पद्मयोनिके गर्वयुक्त वचनको सुनकर ईश्वर (नीललोहित रुद्र)-ने लोकको जलानेवाले पुरुष कालभैरवको भेजा। उस कालभैरवने ब्रह्माके साथ महान् युद्ध किया और उन ब्रह्माके पाँचवें मुखको काट डाला॥ २९-३०॥

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना।
ममार चेशयोगेन जीवितं प्राप विश्वसृक्॥ ३१॥
अथानुपश्यद् गिरिशं मण्डलान्तरसंस्थितम्।
समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम्॥ ३२॥
भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजूटविराजितम्॥ ३३॥
शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम्।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम्॥ ३४॥
यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम्।
तमादिदेवं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह॥ ३५॥

देव शम्भुकी प्रेरणासे कालभैरवद्वारा ब्रह्माका मस्तक काट दिये जानेपर उन देव ब्रह्माकी मृत्यु हो गयी, किंतु ईश्वरके योगसे पुनः वे विश्वस्रष्टा (ब्रह्मा) जीवित हो गये। तदनन्तर (ब्रह्माने) उस मण्डलके मध्यमें स्थित सनातन महादेव (गिरिश) महेश्वरको महादेवीके साथ विराजमान देखा। वे सर्पराजका कङ्कण पहने थे, चन्द्रमाके अवयवको (द्वितीयाके चन्द्रमाको) भूषणके रूपमें धारण किये थे। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा जटाजूट धारण किये हुए थे। उन्होंने व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारण किया था, दिव्य मालाओंसे समन्वित थे, हाथमें त्रिशूल धारण किये थे, कठिनतासे देखे जा सकने योग्य तथा भस्मसे सुशोभित ऐसे योगी (शंकर)-को उन्होंने देखा। योगनिष्ठ अपने हृदयके मध्य जिन ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन आदिदेव महादेवको ब्रह्माने देखा॥ ३१—३५॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंस्थिता।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल॥ ३६॥
यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥ ३७॥
योऽथ नाचारनिरतान् स्वभक्तानेव केवलम्।
विमोचयति लोकात्मा नायको दृश्यते किल॥ ३८॥
यस्य वेदविदः शान्ता निर्द्वन्द्वा ब्रह्मचारिणः।
विदन्ति विमलं रूपं स शम्भुर्दृश्यते किल॥ ३९॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः।
अर्चयन्ति सदा लिङ्गं विश्वेशः खलु दृश्यते॥ ४०॥

आकाशमें स्थित वे परमा देवी जिनकी शक्ति हैं, वे अनन्त ऐश्वर्यसम्पन्न योगात्मा महेश्वर मुझे दिखलायी पड़ रहे हैं। जिन्हें एक बार प्रणाममात्र कर लेनेसे ही प्रणाम करनेवालेके सम्पूर्ण मोहको उत्पन्न करनेवाला संसारका बीज विलीन हो जाता है, वे रुद्र दिखलायी पड़ रहे हैं। वे लोकोंके नायक दिखलायी पड़ रहे हैं, जो उन लोगोंको भी मुक्त कर देते हैं जो आचारयुक्त न होनेपर भी केवल उनकी भक्ति करते हैं। वेदोंके ज्ञाता, शान्त तथा द्वन्द्वरहित ब्रह्मचारी जिनके विशुद्ध स्वरूपको जानते हैं, वे शम्भु दिखलायी पड़ रहे हैं। ब्रह्मा आदि देवता तथा ब्रह्मवादी ऋषिजन जिनके लिङ्गकी सदा आराधना करते हैं, वे विश्वेश्वर दिखलायी पड़ रहे हैं॥ ३६—४०॥

यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥ ४१॥
विद्यासहायो भगवान् यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगर्भपुत्रोऽसावीश्वरो दृश्यते किल॥ ४२॥
यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरी।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शंकरोऽसावदृश्यत॥ ४३॥
पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम्।
दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल॥ ४४॥
तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः।
कालः किल स योगात्मा कालकालो हि दृश्यते॥ ४५॥

जिन्हे एक बार प्रणाम मात्र कर लेनेसे ही प्रणाम करनेवालेके सम्पूर्ण मोहको उत्पन्न करनेवाला ससारका बीज विलीन हो जाता है, वे रुद्र दिखलायी पड रहे हैं। जिनके मण्डलके मध्य सरस्वतीके साथ य भगवान् ब्रह्मा स्थित हैं हिरण्यगर्भके पुत्र वे ईश्वर दिखलायी पड रहे हैं। सम्पूर्ण ससारको उत्पन्न करनेवाली विज्ञान-तनुरूपी (विज्ञानमयी) ईश्वरी (शक्ति) जिनके पार्श्वका कभी त्याग नहीं करती, वे शकर दिखलायी पड रहे हैं। जिनक चरणकमलोमें पत्र, पुष्प अथवा जल अर्पण करनेसे (प्राणी) ससारसे पार हो जाते हैं, वे रुद्र दिखलायी पड रह हैं। जिनकी सनिधिमात्रसे (अमोघशक्ति प्राप्तकर) सनातन (शाश्वतकाल) सब कुछ प्राणिमात्रको प्रदान करता है, वे कालके भी काल योगात्मा महेश्वर दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ ४१—४५॥

जीवन सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम्।
सोम स दृश्यते देव सोमो यस्य विभूषणम्॥४६॥
देव्या सह सदा साक्षाद् यस्य योग स्वभावत ।
गीयते परमा मुक्ति स योगी दृश्यते किल॥४७॥
योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखाऽनिशम्।
योग ध्यायन्ति देव्याऽसौ स योगी दृश्यते किल॥४८॥

जो सम्पूर्ण लोकोंके जीवन हैं, तीनो लोकाके भूषण हैं तथा चन्द्रमा जिनका आभूषण है, वे देव सोम (उमाके साथ महेश्वर) दिखलायी पड रहे हैं। देवी उमा (पार्वती)-के साथ जिनका स्वभावसे ही नित्य साक्षात् सयोग है एव जिनके अनुग्रहसे परम मुक्तिकी प्राप्ति शास्त्रोमे बतायी जाती है, वे योगी महेश्वर दिखलायी पड रहे हैं। वैराग्यकी ओर उन्मुख, योगके तत्त्वको जाननेवाले योगीजन देवीके साथ निरन्तर जिनके योगका ध्यान करते हैं वे ही योगी (शकर) दिखलायी पड रहे हैं॥ ४६—४८॥

सोऽनुवीक्ष्य महादेव महादेव्या सनातनम्।
वरासने समासीनमवाप परमा स्मृतिम्॥४९॥
लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्या सस्मृति भगवानज ।
तोषयामास वरद सोम सोमविभूषणम्॥५०॥

महादेवीके साथ सनातन महादेवको श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखकर ब्रह्माको परम स्मृति प्राप्त हुई। भगवान् ब्रह्माने दिव्य माहेश्वरी स्मृतिको प्राप्तकर चन्द्रमाको आभूषणके रूपम धारण करनेवाले तथा वर प्रदान करनेवाले सोम (शकर)-को स्तुतिद्वारा प्रसन्न किया—॥ ४९-५०॥

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नम ।
नम शिवाय शान्ताय शिवायै शान्तये नम ॥५१॥
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्य विद्यायै ते नमो नम ।
नमो मूलप्रकृतये महेशाय नमो नम ॥५२॥
नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नम ।
नमस्ते कालकालाय ईश्वरायै नमो नम ॥५३॥
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नम ।
नमो नमस्ते कामाय मायायै च नमो नम ॥५४॥
नियन्त्रे सर्वकार्याणा क्षोभिकायै नमो नम ।
नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च॥५५॥
योगदायै नमस्तुभ्य योगिना गुरवे नम ।
नम ससारनाशाय संसारोत्पत्तये नम ॥५६॥
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्तये।
नम कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नम ॥५७॥
ओकारमूर्तये तुभ्य तदन्त सस्थिताय च।
नमस्ते व्योमसस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नम ॥५८॥

ब्रह्माने कहा—महान् देव (महादेव)-को नमस्कार है। महादेवीको बार-बार नमस्कार है। शिवको, शान्तको नमस्कार है, शिवाको, शान्तिको नमस्कार है। ओकार ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है, विद्यारूप आपको नमस्कार है। मूलप्रकृतिको नमस्कार है, महेश्वरको बार-बार नमस्कार है। विज्ञानस्वरूप देहवाले (महेश्वर)-को नमस्कार है, चिन्तन (विचारशक्ति-चितिस्वरूप) आप (देवी)-को नमस्कार है। कालके भी काल आपको नमस्कार है, ईश्वरीको बार-बार नमस्कार है। रुद्रके लिये बार-बार नमस्कार है, रुद्राणी आपको बार-बार नमस्कार है। काम (समस्त प्रपञ्चको मोहित करनेवाल) आपको बार-बार नमस्कार है और मायाको बार-बार नमस्कार है। सभी कार्योके नियामक

से युद्ध करने लगा। उस कालवेगको जीतकर क्रोधसे लाल हुए नेत्रोंवाला (द्वारपाल) रुद्र (कालभैरव)-की ओर भयंकर सुदर्शनचक्र फेंका। तब त्रिशूलधारी शत्रुजित् त्रिपुरारिदेव महादेव (कालभैरव)-ने उस आते हुए चक्रको अवज्ञापूर्वक देखा॥ ८१—८५॥

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम्।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥८६॥
स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वं परमं बलम्।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव॥८७॥

उसी समय महादेव (कालभैरव)-ने त्रिशूलके द्वारा प्रलयकालीन अग्निके तुल्य अतिभीषण विष्वक्सेनके वक्ष-स्थलमें प्रहारकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। त्रिशूलसे आहत होनेपर अपने महान् बलका त्यागकर उस विष्वक्सेनने अपने प्राणोंका उसी प्रकार परित्याग कर दिया जैसे व्याधिसे आहत प्राणी मृत्युको देखकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देता है॥ ८६-८७॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्धं प्रमथपुंगवैः।
विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम्॥८८॥
निरीक्ष्य जगतो हेतुमीश्वरं भगवान् हरिः।
शिरो ललाटात् सम्भिद्य रक्तधारामपातयत्॥८९॥
गृहाण भगवन् भिक्षां मदीयाममितद्युते।
न विद्यतेऽन्याभ्युदिता तव त्रिपुरमर्दन॥९०॥

विष्णुके पुरुष (विष्वक्सेन)-को मारकर (उसके) कलेवर (मृत शरीर)-को लेकर श्रेष्ठ प्रमथगणोंके साथ महादेव (कालभैरव) भवनके अंदर प्रविष्ट हुए। जगत्के कारणरूप ईश्वर (कालभैरव)-को देखकर भगवान् हरिने अपने ललाटको भेदनकर रक्तकी धारा गिरायी और कहा—अपरिमेय तेजस्वी भगवन्! आप मेरी भिक्षा ग्रहण करें। त्रिपुरमर्दन! आपके लिये कोई अप्रकट (अमङ्गलजनक भिक्षा) नहीं है॥ ८८—९०॥

न सम्पूर्णं कपालं तद् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता॥९१॥
अथाब्रवीत् कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः।
संस्तूय वैदिकैर्मन्त्रैर्बहुमानपुरःसरम्॥९२॥
किमर्थमेतद् वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम्।
प्रोवाच वृत्तमखिलं भगवान् परमेश्वरः॥९३॥

हजारों दिव्य वर्षोंतक वह (रक्तकी) धारा प्रवाहित होती रही किंतु परमेष्ठी ब्रह्माका वह (कालभैरवके हाथमें विद्यमान) कपाल भरा नहीं। तब नारायण प्रभु हरिने वैदिक मन्त्रोंद्वारा अत्यन्त आदरपूर्वक स्तुति कर भगवान् कालरुद्रसे कहा—आपने ब्रह्माका यह सिर किस कारणसे धारण कर रखा है? तब परमेश्वर भगवान् (कालभैरव)-ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया॥ ९१—९३॥

समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः।
प्रार्थयामास देवेशो विमुञ्चेति त्रिशूलिनम्॥९४॥
न तत्याजाथ सा पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शंकरं प्राह सर्ववित्॥९५॥
व्रजस्व भगवन् दिव्यां पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
यत्राखिलजगद्दोषात् क्षिप्रं नाशयतीश्वरः॥९६॥

तदनन्तर हृषीकेश देवेश भगवान् अच्युतने ब्रह्महत्याको बुलाकर प्रार्थना की—त्रिशूली (कालभैरव)-को छोड़ दो। मुरारि विष्णुद्वारा प्रार्थना करनेपर भी उसने (कालभैरवके) पार्श्वका त्याग नहीं किया। तब जगद्योनि सर्वज्ञ (विष्णु)-ने देरतक ध्यानकर शंकर (कालभैरव)-से कहा—भगवन्! आप दिव्य एवं मङ्गल करनेवाली वाराणसीपुरी जायँ जहाँ ईश्वर सम्पूर्ण सांसारिक दोषोंको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं॥ ९४—९६॥

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया॥९७॥
संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः॥९८॥
तमभ्यधावद् भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम्।
अथास्थायापरं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥९९॥

तब वे महायोगी कालभैरव अपने हाथमें (विष्णु-पार्षद विष्वक्सेनका) कलेवर लेकर वाराणसीपुरीके दर्शनकी प्रसन्नतामें नृत्य करते हुए सर्वप्रथम अतिगोपनीय सभी तीर्थों एवं देवस्थानोंमें देवताओंके हितकी कामनासे गये। कालभैरवके चारों ओर महायोगी प्रमथगण उनकी स्तुति करते हुए चल रहे थे। उन (कालभैरव)-का नृत्य देखनेकी लालसावाले

भगवान् नारायण हरि दूसरा रूप धारणकर स्वय उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ ९७—९९॥

निरीक्षमाणो गोविन्द वृषेन्द्राङ्कितशासन ।
सस्मितोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुन पुन ॥१००॥
अथ सानुचरो रुद्र सहरिर्धर्मवाहन ।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीमिति श्रुताम्॥१०१॥

श्रेष्ठ वृषभके चिह्नसे अङ्कित शासन (ध्वजा)-वाले अनन्त योगात्मरूप (शकर) गोविन्दको देखते हुए प्रसन्नतापूर्वक बार-बार नृत्य करने लगे। तदनन्तर अनुचरो और हरिके सहित धर्मरूपी वृषभको वाहनके रूपम स्वीकार करनेवाले रुद्र (कालभैरव) वाराणसी इस नामसे प्रसिद्ध महादेवकी पुरीमें पहुँचे॥ १००-१०१॥

प्रविष्टमात्रे देवेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि।
हा हेत्युक्त्वा सनाद सा पाताल प्राप दु खिता॥१०२॥
प्रविश्य परम स्थान कपाल ब्रह्मणो हर ।
गणानामग्रतो देव स्थापयामास शकर ॥१०३॥
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम्।
उक्त्वा सजीवमस्त्वीशो विष्णवे स घृणानिधि ॥१०४॥

कपर्दी देवेशके वहाँ प्रवेश करते ही वह ब्रह्महत्या तीव्र स्वरसे हाहाकार करती हुई दु खी होकर पातालमे चली गयी। श्रेष्ठ स्थान (वाराणसी)-म प्रविष्ट होकर देव हर शकर (कालभैरव)-ने गणोके सामने ब्रह्माके कपालको स्थापित किया और उन्हीं करुणानिधि ईश महादेव (कालभैरव)-ने 'जीवित हो जाय' ऐसा कहकर (विष्वक्सेनका) कलेवर विष्णु (हरि भगवान्)-को दे दिया॥ १०२—१०४॥

ये स्मरन्ति ममाजस्त्र कापाल वेषमुत्तमम्।
तेषा विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥१०५॥
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नान कृत्वा विधानत ।
तर्पयित्वा पितृन् देवान् मुच्यते ब्रह्महत्यया॥१०६॥
अशाश्वत जगज्ज्ञात्वा येऽस्मिन् स्थाने वसन्ति वै।
देहान्ते तत् पर ज्ञान ददामि परम पदम्॥१०७॥
इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम्।
सहैव प्रमथेशानै क्षणादन्तरधीयत॥१०८॥

मेरे इस कपालयुक्त उत्तम वेषका (रूपका) निरन्तर स्मरण करनेसे ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सब पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस श्रेष्ठ (वाराणसीके कपालमोचन) तीर्थमे आकर स्नान करके विधिपूर्वक पितरा तथा देवताआका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे मुक्ति मिल जाती हे। ससारको अनित्य जानकर जो इस स्थानम निवास करते हैं, उन्हे देहान्तके समयमे परम ज्ञान और परम पद प्रदान करता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् (कालभैरव) जनार्दनका आलिगनकर प्रमथेश्वराके साथ ही क्षणभरमे अन्तर्धान हो गये॥ १०५—१०८॥

स लब्ध्वा भगवान् कृष्णो विष्वक्सेन त्रिशूलिन ।
स्व देशमगमत् तूर्णं गृहीत्वा परम वपु ॥१०९॥

वे भगवान् कृष्ण (हरि) त्रिशूलीसे विष्वक्सेनको प्राप्तकर[1] अपना परम रूप धारणकर शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ १०९॥

एतद् व कथित पुण्य महापातकनाशनम्।
कपालमोचन तीर्थं स्थाणो प्रियकर शुभम्॥११०॥
य इम पठतेऽध्याय ब्राह्मणाना समीपत ।
वाचिकैर्मानसै पापै कायिकैश्च विमुच्यते॥१११॥

आप लोगामे स्थाणु (शकर)-को अत्यन्त प्रिय महापातकोंको नष्ट करनेवाले, पवित्र एव मङ्गलकारी इस कपालमोचन तीर्थके विषयमें मैंने बताया। जो ब्राह्मणाके समीप इस अध्यायका पाठ करता है, वह कायिक, वाचिक तथा मानसिक (त्रिविध) पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ११०-१११॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे एकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

१-इसी अध्यायके ९९वे श्लोकके अनुसार श्रीहरिने दूसरा रूप धारणकर श्रीकालभैरवके साथ वाराणसीमें प्रवेश किया था अब अपने पार्षद विष्वक्सेनके शरीरको प्राप्तकर अपने वास्तविक स्वरूपमे अपने धाम जा रहे हैं।

बत्तीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त[१]-प्रकरणमे महापातकोके प्रायश्चित्तका विधान तथा अन्य उपपातकोसे शुद्धिका उपाय

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरा तप्तामग्निवर्णां स्वय पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते तु द्विजोत्तम ॥ १ ॥
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा।
पयो घृत जल वाथ मुच्यते पातकात् तत ॥ २ ॥
जलार्द्रवासा प्रयतो ध्यात्वा नारायण हरिम्।
ब्रह्महत्याव्रत चाथ चरेत् तत्पापशान्तये ॥ ३ ॥

व्यासजीने कहा—सुरापान करनेवाले द्विजात्तमको अग्निके समान वर्णवाली प्रतप्त (अति उष्ण) सुराका स्वय पान करना चाहिये। उससे शरीरके दग्ध होनेपर वह (पापसे) मुक्त हो जाता है। अथवा अग्निके समान रगवाला (अति उष्ण) गोमूत्र या गोबरका रस अथवा (गौका) दुग्ध, घृत या जल पीनेपर द्विज (पापसे)मुक्त हो जाता है। ठस (सुरापानजन्य) पापके शमनके लिये जलसे भींगा वस्त्र धारणकर तथा प्रयत्नपूर्वक नारायण हरिका ध्यान कर पुन ब्रह्महत्यासम्बन्धी (प्रायश्चित्त) व्रतका पालन करना चाहिये॥ १—३ ॥

सुवर्णस्तेयकृद् विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मा भवाननुशास्त्विति ॥ ४ ॥
गृहीत्वा मुसल राजा सकृद् हन्यात् तत स्वयम्।
वधे तु शुध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ॥ ५ ॥
स्कन्धेनादाय मुसल लकुट वापि खादिरम्।
शक्ति चोभयतस्तीक्ष्णामायस दण्डमेव वा ॥ ६ ॥
राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशन धावता।
आचक्षाणेन तत्पापमेवकर्मास्मि शाधि माम् ॥ ७ ॥
शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेन स्तेयाद् विमुच्यते।
अशासित्वा तु त राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ८ ॥
तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयज मलम्।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ॥ ९ ॥
स्नात्वाश्वमेधावभृथे पूत स्यादथवा द्विज।
प्रदद्याद् वाथ विप्रभ्य स्वात्मतुल्य हिरण्यकम् ॥ १० ॥
चरेद् वा वत्सर कृच्छ्र ब्रह्मचर्यपरायण।
ब्राह्मण स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये ॥ ११ ॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि वह राजाके पास जाकर अपने (पाप) कर्मको बताते हुए कहे—'आप मुझे दण्डित कर'। राजा मूसल लेकर स्वय उसे एक बार मारे। इस प्रकार वध हो जानेपर ब्राह्मण चोरी-रूप (महापाप)-से शुद्ध हो जाता है अथवा तपस्या करनेमे वह शुद्ध होता है। मूसल अथवा खैरकी लकडीकी लाठी और दोनो ओर तीक्ष्ण धारवाली शक्ति या लोहेका दण्ड कधेपर लेकर उस (पापयुक्त ब्राह्मण)-को राजाक पास केश खोले दौडते हुए जाना चाहिये और अपने उस (पापकर्म)-को बताते हुए कहना चाहिय—'मैंने यह कर्म किया है, आप मुझे दण्ड दे।' दण्डसे अथवा (यथाशास्त्र प्रायश्चित्तपूर्वक शरीर) परित्याग कर देनेसे सुवर्ण-चोर चोरी (रूप-पाप कर्म)-से मुक्त हो जाता है। उसको दण्डित न करनेसे तो राजा चोरका पाप (स्वय) प्राप्त कर लेता है। तपस्याद्वारा सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करनेकी इच्छा रखनेवाले द्विजको चाहिये कि वह चीर (फटे-पुराने) वस्त्र धारण करके जगलमे जाकर ब्रह्महत्या-सम्बन्धी (प्रायश्चित्त) व्रतका पालन करे। अथवा अश्वमधयज्ञ-सम्बन्धी अवभृथ-स्नान करनसे द्विज पवित्र हो जाता है। या (शुद्ध होनेके लिये) ब्राह्मणोंका अपने भारके बराबर स्वर्ण-दान करना चाहिये। अथवा सुवर्णकी चोरी करनवाले ब्राह्मणको उस पापको दूर करनेके लिये एक वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए कृच्छ्रव्रत करना चाहिये॥ ४—११ ॥

१- प्राय 'का अर्थ तप है। चित्तका अर्थ निश्चय है। इसलिये दृढ-सकल्पपूर्वक तप करना ही प्रायश्चित्तका आचरण है। (याज्ञ०मिता० श्लोक २७५)। मनुस्मृति अ०११ तथा याज्ञ०स्मृ० प्रायश्चित-प्रकरण आदिमें इस कूर्मपुराणके अध्यायके अनुसार प्राय सूक्ष्म विचार करके प्रायश्चित्तका निर्णय किया गया है। अपेक्षानुसार प्रायश्चित-निर्णय वहींसे करना चाहिये। इस अध्यायमें प्रायश्चित्तकी दिशामात्रका सक्षिप्त निर्देश है।

गुरोर्भार्यां समारुह्य ब्राह्मण काममोहित ।
अवगूहेत् स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्॥ १२॥
स्वय वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
आतिष्ठेद् दक्षिणामाशामानिपातादजिह्मग ॥ १३॥
गुर्वर्थं वा हत शुध्येच्चरेद् वा ब्रह्महा व्रतम्।
शाखा वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम्।
अध शयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पग ॥ १४॥
कृच्छ्रं वाब्द चरेद् विप्रश्चीरवासा समाहित ।
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुध्यते नर ॥ १५॥
कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रती।
स्थानासनाभ्या विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नप ॥ १६॥
अध शायी त्रिभिर्वर्षैस्तद् व्यपोहति पातकम्।
चान्द्रायणानि वा कुर्यात् पञ्च चत्वारि वा पुन ॥ १७॥

कामसे मोहित होकर गुरुकी भार्याके साथ गमन करनेवाले ब्राह्मणको लोहेसे बनायी गयी कृष्णवर्णकी तप्त एव उद्दीप्त स्त्रीका आलिंगन करना चाहिये। अथवा स्वय लिंग एव अण्डकोशको काटकर और अपनी अञ्जलिमें रखकर निष्कपट-भावसे दक्षिण दिशाकी ओर तबतक जाना चाहिये जबतक शरीरपात न हो जाय। गुरुके लिये मारे जानेसे भी गुरुपत्नीगामी शुद्ध हो जाता है अथवा ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये या एक वर्षतक काँटोसे युक्त शाखाका आलिंगन करते हुए गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेको नियमपूर्वक नीचे भूमिपर सोना चाहिये। इससे वह गुरुपत्नीगामी पापमुक्त हो जाता है। अथवा ब्राह्मणको चीर (कन्था) वस्त्र धारणकर समाहित होकर एक वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। या अश्वमेधयज्ञके अवभृथस्नान करनेसे व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। अथवा सर्वदा ब्रह्मचर्यपूर्वक व्रत धारणकर अष्टमकाल (अर्थात् चौथे दिन, सायकाल)-में भोजन करना चाहिये। इसके पूर्व प्रयत्नपूर्वक एक ही स्थानपर एक ही आसनसे रहकर केवल जल पीते हुए तीन दिन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करते हुए तीन वर्षोंतक भूमिपर शयन करनेसे उस (गुरुपत्नी-गमनरूप) पापसे छुटकारा मिलता है अथवा चार या पाँच चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ १२—१७॥

पतितै सम्प्रयुक्तानामथ वक्ष्यामि निष्कृतिम्।
पतितेन तु ससर्गं यो येन कुरुते द्विज ।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्॥ १८॥
तप्तकृच्छ्र चरेद् वाथ सवत्सरमतन्द्रित ।
षाण्मासिके तु ससर्गे प्रायश्चित्तार्धमर्हति॥ १९॥
एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम्।
पुण्यतीर्थाभिगमनात् पृथिव्या वाथ निष्कृति ॥ २०॥

अब पतिता (पापियो)-के साथ ससर्ग करनेवालोके निस्तारका उपाय (प्रायश्चित्त) बतलाता हूँ। जिस पतितके साथ जो द्विज (एक वर्षतक) ससर्ग करता है, उसे उस पतितद्वारा किये गये पापको दूर करनेके लिये विहित व्रतका (एक वर्षतक) पालन करना चाहिये। अथवा वर्षभरतक आलस्यरहित होकर तप्तकृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये। छ महीनोतक ससर्ग होनेपर उपर्युक्त व्रतका आधा प्रायश्चित्त करे। इन व्रताके द्वारा महापातकी अपने पापको दूर करते हैं। अथवा पृथ्वीके पुण्य-तीर्थोंकी यात्रा करनेसे भी निष्कृति (निस्तार) हो जाती है॥ १८—२०॥

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।
कृत्वा तैश्चापि ससर्गं ब्राह्मण कामकारत ॥ २१॥
कुर्यादनशन विप्र पुण्यतीर्थे समाहित ।
ज्वलन्त वा विशेदग्नि ध्यात्वा देव कपर्दिनम्॥ २२॥
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभि ।
तस्मात् पुण्येषु तीर्थेषु दहेद् वापि स्वदेहकम्॥ २३॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी तथा गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाले अथवा स्वेच्छापूर्वक उनके साथ ससर्ग करनेवाले ब्राह्मणको भी पुण्य-तीर्थमे समाहित होकर अनशनव्रत करना चाहिये अथवा कपर्दी भगवान् शकरका ध्यान करते हुए जलती हुई अग्निमे प्रवेश करना चाहिये। धर्मवादी मुनियोने (इसके अतिरिक्त) दूसरा प्रायश्चित्त नहीं बतलाया है, इसलिये पुण्य-तीर्थोंमे अपना शरीर जला देना चाहिये॥ २१—२३॥

गत्वा दुहितर विप्र स्वसार वा स्नुषामपि।
प्रविशेज्ज्वलन दीप्त मतिपूर्वमिति स्थिति ॥ २४॥
मातृष्वसा मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम्।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ॥ २५॥
चान्द्रायण च कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये।
ध्यायन् देव जगद्योनिमनादिनिधन परम्॥ २६॥

भ्रातृभार्यां समारुह्य कुर्यात् तत्पापशान्तये।
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहित ॥ २७ ॥
पैतृष्वस्त्रेयीं गत्वा तु स्वस्त्रेया मातुरेव च।
मातुलस्य सुता वापि गत्वा चान्द्रायण चरेत् ॥ २८ ॥
सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च।
अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्र समाचरेत् ॥ २९ ॥
उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रय विदु ।
मह सातपनेनास्य नान्यथा निष्कृति स्मृता ॥ ३० ॥

(जान-बूझकर) अपनी पुत्री, बहिन या पुत्रवधूके साथ गमन करनेवालेको जलती हुई प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करना चाहये। ऐसी मर्यादा है। मौसी, मामी, फूआ तथा भाजीके साथा गमन करनेपर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र नामक व्रतोको करना चाहिय और इन पापोकी शान्तिके लिये जगद्योनि अनादिनिधन परमदेवका ध्यान करते हुए चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। भाईकी पत्नीके साथ सहवास करनेपर उस पापकी शान्तिके लिये अच्छी प्रकार समाहित-मन होकर चार अथवा पाँच चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये। फूआकी लडकी, मौसीकी लडकी अथवा मामाकी लडकीके साथ गमन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मित्रकी पत्नी तथा सालीके साथ सहवास करनेपर एक अहोरात्र उपवास करके तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। रजस्वलाके साथ गमन करनेपर विप्र तीन रातमें शुद्ध होता है और चाण्डालीके साथ गमन करनपर तीन तप्तकृच्छ्र-व्रताके साथ सातपन व्रत करनेसे शुद्धि होती है। अन्य किसी प्रकारसे निष्कृति (निस्तार) नहीं कही गयी है ॥ २४—३० ॥

मातृगोत्रा समासाद्य समानप्रवरा तथा।
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मा समाहित ॥ ३१ ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गत्वा कृच्छ्रमेक समाचरेत्।
कन्यका दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ ३२ ॥
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु।
रेत सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्र सान्तपन चरेत् ॥ ३३ ॥

माताके गोत्रकी अथवा समान प्रवरवाले कुलकी स्त्रीसे समागम करनेपर इन्द्रियजयी होकर एकाग्रतापूर्वक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। (समागमके अयोग्य) ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर ब्राह्मणको एक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और कन्याको दूषित करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। अमानुषी स्त्री, रजस्वला, अयोनि तथा जलमें वीर्यपात करनेपर पुरुषको कृच्छ्रसातपनव्रत करना चाहिये ॥ ३१—३३ ॥

बन्धकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ ३४ ॥
अजावीमैथुन कृत्वा प्राजापत्य चरेद् द्विज ।
पतिता च स्त्रिय गत्वा त्रिभि कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥ ३५ ॥
पुल्कसीगमने चैव कच्छ्र चान्द्रायण चरेत्।
नटीं शैलूषकीं चैव रजकीं वेणुजीविनीम्।
गत्वा चान्द्रायण कुर्यात् तथा चर्मोपजीविनीम् ॥ ३६ ॥

व्यभिचारिणी स्त्रीके साथ गमन करनेपर ब्राह्मण तीन रातमे शुद्ध होता है। गौके साथ मैथुन करनेपर चान्द्रायणव्रतका पालन करना चाहिये। बकरी या भेडीके साथ मैथुन करनवाले द्विजको प्राजापत्य-व्रत करना चाहिये। पतित स्त्रीके साथ सहवास करनेपर तीन कृच्छ्रव्रतासे शुद्धि होती है। पुल्कसी (शूद्रामे निषादसे उत्पन्न स्त्री)-के साथ गमन करनपर कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करना चाहिये। नटी, नर्तकी धोबिन बाँसके द्वारा तथा चर्मके द्वारा जीविका निर्वाह करनवाली स्त्रीके साथ मैथुन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये ॥ ३४—३६ ॥

ब्रह्मचारी स्त्रिय गच्छेत् कथञ्चित्काममोहित ।
सप्तागार चरेद् भैक्ष वसित्वा गर्दभाजिनम् ॥ ३७ ॥
उपस्पृशेत् त्रिषवण स्वपाप परिकीर्तयन्।
सवत्सरेण चैकेन तस्मात् पापात् प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥
ब्रह्महत्याव्रत वापि षण्मासानाचरेद् यमी।
मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थित ॥ ३९ ॥
सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम्।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्त समाचरेत् ॥ ४० ॥
ओंकारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभि सदा।
सवत्सर तु भुञ्जानो नक्तं भिक्षाशन शुचि ॥ ४१ ॥
सावित्रीं च जपेच्चैव नित्य क्रोधविवर्जित ।
नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात् पापाद् विमुच्यते ॥ ४२ ॥

कदाचित् यदि कामसे मोहित होकर ब्रह्मचारी स्त्रीके

साथ गमन करता है तो उसे गदहेका चर्म धारणकर सात घरोसे भिक्षा माँगनी चाहिये। अपने पापको प्रकट करते हुए तीनो कालोमे स्नान करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक करनेसे वह इस पापसे मुक्त हो जाता है। अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यव्रतसे च्युत सन्यासी या ब्रह्मचारी) ब्राह्मणके कथनानुसार सयमपूर्वक छ मासतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रत करनेसे (इस पापसे) मुक्त हो जाता है। यदि सात अहोरात्रतक समर्थ रहनेपर भी भिक्षाचरण तथा अग्निहोत्र न करे तथा बुद्धिपूर्वक अपने शुक्र (वीर्य)-का परित्याग करे तो इस प्रकारका प्रायश्चित्त करना चाहिये—नदी-तीरमे अथवा तीर्थमे एक वर्षतक शान्तभावसे पवित्रताके साथ प्रणव एव महाव्याहृतियोसे युक्त सावित्री (गायत्री)-का निरन्तर जप करे और भिक्षामात्रसे प्राप्त अन्न केवल रात्रिमे ग्रहण करे। ऐसा करनेसे उपर्युक्त दोनो पापोसे मुक्ति मिलती है॥ ३७—४२॥

हत्वा तु क्षत्रिय विप्र कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्।
अकामतो वै षण्मासान् दद्यात् पञ्चशत गवाम्॥४३॥
अब्द चरेत नियतो वनवासी समाहित।
प्राजापत्य सान्तपन तप्तकृच्छ्र तु वा स्वयम्॥४४॥
प्रमाप्याकामतो वैश्य कुर्यात् सवत्सरद्वयम्।
गोसहस्र सपाद च दद्यात् ब्रह्महणो व्रतम्।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा॥४५॥
सवत्सर व्रत कुर्याच्छूद्र हत्वा प्रमादत।
गासहस्रार्धपाद च दद्यात् तत्पापशान्तये॥४६॥

बुद्धिपूर्वक क्षत्रियकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये। अनचाहे क्षत्रियकी हत्या हो जानेपर छ महीनेतक पाँच सौ गायोका दान करना चाहिये। अथवा स्वय वनमे रहते हुए एक वर्षतक एकाग्रतापूर्वक सयमित होकर प्राजापत्य, सान्तपन अथवा तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अनिच्छापूर्वक वैश्यकी हत्या करनेपर दो वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये तथा एक हजार दो सौ पचास गायोका दान करना चाहिये अथवा कृच्छ्र या अतिकृच्छ्रव्रत एव चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। प्रमादवश शूद्रकी हत्या करनेपर इस पापके शमनके लिये एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करना चाहिये और एक हजार एक सौ पचीस गौआका दान करना चाहिये॥ ४३—४६॥

अष्टौ वर्षाणि षट् त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्।
हत्वा तु क्षत्रिय वैश्य शूद्र चैव यथाक्रमम्॥४७॥
निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रत चरेत्।
राजन्या वर्षषट्क तु वैश्या सवत्सरत्रयम्।
वत्सरेण विशुध्येत शूद्रा हत्वा द्विजोत्तम॥४८॥
वैश्या हत्वा प्रमादेन किञ्चिद् दद्याद् द्विजातये।
अन्त्यजाना वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायण व्रतम्।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानज॥४९॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इनमेसे किसी एकका वध करनेपर क्रमश आठ, छ तथा तीन वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणीकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको आठ वर्षतक ब्रह्महत्याके व्रतका पालन करना चाहिये। क्षत्राणीकी हत्या करनेपर छ वर्षतक और वैश्याकी हत्या होनेपर तीन वर्षतक तथा शूद्राकी हत्या होनेपर एक वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करनेसे द्विजातम शुद्ध हो जाता है। प्रमादवश वैश्यकी स्त्रीकी हत्या करनेपर द्विजको किञ्चित् दान करना चाहिये। अन्त्यजोका वध होनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये अथवा भगवान् ब्रह्माने पराकव्रतके द्वारा शुद्धि बतलायी है॥ ४७—४९॥

मण्डूक नकुल काक दन्दशूक च मूषिकम्
श्वान हत्वा द्विज कुर्यात् षोडशाश व्रत तत॥५०॥
पय पिबेत् त्रिरात्र तु श्वानं हत्वा सुयन्त्रित।
मार्जार वाथ नकुल योजन वाध्वनो व्रजेत्।
कृच्छ्र द्वादशरात्र तु कुर्यादश्ववधे द्विज॥५१॥
अर्भीं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तम।
पलालभार षण्ड च सैसक चैकमाषकम्॥५२॥

मेढके, नकुले, कौआ, दन्दशूक (हिंसक जन्तु), चूहा अथवा कुत्तेकी हत्या करनेपर द्विजको व्रतके सोलहवे अशका पालन करना चाहिये। कुत्तेकी हत्या करनेपर सावधान होकर तीन रात्रिपर्यन्त (दूधमात्र पीकर रहना चाहिये) बिल्ली अथवा नेवलेका वध हो जानेपर एक योजन (चार कोस)-तक मार्गमे (अनशनपूर्वक) चलना चाहिये। द्विजको अश्वका वध करनेपर बारह रात्रिपर्यन्त कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। द्विजोत्तमको चाहिये कि वह सर्पको मारनेपर काले लोहेकी अभ्री (तीक्ष्ण अग्रभागवाला लाहदण्ड)-की प्रतिमा दान करे। नपुसककी हत्या करनेपर एक भार पलाल तथा एक मासा सीसा दान देना चाहिये॥ ५०—५२॥

घृतकुम्भं वराहं च तिलद्रोणं च तित्तिरिम्।
शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्॥५३॥
हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम्॥५४॥
क्रव्यादास्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान् वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्॥५५॥
किञ्चिद्देयं तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति॥५६॥

वराहकी हत्या करनेपर घृतसे भरा घड़ा और तित्तिरकी हत्या करनेपर एक द्रोण तिल देना चाहिये। शुककी हत्या करनेपर दो वर्षतकके (गायका) बछड़ा, क्रौञ्चको मारनेपर तीन वर्षके (गायके) बछड़ेका दान करना चाहिये। हंस, बलाका (बक-पंक्ति) बक (बगुला), मोर, वानर, बाज एवं गिद्धका वध करनेपर ब्राह्मणके लिये गौका दान करना चाहिये। मांस भक्षण करनेवाले अरण्यके पशुओं (व्याघ्र आदि)-की हत्या करनेपर पयस्विनी गौका दान करना चाहिये। मांस न खानेवाले पशुओं-हरिण, खजरीट आदिकी हत्या करनेपर (गौकी) बछड़ीका दान करना चाहिये और ऊँटका वध करनेपर कृष्णलका (घुँघची अर्थात् एक रत्ती सुवर्णका) दान करना चाहिये। अस्थिवाले पशु-पक्षीका वध करनेपर ब्राह्मणको किञ्चित् दान करना चाहिये और बिना अस्थिवाले पशु-पक्षीका वध होनेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धि होती है॥ ५३—५६॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम्॥५७॥
अन्येषां चैव वृक्षाणां सरसानां च सर्वशः।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम्॥५८॥
हस्तिनां च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्।
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः।
मतिपूर्वं वधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते॥५९॥

फलदार वृक्षोंके काटनेपर एक सौ ऋचाओंका जप करना चाहिये। गुल्म वल्ली, लता तथा फूलवाले वृक्षों और अन्य सभी प्रकारके रसवाले, फल तथा पुष्प देनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर घृत-प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। हाथीका वध करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। प्रमादवश गौकी हत्या करनेपर चान्द्रायण अथवा पराकव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर वध करनेपर इस हिंसाका कोई प्रायश्चित्त नहीं है॥ ५७—५९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमें चोरी तथा अभक्ष्य-भक्षणका प्रायश्चित्त, प्रकीर्ण पापोंका प्रायश्चित्त, समस्त पापोंकी एकत्र मुक्तिके विविध उपाय, पतिव्रताको कोई पाप नहीं लगता, पतिव्रताके माहात्म्यमें देवी सीताका आख्यान, सीताद्वारा अग्निस्तुति, ज्ञानयोगकी प्रशंसा तथा प्रायश्चित्त-प्रकरणका उपसंहार

व्यास उवाच

मनुष्याणां तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च।
वापीकूपजलानां च शुध्येच्चान्द्रायणेन तु॥१॥
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये॥२॥
धान्यान्नधनचौर्यं तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति॥३॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम्॥४॥
तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥५॥

व्यासजीने कहा—मनुष्य स्त्री, गृह, वापी कूप तथा जलाशयोंका अपहरण करनेपर चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। दूसरेके घरसे अल्प सारवाली अर्थात् सामान्य

वस्तुओंकी चोरी करनेपर उस पापसे अपनी शुद्धिके लिये कृच्छसान्तपनव्रत करना चाहिये। द्विजोत्तम यदि इच्छापूर्वक अपनी जातिवाले बान्धवोंके घरसे धान्य, अन्न अथवा धनकी चोरी करे तो अर्धकृच्छ्रव्रतका पालन करनेसे शुद्ध होता है। भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों तथा यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल तथा फलोंकी चोरीकी शुद्धि पञ्चगव्य-प्राशनसे होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड, वस्त्र चर्म तथा मासकी चोरी करनेपर तीन रात्रितक भोजन नहीं करना चाहिये॥ १—५॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अय कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणाशनम्॥ ६॥
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥ ७॥

मणि मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थरकी चोरी करनेपर बारह दिनतक कण (टूटे चावल)-का भक्षण करना चाहिये। कपास, रेशम, ऊन, दो खुर तथा एक खुरवाले पशु, पक्षी, गन्ध, औषधि तथा रस्सीका हरण करनेपर तीन दिनतक जलमात्र पीकर रहना चाहिये॥ ६-७॥

नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्।
काकं चैव तथा श्वानं जग्ध्वा हस्तिनमेव च।
वराहं कुक्कुटं चाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ ८॥
क्रव्यादानां च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव च।
गोगोमायुकपीनां च तदेव व्रतमाचरेत्।
उपोष्य द्वादशाहं तु कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्॥ ९॥
नकुलोलूकमार्जारं जग्ध्वा सांतपनं चरेत्।
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
व्रतवच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु॥ १०॥

मनुष्यका मांस भक्षण करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। कौआ, कुत्ता, हाथी वराह और कुक्कुटका मांस खानेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। कच्चा मांस खानेवाले जानवरों, सियारों तथा बंदरोंका मांस तथा मल-मूत्र भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये तथा बारह दिनोंतक उपवास करके कूष्माण्ड-संज्ञक मन्त्रोंसे घीकी आहुति देनी चाहिये। नेवला, उल्लू तथा बिल्लीका मांस भक्षण करनेपर सान्तपनव्रत करना चाहिये। शिकारी पशु, ऊँट और गदहेका मांस खानेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। पहले निर्दिष्ट विधानके अनुसार व्रतके समान ही संस्कार भी करना चाहिये॥ ८—१०॥

बकं चैव बलाकं च हंसं कारण्डवं तथा।
चक्रवाकं प्लवं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम्॥ ११॥
कपोतं टिट्टिभं चैव शुकं सारसमेव च।
उलूकं जालपादं च जग्ध्वाप्येतद् व्रतं चरेत्॥ १२॥
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च।
जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव चरेद् व्रतम्॥ १३॥
कोकिलं चैव मत्स्यांश्च मण्डूकं भुजगं तथा।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति॥ १४॥
जलेचरांश्च जलजान् प्रतुदान् नखविष्किरान्।
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत्॥ १५॥
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थं च तथा कृतम्।
भुक्त्वा मासं चरेदेतत् तत्पापस्यापनुत्तये॥ १६॥

बक(बगुला), बलाक (बक-पंक्ति), हंस, कारण्डव, चक्रवाक तथा प्लव पक्षीका मांस भक्षण करनेपर बारह दिनतक भोजन (अन्न ग्रहण) नहीं करना चाहिये। कपोत, टिट्टिभ शुक सारस उलूक तथा कलहंसका मांस भक्षण करनेपर भी यही व्रत (बारह दिनतक उपवास) करना चाहिये। शिशुमार, नीलकण्ठ, मछलीका मांस तथा गीदड़का मांस भक्षण करनेपर भी यही (उपर्युक्त) व्रत करना चाहिये। कोयल, मत्स्य मेढक तथा सर्प भक्षण करनेपर एक मासतक गोमूत्रमें अधपके यवका या यवके सत्तू आदिका भक्षण करनेसे शुद्धि होती है। जलचर, जलज, प्रतुद अर्थात् चोंचद्वारा ठोंकर मारकर आहार करनेवाले कौआ आदि नखविष्किर अर्थात् तितिर आदि और लाल पैरवाले पक्षियोंका मांस भक्षण करनेपर एक सप्ताहतक उपर्युक्त व्रत करना चाहिये। कुत्तेका मांस सूखा मांस तथा अपने लिये बनाया मांस खानेपर उस पापको हटानेके लिये एक महीनेतक यह (ऊपर कहा गया) व्रत करना चाहिये॥ ११—१६॥

वार्ताकं भूस्तृणं शिग्रु खुखुण्डं करकं तथा।
प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा शङ्खं कुम्भीकमेव च॥ १७॥

पलाण्डु लशुन चैव भुक्त्वा चान्द्रायण चरेत्।
नालिका तण्डुलीय च प्राजापत्येन शुध्यति॥१८॥
अश्मान्तक तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
प्राजापत्येन शुद्धि स्यात् कक्कुभाण्डस्य भक्षणे॥१९॥
अलायु किंशुक चैव भुक्त्वा चैतद् व्रतं चरेत्।
उदुम्बर च कामन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥२०॥

बैगन भूस्तृण, सहजन खुखुण्ड करक, राहु और कुम्भीकका भक्षण करनेपर प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। प्याज एव लहसुन भक्षण करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। नालिका शाक और तण्डुलीयक (चौलाई)-का साग खानेपर प्राजापत्य व्रतमे शुद्धि होती है। अश्मान्तक तथा पोतका भक्षण करनपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। ककुभके अडेका भक्षण करनेपर प्राजापत्य-व्रतमें शुद्धि होती है। अलावु (वर्तुलाकार अर्थात् गोल लौकी) तथा किंशुक (पलाश)-का भक्षण करनेपर भी यही व्रत करना चाहिये। इच्छापूर्वक उदुम्बर (गूलर)-का भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है॥ १७—२०॥

वृथा कृसरसयाव पायसापूपसकुलम्।
भुक्त्वा चैवविध त्वन्न त्रिरात्रेण विशुध्यति॥२१॥
पीत्वा क्षीराण्यपेयानि ब्रह्मचारी समाहित।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति॥२२॥
अनिर्दशाह गोक्षीर माहिषं चाजमेव च।
सधिन्याश्च विवत्साया पिबन् क्षीरमिद चरेत्॥२३॥
एतेषा च विकाराणि पीत्वा मोहेन मानव।
गोमूत्रयावकाहार सप्तरात्रेण शुध्यति॥२४॥

किसी शास्त्रीय उद्देश्यके बिना व्यर्थ ही या केवल अपने लिये कृसर (अन्न), सयाव (लपसी) खीर और मालपूआके समान पदार्थ भक्षण करनेपर तीन रात्रितक व्रत करनेसे शुद्धि होती है। पीनेके अयोग्य दूधका पान करनेपर सावधानीपूर्वक गोमूत्रमे पके यावकका आहार करनेसे एक मासमे ब्रह्मचारी शुद्ध होता है। ब्यानेके दस दिन हुए बिना अथवा गर्भिणी और बिना बच्चेवाली गौ भैंस और बकरीका दूध पीनेपर यही व्रत करना चाहिये। इनके (दूधके) विकार अर्थात् घी-दही आदिका मोहवश भक्षण करनेपर मनुष्य सात रात्रितक गोमूत्रमे अधपके यवका अथवा यवके सत् आदिका भोजन करनेसे शुद्ध होता है॥ २१—२४॥

भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा।
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणस्तु समाहित॥२५॥
यस्याग्नौ हूयते नित्य न यस्याग्रं न दीयते।
चान्द्रायण चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विज॥२६॥
अभोज्यानां तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम्।
अन्तावसायिनां चैव तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥२७॥
चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायण चरेत्।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्राब्द पुन संस्कारमेव च॥२८॥

(मृत्युके अनन्तर होनेवाले) नवश्राद्ध (मृत व्यक्तिके प्रथम दिनसे लेकर दशम दिनतक किये जानेवाले श्राद्ध), जननाशौच तथा मरणाशौचमें भोजन करनेपर ब्राह्मण समाहित होकर चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्ध होता है। जो (अधिकारी) न नित्य अग्निमे हवन करता है और न अग्रासन (भोजन करनेके पूर्व ब्राह्मण तथा अतिथिको भोजन कराता है, न गोग्रास ही निकालता है) देता है, उसका अन्न भक्षण करनेपर द्विजको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो अभोज्य हैं उन सभीका तथा अन्त्यजोका पक्वान्न ग्रहण करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। बिना जाने चाण्डालका अन्न भक्षण करके द्विजको भलीभाँति चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर ऐसा करनेपर एक वर्षतक कृच्छ्रव्रतका पालन करके पुन (द्विजत्व-प्राप्तिके लिये) संस्कार करना चाहिये॥ २५—२८॥

असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्।
अभोज्यान्न तु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुध्यति॥२९॥
विण्मूत्रप्राशन कृत्वा रेतसश्चैतदाचरेत्।
अनादिष्टेषु चैकाह सर्वत्र तु यथार्थत॥३०॥

सुराभिन्न मद्यका पान करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और अभोज्यान्न-भक्षण करनपर प्राजापत्यव्रतसे शुद्धि होती है। मल, मूत्र एव वीर्यका भक्षण करनेपर भी यही (प्राजापत्य नामक) व्रत करना चाहिये। अन्य सभी न कहे गये पापोमे यथाविधि एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २९-३०॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायो कपिकाकयो।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायण चरेत्॥३१॥

अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥ ३२॥
क्रव्यादां पक्षिणां चैव प्राश्य मूत्रपुरीषकम्।
महासांतपनं मोहात् तथा कुर्याद् द्विजोत्तमः।
भासमण्डूककुररे विष्किरे कृच्छ्रमाचरेत्॥ ३३॥

ग्रामसूकर गदहा, ऊँट, शृगाल, बदर तथा कौएके मल-मूत्रका भक्षण करनेपर द्विजको चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये। अज्ञानसे मल-मूत्रका भक्षण करने और सुराका स्पर्श करनेपर तीनो वर्णवाले द्विजातियोको पुन संस्कार करना चाहिये। अज्ञानवश कच्चा मासभक्षी पक्षियोके मूत्र-पुरीषका भक्षण हो जानेपर द्विजोत्तमको महासातपन नामक व्रत करना चाहिये। गृध्र,मेढक, कुरर पक्षी एव विष्किर (नखसे बिखेरकर खानेवाले पक्षी)-का भक्षण करनेपर (अथवा इनके मूत्र-पुरीषादिका भक्षण करनेपर) कृच्छ्रव्रत करना चाहिये॥ ३१—३३॥

प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद् वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम्।
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३४॥
सुराभाण्डोदरे वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्।
शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषं च रागवान्॥ ३५॥

ब्राह्मणका उच्छिष्ट भक्षण करनेपर प्राजापत्य-व्रतसे शुद्धि होती है। क्षत्रियोका उच्छिष्ट भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिये, वैश्यका उच्छिष्ट ग्रहण करनेपर अतिकृच्छ्र और शूद्रका उच्छिष्ट ग्रहण करनेपर ब्राह्मणको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। सुराके पात्रमे जल पीनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। कुत्तेका जूठा खानेपर द्विजकी शुद्धि तीन रात्रितक उपवास करनेसे होती है। कुत्तेका पीतशेष इच्छापूर्वक ग्रहण करनेवालेको तीन राततक गोमूत्रमे पके हुए यवान्नका आहार मात्र ग्रहण करना चाहिये॥ ३४-३५॥

अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिता प्राशयेद् यदा।
तदा सांतपनं प्रोक्तं व्रतं पापविशोधनम्॥ ३६॥
चाण्डालकूपभाण्डेषु यदि ज्ञानात् पिबेज्जलम्।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम्॥ ३७॥
चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत पञ्चगव्येन चैव हि॥ ३८॥
महापातकिसंस्पर्शे भुंक्तेऽस्नात्वा द्विजो यदि।
बुद्धिपूर्वं तु मूढात्मा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥ ३९॥
स्पृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालं वा रजस्वलाम्।
प्रमादाद् भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति॥ ४०॥

यदि मल तथा मूत्र आदिसे दूषित जलका पान कर ले तो उस पापकी शुद्धिके लिये सातपन नामक व्रत बतलाया गया है। चाण्डालके कूपसे तथा उसके बरतनोमे यदि ज्ञानपूर्वक ब्राह्मण जल पी ले तो उस पापकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रसातपन नामक व्रत करना चाहिये। चाण्डालके द्वारा स्पर्श हुआ जल पीनेपर द्विजोत्तम तीन रात्रितक पञ्चगव्य ग्रहण करनेसे शुद्ध होता है। महापातकीका स्पर्श होनेपर बिना स्नान किये यदि द्विज जान-बूझकर मोहवश भोजन करता है तो उसे तप्तकृच्छ्र करना चाहिये। प्रमादवश महापातकी, चाण्डाल या रजस्वलाका स्पर्शकर भोजन करनेपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवाससे शुद्धि होती है॥ ३६—४०॥

स्नानार्हो यदि भुञ्जीत अहोरात्रेण शुध्यति।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः॥ ४१॥
शुष्कपर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषितम्।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा॥ ४२॥
संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद् विप्रः पुनः पुनः
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥ ४३॥

भगवान् ब्रह्माने कहा है कि स्नानके योग्य व्यक्ति यदि बिना स्नान किये भोजन करता है तो वह अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्ध हो जाता है, किंतु ज्ञानपूर्वक भोजन करनेपर कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। शुष्क, बासी आदि तथा गौ आदिद्वारा दूषित (उच्छिष्ट) पदार्थोका भक्षण करनेपर एक दिनका उपवास अथवा कृच्छ्रव्रतका चतुर्थांश व्रत करना चाहिये। अज्ञानमे अभोज्य पदार्थोके भक्षणसे होनेवाले पापकी शुद्धिके लिये संवत्सरके अन्तमे ब्राह्मणको बार-बार कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर ऐसा होनेपर इसे विशेषरूपसे करना चाहिये॥ ४१—४३॥

व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥ ४४॥

ब्राह्मणादिहतानां तु कृत्वा दाहादिका क्रिया ।
गोमूत्रयावकाहार प्राजापत्येन शुध्यति॥४५॥
तैलाभ्यक्तोऽथवा कुर्याद् यदि मूत्रपुरीषके।
अहोरात्रेण शुध्येत श्मश्रुकर्म च मैथुनम्॥४६॥

संस्कारहीन पुरुषोका यज्ञ कराने और दूसरोका[1] अन्त्येष्टिकर्म तथा अभिचार-कर्म करनेपर तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। ब्राह्मण आदिके द्वारा मारे गये पुरुषोका दाहादि कर्म करनेपर गोमूत्रमें पक यवान्नका आहार करने और प्राजापत्य-व्रत करनेसे शुद्धि होती है। तेल लगाकर और मल-मूत्रका त्याग करने, श्मश्रुकर्म करने (दाढी आदि बनाने) तथा मैथुन करनेपर अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्धि होती है॥ ४४—४६॥

एकाहेन विवाहाग्नि परिहार्य द्विजोत्तम ।
त्रिरात्रेण विशुध्येत त्रिरात्रात् षडह पुन ॥४७॥
दशाहं द्वादशाह वा परिहार्य प्रमादत ।
कृच्छ्र चान्द्रायणं कुर्यात् तत्पापस्यापनुत्तये॥४८॥

एक दिन विवाहाग्नि (गृह्याग्नि)-का त्याग करने अर्थात् उस अग्निमे हवन न करनेसे द्विजोत्तम तीन दिन (उपवास करने)-से शुद्ध होता है और तीन दिनतक नित्य हवन न करनेपर छ दिनोंके उपवाससे शुद्ध होता है। प्रमादवश दस दिन अथवा बारह दिनतक गृह्याग्निका त्याग करनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ४७-४८॥

पतिताद् द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति।
चरेत् सातपन कृच्छ्रमित्याह भगवान् प्रभु ॥४९॥
अनाशकनिवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च॥५०॥

भगवान् प्रभुने बताया है कि पतित व्यक्तिसे द्रव्य लेनेपर उस द्रव्यका त्याग कर देनेसे शुद्धि होती है साथ ही कृच्छ्रसातपनव्रत करना चाहिये। प्रायोपवेशन-व्रतसे भ्रष्ट तथा सन्यास-आश्रमसे च्युत व्यक्तिको तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ४९-५०॥

पुनश्च जातकर्मादिसस्कारै सस्कृता द्विजा ।
शुध्येयुस्तद् व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मवर्धना ॥५१॥
अनुपासितसध्यस्तु तदहर्यापको वसेत्।
अनश्नन् सयतमना रात्रौ चेद् रात्रिमेव हि॥५२॥
अकृत्वा समिदाधान शुचि स्नात्वा समाहित ।
गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद् विशुद्धये॥५३॥
उपासीत न चेत् सध्या गृहस्थोऽपि प्रमादत ।
स्नात्वा विशुध्यते सद्य परिश्रान्तस्तु सयमात्॥५४॥
वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु।
स्नातकव्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद् दिनम्॥५५॥

पुन जातकर्मादि सस्कारोद्वारा सस्कृत होनेपर धर्मकी वृद्धि चाहनेवाले द्विजोको भलीभाँति व्रतका पालन करना चाहिये। (प्रात) सध्या न करनेपर उस दिन वैसे ही बिना भोजन किये सयत-मन होकर रहना चाहिये और साय-सध्या न करनेपर रात्रिमे भोजन नहीं करना चाहिये। (गार्हपत्याग्निमे) समिधा न डालनेपर अर्थात् नित्य-हवन (नित्यकर्म अग्निहोत्र) न करनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये स्नान करके पवित्रतापूर्वक समाहित होकर आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी व्यक्ति यदि प्रमादसे सध्या नहीं करता है तो स्नान करके उपवास करनेसे वह शुद्ध हो जाता है और थकानके कारण सध्या न करनेवाला सयम (मन एकाग्रकर पश्चातापमात्र) करनेसे शुद्ध हो जाता है। वेदमे बताये गये नित्य-कर्मोंका लोप करने तथा स्नातकके व्रतका लोप करनेपर स्नातकका एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ ५१—५५॥

सवत्सर चरेत् कृच्छ्रमग्न्युत्सादी द्विजोत्तम ।
चान्द्रायण चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुध्यति॥५६॥
नास्तिक्य यदि कुर्वीत प्राजापत्य चरेद् द्विज ।
देवद्रोह गुरुद्रोह तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥५७॥
उष्ट्रयान समारुह्य खरयान च कामत ।
त्रिरात्रेण विशुध्येत् तु नग्नो वा प्रविशेज्जलम्॥५८॥

अग्निका परित्याग करनेवाले द्विजोत्तमको एक वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और सस्कारहीन व्यक्ति चान्द्रायणव्रत करने और गोदान करनेसे शुद्ध हो जाता है। नास्तिकता

१-यद्यपि अधिकारीके अभावमें किसीका अन्त्यकर्म करना पुण्यप्रद होता है पर यदि यही अन्त्यकर्म लोभवश अधिकारीके रहते हुए भी स्वय किया जाय तो पापका कारण होता है अत इसके लिये प्रायश्चित्तका विधान है।

करनेवाले द्विजको प्राजापत्य-व्रतका पालन करना चाहिये। देवतासे तथा गुरुसे द्रोह करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। इच्छापूर्वक ऊँट या गदहेकी सवारी करनेपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवास करनेसे शुद्धि होती है। इसी प्रकार नग्न होकर जलमें प्रवेश करनेपर तीन राततक उपवास करना चाहिये॥ ५६—५८॥

षष्ठान्नकालतामास संहिताजप एव च।
होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम्॥५९॥
नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि।
अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुध्यति॥६०॥

पंक्तिसे बहिष्कृत यदि ऐसे लोग हैं, जिनके लिये विशेष प्रायश्चित्तका उपदेश नहीं किया गया है, वे लोग एक मासतक नियमपूर्वक 'षष्ठान्नकालता' (तीन दिन भोजन न कर तीसरे दिन साय केवल एक बार सात्त्विक (हविष्यान्न) भोजन करें, संहिताजप (वेदसंहिताके मन्त्रोका पाठ) करें तथा शाकल होम (बौधायनस्मृति प्रश्न ४, अध्याय ३ के अनुसार) करें तो शुद्ध हो सकते हैं। नीला या लाल वस्त्र धारण करनेपर ब्राह्मण एक अहोरात्र उपवास करनेके अनन्तर स्नानकर पञ्चगव्यका पान करनेसे शुद्ध होता है॥५९-६०॥

वेदधर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणे।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः॥६१॥
उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः॥६२॥
उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः।
प्रमादाद् वै जपेत् स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम्॥६३॥
द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः।
त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुध्यति॥६४॥
चण्डालपतितादींस्तु कामाद् यः संस्पृशेद् द्विजः।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये॥६५॥

चाण्डालको वेद, धर्मशास्त्रों तथा पुराणोंका उपदेश करनेपर चान्द्रायणसे शुद्धि होती है, इसके अतिरिक्त उसकी निष्कृति (निस्तार)-का कोई अन्य उपाय नहीं है। उद्बन्धन (फाँसी) आदिद्वारा मरे व्यक्तिका कदाचित् स्पर्श होनेपर ब्राह्मण चान्द्रायण अथवा प्राजापत्यव्रत करनेसे शुद्ध होता है। प्रमादवश यदि जूठे मुँह बिना आचमन किये द्विज चाण्डाल आदिका स्पर्श करता है तो उसे स्नानकर आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ब्रह्मचारीको तो समाहित होकर तीन रात उपवास करके भलीभाँति सौ बार द्रुपदा मन्त्रका जप करना चाहिये और फिर पञ्चगव्यप्राशन करनेपर उसकी शुद्धि होती है। जो उच्छिष्ट-मुख द्विज इच्छापूर्वक चाण्डाल तथा पतित आदिका स्पर्श करता है, उसे शुद्धिके लिये प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥६१—६५॥

चाण्डालसूतकशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम्।
स्पृष्ट्वा स्नायाद् विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टं पतितं तथा॥६६॥
चाण्डालसूतकशवैः संस्पृष्टं संस्पृशेद् यदि।
प्रमादात् तत आचम्य जपं कुर्यात् समाहितः॥६७॥
तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः।
आचमेत् तद्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः॥६८॥

चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति, शव, रजस्वला स्त्री, उनसे स्पृष्ट व्यक्ति तथा पतितका स्पर्श करनेपर शुद्धिके लिये स्नान करना चाहिये। प्रमादवश चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति तथा शव—इनको स्पर्श किये व्यक्तिका स्पर्श होनेपर (स्नानोपरान्त) आचमन करके एकाग्र होकर (गायत्री) जप करना चाहिये। द्विजोत्तम यदि जान-बूझकर चाण्डाल आदिद्वारा स्पर्श किये व्यक्तिका स्पर्श करे तो उसे उस पापकी शुद्धिके लिये (स्नान करके)[1] आचमन करना चाहिये—ऐसा पितामह देवने कहा है॥ ६६—६८॥

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् संस्रवेद् गुदम्।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् घृतम्॥६९॥
चाण्डालान्त्यशवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद् विशुद्धये।
स्पृष्ट्वाभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्यमहोरात्रेण शुध्यति॥७०॥

भोजन करते समय ब्राह्मणके गुदामार्गसे कदाचित् मलस्राव हो जाय तो शौच करनेके अनन्तर स्नान करना चाहिये और उपवास करके घृतसे हवन करे। चाण्डाल एवं अन्त्यजके शवका स्पर्श करके शुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। उबटन आदि लगानेके बाद अस्पृश्य

[1] यथाविधि आचमनकी योग्यता स्नानके बिना नहीं होती है।

व्यक्तिका स्पर्श होनेपर एक अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्धि होती है॥ ६९-७०॥

सुरा स्पृष्ट्वा द्विज कुर्यात् प्राणायामत्रय शुचि ।
पलाण्डु लशुन चैव घृत प्राश्य तत शुचि ॥७१॥
ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यह साय पय पिबेत्।
नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुण भवेत्॥७२॥
स्यादेतत् त्रिगुण बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम्।
स्नात्वा जपेद् वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तम ॥७३॥

सुराका स्पर्श करके द्विज तीन प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है। प्याज, लहसुनका स्पर्श होनेपर घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। कुत्तेके काटनेपर ब्राह्मणको (कुत्तेके स्पर्शके प्रायश्चित्तके साथ) तीन दिन सायकाल केवल दूध पीना चाहिये। नाभिके ऊपरी भागमे काटनेपर यही क्रिया (प्रायश्चित्त) दो बार करनी चाहिये। इसी प्रकार बाहुमे काटनेपर यही क्रिया तीन बार और मस्तकमे काटनेपर चार बार करनी चाहिये अथवा कुत्तेके काटनेपर द्विजोत्तमको स्नान करके गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ७१—७३॥

अनिर्वर्त्य महायज्ञान् यो भुङ्क्ते तु द्विजोत्तम ।
अनातुर सति धने कृच्छ्रार्धेन स शुध्यति॥७४॥
आहिताग्निरुपस्थान न कुर्याद् यस्तु पर्वणि।
ऋतौ न गच्छेद् भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत्॥७५॥

स्वस्थ रहते और धन होनेपर भी जो द्विजोत्तम प्रतिदिन विहित पाँच महायज्ञोको बिना सम्पन्न किये भोजन करता है वह अर्धकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है। जो अग्निहोत्री ब्राह्मण पर्वोंमे उपस्थान नहीं करता और जो ऋतुकालमे भार्याके साथ सहवास नहीं करता वह भी अर्धकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है॥ ७४-७५॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्त शारीर संनिवेश्य च।
सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति॥७६॥
बुद्धिपूर्वं त्वभ्युदितो जपेदन्तर्जले द्विज ।
गायत्र्यष्टसहस्र तु त्र्यह चोपवसेद् व्रती॥७७॥

कोई आर्त (मल-मूत्रके वेगसे आर्त-त्रस्त) व्यक्ति यदि जलके अभावमे मल-मूत्रका त्याग अकस्मात् कर देता है या जलके मध्यमे रहता हुआ मल-मूत्रके वेगसे आर्त होनेके कारण जलके मध्य ही अकस्मात् मल-मूत्रका त्याग कर देता है तो मल-मूत्रका प्रक्षालनकर ग्राम या नगर आदिके बाहर नदी आदिमे शरीरपर धारित समस्त वस्त्रोंके साथ उसे स्नान करना चाहिये तथा गौका स्पर्श करना चाहिये, तभी शुद्धि होती है। जान-बूझकर (सूर्योदयकालतक शयन करनेवाले अथवा आलस्यवश सोये रहनेके कारण सूर्योदयकालीन अनुष्ठानको न करनेवाले) ब्राह्मणको सूर्योदयके समय जलमे प्रविष्ट होकर आठ हजार गायत्रीका जप तथा तीन दिनतक उपवास करना चाहिये॥७६-७७॥

अनुगम्येच्छया शूद्र प्रेतीभूत द्विजोत्तम ।
गायत्र्यष्टसहस्र च जप्य कुर्यान्नदीषु च॥७८॥
कृत्वा तु शपथ विप्रो विप्रस्य वधसयुतम्।
मृषैव यावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायण व्रतम्॥७९॥
पक्त्या विषमदान तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति।
छाया श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम्॥८०॥

इच्छापूर्वक मृत शूद्रके शवका अनुगमन करनेपर द्विजोत्तमको नदीके किनारे आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ब्राह्मणके वध करनेकी झूठी शपथ करनेपर ब्राह्मणको यावकान्न (यवके सत्तू या उससे बने हुए किसी अन्य पदार्थ)-से चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। एक ही पङ्क्तिमे बैठे हुए ब्राह्मणोको विषम दान करनेपर कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। चाण्डालकी छायाका स्पर्श होनेपर स्नान करके घृतका प्राशन करना चाहिये॥ ७८-८०॥

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाग्नि चन्द्रमेव वा।
मानुष चास्थि सस्पृश्य स्नान कृत्वा विशुध्यति॥८१॥
कृत्वा तु मिथ्याध्ययन चरेद् भैक्ष तु वत्सरम्।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्च सवत्सर व्रती॥८२॥
हुकार ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वकार च गरीयस ।
स्नात्वानश्नन्नह शेष प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८३॥
ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठ बद्ध्वापि वाससा।
विवाद वापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८४॥
अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्र निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥८५॥

अशुद्धिकी स्थितिमे अग्नि अथवा चन्द्रमाका दर्शनकर

सूर्यका दर्शन करना चाहिये। मनुष्यकी हड्डीका स्पर्श होनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मिथ्या (असत् विषयका अथवा दम्भपूर्ण) अध्ययन करनेपर एक वर्षतक भिक्षाव्रत ग्रहण करना चाहिये। कृतघ्नको (ब्रह्मचर्य) व्रतका पालन करते हुए पाँच वर्षतक ब्राह्मणके घरमे निवास करना चाहिये। ब्राह्मणको 'हुकार' तथा गुरुजनोंको 'त्वकार' (तुम) कहनेपर स्नान करके दिनभर भोजन नहीं करना चाहिये और उन्हें प्रणामके द्वारा प्रसन्न करना चाहिये। तृणद्वारा भी (उनकी) ताडना करनेपर, वस्त्रद्वारा कण्ठ बाँधनेपर विवादमे पराजित करनेपर प्रणामके द्वारा उन्हे प्रसन्न करना चाहिये। ब्राह्मणको धमकानेपर कृच्छ्रव्रत और पटक देनेपर अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। विप्रका रक्त बहानेपर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र दोना व्रत करना चाहिये॥ ८१—८५॥

गुरोराक्रोशमनृत कृत्वा कुर्याद् विशोधनम्।
एकरात्र त्रिरात्र वा तत्पापस्यापनुत्तये॥ ८६॥
देवर्षीणामभिमुख ष्ठीवनाक्रोशने कृते।
उल्मुकेन दहेज्जिह्वा दातव्य च हिरण्यकम्॥ ८७॥
देवोद्याने तु य कुर्यान्मूत्रोच्चार सकृद् द्विज।
छिन्द्याच्छिश्न तु शुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायण तु वा॥ ८८॥
देवतायतने मूत्र कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तम।
शिश्नस्योत्कर्तन कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्॥ ८९॥
देवतानामृषीणा च देवाना चैव कुत्सनम्।
कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्य द्विजोत्तम॥ ९०॥
तैस्तु सम्भाषण कृत्वा स्नात्वा देवान् समर्चयेत्।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्त स्मृत्वा विश्वेश्वर स्मरेत्॥ ९१॥

गुरुको गाली या शाप देनेपर या उनसे झूठ बोलनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये (पापक तारतम्यके अनुसार) एक रात या तीन रातका उपवास रखना चाहिये। देवताओं और ऋषियोकी ओर थूकने तथा (उनके प्रति) आक्रोश (आक्षेप) प्रकट करनेपर उल्मुक (अगारवाली लकडी)-से जीभका दाह करना चाहिये और स्वर्णका दान करना चाहिये। जो द्विज देवताओंके उद्यानमे एक बार भी मल-मूत्र विसर्जित करता है तो शुद्धिके लिये मूत्रेन्द्रियका छेदन कर देना चाहिये अथवा चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो द्विजोत्तम देवमन्दिरमें मोहवश मूत्रोत्सर्ग करता है, उसे मूत्रेन्द्रियका उच्छेद करके चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। देवताओ, ऋषियो तथा देवों (देवतुल्य महापुरुषो—माता, पिता, गुरु आदि)-की निन्दा करनेपर द्विजोत्तमको भलीभाँति प्राजापत्य-व्रत करना चाहिये। इनके साथ सम्भाषण करनेपर स्नान करके देवताओकी पूजा करनी चाहिये और उन्हे देखनेपर सूर्यका दर्शन करना चाहिये तथा विश्वेश्वरका स्मरण करना चाहिये॥ ८६—९१॥

य सर्वभूताधिपति विश्वेशान विनिन्दति।
न तस्य निष्कृति शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ ९२॥
चान्द्रायण चरेत् पूर्वं कृच्छ्र चैवातिकृच्छ्रकम्।
प्रपन्न शरण देव तस्मात् पापाद् विमुच्यते॥ ९३॥
सर्वस्वदान विधिवत् सर्वपापविशोधनम्।
चान्द्रायण च विधिना कृच्छ्र चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ९४॥
पुण्यक्षेत्राभिगमन सर्वपापविनाशनम्।
देवताभ्यर्चन नृणामशेषाघविनाशनम्॥ ९५॥

जो सभी प्राणियोके अधिपति विश्वेशानकी निन्दा करता है, उसके पापकी शुद्धि सौ वर्षोमे भी सम्भव नहीं है, पर (पश्चात्तापपूर्वक) पहले चान्द्रायणव्रत करे, अनन्तर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र व्रतोंको श्रद्धापूर्वक करके देव (शकर)-की शरणमे जाय। ऐसा करनेपर देव शकरकी कृपासे ही पापसे मुक्ति हो जाती है। विधिपूर्वक अपना सर्वस्व दान करनेसे सभी पापोकी शुद्धि हो जाती है। इसी प्रकार विधिपूर्वक चान्द्रायणव्रत करने, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रव्रताको करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं। पुण्य क्षेत्राकी यात्रा सभी पापोंको दूर कर देती है। मनुष्योंके लिये देवताओकी आराधना करना सम्पूर्ण पापोके नाशका अचूक साधन है॥ ९२—९५॥

अमावस्या तिथि प्राप्य य समाराधयेच्छिवम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापै प्रमुच्यते॥ ९६॥
कृष्णाष्टम्या महादेव तथा कृष्णचतुर्दशीम्।
सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापै प्रमुच्यते॥ ९७॥
त्रयोदश्या तथा रात्रौ सोपहार त्रिलोचनम्।
दृष्ट्वेश प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकै॥ ९८॥
उपोषितश्चतुर्दश्या कृष्णपक्षे समाहित।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥ ९९॥

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।
प्रत्येक तिलसंयुक्तान् दद्यात् सप्तोदकाञ्जलीन्।
स्नात्वा नद्या तु पूर्वाह्ने मुच्यते सर्वपातकै ॥१००॥

अमावास्या तिथि आनेपर जा शिवकी भलीभाँति आराधना करता है और ब्राह्मणाको भोजन कराता है, वह सभी पापास मुक्त हो जाता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा कृष्णपक्षकी ही चतुर्दशीको महादेव शकरका पूजन कर ब्राह्मणका भोजन करानेसे सभी पापासे मुक्ति हो जाती है। त्रयोदशीको रात्रिके प्रथम यामम उपहारसहित त्रिलोचन ईश शकरका दर्शन करनेसे मनुष्य सभी पातकासे मुक्त हो जाता है। कृष्णपक्षको चतुर्दशीका पूर्वाह्नम समाहित होकर नदीमें स्नानकर उपवास करके यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा सर्वभूतविनाशक—इनम प्रत्येकक निमित्त तिलमिश्रित सात जलाञ्जलि प्रदान करनेवाला सभी पातकासे मुक्त हा जाता है॥९६—१००॥

ब्रह्मचर्यमध शय्यामुपवास द्विजार्चनम्।
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्त सयतमानस ॥१०१॥
अमावस्याया ब्रह्माण समुद्दिश्य पितामहम्।
ब्राह्मणास्त्रीन् समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकै ॥१०२॥
षष्ठ्यामुपोषितो देव शुक्लपक्षे समाहित ।
सप्तम्यामर्चयेद् भानु मुच्यते सर्वपातकै ॥१०३॥
भरण्या च चतुर्थ्यां च शनैश्चरदिने यमम्।
पूजयेत् सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नर ॥१०४॥
एकादश्या निराहार समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
द्वादश्या शुक्लपक्षस्य महापापै प्रमुच्यते॥१०५॥

(प्रायश्चित्तके प्रसगस उपदिष्ट) इन सभी व्रताम शान्त और सयत-मन होकर ब्रह्मचर्य, भूमिशयन उपवास तथा ब्राह्मणाकी पूजा करनी चाहिये। अमावास्याको पितामह ब्रह्माका उद्दिष्ट करके तीन ब्राह्मणाकी पूजा करनेसे सभी पातकासे मुक्ति हो जाती है। शुक्लपक्षकी षष्ठीको समाहित होकर उपवास करके सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये, इससे सभी पापासे मुक्ति हो जाती है। शनिवारको भरणी नक्षत्र और चतुर्थी तिथि होनेपर (ऐसे यागम) जो मनुष्य यमराजका पूजन करता है, वह सात जन्मोम किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। शुक्लपक्षकी एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको जनार्दनकी पूजा करनेस महापापोंसे मुक्ति मिल जाती है॥१०१—१०५॥

तपो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम्।
ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम्॥१०६॥
य सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानव ।
नियमेन त्यजेत् प्राणान् स मुच्येत् सर्वपातकै ॥१०७॥

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण आदि समयामें जप तप तीर्थसेवा और देवता तथा ब्राह्मणाका पूजन महापातकोंसे शुद्ध करनेवाला होता है। सभी पापासे युक्त होनेपर भी जो मनुष्य नियमपूर्वक पुण्य तीर्थोंमें प्राणाका त्याग करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥१०६-१०७॥

ब्रह्मघ्न वा कृतघ्न वा महापातकदूषितम्।
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्॥१०८॥
एतदेव पर स्त्रीणां प्रायश्चित्त विदुर्बुधा ।
सर्वपापसमुद्भूतौ नात्र कार्या विचारणा॥१०९॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुका।
न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च॥११०॥

मृत पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली नारी ब्रह्मघाती, कृतघ्न अथवा महापातकोसे दूषित भी पतिका उद्धार कर देती है। विद्वानाने स्त्रीके लिये सभी प्रकारके पापोका यही (पतिव्रतधर्म-पालन ही) श्रेष्ठ प्रायश्चित बतलाया है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये। जो नारी पतिव्रता है और पतिकी सेवा-शुश्रूषामे अनुरक्त है उसके लिये न तो इस लोकमे कोई पाप है और न परलोकमे॥१०८—११०॥

पतिव्रता धर्मरता रुद्राण्येव न सशय ।
नास्या पराभव कर्तुं शक्नोतीह जन क्वचित्॥१११॥
यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥११२॥
रामस्य भार्यां विमला रावणो राक्षसेश्वर ।
सीता विशालनयना चकमे कालचोदित ॥११३॥
गृहीत्वा मायया वेष चरन्तीं विजने वने।
समाहर्तुं मति चक्रे तापस किल कामिनीम्॥११४॥

विज्ञाय सा च तद्भाव स्मृत्वा दाशरथि पतिम्।
जगाम शरण वह्निमावसथ्य शुचिस्मिता॥११५॥

(पातिव्रत) धर्मपरायण पतिव्रता (स्त्री) रुद्राणी ही होती है, इसमें सदेह नहीं। इस ससारमें कोई भी मनुष्य इसे कभी भी पराजित करनेमे समर्थ नहीं है। उदाहरणके लिये दशरथके पुत्र रामकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध सुन्दर पत्नी देवी सीताने राक्षसेश्वर (रावण)-को पराजित कर दिया था। कालसे प्रेरित राक्षसराज रावणने रामकी सुन्दर तथा विशाल नेत्रोवाली भार्या सीताको प्राप्त करनेकी इच्छा की। उसने मायासे तपस्वीका वेष धारणकर जनशून्य वनमें विचरण (निवास) करती हुई कामिनी (सीता)-का अपहरण करनेका विचार किया। तब पतिव्रता भगवती सीताने रावणके दुष्ट भावको समझकर अपने पति दशरथ-पुत्र रामका स्मरण किया और पवित्र मुसकानवाली उन सीतादेवीने आवसथ्य अग्निकी शरण ग्रहण की॥१११—११५॥

उपतस्थे महायोग सर्वदोषविनाशनम्।
कृताञ्जली रामपत्नी साक्षात् पतिमिवाच्युतम्॥११६॥
नमस्यामि महायोग कृतान्त गहन परम्।
दाहक सर्वभूतानामीशान कालरूपिणम्॥११७॥
नमस्ये पावक देव साक्षिण विश्वतोमुखम्।
आत्मान दीप्तवपुष सर्वभूतहृदि स्थितम्॥११८॥
प्रपद्ये शरण वह्नि ब्रह्मण्य ब्रह्मरूपिणम्।
भूतेश कृत्तिवसन शरण्य परम पदम्॥११९॥
ॐ प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रभव सर्वतेजसाम्।
महायोगेश्वर वह्निमादित्य परमेष्ठिनम्॥१२०॥

रामकी पत्नी (सीतादवी) हाथ जोडकर साक्षात् पतिके समान सभी दोषोंको नष्ट करनेवाले महायोगरूप अच्युत (अग्नि)-की शरणम गयीं (और उनकी स्तुति करने लगीं—) महायोगस्वरूप परम गहन (रहस्यस्वरूप) कृतान्त, दहन करनवाले, सभी प्राणियोंक नियामक कालरूपी अग्निको मैं नमस्कार करती हूँ। मैं सभी ओर मुखवाले सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित दीप्त शरीरवाले आत्मरूप तथा साक्षीदेव पावक (अग्नि)-को नमस्कार करती हूँ। मैं ब्राह्मणोंके उपकारक, ब्रह्मरूपी कृत्तिवासा[1] शरणागतवत्सल परमपदरूप भूतेश वह्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं जगन्मूर्ति, सभी तेजोंके उद्भव-स्थान, महायोगेश्वर, परमेष्ठी, आदित्य और ओकाररूप वह्निदेवकी शरण ग्रहण करती हूँ॥११६—१२०॥

प्रपद्ये शरण रुद्र महाग्रास त्रिशूलिनम्।
कालाग्नि योगिनामीश भोगमोक्षफलप्रदम्॥१२१॥
प्रपद्ये त्वा विरूपाक्ष भूर्भुव स्व स्वरूपिणम्।
हिरण्मये गृहे गुप्त महान्तममितौजसम्॥१२२॥
वैश्वानर प्रपद्येऽह सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
हव्यकव्यवह देव प्रपद्ये वह्निमीश्वरम्॥१२३॥
प्रपद्ये तत्पर तत्त्व वरेण्य सवितु स्वयम्।
भर्गमग्निपर ज्योती रक्ष मा हव्यवाहन॥१२४॥

मैं महाग्रास, त्रिशूली, भोग एव मोक्षरूप फलोके प्रदाता, योगियोके ईश और रुद्रस्वरूप कालाग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं भूर्भुव तथा स्व -स्वरूप, हिरण्मयगृहमें सुगुप्त, विरूपाक्ष तथा अमित तेजस्वी आप महान्‌की शरण ग्रहण करती हूँ। सभी प्राणियामें अवस्थित वैश्वानरको मैं शरण ग्रहण करती हूँ। मैं हव्य तथा कव्यको वहन करनेवाले ईश्वर वह्निदेवकी शरणमे हूँ। मैं उस पर-तत्त्व, वरणीय, साक्षात् सविता और तेजोरूप परम ज्योति अग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। हव्यवाहन! आप मेरी रक्षा करे॥१२१—१२४॥

इति वह्न्यष्टक जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥१२५॥

इस वह्न्यष्टकका जप करके यशस्विनी उन्मीलित नेत्रावाली रामकी पत्नी सीता मनसे रामका ध्यान करती हुई स्थित हो गयीं॥१२५॥

अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वर।
आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा प्रदहन्निव॥१२६॥
सृष्ट्वा मायामयीं सीता स रावणवधेप्सया।
सीतामादाय धर्मिष्ठा पावकोऽन्तरधीयत॥१२७॥
ता दृष्ट्वा तादृशीं सीता रावणो राक्षसेश्वर।
समादाय ययौ लङ्का सागरान्तरसस्थिताम्॥१२८॥

[1] १-'कृत्ति' मृग आदिके चर्मको कहते हैं। अग्नि रुद्रक अश हैं और रुद्र कृत्तिवासा हैं इसलिये अग्निको भी कृत्तिवासा कहते हैं।

कृत्वाथ रावणवध रामो लक्ष्मणसयुत ।
समादायाभवत् सीता शङ्काकुलितमानस ॥ १२९ ॥
सा प्रत्ययाय भूताना सीता मायामयी पुन ।
विवेश पावक दीप्त ददाह ज्वलनोऽपि ताम् ॥ १३० ॥

स्तुति करनके अनन्तर उस आवसथ्य अग्निसे अत्यन्त उद्दीप्त स्वरूपवाले (दुष्ट भाववाले रावणपर क्रुद्ध होनेके कारण) तेजसे जलते हुएके समान भगवान् महेश्वर हव्यवाह प्रकट हो गये। रावणके वधकी इच्छासे मायामयी सीताको उत्पन्नकर वे पावक (अग्निदेव) धर्ममयी सीताको लेकर अन्तर्हित हो गये। धममयी सीता-जैसी ही उस मायामयी सीताको देखकर राक्षसराज रावण उसे ही लेकर सागरके मध्यम स्थित लकाको चला गया। रावणका वध करके (भगवती) सीताको प्राप्तकर लक्ष्मणसहित रामका मन शकायुक्त हो गया। जनसामान्यको विश्वास दिलानेके लिये वह मायासे निर्मित सीता उद्दीप्त अग्निमे प्रविष्ट हो गयीं और अग्निने उन्हे अपनेमे मिला लिया॥ १२६—१३० ॥

दग्ध्वा मायामयीं सीता भगवानुग्रदीधिति ।
रामायादर्शयत् सीता पावकोऽभूत् सुरप्रिय ॥ १३१ ॥
प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्या सा सुमध्यमा ।
चकार प्रणति भूमौ रामाय जनकात्मजा ॥ १३२ ॥

मायामयी सीताको अपनेमे लीन कर लेनेके पश्चात् उग्र किरणावाले भगवान् पावक (अग्नि)-ने रामको (वास्तविक) सीताका दर्शन कराया। इससे 'पावक' दवताआक प्रिय बन गये। सुन्दर मध्यभागवाली उन जनककी पुत्रीने अपने दोनों हाथोमे अपने स्वामी रामके दोनो चरणाको पकडकर भूमिपर प्रणाम किया॥ १३१-१३२ ॥

दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचन ।
ननाम वह्नि शिरसा तोषयामास राघव ॥ १३३ ॥
उवाच वह्नेर्भगवान् किमेषा वरवर्णिनी।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता ॥ १३४ ॥
तमाह देवो लोकाना दाहको हव्यवाहन ।
यथावृत्त दाशरथि भूतानामेव सनिधौ ॥ १३५ ॥

(सीताको) देखकर आश्चर्यचकित नेत्रावाले रघुवशी रामने प्रसन्न-मन हो सिरमे प्रणामकर अग्निको सतुष्ट किया। भगवान् (राम)-ने वह्निसे कहा—मेरे समीपमे आयी यह दिव्यगुणोवाली सीता किस प्रकार पहल आपद्वारा अपनेम लीन की जाती हुई देखी गयी। लोकाको अपनेमे पचा लेनेवाले तथा हव्यको वहन करनेवाले अग्निने उन दशरथ-पुत्र रामसे सभी लोगाकी सनिधिम ही वह सब बताया जो पूर्वम घटित हुआ था॥ १३३—१३५ ॥

इय सा मिथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम्।
आराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ॥ १३६ ॥
भर्तु शुश्रूषणोपेता सुशीलेय पतिव्रता।
भवानीपार्श्वमानीता मया रावणकामिता ॥ १३७ ॥
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवताहृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधाय सा ॥ १३८ ॥
तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वर ।
मयोपसहृता चैव हतो लोकविनाशन ॥ १३९ ॥
गृहाण विमलामेना जानकीं वचनान्मम।
पश्य नारायण देव स्वात्मान प्रभवाव्ययम् ॥ १४० ॥

मिथिलानरेश जनकने तपद्वारा रुद्रप्रिया पार्वतीकी आराधनाकर देवीकी अत्यन्त प्रिय जिन सीताको पुत्रीरूपम प्राप्त किया था उन पतिसेवापरायणा सुन्दर शीलवाली पतिव्रताको रावण चाह रहा है जब मैंने यह जाना तब उन्हे (भगवती सीताको) मैं पार्वतीके पास ले आया और राक्षसराज रावणद्वारा ले जाया गयी जिन सीताको आपने प्राप्त किया उन्हे मैंने रावणके वधके लिये मायासे निर्मित किया था उन्हीके लिये आपने लोकोका विनाश करनेवाले दुष्ट राक्षसराज रावणको मारा तथा मैंने उन्हीं मायामयी सीताको उपसहृत (अपनेम लीन) कर लिया है। मेरे कहनेसे आप इन विशुद्ध जानकीको ग्रहण कर और अपने-आपको प्रभव, अव्यय नारायण देवके रूपमे देख॥ १३६—१४० ॥

इत्युक्त्वा भगवाश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुख ।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ॥ १४१ ॥
एतत् पतिव्रताना वै माहात्म्य कथित मया।
स्त्रीणा सर्वाघशमन प्रायश्चित्तमिद स्मृतम् ॥ १४२ ॥
अशेषपापयुक्तस्तु पुरुषोऽपि सुसयत ।
स्वदेह पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ १४३ ॥

पृथिव्या सर्वतीर्थेपु स्नात्वा पुण्येपु वा द्विज ।
मुच्यते पातकै सर्वै समस्तैरपि पूरुष ॥१४४॥

ऐसा कहकर सभी ओर शिखा (ज्वाला) तथा सभी ओर मुखवाले भगवान् प्रचण्ड (अमित तेजारूप) अग्निदेव राघव (राम) तथा अन्य लोगाद्वारा सम्मानित होकर अन्तर्धान हो गये। यह मैंने आप लोगाको पतिव्रताआका माहात्म्य बताया। इसे स्त्रियोके समस्त पापोको नष्ट करनेवाला प्रायश्चित्त कहा गया है। सम्पूर्ण पापोसे युक्त पुरुष भी भलीभाँति सयत होकर पुण्यतीर्थोमे अपना शरीर त्याग करके पापसे मुक्त हो जाता है। अथवा पृथ्वीके सभी पुण्य तीर्थोमे स्नान करनेसे द्विज पुरुष समस्त सञ्चित पापोसे मुक्त हा जाता है॥ १४१—१४४॥

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माक कथितो मया।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोग च शाश्वतम्॥१४५॥
योऽनेन विधिना युक्त ज्ञानयोग समाचरेत्।
स पश्यति महादेव नान्य कल्पशतैरपि॥१४६॥
स्थापयेद् य पर धर्मं ज्ञान तत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोक स योगी परमो मत ॥१४७॥
य सस्थापयितु शक्तो न कुर्यान्मोहितो जन ।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रिय ॥१४८॥
तस्मात् सदैव दातव्य ब्राह्मणेपु विशेपत ।
धर्मयुक्तपु शान्तेपु श्रद्धया चान्वितेपु वै॥१४९॥
य पठेद् भवता नित्य सवाद मम चैव हि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमा गतिम्॥१५०॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार आप लोगासे मैंने इस मानवधर्मका और महेश्वरकी आराधनाके लिये सनातन ज्ञानयोगका वर्णन किया। जो इस विधिस युक्त होकर ज्ञानयोगका पालन करता है, वह महादेवका दर्शन करता है। दूसरा व्यक्ति सैकडो कल्पाम भी उनका दर्शन नहीं कर सकता। जो इस परम धर्म और परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञानकी स्थापना (अधिकारी लोगामे प्रतिष्ठा) करता है, ससारमे उससे बढकर और काई नही है, उसे श्रेष्ठ योगी माना गया है। इसकी स्थापना करनेमे समर्थ होनेपर भी जो व्यक्ति मोहवश धर्म एव ज्ञानकी स्थापना नहीं करता, वह योगसम्पन्न मुनि होनेपर भी भगवान्‌का अत्यन्त प्रिय नहीं होता। इसलिये सदा ही विशेप-रूपसे धर्मयुक्त शान्त और श्रद्धासम्पन्न ब्राह्मणोको इसका उपदेश करना चाहिये। जो मेरे एव आपक बीच हुए इस सवादको नित्य पढेगा, वह सभी पापास मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करेगा॥ १४५—१५०॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणाना च सनिधौ।
पठेत नित्य सुमना श्रोतव्य च द्विजातिभि ॥१५१॥
योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद् ब्राह्मणान् शुचीन्।
स दोपकञ्चुक त्यक्त्वा याति देव महेश्वरम्॥१५२॥

श्राद्धमे अथवा देवकार्य—पूजा आदिमे और ब्राह्मणोक सम्मुख प्रसन्न-मनसे नित्य इसका पाठ करना चाहिय तथा द्विजातियाको इसे सुनना चाहिये। जो योगात्मा इसके अर्थका विचारकर पवित्र ब्राह्मणोको इसे सुनाता है, वह दोपरूपी कञ्चुक (आवरण)-का परित्याग कर भगवान् महेश्वरको प्राप्त करता है॥ १५१-१५२॥

एतावदुक्त्वा भगवान् व्यास सत्यवतीसुत ।
समाश्वास्य मुनीन् सूत जगाम च यथागतम्॥१५३॥

इतना कहनेके बाद सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यास मुनिया तथा सूतजीको आश्वासन प्रदानकर जैसे आये थे वैसे ही चल गये॥ १५३॥[१]

इति श्रीकूर्मपुराणे पट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे त्रयस्त्रिशोऽध्याय ॥३३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३३॥
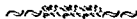
१(क)-इस अध्यायम आये प्राय सभी पारिभाषिक शब्दोंका अर्थ इस उपरिविभागके पिछले अध्याय १६वें एव १७वमें किया गया है।

(ख)-इस अध्यायम निर्दिष्ट चान्द्रायण सातपन प्राजापत्य कृच्छ्र आदि व्रतोंका स्वरूप यहाँ विस्तारके भयसे नहीं लिखा जा रहा है। यह याज्ञवल्क्यस्मृति प्रायश्चित्ताध्यायके अन्तम तथा अन्य स्मृतिया एव निबन्धग्रन्थाम द्रष्टव्य है।

चौंतीसवाँ अध्याय

तीर्थ-माहात्म्यप्रकरणमे प्रयाग, गया, एकाम्र तथा पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, सप्तसारस्वत-तीर्थके वर्णनमे शिवभक्त मङ्कणक मुनिका आख्यान

ऋषय ऊचु

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन् विश्रुतानि महान्ति च।
तानि त्व कथयास्माक रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १॥

ऋषियोने कहा—रोमहर्षण! अब आप हमे इस ससारमे जो महान् तथा प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उन्हे बतलाये॥ १॥

रोमहर्षण उवाच

शृणुध्व कथयिष्येऽह तीर्थानि विविधानि च।
कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभि ॥ २॥
यत्र स्नान जपो होम श्राद्धदानादिक कृतम्।
एकैकशा मुनिश्रेष्ठा पुनात्यासप्तम कुलम्॥ ३॥

रोमहर्षण बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! आप लोग सुने, मैं पुराणामें ब्रह्मवादी मुनियाद्वारा बताये गये विविध तीर्थोको बताऊँगा जिनमें एक बार भी किया गया स्नान, जप होम श्राद्ध तथा दान आदि कर्म सात कुलोको पवित्र कर दता हैं॥ २-३॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रयाग प्रथित तीर्थं तस्य माहात्म्यमीरितम्॥ ४॥
अन्यच्च तीर्थप्रवर कुरूणा देववन्दितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्ट सर्वपापविशोधनम्॥ ५॥
तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जित ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयत कुलम्॥ ६॥

परमेष्ठी ब्रह्मका पाँच योजनमे फैला हुआ प्रयाग नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, उसका माहात्म्य बतलाया जा चुका है। दूसरा कुरुआका श्रेष्ठ तीर्थ (कुरुक्षेत्र) है जो देवताओंद्वारा वन्दित ऋषियोंके आश्रमासे परिपूर्ण और सभी पापोंकी शुद्धि करनेवाला है। वहाँ स्नान करके विशुद्धात्मा व्यक्ति दम्भ और मात्सर्यसे रहित होकर जो कुछ भी दान करता है, उससे वह दोनों (माता-पिताके) कुलोको पवित्र करता है॥ ४—६॥

गयातीर्थं पर गुह्य पितॄणा चातिवल्लभम्।
कृत्वा पिण्डप्रदान तु न भूयो जायते नर ॥ ७॥
सकृद् गयाभिगमन कृत्वा पिण्ड ददाति य।
तारिता पितरस्तेन यास्यन्ति परमा गतिम्॥ ८॥
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना।
शिलातले पद न्यस्त तत्र पितॄन् प्रसादयेत्॥ ९॥
गयाभिगमन कर्तुं य शक्तो नाभिगच्छति।
शोचन्ति पितरस्त वै वृथा तस्य परिश्रम ॥ १०॥

गया नामक परम गुह्य तीर्थ पितरोको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पिण्डदान करके मनुष्यका पुन जन्म नहीं होता। जो एक बार भी गया जाकर पिण्डदान करता है उसके द्वारा तारे गये पितर (नरक आदि कष्टप्रद लोकोंसे मुक्त होकर) परम गतिको प्राप्त करते हैं। वहाँ (गयामे) ससारके कल्याणकी कामनासे परमात्मा रुद्रने शिलातलपर चरण (-का चिह्न) स्थापित किया है। वहाँपर पितरोको (पिण्डदान आदिद्वारा) प्रसन्न करना चाहिये। गयाकी यात्रा करनम समथ हानेपर भी जो वहाँ नहीं जाता उसके सम्बन्धमें पितर शोक करते हैं उसका (अन्य सभी) परिश्रम व्यर्थ ही होता है॥ ७—१०॥

गायन्ति पितरो गाथा कीर्तयन्ति महर्षय ।
गया यास्यति य कश्चित् सोऽस्मान् सतारयिष्यति॥ ११॥
यदि स्यात् पातकापेत स्वधर्मरतिवर्जित ।
गया यास्यति वश्यो य सोऽस्मान् सतारयिष्यति॥ १२॥
एष्टव्या बहव पुत्रा शीलवन्तो गुणान्विता ।
तेषा तु समवेताना यद्येकोऽपि गया व्रजेत्॥ १३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषत ।
प्रदद्याद् विधिवत् पिण्डान् गया गत्वा समाहित ॥ १४॥
धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयाया पिण्डदायिन ।
कुलान्युभयत सप्त समुद्धृत्याप्नुयात् परम्॥ १५॥

पितर इस गाथाका गान करते हैं और महर्षि इसका कीर्तन करते हैं कि जो कोई भी गया जायगा वही हमें तारेगा अर्थात् असद्गतिसे मुक्त करेगा। मेरे वशमें उत्पन्न व्यक्ति किसी कारण भले ही पापयुक्त हो स्वधर्ममे निष्ठा न रखता हो, तब भी यदि गया-तीर्थकी यात्रा करेगा तो वह हम लोगाका तारक होगा। शीलवान् तथा गुणवान् बहुतसे पुत्रोकी अभिलाषा करनी चाहिये क्योकि उन सभीमेसे कोई एक तो गया जायगा। इसलिये सभी प्रयत्नोंके द्वारा विशेषरूपसे ब्राह्मणको तो गया जाकर समाहित-मनसे विधिवत् पिण्डदान करना चाहिये। वे मनुष्य धन्य हैं जो गयामें पिण्डदान करते हैं। व दोनों (माता-पिताके) कुलकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर स्वय भी परमगति प्राप्त करते हैं॥ ११—१५॥

अन्यच्च तीर्थप्रवर सिद्धावासमुदाहृतम्।
प्रभासमिति विख्यात यत्रास्ते भगवान् भव ॥१६॥
तत्र स्नान तप श्राद्ध ब्राह्मणाना च पूजनम्।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्रह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम्॥१७॥
तीर्थं त्रैयम्बक नाम सर्वदेवनमस्कृतम्।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफल लभेत्॥१८॥
सुवर्णाक्ष महादेव समभ्यर्च्य कपर्दिनम्।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु गाणपत्य लभेद् ध्रुवम्॥१९॥
सोमेश्वर तीर्थवर रुद्रस्य परमेष्ठिन ।
सर्वव्याधिहर पुण्य रुद्रसालोक्यकारणम्॥२०॥

अन्य प्रभास नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ तीर्थ है, जिसे सिद्धोका निवास-स्थान बतलाया गया है। वहाँ भगवान् भव (शकर) स्थित हैं। वहाँ स्नान, तप, श्राद्ध तथा ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे ब्रह्माके अक्षय्य और उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। त्रैयम्बक नामक तीर्थ सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत है। वहाँ रुद्रकी आराधना करनेसे ज्योतिष्टोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ कपर्दी तथा सुवर्णाक्ष महादेवकी भलीभाँति आराधना करने तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे निश्चय ही गाणपत्य-पदकी प्राप्ति होती है। परमेष्ठी रुद्रका सोमेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ सभी प्रकारकी व्याधियोका हरण करनेवाला, पवित्र तथा रुद्रलोककी प्राप्ति करानेका साधन है॥१६—२०॥

तीर्थाना परम तीर्थं विजय नाम शोभनम्।
तत्र लिङ्ग महेशस्य विजय नाम विश्रुतम्॥२१॥
षण्मासान् नियताहारो ब्रह्मचारी समाहित ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परम पदम्॥२२॥
अन्यच्च तीर्थप्रवर पूर्वदेशे सुशोभनम्।
एकाम्र देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम्॥२३॥
दत्त्वात्र शिवभक्ताना किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम्।
सार्वभौमो भवेद् राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात्॥२४॥
महानदीजल पुण्य सर्वपापविनाशनम्।
ग्रहणे समुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकै ॥२५॥

विजय नामका एक सुन्दर तीर्थ है जो तीर्थोमे श्रेष्ठ है। वहाँ महेश्वरका विजय नामक प्रसिद्ध लिङ्ग है। वहाँपर छ महीनेतक सयत आहार करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रत धारणकर, एकाग्र-मनसे उपवास कर श्रेष्ठ ब्राह्मण परम पद प्राप्त करते हैं। पूर्व दिशामे अत्यन्त सुन्दर एक दूसरा एकाम्र नामक श्रेष्ठ तीर्थ है जो देवाधिदेव (शकर)-के गाणपत्यपदरूपी फलको प्रदान करनेवाला है। वहाँ शिवभक्तोको थोडी-सी भी स्थिर तथा सुन्दर भूमि दान करनेसे (दाता) चक्रवर्ती सम्राट् होता है और मोक्षकी इच्छा रखनेवाला मोक्ष प्राप्त करता है। वहाँ महानदीका जल पवित्र और सभी पापोको नष्ट करनेवाला है, ग्रहणके समय उसका स्पर्श (स्नान आदि) करनेसे सभी पातकोसे मुक्ति हो जाती है॥२१—२५॥

अन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
तस्या स्नात्वा नरो विप्रा ब्रह्मलोके महीयते॥२६॥
तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पुरुषोत्तमम्।
तत्र नारायण श्रीमानास्ते परमपूरुष ॥२७॥
पूजयित्वा पर विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तम ।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥२८॥
तीर्थाना परम तीर्थं गोकर्णं नाम विश्रुतम्।
सर्वपापहर शम्भोर्निवास परमेष्ठिन ॥२९॥
दृष्ट्वा लिङ्ग तु देवस्य गोकर्णेश्वरमुत्तमम्।
ईप्सिताँल्लभते कामान् रुद्रस्य दयितो भवेत्॥३०॥
उत्तर चापि गोकर्णं लिङ्ग देवस्य शूलिन ।
महादेवस्यार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥३१॥

विप्रो! दूसरी विरजा नामकी एक नदी है जो तीनो लोकोमें विख्यात है, उसमे स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकम पूजित होता है। नारायणका पुरुषोत्तम नामक एक दूसरा तीर्थ है, वहाँ परम पुरुष श्रीमान् नारायण निवास करते हैं। वहाँ स्नान करके श्रेष्ठ विष्णुकी अर्चना और ब्राह्मणोकी पूजा करनेसे द्विजोत्तम विष्णुलोक प्राप्त करता है। सभी पापोको हरनेवाला तीर्थोंमे श्रेष्ठ गोकर्ण नामका एक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ परमेष्ठी शम्भुका निवास है। वहाँ देव (शकर)-के गोकर्णेश्वर नामक उत्तम लिङ्गका दर्शनकर मनुष्य अभीप्सित कामनाओको प्राप्त करता है और रुद्रका प्रिय होता है। उत्तर गोकर्णमे भी त्रिशूलधारी शकर महादेवका लिङ्ग है। उसकी अर्चनासे शिव-सायुज्यकी प्राप्ति होती है॥२६—३१॥

तत्र देवो महादेव स्थाणुरित्यभिविश्रुत ।
त दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते तत्क्षणान्नर ॥३२॥
अन्यत् कुब्जाम्रमतुल स्थान विष्णोर्महात्मन ।
सम्पूज्य पुरुष विष्णु श्वेतद्वीपे महीयते॥३३॥
यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
कृत्वा यज्ञस्य मथन दक्षस्य तु विसर्जित ॥३४॥

[अध्याय ३४वे का शेष]

साऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये।
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत्॥ ४९॥
पश्येमं मच्छरीरात्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम।
माहात्म्यमेतत् तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते॥ ५०॥
यत् सगर्वं हि भवता नर्तितं मुनिपुंगव।
न युक्तं तापसस्यैतत् त्वत्तोऽप्यत्राधिको ह्यहम्॥ ५१॥

तब भगवान् शंकर उन्हें गर्वयुक्त देखकर उनके गर्वको दूर करनेके लिये अपने शरीरको विदीर्ण कर (उससे निकलती हुई) भस्मराशि उन्हें दिखलायी (और कहा)—हे द्विजोत्तम! मेरे शरीरसे निकलती हुई इस भस्मराशिको देखो। यह तपस्याका माहात्म्य है। आपके समान दूसरा भी है। मुनिपुंगव! आप (तपस्याके) गर्वसे गर्वित होकर नृत्य कर रहे हैं यह एक तपस्वीके लिये उचित नहीं है मैं आपसे भी अधिक (नृत्यकलामें कुशल—बड़ा तपस्वी) हूँ॥ ४९—५१॥

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रः किल विश्वदृक्।
आस्थाय परमं भावं ननर्त जगतो हरः॥ ५२॥
सहस्रशीर्षा भूत्वा सहस्राक्षः सहस्रपात्।
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयंकरः॥ ५३॥
सोऽन्वपश्यदथेशस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः।
विशाललोचनामेकां देवीं चारुविलासिनीम्।
सूर्यायुतसमप्रख्यां प्रसन्नवदनां शिवाम्॥ ५४॥
सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तीममितद्युतिम्।
दृष्ट्वा संत्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः।
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायं जपन् वशी॥ ५५॥

मुनिश्रेष्ठ (मङ्कणक)-से ऐसा कहकर वे विश्वद्रष्टा तथा संसारके संहारक रुद्र परम भावमें स्थित होकर नृत्य करने लगे। (वे रुद्र) हजारों सिर, हजारों आँखें और हजारों पैरोंवाले भयंकर [illegible] युक्त मुखवाले ज्वालामालाओंसे [illegible] तथा [illegible] हो गये। तदनन्तर उन मङ्कणकने उन [illegible] (विराट् [illegible]) त्रिशूलधारी [illegible] पार्श्व [illegible] विशाल नेत्रोंवाली सुन्दर [illegible] हजारों सूर्योंके [illegible] और प्रसन्न मुखवाली [illegible] देवी [illegible]। मुसकराते हुए विश्वेश (शिव) तथा अमित द्युतिसम्पन्न (शिवा) [illegible] मुनीश्वर (मङ्कणक) [illegible] [illegible] हो [illegible] और [illegible] (अपने [illegible]) [illegible] [illegible] ॥ ४९—५५॥

प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः।
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्॥ ५६॥
आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः।
न भेतव्यं त्वया वत्स प्राह किं ते ददाम्यहम्॥ ५७॥

उन भक्तवत्सल त्र्यम्बक भगवान् शिवने प्रसन्न होकर अपना पूर्वरूप धारण किया और देवी अन्तर्हित हो गयीं। साक्षात् देवाधिदेव शिवने शरणागत भक्तका आलिङ्गनकर कहा—वत्स! तुम डरो मत! मैं तुम्हें क्या प्रदान करूँ?॥ ५६-५७॥

प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्।
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः॥ ५८॥
नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते।
किमेतद् भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम्॥ ५९॥
का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता।
अन्तर्हितेव सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम्॥ ६०॥

तब प्रसन्न मुनि (मङ्कणक)-ने त्रिपुरका नाश करनेवाले गिरिश हरको सिरसे प्रणामकर पूछनेकी इच्छासे कहा—महादेव! आपको नमस्कार है। महेश्वर! आपको नमस्कार है। सभी ओर मुखवाला आपका यह भयंकर कौन-सा रूप है? और आपके पार्श्वभागमें स्थित होकर सुशोभित होनेवाली ये देवी कौन हैं? जो सहसा अन्तर्धान हो गयीं। मैं सब कुछ जानना चाहता हूँ॥ ५८—६०॥

इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदा मङ्कणकं हरः।
महेशः स्वात्मनो योगं देवीं च त्रिपुरानलः॥ ६१॥
अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
दाहकः सर्वपापानां कालः कालकरो हरः॥ ६२॥
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः॥ ६३॥
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी॥ ६४॥
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्ववित्।
नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः॥ ६५॥
एवमेतज्जगत् सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्।
योजयामि प्रकृत्याऽहं पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ६६॥

(मङ्कणकके) इतना कहनेपर त्रिपुरान्तक महेश्वर हरने [illegible] अपने योग तथा [illegible] का [illegible] किया। मैं [illegible] [illegible] सभी और मुखवाला, सभी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हूँ। मैं

द्वारा ही समस्त चेतन एव अचेतन-स्वरूप (जगत्) प्रवृत्त किया जाता है। मैं ही वह अन्तर्यामी और मैं ही वह पुरुष तथा पुरुषात्तम हूँ, जिसकी त्रिगुणात्मिका प्रकृति-रूप परम माया मुनियोंके द्वारा सनातनी शक्ति और जगत्का मूल कारण कही जाती है। मैं वही सर्वज्ञ (पुरुष) हूँ जा मायाद्वारा विश्वका व्यामाहित करता है और जिसे श्रुति नारायण पर अव्यक्त तथा मायारूप कहती ह। मैं इसी प्रकार सदा इस जगत्की स्थापना करता हूँ। मैं प्रकृतिसे उस पुरुषको सयुक्त करता हूँ (जा पचीस तत्त्वाम एक मात्र चतन प्रमुख तत्त्व है।) ॥ ६१—६६ ॥

तथा वै सगतो दव कूटस्थ सर्वगोऽमल ।
सृजत्यशेषमेवेद स्वमूर्ते प्रकृतेरज ॥ ६७ ॥
स देवा भगवान् ब्रह्मा विश्वरूप पितामह ।
तवैतत् कथित सम्यक् स्त्रष्टत्व परमात्मन ॥ ६८ ॥
एकोऽह भगवान् कालो ह्यनादिश्चान्तकृद् विभु ।
समास्थाय पर भाव प्रोक्ता रुद्रा मनीषिभि ॥ ६९ ॥

इस प्रकार यह दव (चेतन) कूटस्थ (निर्विकार) सर्वत्र विद्यमान, निर्मल नित्य-पुरुष अपनी हा मूर्ति 'प्रकृति'से सगत होकर समस्त जगत्की सृष्टि करता ह। इसी पुरुषको दव भगवान्, ब्रह्मा विश्वरूप एव पितामहक रूपम समझना चाहिये। इस प्रकार मैंने आपको भलीभाँति परमात्माके सृष्टिकर्तृत्वको बतलाया। मैं अद्वितीय अनादि सहार करनेवाला विभु तथा भगवान् काल हूँ। परम भावका आश्रय ग्रहण करनेपर मनाषी लोग मुझे रुद्र कहत हैं ॥ ६७—६९ ॥

मम वै सापरा शक्तिर्देवी विद्यति विश्रुता।
दृष्टा हि भवता नून विद्यादेहस्त्वह तत ॥ ७० ॥
एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरा ।
विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान् रुद्र काल इति श्रुति ॥ ७१ ॥
त्रयमेतदनाद्यन्त ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्।
तदात्मक तदव्यक्त तदक्षरमिति श्रुति ॥ ७२ ॥
आत्मानन्दपर तत्त्व चिन्मात्र परम पदम्।
आकाश निष्कल ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ॥ ७३ ॥
एव विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयण तु।
सम्पूज्यो वन्दनीयोऽह ततस्त पश्य शाश्वतम् ॥ ७४ ॥

मेरी ही अपरा शक्ति विद्यादेवीके नामसे प्रसिद्ध हे। मरे विद्या-रूप देहका और मरा आपने दर्शन किया ह। इस प्रकार ये सभी तत्त्व प्रधान, पुरुष आर ईश्वररूप हैं। श्रुतिन इन्ह ही विष्णु, ब्रह्मा और कालरूप भगवान् रुद्र कहा है। य तीना ही अनादि तथा अनन्त ब्रह्मम ही स्थित हैं। अत श्रुतिका कथन ह कि य तीना दव तदात्मक (परमपुरुष ईश्वररूप) वही अव्यक्तरूप वही अक्षररूप आत्मानन्दस्वरूप परमतत्त्व चिन्मात्र आर परम पदरूप हैं आकाशरूप एव निष्कल ब्रह्म हैं। वास्तवम परमतत्त्व ईश्वरक अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। एसा जानकर आपका भक्तियागका अवलम्बन लकर मेरी पूजा तथा वन्दना करनी चाहिय। तदनन्तर आपका उस शाश्वत (पुरुष)-के दर्शन हाग ॥ ७१—७४ ॥

एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शन हर ।
तत्रैव भक्तियागेन रुद्रमाराधयन्मुनि ॥ ७५ ॥
एतत् पवित्रमतुल तीर्थ ब्रह्मर्षिसवितम्।
ससव्य ब्राह्मणो विद्वान् मुच्यते सर्वपातकै ॥ ७६ ॥

इतना कहकर भगवान् हर अदृश्य हो गये। मुनि (मङ्कणक) वहीं (सप्तसारस्वत तीर्थ)-पर भक्तियोगक द्वारा रुद्रकी आराधना करने लग। यह अतुलनीय पवित्र तीर्थ ब्रह्मर्षियाद्वारा सेवित है। इसका सेवनकर विद्वान् ब्राह्मण सभी पातकासे मुक्त हो जाता है ॥ ७५-७६ ॥

इति श्रीकूर्मपुराण षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभाग चतुस्त्रिशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लाकावाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे चातीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥
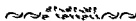
पैंतीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमे विविध तीर्थोका माहात्म्य, कालञ्जर तीर्थकी महिमाके वर्णनके प्रसगम शिवभक्त राजा श्वेतकी कथा

सूत उवाच

अन्यत् पवित्र विपुल तीर्थ त्रलाक्यविश्रुतम्।
रुद्रकोटिरिति ख्यात रुद्रस्य परमष्ठिन ॥ १ ॥
पुरा पुण्यतम काल दवदर्शनतत्परा ।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्त दशमगमन् परम् ॥ २ ॥
अह द्रक्ष्यामि गिरिश पूर्वमव पिनाकिनम्।
अन्याऽन्य भक्तियुक्ताना व्याघाता जायत किल ॥ ३ ॥

सूतजीन कहा—परमष्ठी रुद्रका रुद्रकाटि नामक एक दूसरा

महान् पवित्र तीर्थ है जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। पूर्वकालमें किसी पवित्र समयमें देव-दर्शनके लिये उत्सुक एक करोड़ इन्द्रियजयी ब्रह्मर्षि उस श्रेष्ठ स्थानपर गये। उन भक्तियुक्त महर्षियोंमें यह महान् विवाद उत्पन्न हो गया कि सबसे पहले मैं ही पिनाकी गिरिशका दर्शन करूँगा॥ १—३॥

तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः।
कोटिरूपोऽभवद् रुद्रो रुद्रकोटिस्ततः स्मृतः॥ ४॥
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम्।
पश्यन्तः पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्॥ ५॥
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम्।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्॥ ६॥
अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम्।
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परं पदम्॥ ७॥
एतत् सदेशाध्युषितं तीर्थं पुण्यतमं शुभम्।
दृष्ट्वा रुद्रं समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ८॥

तब उनकी (विशेष) भक्तिको देखकर योगियोंके गुरु गिरिश रुद्र करोड़ों रूपोंमें हो गये तभीसे वे रुद्रकोटिके नामसे स्मरण किये जाने लगे। पर्वतकी गुहाके मध्य स्थित पार्वतीनाथ उन महादेव हरका दर्शनकर वे सभी हृष्ट-पुष्ट बुद्धिवाले हो गये। और मैंने ही सबसे पहले अनादि-अनन्त महादेव ईश्वरका दर्शन किया है इस प्रकार समझकर वे भक्ति-भावपूर्वक रुद्रपरायण बुद्धिवाले हो गये। तदनन्तर परम पदकी अभिलाषा रखनेवाले उन सभीने वहीं अन्तरिक्षमें महान्-से-महान् विशुद्ध ज्योतिका दर्शन किया। यह देश (रुद्रद्वारा) निवास किया हुआ पुण्यतम शुभ तीर्थ है। यहाँ रुद्रका दर्शनकर और उनकी सम्यक् आराधना कर रुद्रका सामीप्य (सामीप्य नामक मोक्ष) प्राप्त होता है॥ ४—८॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं स्मृतम्।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥ ९॥
अथान्यत् पुष्पनगरी देशः पुण्यतमः शुभः।
तत्र गत्वा पितॄन् पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्॥ १०॥

एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो मधुवन नामसे कहा जाता है नियमपूर्वक वहाँ जानेवाला (निवास करनेवाला) इन्द्रका अर्धासन प्राप्त करता है। एक अन्य पुष्पनगरी नामक देश पुण्यतम तथा शुभ है। वहाँ जाकर पितरोंकी पूजा करनेसे व्यक्ति सौ कुलोंको तार देता है॥ ९-१०॥

कालञ्जरं महातीर्थं लोके रुद्रो महेश्वरः।
कालं जरितवान् देवो यत्र भक्तप्रियो हरः॥ ११॥
श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा।
तदाशीस्तन्नमस्कारैः पूजयामास शूलिनम्॥ १२॥
संस्थाप्य विधिना लिङ्गं भक्तियोगपुरःसरम्।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानसः॥ १३॥
सितं कालोऽथ दीप्तात्मा शूलमादाय भीषणम्।
नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति॥ १४॥

इस लोकमें कालञ्जर नामका एक महातीर्थ है जहाँ भक्तोंके प्रिय महेश्वर रुद्र हरने कालको जीर्ण किया था। प्राचीन कालमें श्वेत नामक एक श्रेष्ठ राजर्षि थे जो शिवके भक्त थे। उन्होंने त्रिशूली (रुद्र)-की भक्ति करते हुए उन्हें ही नमस्कार करते हुए उनकी पूजा की। विधिपूर्वक शिवलिङ्गकी स्थापना कर भक्तियोगपूर्वक वहाँ वे उन्हीं (रुद्र)-में मन लगाते हुए निरन्तर उनका जप करने लगे। वे राजा (श्वेत) जिस स्थानपर थे कुछ समय बाद वहाँ भयंकर शूल लिये हुए प्रदीप्त स्वरूपवाला काल उन्हें अपने देश ले जानेके लिये आया॥ ११—१४॥

वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम्।
कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीधितिम्॥ १५॥
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वासौ लिङ्गमैश्वरम्।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम्॥ १६॥
जपन्तमाह राजानं नमन्तमसकृद् भवम्।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव॥ १७॥
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः।
एकमीशार्चनरतं विहायान्यं निषूदय॥ १८॥

हाथमें शूल लिये हुए, मृत्युजनक, घोर भीषण, उग्र किरणोंवाले उस कालको आया हुआ देखकर राजा (श्वेत) भयभीत हो गये। उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे ईश्वरके लिङ्गका स्पर्श करते हुए सिरसे उनको प्रणाम किया और शतरुद्रियका जप करने लगे। जप कर रहे तथा बार-बार भवको प्रणाम कर रहे राजासे उनके सामने खड़े होकर कृतान्त (काल)-ने हँसते हुए 'आओ' 'आओ' इस प्रकारसे कहा। भयसे व्याकुल रुद्रपरायण राजाने उससे कहा—एकमात्र ईशकी आराधनामें रत व्यक्तिको छोड़कर अन्यको मारो॥ १५—१८॥

इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद् भीतमानसम्।
रुद्रार्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति॥ १९॥
एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः।
बबन्ध पाशै राजापि जजाप शतरुद्रियम्॥ २०॥

इस प्रकार कह रहे भयभीत मनवाले राजासे भगवान् (काल)-ने कहा—चाहे रुद्रकी आराधना करनेवाला हो या अन्य कोई हो मेरे वशमें नहीं है अर्थात् सभी मेरे कालके वशमें हैं। ऐसा कहकर लोकसंहारक वह काल राजाको पाशोंके द्वारा बाँधने लगा और राजा शतरुद्रियका जप करने लगे॥ १९-२०॥

अथान्तरिक्षे विमल दीप्यमान
तेजोराशि भूतभर्तु पुराणम्।
ज्वालामालासवृत व्याप्य विश्व
प्रादुर्भूत सस्थित सददर्श॥ २१॥
तन्मध्यऽसौ पुरुष रुक्मवर्ण
देव्या देव चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्।
तेजोरूप पश्यति स्मातिहृष्टो
मेने चास्मन्नाथ आगच्छतीति॥ २२॥

अनन्तर राजा श्वेतने समस्त प्राणियाके अधिपति महादेव रुद्रकी तजाराशिको देखा। यह तेजोराशि आकाशम अकस्मात् उत्पन्न हुई थी तथा वहीं विद्यमान थी। यह अतिनिर्मल स्वत प्रकाशमान शाश्वत ज्वालामाला (प्रभामण्डल)-से आवृत और समस्त विश्वमें व्याप्त थी। उस (तेज समूह)-के मध्य देवीके साथ स्वर्णिम वर्णवाले चन्द्रलेखा-सी उज्ज्वल अङ्गवाले तेजोमय पुरुषको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होने समझा कि ये मेरे नाथ आ रहे हैं॥ २१-२२॥

आगच्छन्त नातिदूरेऽथ दृष्ट्वा
कालो रुद्र देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरखिलशैकनाथ
राजर्षिस्त नेतुमभ्याजगाम॥ २३॥
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराण।
एक भक्त मत्पर मा स्मरन्त
देहीतीम कालमूचे ममेति॥ २४॥

तदनन्तर सम्पूर्ण ईशाके एकमात्र स्वामी महेश्वर रुद्रको महादवीक साथ समीपम ही आते हुए देखकर राजर्षि भयरहित हो गय (तथापि) काल उन्ह लेने आया। प्राणियाके स्वामी, पुराण तथा उग्रकर्मा भगवान् रुद्रदेवन यह देखकर कालस कहा—मर शरणागत तथा मरा स्मरण कर रह इस मेरे भक्तको मुझे दे दो॥ २३-२४॥

श्रुत्वा वाक्य गोपतेरुग्रभाव
कालात्मासौ मन्यमान स्वभावम्।
बद्ध्वा भक्त पुनरेवाथ पाशै
क्रुद्धो रुद्रमभिदुद्राव वेगात्॥ २५॥
प्रेक्ष्यायान्त शैलपुत्रीमथेश
सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञ।
सावज्ञ वै वामपादेन मृत्यु
श्वेतस्यैन पश्यतो व्याजघान॥ २६॥
ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातित।
रराज देवतापति सहोमया पिनाकधृक्॥ २७॥

गोपति (इन्द्रिया एव वाणीके स्वामी)-के वाक्यको सुनकर वह उग्रभाववाला क्रुद्ध कालात्मा अपने स्वभावपर गर्व करते हुए पुन उस (शिव) भक्तको पाशोसे बाँधकर वेगपूर्वक रुद्रकी ओर दौड़ा। तब उसे (काल-मृत्यु) आता हुआ देखकर विश्वमायाके विधानका जाननेवाले शकरने शैलपुत्रीकी ओर देखते हुए उस (श्वेत)-के देखते-देखते अवज्ञापूर्वक अपने बाँये पैरसे मृत्यु (काल)-को मार दिया। महेश्वरके पादसे आहत होकर अति भयकर वह (काल) मर गया तथा पिनाक धारण करनेवाले देवताओके पति महेश्वर पार्वतीके साथ भक्त राजा श्वेतकी रक्षा कर लेनेके कारण प्रसन्न हो गये॥ २५—२७॥

निरीक्ष्य देवमीश्वर प्रहृष्टमानसो हरम्।
ननाम साम्बमव्यय स राजपुगवस्तदा॥ २८॥

(भक्तवत्सल महादेव रुद्रके अनुग्रहसे) प्रसन्न-मनवाले उस श्रेष्ठ राजाने देव ईश्वर हरको देखकर अम्बासहित उन अव्ययको प्रणाम किया॥ २८॥

नमो भवाय हेतवे हराय विश्वसम्भवे।
नम शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने॥ २९॥
नमो नमो नमोऽस्तु ते महाविभूतये नम।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते॥ ३०॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदु खनाशन।
अनादिनित्यभूतये वराहशृङ्गधारिणे॥ ३१॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नम।
नमो महानटाय ते नमो वृषध्वजाय ते॥ ३२॥

(राजाने प्रार्थना करते हुए कहा—)जगत्‌के कारणरूप और विश्वको उत्पन्न करनेवाले भव एव हरको नमस्कार है। धीमान् शिवको नमस्कार है। मोक्ष प्रदान करनेवालेको नमस्कार है। महाविभूतिस्वरूप आपको नमस्कार है बारबार नमस्कार है। विभागहीन रूपवाले (अखण्डरूप), नराके अधिपति आपको नमस्कार है। प्रणतजनोके दु खाका नाश करनेवाले गणाके ईश्वर! आपको नमस्कार है। अनादि तथा नित्य एश्वर्यसम्पन्न और वराहका श्रृग धारण करनेवालेको नमस्कार है। वृषध्वज! आपका नमस्कार है। कपालकी माला धारण करनेवालेको नमस्कार है। महानट[1]! आपको नमस्कार है, वृषध्वज! आपको नमस्कार है॥ २९—३२॥

अथानुगृह्य शकर प्रणामतत्पर नृपम्।
स्वगाणपत्यमव्यय सरूपतामथो ददौ॥ ३३॥

१ ताण्डवनृत्यके एकमात्र परम अधिष्ठाता महादेव हैं अत ये 'महानट कहे जाते है।

महोमया सपार्षद सराजपुगवो हर ।
मुनीशसिद्धवन्दित क्षणाददृश्यतामगात्॥ ३४॥
काले महेशाभिहते लोकनाथ पितामह ।
अयाचत वर रुद्र सजीवोऽय भवत्विति॥ ३५॥
नास्ति कश्चिदपीशान दोषलशो वृषध्वज।
कृतान्तस्यैव भवता तत्कार्ये विनियोजित ॥ ३६॥
स देवदेववचनाद् देवदेवेश्वरो हर ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत्॥३७॥

प्रणाममे तत्पर (अत्यन्त प्रणत) राजाके ऊपर अनुग्रह करके शकरने उन्हे अपना शाश्वत गाणपत्य-पद तथा अपना स्वरूप प्रदान किया। उमा पार्षद तथा श्रेष्ठ राजा (श्वेत)-के साथ हर (महेश्वर) मुनीशो तथा सिद्धोसे वन्दित होते हुए क्षणभरमे अदृश्य हो गये। महेश्वरके द्वारा कालके मारे जानेपर लोकनाथ पितामह (ब्रह्मा)-ने रुद्रसे इस वरकी याचना की कि यह (काल) जीवित हो जाय। (ब्रह्माने कहा-) ईशान! वृषध्वज! इस कृतान्तका लेशमात्र भी दोष नहीं है। आपने ही इसे उस कार्य (मृत्युके कार्य)-मे नियोजित किया है। देवाधिप (ब्रह्मा)-के कहनेपर उन देवदेवेश्वर विश्वात्मा हरने 'ऐसा ही हो' यह कहा। तब वह काल भी उसी प्रकारका अर्थात् जीवित हो गया॥ ३३—३७॥

इत्येतत् परम तीर्थं कालजरमिति श्रुतम्।
गत्वाभ्यर्च्य महादेव गाणपत्य स विन्दति॥ ३८॥

इस प्रकार यह श्रेष्ठ तीर्थ कालजर इस नामसे विख्यात है। यहाँ जाकर महादेवका आराधना करनेवाला व्यक्ति गाणपत्य-पद प्राप्त करता है॥ ३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३५॥
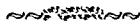
छत्तीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमे विविध तीर्थोकी महिमा, देवदारु-वन-तीर्थका माहात्म्य

सूत उवाच

इदमन्यत् पर स्थान गुह्याद् गुह्यतम महत्।
महादेवस्य देवस्य महालयमिति श्रुतम्॥ १॥
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
शिलातले पद न्यस्त नास्तिकाना निदर्शनम्॥ २॥
तत्र पाशुपता शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहा ।
उपासते महादेव वेदाध्ययनतत्परा ॥ ३॥
स्नात्वा तत्र पद शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुर सरम्।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ४॥

सूतजीने कहा—भगवान् महादेवका एक दूसरा गुह्यसे भी गुह्य महान् श्रेष्ठ स्थान है जो 'महालय' इस नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ त्रिपुरारि तथा देवोके आदिदेव रुद्रने नास्तिकोंके लिये प्रमाणके रूपमे शिलातलपर चरण (का चिह्न) स्थापित किया है। वहाँ समस्त शरीरमे भस्म लगाये हुए, शान्त पशुपतिके भक्तजन वेदाध्ययनमे तत्पर रहकर महादेवकी उपासना करते हैं। उस तीर्थमें स्नानकर भक्तिपूर्वक शकरके पदका दर्शन करके उन्हे सिरसे नमस्कार करनेसे उन रुद्रका सामीप्य प्राप्त होता है॥ १—४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थान शम्भोर्महात्मन ।
केदारमिति विख्यात सिद्धानामालय शुभम्॥ ५॥
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम्।
पीत्वा चैवोदक शुद्ध गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ६॥
श्राद्धदानादिक कृत्वा ह्यक्षय लभत फलम्।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्ट योगिभिर्यतमानसै ॥ ७॥

देवाधिदेव महात्मा शम्भुका एक दूसरा स्थान है जो 'केदार' इस नामसे विख्यात है। वह शुभ स्थान सिद्धोंका निवासभूमि है। वहाँ स्नान करके वृषकेतु महादेवकी आराधना करने और (वहाँके) पवित्र जलका पान करनेसे गाणपत्य-पदकी प्राप्ति होती है। वह तीर्थ श्रेष्ठ द्विजातियो तथा सयत-चित्तवाले योगियोद्वारा सेवित है। वहाँ श्राद्ध दान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है॥ ५—७॥

तीर्थं प्लक्षावतरण सर्वपापविनाशनम्।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवास विष्णुलोके महीयते॥ ८॥
अन्य मगधराजस्य तीर्थं स्वर्गगतिप्रदम्।
अक्षय विन्दति स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तम॥ ९॥
तीर्थं कनखल पुण्य महापातकनाशनम्।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशित॥ १०॥
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वित ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलाक लभेन्मृत॥ ११॥
महातीर्थमिति ख्यात पुण्य नारायणप्रियम्।
तत्राभ्यर्च्य हृषीकेश श्वेतद्वीप निगच्छति॥ १२॥

(एक) प्लक्षावतरण-तीर्थ (है जो) सभी पापोको नष्ट करनेवाला है। वहाँ श्रीनिवासकी आराधना करनेसे विष्णुलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। मगधराजका एक अन्य तीर्थ है, जो स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। वहाँकी यात्रा करनसे द्विजोत्तमको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है। कनखल नामका एक तीर्थ है जो पुण्यप्रद तथा महापातकोको नष्ट करनेवाला है। रुद्रदेवने जहाँ दक्षके यज्ञका विध्वस किया था। वहाँपर पवित्र भावनासे युक्त होकर गङ्गास्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोसे मुक्त हो जाता है और मरनेपर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। 'महातीर्थ' इस नामसे विख्यात नारायणका प्रिय एक पवित्र तीर्थ है वहाँ हृषीकेशकी आराधना करनेसे श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है॥ ८—१२॥

अन्यच्च तीर्थप्रवर नाम्ना श्रीपर्वत शुभम्।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रस्य दयितो भवेत्॥ १३॥
तत्र सनिहिता रुद्रो देव्या सह महेश्वर।
स्नानपिण्डादिक तत्र कृतमक्षय्यमुत्तमम्॥ १४॥

'श्रीपर्वत' नामका एक दूसरा शुभ श्रेष्ठ तीर्थ है वहाँ प्राणाका परित्याग करनसे व्यक्ति रुद्रका प्रिय होता है। वहाँ देवी (पार्वती)-के साथ महेश्वर रुद्र स्थित रहते हैं। वहाँ किये हुए स्नान, पिण्डदान आदि उत्तम कर्म अक्षय हो जाते हैं॥ १३-१४॥

गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापविनाशिनी।
तत्र स्नात्वा पितॄन् देवास्तर्पयित्वा यथाविधि।
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफल लभेत्॥ १५॥
पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विपुला नदी।
तस्या स्नात्वोदक कृत्वा मुच्यते सर्वपातकै।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेन वा॥ १६॥
द्विजातीना तु कथित तीर्थानामिह सेवनम्।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च सस्थितौ।
अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थाना फलमाप्नुयात्॥ १७॥

गोदावरी नदी पवित्र और सभी पापाका नाश करनेवाली है। वहाँ स्नानकर विधिपूर्वक पितरा तथा देवताओका तर्पण करनेस (मनुष्य) सभी पापोसे रहित होकर पवित्रात्मा हो जाता है और उस हजारो गोदान करनेका फल प्राप्त होता है। शुद्ध जलवाली विशाल कावेरी नदी पुण्यस्वरूप ही है। उसम स्नान कर तीन रात्रि अथवा एक रात्रिका उपवास करके तर्पण आदि करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजातियोके लिये यहाँ तीर्थोंके सेवनका विधान किया गया है। जिसके मन एव वाणी शुद्ध हो तथा हाथ-पैर सयमित हो ऐसा लोभरहित तथा ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला द्विज तीर्थों (-में निवास)-का फल प्राप्त करता है॥ १५—१७॥

स्वामितीर्थ महातीर्थ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र सनिहितो नित्य स्कन्दोऽमरनमस्कृत॥ १८॥
स्नात्वा कुमारधाराया कृत्वा देवादितर्पणम्।
आराध्य षण्मुख देव स्कन्देन सह मोदते॥ १९॥
नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नामत।
तत्र स्नात्वा पितॄन् भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तॄनपि पितॄस्तारयेन्नात्र सशय॥ २०॥

स्वामितीर्थ नामक महातीर्थ तीनो लोकोंमे विख्यात है। देवताओंद्वारा नमस्कृत (भगवान्) कार्तिकेय वहाँ नित्य स्थित रहते हैं। (वहाँ) कुमारधाराम स्नानकर देवताआका पूजन तथा पितराका तर्पण करके षण्मुख देव कार्तिकेयकी आराधना करनेसे (आराधक) स्कन्द (कार्तिकेय)-के साथ आनन्द प्राप्त करता है। ताम्रपर्णी नामवाली नदी तीनो लोकोम विख्यात है। वहाँ स्नानकर विधिपूर्वक भक्तिभावसे पितरोका तर्पण करनेसे मनुष्य पाप करनेवाले पितराको भी मुक्त कर देता है, इसमे सदेह नहीं॥ १८—२०॥

चन्द्रतीर्थमिति ख्यात कावेर्या प्रभवेऽक्षयम्।
तीर्थ तत्र भवेद् वस्तु मृताना स्वर्गतिर्ध्रुवा॥ २१॥
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेव सदाशिवम्।
भक्त्या ये ते न पश्यन्ति यमस्य सदन द्विजा॥ २२॥
देविकाया वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वोदक दत्त्वा योगसिद्धि च विन्दति॥ २३॥
दशाश्वमेधिक तीर्थं सर्वपापविनाशनम्।
दशानामश्वमेधाना तत्राप्नोति फल नर॥ २४॥
पुण्डरीक महातीर्थं ब्राह्मणैरुपसेवितम्।
तत्राभिगम्य युक्तात्मा पौण्डरीकफल लभेत्॥ २५॥

कावेरीके उद्गम स्थानपर चन्द्रतीर्थ नामसे विख्यात अक्षय फल देनेवाला एक तीर्थ है। वहाँ निवास करने तथा वहाँ मृत्यु होनेपर निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो विन्ध्यपादमे देवाधिदेव सदाशिवका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, वे द्विज यमलोकका दर्शन नहीं करत। देविकाम वृष नामका एक तीर्थ है जो सिद्धोंद्वारा सेवित है। वहाँ स्नानकर (पितरोंको) जलदान (तर्पण) करनेसे योगसिद्धि प्राप्त होती है। दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ सभी पापोको विनष्ट करनेवाला है। वहाँ (स्नान दान आदि पुण्य कार्य करनेसे) मनुष्य दस अश्वमेध-यज्ञोका फल प्राप्त करता है। पुण्डरीक नामक महातीर्थ ब्राह्मणोके द्वारा भलीभाँति सेवित है। वहाँकी यात्रा करनेसे सयतचित्त व्यक्ति पौण्डरीक (याग)-का फल प्राप्त करता है॥ २१—२५॥

तीर्थेभ्य परम तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥
सरस्वत्या विनशन प्लक्षप्रस्रवण शुभम्।
व्यासतीर्थं पर तीर्थं मैनाक च नगोत्तमम्।
यमुनाप्रभव चैव सर्वपापविशोधनम्॥ २७॥

तीर्थोंमे परम तीर्थ 'ब्रह्मतीर्थ' इस नामसे विख्यात है। वहाँ ब्रह्माकी पूजा करनेसे ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सरस्वतीका विनशन अर्थात् लुप्त होनेका स्थान शुभ प्लक्षप्रस्रवण श्रेष्ठ व्यासतीर्थ पर्वतोमे उत्तम मैनाक तथा सभी पापोका शोधन करनेवाला यमुनाका उद्गम स्थान—ये सभी तीर्थ हैं(तथा सभी पापोका शोधन करनेवाले हैं)॥ २६—२७॥

पितृणा दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता।
तस्या स्नात्वा दिव याति मृतो जातिस्मरा भवेत्॥ २८॥
कुबेरतुङ्ग पापघ्न सिद्धचारणसेवितम्।
प्राणास्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत्॥ २९॥
उमातुङ्गमिति ख्यात यत्र सा रुद्रवल्लभा।
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफल लभेत्॥ ३०॥
भृगुतुङ्गे तपस्तप्त श्राद्ध दान तथा कृतम्।
कुलान्युभयत सप्त पुनातीति श्रुतिर्मम॥ ३१॥

पितरोकी पुत्री गन्धकाली देवी (एक विशेष नदीके रूपमे) विख्यात है। उसमे स्नान करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और मरनेके उपरान्त पूर्वजन्मोके स्मरणकी शक्ति प्राप्त होती है। सिद्धो तथा चारणोसे सेवित 'कुबेरतुङ्ग' नामक तीर्थ पापोको विनष्ट करनेवाला है। वहाँ प्राणोका परित्याग करनेसे व्यक्ति कुबेरका अनुचर होता है। 'उमातुङ्ग' नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ रुद्रकी प्रिया पार्वती स्थित रहती हैं। वहाँ महादेवीकी आराधना करनेमे हजारो गौओके दानका फल प्राप्त होता है। मैंने ऐसा सुना है कि भृगुतुङ्ग (अन्य तीर्थ-विशेष)-पर तपस्या करने श्राद्ध तथा दान आदि करनेसे व्यक्ति अपने दोनो कुलो (मातृकुल-पितृकुल)-की सात पीढियोको पवित्र कर देता है॥ २८—३१॥

काश्यपस्य महातीर्थ कालसर्पिरिति श्रुतम्।
तत्र श्राद्धानि दयानि नित्य पापक्षयेच्छया॥ ३२॥
दशार्णाया तथा दान श्राद्ध होमस्तथा जप।
अक्षय चाव्यय चैव कृत भवति सर्वदा॥ ३३॥
तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्ट नाम्ना वै कुरुजाङ्गलम्।
दत्त्वा तु दान विधिवद् ब्रह्मलोके महीयते॥ ३४॥
वैतरण्या महातीर्थे स्वर्णवेद्या तथैव च।
धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मण परमे शुभे॥ ३५॥
भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये श्राद्धवटे शुभे।
महाह्रदे च कौशिक्या दत्त भवति चाक्षयम्॥ ३६॥

काश्यपका 'कालसर्पि' इस नामवाला विख्यात महातीर्थ है। पापोके क्षय करनेकी अभिलाषासे वहाँ नित्य श्राद्ध करना चाहिये। दशार्णामे किया गया दान श्राद्ध होम तथा जप सदाके लिये अक्षय और अविनाशी हो जाता है। द्विजातियोके द्वारा सेवित तीर्थ 'कुरुजाङ्गल' नामवाला है। वहाँ विधिपूर्वक दान करनेसे ब्रह्मलोकमे आदर प्राप्त होता है। वैतरणी महातीर्थ स्वर्णवेदी धर्मपृष्ठ परम शुभ ब्रह्मसरोवर पवित्र भरताश्रम पुण्य तथा शुभ श्राद्धवट महाह्रद तथा कौशिकी नदीमे दिया गया दान अक्षय होता है॥ ३२—३६॥

मुञ्जपृष्ठ पद न्यस्त महादेवेन धीमता।
हिताय सर्वभूताना - नास्तिकाना निदर्शनम्॥ ३७॥
अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायण।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरग॥ ३८॥
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
उदीच्या मुञ्जपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ ३९॥
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति सशरीरा द्विजातय।
दत्त चापि सदा श्राद्धमक्षय समुदाहृतम्।
ऋणैस्त्रिभिर्नर स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मष॥ ४०॥

सभी लोगोके कल्याणके लिये मुञ्जपृष्ठमे अपने चरण (चिह्न) स्थापित कर परम ज्ञानी महादेवने नास्तिकोंके लिये प्रमाण उपस्थित किया। (यहाँ) अल्पकालमे ही धर्मपरायण व्यक्ति पापोका उसी प्रकार शीघ्रतासे परित्याग करता है जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचा (केंचुल)-का परित्याग कर देता है। ब्रह्मर्षिगणोके द्वारा सेवित मुञ्जपृष्ठके उत्तर भागमे स्थित कनकनन्दा नामक तीर्थ तीनो लोकोमे विख्यात है। वहाँ स्नानकर द्विजाति लोग सशरीर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। वहाँपर दिया गया दान तथा किया गया श्राद्ध अक्षय कहा गया है। वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य पापरहित होकर तीनो ऋणोसे मुक्त हो जाता है॥ ३७—४०॥

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्धासन लभेत्।
उत्तर मानस गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४१॥
तस्मान्निर्वर्तयच्छ्राद्ध यथाशक्ति यथाबलम्।
कामान् स लभते दिव्यान् मोक्षोपाय च विन्दति॥ ४२॥

मानस सरोवरमें स्नान करनेसे इन्द्रका अर्धासन प्राप्त होता है। उत्तर मानस तीर्थकी यात्रा करनेसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। अतः (वहाँ) अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुसार श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेवाला दिव्य भोगों और मोक्षके उपाय (धर्म)-को प्राप्त कर लेता है॥ ४१—४२॥

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः।
योजनानां सहस्राणि सोऽशीतिस्त्वायतो गिरिः।
सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः॥ ४३॥
तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः।
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान् ब्रह्महत्यां विमुञ्चति॥ ४४॥
श्राद्धं भवति चाक्षय्यं तत्र दत्तं महोदयम्।
तारयेच्च पितॄन् सम्यग् दश पूर्वान् दशापरान्॥ ४५॥
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्ततः।
नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः॥ ४६॥

विविध प्रकारकी धातुओंसे सुशोभित हिमवान् नामका पर्वत एक हजार अस्सी योजन विस्तृत सिद्धों तथा चारणोंसे परिपूर्ण और देवर्षिगणोंसे सेवित है। वहाँ सुषुम्ना नामवाली रमणीय पुष्करिणी है। वहाँकी यात्रा कर विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्महत्या (के पाप)-से मुक्त हो जाता है। वहाँ किया गया श्राद्ध अक्षय होता है और दिया हुआ दान महान् अभ्युदयको प्राप्त कराता है। वहाँ जानेसे व्यक्ति अपनेसे पहले और बादकी दस पीढ़ीतकके पितरोंको भलीभाँति तार देता है। हिमालय तथा गङ्गा सर्वत्र ही पवित्र हैं। समुद्रमें जानेवाली नदियाँ तथा विशेषरूपसे समुद्र पवित्र हैं॥ ४३—४६॥

बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते कलिकल्मषात्।
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः॥ ४७॥
अक्षयं तत्र दानं स्यात् जप्यं वापि तथाविधम्।
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद् विशेषतः।
तारयेच्च पितॄन् सर्वान् दत्त्वा श्राद्धं समाहितः॥ ४८॥

बदर्याश्रममें पहुँचकर मनुष्य कलिके पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँपर सनातन नारायणदेव नरके साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ विधिपूर्वक किया गया दान तथा जप अक्षय हो जाता है। वह पवित्र तीर्थ महादेवको विशेषरूपसे प्रिय है। वहाँ समाहित मनसे श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरोंको मुक्त कर देता है॥ ४७-४८॥

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम्।
महादेवेन देवेन तत्र दत्तं महद् वरम्॥ ४९॥
मोहयित्वा मुनीन् सर्वान् पुनस्तैः सम्प्रपूजितः।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥ ५०॥
इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥ ५१॥

सिद्ध तथा गन्धर्वोंसे सेवित पवित्र देवदारु-वन नामक एक तीर्थ है। देव महादेवने वहाँ महान् वर प्रदान किया था। सभी मुनियोंको मोहित करनेके अनन्तर पुनः उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होनेपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने भक्तहृदय उन मुनियोंसे कहा—इस रमणीय तथा श्रेष्ठ आश्रममें आप लोग मेरी भक्तिसे संयुक्त होकर सदा निवास करें, इससे आप लोगोंको सिद्धि प्राप्त होगी॥ ४९—५१॥

येऽत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरा जनाः।
तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्॥ ५२॥
अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन च।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म विन्दति॥ ५३॥

इस लोकमें धर्मपरायण जो लोग यहाँ मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं श्रेष्ठ शाश्वत गाणपत्य-पद प्रदान करता हूँ। मैं यहाँ नारायणके साथ नित्य निवास करता हूँ। जो मनुष्य यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है वह पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता॥ ५२-५३॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः।
तेषां च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः॥ ५४॥
श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिर्वपणं तथा।
ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम्॥ ५५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः।
देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्॥ ५६॥
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः।
तत्र संनिहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च॥ ५७॥

हे द्विजोत्तमो! दूसरे देशोंमें गये हुए जो लोग इस तीर्थका स्मरण करते हैं उनके सभी पापोंको मैं नष्ट कर देता हूँ। यहाँ किया हुआ श्राद्ध दान तप होम पिण्डदान ध्यान जप तथा नियम सर्वदाके लिये अक्षय हो जाता है। इसलिये द्विजातियोंको महादेवद्वारा सेवित पुण्य देवदारुवनका सभी प्रयत्नोंद्वारा दर्शन (सेवन) करना चाहिये। जहाँ ईश्वर महादेव अथवा पुरुषोत्तम विष्णु रहते हैं, वहाँ गङ्गा सभी तीर्थ तथा सभी मन्दिरोंकी स्थिति होती है॥ ५४—५७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

तीर्थेभ्य परम तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥
सरस्वत्या विनशन प्लक्षप्रस्रवण शुभम्।
व्यासतीर्थ पर तीर्थं मैनाक च नगोत्तमम्।
यमुनाप्रभव चैव सर्वपापविशोधनम्॥ २७॥

तार्थोम परम तीर्थ 'ब्रह्मतीर्थ' इस नामसे विख्यात है। वहाँ ब्रह्माकी पूजा करनसे ब्रह्मलाकम प्रतिष्ठा प्राप्त हाती है। सरस्वताका विनशन अथात् लुप्त हानका स्थान शुभ प्लक्षप्रस्रवण श्रष्ठ व्यासतार्थ पवनाम उत्तम मैनाक तथा सभी पापाका शोधन करनवाला यमुनाका उद्गम स्थान—ये सभी तार्थ हैं (तथा सभा पापाका शोधन करनवाल ह)॥ २६—२७॥

पितॄणा दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता।
तस्या स्नात्वा दिव याति मृता जातिस्मरो भवेत्॥ २८॥
कुबेरतुङ्ग पापघ्न सिद्धचारणसवितम्।
प्राणास्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत्॥ २९॥
उमातुङ्गमिति ख्यात यत्र सा रुद्रवल्लभा।
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफल लभेत्॥ ३०॥
भृगुतुङ्गे तपस्तप्त श्राद्ध दान तथा कृतम्।
कुलान्युभयत सप्त पुनातीति श्रुतिर्मम॥ ३१॥

पितराकी पुत्री गन्धकाली देवी (एक विशेष नदीक रूपम) विख्यात है। उसम स्नान करनेस स्वर्गकी प्राप्ति हाती है और मरनेके उपरान्त पूर्वजन्माके स्मरणकी शक्ति प्राप्त होती है। सिद्धा तथा चारणासे सेवित 'कुबरतुङ्ग' नामक तीर्थ पापाको विनष्ट करनेवाला है। वहाँ प्राणाका परित्याग करनसे व्यक्ति कुबेरका अनुचर होता है। 'उमातुङ्ग' नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ रुद्रकी प्रिया पार्वता स्थित रहता हैं। वहाँ महादवीकी आराधना करनम हजारा गाआक दानका फल प्राप्त हाता है। मैंन एसा सुना ह कि भृगुतुङ्ग (अन्य तीर्थ-विशष)-पर तपस्या करने, श्राद्ध तथा दान आदि करनेसे व्यक्ति अपने दोना कुला (मातृकुल-पितृकुल)-की सात पाढियाको पवित्र कर देता है॥ २८—३१॥

काश्यपस्य महातीर्थ कालसर्पिरिति श्रुतम्।
तत्र श्राद्धानि दयानि नित्य पापक्षयच्छया॥ ३२॥
दशार्णाया तथा दान श्राद्ध होमस्तथा जप।
अक्षय चाव्यय चैव कृत भवति सर्वदा॥ ३३॥
तीर्थ द्विजातिभिर्जुष्ट नाम्ना वै कुरुजाङ्गलम्।
तु दान विधिवद् ब्रह्मलाक महीयत॥ ३४॥
वैतरण्या महातीर्थे स्वर्णवेद्या तथैव च।
धर्मपृष्ठ च सरसि ब्रह्मण परमे शुभे॥ ३५॥
भरतस्याश्रम पुण्ये पुण्य श्राद्धवटे शुभ।
महाह्रदे च कौशिक्या दत्त भवति चाक्षयम्॥ ३६॥

काश्यपका 'कालसर्पि' इस नामवाला विख्यात महातीर्थ है। पापाके क्षय करनकी अभिलाषास वहाँ नित्य श्राद्ध करना चाहिय। दशार्णाम किया गया दान श्राद्ध होम तथा जप सदाक लिय अक्षय और अविनाशी हो जाता है। द्विजातियाके द्वारा सेवित तार्थ 'कुरुजाङ्गल' नामवाला है। वहाँ विधिपूर्वक दान करनस ब्रह्मलाकम आदर प्राप्त हाता है। वैतरणी महातीर्थ स्वर्णवदा धर्मपृष्ठ परम शुभ ब्रह्मसरोवर पवित्र भरताश्रम पुण्य तथा शुभ श्राद्धवट महाह्रद तथा कौशिकी नदाम दिया गया दान अक्षय हाता है॥ ३२—३६॥

मुञ्जपृष्ठ पद न्यस्त महादेवेन धीमता।
हिताय सर्वभूताना - नास्तिकाना निदर्शनम्॥ ३७॥
अल्पनापि तु कालेन नरा धर्मपरायण।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरग॥ ३८॥
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
उदीच्या मुञ्जपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ ३९॥
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति सशरीरा द्विजातय।
दत्त चापि सदा श्राद्धमक्षय समुदाहृतम्।
ऋणैस्त्रिभिर्नर स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मष॥ ४०॥

सभी लागाके कल्याणके लिये मुञ्जपृष्ठम अपने चरण (चिह्न) स्थापित कर परम ज्ञानी महादवने नास्तिकोंके लिये प्रमाण उपस्थित किया। (यहाँ) अल्पकालम ही धर्मपरायण व्यक्ति पापाका उसी प्रकार शीघ्रतासे परित्याग करता है जैसे सप अपनी जार्ण त्वचा (कचुल)-का परित्याग कर दता है। ब्रह्मर्षिगणाक द्वारा सवित मुञ्जपृष्ठके उत्तर भागमे स्थित कनकनन्दा नामक तीथ ताना लोकोम विख्यात है। वहाँ स्नानकर द्विजाति लोग सशरीर स्वर्ग प्राप्त करते ह। वहाँपर दिया गया दान तथा किया गया श्राद्ध अक्षय कहा गया है। वहा स्नान करनपर मनुष्य पापरहित हाकर तीना ऋणासे मुक्त हा जाता है॥ ३७—४०॥

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्धासन लभेत्।
उत्तर मानस गत्वा सिद्धि प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४१॥
तस्मान्निर्वर्तयच्छ्राद्ध यथाशक्ति यथाबलम्।
कामान् स लभते दिव्यान् माक्षापाय च विन्दति॥ ४२॥

मानस सरोवरमे स्नान करनेसे इन्द्रका अर्धासन प्राप्त होता है। उत्तर मानम तीर्थकी यात्रा करनेसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। अत (वहाँ) अपनी शक्ति एव सामर्थ्यके अनुसार श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। एसा करनवाला दिव्य भोगा और मोक्षके उपाय (धर्म)-को प्राप्त कर लेता है॥ ४१—४२॥

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषित ।
योजनाना सहस्राणि सोऽशीतिस्त्वायतो गिरि ।
सिद्धचारणसकीर्णो देवर्षिगणसेवित ॥ ४३॥
तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामत ।
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान् ब्रह्महत्या विमुञ्चति॥ ४४॥
श्राद्ध भवति चाक्षय्य तत्र दत्त महोदयम्।
तारयेच्च पितॄन् सम्यग् दश पूर्वान् दशापरान्॥ ४५॥
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्तत ।
नद्य समुद्रगा पुण्या समुद्रश्च विशेषत ॥ ४६॥

विविध प्रकारकी धातुआसे सुशोभित हिमवान् नामका पर्वत एक हजार अस्सी योजन विस्तृत सिद्धा तथा चारणोसे परिपूर्ण और देवर्षिगणोसे सेवित है। वहाँ सुषुम्ना नामवाली रमणीय पुष्करिणी है। वहाँकी यात्रा कर विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्महत्या (के पाप)-स मुक्त हो जाता है। वहाँ किया गया श्राद्ध अक्षय होता है और दिया हुआ दान महान् अभ्युदयको प्राप्त कराता हे। वहाँ जानेसे व्यक्ति अपनेसे पहले और बादकी दस पीढीतकके पितरोको भलीभाँति तार देता है। हिमालय तथा गङ्गा सर्वत्र ही पवित्र हैं। समुद्रमे जानेवाली नदियाँ तथा विशेषरूपसे समुद्र पवित्र हैं॥ ४३—४६॥

बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते कलिकल्मषात्।
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातन ॥ ४७॥
अक्षय तत्र दान स्यात् जप्य वापि तथाविधम्।
महादेवप्रिय तीर्थं पावन तद् विशेषत ।
तारयेच्च पितॄन् सर्वान् दत्त्वा श्राद्ध समाहित ॥ ४८॥

बदर्याश्रममे पहुँचकर मनुष्य कलिक पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँपर सनातन नारायणदव नरके साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ विधिपूर्वक किया गया दान तथा जप अक्षय हो जाता है। वह पवित्र तीर्थ महादेवको विशेषरूपसे प्रिय है। वहाँ समाहित मनसे श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरोको मुक्त कर देता है॥ ४७-४८॥

देवदारुवन पुण्य सिद्धगन्धर्वसेवितम्।
महादेवेन देवेन तत्र दत्त महद् वरम्॥ ४९॥
मोहयित्वा मुनीन् सर्वान् पुनस्तै सम्प्रपूजित ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥ ५०॥
इहाश्रमवरे रम्ये, निवसिष्यथ सर्वदा।
मद्भावनासमायुक्तास्तत सिद्धिमवाप्स्यथ॥ ५१॥

सिद्ध तथा गन्धर्वोसे सेवित पवित्र देवदारु-वन नामक एक तीर्थ है। देव महादेवने वहाँ महान् वर प्रदान किया था। सभी मुनियोको मोहित करनेके अनन्तर पुन उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होनेपर प्रसन्न होकर भगवान् शकरने भक्तहृदय उन मुनियासे कहा—इस रमणीय तथा श्रेष्ठ आश्रमम आप लोग मेरी भक्तिसे सयुक्त होकर सदा निवास करे, इसमे आप लोगाको सिद्धि प्राप्त होगी॥ ४९—५१॥

येऽत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरा जना ।
तेषा ददामि परम गाणपत्य हि शाश्वतम्॥ ५२॥
अत्र नित्य वसिष्यामि सह नारायणेन च।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म विन्दति॥ ५३॥

इस लोकम धर्मपरायण जो लोग यहाँ मेरी पूजा करते हैं उन्ह मैं श्रेष्ठ शाश्वत गाणपत्य-पद प्रदान करता हूँ। मैं यहाँ नारायणके साथ नित्य निवास करता हूँ। जो मनुष्य यहाँ प्राणाका परित्याग करता है वह पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता॥ ५२-५३॥

सस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जना ।
तेषा च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमा ॥ ५४॥
श्राद्ध दान तपो होम पिण्डनिर्वपण तथा।
ध्यान जपश्च नियम सर्वमत्राक्षय कृतम्॥ ५५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्य हि द्विजातिभि ।
देवदारुवन पुण्य महादेवनिषेवितम्॥ ५६॥
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तम ।
तत्र सनिहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च॥ ५७॥

हे द्विजोत्तमो! दूसरे देशामे गये हुए जो लोग इस तीर्थका स्मरण करते हैं उनके सभी पापाको मैं नष्ट कर देता हूँ। यहाँ किया हुआ श्राद्ध दान तप होम पिण्डदान ध्यान जप तथा नियम सर्वदाके लिय अक्षय हो जाता है। इसलिये द्विजातियाको महादेवद्वारा सेवित पुण्य देवदारुवनका सभी प्रयत्नाद्वारा दर्शन (सेवन) करना चाहिये। जहाँ ईश्वर महादेव अथवा पुरुषोत्तम विष्णु रहते हैं वहाँ गङ्गा सभी तीर्थ तथा सभी मन्दिराकी स्थिति होती है॥ ५४—५७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे षट्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३६॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

देवदारु-वनमे स्थित मुनियोका वृत्तान्त एव शिवलिङ्गका पतन, मुनियोको ब्रह्माका उपदेश, शिवको प्रसन्न करने-हेतु ऋषियोद्वारा तपस्या तथा स्तुति, शिवद्वारा साख्यका उपदेश

ऋषय ऊचु

कथ दारुवन प्राप्तो भगवान् गोवृषध्वज।
मोहयामास विप्रेन्द्रान् सूत वक्तुमिहार्हसि॥ १॥

ऋषियाने कहा—सूतजी! इस समय आप यह बतलाय कि भगवान् गोवृषध्वजने दारुवनम आकर श्रेष्ठ ब्राह्मणाको क्यो माहित किया?॥ १॥

सूत उवाच

पुरा दारुवन रम्ये दवसिद्धनिषेविते।
सपुत्रदारा मुनयस्तपश्चेरु सहस्त्रश॥ २॥
प्रवृत्त विविध कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षय॥ ३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालम देवताआ तथा सिद्धासे सेवित रमणीय दारुवनम हजारा मुनिजन अपने पुत्रा तथा अपनी स्त्रियाके साथ तपस्या करते थे। विविध कर्मोम प्रवृत्त हात हुए तथा यथाविधि उन्ह सम्पन्न करत हुए व महर्षिगण विविध यज्ञास यजन तथा तप करते थे॥ २-३॥

तेषा प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलधृक्।
ख्यापयन् स महादोष ययौ दारुवन हर॥ ४॥
कृत्वा विश्वगुरु विष्णु पार्श्वे देवो महेश्वर।
ययौ निवृत्तिविज्ञानस्थापनार्थं च शकर॥ ५॥
आस्थाय विपुल वेशमूनविशतिवत्सर।
लीलालसो महाबाहु पीनाङ्गश्चारुलोचन॥ ६॥

तदनन्तर त्रिशूल धारण करनेवाले वे हर प्रवृत्तिमार्गम मन लगानेवाले उन ऋषियाक महान् दापका वर्णन करते हुए दारुवनम गय। महश्वर देव शकर निवृत्तिविज्ञानकी स्थापना करनक लिये विश्वक गुरु विष्णुको अपने पार्श्वम लकर वहाँ गय। महान् बाहुवाल पुष्ट शरीरवाले तथा सुन्दर नत्रवाल उन्नीस वर्षके लीलायुक्त पुरुपका वश धारणकर श्रीशकर वहाँ गये॥ ४—६॥

चामीकरवपु श्रीमान् पूर्णचन्द्रनिभानन।
मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वर॥ ७॥
कुशेशयमयीं माला सर्वरत्नैरलकृताम्।
दधानो भगवानीश समागच्छति सस्मित॥ ८॥

जगदीश्वर (शकर)-का शरीर स्वर्ण-वर्णक समान तथा श्रीसम्पन्न था। उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी गति मतवाले हाथाके समान और दिशाएँ ही उनके वस्त्रका स्थान ल रखी थीं। सभी रत्नोसे अलकृत कमलाकी माला धारण किये हुए भगवान् ईश मुसकराते हुए आ रहे थे॥ ७-८॥

योऽनन्त पुरुषो योनिर्लोकानामव्यया हरि।
स्त्रीवेष विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम्॥ ९॥
सम्पूर्णचन्द्रवदन पीनोन्नतपयोधरम्।
शुचिस्मित सुप्रसन्न रणन्नूपुरकद्वयम्॥ १०॥
सुपीतवसन दिव्य श्यामल चारुलोचनम्।
उदारहसचलन विलासि सुमनोहरम्॥ ११॥

जो सभी लाकाके उत्पत्ति-स्थान अनन्त अव्यय पुरुष हरि विष्णु हैं वे स्त्री-वेष धारणकर शूली शकरका अनुगमन कर रहे थ। उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रके तुल्य था। पयोधर पीन और उन्नत थे। पवित्र मुसकान थी और वे (विष्णु) अत्यन्त प्रसन्न थ। दोना चरणोसे नूपुरकी ध्वनि हो रही थी सुन्दर पीताम्बर उन्होंने धारण कर रखा था। दिव्य श्यामल शरीर था। नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे। हसके समान उदार गति थी। भगवान् विष्णु विलासमय एव अति मनोहारी रूप धारण कर रखे थे॥ ९—११॥

एव स भगवानीशो दवदारुवन हर।
चचार हरिणा भिक्षा मायया मोहयन् जगत्॥ १२॥
दृष्ट्वा चरन्त विश्वेश तत्र तत्र पिनाकिनम्।
मायया मोहिता नार्यो दवदेव समन्वयु॥ १३॥
विस्त्रस्तवस्त्राभरणास्त्यक्त्वा लज्जा पतिव्रता।
सहैव तेन कामार्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि॥ १४॥
ऋषीणा पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसा।
अन्वगच्छन् हृषीकेश सर्वे कामप्रपीडिता॥ १५॥

इस प्रकारक (स्त्री-वेषवाले) हरिके साथ वे भगवान् ईश हर अपनी मायासे ससारको माहित करते हुए भिक्षाके लिये दारुवनम विचरण करने लगे। पिनाकी विश्वेश्वरको स्थान-स्थानपर भ्रमण करत देखकर (उनकी) मायासे मोहित हो (देवदारुवनकी) स्त्रियाँ देवाधिदवका अनुगमन करने लगीं। अस्त-व्यस्त वस्त्र तथा आभरणावाली ये सभी पतिव्रता स्त्रियाँ लज्जाका परित्यागकर विलासयुक्त और कामार्त हाकर उन्हींक साथ भमण करन लगीं। जिन्हान अपन मनका वशम कर रखा

था, ऋषियोके वे सभी युवा पुत्र भी कामपीडित होकर (स्त्रीरूपधारी) हृषीकेशके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १२—१५॥

गायन्ति नृत्यन्ति विलासवाह्या
नारीगणा माथिनमेकमीशम्।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्त-
मिच्छन्त्यथालिङ्गनमाचरन्ति ॥ १६॥

पदे निपेतु स्मितमाचरन्ति
गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्रा ।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेव
भ्रूभङ्गमन्ये विचरन्ति तेन॥ १७॥

आसामथैषामपि वासुदेवो
मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्ट ।
करोति भोगान् मनसि प्रवृत्ति
मायानुभूयन्त इतीव सम्यक्॥ १८॥

पत्नीके रूपमे श्रीविष्णुको साथमे लेकर चलनेवाले अतीव सुन्दर, मायामय, अद्वितीय ईश (श्रीशकर)-को देखकर (महर्षियोकी) विलासिनी स्त्रियाँ नाचने-गाने लगीं उन्हे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करने लगीं और उनका आलिगन करने लगीं। लक्ष्मीके पति आदिदेव (विष्णु)-को (स्त्री-रूपमे) देखकर मुनीश्वरोके पुत्र उनके पैरोपर गिरने लगे मुसकराने लगे और गीत गाने लगे। दूसरे मुनिपुत्र भ्रूविलास (कटाक्षपात) करते हुए उनके साथ विचरण करने लगे। उन (स्त्रियो) तथा उन (पुरुषो)-के मनमे प्रविष्ट होकर मायावी मुरारि वासुदेवने उनके मनमे भोगोके प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न की। इस प्रकार उन सभीने भलीभाँति मायाका अनुभव किया॥ १६—१८॥

विभाति विश्वामरभूतभर्ता
स माधव स्त्रीगणमध्यविष्ट ।
अशेषशक्त्यासनसनिविष्टो
यथैकशक्त्या सह देवदेव ॥ १९॥

करोति नृत्य परमप्रभाव
तदा विरूढ पुनरेव भूय ।
ययौ समारुह्य हरि स्वभाव
तदीशवृत्तामृतमादिदेव ॥ २०॥

स्त्रियोके मध्य घिरे हुए समस्त देवो और प्राणियोके स्वामी वे माधव तथा शकर वैसे ही सुशोभित हुए जैसे समस्त शक्तियोके आसनपर स्थित अद्वितीय शक्तिस्वरूपा पार्वतीके साथ देवाधिदेव शकर सुशोभित होते है। उस समय महादेव (मुनियोको मोहित करनेकी भावनापर) आरूढ होकर पुन बार बार अत्यन्त प्रभावकारी नृत्य करने लगे और आदिदेव हरि उन ईशके चरितामृत-रूप स्वभावके रहस्यको समझकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १९-२०॥

दृष्ट्वा नारीकुल रुद्र पुत्राणामपि केशवम्।
मोहयन्त मुनिश्रेष्ठा कोप सदधिरे भृशम्॥ २१॥
अतीव परुष वाक्य प्रोचुर्देव कपर्दिनम्।
शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिता ॥ २२॥
तपासि तथा सर्वेषा प्रत्याहन्यन्त शकरे।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिता ॥ २३॥

स्त्री-समूहको मुग्ध कर रहे रुद्र और पुत्रोको मोहित कर रहे (नारीरूप) विष्णुको देखकर उन श्रेष्ठ मुनियोंको अत्यन्त क्रोध हो आया। उन (शकर)-की मायासे मोहित होकर मुनियोने कपर्दीदेव (शकर)-से अत्यन्त परुष (कठोर) वचन कहा और विविध शापोंसे उन्हे अभिशप्त किया। पर वे सभी परुष वचन एव शाप व्यर्थ हो गये, क्योंकि उन मुनियोकी तपस्याएँ (तपस्यासे उत्पन्न शक्तियाँ) भगवान् शकरमे प्रत्याहत होकर वैसे ही प्रभावशून्य हो गयी जैसे आकाशमे सूर्यके प्रकाशसे प्रत्याहत ताराएँ प्रभाशून्य हो जाती हैं॥ २१—२३॥

ते भग्नतपसो विप्रा समेत्य वृषभध्वजम्।
को भवानिति देवेश पृच्छन्ति स्म विमोहिता ॥ २४॥
सोऽब्रवीद् भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागत ।
इदानीं भार्यया देशे भवद्भिरिह सुव्रता ॥ २५॥

इस प्रकार अपनी तपस्याको निष्प्रभाव देखकर मोहित हुए वे मुनि वृषभध्वज देवेशके पास जाकर उनसे पूछने लगे—'आप कौन हैं?' तब उन भगवान् ईशने कहा—सुव्रतो! इस समय आप लोगोके इस स्थानमे मैं पत्नीसहित तपस्या करनेके लिये आया हूँ॥ २४-२५॥

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुगवा ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसन त्यक्त्वा भार्या तपश्चर॥ २६॥

उनके उस वाक्यको सुनकर उन भृगु आदि श्रेष्ठ मुनियोने कहा—वस्त्र धारणकर, भार्याका परित्यागकर तपस्या करो॥ २६॥

अथोवाच विहस्येश पिनाकी नीललोहित ।
सम्प्रेक्ष्य जगतो योनि पार्श्वस्थ च जनार्दनम्॥ २७॥
कथ भवद्भिरुदित स्वभार्यापोषणोत्सुकै ।
त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञै शान्तमानसै ॥ २८॥

तब नीललोहित पिनाकी ईश्वरने हँसकर पार्श्वभागमे स्थित ससारके मूल कारण जनार्दनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—धर्मको जाननेवाले तथा शान्त मनवाले और अपनी भार्याके पालन-पोषणमे तत्पर रहनेवाले आप लोगोने मुझसे यह कैसे कहा कि अपनी भार्याका परित्याग कर दो॥ २७-२८॥

ऋषय ऊचु

व्यभिचाररता नार्य सत्याज्या पतिनेरिता ।
अस्माभिरपा सुभगा तादृशी त्यागमर्हति ॥ २९ ॥

ऋषियोने कहा—(शास्त्राके अनुसार) पतिका कर्तव्य है कि व्यभिचारिणी पत्नीको (भरण-आच्छादनकी व्यवस्था भले ही कर दे, पर) पत्नीरूपमे उसे न स्वीकार करे। अत आपको भी इस प्रकारकी इस सुन्दरीका त्याग करना चाहिये॥ २९॥

महादेव उवाच

न कदाचिदिय विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदाचन॥ ३०॥

महादेव बोले—विप्रो! यह कभी मनसे भी किसी दूसरकी इच्छा नहीं करती और न मैं कभी इसका परित्याग करता हूँ॥ ३०॥

ऋषय ऊचु

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभि पुरुषाधम।
उक्त ह्यसत्य भवता गम्यता क्षिप्रमेव हि॥ ३१॥

ऋषियोने कहा—पुरुषाधम! हमने इसे यहाँ व्यभिचार करते हुए देखा है। आपने असत्य कहा है। अत शीघ्र ही यहाँसे चल जाइये॥ ३१॥

एवमुक्ते महादेव सत्यमेव मयेरितम्।
भवता प्रतिभात्यपत्युक्त्वासौ विचचार ह॥ ३२॥
सोऽगच्छद्धरिणा सार्धं मुनीन्द्रस्य महात्मन ।
वसिष्ठस्याश्रम पुण्य भिक्षार्थी परमेश्वर ॥ ३३॥
दृष्ट्वा समागत देव भिक्षमाणमरुन्धती।
वसिष्ठस्य प्रिया भार्या प्रत्युद्गम्य ननाम तम्॥ ३४॥

ऋषियाके ऐसा कहनेपर महादेवने कहा—मैंने सत्य ही कहा है। आपको यह (मेरे पार्श्वमे विद्यमान सुन्दरी स्त्री) ऐसी प्रतीत होती है। ऐसा कहकर महादेव विचरण करने लगे। भिक्षाकी इच्छासे वे परमेश्वर विष्णुके साथ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठके पवित्र आश्रममे गये। भिक्षा माँगते हुए देवको आये देखकर वसिष्ठकी प्रिय पत्नी अरुन्धतीने समीपमे जाकर उन्हे प्रणाम किया॥ ३२—३४॥

प्रक्षाल्य पादौ विमल दत्त्वा चासनमुत्तमम्।
सम्प्रेक्ष्य शिथिल गात्रमभिघातहत द्विजै ।
सधयामास भैषज्यैर्विषण्णा वदना सती॥ ३५॥
चकार महतीं पूजा प्रार्थयामास भार्यया।
को भवान् कुत आयात किमाचारो भवानिति।
उवाच ता महादेव सिद्धाना प्रवरोऽस्म्यहम्॥ ३६॥
यदेतन्मण्डल शुद्ध भाति ब्रह्ममय सदा।
एषैव देवता मह्य धारयामि सदैव तत्॥ ३७॥

(परमेश्वरके) चरणोको धोकर और शुद्ध उत्तम आसन प्रदान कर द्विजोके आघातसे आहत उनके शिथिल शरीरको देखकर अत्यन्त खिन्न सती (अरुन्धती)-ने (उनके व्रणोपर) औषधि लगायी और भार्यासहित (परमेश्वरकी) उन्होंने (अरुन्धतीने) महती पूजा की तथा पूछा—'आप कौन हैं कहाँसे आये हैं आपका आचार क्या है?' महादेवने उनसे कहा—'मैं सिद्धोमे श्रेष्ठ (सिद्ध) हूँ।' जो यह ब्रह्ममय शुद्ध मण्डल सदा प्रकाशित होता है वही मेरे देवता (आस्पद) हैं। मैं सदा ही उनको धारण करता हूँ॥ ३५—३७॥

इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम्।
ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजा ॥ ३८॥
दृष्ट्वा चरन्त गिरिश नग्न विकृतलक्षणम्।
प्रोचुरेतद् भवाँल्लिङ्गमुत्पाटयतु दुर्मत॥ ३९॥
तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शकर ।
युष्माक मामके लिङ्ग यदि द्वेषोऽभिजायते॥ ४०॥

ऐसा कहकर तथा पतिव्रता (अरुन्धती)-पर कृपा करके श्रीमान् (महादेव) चल पड़े। द्विज उन्हे डडा ढेला तथा मुक्कोसे मारने लगे। नग्न तथा विकृत लक्षणवाले गिरिशको घूमते हुए देखकर मुनियोने कहा—हे दुर्मते! तुम अपने इस लिङ्गको उखाड़ो। महायोगी शकरने उनसे कहा—आप लोगोंको यदि मेरे लिङ्गके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया हो तो मैं वैसा ही करूँगा॥ ३८—४०॥

इत्युक्त्वोत्पाटयामास भगवान् भगनेत्रहा।
नापश्यस्तत्क्षणेनेश केशव लिङ्गमेव च॥ ४१॥
तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकाना भयशसिन ।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुन ।
निष्प्रभाश्च ग्रहा सर्वे चुक्षुभे च महोदधि ॥ ४२॥

ऐसा कहकर भगके नेत्रोको नष्ट करनेवाले भगवान्ने (अपने) लिङ्गको उखाड़ दिया। पर तत्काल ही सब कुछ अदृश्य हो गया और (मुनियोने) न शकरको देखा न केशवको और न लिङ्गको ही देखा और तभी पूरे लोकमे भय उत्पन्न करनेवाले उपद्रव होने लगे। सहस्रकिरण (सूर्य)-का तेज समाप्त हो गया पृथ्वी काँपने लगी। सभी ग्रह प्रभावहीन हो गये और समुद्रमे क्षोभ उत्पन्न हो गया॥ ४१-४२॥

अपश्यच्चानसूयात्रे स्वप्न भार्या पतिव्रता।
कथयामास विप्राणा भयादाकुलितेक्षणा॥ ४३॥

तेजसा भासयन् कृत्स्नं नारायणसहायवान्।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति॥ ४४॥
तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्॥ ४५॥

इधर अत्रिकी पत्नी पतिव्रता अनसूयाने स्वप्न देखा। उनके नेत्र भयसे व्याकुल हो गये। उन्होंने ब्राह्मणोंसे (स्वप्नकी बात बताते हुए) कहा—निश्चय ही हम लोगोंके घरमें अपने तेजसे सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित कर रहे शिव (भगवान् शंकर) नारायणके साथ भिक्षा माँगते हुए दिखलायी पड़े थे। उनके वचन सुनकर सशंकित सभी महर्षि जगत्को उत्पन्न करनेवाले महायोगी ब्रह्माजीके पास गये॥ ४३—४५॥

उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः।
चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्या सहितं प्रभुम्॥ ४६॥
आसीनमासने रम्ये नानाश्चर्यसमन्विते।
प्रभासहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्यादिसंयुते॥ ४७॥
विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम्।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम्॥ ४८॥
विलोक्य वेदपुरुषं प्रसन्नवदनं शुभम्।
शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्॥ ४९॥

वहाँ उन्होंने ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ विशुद्ध योगिजनोंद्वारा तथा मूर्तिमान् चारों वेदोंद्वारा उपासित होते हुए प्रभु (ब्रह्मा)-को सावित्रीके साथ देखा। नाना प्रकारके आश्चर्योंसे समन्वित, हजारों प्रकारकी प्रभासे सुशोभित और ज्ञान तथा ऐश्वर्यसे युक्त रमणीय आसनपर विराजमान परम रमणीय अप्राकृत दिव्य शरीरके कारण शोभासम्पन्न मुसकानयुक्त उज्ज्वल नेत्रोंवाले महाबाहु छन्दोमय, अजन्मा प्रसन्न-वदन शुभ एवं श्रेष्ठ चतुर्मुख वेदपुरुष (ब्रह्मा)-को देखकर वे (मुनिजन) भूमिपर मस्तक टेककर ईश्वरकी स्तुति करने लगे—॥ ४६—४९॥

तान् प्रसन्नमना देवश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥ ५०॥
तस्य ते वृत्तमखिलं ब्रह्मणः परमात्मनः।
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ ५१॥

चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देवने उनपर प्रसन्न होकर पूछा—'मुनिश्रेष्ठो! आपके आनेका क्या प्रयोजन है?' तब सभी मुनियोंने मस्तकपर हाथ जोड़कर उन परमात्मा ब्रह्माको उस (भगवान् शंकरकी दिव्य लीलाके) सम्पूर्ण वृत्तान्तको बतलाया॥ ५०-५१॥

ऋषय ऊचुः

कश्चिद् दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः।
भार्यया चारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न एव हि॥ ५२॥
मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः।
कन्यकानां प्रिया चास्य दूषयामास पुत्रकान्॥ ५३॥
अस्माभिर्विविधाः शापाः प्रदत्ताश्च पराहताः।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिपातितम्॥ ५४॥
अन्तर्हितश्च भगवान् सभार्यो लिङ्गमेव च।
उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयकराः॥ ५५॥

ऋषियोंने कहा—पवित्र दारुवनमें अत्यन्त सुन्दर कोई पुरुष सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गोंवाली अपनी भार्याके साथ नग्न ही प्रविष्ट हुआ। उस ईश्वरने अपने शरीरसे (हमारी) स्त्रियोंके समूहको तथा सभी कन्याओंमें अति रमणीय उसकी प्रियाने (हमारे) पुत्रोंको दूषित (अपनी ओर आकृष्ट) किया। हम लोगोंने उस पुरुषको विविध शाप दिये किंतु वे निष्फल हो गये, तब हम लोगोंने उसे बहुत मारा और उसके लिङ्गको गिरा दिया, पर तत्काल ही भार्याके साथ भगवान् और लिङ्ग अन्तर्हित हो गये। तभीसे प्राणियोंको भय प्रदान करनेवाले भीषण उत्पात होने लगे हैं॥ ५२—५५॥

क एष पुरुषो देव भीताः स्म पुरुषोत्तम।
भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत॥ ५६॥
त्वं हि वेत्सि जगत्यस्मिन् यत्किञ्चिदपि चेष्टितम्।
अनुग्रहेण विश्वेश तदस्माननुपालय॥ ५७॥

पुरुषोत्तम! वह देव-पुरुष कौन है? हम लोग भयभीत हो गये हैं। अच्युत! हम सब आपकी शरणमें आये हैं। इस संसारमें जो कुछ भी चेष्टा होती है, उसे आप अवश्य जानते हैं इसलिये विश्वेश! अनुग्रह कर आप हमारी रक्षा करें॥ ५६-५७॥

विज्ञापितो मुनिगणैर्विश्वात्मा कमलोद्भवः।
ध्यात्वा देवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत॥ ५८॥

मुनिगणोंके द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जानेपर कमलसे उत्पन्न विश्वात्मा (ब्रह्मा)-ने त्रिशूलका चिह्न धारण करनेवाले देव (शंकर)-का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ ५८॥

ब्रह्मोवाच

हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम्।
धिग्बलं धिक् तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह॥ ५९॥

सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनां परमं निधिम्।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिह मोहितैः ॥ ६० ॥
काङ्क्षन्ते योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम्।
यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥ ६१ ॥
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्त्यै वेदवादिनः।
महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥ ६२ ॥
यं समासाद्य देवानामैश्वर्यमखिलं जगत्।
तमासाद्याक्षयनिधिं हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मा बोले—आह! कष्ट है कि आज आप लोगोंका सर्वस्व नष्ट हो गया। आपके बलको धिक्कार है, तपश्चर्याको धिक्कार है आपका यह सब मिथ्या ही हो गया। पवित्र संस्कारों और निधियोंमें परम निधिको प्राप्तकर वृथाचारी आप लोगोंने मोहवश उनकी उपेक्षा कर दी। योगी लोग तथा यत्न करनेवाले यति लोग जिस निधिको प्राप्त करनेकी नित्य अभिलाषा करते हैं, उसीको प्राप्तकर आप लोगोंने उपेक्षा कर दी यह बहुत ही कष्टकी बात है। वैदिक लोग जिसकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं बड़ा कष्ट है कि उन महानिधिको प्राप्तकर भी आप सभीने उनकी उपेक्षा कर दी। हाय! जिसे पाकर देवताओंके ऐश्वर्य-रूपमें समस्त लोक-लोकान्तर दृष्टिगोचर हो रहे हैं उन अक्षयनिधिको प्राप्तकर आपने उनकी उपेक्षा कर दी॥ ५९—६३ ॥

यत्समापत्तिजनितं विश्वेशत्वमिदं मम।
तदेवोपेक्षितं दृष्ट्वा निधानं भाग्यवर्जितैः ॥ ६४ ॥
यस्मिन् समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत् तदव्ययम्।
तमासाद्य निधिं ब्राह्मं हा भवद्भिर्वृथा कृतम् ॥ ६५ ॥
एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।
न तस्य परमं किञ्चित् *पदं समधिगम्यते* ॥ ६६ ॥

जिनकी प्राप्ति होनेसे मुझे यह विश्वेश्वरत्व प्राप्त हुआ है उन (समस्त ऐश्वर्यके) निधानका दर्शनकर भाग्यरहित आप लोगोंने (उनकी) उपेक्षा कर दी। जिनमें वह अविनाशी दिव्य ऐश्वर्य समाहित है उन ब्रह्मरूप निधिको प्राप्तकर भी आप लोगोंने अपना सुअवसर खो दिया यह बड़े कष्टकी बात है। इन्हीं देवको महादेव और महेश्वर समझना चाहिये। इनका परम पद (सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य) किंचित् भी प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् जाना नहीं जा सकता॥ ६४—६६ ॥

देवतानामृषीणां च पितॄणां चापि शाश्वतः।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम्।
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः ॥ ६७ ॥
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा।
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः ॥ ६८ ॥
योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
द्वापरे भगवान् कालो धर्मकेतुः कलौ युगे ॥ ६९ ॥
रुद्रस्य मूर्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम्।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति प्रभुः ॥ ७० ॥

हजारों युग-पर्यन्त रहनेवाले प्रलयकालमें ये ही सनातन भगवान् महेश्वर कालरूप होकर देवताओं ऋषियों तथा पितरों और समस्त देहधारियोंका संहार (अपनेमें लय) करते हैं। ये ही अद्वितीय अपने तेजसे समस्त प्रजाओंकी सृष्टि करते हैं। चक्र, वज्र तथा श्रीवत्सके चिह्नको धारण करनेवाले ये ही हैं (क्योंकि इनमें तथा श्रीविष्णुमें सर्वथा अभेद है) ये ही देव कृतयुगमें योगी त्रेतामें यज्ञरूप, द्वापरमें भगवान् काल तथा कलियुगमें धर्मकेतु कहलाते है। रुद्रकी तीन मूर्तियाँ हैं इन्होंने ही इस *विश्वको व्याप्त कर रखा है। तमोगुणके अधिष्ठाताको* अग्नि, रजोगुणके अधिष्ठाताको ब्रह्मा तथा सत्त्वगुणके अधिष्ठाताको प्रभु विष्णु कहा गया है॥ ६७—७० ॥

मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ॥ ७१ ॥
या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिवीक्षिता।
सा हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ॥ ७२ ॥
तस्मात् सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं व्रजेत्।
स एव मोहयेत् कृत्स्नं स एव परमा गतिः ॥ ७३ ॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
एकशृङ्गो महानात्मा पुराणोऽष्टाक्षरो हरिः ॥ ७४ ॥
चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिस्त्रिमूर्तिस्त्रिगुणः परः।
एकमूर्तिरमेयात्मा नारायण इति श्रुतिः ॥ ७५ ॥

इनकी एक दूसरी मूर्ति है जो दिगम्बरा शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसीमें योगसे युक्त परम ब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं। जिनको इनके पार्श्वभागमें स्थित भार्याके रूपमें आपने देखा है वे ही सनातन परमात्मा नारायण देव हैं। उनसे ही *यह सब उत्पन्न है और उनमें ही यह सब लीन भी* हो जाता है। वे ही सबको मोहित करते हैं और वे ही परम गति हैं। महान् आत्मा पुराण (शाश्वत) पुरुष हरि एक शृंगधारी (अनन्त ब्रह्माण्डको एक शृंग-रूपमें धारण करनेवाले) *अष्टाक्षर (अष्टमूर्तिरूप तथा अविनाशी तत्त्व) हजारों सिरवाले हजारों आँखवाले एवं हजारों चरणवाले हैं। श्रुतिका कथन है कि* नारायण चतुर्वेद चतुर्मूर्ति त्रिमूर्ति एवं त्रिगुण होते हुए भी

एकमूर्ति तथा अमेयात्मा हैं॥ ७१—७५॥

ऋतस्य गर्भो भगवानापो मायातनु प्रभु ।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्धर्ममोक्षिभि ॥७६॥
सहृत्य सकल विश्व कल्पान्ते पुरुषोत्तम ।
शेते योगामृत पीत्वा यत् तद् विष्णो पर पदम्॥७७॥
न जायते न म्रियते वर्धते न च विश्वसृक्।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरज ॥७८॥

माया (-से विविध) शरीर धारण करनेवाले तथा (समस्त जगत्के जीवन-जलका हो अपने आयतनके रूपमे स्वीकार करनेवाले) जलस्वरूप प्रभु भगवान् कर्मफलके एकमात्र अधिष्ठाता हैं। धर्म तथा मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण लोग विविध मन्त्रोके द्वारा (उनकी) स्तुति करते हैं। कल्पान्तमे समस्त विश्वका सहार करनेके अनन्तर योगामृतका पानकर पुरुषोत्तम (भगवान् शकर) जिस सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाशमे शयन (परम विश्रान्तिका अनुभव) करते हैं वही विष्णु नामका परम पद है। विश्वकी सृष्टि करनेवाले ये न जन्म लेते हैं न मरते हैं और न वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वैदिक लोग इन्हीं अजन्मा (भगवान्)-को अव्यक्त मूलप्रकृति कहते हैं॥ ७६—७८॥

ततो निशाया वृत्ताया सिसृक्षुरखिल जगत्।
अजस्य नाभौ तद् बीज क्षिपत्येष महेश्वर ॥७९॥
त मा वित्त महात्मान ब्रह्माण विश्वतोमुखम्।
महान्त पुरुष विश्वमपा गर्भमनुत्तमम्॥८०॥
न त विदथ जनक मोहितास्तस्य मायया।
देवदेव महादेव भूतानामीश्वर हरम्॥८१॥

ये महेश्वर (प्रलयरूपी) रात्रिके बीत जानेपर सम्पूर्ण जगत्की सृष्टिकी इच्छासे अजकी नाभिमे इस (सृष्टि)-के बीजको स्थापित करते हैं। उन (अज)-के रूपमे मुझे ही आप लोग जानें। मैं ही समस्त लोकोका मूल होनेके कारण महात्मा ब्रह्मा सर्वतोमुख महान् पुरुष विश्वात्मा अप् (समस्त स्थूल जल)-का अधिष्ठाता सर्वोत्तम देव हूँ। अनन्त ब्रह्माण्डके बीजको मेरेमे स्थापित करनेवाले उन परमपिता देवाधिपति महादेव हरको आप लोग उनकी मायासे मोहित होनेके कारण नहीं जान सके॥ ७९—८१॥

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान् हर ।
विष्णुना सह सयुक्त करोति विकरोति च॥८२॥
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद् विद्यते परम्।
स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम॥८३॥
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च।
तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजेत शरण भवम्॥८४॥

वे ही अनादि देव भगवान् महादेव हर विष्णुके साथ युक्त होकर सृष्टि और सहार करते रहते हैं। उनका कोई कार्य (कर्तव्य) नहीं है और उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। योगमायामय शरीर धारण करनेवाले उन्होने पूर्वकालमे मुझे वेद प्रदान किया। वे मायी (अपनी) मायाद्वारा सभीकी सृष्टि और सहार करते हैं। उन्हे ही मुक्तिका मूल समझकर उन भवकी ही शरणमे जाना चाहिये॥ ८२—८४॥

इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम्।
प्रणम्य देव ब्रह्माण पृच्छन्ति स्म सुदु खिता ॥८५॥

भगवान् (ब्रह्मा)-के ऐसा कहनेपर मरीचि आदि प्रमुख ऋषियोने विभु ब्रह्मदेवको प्रणामकर अत्यन्त दु खित होकर उनसे पूछा—॥ ८५॥

मुनय ऊचु

कथ पश्येम त देव पुनरेव पिनाकिनम्।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्व शरणैषिणाम्॥८६॥

मुनिजन बोले—समस्त देवोके स्वामी! उन पिनाकधारी देवका दर्शन हम पुन किस प्रकार कर पायेगे? आप हमे बताये। आप शरण चाहनेवालाकी रक्षा करनेवाले हैं॥ ८६॥

पितामह उवाच

यद् दृष्ट भवता तस्य लिङ्ग भुवि निपातितम्।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम्॥८७॥
पूजयध्व सपत्नीका सादर पुत्रसयुता ।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिण ॥८८॥
सस्थाप्य शाकरैर्मन्त्रैर्ऋग्यजु सामसम्भवै ।
तप पर समास्थाय गृणन्त शतरुद्रियम्॥८९॥
समाहिता पूजयध्व सपुत्रा सह बन्धुभि ।
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणि प्रपद्यथ॥९०॥
ततो द्रक्ष्यथ देवेश दुर्दर्शमकृतात्मभि ।
य दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति॥९१॥

पितामहने कहा—पृथ्वीपर गिराये गये उनके (महेश्वरके) जिस लिङ्गको आप लोगोने देखा था उसी लिङ्गके समान श्रेष्ठ लिङ्ग बनाकर सपत्नीक तथा पुत्रोसहित आदरपूर्वक विविध वैदिक मन्त्रोंसे ब्रह्मचर्यपूर्वक आप लोग उसकी पूजा करें। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें कहे गये शकरके मन्त्रोंसे (लिङ्गकी) स्थापना कर परम तपका अवलम्बन कर, शतरुद्रियका जप करते हुए समाहित होकर बन्धुओ तथा पुत्रोसहित आप सभी लोग हाथ जोडकर शूलपाणिकी शरणमें जायँ। तदनन्तर आप लोग अकृतात्माओंके लिये दुर्दर्श उन देवेश्वरका दर्शन करेगे जिनको देख लेनेपर सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म दूर हो जाता है॥ ८७—९१॥

तत प्रणम्य वरद ब्रह्माणममितौजसम्।
जग्मु सहृष्टमनसो देवदारुवन पुन ॥ ९२॥
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथित यथा।
अजानन्त पर देव वीतरागा विमत्सरा ॥ ९३॥
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वताना गुहासु च।
नदीना च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥ ९४॥

तब अमित ओजस्वी वरदाता ब्रह्माको प्रणामकर प्रसन्न-मनवाले वे सभी महर्षि पुन देवदारु-वनकी ओर चल गये और परम देवको न जानते हुए भी उन महर्षियाने राग एव मात्सर्य रहित होकर ब्रह्माजीने जैसा बताया था तदनुसार अनेकविध यज्ञीय वेदियो पर्वतोकी गुफाओ तथा जनशून्य नदियाके सुन्दर किनारोपर भगवान् शकरकी आराधना प्रारम्भ कर दी॥ ९२—९४॥

शैवालभोजना केचित् केचिदन्तर्जलेशया ।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठाग्रविष्ठिता ॥ ९५॥
दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे।
शाकपर्णाशिन केचित् सम्प्रक्षाला मरीचिपा ॥ ९६॥
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा पर।
काल नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्॥ ९७॥

कुछ लोग शैवालका भोजन करते हुए, कुछ जलके अदर शयनकी मुद्रामे स्थित रहते हुए तथा कुछ लोग खुले आकाशके नीचे पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित रहकर श्रीशकरकी आराधनामे दत्तचित्त हो गये। कुछ दूसरे दन्तोलूखली अर्थात् दाँतोंके ही द्वारा अनाजका तुष (भूसी) आदिसे रहितकर बिना पकाये खा लेते थे कुछ दूसरे पत्थरपर ही अन्नको कूटकर खा लेते थे[1]। कुछ शाक तथा पत्तोका ही भोजन करते थे कुछ लोग एक समय भोजन करके अङ्गोकी चिन्ता (शारीरिक सौष्ठव आदिकी चिन्ता) नहीं रखते थे कुछ लोग स्नानपरायण एव कुछ लोग सूर्य-किरणोका ही पान करते थे। कुछ लोग वृक्षके नीचे रहते थे दूसरे शिलारूपी शय्यापर ही सोते थे इस प्रकार तपस्या (विविधोके) द्वारा महेश्वरकी पूजा करते हुए वे (मुनिजन) समय व्यतीत कर रहे थे॥ ९५—९७॥

ततस्तेषा प्रसादार्थ प्रपन्नार्तिहरो हर ।
चकार भगवान् बुद्धि प्रबोधाय वृषध्वज ॥ ९८ ॥
देव कृतयुगे ह्यस्मिन् शृङ्गे हिमवत शुभे।
देवदारुवन प्राप्त प्रसन्न परमेश्वर ॥ ९९ ॥
भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षण ।
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचन ॥ १००॥

(मुनियोको इस प्रकार पश्चात्तापपूर्वक तपस्यामे निरत देखकर) उनकी व्याकुलता दूर करनेके लिये शरणागतोंके दु खहर्ता भगवान् वृषध्वज हरने उन्हें प्रबोधित (मोहमुक्त) करनेका विचार किया। इसलिये प्रसन्न परमेश्वर वे देव (शकर) सत्ययुगमे हिमालयके इस शुभ शिखरपर स्थित देवदारु-वनमे पुन आये। उनके सारे अङ्ग भस्मसे उपलिप्त होनेके कारण श्वेत वर्णके थे नग्न थे, विकृत लक्षणवाले थे हाथमे उल्मुक (जलती लकडी) लेकर उसे घुमा रहे थे और उनके नेत्र लाल तथा पिगल-वर्णके थे॥ ९८—१००॥

क्वचिच्च हसते रौद्र क्वचिद् गायति विस्मित ।
क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारी क्वचिद् रौति मुहुर्मुहु ॥ १०१॥
आश्रमेऽभ्यागतो भिक्षु याचते च पुन पुन ।
मायी कृत्वात्मनो रूप देवस्तद् वनमागत ॥ १०२॥
कृत्वा गिरिसुता गौरीं पार्श्वे देव पिनाकधृक्।
सा च पूर्ववद् देवेशी देवदारुवन गता॥ १०३॥

कभी वे भयकर रूपसे हँसते कभी आश्चर्ययुक्त हो गान करने लगते कभी शृगारपूर्वक नृत्य करने लगते और कभी बार-बार रोने लगते। (इस स्थितिमे भगवान्) महादेव आश्रममे आकर बार-बार भिक्षा माँगने लगे। इस प्रकार अपना मायामय रूप बनाकर वे देव (शकर) उस (देवदारु) वनमे विचरने लगे और उन पिनाकधारी देवने पर्वतपुत्री गौरीको अपने पार्श्वभागमे कर लिया था। वे देवेशी पूर्वके समान ही देवदारु-वनमे महादेवके साथ आयीं॥ १०१—१०३॥

दृष्ट्वा समागत देव देव्या सह कपर्दिनम्।
प्रणेमु शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम्॥ १०४॥
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रै सूक्तैर्माहेश्वरै शुभै ।
अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैरर्हयन्भवम्॥ १०५॥

देवीके साथ कपर्दी (शकर) देवको आया देखकर उन्होने (मुनियोने) भूमिमे सिर रखकर ईश्वरको प्रणाम किया और स्तुति की। वे विविध वैदिक मन्त्रो शुभ माहेश्वर सूक्तो, अथर्वशिरस् तथा अन्य रुद्रसम्बन्धी वेदमन्त्रोसे शकरकी स्तुति करने लगे—॥ १०४-१०५॥

नमो देवादिदेवाय महादेवाय ते नम ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्य त्रिशूलवरधारिणे॥ १०६॥
नमो दिग्वाससे तुभ्य विकृताय पिनाकिने।
सर्वप्रणतदेहाय स्वयमप्रणतात्मने॥ १०७॥

---

[1] १-भाष्य अन्नको स्वादिष्टताके प्रति अनासक्त होनेसे अन्नके परिष्कारके साधन उपकरण तथा सिलोका उपयोगमे नहीं लाते थे। (इनके उपयोगमें हिंसा भी होती है इसलिये तपस्वी लोग विशेषरूपसे इनका वर्जन करते हैं।)

अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे॥ १०८॥
नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च॥ १०९॥
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय शितिकण्ठाय ते नमः॥ ११०॥
अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः।
नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च॥ १११॥
गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये ब्रह्माधिपतये नमः॥ ११२॥

देवोंके आदिदेवको नमस्कार है। महादेव! आपको नमस्कार है। श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है। दिगम्बर (स्वेच्छासे) विकृत (रूप धारण करनेवाले) तथा पिनाकी आपको नमस्कार है। समस्त प्रणतजनोंके आश्रय तथा स्वयं निराश्रय (निरधिष्ठान देव)-को नमस्कार है। अन्त करनेवाले (यम)-का भी अन्त करनेवाले और सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। नृत्यपरायण और भैरवरूप आपको नमस्कार है। नर-नारी शरीरवाले (अर्धनारीश्वर) एवं योगियोंके गुरु आपको नमस्कार है। दान्त शान्त तापस (विरक्त) तथा हरको नमस्कार है। अत्यन्त भीषण चर्माम्बरधारी रुद्रको नमस्कार है। लेलिहानको नमस्कार है शितिकण्ठको नमस्कार है। अघोर तथा घोर रूपवाले वामदेवको नमस्कार है। धतूरेकी माला धारण करनेवाले और देवीके प्रियकर्ताको नमस्कार है। गङ्गाजलकी धाराको धारण करनेवाले परमेष्ठी शम्भुको नमस्कार है। योगाधिपतिको नमस्कार है तथा ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है॥ १०६—११२॥

प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गरागिणे।
नमस्ते घनवाहाय दंष्ट्रिणे वह्निरेतसे॥ ११३॥
ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च।
विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥ ११४॥
नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम्।
कपालपाणये तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय ते।
नमः कनकलिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः॥ ११५॥
नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः।
नमो भुजगहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः॥ ११६॥

भस्मका अङ्गराग लगानेवाले प्राणरूप आपको बार-बार नमस्कार है। घनवाह[1]! दंष्ट्री तथा वह्निरेताको[2] नमस्कार है। ब्रह्माके सिरका हरण करनेवाले कालरूपको नमस्कार है। हम आपके न आगमनको जानते हैं और न गमनको ही जानते हैं। विश्वेश्वर! महादेव! आप जिस रूपमें हैं, उसी रूपमें आपको नमस्कार है। प्रमथनाथ तथा शुभ सम्पदा देनेवालेको नमस्कार है। हाथमें कपाल[3] धारण करनेवाले आपको तथा आप मीढुष्टमको नमस्कार है। कनकलिङ्ग[4] और वारिलिङ्ग[5] आपको नमस्कार है। अग्नि तथा सूर्यस्वरूप लिङ्गवालेको नमस्कार है ज्ञानलिङ्ग! आपको नमस्कार है। सर्पोंकी मालावाले और कर्णिकारप्रियको[6] आपको नमस्कार है। किरीटी, कुण्डल धारण करनेवाले तथा कालके भी काल! आपको नमस्कार है॥ ११३—११६॥

वामदेव महेशान देवदेव त्रिलोचन।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात् त्वमेव शरणं हि नः॥ ११७॥
चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनां च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽसि शंकर॥ ११८॥
अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानाद् यत्किंचित् कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ ११९॥
एवं स्तुत्वा महादेवं प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
ऊचुः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥ १२०॥

वामदेव! त्रिलोचन! महेशान! देवाधिदेव! मोहवश हमने जो किया उसे आप क्षमा करें। हम सभी आपकी शरणमें हैं। आपके चरित्र विचित्र गहन तथा गुह्य हैं। शंकर! आप ब्रह्मा आदि सभीके लिये दुर्विज्ञेय हैं। मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो कुछ भी करता है, वह सब आप भगवान् ही अपनी योगमायासे करते हैं। इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर प्रसन्न-मनसे (मुनियोंने)

१-मेघ शंकरके वाहन हैं इसलिये वे 'घनवाहन' है।

२-भगवान् शंकरके वीर्यसे स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है और स्वर्ण वह्निका ही एक रूप है इसलिये भगवान् शंकरको वह्निरेता कहते हैं।

३-ब्रह्माके सिर-हरणकी कथा पिछले अध्यायमें आयी है।

४-वह्नि महादेवकी मूर्ति हैं और वह्निका ही रूप कनक (स्वर्ण) है इसीलिये महादेवको कनकलिङ्ग कहते हैं।

५-जल भी भगवान् महादेवकी मूर्ति है इसलिये महादेवको वारि (जल)-की मूर्ति कहते हैं।

६-कर्णिकार पुष्प-विशेषका नाम है।

उनको प्रणाम किया और कहा—हम लोग आपको पूर्वरूपम देखना चाहत हैं॥ ११७—१२०॥

तेषा सस्तवमाकर्ण्य सोम सोमविभूषण ।
स्वमेव परम रूप दर्शयामास शकर ॥१२१॥
त ते दृष्ट्वाथ गिरिश दव्या सह पिनाकिनम्।
यथा पूर्वं स्थिता विप्रा प्रणेमुर्हृष्टमानसा ॥१२२॥
ततस्ते मुनय सर्वे सस्तूय च महेश्वरम्।
भृग्वङ्गिरोवसिष्ठास्तु विश्वामित्रस्तथैव च॥१२३॥
गौतमोऽत्रि सुकेशश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
मरीचि कश्यपश्चापि सवर्तश्च महातपा ।
प्रणम्य देवदेवेशमिद वचनमब्रुवन्॥१२४॥

उनकी (मुनियाकी इस) स्तुतिको सुनकर चन्द्रभूषण सोम शकरने अपने परम रूपका दर्शन (उन्ह) कराया। उन पिनाकी गिरिशको दवी (पार्वती)-के साथ पहल-जैसे (मङ्गलमय) रूपमें स्थित देखकर प्रसन्न-मनवाले ब्राह्मणाने उन्ह प्रणाम किया। तदनन्तर भृगु, अगिरा, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र गौतम अत्रि सुकेश पुलस्त्य, पुलह क्रतु, मरीचि कश्यप तथा महातपस्वी सवर्त आदि सभी ऋषियाने महेश्वरकी स्तुतिकर उन देवदेवेशको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १२१—१२४॥

कथ त्वा देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो।
ज्ञानेन वाथ योगन पूजयाम सदैव हि॥१२५॥
केन वा देवमार्गेण सम्पूज्यो भगवानिह।
कि सेव्यमसेव्य वा सर्वमेतद् ब्रवीहि न ॥१२६॥

देवदेवेश! प्रभो! हम सब किस प्रकारसे आपकी सदा पूजा कर, कर्मयोग या ज्ञानयोगसे? किस देवमार्ग (प्रशस्त मार्ग)-के द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये हम लोगाके लिय क्या सेवनीय है क्या असेवनीय ह यह सब आप हमें बतलाय॥ १२५-१२६॥

दवदव उवाच

एतद् व सम्प्रवक्ष्यामि गूढ गहनमुत्तमम्।
ब्रह्मण कथित पूर्वमादावव महर्षय ॥१२७॥

देवदेवने कहा—महर्षियो! मैं आप लागाका यह उत्तम और गम्भीर रहस्य बतलाता हूँ। पूवकालम (मैंने) इस ब्रह्माजीका बतलाया था॥ १२७॥

साख्ययोगा द्विधा ज्ञेय पुरुपाणा हि साधनम्।
योगेन सहित साख्य पुरुपाणा विमुक्तिदम्॥१२८॥
न केवलेन योगेन दृश्यत पुरुष पर ।
नान तु केवल सम्यगपवर्गफलप्रदम्॥१२९॥
भवन्त केवल याग समाश्रित्य विमुक्तये।
विहाय साख्य विमलमकुर्वन्त परिश्रमम्॥१३०॥
एतस्मात् कारणात् विप्रा नृणा कवलधर्मिणाम्।
आगतोऽहमिम दश ज्ञापयन् मोहसम्भवम्॥१३१॥
तस्माद् भवद्भिर्विमल ज्ञान कैवल्यसाधनम्।
ज्ञातव्य हि प्रयत्नेन श्रोतव्य दृश्यमेव च॥१३२॥

पुरुषाके लिये साधनस्वरूप दा प्रकारका साख्ययोग समझना चाहिय। योगसहित (कमयागसहित अर्थात् अनासक्तभावसे कर्मनिष्ठाके साथ) साख्य (ज्ञाननिष्ठा) पुरुषाको मुक्ति प्रदान करनवाला है। केवल योगके द्वारा परम पुरुषका दर्शन नहीं होता। (शुद्ध) ज्ञान (ज्ञाननिष्ठा) भलीभाँति केवल मोक्ष-फलको देनेवाला है। आप लोग मुक्ति प्राप्त करनेके लिये विमल साख्यका परित्याग करके केवल योगका ही अवलम्बनकर परिश्रम कर रह थे। ब्राह्मणो! इसी कारणस केवल धर्म करनेवाल (कर्ममात्रनिष्ठ-कर्मव्यसनी) मनुष्योको मोह उत्पन्न होता है, यह बतानेक लिये मैं इस स्थानपर आया हूँ। अत आप लोगोंको मोक्षके साधनरूप विशुद्ध ज्ञानको प्रयत्नपूर्वक जानना सुनना तथा उसका साक्षात्कार करना चाहिय॥ १२८—१३२॥

एक सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रक ।
आनन्दो निर्मलो नित्य स्यादतत् साख्यदर्शनम्॥१३३॥
एतदेव पर ज्ञानमेष मोक्षोऽत्र गीयते।
एतत् कैवल्यममल ब्रह्मभावश्च वर्णित ॥१३४॥
आश्रित्य चैतत् परम तन्निष्ठास्तत्परायणा ।
पश्यन्ति मा महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्॥१३५॥

आत्मा सर्वत्र व्याप्त, विशुद्ध चिन्मात्र आनन्द निर्मल नित्य तथा एक है। यही साख्य (ज्ञाननिष्ठाका) दर्शन है। यही परम ज्ञान है इसीको यहाँ मोक्ष कहा गया है। यही निर्मल मोक्ष है और यही शुद्ध ब्रह्मभाव बताया गया है। इस परम (ज्ञान)-का आश्रय ग्रहणकर उसम ही निष्ठा रखते हुए और उसीके परायण रहत हुए महात्मा तथा यतिजन मुझ विश्वरूप ईश्वरका दर्शन करत हैं॥ १३३—१३५॥

एतत् तत् परम ज्ञान केवल सन्निरञ्जनम्।
अह हि वेद्यो भगवान् मम मूर्तिरिय शिवा॥१३६॥
बहूनि साधनानीह सिद्धय कथितानि तु।
तपामभ्यधिक ज्ञान मामक द्विजपुगवा ॥१३७॥

यही वह सत्, निरञ्जन तथा अद्वितीय परम ज्ञान है। मुझे ही भगवान् जानना चाहिये और यह शिवा मरी ही मूर्ति है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! सिद्धिक लिये यहाँ (शास्त्राम) बहुतसे साधन

बताये गये हैं, किंतु उनम मर विषयका ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है॥ १३६—१३७॥

ज्ञानयोगरता शान्ता मामेव शरण गता ।
ये हि मा भस्मनिरता ध्यायन्ति सतत हृदि॥१३८॥
मद्भक्तिपरमा नित्य यतय क्षीणकल्मषा ।
नाशयाम्यचिरात् तेषा घोर ससारसागरम्॥१३९॥

भस्म धारण करनेवाले, (ससारकी नि सारताको हृदयसे समझनेवाले) ज्ञानयोगपरायण शान्त और मेरे ही शरणम आये हुए जो लाग हृदयम निरन्तर मेरा ही ध्यान करते हैं और नित्य मेरी परम भक्तिम तत्पर हैं, कल्मषोसे रहित एव पूर्ण सयत हैं, उन लोगाके घोर ससाररूपी सागरको मैं शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ॥ १३८-१३९॥

प्रशान्त सयतमना भस्मोद्धूलितविग्रह ।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रत पाशुपत चरेत्॥१४०॥
निर्मित हि मया पूर्वं व्रत पाशुपत परम्।
गुह्याद् गुह्यतम सूक्ष्म वेदसार विमुक्तये॥१४१॥

भस्मसे धूसरित शरीरवाला हाकर सयत-मन तथा शान्त होकर ब्रह्मचर्यव्रत-परायण होते हुए वस्त्रादि परिधानकी आसक्तिसे रहित होकर पाशुपत-व्रतका पालन करना चाहिय। मुक्ति-प्राप्तिके लिये मैंने पूर्वकालमे गुह्यसे भी गुह्यतम, वेदके सार-रूप, सूक्ष्म एव श्रेष्ठ पाशुपतव्रतका उपदेश किया था॥ १४०-१४१॥

यद् वा कौपीनवसन स्याद् वैकवसनो मुनि ।
वेदाभ्यासरतो विद्वान् ध्यायत् पशुपति शिवम्॥१४२॥
एष पाशुपता योग सेवनीयो मुमुक्षुभि ।
भस्मच्छन्नैर्हि सततं निष्कामैरिति विश्रुति ॥१४३॥
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता ।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागता ॥१४४॥

अथवा कौपीन वस्त्र या एक वस्त्र धारणकर विद्वान् मुनिको वेदाभ्यासमे रत रहते हुए पशुपति शिवका (सतत) ध्यान करना चाहिय। माक्षकी अभिलाषावाले मुमुक्षुजनाको सतत भस्मस उपलिप्त रहकर निष्कामभावमे इस पाशुपतयोगका सवन करना चाहिये। एसा श्रुतिका कथन है। राग, भय तथा क्रोधसे सर्वथा रहित मुझे ही सर्वस्व समझनेवाले और मेरा ही आश्रय ग्रहण करनवाले बहुतस (भक्तजन) इस यागके द्वारा पवित्र हाकर मेरे भावका प्राप्त हुए हैं॥ १४२—१४४॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन् मोहनानि तु।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु॥१४५॥
वाम पाशुपत सोम लाकुल चैव भैरवम्।
असेव्यमेतत् कथित वेदबाह्य तथेतरम्॥१४६॥

इस ससारमें मोहित करनेवाले तथा वेदमतका विरोध करनेवाल अन्य भी शास्त्र हैं, वे मेरेद्वारा ही कहे गये हैं। वाम (मार्ग), पाशुपत सोम, लाकुल तथा भैरव (मार्ग) तथा अन्य—ये असेव्य और वेदबाह्य कहे गये हैं॥ १४५-१४६॥

वेदमूर्तिरह विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभि ।
ज्ञायते मत्स्वरूप तु मुक्त्वा वेद सनातनम्॥१४७॥
स्थापयध्वमिद मार्गं पूजयध्व महेश्वरम्।
अचिरादैश्वर ज्ञानमुत्पत्स्यति न सशय ॥१४८॥
मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमा ।
ध्यातमात्रो हि सानिध्य दास्यामि मुनिसत्तमा ॥१४९॥

ब्राह्मणो! मैं वेदमूर्ति हूँ। सनातन वेदका परित्यागकर दूसरे शास्त्रको जाननेवाले लोग मेरे स्वरूपको नहीं जान सकते। (अत आप लोग) इस मार्गकी स्थापना करें, महेश्वरकी पूजा कर (इससे) शीघ्र ही आप लोगोको ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सशय नहीं है। श्रेष्ठ जनो! आप सभीकी मुझमे महान् भक्ति हो। श्रेष्ठ मुनियो! ध्यान करने मात्रसे मैं आपको अपना सानिध्य प्रदान करूँगा॥ १४७—१४९॥

इत्युक्त्वा भगवान् सोमस्तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि दारुवने तस्मिन् पूजयन्ति स्म शकरम्।
ब्रह्मचर्यरता शान्ता ज्ञानयोगपरायणा ॥१५०॥
समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिन ।
वितेनिरे बहून् वादानध्यात्मज्ञानसश्रयान्॥१५१॥

इतना कहकर भगवान् सोम (शकर) वहीपर अन्तर्धान हो गये। वे शान्त महर्षि भी ब्रह्मचर्यपरायण होकर ज्ञानयोग-परायण रहते हुए उस दारुवनमे शकरकी पूजा करने लगे। उन ब्रह्मवादी महात्मा मुनिगणाने (स्वय मोहरहित हो जानेके कारण) एकत्रित होकर अध्यात्मज्ञान-सम्बन्धी बहुतसे सिद्धान्तोंका विस्तार किया॥ १५०-१५१॥

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि।
कोऽपि स्यात् सर्वभावाना हेतुरीश्वर एव च॥१५२॥
इत्येव मन्यमानाना ध्यानमार्गावलम्बिनाम्।
आविरासीन्महादेवी देवी गिरिवरात्मजा॥१५३॥

इस जगत्का मूल (कारण) क्या है? (उत्तर—) हमारी आत्मा ही इस जगत्का मूल है। सभी भाव पदार्थोंका हेतु कौन है? (उत्तर—) ईश्वर ही सभी भावाका जनक है। इस प्रकारकी दृढ धारणाके साथ ध्यानमार्गका अवलम्बन करनेवाले

उन महर्षियोके समक्ष श्रेष्ठ पर्वत (हिमालय)-की पुत्री महादेवी पार्वती प्रकट हुईं॥ १५२-१५३॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता।
स्वभाभिर्विमलाभिस्तु पूरयन्ती नभस्तलम्॥ १५४॥
तामन्वपश्यन् गिरिजाममेया
ज्वालासहस्रान्तरसंनिविष्टाम्।
प्रणेमुरेकामखिलेशपत्नीं
जानन्ति ते तत् परमस्य बीजम्॥ १५५॥

करोडा सूर्यके समान, ज्वालामालाओ (तेजोराशि)-से समावृत वे अपनी विमल प्रभासे आकाशमण्डलको आपूरित कर रही थीं। हजारों ज्वालाओ (तेजोमण्डल)-के मध्यम प्रतिष्ठित, अतुलनीय, अद्वितीय सम्पूर्ण जगत्के ईश (शकर)-की पत्नी उन गिरिजाका दर्शनकर मुनियाने उन्हे प्रणाम किया। क्याकि वे जानते हैं कि ये ही परमेश्वरा परमश्वर महश्वरकी मूलशक्ति (बीज) हैं॥ १५४-१५५॥

अस्माकमेषा परमशपत्नी
गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना।
पश्यन्त्यथात्मानमिद च कृत्स्न
तस्यामथैत मुनयश्च विप्रा॥ १५६॥
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।
पश्यन्ति शम्भु कविमीशितार
रुद्र बृहन्त पुरुष पुराणम्॥ १५७॥
आलोक्य देवीमथ देवमीश
प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम्।
ज्ञान तदैश भगवत्प्रसादा-
दाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु॥ १५८॥

अनन्तर उन लोगोन ऐसी भावना की—ये ही परमेश-पत्नी हम सबकी गति है, आत्मा है इन्हे गगन (आकाश) नामसे कहा जाता है (क्याकि ये महादेवी वस्तुगत्या निराकार तथा परम व्यापक हैं अतएव परम अवकाशस्वरूप सर्वाधिष्ठान होनस कथचित् आकाशक द्वारा तुलनीय हैं और परब्रह्मका व्योम (आकाश) नाम है ही तथा इन महादेवी एव परब्रह्मम सर्वथा अभेद है।) समस्त मुनि एव समस्त विप्र इन्हीम अपनको तथा समस्त प्रपञ्चको दखते हैं। (मुनियाक इस पवित्र भावस सतुष्ट हाकर) परमश्वरकी पत्नी (पार्वती)-न उन्ह (विशषरूपस) दखा। इसी बाच (मुनियान) सभाक मूल कारण नियामक पुराण पुरुष बृहत् एव रुद्रात्मक कवि दव शम्भु (महादेव)-का दशन किया। तदनन्तर देवी (पार्वती) तथा दव (शकर)-को दखकर उन्होने (मुनियान) प्रणाम किया, उत्तम आनन्द प्राप्त किया और उनमे भगवान् (परमेश)-की कृपासे जन्मके विनाशके हेतुरूप अर्थात् पुनर्जन्म न करानेवाले ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका आविर्भाव हुआ॥ १५६—१५८॥

इय हि सा जगतो योनिरेका
सर्वात्मिका सर्वनियामिका च।
माहेश्वरीशक्तिरनादिसिद्धा
व्योमाभिधाना दिवि राजतीव॥ १५९॥
अस्या महत्परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वर शिव एकोऽथ रुद्र।
चकार विश्व परशक्तिनिष्ठा
मायामथारुह्य स देवदेव॥ १६०॥

(इस ज्ञानके आविर्भावके साथ ही मुनियाने यह अनुभव किया) ये ही देवी जगत्की एकमात्र मूल कारण सर्वात्मिका, सबका नियन्त्रण करनेवाली तथा अनादिसिद्ध व्योम नामवाली माहश्वरी शक्ति हैं, जो द्युलोकमे शोभित होती हुई प्रतीत हो रही हैं। देवाधिदव महान् परमेष्ठी परसे भी पर अद्वितीय रुद्र महेश्वर शिवने इसी परम शक्ति (महादेवी)-मे अंशरूपसे विद्यमान मायाका आश्रय ग्रहणकर विश्वकी सृष्टि की॥ १५९-१६०॥

एको दव सर्वभूतेषु गूढो
मायी रुद्र सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्न-
मेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्व व्रजन्ति॥ १६१॥
अन्तर्हितोऽभूद् भगवानथेशो
देव्या भर्ग, सह देवादिदेव।
आराधयन्ति स्म तमेव देव
वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम्॥ १६२॥

ये देव ही सभी प्राणियामे गूढ-रूपसे प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सर्वत्र सूक्ष्मरूपसे व्याप्त हैं। वे मायी (मायाके नियन्ता) रुद्र सकल (साकार) तथा निष्कल (निराकार) हैं। वे ही देवी (रूप) हैं उनसे भिन्न (जगत्मे और कुछ भी) नहीं है एसा जानकर अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। इधर भर्ग (वरण्य तेजोरूप) देवाधिदेव भगवान् परमेश मुनियोके मोहको दूरकर तथा उन्हे परमज्ञानसे सम्पन्न कर महादेवीके साथ अन्तर्हित हो गये और एकमात्र अरण्यको ही अपना घर माननेवाले वे परम ज्ञानी मुनि लोग उन परम देव रुद्रकी आराधनामे सलग्न हो गये॥ १६१-१६२॥

एतद् य कथित सर्वं देवदेवविचेष्टितम्।
देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम्॥१६३॥
य पठेच्छृणुयान्नित्य मुच्यते सर्वपातकै ।
श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् स याति परमा गतिम्॥१६४॥

इस तरह प्राचीन कालमे देवदारुवनमे घटित देवाधिदेवका जो वृत्तान्त मैंने पुराणम सुना था वह आप लोगोको बता दिया। जो नित्य इसका पाठ करेगा अथवा श्रवण करेगा, वह सभी पातकासे मुक्त हो जायगा अथवा जो शान्त द्विजोको इसे सुनायेगा, वह परम गतिका प्राप्त होगा॥१६३-१६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या संहितायामुपरिविभागे सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमे मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-सवादका प्रारम्भ, मार्कण्डेयजीद्वारा नर्मदा तथा अमरकण्टकतीर्थके माहात्म्यका प्रतिपादन

सूत उवाच

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता।
नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी॥१॥
तस्या शृणुध्व माहात्म्य मार्कण्डेयेन भाषितम्।
युधिष्ठिराय तु शुभ सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

सूतजीने कहा—देवताओ तथा गन्धर्वोंद्वारा सेवित ये अत्यन्त पवित्र नर्मदादेवी ससारमे प्रसिद्ध हैं तथा नदीरूपम सभी तीर्थोंम उत्तम तीर्थ हैं। इनका वह शुभ माहात्म्य आप लोग सुन जो महर्षि मार्कण्डेयद्वारा युधिष्ठिरको बताया गया है तथा सभी पापोका नाशक होनेके कारण शुभ है॥ १-२॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्तु विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने।
माहात्म्य च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च॥३॥
नर्मदा सर्वतीर्थाना मुख्या हि भवतेरिता।
तस्यास्त्विदानीं माहात्म्य वक्तुमर्हसि सत्तम॥४॥

युधिष्ठिर बोले—महामुने! आपकी कृपासे मैंने विविध धर्मोंको सुना साथ ही प्रयागका माहात्म्य और विविध तीर्थोंका भी (माहात्म्य) श्रवण किया। आपने बतलाया कि सभी तीर्थोंमे नर्मदा मुख्य हैं, अत हे सत्तम! इस समय आप उन्हींका माहात्म्य मुझे बतलायें॥ ३-४॥

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनि सृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥५॥
नर्मदायास्तु माहात्म्य पुराणे यन्मया श्रुतम्।
इदानी तत् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वैकमना शुभम्॥६॥

मार्कण्डेयने कहा—रुद्रकी देहसे निकली हुई नर्मदा सभी नदियोमें श्रेष्ठ हैं। (वे) सभी चर-अचर प्राणियाको पार उतारनेवाली हैं। पुराणमे नर्मदाका जो माहात्म्य मैंने सुना है उसे अब बतलाता हूँ, आप लोग एकाग्र होकर सुने—॥५-६॥

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥७॥
त्रिभि सारस्वत तोय सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्य पुनाति गाङ्गेय दर्शनादेव नार्मदम्॥८॥

गङ्गा कनखलमे तथा सरस्वती कुरुक्षेत्रमे पवित्र (कही गयी) हैं किंतु ग्राम अथवा अरण्यमे सर्वत्र ही नर्मदाको पवित्र कहा गया है। सरस्वतीका जल तीन दिन यमुनाका जल सात दिन तथा गङ्गाजल तत्काल सेवनसे किंतु नर्मदाका जल दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है॥ ७-८॥

कलिङ्गदेशपश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके।
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥९॥
सदेवसुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधना ।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धि तु परमा गता ॥१०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रिय ।
उपोष्य रजनीमेका कुलाना तारयेच्छतम्॥११॥

कलिंग देशके पश्चार्धमे अमरकण्टक पर्वतपर तीनो लोकोमें पवित्र रमणीय, मनोरम नर्मदाका उद्गम स्थल है। राजेन्द्र! वहाँ देवताओसहित असुरो गन्धर्वों ऋषियों तथा तपस्वियोने तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की है। राजन्! मनुष्य वहाँ (नर्मदामे) स्नान करके जितेन्द्रिय तथा नियम-परायण रहते हुए एक रात्रि उपवास करे तो अपने सौ पीढ़ियोंको तार देता है॥ ९—११॥

योजनाना शत साग्र श्रूयत सरिदुत्तमा।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता॥१२॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च।
पर्वतस्य समन्तात् तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके॥१३॥
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रत ॥१४॥
एव सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् समुत्सृजेत्।
तस्य पुण्यफल राजन् शृणुष्वावहितो नृप॥१५॥

राजेन्द्र! सुना जाता है कि वह श्रेष्ठ नदी सौ याजनसे कुछ अधिक लम्बी तथा दो याजन चौडे विस्तारमे फैली है। अमरकण्टक पर्वतम चारो ओर साठ करोड साठ हजार तीर्थ स्थित हैं। राजन्! जा ब्रह्मचर्यपरायण है, पवित्र है, क्रोध तथा इन्द्रियापर विजय प्राप्त किया हे सभी प्रकारकी हिसाओंसे सर्वथा निवृत्त है सभी प्राणियाके हितमें परायण है तथा ऐसे ही सभी पवित्र आचारासे सम्पन्न है, वह मनुष्य यहाँ प्राणाका परित्यागकर जिस पुण्य फलको प्राप्त करता है, उसे आप सावधान होकर सुने—॥१२—१५॥

शतवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाण्डव।
अप्सरोगणसकीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारित ॥१६॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पापशोभित ।
क्रीडते दवलाके तु दैवतै सह मोदते॥१७॥
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिक ।
गृह तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम्॥१८॥
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् ।
आलेख्यवाहनै शुभ्रैर्दासीदाससमन्वितम्॥१९॥
राजराजेश्वर श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभ ।
जीवेद् वर्षशत साग्र तत्र भोगसमन्वित ॥२०॥

पाण्डव! वह पुरुष अप्सराआक समूहासे व्याप्त अर्थात् सवित तथा चारा आर दिव्य स्त्रियास आवृत रहकर स्वर्गम सा हजार वर्षोनक आनन्द प्राप्त करता है। दिव्य गन्ध (चन्दन)-स अनुलिप्त हाकर तथा दिव्य पुष्पाम सुशाभित हाकर दवलाकम क्राडा करता ह आर दवताआक साथ आनन्द प्राप्त करता है। स्वर्गम सुख भागन याग्य पुण्याक नि शप हानपर वह धार्मिक राजा हाता है और नाना प्रकारक रत्नास समन्वित दिव्य मणिमय स्तम्भा हीर एव वदूर्यमणिम विभूषित उत्तम चित्रा तथा वाहनाम अलकृत और दासी-दासमे समन्वित भवन प्राप्त करता है। वह राजराजश्वर श्रीसम्पन्न सभी स्त्रियाका प्रियकर तथा भागाम युक्त हाकर वहाँ (पृथ्वीपर) सा वपम भी अधिक समयतक जीवित रहता है॥१६—२०॥

अग्निप्रवेशऽथ जल अथवाऽनशने कृते।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा॥२१॥

(इस तीर्थम) अग्नि अथवा जलम प्रवेश करने अथवा अनशन-व्रत करनेमे वैसी ही पुनरागमनरहित गति होती है, जैसी कि आकाशम पवनकी हाती है (इसका आशय यह है कि शास्त्रविहित तपक रूपमे अग्निप्रवेश आदि तप इस तीर्थमें अक्षय पुण्य दनेवाले हात हैं)॥२१॥

पश्चिमे पर्वततट सर्वपापविनाशन ।
ह्रदो जलश्वरा नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥२२॥
तत्र पिण्डप्रदानेन सध्योपासनकर्मणा।
दशवर्षाणि पितरस्तर्पिता स्युर्न सशय ॥२३॥

(अमरकण्टक) पर्वतके पश्चिमी किनारेपर सभी पापाका नाश करनवाला और तीनो लोकाम विख्यात जलेश्वर नामका एक ह्रद (तालाब) हे। वहाँ पिण्डदान करने तथा सध्योपासन कर्म करनम दस (हजार) वर्षतक पितर तृप्त रहते हैं इसमे सदेह नहीं॥२२-२३॥

दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी।
सरलार्जुनसच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥२४॥
सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशत साग्र तीर्थाना तु युधिष्ठिर॥२५॥
तस्मिस्तीर्थे तु य वृक्षा पतिता कालपर्ययात्।
नर्मदातोयसस्पृष्टास्त यान्ति परमा गतिम्॥२६॥
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्॥२७॥
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम।
ईश्वरेण पुरा प्राक्ता लाकाना हितकाम्यया॥२८॥
अनाशक तु य कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोक स गच्छति॥२९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमधफल लभेत्।
य वसन्त्युत्तरे कूल रुद्रलोके वसन्ति ते॥३०॥

नमदाके दक्षिण तटके समीपम ही कपिला नामवाली महानदी स्थित है जा साल तथा अर्जुनक वृक्षासे घिरी हुई है। वह महाभागा (नदी) पवित्र तथा तीनो लाकोंमें विख्यात है। युधिष्ठिर! यहाँ सौ कराडसे भी अधिक तीर्थ हैं। कालक्रमसे जा वृक्ष उस तीर्थम गिरत हैं व नमदाके जलका स्पर्श प्राप्त हो जानके कारण परम गतिको प्राप्त हात हैं। दूसरी महाभागा शुभ नदी विशल्यकरणी है उस तीर्थम स्नानकर मनुष्य तत्क्षण हा शल्यम (सभी प्रकारक पापरूपी काँटोंम) रहित हा जाता है। राजश्रेष्ठ! यह आप श्रुति है कि ईश्वरने इन कपिला तथा

विशल्या नामकी दोनो नदियोको प्राणिमात्रके कल्याण करनेका आदेश पहलसे ही दे रखा है। नराधिपति! उस तीर्थम जो (शास्त्रीय विधिसे) अनशनव्रत करता है वह सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकम जाता है। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमधका फल प्राप्त करता है और जो लोग उत्तरी तटपर निवास करत हैं, वे रुद्रलाकमे निवास करते हैं॥ २४—३०॥

सरस्वत्या च गङ्गाया नर्मदाया युधिष्ठिर।
सम स्नान च दान च यथा मे शकरोऽब्रवीत्॥ ३१॥
परित्यजति य प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टक।
वर्षकोटिशत साग्र रुद्रलोके महीयते॥ ३२॥
नर्मदाया जल पुण्य फेनोर्मिसमलकृतम्।
पवित्र शिरसावन्द्य सर्वपापै प्रमुच्यते॥ ३३॥
नर्मदा सर्वत पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३४॥
जालेश्वर तीर्थवर सर्वपापविनाशनम्।
तत्र गत्वा नियमवान् सर्वकामाँल्लभेन्नर॥ ३५॥
चन्द्रसूर्योपरागे तु गत्वा ह्यमरकण्टकम्।
अश्वमेधाद् दशगुण पुण्यमाप्नोति मानव॥ ३६॥

युधिष्ठिर! शकरने मुझे जैसा बतलाया था उसके अनुसार गङ्गा सरस्वती एव नर्मदामे किया गया स्नान और दान समान फलदायक होता है। जो अमरकण्टक पर्वतपर प्राणाका परित्याग करता है वह सौ करोड वर्षोंसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमे पूजित होता है। फेन और उर्मियो (तरङ्गो)-से अलकृत नर्मदाके पवित्र जलको पवित्रतापूर्वक सिरसे वन्दित करनेपर अर्थात् सिरपर धारण करनेस मनुष्य सभी पापासे मुक्त हो जाता है। नर्मदा सभी प्रकारसे पवित्र और ब्रह्महत्याको दूर करनेवाली है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करनेसे ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्ति हो जाती है। जालेश्वर नामका श्रेष्ठ तीर्थ सभी पापाको नष्ट करनेवाला है। वहाँ जाकर नियमसे रहनेवाला मनुष्य सभी कामनाओको प्राप्त कर लेता है। चन्द्र तथा सूर्यग्रहणमे अमरकण्टककी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमध-यज्ञस दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त करता है॥ ३१—३६॥

एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसवित।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभित॥ ३७॥
तत्र सनिहितो राजन् देव्या सह महेश्वर।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणै सह॥ ३८॥
प्रदक्षिण तु य कुर्यात् पर्वत ह्यमरकण्टकम्।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोति मानव॥ ३९॥
कावेरी नाम विपुला नदी कल्मषनाशिनी।
तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद् वृषभध्वजम्।
सगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते॥ ४०॥

यह पुण्यप्रद श्रेष्ठ पर्वत (अमरकण्टक) दवताओं तथा गन्धर्वोंद्वारा सेवित नाना प्रकारके वृक्षा और लताआसे परिपूर्ण एव विविध प्रकारके पुष्पास सुशोभित है। राजन्! यहाँ देवी (पार्वती)-के साथ महेश्वर और विद्याधरगणाके साथ ब्रह्मा विष्णु तथा इन्द्र भी स्थित रहते हैं। जो मानव अमरकण्टक पर्वतकी परिक्रमा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। ऐसे ही कावरी नामकी एक प्रसिद्ध नदी है। यह विशाल है तथा कल्मषाका नाश करनेवाला है। उसम स्नानकर तथा नर्मदाक सगममे स्नान करके वृषभध्वज महादेवकी आराधना करनस रुद्रलोकम प्रतिष्ठा प्राप्त होता है॥ ३७—४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्या सहितायामुपरिविभागे अष्टात्रिंशोऽध्याय ॥ ३८॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागम अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-वणनके प्रसगमे नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोका विस्तारसे वणन

मार्कण्डय उवाच

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी।
मुनिभि कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुवा॥ १॥
मुनिभि सस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रगात्राद् विनिष्क्रान्ता लोकाना हितकाम्यया॥ २॥
सर्वपापहरा नित्य सर्वदवनमस्कृता।
सस्तुता देवगन्धर्वैरप्सराभिस्तथैव च॥ ३॥

मार्कण्डयने कहा—मुनियान तथा उनस पूर्व स्वयम्भू ईश्वरन नर्मदाका वर्णन सभी पापाका नाश करनवाली सर्वश्रेष्ठ नदीक रूपमें किया है। मुनियाद्वारा स्तुति करनपर यह श्रेष्ठ नर्मदा

नदी लोगोके कल्याणकी कामनासे रुद्रके शरीरसे निकली है। यह नित्य सभी पापाको हरनेवाली है, सभी देवोद्वारा नमस्कृत है और देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंके द्वारा स्तुत्य है॥ १—३॥

उत्तरे चैव तत्कूले तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतै सह मोदते॥४॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥५॥

इस (नर्मदा) नदीके उत्तरी किनारेपर तीनो लोकामे विख्यात भद्रेश्वरनामका तीर्थ है, जो पवित्र, शुभ तथा सभी पापोका हरण करनेवाला है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओके साथ आनन्दित होता है। राजेन्द्र! वहाँसे आम्रातकेश्वर तीर्थमे जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य हजार गौआके दानका फल प्राप्त करता है॥ ४-५॥

ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशन।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥६॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम्।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥७॥
पिप्पलेशं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते॥८॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥९॥
ततः पुष्करिणीं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥१०॥

तदनन्तर संयमपूर्वक नियत आहार करते हुए अङ्गारेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। इससे (तीर्थ-विधि सम्पन्न करनेसे) सभी पापाका शोधन होता है और रुद्रलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। राजेन्द्र! इसके बाद पुण्य प्रदान करनेवाले केदार नामक तीर्थमे जाना चाहिये वहाँ स्नान करके उदकदान (तर्पण आदि क्रिया) करनेसे सभी कामनाओकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर सभी पापोका विनाश करनेवाले पिप्पलेश (तीर्थ)-में जाना चाहिये। महाराज! वहाँ स्नान करनेसे रुद्रलोकमे आदर प्राप्त होता है। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ विमलेश्वर (तीर्थ)-मे जाना चाहिये। वहाँ प्राणोंका परित्याग करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है। इसके बाद पुष्करिणीमे जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य इन्द्रका आधा आसन प्राप्त करता है॥ ६—१०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेदमिति श्रुतम्।
तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत्॥११॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र बलितीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्॥१२॥
शक्रतीर्थं ततो गच्छेत् कूले चैव तु दक्षिणे।
उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि॥१३॥
आराधयेन्महायोगं देवं नारायणं हरिम्।
गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१४॥

राजेन्द्र! ऐसी श्रुति है कि वहाँसे शूलभेद नामके तीर्थमे जाना चाहिये। वहाँ स्नान करके देवाराधना करनी चाहिये। इससे हजार गौओके दानका फल प्राप्त होता है। राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम बलितीर्थमे जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सिंहासनाधिपति अर्थात् राजा होता है। इसके उपरान्त (बलितीर्थके) दक्षिणी किनारेपर स्थित शक्रतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ एक रात्रि उपवास करके यथाविधि स्नान करना चाहिये तथा महायोगस्वरूप नारायण हरिका आराधना करनी चाहिये। इनसे हजार गौओके दानका फल प्राप्तकर मनुष्य विष्णुलोकमे जाता है॥ ११—१४॥

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते॥१५॥
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥१६॥
यत्र तप्तं तपः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः॥१७॥
ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम्।
यत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते॥१८॥

तदनन्तर मनुष्योंके समस्त पापोंको हरनेवाले ऋषितीर्थमे जाकर वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य शिवलोकमे पूजित होता है। वहींपर नारदजीका परम शोभन तीर्थ है। वहाँ स्नानमात्र करके मनुष्य हजार गोदानका फल प्राप्त करता है। पूर्वकालमे इसी तीर्थमें देवर्षि नारदने तपस्या की थी और इसी तपस्याके फलस्वरूप देवाधिदेव महेश्वरने प्रसन्न होकर उन्हें योग प्रदान किया था। राजन्! ब्रह्माके द्वारा स्थापित लिङ्ग ब्रह्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। इस तीर्थमे स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १५—१८॥

ऋणतीर्थं ततो गच्छेत् स ऋणान्मुच्यते ध्रुवम्।
महेश्वरं ततो गच्छेत् पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥१९॥
भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वव्याधिविनाशनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥२०॥

तदनन्तर ऋणतीर्थमें जाना चाहिये वहाँ जानेवाला निश्चित ही ऋणसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद महेश्वर-तीर्थमें जाना

चाहिये। वहाँ जाकर तीर्थसवन करनेस जन्मका अन्तिम फल (महेश्वरका दर्शन) प्राप्त हाता है। तदुपरान्त सभी व्याधियोका विनाश करनेवाले भीमेश्वर-तीर्थमे जाना चाहिय। वहाँ स्नानमात्र करनेस मनुष्य सभी दु खासे मुक्त हो जाता है॥ १९-२०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥ २१॥
तस्मिस्तीर्थे तु राजन्द्र कपिला य प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २२॥
यस्तु प्राणपरित्याग कुर्यात् तत्र नराधिप।
अक्षय मोदते काल यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २३॥
नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठन्ते ये तु मानवा।
ते मृता स्वर्गमायान्ति सन्त सुकृतिनो यथा॥ २४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम पिङ्गलश्वर (तीर्थम) जाना चाहिय। वहाँ अहोरात्रका उपवास करनस त्रिरात्र (उपवास)-का फल प्राप्त होता है। राजेन्द्र! उस तीर्थम जा कपिला (गा)-का दान करता है, वह उस कपिलाके तथा उसक कुलम उत्पन्न सतानोंके शरीरापर जितने राम हाते हैं उतन ही हजार वर्षपर्यन्त रुद्रलोकमे प्रतिष्ठित होता है। नराधिप! वहाँ जा प्राणोका त्याग करता है, वह जबतक सूर्य-चन्द्रमा हैं तबतक अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। जो मनुष्य नर्मदाके तटका आश्रयकर (वहाँ) रहते हैं, वे मरनेपर पुण्यवान् सताके समान स्वर्ग प्राप्त करते हैं॥ २१—२४॥

ततो दीप्तेश्वर गच्छद् व्यासतीर्थं तपोवनम्।
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता॥ २५॥
प्रदक्षिण तु य कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे युधिष्ठिर।
प्रीतस्तस्य भवद् व्यासो वाञ्छित लभत फलम्॥ २६॥

तदनन्तर व्यासतीर्थ नामक तपोवनम स्थित दीप्तश्वर (तीथम) जाना चाहिये। प्राचीन कालम वहाँ व्याससजीस भयभीत हाकर महानदी (नर्मदा) वापस हो गयी थी-आर व्यासक द्वारा हुकार किये जानेपर (अर्थात् राप प्रकट करनपर) वहाँस दक्षिणकी ओर चली गयी। युधिष्ठिर! उस तार्थम जो प्रदक्षिणा करता है प्रसन्न होकर व्यासजी उस अभिलषित फल प्रदान करत हैं॥ २५-२६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सगमम्।
त्रैलोक्यविश्रुत पुण्य तत्र सनिहित शिव।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २७॥
स्कन्दतीर्थं तता गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्
आजन्मन कृत पाप स्नातस्तीव्र व्यपोहति॥ २८॥
तत्र देवा सगन्धर्वा भवात्मजमनुत्तमम्।
उपासते महात्मान स्कन्द शक्तिधर प्रभुम्॥ २९॥
ततो गच्छेदाङ्गिरस स्नान तत्र समाचरेत्।
गोसहस्रफल प्राप्य रुद्रलोक स गच्छति॥ ३०॥

राजन्द्र! तदनन्तर तीना लोकोमे विख्यात तथा पवित्र इक्षुनदीक सगमपर जाना चाहिये। वहाँ शिव प्रतिष्ठित हैं। राजन्! वहाँ मनुष्य स्नानकर (शिवका) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। इसक बाद सभी पापोका विनाश करनेवाले स्कन्दतीर्थमे जाना चाहिय। वहाँ स्नान करनेसे जन्मभरका किया हुआ पाप शीघ्र ही दूर हो जाता है। वहाँ शकरजीक पुत्र, श्रेष्ठ महात्मा, शक्तिसम्पन्न प्रभु स्कन्दकी गन्धर्वोसहित देवता उपासना करते हैं। तदनन्तर आङ्गिरस तीर्थमे जाकर स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेवाला व्यक्ति हजार गोदानका फल प्राप्त कर रुद्रलोकम जाता है॥ २७—३०॥

अङ्गिरा यत्र देवेश ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्।
तपसाराध्य विश्वश लब्धवान् योगमुत्तमम्॥ ३१॥
कुशतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्।
स्नान तत्र प्रकुर्वीत अश्वमेधफल लभेत्॥ ३२॥
कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र स्नात्वा नरो राज्य लभते नात्र सशय॥ ३३॥

वहाँ ब्रह्माजीके पुत्र (महर्षि) अङ्गिराने तपस्याके द्वारा देवेश वृषध्वज विश्वेश्वरकी आराधना कर उत्तम योग प्राप्त किया था। तदनन्तर समस्त पापाका नष्ट करनेवाले कुशतीर्थम जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे व्यक्ति अश्वमेधका फल प्राप्त करता है। इसके पश्चात् सभी पापाको नष्ट करनेवाले काटितीर्थम जाना चाहिये। वहाँ स्नानकर मनुष्य राज्य प्राप्त कर लता है इसमे कोई सदह नहीं॥ ३१—३३॥

चन्द्रभागा ततो गच्छत् स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रा नरस्तत्र सामलोके महीयत॥ ३४॥
नर्मदादक्षिणे कूल सगमश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफल लभेत्॥ ३५॥
नर्मदायात्तरे कूल तीर्थं परमशोभनम्।
आदित्यायतन रम्यमीश्वरण तु भाषितम्॥ ३६॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दान तु शक्तित।
तस्य तीर्थप्रभावेण लभत चाक्षय फलम्॥ ३७॥
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये च दुष्कृतकारिण।
मुच्यन्त सवपापभ्य सूर्यलोक प्रयान्ति च॥ ३८॥

तदुपरान्त चन्द्रभागाम स्नान करना चाहिय। वहाँ स्नानमात्रसे

ही मनुष्य सामलाकम आदर प्राप्त करता है। राजन्! नमदाके दक्षिणी किनारेपर उत्तम सगमेश्वर (तीर्थ) है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञाका फल प्राप्त कर लेता है। नर्मदाक उत्तरी किनारेपर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ है। वहाँ आदित्यका रमणीय मन्दिर है। यह स्वय ईश्वरने बताया है। राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर यथाशक्ति दान देनेपर उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय फल प्राप्त होता है तथा जो लोग दरिद्र, व्याधियुक्त और दुष्कर्म करनेवाले हैं, वे सभी पापोसे मुक्त होकर सूर्यलाकको जाते हैं॥ ३४—३८॥

मार्गेश्वर ततो गच्छेत् स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ ३९॥
तत पश्चिमतो गच्छेन्मरुदालयमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा प्रयत्नत॥ ४०॥
काञ्चन तु द्विजो दद्याद् यथाविभवविस्तरम्।
पुष्पकेण विमानेन वायुलोक स गच्छति॥ ४१॥

तदनन्तर मार्गेश्वर (तीथ) जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। इसके पश्चात् पश्चिमकी ओर स्थित श्रेष्ठ मरुदालयमे (वायुके स्थानमे) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र होकर अपनी सम्पत्तिके विस्तारके अनुसार द्विजको स्वर्ण प्रदान करना चाहिये। एसा करनेवाला मनुष्य पुष्पक-विमानके द्वारा वायुलोक जाता है॥ ३९—४१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र अहल्यातीथमुत्तमम्।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमक्षयम्॥ ४२॥
चैत्रमासे तु सम्प्राप्त शुक्लपक्ष त्रयोदशी।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्या यस्तु पूजयत्॥ ४३॥
यत्र तत्र नरोत्पन्नो वरस्तत्र प्रियो भवत्।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापर॥ ४४॥
अयोध्या तु समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गासहस्रफल लभेत्॥ ४५॥

राजन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अहल्यातीर्थम जाना चाहिय। वहाँ स्नानमात्रस मनुष्य अक्षय (अनन्त) कालतक अप्सराआंक साथ आनन्द करता है। चैत्र शुक्ल पक्षकी त्रयादशी कामदवका दिन है। उस दिन इस अहल्यातीर्थमें जा मनुष्य अहल्याकी पूजा करता है वह जहाँ-कहीं भी उत्पन्न हाता है श्रेष्ठ तथा प्रिय हाता है और विशेषरूपमे दूसरे कामदवक समान हो जानस श्री-शाभासम्पन्न तथा स्त्रीवल्लभ होता है। इन्द्रक प्रसिद्ध तीर्थ अयाध्याम आकर स्नानमात्र करनवाला मनुष्य हजार गायोंका फल प्राप्त करता है॥ ४२—४५॥

सामतीर्थं ततो गच्छेत् स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापै प्रमुच्यते॥ ४६॥
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकर भवेत्।
त्रैलोक्यविश्रुत राजन् सोमतीर्थं महाफलम्॥ ४७॥
यस्तु चान्द्रायण कुर्यात् तत्र तीर्थे समाहित।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोक स गच्छति॥ ४८॥
अग्निप्रवेश य कुर्यात् सोमतीर्थे नराधिप।
जले चानशन वापि नासौ मर्त्योऽभिजायते॥ ४९॥
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत् स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥ ५०॥

तदनन्तर सोमतीर्थमे जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सभी पापोसे मुक्त हो जाता है। राजन्! तीनों लोकामे विख्यात सोमतीर्थ महान् फल देनेवाला है। राजेन्द्र! वहाँ चन्द्रग्रहण (-का स्नान) पापोका क्षय करनेवाला होता है। उस तीर्थमें जो एकाग्र-मनसे चान्द्रायणव्रत करता है वह सभी पापोंसे मुक्त हो विशुद्ध आत्मावाला होकर सोमलोकको जाता है। नराधिप! जो सोमतीर्थमें अग्निप्रवेश जलप्रवेश अथवा अनशन करता है वह मनुष्य पुन उत्पन्न नहीं होता। तदनन्तर स्तम्भतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सामलाकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है अर्थात् पूजित होता है॥ ४६—५०॥

ततो गच्छत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्।
योधनीपुरमाख्यात विष्णो स्थानमनुत्तमम्॥ ५१॥
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिश।
तत्र तीर्थं समुत्पन्न विष्णुश्रीको भवेदिह।
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ ५२॥
नर्मदादक्षिणे कूल तीर्थं परमशोभनम्।
कामतीर्थमिति ख्यात यत्र कामोऽर्चयद् भवम्॥ ५३॥
तस्मिंस्तीर्थे नर स्नात्वा उपवासपरायण।
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते॥ ५४॥

राजन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम विष्णुतीर्थमे जाना चाहिये यहाँ योधनीपुर नामक विष्णुका श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ वासुदेवने करोडो असुरासे युद्ध किया था। अत यह स्थान (वासुदेवकी पवित्र संनिधिके कारण) तीर्थ (पुण्यमय) हो गया है। जो मनुष्य उस तीर्थका सेवन करता है, वह विष्णुके समान श्रीसम्पन्न हो जाता है। यहाँ एक अहोरात्र उपवास करनेसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। नर्मदाके दक्षिणी किनारेपर कामतीर्थ नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त सुन्दर तीर्थ है। यहाँपर कामदेवने शंकरकी आराधना की थी। उस तीर्थमें स्नानकर उपवासपरायण

रहनेवाला मनुष्य कामदेवके समान रूपवाला होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५१—५४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्।
उमाहकमिति ख्यातं तत्र संतर्पयेत् पितॄन्॥ ५५॥
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता॥ ५६॥
तस्मिंस्तु दापयेत् पिण्डान् वैशाख्यां तु विशेषतः।
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः।
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावत् तिष्ठति मेदिनी॥ ५७॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम ब्रह्मतीर्थमें जाना चाहिये। वह तीर्थ 'उमाहक' इस नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पूर्णिमा तथा अमावास्याको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जलके भीतर हाथीके आकारकी शिला स्थित है। उस शिलापर विशेष रूपमें वैशाख पूर्णिमाको स्नानके अनन्तर दम्भ तथा मात्सर्यसे रहित होकर एकाग्रमनसे पिण्डदान करना चाहिये। इससे पिण्डदाताके पितर जबतक पृथ्वी रहती है, तबतक तृप्त रहते हैं॥ ५५—५७॥

सिद्धेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्॥ ५८॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते॥ ५९॥
यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत् परमं पदम्॥ ६०॥

इसके बाद सिद्धेश्वर (तीर्थमें) जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर जहाँ जनार्दन लिङ्ग-रूपमें प्रतिष्ठित हैं, वहाँ जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे विष्णुलोकमें आदर प्राप्त होता है। यही एकमात्र वह स्थान है जहाँ नारायणदेवने भक्तिपूर्ण मुनियोंको लिङ्ग-रूपमें अपना दर्शन कराया था। यह लिङ्ग विष्णुरूप होनेसे परमपद है॥ ५८—६०॥

अङ्कोलं तु ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
स्नानं दानं च तत्रैव ब्राह्मणानां च भोजनम्।
पिण्डप्रदानं च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम्॥ ६१॥
त्रैयम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेत् ततः।
अङ्कोलमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि।
तारिताः पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारकम्॥ ६२॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात् तपसः फलम्॥ ६३॥

तदनन्तर सभी पापोंका नाश करनेवाले अङ्कोल तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ किया गया स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान परलोकमें अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है। जो त्रैयम्बक (त्र्यम्बक) मन्त्रके द्वारा जलसे चरु पकाकर उससे अङ्कोल (वृक्ष)-के मूलमें यथाविधि पिण्डदान करता है उसके द्वारा तारे गये पितर जबतक चन्द्रमा तथा तारे रहते हैं तबतक तृप्त रहते हैं। राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम तापसेश्वर (तीर्थमें) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नानमात्र करनेसे व्यक्ति तपस्याका फल प्राप्त करता है॥ ६१—६३॥

शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
नास्ति तेन समं तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर॥ ६४॥
दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य स्नानदानतपोजपात्।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत् फलम्॥ ६५॥
योजनं तत् स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम्।
शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम्॥ ६६॥
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शंकरः॥ ६७॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत।
कैलासाच्चाभिनिष्क्रम्य तत्र संनिहितो हरः॥ ६८॥
देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा।
गणाश्चाप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुंगव॥ ६९॥

इसके पश्चात् सभी पापोंका नाश करनेवाले शुक्लतीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर! नर्मदामें उसके समान कोई तीर्थ नहीं है। उस शुक्लतीर्थके दर्शन करने, स्पर्श करने तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप, होम और उपवास करनेसे महान् फल प्राप्त होता है। देवताओं तथा गन्धर्वोंसे सेवित वह एक योजनका क्षेत्र शुक्लतीर्थ इस नामसे विख्यात है। वह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है। (इस तीर्थमें स्थित) वृक्षके अग्रभागको भी देखनेसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। वहाँ देवी (पार्वती)-के साथ भर्ग (तेजोमय) शंकर सदैव निवास करते हैं। सुव्रत! वैशाख मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ कैलाससे आकर हर (शंकर) स्थित होते हैं। श्रेष्ठ! वहाँ देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराओंके समूह तथा नाग रहते हैं॥ ६४—६९॥

रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा।
आजन्मनि कृतं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते॥ ७०॥
शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति॥ ७१॥
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी।

घृतेन स्नापयेद् देवमुपोष्य परमेश्वरम्।
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरात् पदात्॥७२॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञदानेन वा पुनः।
न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत्॥७३॥

जिस प्रकार रजक (धोबी)-के द्वारा जलसे (धोनेसे) वस्त्र स्वच्छ (मलरहित) हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थमें स्नानसे *जन्मभरका किया हुआ पाप दूर हो जाता है, वहाँ किया गया स्नान* दान, तप तथा श्राद्ध अनन्त फलदायक हो जाता है। शुक्लतीर्थ-सा परम तीर्थ न कोई हुआ न होगा। मनुष्य पूरी अवस्थाभरमें किये गये पापोंको शुक्लतीर्थमें एक अहोरात्रके उपवाससे दूर कर देता है। कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको उपवासकर परमेश्वर देवको घृतसे स्नान कराना चाहिये। इससे मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ ईश्वरके लोकमें निवास करता है। कभी भी वहाँसे च्युत नहीं होता। शुक्लतीर्थमें जो गति प्राप्त होती है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दानसे प्राप्त नहीं होती॥७०—७३॥

शुक्लतीर्थं महातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्म न विन्दति॥७४॥
अयने वा चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ विषुवे तथा।
स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः॥७५॥
दानं दद्याद् यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशंकरौ।
एतत् तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥७६॥
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा।
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु॥७७॥
यावत् तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥७८॥

ऋषियों तथा सिद्धोंसे सेवित शुक्लतीर्थ महान् तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता। वहाँ अयन, चतुर्दशी, सङ्क्रान्ति तथा विषुव (योग)-में स्नानोपरान्त उपवास करते हुए विजितात्मा पुरुषको समाहित होकर यथाशक्ति दान देना चाहिये। इससे विष्णु तथा शिव प्रसन्न होते हैं। इस तीर्थके प्रभावसे सब कुछ अक्षय होता है। अनाथ, दुर्गतिको प्राप्त अथवा सनाथ ब्राह्मणका भी इस तीर्थमें विवाह करानेमें जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, उसे सुनो—उसके (विवाह सम्पन्न करानेवालेके) शरीरमें तथा उसके कुलकी संतानोंके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥७४—७८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद् योनिसङ्कटम्॥७९॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम्।
संगमे तु नरः स्नायादुपवासपरायणः।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता॥८०॥
एरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावात् तु रञ्जितः।
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम्।
नर्मदोदकसम्मिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥८१॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम यमतीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर! माघमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको इस यमतीर्थमें स्नान करके रात्रिमें भोजन करनेवालेको गर्भके संकटका सामना नहीं करना पड़ता। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ एरण्डी-*तीर्थमें जाना चाहिये। व्यक्ति वहाँ संगममें स्नानकर उपवासपरायण* रहते हुए एक ब्राह्मणको भोजन कराये, इससे करोड़ों (ब्राह्मणों)-को भोजन करानेका फल मिलता है। एरण्डी-संगममें स्नान करके भक्तिभावसे परिपूर्ण होकर मस्तकमें वहाँकी मिट्टी लगानेमें तथा नर्मदाके जलसे मिश्रित उस *(एरण्डी-संगम)-के जलमें स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे* मुक्त हो जाता है॥७९—८१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं कार्णाटिकेश्वरम्।
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः॥८२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥८३॥
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
प्रीयते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते॥८४॥

राजेन्द्र! इसके पश्चात् कार्णाटिकेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ पुण्य (पर्व)-दिनमें निश्चित रूपसे गङ्गा अवतरित होती हैं। वहाँ स्नानकर, (जल) पीकर और विधिपूर्वक दान देनेसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदनन्तर नन्दितीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसपर नन्दीश्वर प्रसन्न होते हैं और वह सोमलोकमें आदर प्राप्त करता है॥८२—८४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्वनरकं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नरकं नैव पश्यति॥८५॥
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत्।
रूपवान् जायते लोके धनभोगसमन्वितः॥८६॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त शुभ अनरक नामक तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य नरकका दर्शन नहीं करता। राजेन्द्र! उस तीर्थमें अपनी अस्थियोंके विसर्जनकी प्रेरणा अपने परिजनोंको देनी चाहिये। (वहाँ जिसकी अस्थि

विसर्जित होती है) वह जन्मान्तरमे दिव्य रूप एव विविध ऐश्वर्यसे सम्पन्न होता है॥ ८५-८६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफल लभेत्॥८७॥
ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्या विशेषत ।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दद्याद् दीप घृतेन तु॥८८॥
घृतेन स्नापयेद् रुद्र सघृत श्रीफल दहेत्।
घण्टाभरणसयुक्ता कपिला वै प्रदापयेत्॥८९॥
सर्वाभरणसयुक्त सर्वदेवनमस्कृत ।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत् क्रीडत चिरम्॥९०॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिलातीर्थमे जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर व्यक्ति हजार गोदानका फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मासके आनेपर विशेषरूपसे चतुर्दशी तिथिको वहाँ उपवास कर मनुष्यको भक्तिपूर्वक घृतका दीप-दान करना चाहिये। घृतसे ही रुद्रका अभिषेक करना चाहिये, घृतयुक्त श्रीफलका हवन करना चाहिये और घटा तथा आभरणोसे सम्पन्न कपिला गौका दान करना चाहिये। इससे मनुष्य सभी अलकारोसे युक्त, सभी देवताओके लिये वन्दनीय और शिवके समान तुल्य बलवाला होकर चिरकालतक शिवके समान क्रीडा करता है॥८७—९०॥

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषत ।
स्नापयित्वा शिव दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम्॥९१॥
सर्वभोगसमायुक्तो विमानै सार्वकामिकै ।
गत्वा शक्रस्य भवन शक्रेण सह मोदते॥९२॥
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो धनवान् भोगवान् भवेत्।
अङ्गारकनवम्या तु अमावास्या तथैव च।
स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत्॥९३॥

विशेषरूपसे मगलके दिन चतुर्थी पडनेपर (इस कपिलातीर्थमे) शिवका अभिषेककर ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी भोगोसे समन्वित होकर अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र अप्रतिहतगति एव सभी प्रकारकी सुविधाओसे परिपूर्ण विमानोके द्वारा इन्द्रके भवनमे जाकर इन्द्रके साथ आनन्दित होता है। स्वर्गसे च्युत होनेपर इस लोकमे भी धनवान् और भोगवान् होता है। अङ्गारक-नवमी (मगलवारयुक्त नवमी) तथा अमावास्याको भी वहाँ (कपिलातीर्थमे) प्रयत्नपूर्वक अभिषेक करनेसे व्यक्ति रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है॥ ९१—९३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम्।
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥९४॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते।
पितॄणा तर्पण कृत्वा मुच्यतेऽसावृणत्रयात्॥९५॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गणेश्वर (तीर्थ)-में जाना चाहिये। श्रावण मास आनेपर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है और पितरोका तर्पण करनेसे तीनो ऋणोसे मुक्त हो जाता है॥ ९४-९५॥

गङ्गेश्वरसमीप तु गङ्गावदनमुत्तमम्।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानव ।
आजन्मजनितै पापैर्मुच्यते नात्र सशय ॥९६॥

गणेश्वर (तीर्थ)-के समीप श्रेष्ठ गङ्गावदन नामक तीर्थ है। वहाँ मनुष्य कामनापूर्वक अथवा निष्कामभावसे स्नान करके जन्मभरके किये गये पापोसे मुक्त हो जाता है इसमे सशय नहीं है॥ ९६॥

तस्य वै पश्चिमे देशे समीपे नातिदूरत ।
दशाश्वमेधिक तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥९७॥
उपोष्य रजनीमेका मासि भाद्रपदे शुभे।
अमावस्या नर स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम्॥९८॥
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना।
गत्वा रुद्रपुर रम्य रुद्रेण सह मोदते॥९९॥
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नान तत्र समाचरेत्।
पितॄणा तर्पण कुर्यादश्वमेधफल लभेत्॥१००॥

उस (गङ्गावदन)-के पश्चिमी भागमे बहुत दूर नहीं अपितु समीपमे ही तीनो लोकोमें विख्यात दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ है। वहाँ शुभ भाद्रपद मासकी अमावास्याको एक रात्रिका उपवासकर स्नानपूर्वक वृषभ-ध्वजका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे किंकिणीके समूहसे अलकृत सोनेके विमानसे रमणीय रुद्रपुरमे पहुँचने तथा वहाँ रुद्रके साथ आनन्दानुभव करनेका सुअवसर प्राप्त होता है। उस (दशाश्वमेधिक) तीर्थमे सर्वत्र सभी दिनोमे स्नान करना चाहिये और पितरोका तर्पण करना चाहिये इससे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है॥ ९७—१००॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्याय ॥३९॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमे नर्मदा तथा उसके समीपवर्ती तीर्थोकी महिमा, मार्कण्डेय तथा युधिष्ठिरके सवादकी समाप्ति

मार्कण्डय उवाच

ततो गच्छत राजन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र देवो भृगु पूर्व रुद्रमाराधयत् पुरा॥ १॥
दर्शनात् तम्य देवस्य सद्य पापात् प्रमुच्यत।
एतत् क्षेत्र सुविपुल सर्वपापप्रणाशनम्॥ २॥
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा ।
उपानहोस्तथा युग्म देयमन्न सकाञ्चनम्।
भोजन च यथाशक्ति तदस्याक्षयमुच्यते॥ ३॥
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदान तप क्रिया।
अक्षय तत् तपस्तप्त भृगुतीर्थे युधिष्ठिर॥ ४॥
तस्यैव तपसाग्रण तुष्टन त्रिपुरारिणा।
सानिध्य तत्र कथित भृगुतीर्थे युधिष्ठिर॥ ५॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! तदन्तर श्रेष्ठ भृगुतीर्थमें जाना चाहिये। प्राचीन कालमें यहाँ महर्षि भृगुदेवने भगवान् रुद्रकी आराधना की था। उन देवके दर्शन करनेस तत्काल पापसे मुक्ति हा जाती है। यह क्षेत्र बहुत वडा तथा सभी पापोको नष्ट करनेवाला है। यहाँ स्नान कर व्यक्ति स्वर्ग जाते हैं और यहाँ मृत्युको प्राप्त हानेवालोका पुनर्जन्म नहीं होता। यहाँ जूतका जोडा तथा सानेके साथ अन्नका दान करना चाहिये। यथाशक्ति भाजन भी कराना चाहिय। यह सब अक्षय (फलवाला) कहा गया है। युधिष्ठिर! *सभी दान यज्ञ तप तथा कर्म नष्ट हो जाते हैं (किंतु) भृगुतीर्थम* किया हुआ तप अक्षय होता है। युधिष्ठिर! उन्हीं (महपि भृगु)-की उग्र तपस्यासे प्रसन्न होकर त्रिपुरारि भगवान् शकर भृगुतीर्थम सदव सनिहित रहत हैं यह शास्त्राम कहा गया है॥ १—५॥

तता गच्छेत गजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्।
यत्राराध्य त्रिशूलाङ्क गोतम सिद्धिमाप्नुयात्॥ ६॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् उपवासपरायण ।
काञ्चनन विमानन ब्रह्मलोक महीयते॥ ७॥
वृषोत्मर्ग तता गच्छच्छाश्वत पदमाप्नुयात्।
न जानन्ति नरा मूढा विष्णामायाविमाहिता॥ ८॥

राजन्द्र! तदनन्तर उत्तम गातमश्वर (तीर्थ)-म जाना चाहिय। जहाँ त्रिशूलका चिह्न धारण करनवाल त्रिशूली (भगवान् शकर)-की आराधनाकर (महपि) गौतमने सिद्धि प्राप्त की था। राजन्! वहाँ (गौतमश्वर-तार्थम) स्नानकर उपवासरत व्यक्ति सानेक विमानद्वारा ब्रह्मलाक जाता है तथा वहाँ आदर प्राप्त करता है। तदुपरान्त वृषोत्सग-तीर्थकी यात्रा कर शाश्वत पद प्राप्त करना चाहिये। विष्णुकी मायामे मोहित मूढ व्यक्ति इस तीर्थको नहीं जानते॥ ६—८॥

धौतपाप ततो गच्छेद् धौत यत्र वृषेण तु।
नर्मदाया स्थित राजन् सर्वपातकनाशनम्।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ ९॥
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्याग करोति य ।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबला भवत्॥ १०॥
वसेत् कल्पायुत साग्र शिवतुल्यपराक्रम ।
कालेन महता जात पृथिव्यामेकराड् भवत्॥ ११॥

इसके पश्चात् धौतपाप नामक तीर्थमें जाना चाहिये जहाँ स्वय वृष (अथात् भगवान् धम)-ने अपना (पाप) धाया था। राजन्! सभी पातकाका नाश करनवाला वह ताथ नमदाम स्थित है। उस तीर्थम स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन्द्र! उस तीर्थम जो प्राणोका त्याग करता है वह चार भुजावाला तीन नेत्रोवाला और शकरके समान बलवाला होता है। शिवके समान पराक्रमी हाकर वह दस हजार कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलाकमें निवास करता है और बहुत समयके बाद वह पृथ्वीपर एकच्छत्र सम्राट् वनकर उत्पन्न होता है॥ ९—११॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र हसतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलाके महीयते॥ १२॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दन ।
वराहतीर्थमाख्यात विष्णुलोकगतिप्रदम्॥ १३॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।
पौर्णमास्या विशयेण स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते॥ १४॥
तता गच्छेत राजन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम्।
शुक्लपक्षे तृतीयाया स्नान तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥ १५॥
देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम्।
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र दैवतै सह मादते॥ १६॥

राजेन्द्र! उसक बाद श्रेष्ठ हस-तार्थम जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेस मनुष्य ब्रह्मलोकम प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! वहाँसे विष्णुलोकका गति प्रदान करनेवाल वराहतीर्थ नामसे प्रसिद्ध ताथम जाना चाहिय जहाँ जनार्दनने सिद्धि प्राप्त

की थी। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थमे जाना चाहिय। वहाँ विशेषरूपसे पौर्णमासीको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेवाला व्यक्ति चन्द्रलोकम प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! इसके पश्चात् अत्युतम कन्यातीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे व्यक्ति पृथ्वीमें एकमात्र सम्राट् होता है। तदनन्तर सभी दवताआस वन्दित देवतीर्थमें जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे देवताआके साथ आनन्द (-के अनुभवका अवसर) प्राप्त होता है॥ १२—१६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम्।
यत् तत्र दीयते दान सर्वं कोटिगुण भवेत्॥ १७॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामह शुभम्।
यत् तत्र क्रियते श्राद्ध सर्वं तदक्षय भवेत्॥ १८॥
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजत्।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते॥ १९॥
मनोहर तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतै सह मोदत॥ २०॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ शिखितीर्थम जाना चाहिये। वहाँ जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब करोड गुना फलवाला हो जाता है। राजेन्द्र! शुभ पैतामह तीर्थम भी जाना चाहिय। वहाँ जा श्राद्ध किया जाता हे वह अक्षय (फलवाला) हो जाता हे। सावित्रीतीर्थम पहुँचकर जा प्राणाका परित्याग करता हे, वह सभी पापोको धाकर ब्रह्मलोकमे महिमा प्राप्त करता है। वहीं मनोहर नामक परम सुन्दर तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य देवताआके साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ १७—२०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र मानस तीर्थमुत्तमम्।
स्नात्वा तत्र नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ २१॥
स्वर्गबिन्दु ततो गच्छेत् तीर्थं देवनमस्कृतम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गति नैव गच्छति॥ २२॥
अप्सरेश ततो गच्छेत् स्नान तत्र समाचरेत्।
क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभि स मोदते॥ २३॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम मानस तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदुपरान्त देवताआस नमस्कृत स्वर्गबिन्दु नामक तीर्थम जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेस मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती। इसके बाद अप्सरेश-तीर्थमे जाकर वहाँ स्नान करना चाहिय। इससे वह स्वर्गलोकम निवास करते हुए क्रीडा करता है और अप्सराआके साथ आनन्दित होता है॥ २१—२३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र भारभूतिमनुत्तमम्।
उपोषितोऽर्चयेदीश रुद्रलोके महीयते।
अस्मिस्तीर्थे मृतो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २४॥
कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत् पार्वतीपतिम्।
अश्वमेधात् दशगुण प्रवदन्ति मनीषिण॥ २५॥
वृषभ य प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम्।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोक स गच्छति॥ २६॥
एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोक स गच्छति॥ २७॥
जलप्रवेश य कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप।
हसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोक स गच्छति॥ २८॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम भारभूति नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ उपवास करते हुए ईश्वरकी आराधना करनेसे रुद्रलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। राजन्! इस तीर्थमें मरनेवाला (शिवलोकमें) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। (यहाँ) कार्तिक मासमे पार्वतीपति देवताआके ईश शकरकी पूजा करनी चाहिये। इसका फल मनीषी लोग अश्वमेधके फलसे भी दस गुना अधिक बताते हैं। जा वहाँ कुन्दपुष्प तथा इन्दु (चन्द्रमा)-के समान (श्वेत) वर्णवाले वृषभका दान करता है वह वृषयुक्त विमानसे रुद्रलाकम जाता है। इस तीर्थमे पहुँचकर जो प्राणाका परित्याग करता है वह सभी पापोस मुक्त हो विशुद्ध आत्मावाला हाकर रुद्रलोकमें जाता है। नराधिप! इस तीर्थमें जा जलम प्रवेश (-कर प्राणत्याग) करता है, वह हसयुक्त विमानस स्वर्गलाक जाता है॥ २४—२८॥

एरण्ड्या नर्मदायास्तु सगम लोकविश्रुतम्।
तत्र तीर्थं महापुण्य सर्वपापप्रणाशनम्॥ २९॥
उपवासपरो भूत्वा नित्य व्रतपरायण।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदधिसगमम्।
जमदग्निरिति ख्यात सिद्धो यत्र जनादन॥ १३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नर्मदोदधिसगमे।
त्रिगुण चाश्वमेधस्य फल प्राप्नोति मानव॥ ३२॥

एरण्डी तथा नर्मदाका सगम विख्यात है। वहाँ सभी पापोको नष्ट करनेवाला महान् पुण्यप्रद तीर्थ है। राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर उपवास करनेवाला तथा नित्य व्रतपरायण रहनेवाला व्यक्ति ब्रह्महत्या (-क पाप)-से मुक्त हा जाता है। राजेन्द्र! तदनन्तर नर्मदा और सागरके सगम-स्थलमे जाना चाहिये। जहाँ जमदग्नि नामसे विख्यात जनादनको सिद्धि प्राप्त हुई थी। राजन्! वहाँ नमदा तथा सागरके सगमम स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेधक फलका तिगुना फल प्राप्त करता है॥ २९—३२॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ३३॥
तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम्।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम्॥ ३४॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र आलिकातीर्थमुत्तमम्।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३५॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम पिङ्गलेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वहाँ उपवास करके जो विमलेश्वरका दर्शन करता है, वह सात जन्मोंमें किये पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे उत्तम आलिका-तीर्थमें जाना चाहिये। इस तीर्थका माहात्म्य यह है कि यहाँ एक रात्रि उपवास करके संयत रहते हुए नियमपूर्वक सात्त्विक आहार करनेसे ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्ति मिल जाती है॥ ३३—३५॥

एतानि तव संक्षेपात् प्राधान्यात् कथितानि तु।
न शक्या विस्तराद् वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव॥ ३६॥

पाण्डव! संक्षेपमें मैंने प्रधान-प्रधान तीर्थोंको बतलाया। विस्तारपूर्वक तीर्थोंकी संख्याका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ३६॥

एषा पवित्रा विमला नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा॥ ३७॥
मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर।
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः॥ ३८॥
अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः।
पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः॥ ३९॥
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ४०॥

यह पवित्र तथा स्वच्छ जलवाली नर्मदा नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। नर्मदा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ है और महादेवको अत्यन्त प्रिय है। युधिष्ठिर! जो मनसे भी नर्मदाका स्मरण करता है, वह सौ चान्द्रायण व्रतोंसे भी अधिक फल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। परमेश्वरका यह कहना है कि श्रद्धासे रहित तथा घोर नास्तिकताका आश्रय लेनेवाले पुरुष भीषण नरकमें गिरते हैं (इसलिये ऐसे पुरुषोंको नरकसे बचनेके लिये नर्मदाका दर्शन-सेवन करना चाहिये)। इसी कारण स्वयं देव महेश्वर हम लोगोंको प्रेरणा देनेके लिये नित्य नर्मदाका सेवन करते हैं, अतः इस पवित्र नदीको ब्रह्महत्या-जैसे पापोंको दूर करनेवाली समझना चाहिये (तथा पूर्ण निष्ठाके साथ इसका दर्शन-सेवन अवश्य करना चाहिये)॥ ३७—४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें नैमिषारण्य तथा जप्येश्वर-तीर्थकी महिमा, जप्येश्वर-तीर्थमें महर्षि शिलादके पुत्र नन्दीकी तपस्या तथा उनके गणाधिपति होनेका आख्यान

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम्।
महादेवप्रियकरं महापातकनाशनम्॥ १॥
महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिनाम्।
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः॥ २॥

सूतजीने कहा—तीनों लोकोंमें विख्यात यह उत्तम नैमिष तीर्थ महादेवको प्रिय लगनेवाला तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला है। द्विजोत्तमो! ब्रह्माने इस नैमिष-स्थानकी सृष्टि उन परमेष्ठी (श्रेष्ठतम) ऋषियोंके लिये की है जो महादेवका दर्शन करनेकी इच्छासे तपस्या करना चाहते हैं॥ १-२॥

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ ३॥
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्।
पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमच्युतम्॥ ४॥

ब्राह्मणो! प्राचीन कालमें मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिरा ऋषियोंने कमलसे उत्पन्न सबको वर देनेवाले, चतुर्मूर्ति, चतुर्मुख, अच्युत, विश्वकर्मा ब्रह्माके

पास जाकर प्रणामकर उनसे पूछा— ॥ ३-४ ॥

षट्कुलीया ऊचु

भगवन् देवमीशान भर्गमेक कपर्दिनम्।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देवनमस्कृतम्॥ ५॥

षट्कुलोत्पन्न ऋषियोने कहा—भगवन्! यह बतलाये कि हम किस उपायसे देवताओंद्वारा नमस्कृत अद्वितीय तेजस्वी कपर्दी ईशानदेवका दर्शन करे॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

सत्र सहस्रमासध्व वाङ्मनोदोषवर्जिता ।
देश च व प्रवक्ष्यामि यस्मिन् देशे चरिष्यथ॥ ६॥
उक्त्वा मनोमय चक्र स सृष्ट्वा तानुवाच ह।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम्।
यत्रास्य नेमि शीर्येत स देश पुरुषर्षभा ॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—आप लोग वाणी तथा मनके दोषासे रहित होकर हजार यज्ञविशेष-सत्र सम्पन्न करें। मैं वह देश आप लोगाको बतलाता हूँ, जहाँ आप यज्ञ करगे। ऐसा कहकर उन (ब्रह्मा)-ने एक मनोमय चक्रका निर्माण करके उन (ऋषिया)-से कहा—मेरे द्वारा छोड़े गये इस चक्रका आप लोग अनुगमन कर, विलम्ब न करें। श्रेष्ठ पुरुषो! जहाँ इस (चक्र)-की नेमि शीर्ण होगी (गिरकर टूटेगी) वही स्थान तपस्या एव यज्ञ करनेका शुभ स्थान होगा॥ ६-७॥

ततो मुमोच तच्चक्र ते च तत्समनुव्रजन्।
तस्य वै व्रजत क्षिप्र यत्र नेमिरशीर्यत।
नैमिश तत्स्मृत नाम्ना पुण्य सर्वत्र पूजितम्॥ ८॥
सिद्धचारणसकीर्ण यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थान भगवत शम्भोरेतन्नैमिशमुत्तमम्॥ ९॥
अत्र देवा सगन्धर्वा सयक्षोरगराक्षसा ।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान् वरान्॥ १०॥

तब उन्होने (ब्रह्माने) उस (मनोमय) चक्रको छोड़ा और वे ऋषि उस चक्रके पीछे-पीछे चलने लगे। शीघ्रतापूर्वक जा रहे उस चक्रकी नेमि जहाँ (शीर्ण हुई) गिरी, वह स्थान नैमिश नामसे प्रसिद्ध हुआ और पवित्र तथा सर्वत्र पूजित हुआ। सिद्धो तथा चारणोंसे परिपूर्ण, यक्षों-गन्धर्वोंसे सेवित यह उत्तम नैमिश नामक स्थान भगवान् शम्भुका स्थान है। प्राचीन कालमे यहाँपर तपस्या करके देवताओ गन्धर्वों यक्षो नागो और राक्षसोने श्रेष्ठ वरोको प्राप्त किया था॥ ८—१०॥

इम देश समाश्रित्य षट्कुलीया समाहिता ।
सत्रेणाराध्य देवेश दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ ११॥
अत्र दान तपस्तप्त स्नान जप्यादिक च यत्।
एकैक पावयेत् पाप सप्तजन्मकृत द्विजा ॥ १२
अत्र पूर्व स भगवानृषीणा सत्रमासताम्।
प्रोवाच वायुर्ब्रह्माण्ड पुराण ब्रह्मभाषितम्॥ १३
अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वकृत्।
रमतेऽद्यापि भगवान् प्रमथै परिवारित ॥ १४
अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातय ।
ब्रह्मलोक गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते॥ १५

(मरीचि अत्रि वसिष्ठ क्रतु, भृगु तथा अगिरा—इन) कुलोंके ऋषियोंने इस देशमें रहते हुए एकाग्रतापूर्वक यज्ञानुष्ठान देवेशकी आराधना कर महेश्वरका दर्शन किया था। द्विजो! य किया गया दान तप स्नान तथा जप आदि कोई भी शुभ क अकेला ही सात जन्मोमे किये पापको नष्ट कर उसे पवित्र ब देता है। प्राचीन कालमे इसी तीर्थमे भगवान् वायुने करनेवाले ऋषियोको ब्रह्माजीद्वारा कहे गये ब्रह्माण्डपुराण सुनाया था। आज भी यहाँ विश्वकी सृष्टि करनेवाले भगव महादेव प्रमथगणोसे घिरे रहकर रुद्राणीके साथ रमण करते (अपनी अन्तिम अवस्थामे) नियमपूर्वक यहाँ निवासक प्राणोका परित्याग करनेवाले द्विजाति लोग उस ब्रह्मलोक जाते हैं जहाँ जाकर पुन जन्म नहीं लेना पडता॥ ११—१५

अन्यच्च तीर्थप्रवर जाप्येश्वरमितिश्रुतम्।
जजाप रुद्रमनिश यत्र नन्दी महागण ॥ १६
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक्।
ददावात्मसमानत्व मृत्युवञ्चनमेव च॥ १७

एक दूसरा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ है जो जाप्येश्वर नाम प्रसिद्ध है। जहाँ महान् गण नन्दीने निरन्तर रुद्रका जप किया और पिनाक धारण करनेवाले रुद्र-महादेव देवीके साथ उन प्रसन्न हुए और उन्होने उन्हे (नन्दीको) अपनी समानता त मृत्युसे बचनेका वर प्रदान किया था॥ १६-१७॥

अभूदृषि स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित्।
आराधयन्महादेव पुत्रार्थं वृषभध्वजम्॥ १८
तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वकृत्।
शर्व सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ १९
स वव्रे वरमीशान वरेण्य गिरिजापतिम्।
अयोनिज मृत्युहीन देहि पुत्र त्वया समम्॥ २०
तथास्त्वित्याह भगवान् देव्या सह महेश्वर ।
पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्धान गतो हर ॥ २१

(इन नन्दीके प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—) शिल नामक एक धर्मज्ञ धर्मात्मा ऋषि हुए, उन्होने पुत्रप्राप्तिके लि वृषभध्वज महादेवकी आराधना की। तप करते हुए उन्हान ज

हजार वर्षका समय व्यतीत कर दिया तब गणासे आवृत विश्वकर्ता साम शर्वने 'मैं वर दूँगा' इस प्रकार कहा। उन्हाने (शिलाद ऋषिने) वरेण्य गिरिजापति ईशानसे वर माँगा कि मुझे आप मृत्युसे रहित अपने ही समान अयोनिज पुत्र प्रदान करें। देवाके साथ भगवान् महेश्वरने—'ऐसा ही हो' कहा और उन विप्रर्षिके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये॥ १८—२१॥

ततो यियक्षु स्वा भूमि शिलादो धर्मवित्तम ।
चकर्ष लाङ्गलेनोर्वी भित्त्वादृश्यत शोभन ॥ २२॥
सवर्तकानलप्रख्य कुमार प्रहसन्निव।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन् दिश ॥ २३॥
कुमारतुल्याऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा।
शिलाद तात तातेति प्राह नन्दी पुन पुन ॥ २४॥
त दृष्ट्वा नन्दन जात शिलाद परिषस्वजे।
मुनिभ्यो दर्शयामास ये तदाश्रमवासिन ॥ २५॥

तदनन्तर धर्मज्ञ शिलादने अपनी भूमिमे यज्ञ करनेकी इच्छासे हलद्वारा पृथ्वीको जोता। पृथ्वीका भेदन करनेपर उन्हाने संवर्तक नामक अग्निके समान रूप तथा लावण्यसे सम्पन्न और अपने तेजसे दिशाओको प्रकाशित करते हुए, हँसते हुए एक सुन्दर कुमारको देखा। कुमार (कार्तिकेय)-के समान उन अतुलनीय नन्दी (नामक कुमार)-ने मेघ-सदृश गम्भीर वाणीमे शिलादको बार-बार 'तात' 'तात' इस प्रकारसे कहा। आविर्भूत हुए उस पुत्रको देखकर शिलादने उसका आलिङ्गन किया और उस आश्रममे रहनेवाले जो मुनि थे उन्हे भी उसे दिखाया॥ २२—२५॥

जातकर्मादिका सर्वा क्रियास्तस्य चकार ह।
उपनीय यथाशास्त्र वेदमध्यापयत् सुतम्॥ २६॥
अधीतवेदो भगवान् नन्दी मतिमनुत्तमाम्।
चक्रे महेश्वर द्रष्टु जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम्॥ २७॥
स गत्वा सरित पुण्यामेकाग्रश्रद्धयान्वित ।
जजाप रुद्रमनिश महेशासक्तमानस ॥ २८॥
तस्य कोट्या तु पूर्णाया शकरो भक्तवत्सल ।
आगत्य साम्ब सगणो वरदोऽस्मीत्युवाच ह॥ २९॥

अनन्तर उन्होने (शिलाद ऋषिने) उन नन्दीके जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और शास्त्रविधिसे उपनयन-संस्कारकर वेद पढाया। वेदका अध्ययनकर भगवान् नन्दीने यह श्रेष्ठ विचार किया कि प्रभु महेश्वरका दर्शनकर मैं मृत्युको जीतूँगा। उन्होने पवित्र नदीके तटपर जाकर एकाग्र तथा श्रद्धायुक्त होकर महेश्वरमें अपने मनको आसक्तकर निरन्तर रुद्रका जप करना प्रारम्भ कर दिया। उनके द्वारा एक करोड जपकी संख्या पूर्ण होनेपर भक्तवत्सल शकरने अपने गणो तथा पार्वतीके साथ वहाँ आकर 'मैं वर दूँगा' इस प्रकार कहा॥ २६—२९॥

स वव्रे पुनरेवाह जपेय कोटिमीश्वरम्।
तावदायुर्महादेव देहीति वरमीश्वर॥ ३०॥
एवमस्त्विति सम्प्राप्य देवोऽप्यन्तरधीयत।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानस ॥३१॥
द्वितीयाया च कोट्या वै सम्पूर्णाया वृषध्वज ।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृत ॥ ३२॥
तृतीया जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शकर।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देवोऽप्यन्तरधीयत॥ ३३॥
कोटित्रयेऽथ सम्पूर्णे देव प्रीतमना भृशम्।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृत ॥ ३४॥
जपेय कोटिमन्या वै भूयोऽपि तव तेजसा।
इत्युक्त भगवानाह न जप्तव्य त्वया पुन ॥ ३५॥

नन्दीने वर माँगते हुए कहा—ईश्वर! मैं पुन ईश्वरका एक करोड जप करना चाहता हूँ, अत महादेव! आप मुझे उतनी ही लम्बी आयु प्रदान करें। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देव अन्तर्धान हो गये। भगवान् नन्दीने पुन उनमे मन लगाते हुए एक करोड जप किया। दो करोड जप पूरा होनेपर पुन भूतगणोसे आवृत वृषध्वज (शकर)-ने आकर 'मैं वर प्रदान करूँगा' ऐसा कहा। (तब नन्दीने कहा—) प्रभु शकर! मैं पुन तीसरी बार एक करोड जप करना चाहता हूँ। 'ऐसा ही हो' कहकर विश्वात्मा देव पुन अन्तर्धान हो गये। तीन करोड जप पूरा होनेपर भूतगणोसे आवृत अत्यन्त प्रसन्न-मन देव (शकर)-ने वहाँ आकर कहा—'मैं वर प्रदान करूँगा।' (इसपर नन्दीने कहा—) मैं पुन आपके तेजसे सम्पन्न होकर करोडकी संख्यामे जप करना चाहता हूँ। ऐसा कहे जानेपर भगवान्‌ने कहा—अब तुम्हे आगे जप नहीं करना है॥ ३०—३५॥

अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वगत सदा।
महागणपतिर्देव्या पुत्रो भव महेश्वर ॥ ३६॥
योगीश्वरो योगनेता गणानामीश्वरेश्वर ।
सर्वलोकाधिप श्रीमान् सर्वज्ञो मद्बलान्वित ॥ ३७॥
ज्ञान तन्मामक दिव्य हस्तामलकवत् तव।
आभूतसम्प्लवस्थायी ततो यास्यसि मत्पदम्॥ ३८॥

तुम जरासे (वृद्धावस्थासे) मुक्त और अमर होकर सदा मेरे समीपमे स्थित रहोगे। तुम देवी (पार्वती)-के पुत्र, महागणपति (मेरे गणोके अधिपति) एव महेश्वर होओगे। तुम योगीश्वर योगनेता गणोके ईश्वरोके भी ईश्वर सभी लोकोके

अधिपति, श्रीमान् सर्वज्ञ और मेरे बलसे सम्पन्न रहोगे। मेरा दिव्य ज्ञान तुम्हें हस्तामलकवत् प्राप्त रहेगा। तुम महाप्रलयपर्यन्त (गणेश्वर एवं नन्दीके रूपमें) स्थित रहोगे और उसके बाद मेरे पदको प्राप्त करोगे॥ ३६—३८॥

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शंकरः।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्॥ ३९॥
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक्।
मरुतां च शुभां कन्यां सुयशेति च विश्रुताम्॥ ४०॥

ऐसा कहकर महादेव शंकरने गणोंको बुलाकर उन नन्दीश्वरको गणोंके अधिपतिके पदपर अत्यन्त उपयुक्त अभिषेक-विधि नियुक्त कर दिया। पिनाक धारण करनेवाले शंकरने स्वयं मरुद्गणोंकी शुभ कन्या जो 'सुयशा' इस नामसे विख्यात थी उसके साथ इनका विवाह कर दिया॥ ३९—४०॥

एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते॥ ४१॥

यह जप्येश्वर नामक स्थान देवाधिदेव शूली शंकरका स्थान है। यहाँ जहाँ कहीं भी शरीर त्याग करनेवाला रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

विविध शैव-तीर्थोंके माहात्म्यका निरूपण, तीर्थोंके अधिकारी तथा तीर्थ-माहात्म्यका उपसंहार

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः।
नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १॥
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥ २॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं शंकरस्यामितौजसः।
महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम्॥ ३॥
तीर्थानां च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा॥ ४॥

सूतजीने कहा—जप्येश्वरके समीपमें ही पञ्चनद नामका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो पवित्र तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ तीन रात्रिपर्यन्त उपवासकर महेश्वरकी पूजा करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध आत्मावाला होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अमित तेजस्वी शंकरका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो महाभैरव नामसे कहा गया है वह महापातकोंका नाश करनेवाला है। वितस्ता नामक श्रेष्ठ नदी तीर्थोंमें परम तीर्थ है वह सभी पापोंको हरनेवाली पवित्र और साक्षात् पार्वतीरूप ही है॥ १—४॥

तीर्थं पञ्चतपं नाम शम्भोरमिततेजसः।
यत्र देवादिदेवेन चक्रार्थं पूजितो भवः॥ ५॥
पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्तफलप्रदम्।
मृतस्तत्रापि नियमाद् ब्रह्मलोके महीयते॥ ६॥

अमित तेजस्वी शम्भुका पञ्चतप नामका एक तीर्थ है जहाँ देवोंके आदिदेव (विष्णु)-ने चक्र-प्राप्तिके लिये शंकरकी पूजा की थी। वहाँ (पञ्चनद तीर्थमें) किया गया पिण्डदान आदि कर्म परलोकमें अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ संकल्पपूर्वक नियमसे निवास करते हुए यथासमय प्राण-त्याग करनेवाला ब्रह्मलोकमें महिमा प्राप्त करता है॥ ५-६॥

कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम्।
यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः सम्प्रवर्तिताः॥ ७॥
श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः।
परित्यजति यः प्राणान् रुद्रलोकं स गच्छति॥ ८॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमिति श्रुतम्।
तत्र गत्वा त्यजेत् प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान्॥ ९॥
जामदग्न्यस्य तु शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्॥ १०॥
महाकालमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ११॥
गुह्याद् गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम्।
तत्र संनिहितः श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वरः॥ १२॥

कायावरोहण नामक महादेवका एक शुभ स्थान (तीर्थ) है जहाँ मुनियोंने माहेश्वर धर्मोंका प्रवर्तन किया था। वहाँ किया गया श्राद्ध, दान तप होम तथा उपवास अक्षय (फल प्रदान करनेवाला) होता है। वहाँ जो प्राण परित्याग करता है वह रुद्रलोकमें जाता है। एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो कन्यातीर्थ

इस नामसे विख्यात है। वहाँ जाकर प्राणोंका परित्याग करनेसे शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति होती है। जमदग्निके पुत्र अक्लिष्टकर्मा परशुरामका भी एक शुभ तीर्थ है। उस तीर्थ-श्रेष्ठमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। महाकाल इस नामसे विख्यात तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर प्राणोंका परित्याग करनेसे गाणपत्य-पद प्राप्त होता है। श्रेष्ठ नकुलीश्वर तीर्थ गुह्यस्थानोंमें भी अत्यन्त गुह्य है। वहाँ श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर विराजमान रहते हैं॥ ७—१२॥

हिमवच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने।
देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च संवृतः॥ १३॥
तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम्।
सर्वपापैर्विमुच्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात्॥ १४॥

हिमालयके रमणीय शिखरपर स्थित अत्यन्त सुन्दर गङ्गाद्वारमें शिष्योंसे घिरे हुए महादेव देवीके साथ नित्य निवास करते हैं। वहाँ स्नानकर वृषध्वज महादेवकी पूजा करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है और मृत्युके बाद परम ज्ञान प्राप्त होता है॥ १३-१४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम्।
भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम्॥ १५॥
तथान्यच्चण्डवेगाया सम्भेदं पापनाशनम्।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ १६॥

देवाधिदेव (शंकर)-का एक दूसरा शुभ तथा पवित्रतम स्थान है जो भीमेश्वर इस नामसे विख्यात है। वहाँ जानेसे व्यक्ति पापसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार चण्डवेगा नदीका उद्गम-स्थान भी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करने तथा जलका पान करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है॥ १५-१६॥

सर्वेषामपि चैतेषां तीर्थानां परमा पुरी।
नाम्ना वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका॥ १७॥
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो मया त्विह।
नान्यत्र लभ्यते मुक्तिर्योगिनाप्येकजन्मना॥ १८॥

इन सभी तीर्थोंमें भी श्रेष्ठ तथा दिव्य वाराणसी नामकी पुरी हजारों करोड़गुना अधिक फलप्रदा है। पूर्वमें मैंने आप लोगोंसे उसके माहात्म्यका वर्णन किया था। योगीको भी (वाराणसीके अतिरिक्त) अन्यत्र एक जन्ममें मुक्ति नहीं मिलती॥ १७-१८॥

एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम्।
गत्वा संक्षालयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्॥ १९॥
यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च॥ २०॥

मनुष्योंके पापोंको हरनेवाले ये प्रधान-प्रधान देश (तीर्थ) बतलाये गये हैं। यहाँ जाकर सैकड़ों जन्मोंमें किये पापोंका प्रक्षालन करना चाहिये। जो अपने धर्मोंका परित्यागकर तीर्थोंका सेवन करता है, उसके लिये तीर्थ न इस लोकमें फलदायी होते हैं न परलोकमें॥ १९-२०॥

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा पापचरो गृही।
प्रकुर्यात् तीर्थसंसेवां ये चान्ये तादृशा जनाः॥ २१॥
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत् तीर्थानि यत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्॥ २२॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य कुर्याद् वा तीर्थसेवनम्।
विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्यां तेषु निधाय च॥ २३॥

प्रायश्चित्ती पत्नीसे रहित विधुर पुरुष तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकारके जो अन्य लोग हैं, उन्हें (पश्चात्तापपूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक अग्नि[1] अथवा पत्नीके साथ तीर्थोंमें जाना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होकर यथोक्त गति (उत्तम गति) प्राप्त करता है। अथवा तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेके बाद पुत्रोंके लिये जीविका-सम्बन्धी वृत्तिकी व्यवस्थाकर और अपनी पत्नीको उन्हें सौंपकर तीर्थका सेवन करना चाहिये॥ २१—२३॥

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि मुच्यते सर्वपातकैः॥ २४॥

प्रायश्चित्तके प्रसङ्गवश तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया। इसे पढ़नेवाला अथवा सुननेवाला भी सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ २४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

१-अग्निहोत्री वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकारकर अपनी अग्नि तथा धर्मपत्नीके साथ तीर्थमें निवास करता है।

तैंतालीसवाँ अध्याय

चतुर्विध प्रलयका प्रतिपादन, नैमित्तिक प्रलयका विशेष वर्णन, विष्णुद्वारा अपने माहात्म्यका निरूपण

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम्।
कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम्॥ १॥

सूतजीने कहा—नारायणके मुखसे कहे गये इस विशिष्ट ज्ञानको सुनकर मुनियोंने कूर्मरूप धारण करनेवाले प्रभु देवसे पूछा—॥ १॥

मुनय ऊचुः

कथिता भवता धर्मा मोक्षज्ञानं सविस्तरम्।
लोकानां सर्गविस्तारं वंशमन्वन्तराणि च॥ २॥
प्रतिसर्गमिदानीं नो वक्तुमर्हसि माधव।
भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम्॥ ३॥

मुनियोंने कहा—(सूतजी!) आपने विस्तारपूर्वक धर्म, मोक्ष, ज्ञान, लोकोंकी सृष्टिके विस्तार, वंश और मन्वन्तरोंको हमें बतलाया। माधव! भूतभव्येश! जैसा आपने पूर्वमें (पुराण-लक्षणके प्रसंगसे प्रतिसर्गके विषयमें) बतलाया है, तदनुसार अब हमें प्राणियोंके प्रतिसर्गके विषयमें बतलायें॥ २-३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपधृक्।
व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसंचरम्॥ ४॥

सूतजीने कहा—तब उनके उस वचनको सुनकर कूर्मरूपधारी महायोगी भगवान्ने भूतोंके प्रतिसंचर अर्थात् प्रलयका वर्णन किया॥ ४॥

कूर्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिकौ तथा।
चतुर्धायं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसंचरः॥ ५॥
योऽयं संदृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह।
नित्यः संकीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसंचरः॥ ६॥
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति।
त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः॥ ७॥
महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम्।
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः॥ ८॥
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः॥ ९॥

कूर्म बोले—इस पुराणमें नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यन्तिक—इस प्रकारसे चार प्रकारका प्रतिसंचर (प्रलय) कहा गया है। लोकमें यहाँ जो प्राणियोंका नित्य क्षय दिखलायी देता है, उसे मुनियोंने नित्य-प्रलयके नामसे कहा है। कल्पान्तमें ब्रह्मा (-की निद्रा)-के निमित्तसे होनेवाले तीनों लोकोंके प्रतिसर्ग—प्रलयको विद्वानोंने (नैमित्तिक प्रलय) कहा है। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्वोंका जो क्षय हो जाता है, उसे कालचिन्तकोंने प्राकृत प्रतिसर्ग कहा है और ज्ञानद्वारा परमात्मामें होनेवाले योगियोंके आत्यन्तिक प्रलयको[1] कालचिन्तक द्विज आत्यन्तिक प्रतिसर्ग (प्रलय) कहते हैं॥ ५—९॥

आत्यन्तिकश्च कथितः प्रलयोऽत्र ससाधनः।
नैमित्तिकमिदानीं वः कथयिष्ये समासतः॥ १०॥

यहाँ साधनसहित आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्षका वर्णन किया गया है। अब मैं संक्षेपमें आप लोगोंको नैमित्तिक प्रलयके विषयमें बतलाऊँगा॥ १०॥

चतुर्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे।
स्वात्मसंस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रतिपेदे प्रजापतिः॥ ११॥
ततो भवत्यनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयकरी॥ १२॥
ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥ १३॥
सप्तरश्मिरथो भूत्वा समुत्तिष्ठन् दिवाकरः।
असह्यरश्मिर्भवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः॥ १४॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे।
तेनाहारेण ता दीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत॥ १५॥
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्या भूत्वा चतुर्दिशम्।
चतुर्लोकमिदं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तथा॥ १६॥

एक हजार चतुर्युग (सत्य-त्रेता-द्वापर तथा कलियुग)-के अन्तमें प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रजापति समस्त प्रजाको आत्मस्थ करनेकी इच्छा करते हैं। इसके बाद सौ वर्षोतक तीव्र अनावृष्टि होती है, वह भूतों एवं सभी प्राणियोंका विनाश करनेवाली तथा अत्यन्त भयंकर होती है। तदनन्तर भूमिपर जो अल्पसार अर्थात् निर्बल प्राणी होते हैं, सबसे पहले उनका लय

---

[1] १-यहाँ प्रलयका तात्पर्य परमात्मतत्त्वके साथ एकरूपतासे है।

होता है और वे भूमिम मिल जाते हैं। तब सात रश्मियोवाले रथपर आरूढ होकर सूर्य उदित होत हैं। उनकी किरण असहय हो जाती हैं, वे अपनी किरणाद्वारा जल पीने लगते हैं। उनकी वे साता रश्मियाँ महासमुद्रमे स्थित जलको पीती हैं। उस आहारसे उद्दीप्त होकर वे (सात) रश्मियाँ पुन सात सूर्य बन जाती हैं। तदनन्तर सूर्यरूप वे सातो रश्मियाँ चारो दिशाओ तथा सम्पूर्ण इस चतुर्लोकको अग्निके समान दग्ध करने लगती हैं॥ ११—१६॥

व्याप्नुवन्तश्च ते, विप्रास्तूर्ध्वं चाधश्च रश्मिभि ।
दीप्यन्ते भास्करा सप्त युगान्ताग्निप्रतापिन ॥१७॥
ते सूर्या वारिणा दीप्ता बहुसाहस्त्ररश्मय ।
ख समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुधराम्॥१८॥
ततस्तेषा प्रतापेन दह्यमाना वसुधरा।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निस्नेहा समपद्यत॥१९॥
दीप्ताभि सतताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्तत ।
अधश्चोर्ध्वं च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम्॥२०॥

ब्राह्मणो! प्रलयकालीन अग्निके तेजसे युक्त व सातो सूर्य अपनी-अपनी रश्मियाके द्वारा ऊर्ध्व तथा अधोभागको व्याप्तकर अतिशय उद्दीप्त हो जाते है। जलसे प्रदीप्त अनेक सहस्र रश्मियावाले वे सूर्य आकाशको आवृतकर स्थित रहते हैं और पृथिवीको जलाने लगते हैं। तदनन्तर उनके तेजसे जलती हुई पृथ्वी पर्वता नदिया समुद्रो तथा द्वीपाके साथ स्नेह (द्रवभाव)-से रहित हो जाती है अर्थात् अत्यन्त सूख जाती है। सतत प्रदीप्त रहनेवाली वे रश्मियाँ ऊपर-नीचे तथा आडे-तिरछे सभी आर व्याप्त हो जाती हैं॥ १७—२०॥

सूर्याग्निना प्रमृष्टाना, ससृष्टाना परस्परम्।
एकत्वमुपयातानामेकज्वाल भवत्युत॥२१॥
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा सुकुण्डली।
चतुर्लोकमिद सर्वं निर्दहत्यात्मतेजसा॥२२॥
तत प्रलीने सर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावर तथा।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमि कूर्मपृष्ठा प्रकाशत॥२३॥
अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरित जगत्।
सर्वमेव तदर्चिर्भि पूर्ण जाज्वल्यते पुन ॥२४॥

सूर्यरूप अग्निक द्वारा प्रकृष्टरूपसे शाधित और परस्पर ससृष्ट ससारक समस्त पदार्थ एक ज्वालाक रूपम एकाकार हा जाते हैं। सभी लाकाका नष्ट करनवाला वह सूयरूप अग्नि एक मण्डलके रूपम हाकर अपन तेजस इस सम्पूण चतुर्लोकका दग्ध करने लगती है। तब सम्पूर्ण स्थावर एव जगम पदार्थोके लीन हो जानेपर वृक्षा तथा तृणासे रहित भूमि कछुएके पीठके समान दिखलायी देती है। (किरणोंसे) व्याप्त समस्त जगत् अम्बरीष—भडभूजेकी कडाहीके सदृश वर्णवाला दिखलायी देता हे। उन ज्वालाआके द्वारा सभी कुछ पूर्णरूपसे प्रज्वलित होने लगता है॥ २१—२४॥

पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥२५॥
द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन्।
तान् सर्वान् भस्मसात् कृत्वा सप्तात्मा पावक प्रभु ॥२६॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वश ।
पिबन्नप समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥२७॥

तदनन्तर पातालमे तथा महासमुद्राम जो प्राणी रहते हैं उनका लय होता है और वे सभी भूमिके रूपम परिवर्तित हो जाते हैं। सात (सूर्यो)-के रूपमे प्रदीप्त हो रह प्रभु पावक (अग्निदेव) उन सभी द्वीपो पर्वता, वर्षों तथा महासमुद्राको भस्मसात् कर देते हैं। समुद्रो नदिया तथा पातालाके सम्पूर्ण जलका शोषण करती हुई प्रदीप्त अग्नि (सूर्यकी ज्वाला) पृथ्वीपर प्रज्वलित होने लगती है अर्थात् पृथ्वीको जलाने लगती है॥ २५—२७॥

तत सवर्तक ,शैलानतिक्रम्य महास्तथा।
लोकान् दहति दीप्तात्मा रुद्रतेजोविजृम्भित ॥२८॥
स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोषयत्।
अधस्तात् पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूर्ध्वं ,दहिष्यति॥२९॥
योजनाना शतानीह सहस्त्राण्ययुतानि च।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्ने सवर्तकस्य तु॥३०॥

तदनन्तर महान् सवर्तक नामक अग्नि पर्वताका अतिक्रमण करते हुए रुद्रके तेजसे पुष्ट होनेके कारण दीप्त आत्मावाला होकर लोकाको जलाने लगती है। (सम्पूर्ण) पृथ्वाको दग्धकर व अग्निदेव रसातलको शापित करते हैं। पृथ्वाक नीचक भागको जलाकर ऊपरके द्युलोकको जलान लगत हैं। उस सवर्तक अग्निकी शिखाएँ सैकडा हजारा तथा दस हजार याजन ऊपरतक उठने लगती हैं॥ २८—३०॥

गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान्।
तदा दहत्यसौ दीप्त कालरुद्रप्रचादित ॥३१॥
भूर्लोक च भुवर्लोक स्वर्लोक च तथा मह ।
दहदशप कालाग्नि कालो विश्वतनु स्वयम्॥३२॥

व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना।
तत् तेज समनुप्राप्य कृत्स्न जगदिद शनै ।
अयोगुडनिभ सर्वं तदा चैक प्रकाशते॥ ३३॥

तब कालरुद्रद्वारा प्रेरित होकर यह उद्दीप्त अग्नि गन्धर्वों पिशाचों, यक्षा, नागो तथा राक्षसोको जलाती है। कालाग्नि-स्वरूप विश्वात्मा स्वय काल भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोकको सम्पूर्णरूपसे जला देता है। इन लोकोमे तिरछे तथा ऊँचे सब जगह अग्निके द्वारा व्याप्त कर दिये जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् उस तेजसे धीरे-धीरे पूरित होकर (जलते हुए) एक अय पिण्ड (लोहपिण्ड)-के समान प्रकाशित होने लगता है॥ ३१—३३॥

ततो गजकुलोन्नादास्तडिद्भि समलकृता ।
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोरा सवर्तका घना ॥ ३४॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित् कुमुदसनिभा ।
धूम्रवर्णास्तथा केचित् केचित् पीता पयोधरा ॥ ३५॥
केचिद् रासभवर्णास्तु लाक्षारससनिभास्तथा।
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभा परे॥ ३६॥
मन शिलाभास्त्वन्ये च कपोतसदृशा परे।
इन्द्रगोपनिभा कचिद्धरितालनिभास्तथा।
इन्द्रचापनिभा केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि॥ ३७॥

तदनन्तर हाथियाके समूहके समान नाद करनेवाले विद्युत्से अलकृत सवर्तक नामक भयकर मेघ आकाशमे प्रकट होते हैं। उन मेघामसे कुछ नीलकमलके समान श्यामवर्णके, कुछ कुमुदके समान श्वेत, कुछ धूम्रवर्णके, कुछ पीतवर्णके कुछ रासभ (धूसर) वर्णके कुछ लाक्षारसके समान कुछ दूसरे शख तथा कुन्द (पुष्प)-के समान रगवाले कुछ जाती पुष्प (चमेली)-के तथा अञ्जन (काजल)-के समान कुछ मन शिला (मैनसिल)-के समान रगवाले और कुछ दूसरे कपोतके समान वर्णवाले, कुछ इन्द्रगोप (बीरबहूटी कीट)-के समान कुछ हरतालके समान और कुछ इन्द्रधनुषके समान वर्णवाले मेघ आकाशमे प्रकट होते हैं॥ ३४—३७॥

केचित् पर्वतसकाशा केचिद् गजकुलोपमा ।
कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहा ।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिन ॥ ३८॥
तदा जलधरा सर्वे पूरयन्ति नभ स्थलम्।
ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजा ।
सप्तधा सवृतात्मानस्तमग्नि शमयन्त्युत॥ ३९॥

कुछ मेघ पर्वतके तुल्य, कुछ हाथियोके समूहके समान, कुछ कूटाङ्गारके समान और कुछ मछलियोंके समूहके आकारके होते हैं। व मेघ अनेक रूप धारण करनेवाले, भयकर आकारवाले तथा घोर गर्जना-जेसी ध्वनि करनेवाले होते हैं। उस समय वे सभी बादल आकाशको व्याप्त कर लेते हैं तदनन्तर भास्करसे उत्पन्न गर्जना करनेवाले वे सात प्रकारके भयकर बादल एकत्रित होकर उस अग्निको शान्त करते हैं॥ ३८-३९॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्तीह महौघवत्।
सुघोरमशिव सर्वं नाशयन्ति च पावकम्॥ ४०॥
प्रवृष्टे च तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत्।
अद्भिस्तेजोऽभिभूतत्वात् तदाग्नि प्रविशत्यप ॥ ४१॥

तदुपरान्त वे मेघ महान् बाढके समान जलकी वर्षा करते हैं और अत्यन्त भयकर, अकल्याणकारी उस सम्पूर्ण अग्निको नष्ट कर देते हैं। अतिशय वृष्टि होनेके कारण जगत् जलसे परिपूर्ण हो जाता है। जलके द्वारा तेज (अग्नि)-के अभिभूत होनेके कारण उस समय वह अग्नि जलमे प्रविष्ट हो जाता है॥ ४०-४१॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतै पयोदा क्षयसम्भवा ।
प्लावयन्तोऽथ भुवन महाजलपरिस्रवे ॥ ४२॥
धाराभि पूरयन्तीद चोद्यमाना स्वयम्भुवा।
अत्यन्तसलिलौघैश्च वेला इव महादधि ॥ ४३॥

इस तरह अग्निके शान्त हो जानेपर स्वयम्भू ब्रह्माक द्वारा प्रेरित मेघ अत्यधिक जलके प्रवाहासे समस्त भुवनका आप्लावित करते हुए वैसे ही अपनी जलधाराओंसे इस भुवनका परिपूर्ण कर देते हैं, जैसे समुद्र अत्यधिक जलाक प्रवाहोसे अपने तटाको आप्लावित कर दता है। ये मघ इतन जलसे भरपूर हैं कि इनका क्षय दिव्य सैकडा वर्षोमे कदाचित् सम्भव है॥ ४२-४३॥

साद्रिद्वीपा तथा पृथ्वी जलै सच्छाद्यते शनै ।
आदित्यरश्मिभि पीत जलमभ्रेषु तिष्ठति।
पुन पतति तद् भूमौ पूर्यन्त तेन चार्णवा ॥ ४४॥
तत समुद्रा स्वा वेलामतिक्रान्तास्तु कृत्स्नश ।
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति॥ ४५॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
योगनिद्रा समास्थाय शेते देव प्रजापति ॥ ४६॥

धीरे-धीरे पर्वतो तथा द्वीपावाली पृथ्वी जलसे ढक जाती है और सूर्यकी रश्मियाद्वारा गृहीत वह जल बादलाम स्थित रहता है। पुन वह जल पृथ्वीपर गिरता है और उससे समुद्र इतने आपूरित हो जाते हैं कि सर्वत्र अपने तटाका अतिक्रमण कर वे जलमय हो जाते हैं पर्वत जलम विलीन हो जाते हैं और पृथ्वी भी जलम डूब जाती है। उस भयकर एकार्णव (महासमुद्र)-म स्थावर-जगम सभीक लीन हा जानपर योगनिद्राका आश्रय ग्रहणकर देव प्रजापति शयन करते हैं॥ ४४—४६॥

चतुर्युगसहस्रान्त कल्पमाहुर्महर्षय ।
वाराहो वर्तते कल्पो यस्य विस्तार ईरित ॥४७॥
असख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मका ।
कथिता हि पुराणेपु मुनिभि कालचिन्तकै ॥४८॥
सात्त्विकेष्वथ कल्पेपु माहात्म्यमधिक हरे ।
तामसेपु हरस्योक्त राजसेपु प्रजापत ॥४९॥
योऽय प्रवर्तते कल्पो वाराह सात्त्विको मत ।
अन्ये च सात्त्विका कल्पा मम तेपु परिग्रह ॥५०॥

महर्षियान एक हजार चतुयुगीका एक कल्प कहा है। अभी जिसका विस्तार बतलाया गया है वह वाराह कल्प इस समय चल रहा है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मक असख्य कल्प हैं। पुराणमे कालचिन्तक मुनियान उनका वर्णन किया है। सात्त्विक (सत्त्वप्रधान) कल्पाम हरिका अधिक माहात्म्य होता है। तामस (तम प्रधान) कल्पाम शकरका और राजस (रज - प्रधान) कल्पाम प्रजापति ब्रह्माका अधिक माहात्म्य होता है। इस समय प्रवर्तमान वाराह कल्प सात्त्विक कल्प है। अन्य भी सात्त्विक कल्प हैं उनम मुझे कूर्मभगवान्का आश्रय ग्रहण करना चाहिय॥ ४७—५०॥

ध्यान तपस्तथा ज्ञान लब्ध्वा तेप्वेव योगिन ।
आराध्य गिरिश मा च यान्ति तत् परम पदम्॥५१॥
सोऽह सत्त्व समास्थाय मायी मायामयीं स्वयम्।
एकार्णवे जगत्यस्मिन् योगनिद्रा व्रजामि तु॥५२॥
मा पश्यन्ति महात्मान सुप्त काल महर्षय ।
जनलोके वर्तमानास्तपसा योगचक्षुपा॥५३॥

उन कल्पामे योगीजन ध्यान तप तथा ज्ञान प्राप्तकर उनक द्वारा शकरकी तथा मेरी आराधना करके परमपदको प्राप्त करते हैं। जगत्के एकार्णव हो जानेपर मायाका अधिष्ठाता मैं सत्त्वका आश्रय ग्रहणकर मायामय योगनिद्राम स्थित हो जाता हूँ। उस समय जनलोकमे विद्यमान महात्मा महर्षिगण तपस्या तथा योगरूपी नेत्राक द्वारा निद्रालीन कालस्वरूप मेरा दर्शन करते हैं॥ ५१—५३॥

अह पुराणपुरुषो भूर्भुव प्रभवो विभु ।
सहस्रचरण श्रीमान् सहस्राशु सहस्रदृक्॥५४॥
मन्त्रोऽग्निर्ब्राह्मणा गाव कुशाश्च समिधो ह्यहम्।
प्रोक्षणी च स्रुवश्चैव सोमो घृतमथास्म्यहम्॥५५॥
सवर्तको महानात्मा पवित्र परम यश ।
वेदो वेद्य प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्ब्रह्मणो मुखम्॥५६॥
अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमता वर ।
हस प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्ति सनातन ॥५७॥
क्षेत्रज्ञ प्रकृति कालो जगद्बीजमथामृतम्।
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥५८॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता
नारायण पुरुषो योगमूर्ति ।
मा पश्यन्ति यतयो योगनिष्ठा
ज्ञात्वात्मानममृतत्व व्रजन्ति॥५९॥

मैं पुराणपुरुष, भूर्भुव , प्रभव तथा विभु हूँ, मैं हजारा चरणवाला श्रीसम्पन्न हजारो किरणवाला तथा हजारो नेत्रवाला हूँ। मैं ही मन्त्र अग्नि, ब्राह्मण गौ कुश एव समिधा हूँ और प्रोक्षणी, स्रुव (यज्ञीय पात्र) सोम तथा घृत भी मैं ही हूँ। मैं ही सवर्तक (अग्नि), महान्, आत्मा पवित्र तथा परम यश हूँ। वेद-वेद्य (जिसे जाना जाता है) प्रभु, गोप्ता (रक्षक), गोपति (इन्द्रियों एव वाणीके स्वामी) और ब्रह्माका मुख (आविर्भावस्थल) भी मैं ही हूँ। मैं अनन्त तारक योगी गति गतिशीलोमें श्रेष्ठ हस प्राण कपिल विश्वमूर्ति सनातन क्षेत्रज्ञ प्रकृति काल जगद्बीज और अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही माता पिता तथा महादेव हूँ, मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैं आदित्यके समान वर्णवाला भुवनाका रक्षक नारायण पुरुष तथा योगमूर्ति हूँ। योगपरायण यतिजन मेरा दर्शन करते हैं और अपनी आत्माका ज्ञान प्राप्तकर अमृतत्व (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं॥ ५४—५९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्या सहितायामुपरिविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४३॥

॥ इस प्रकार छ हजार श्लोकोवाली श्रीकूर्मपुराणसहिताके उपरिविभागमे तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

प्राकृत प्रलयका वर्णन, शिवके विविध रूपो और विविध शक्तियोका वर्णन, शिवकी आराधनाकी विधि, मुनियोद्वारा कूर्मरूपधारी विष्णुकी स्तुति, कूर्मपुराणकी विषयानुक्रमणिकाका वर्णन, कूर्मपुराणकी फलश्रुति तथा इस पुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्पराका प्रतिपादन, महर्षि व्यास तथा नारायणकी वन्दनाके साथ पुराणकी पूर्णताका कथन

कूर्म उवाच

अत पर प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम्।
प्राकृत हि समासेन शृणुध्व गदतो मम॥१॥

(भगवान्) कूर्मने कहा—इसके अनन्तर अब मैं उत्तम प्राकृत प्रलयका सक्षेपमे वर्णन करूँगा। उसे आप श्रवण कर॥१॥

गते परार्धद्वितये कालो लोकप्रकालन ।
कालाग्निर्भस्मसात् कर्तुं करोति निखिल मतिम्॥२॥
स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा दवो महेश्वर ।
दहेदशेष ब्रह्माण्ड सदेवासुरमानुषम्॥३॥
तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहित ।
करोति लोकसहार भीषण रूपमाश्रित ॥४॥
प्रविश्य मण्डल सौर कृत्वासौ बहुधा पुन ।
निर्दहत्यखिल लोक सप्तसप्तिस्वरूपधृक्॥५॥

द्वितीय[1] पराध (अर्थात् ब्रह्माजीकी परमायु—दिव्य १०० वर्षका समय)-के बीत जानेपर समस्त लोकोका लय करनेवाला कालरूप कालाग्नि सम्पूर्ण जगत्‌को भस्मसात् करनेका निश्चय करता है। महेश्वर देव अपनी आत्मामें आत्मा (जीवात्मा)-को आविष्टकर देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध करते हैं। भगवान् नीललोहित महादेव भीषण रूप धारणकर उस अग्निमें प्रविष्ट होकर अर्थात् महाकालरूप होकर लोकका सहार करते हैं। सौर-मण्डलमें प्रविष्ट होकर उसे पुन अनेक रूपवाला बनाकर सात-सात किरणवाले सूर्यरूपधारी वे महेश्वर सम्पूर्ण लोकका दग्ध करते हैं॥ २—५॥

स दग्ध्वा सकल सत्त्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्।
देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम्॥६॥
दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा।
एका सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठत वैदिकी श्रुति ॥७॥

समस्त सत्त्व (पदार्थों)-को दग्ध करके वे महेश्वर देवताओंके शरीरपर सभीको जलानेमे समर्थ ब्रह्मशिर नामक महान् अस्त्रको छोडते हैं। सम्पूर्ण देवताओके दग्ध हो जानेपर श्रेष्ठ पर्वत (हिमवान्)-की पुत्री देवी पार्वती अकेली ही साक्षीके रूपमे उन (शिव)-के पास स्थित रहती हैं—ऐसी वैदिकी श्रुति है॥ ६-७॥

शिर कपालैर्देवाना कृतस्त्रग्वरभूषण ।
आदित्यचन्द्रादिगणै पूरयन् व्योममण्डलम्॥८॥
सहस्रनयनो देव सहस्राकृतिरीश्वर ।
सहस्रहस्तचरण सहस्रार्चिर्महाभुज ॥९॥
दष्ट्राकरालवदन प्रदीप्तानललोचन ।
त्रिशूली कृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थित ॥१०॥
पीत्वा तत्परमानन्द प्रभूतममृत स्वयम्।
करोति ताण्डव देवीमालोक्य परमेश्वर ॥११॥

देवताओंके मस्तकके कपालसे निर्मित मालाको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले हजारो नेत्रवाले, हजारो आकृतिवाले हजारो हाथ-पैरवाले, हजारो किरणवाले भीषण दष्ट्रा (दाढ)-के कारण भयकर मुखवाले प्रदीप्त अग्निके समान नेत्रावाले, त्रिशूली चर्माम्बरधारी वे देव महेश्वर अनन्त सूर्य एव चन्द्रके समूहोसे समस्त आकाशमण्डलको व्याप्तकर ऐश्वर-योगमें स्थित हो जाते हैं और भगवती पार्वतीको देखते हुए परमानन्दमय अमृतका पानकर स्वय ताण्डव नृत्य करते हैं॥ ८—११॥

पीत्वा नृत्तामृतं देवी भर्तु परममङ्गला।
योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिन ॥१२॥
सत्यक्त्वा ताण्डवरस स्वेच्छयैव पिनाकधृक्।
ज्योति स्वभाव भगवान् दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम्॥१३॥
सस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मविष्णुपिनाकिषु।

[1] १-ब्रह्माकी आयु दिव्य सौ वर्षकी है। इस कालको 'पर' कहते हैं। इसका आधा भाग 'परार्ध' होता है। (कूर्म० पूर्वविभाग अ० ५) रुद्रकल्पद्रुममें उद्धृत।

गुणैरशेषै पृथिवी विलय याति वारिषु॥ १४॥
सवारितत्त्व सगुण ग्रसते हव्यवाहन ।
तेजस्तु गुणसयुक्त वायौ सयाति सक्षयम्॥ १५॥

पतिक नृत्यरूपी अमृतका पानकर परम कल्याणरूपिणी देवी (पावती) योगका आश्रय लेते हुए त्रिशूली शिवके शरीरमें प्रविष्ट हा जाती हैं। ब्रह्माण्डमण्डलको दग्ध करनेके अनन्तर पिनाक धारण करनवाले भगवान् (शिव) अपनी इच्छासे ही ताण्डव (-के आनन्द)-रसका परित्यागकर ज्योति स्वरूप अपने भावम स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु तथा पिनाकी शिवके इस प्रकार स्थित हा जानेपर अपने सम्पूर्ण गुणोके साथ पृथ्वो जलमें विलीन हो जाती है। अपने गुणासहित उस जल-तत्त्वका हव्यवाहन अग्नि ग्रहण कर लता है और अपने गुणासहित वह तेज (अग्नि) वायुम विलीन हो जाता है॥ १२—१५॥

आकाशे सगुणो वायु प्रलय याति विश्वभृत्।
भूतादौ च तथाकाश लीयते गुणसयुतम्॥ १६॥
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति सक्षयम्।
वैकारिके देवगणा प्रलय यान्ति सत्तमा ॥ १७॥
वैकारिकस्तजसश्च भूतादिश्चेति सत्तमा ।
त्रिविधोऽयमहकारो महति प्रलय व्रजेत्॥ १८॥

विश्वको भरण-पोपण करनेवाला वायु अपने गुणाके साथ आकाश (तत्त्व)-म लीन हा जाता है और अपने गुणसहित वह आकाश भूतादि अर्थात् तामस अहकारमें लीन हो जाता है। सत्तमो! सभी इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहकारमे विलीन हा जाती हैं और (इन्द्रियाके अधिष्ठाता) देवगण वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहकारम प्रलीन हो जाते हैं। श्रेष्ठो! वैकारिक तैजस तथा भूतादि (तामस) नामक तीन प्रकारका अहकार महत्तत्त्वम लीन हो जाता है॥ १६—१८॥

महान्तमेभि सहित ब्रह्माणमतितेजसम्।
अव्यक्त जगतो योनि सहरेदेकमव्ययम्॥ १९॥
एव सहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वर ।
वियोजयति चान्योन्य प्रधान पुरुष परम्॥ २०॥
प्रधानपुसारजयोरेप सहार ईरित ।
महेश्वरच्छाजनितो न स्वय विद्यते लय ॥ २१॥
गुणसाम्य तदव्यक्त प्रकृति परिगीयत।
प्रधान जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम्॥ २२॥

यह महत्तत्त्व पृथ्वीसे अहकारपर्यन्त समस्त तत्त्वोका मूल होनक कारण एक प्रकारसे अमित तेजस्वी ब्रह्मा ही हैं। अत ब्रह्मारूप तथा अपनेमें पृथ्वी आदि समस्त तत्त्वाको समाविष्ट कर लेनेवाले इस अद्वितीय महत्तत्त्वका सहार वह प्रकृति कर देती है जो अव्यक्त है एव समस्त जगत्का मूल कारण है। इस प्रकार (पञ्च) भूता तथा तत्त्वोका सहारकर महेश्वर प्रधान—प्रकृति और पुरुपको परस्पर वियुक्त कर देते हैं। इस (प्रकृति-पुरुष वियोगको) ही अनादि प्रकृति और पुरुपका सहार कहा जाता है (क्योंकि साख्यशास्त्रके अनुसार इन दोनोके नित्य होनेसे इनका लय कहीं नहीं हो सकता)। यह (वियोगरूप) लय भी महेश्वरकी इच्छासे ही होनेवाला है स्वय नहीं हो सकता। गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है और अव्यक्त है। जगत्का मूल कारण प्रधान है। वह अचेतन है, इसे मायाके रूपमें समझना चाहिये॥ १९—२२॥

कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवल पञ्चविशक ।
गीयते मुनिभि साक्षी महानेक पितामह ॥ २३॥
एव सहारकरणी शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा।
प्रधानाद्य विशेषान्त दहेद् रुद्र इति श्रुति ॥ २४॥
योगिनामथ सर्वेषा ज्ञानविन्यस्तचेतसाम्।
आत्यन्तिक चैव लय विदधातीह शकर ॥ २५॥

कूटस्थ अद्वितीय पचीसवाँ तत्त्वरूप आत्मा चिन्मय-चेतन होता है। मुनिगण इसे साक्षी महान् तथा पितामह कहते हैं। इतनेसे यह स्पष्ट है कि महेश्वरकी शाश्वत शक्ति ही सहार करती है। श्रुतिका भी यही कथन है कि रुद्र प्रधान अर्थात् प्रकृतिसे विशेष अर्थात् स्थूलभूतपर्यन्त सभी तत्त्वोको दग्ध करते हैं। ज्ञानपरायण सभी योगियोका आत्यन्तिक प्रलय भी शकर ही करते हैं॥ २३—२५॥

इत्येष भगवान् रुद्र सहार कुरुते वशी।
स्थापिका मोहनी शक्तिर्नारायण इति श्रुति ॥ २६॥
हिरण्यगर्भो भगवान् जगत् सदसदात्मकम्।
सृजेदशेष प्रकृतेस्तन्मय पञ्चविशक ॥ २७॥

इस प्रकार सबको अपने वशमे रखनेवाले ये भगवान् रुद्र ही सहार करते हैं। श्रुतिके अनुसार (जगत्की) स्थापना करनेवाली (रुद्रकी) मोहनी शक्तिको ही नारायण कहते हैं। पचीसवे तत्त्व अर्थात् पुरुषस्वरूप भगवान् हिरण्यगर्भ प्रकृतिसे तन्मय (सयुक्त) होकर सम्पूर्ण सत्-असदात्मक जगत्की सृष्टि करते हैं॥ २६-२७॥

सर्वज्ञा सर्वगा शान्ता स्वात्मन्येव व्यवस्थिता ।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ २८॥

सर्वेश्वरा सर्ववन्द्या शाश्वतानन्तभोगिन ।
एकमेवाक्षर तत्त्व पुप्रधानेश्वरात्मकम्॥ २९॥

अपनी आत्मामें ही व्यवस्थित रहनेवाली (अर्थात् स्वयम ही अधिष्ठित वस्तुत निरधिष्ठान) ब्रह्मा, विष्णु तथा ईश (महेश्वर) नामक सर्वज्ञ सर्वव्यापी तथा शान्त तीन शक्तियाँ भोग तथा मोक्षरूप फलको देनेवाली हैं। ये शक्तियाँ सर्वेश्वरस्वरूप, सभीके द्वारा वन्दनीय, शाश्वत और अनन्त भोगोसे सम्पन्न हैं। अद्वितीय अक्षर तत्त्व ही पुरुष प्रधान और ईश्वररूप है॥ २८-२९॥

अन्याश्च शक्तयो दिव्या सन्ति तत्र सहस्रश ।
इज्यन्ते विविधैर्यज्ञै शक्रादित्यादयोऽमरा ॥ ३०॥
एकैकस्य सहस्राणि देहाना वै शतानि च।
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा॥ ३१॥
ता ता शक्ति समाधाय स्वय देवो महेश्वर ।
करोति देहान् विविधान् ग्रसते चैव लीलया॥ ३२॥
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभि ।
सर्वकामप्रदा रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुति ॥ ३३॥
सर्वासामेव शक्तीना ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
प्राधान्येन स्मृता देवा शक्तय परमात्मन ॥ ३४॥

उस परमात्मा (अव्यक्त अक्षर-तत्त्व)-मे अन्य भी इन्द्र, सूर्य आदि हजारो दिव्य शक्तियाँ हैं। इनकी भी विविध यज्ञाके द्वारा आराधना की जाती है। इन इन्द्र, सूर्य आदि एक-एक देवका भी ऐसा माहात्म्य है कि इनके सैकडा-हजारो अर्थात् अनन्त शरीर हैं और इन शरीरोमे लोक-कल्याणक लिये अनन्त शक्तियाँ हैं, पर वस्तुत इन सबका मूल एक ही निर्गुण शक्ति है—अव्यक्त अक्षर अद्वितीय तत्त्व। उन-उन शक्तियोका आश्रयण कर महेश्वरदेव स्वय लीलापूर्वक विविध देहाकी सृष्टि करते हैं और उनका सहार भी करते हैं। वेदवादी (वेदज्ञ) ब्राह्मणोके द्वारा समस्त यज्ञोंमे उन (महेश्वर)-का पूजन किया जाता है। ये ही रुद्र हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओको प्रदान करनेवाले हैं—ऐसा वेदका कथन है। परमात्माकी सभी शक्तियोमे ब्रह्मा, विष्णु एव महेश्वरदेव प्रधान शक्तिके रूपमे माने गये हैं॥ ३०—३४॥

आद्य परस्ताद् भगवान् परमात्मा सनातन ।
गीयते सर्वशक्त्यात्मा शूलपाणिर्महेश्वर ॥ ३५॥
एनमेके वदन्त्यग्नि नारायणमथापरे।
इन्द्रमेके परे विश्वान् ब्रह्माणमपरे जगु ॥ ३६॥

शूलपाणि[1] महेश्वर (कारण ब्रह्म-तुरीय तत्त्व) तो आद्य, सबसे परे, भगवान्, परमात्मा, सनातन एव सर्वशक्त्यात्मा (समस्त शक्तियोके मूल उद्गम एव अधिष्ठान)-के रूपमे वेदोंमे वर्णित हैं। इसलिये कुछ लोग इन्हें अग्नि तथा कुछ लोग नारायण कहते हैं। ऐसे ही कोई इन्हे इन्द्र, कोई विश्वेदेव तथा काई ब्रह्मा कहते हैं॥ ३५-३६॥

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणा सर्वे देवास्तथर्षय ।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिता ॥ ३७॥
य य भेद समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्।
तत् तद् रूप समास्थाय प्रददाति फल शिव ॥ ३८॥
तस्मादेकतर भेद समाश्रित्यापि शाश्वतम्।
आराधयन्महादेव याति तत्परम पदम्॥ ३९॥
किन्तु देव महादेव सर्वशक्ति सनातनम्।
आराधयेद् वै गिरिश सगुण वाथ निर्गुणम्॥ ४०॥

ब्रह्मा विष्णु, अग्नि, वरुण तथा अन्य सभी देवता और महर्षिगण एक ही रुद्र (महेश्वर)-के विभिन्न स्वरूप कहे गये हैं। मनुष्य इन स्वरूपोमेसे जिस भेद (स्वरूप)-का अवलम्बन कर परमेश्वरकी आराधना करते हैं, शिव (महेश्वर) उसी स्वरूपको ग्रहणकर फल प्रदान करते हैं। अत इनमसे किसी एक भी भेद (स्वरूप)-का अवलम्बन कर सनातन महादेवकी आराधना करनेवालेको उस परम (शिव) पदकी प्राप्ति होती है। निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिसम्पन्न सनातन देव गिरिश महादवकी सगुण अथवा निर्गुण किसी भी रूपमे आराधना अवश्य करनी चाहिये॥ ३७—४०॥

मया प्रोक्तो हि भवता योग प्रागेव निर्गुण ।
आरुरुक्षुस्तु सगुण पूजयेत् परमेश्वरम्॥ ४१॥
पिनाकिन त्रिनयन जटिल कृत्तिवाससम्।
पद्मासनस्थ रुक्माभ चिन्तयेद् वैदिकी श्रुति ॥ ४२॥

मैंने आप लोगोको निर्गुण-योग (निर्बीज समाधि[2]) पहले ही बता दिया है। सगुणरूप (-की उपासना)-मे आरूढ होनेकी इच्छा करनेवालेको भी परमेश्वरकी पूजा (आराधना) करनी चाहिये। वेदके कथनके अनुसार पिनाक नामक धनुष

१-महेश्वर कार्यब्रह्म एव कारणब्रह्म-रूपमें शास्त्रोंमें वर्णित हैं। अव्यक्ततत्त्वको शक्तिरूपमे जिन महेश्वरकी चर्चा अभी ऊपर की गयी है, वे कार्यब्रह्म हैं। अव्यक्त अक्षर-तत्त्व कारणब्रह्म महेश्वरको समझना चाहिये। इन्हीं कारणब्रह्मको तुरीय (चतुर्थ) अद्वैत या तत्त्व कहा जाता है।

२- निर्बीज समाधि' साधककी वह अवस्था है जिसमे कोई भी संस्कार शेष नहीं रहता। इसीलिये इस अवस्थामे किसी भी प्रकारकी चित्तवृत्तिका अस्तित्व नहीं रहता। इसी कारण इस निर्बीज समाधिको कैवल्यावस्था कहते हैं।

धारण करनेवाल, तीन नेत्रवाले, जटाधारी चर्माम्बरधारी पद्मासनम स्थित तथा स्वर्णिम आभावाले (शकर)-का ध्यान करना चाहिये॥ ४१-४२॥

एप योग समुद्दिष्ट सबीजो मुनिसत्तमा ।
तस्मात् सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।
आराधयेद् विरूपाक्षमादिमध्यान्तसस्थितम्॥ ४३॥
भक्तियोगसमायुक्त स्वधर्मनिरत शुचि ।
तादृश रूपमास्थाय समायात्यन्तिक शिवम्॥ ४४॥
एप याग समुद्दिष्ट सबीजोऽत्यन्तभावने।
यथाविधि प्रकुर्वाण प्राप्नुयादैश्वर पदम्॥ ४५॥

मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार इस सबीज[१] यागका वर्णन किया गया। (इस सक्षिप्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि महेश्वरतत्त्व ही सर्वस्व परम ध्येय है) इसलिये ब्रह्मा आदि प्रधान सभी देवाको छोडकर आदि मध्य तथा अन्तम रहनवाले (शाश्वत तत्त्व) विरूपाक्ष (शकर)-की आराधना करनी चाहिये। अपने धर्ममें निरत रहनेवाला पवित्र तथा भक्तियोग-परायण व्यक्ति वैसा ही (शकरके समान) रूप धारणकर शिवके समीप आता है। अत्यन्त भावना—ध्येयाकार चित्तवृत्तिवाले इस सबीज योगका वर्णन किया गया। इसका यथाविधि अनुष्ठान करता हुआ व्यक्ति ऐश्वर (ईश्वर)-पदका प्राप्त करता है॥ ४३—४५॥

अत्राप्यशक्तोऽथ हर विष्णु ब्रह्माणमर्चयेत्।
अथ चेदसमर्थ स्यात् तत्रापि मुनिपुगवा ।
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद् भक्तिसयुत ॥४६॥
ये चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह।
अथापि कथितो योगा निर्बीजश्च सबीजक ॥४७॥
ज्ञान तदुक्त निर्बीज पूर्वं हि भवता मया।
विष्णु रुद्र विरिञ्चिं च सबीज भावयेद् बुध ।
अथवाग्न्यादिकान् देवाम्तत्पर सयतेन्द्रिय ॥४८॥
पूजयत् पुरुष विष्णु चतुर्मूर्तिधर हरिम्।
अनादिनिधन देव वासुदेव सनातनम्॥४९॥
नारायण जगद्योनिमाकाश परम पदम्।
तल्लिङ्गधारी नियत तद्भक्तस्तदपाश्रय ।
एप एव विधिग्राह्य भावन चान्तिक मत ॥५०॥

मुनिश्रेष्ठो! यदि मनुष्य इसमे भी असमर्थ हो तो उसे हर, विष्णु एव ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये और उसमें भी असमर्थ हानेपर भक्तियुक्त होकर (कार्यब्रह्मकी शक्ति) वायु, अग्नि तथा इन्द्र आदि देवताओकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वमें आप लोगाको जो दो शुद्ध भावनाएँ बतायी गयी हैं (वे भी कल्याणकर हैं)। साथ ही निर्बीज तथा सबीज योगका भी वर्णन किया गया है (ये भी परम उपादेय हैं)। मैंने पूर्वमें भी यह निर्बीज ज्ञान (योग) आप लोगाको बताया था। बुद्धिमान् व्यक्तिको सर्वप्रथम सबीज (साकाररूपमे) ब्रह्मा विष्णु तथा रुद्रकी भावना करनी चाहिये अथवा प्रारम्भमे जितेन्द्रिय होकर अग्नि आदि देवताओकी तत्परतापूर्वक (इन देवताओको ही परम ध्येय मानकर) आराधना करनी चाहिये। विष्णुके भक्त एव विष्णुपरायण पुरुषको वैष्णव चिह्न (शख-चक्रादि) धारणकर नियमपूर्वक (नारायण सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप) चार मूर्ति धारण करनवाले अनादिनिधन जगद्योनि आकाशरूप परमपदरूप सनातन देव वासुदेव पुरुष विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ग्राह्य भावना (विष्णुको ही ब्रह्म माननेकी भावना)-म भी यही विधि श्रीविष्णुका सामीप्य प्राप्त करनेके लिये मान्य है॥ ४६—५०॥

इत्येतत् कथित ज्ञान भावनासंश्रय परम्।
इन्द्रद्युम्नाय मुनय कथित यन्मया पुरा॥५१॥
अव्यक्तात्मकमेवेद चेतनाचेतन जगत्।
तदीश्वर पर ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममय जगत्॥५२॥

इस प्रकार यह पवित्र भावनापर आश्रित परम ज्ञान बतलाया गया। प्राचीन कालम मैंने इस ज्ञानका इन्द्रद्युम्न मुनिसे कहा था। यह चेतनात्मक एव अचेतनात्मक जगत् अव्यक्त (अक्षर अद्वितीय तत्त्व महेश्वर)-स्वरूप ही है। यह ईश्वर (महेश्वर) ही परम ब्रह्म है इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है॥ ५१-५२॥

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् विरराम जनार्दन ।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णु शक्रेण सह माधवम्॥५३॥

सूतजीने कहा—इतना कहकर भगवान् जनार्दन (कूर्म) चुप हो गये। तब इन्द्रके साथ मुनिगण माधव विष्णु (कूर्म)-

---

१- [illegible] का अर्थ है—[illegible] [illegible]

की स्तुति करने लगे— ॥ ५३ ॥

मुनय ऊचु

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नम ॥५४॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम।
माधवाय नमस्तुभ्य नमो यज्ञेश्वराय च॥५५॥

मुनियोंने कहा—कूर्मरूपधारी परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। विश्वरूप नारायण वासुदेव! आपको नमस्कार है। कृष्णको बार-बार नमस्कार है। गोविन्दको बारम्बार नमस्कार है। माधव! आपका नमस्कार है। यज्ञेश्वरको नमस्कार है॥ ५४-५५॥

सहस्त्रशिरसे तुभ्य सहस्त्राक्षाय ते नम।
नम सहस्त्रहस्ताय सहस्त्रचरणाय च॥५६॥
ॐ नमो ज्ञानरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
आनन्दाय नमस्तुभ्य मायातीताय ते नम ॥५७॥
नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते।
पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥५८॥
नम साख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते।
धर्मज्ञानाधिगम्याय निष्कलाय नमो नम ॥५९॥
नमोऽस्तु व्योमतत्त्वाय महायोगेश्वराय च।
परावराणा प्रभवे वेदवेद्याय ते नम ॥६०॥

हजारा सिरवाले तथा हजारा नेत्रवाले आपको नमस्कार है। हजारो हाथ तथा हजारो चरणवाले आपका नमस्कार है। प्रणवस्वरूप-ज्ञानरूप परमात्माको नमस्कार है। आनन्दरूप आपको नमस्कार है। आप मायातीतको नमस्कार है। गूढ (रहस्यमय) शरीरवाले आपको नमस्कार है। आप निर्गुणको नमस्कार है। पुराणपुरुष तथा सत्तामात्र स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। साख्य तथा योगरूप आपको नमस्कार है। अद्वितीय (तत्त्वरूप) आपको नमस्कार है। धर्म तथा ज्ञानद्वारा प्राप्त होनेवाले आपको तथा निष्कल आपको बार-बार नमस्कार है। व्योमतत्त्वरूप महायोगेश्वरको नमस्कार है। पर तथा अवर पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले वेदद्वारा वेद्य आपको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्य मायिने वेधसे नम ॥६१॥

शुद्ध (निराकारस्वरूप) आपको नमस्कार है बुद्ध (ज्ञानस्वरूप) आपका नमस्कार है। योगयुक्त तथा हेतु (अनन्त प्रपञ्चक मूल कारण)-रूपका नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है। मायावी (मायाके नियन्त्रक) वधा (विश्व-प्रपञ्चके स्रष्टा)-को नमस्कार है॥ ६१॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिहाय ते नम।
वामनाय नमस्तुभ्य हृषीकेशाय ते नम ॥६२॥
नमोऽस्तु कालरुद्राय कालरूपाय ते नम।
स्वर्गापवर्गदात्रे च नमोऽप्रतिहतात्मने॥६३॥
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने।
देवाना पतये तुभ्य देवार्तिशमनाय ते॥६४॥

वराहरूप आपको नमस्कार है। आप नरसिह रूपधारीको नमस्कार है। वामनरूप आपको नमस्कार है। आप हृषीकेश (इन्द्रियके ईश)-को नमस्कार है। कालरुद्रका नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करनेवाले और अप्रतिहत आत्मा (शाश्वत अद्वितीय)-को नमस्कार है। योगाधिगम्य योगी और योगदाताको नमस्कार है। देवताओके स्वामी तथा देवताओके कष्टका शमन करनेवाल आपको नमस्कार है॥ ६२—६४॥

भगवस्त्वत्प्रसादेन सर्वससारनाशनम्।
अस्माभिर्विदित ज्ञान यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते॥६५॥
श्रुतास्तु विविधा धर्मा वशा मन्वन्तराणि च।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तर ॥६६॥
त्व हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायण पर।
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मस्त्वमेव शरण गति ॥६७॥

भगवन्! आपकी कृपासे समस्त ससार (भवबन्धन)-का नाश हो जाता है। हम आपसे वह ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसे जानकर अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। हम लोगाने विविध धर्म, वश मन्वन्तर सर्ग प्रतिसर्ग तथा इस ब्रह्माण्डके विस्तारके विषयमे आपसे सुना। आप ही सम्पूर्ण जगत्के साक्षी विश्वरूप और परम नारायण हैं। अनन्तात्मन्! आप ही हम लोगाकी शरण और गति हैं। आप हमारी रक्षा करे॥ ६५—६७॥

सूत उवाच

एतद् व कथित विप्रा योगमोक्षप्रदायकम्।
कौर्मं पुराणमखिल यज्जगाद गदाधर ॥६८॥
अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु सम्भव कथित पुरा।
मोहायाशेषभूताना वासुदेवेन योजनम्॥६९॥
प्रजापतीना सर्गस्तु वर्णधर्माश्च वृत्तय।
धर्मार्थकाममोक्षाणा यथावल्लक्षण शुभम्॥७०॥
पितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च धीमत।
एकत्व च पृथक्त्व च विशेषश्चोपवर्णित ॥७१॥
भक्ताना लक्षण प्रोक्त समाचारश्च शोभन।
वर्णाश्रमाणा कथित यथावदिह लक्षणम्॥७२॥

सूतजीने कहा—विप्रा! योग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले

उस सम्पूर्ण कूर्मपुराणका मैंने आप लोगाको बतलाया जिसे गदाधर (कूर्मभगवान्)-ने कहा था। पहले इस पुराणमे सम्पूर्ण प्राणियाको मोहित करनेके लिये लक्ष्मीकी उत्पत्ति तथा वासुदेवके साथ उनके सयोगका वर्णन किया गया है। तदनन्तर प्रजापतियाकी सृष्टि वर्णोके धर्मों और उनकी वृत्तियाका वर्णन तथा धर्म अर्थ, काम एव मोक्षके शुभ लक्षणाका यथावत् वर्णन किया गया है। इसम पितामह (ब्रह्मा) विष्णु तथा धीमान् महेश्वरक एकत्व पृथक्त्व और वैशिष्ट्यका वर्णन हुआ है। भक्ताके लक्षण तथा सुन्दर सदाचारको कहा गया है। साथ ही वर्णो तथा आश्रमाके लक्षणाको शास्त्रानुसार बतलाया गया है॥ ६८—७२॥

आदिसर्गस्तत पश्चादण्डावरणसप्तकम्।
हिरण्यगर्भसर्गश्च कीर्तितो मुनिपुगवा ॥७३॥
कालसख्याप्रकथन माहात्म्य चश्वरस्य च।
ब्रह्मण शयन चाप्सु नामनिर्वचन तथा॥७४॥
वराहवपुषा भूयो भूमेरुद्धरण पुन ।
मुख्यादिसर्गकथन मुनिसर्गस्तथापर ॥७५॥
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापस ।
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात् पूर्वमेव तु॥७६॥

तदनन्तर आदिसर्ग पुन सात आवरणयुक्त ब्रह्माण्डका वर्णन हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! फिर हिरण्यगर्भसर्ग कहा गया है। काल-गणनाका विवरण ईश्वरका माहात्म्य ब्रह्माका जलम शयन तथा भगवान्के नामाकी निरुक्तिका वर्णन हुआ है। (विष्णुद्वारा) वराह-शरीर धारणकर भूमि (पृथ्वी)-के उद्धार करनेका भी इसम वर्णन हुआ है। तदनन्तर पहले मुख्यसर्ग आदि आर पुन मुनिसर्ग बताया गया है। (इस पुराणम) रुद्रसर्ग ऋषिसर्ग तापससर्ग और तामससर्गसे पहले धर्मका प्रजासर्ग बताया गया है॥ ७३—७६॥

ब्रह्मविष्णुविवाद स्यादन्तर्देहप्रवेशनम्।
पद्मोद्भवत्व देवस्य माहस्तस्य च धीमत ॥७७॥
दर्शन च महेशस्य माहात्म्य विष्णुनेरितम्।
दिव्यदृष्टिप्रदान च ब्रह्मण परमेष्ठिन ॥७८॥
सस्तवा देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदान तथैव च॥७९॥
सवादो विष्णुना सार्ध शकरस्य महात्मन ।
वरदान तथापूर्वमन्तर्धान पिनाकिन ॥८०॥

ब्रह्मा एव विष्णुक विवाद आर (परस्पर) एक-दूसरक देहके अन्तर्गत प्रविष्ट हान ब्रह्माक कमलसे उत्पन्न हाने आर धीमान् देव (ब्रह्मा)-के मोहका (इस पुराणम) वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् (ब्रह्माद्वारा) महेशका दर्शन करने विष्णुद्वारा कहे गय उनक माहात्म्य और परमष्ठी ब्रह्माको दिव्य दृष्टि प्रदान करनेका वर्णन हुआ है। परमेष्ठी ब्रह्माद्वारा देवाधिदेव (महेश्वर)-की स्तुति (प्रसन्न होकर) गिरिशद्वारा अनुग्रह तथा वर प्रदान करनेका भी वर्णन हुआ है। विष्णुके साथ महात्मा शकरके सवाद पिनाकीद्वारा वर प्रदान करने और उनके अन्तर्धान होनका वर्णन हुआ है॥ ७७—८०॥

वधश्च कथिता विप्रा मधुकैटभयो पुरा।
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात्॥८१॥
एकीभावश्च देवस्य विष्णुना कथितस्तत ।
विमाहा ब्रह्मणश्चाथ सज्ञालाभो हरेस्तत ॥८२॥

विप्रा! इसमे प्राचीन कालम हुए मधुकैटभके वधका तथा दव (विष्णु)-क नाभिकमलसे ब्रह्माके अवतारका वर्णन हुआ है। तदनन्तर विष्णुस दव ब्रह्माके एकीभावको कहा गया है और ब्रह्माका मोहित होना तदनन्तर हरिस चेतना-प्राप्तिको बताया गया है॥ ८१-८२॥

तपश्चरणमाख्यात देवदेवस्य धीमत ।
प्रादुर्भावा महेशस्य ललाटात् कथितस्तत ॥८३॥
रुद्राणा कथिता सृष्टिर्ब्रह्मण प्रतिषेधनम्।
भूतिश्च दवदेवस्य वरदानोपदेशकौ॥८४॥
अन्तर्धान च रुद्रस्य तपश्चर्याण्डजस्य च।
दर्शन देवदेवस्य नरनारीशरीरता॥८५॥

तदुपरान्त धीमान् दवाधिदेवकी तपश्चर्याका वर्णन है और फिर उनक (ब्रह्माके) मस्तकसे महश्वरके प्रादुर्भावका वर्णन किया गया है। रुद्राकी सृष्टि करनेपर ब्रह्माक द्वारा उसक प्रतिषेधका वर्णन हुआ है। देवाधिदेव (शकर)-के ऐश्वर्य एव ब्रह्माको वरदान और उपदेश देनेका वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् रुद्रके अन्तर्धान होने ब्रह्माकी तपश्चर्या देवाधिदेवक दर्शन और उनके नरनारी-शरीर धारण करनेका वर्णन किया गया है॥ ८३—८५॥

देव्या विभागकथन देवदवात् पिनाकिन ।
देव्यास्तु पश्चात् कथित दक्षपुत्रीत्वमेव च॥८६॥
हिमवद्दुहितृत्व च देव्या माहात्म्यमेव च।
दर्शन दिव्यरूपस्य वैश्वरूपस्य दर्शनम्॥८७॥
नाम्रा महस्र कथित पित्रा हिमवता स्वयम्।
उपदशा महादेव्या वरदान तथैव च॥८८॥

देवाधिदेव पिनाकीसे देवी (सती)-के अलगावका कथन हुआ है और फिर देवीका दक्षपुत्रीके रूपमे जन्म लेनेका वर्णन हुआ है। देवीकी हिमवान्‌की पुत्री होना और उनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है तथा (उनके) दिव्यरूपके दर्शन और विश्वरूपके दर्शनका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त स्वय पिता हिमालयद्वारा कहे गये (देवीके) सहस्रनाम, महादेवीके द्वारा प्रदत्त उपदेश और वरदानका भी वर्णन हुआ है॥ ८६—८८॥

भृग्वादीना प्रजासर्गो राज्ञा वशस्य विस्तर।
प्राचेतसत्व दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्दनम्॥ ८९॥
दधीचस्य च दक्षस्य विवाद कथितस्तदा।
ततश्च शाप कथितो मुनीना मुनिपुगवा॥ ९०॥

भृगु आदि ऋषियाका प्रजासर्ग, राजाआके वशका विस्तार, दक्षके प्रचेताके पुत्र होने और दक्षयज्ञ-विध्वसका वर्णन हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर दधीच और दक्षके विवादको बतलाया गया है, फिर मुनियोक शापका वर्णन हुआ है॥ ८९-९०॥

रुद्रागति प्रसादश्च अन्तर्धान पिनाकिन।
पितामहस्योपदेश कीर्त्यते रक्षणाय तु॥ ९१॥
दक्षस्य च प्रजासर्ग कश्यपस्य महात्मन।
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा॥ ९२॥
ततश्च शाप कथितो देवदारुवनौकसाम्।
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम्॥ ९३॥

तदुपरान्त रुद्रके आगमन एव अनुग्रह और उन पिनाकी रुद्रके अन्तर्धान होने तथा (दक्षकी) रक्षाके लिये पितामहद्वारा उपदेश करनेका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त दक्षके तथा महात्मा कश्यपसे होनेवाली प्रजासृष्टिका वर्णन है। हिरण्यकशिपुक नष्ट होने तथा हिरण्याक्षके वधका वर्णन हुआ है। इसके बाद देवदारुवनमे निवास करनेवाले मुनियाकी शाप-प्राप्तिका कथन है अन्धकके निग्रह और उसको श्रेष्ठ गाणपत्यपद प्रदान करनेका वर्णन हुआ है॥ ९१—९३॥

प्रह्रादनिग्रहश्चाथ बले सयमन तत।
बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिन॥ ९४॥
ऋषीणा वशविस्तारो राज्ञा वशा प्रकीर्तिता।
वसुदेवात् ततो विष्णोरुत्पत्ति स्वेच्छया हरे॥ ९५॥

तदनन्तर प्रह्लादके निग्रह, बलिके बाँधे जाने त्रिशूली (शकर)-द्वारा बाणासुरके निग्रह और फिर उसपर कृपा करनका वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् ऋषियाके वशका विस्तार तथा राजाआके वशका वर्णन हुआ है और फिर स्वेच्छासे वसुदेवके पुत्रके रूपमे हरिविष्णुकी उत्पत्तिका वर्णन है॥ ९४-९५॥

दर्शन चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च।
वरलाभो महादेव दृष्ट्वा साम्ब त्रिलोचनम्॥ ९६॥
कैलासगमन चाथ निवासस्तत्र शार्ङ्गिण।
ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्या निवासिनाम्॥ ९७॥
रक्षण गरुडेनाथ जित्वा शत्रून् महाबलान्।
नारदागमन चैव यात्रा चैव गरुत्मत॥ ९८॥

उपमन्युका दर्शन करने और तपश्चर्या करनका वर्णन है। तत्पश्चात् अम्बासहित त्रिलोचन महादेवका दर्शनकर वर प्राप्त करनेका वर्णन हुआ है। तदनन्तर शार्ङ्गी (कृष्ण)-का कैलासपर जाने और वहाँ निवास करनेका वर्णन है फिर द्वारवती-निवासियोके भयभीत होनेका वर्णन है। इसके बाद महाबलशाली शत्रुओंको जीतकर गरुडके द्वारा (द्वारकावासियोंकी) रक्षा करने, नारद-आगमन और गरुडकी यात्राका वर्णन हुआ है॥ ९६—९८॥

ततश्च कृष्णागमन मुनीनामागतिस्तत।
नैत्यक वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चन तथा॥ ९९॥
मार्कण्डेयस्य च मुने प्रश्न प्रोक्तस्तत परम्।
लिङ्गार्चननिमित्त च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिन॥ १००॥

तदनन्तर कृष्णके आगमन, मुनियोके आने और वासुदेव (विष्णु)-द्वारा नित्य किये जानेवाले शिव-लिङ्गार्चनका वर्णन है। तदुपरान्त मुनि मार्कण्डेयजीद्वारा (लिङ्गके विषयमे) प्रश्न करने तथा (वासुदेवद्वारा) लिङ्गार्चनके प्रयोजन और लिङ्गी (शकर)-के लिङ्गके स्वरूपका निरूपण हुआ है॥ ९९-१००॥

याथात्म्यकथन चाथ लिङ्गाविर्भाव एव च।
ब्रह्मविष्ण्वोस्तथा मध्ये कीर्तितो मुनिपुगवा॥ १०१॥
मोहस्तयोस्तु कथितो गमन चोर्ध्वतोऽप्यध।
सस्तवो देवदेवस्य प्रसाद परमेष्ठिन॥ १०२॥

मुनिश्रेष्ठो! फिर ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा उसके वास्तविक स्वरूपका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त उन दोनाके मोहित होन तथा (लिङ्गका परिमाण जाननेके लिये) ऊर्ध्वलाक एव अधालाकमे जाने पुन परमेष्ठी देवाधिदेव (महादेव)-की स्तुति करन और उनके द्वारा अनुग्रह प्रदान करनेका वर्णन हुआ है॥ १०१-१०२॥

अन्तर्धान च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्तत परम्।
कीर्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमा॥ १०३॥
कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणामागतिस्तथा।
अनुशासित च कृष्णेन वरदान महात्मन॥ १०४॥

गमन चैव कृष्णस्य पार्थस्यापि च दर्शनम्।
कृष्णद्वैपायनस्योक्ता युगधर्मा सनातना ॥१०५॥
अनुग्रहोऽथ पार्थस्य वाराणसीगतिस्तत ।
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मण ॥१०६॥

द्विजोत्तमो! तदनन्तर लिङ्गके अन्तर्धान होने और फिर साम्ब तथा अनिरुद्धकी उत्पत्तिका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त महात्मा कृष्णका (अपने लोक) जानेका निश्चय ऋषियोंका (द्वारकामे) आगमन कृष्णद्वारा उन्हे उपदेश तथा वरदान देनेका वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर कृष्णका (स्वधाम) गमन अर्जुनद्वारा कृष्णद्वैपायनका दर्शन एव उनके द्वारा कहे गये सनातन युगधर्मोका वर्णन हुआ है। आगे अर्जुनके ऊपर (व्यासद्वारा) अनुग्रह और पराशर-पुत्र अद्भुतकर्मा व्यास मुनिका वाराणसीमे जानेका वर्णन है॥ १०३—१०६॥

वाराणस्याश्च माहात्म्य तीर्थाना चैव वर्णनम्।
तीर्थयात्रा च व्यासस्य देव्याश्चैवाथ दर्शनम्।
उद्वासन च कथित वरदान तथैव च॥१०७॥
प्रयागस्य च माहात्म्य क्षेत्राणामथ कीर्तनम्।
फल च विपुल विप्रा मार्कण्डेयस्य निर्गम ॥१०८॥

तदुपरान्त वाराणसीका माहात्म्य, तीर्थोका वर्णन व्यासकी तीर्थयात्रा और देवीके दर्शन करनेका वर्णन है। साथ ही (देवीद्वारा वाराणसीसे व्यासके) निष्कासन और वरदान देनेका वर्णन हुआ है। ब्राह्मणो! तदनन्तर प्रयागका माहात्म्य, (पुण्य) क्षेत्रोका वर्णन (तीर्थोका) महान् फल और मार्कण्डेय मुनिके निगमनका वर्णन है॥ १०७-१०८॥

भुवनाना स्वरूप च ज्योतिषा च निवेशनम्।
कीर्त्यन्ते चैव वर्षाणि नदीना चैव निर्णय ॥१०९॥
पर्वताना च कथन स्थानानि च दिवौकसाम्।
द्वीपाना प्रविभागश्च श्वेतद्वीपोपवर्णनम्॥११०॥

(इसके पश्चात्) भुवनाके स्वरूप ग्रहो तथा नक्षत्रोकी स्थिति और वर्षो तथा नदियाके निर्णयका वर्णन किया गया है। पर्वतो तथा देवताओके स्थानो, द्वीपोके विभाग तथा श्वेतद्वीपका वर्णन किया गया है॥ १०९-११०॥

शयन केशवस्याथ माहात्म्य च महात्मन ।
मन्वन्तराणा कथन विष्णोर्माहात्म्यमेव च॥१११॥
वेदशाखाप्रणयन व्यासाना कथन तत ।
अवेदस्य च वेदाना कथन मुनिपुगवा ॥११२॥
योगेश्वराणा च कथा शिष्याणा चाथ कीर्तनम्।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्तिता ॥११३॥

महात्मा केशवके शयन, उनके माहात्म्य मन्वन्तरों और विष्णुके माहात्म्यका निरूपण हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर वेदकी शाखाओका प्रणयन, व्यासोंका नाम-परिगणन और अवेद (वेदबाह्य सिद्धान्तो) तथा वेदोका कथन किया गया है। (इसके अनन्तर) योगेश्वरोंकी कथा (उनके) शिष्योका वर्णन और ईश्वर-सम्बन्धी अनेक गुह्य गीताओका उल्लेख हुआ है॥ १११-११३॥

वर्णाश्रमाणामाचारा प्रायश्चित्तविधिस्तत ।
कपालित्व च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च॥११४॥
पतिव्रतायाश्चाख्यान तीर्थाना च विनिर्णय ।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रह कीर्त्यते द्विजा ॥११५॥

तदनन्तर वर्णों और आश्रमोके सदाचार प्रायश्चित्तविधि रुद्रके कपाली होने और (उनके) भिक्षा मांगनेका वर्णन हुआ है। द्विजो! इसके बाद पतिव्रताके आख्यान, तीर्थोके निर्णय और मङ्कणक मुनिके निग्रह करनेका उल्लेख हुआ है॥ ११४-११५॥

वधश्च कथितो विप्रा कालस्य च समासत ।
देवदारुवन शम्भो प्रवेशो माधवस्य च॥११६॥
दर्शन षट्कुलीयाना देवदेवस्य धीमत ।
वरदान च देवस्य नन्दिने तु प्रकीर्तितम्॥११७॥
नैमित्तिकस्तु कथित प्रतिसर्गस्तत परम्।
प्राकृत प्रलयश्चोर्ध्वं सबीजो योग एव च॥११८॥

ब्राह्मणो! (तदनन्तर) सक्षेपमे कालके वध और शकर तथा विष्णुके देवदारुवनमे प्रवेश करनेका उल्लेख है। छ कुलोमे उत्पन्न ऋषियोद्वारा धीमान् देवाधिदेवके दर्शन करने और महादेवद्वारा नन्दीको वरदान देनेका वर्णन हुआ है। इसके बाद नैमित्तिक प्रलय कहा गया है और फिर आगे प्राकृत प्रलय एव सबीज योग बतलाया गया है॥ ११६—११८॥

एव ज्ञात्वा पुराणस्य सक्षेप कीर्तयेत् तु य ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥११९॥

इस प्रकार सक्षेपमें (इस कूर्म) पुराणको जानकर जो उसका उपदेश करता है वह सभी पापोसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ११९॥

एवमुक्त्वा श्रिय देवीमादाय पुरुषोत्तम ।
सत्यज्य कूर्मसस्थान स्वस्थान च जगाम ह॥१२०॥

इतना कहकर कूर्मरूपका परित्यागकर देवी लक्ष्मीके साथ पुरुषोत्तम (विष्णु) अपने धामको चले गये॥ १२०॥

देवाश्च सर्वे मुनय स्वानि स्थानानि भेजिरे।
प्रणम्य पुरुष विष्णु गृहीत्वा ह्यमृत द्विजा ॥१२१॥

एतत् पुराण परम भाषित कूर्मरूपिणा।
साक्षाद् देवादिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥१२२॥

द्विजो! सभी देवता तथा मुनिगण भी परम पुरुष विष्णुके (उपदेशरूपी) अमृतको प्राप्तकर तथा उन्हे प्रणामकर अपने-अपने स्थानोको चले गये। यह श्रेष्ठ (कूर्म) पुराण कूर्मरूपधारी विश्वयोनि साक्षात् देवाके आदिदेव विष्णुद्वारा कहा गया है॥१२१-१२२॥

य पठेत् सतत मर्त्यो नियमेन समाहित ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥१२३॥
लिखित्वा चैव यो दद्याद् वैशाखे मासि सुव्रत ।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्य निबोधत॥१२४॥
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वित ।
भुक्त्वा च विपुलान् स्वर्गे भोगान् दिव्यान् सुशोभनान्॥१२५॥
तत स्वर्गात् परिभ्रष्टो विप्राणा जायते कुले।
पूर्वसस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥१२६॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक इस पुराणको पढता है, वह सभी पापासे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो पुरुष शास्त्रानुसार व्रतनिष्ठ हाते हुए इस पुराणको लिखकर वैशाख मासम वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करता है, उसका पुण्य सुनो—वह सभी पापोसे रहित और सभी ऐश्वर्योसे सम्पन्न हाते हुए (मृत्युके बाद) स्वर्गमे प्रचुर मात्रामे दिव्य तथा सुन्दर भोगोका उपभोग करता है, तत्पश्चात् स्वर्गसे इस लोकमे आकर ब्राह्मणाके वशम उत्पन्न होता है और पूर्व-सस्काराकी महिमाके कारण ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेता है॥ १२३—१२६॥

पठित्वाध्यायमेवैक सर्वपापै प्रमुच्यते।
योऽर्थं विचारयेत् सम्यक् स प्राप्नोति पर पदम्॥१२७॥
अध्येतव्यमिद नित्य विप्रै पर्वणि पर्वणि।
श्रोतव्य च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥१२८॥
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नश ।
एकत्र चेद परममेतदेवातिरिच्यते॥१२९॥
धर्मनैपुण्यकामाना ज्ञाननैपुण्यकामिनाम्।
इद पुराण मुक्त्वैक नास्त्यन्यत् साधन परम्॥१३०॥

इस (पुराण)-के एक ही अध्यायके पाठ करनेसे सभी पापोसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और जो इसके अर्थपर ठीक-ठीक विचार करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणाको प्रत्यक पर्वपर महापातकाका नाश करनेवाले इस पुराणका नित्य अध्ययन एव श्रवण करना चाहिये। एक ओर सभी इतिहास-पुराणाको (शास्त्रीय विचारणाकी कसौटीपर) रखा जाय और दूसरी ओर अकेले इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको रखा जाय तो यही अपेक्षाकृत अतिशय विशिष्ट सिद्ध होगा। जो व्यक्ति धर्मंमे निपुणता प्राप्त करना चाहते हो और जो ज्ञानमे निपुणता प्राप्त करनेके अभिलाषी हो उनके लिये एकमात्र इस पुराणको छोडकर और कोई दूसरा श्रेष्ठ उपाय नहीं है॥१२७—१३०॥

यथावदत्र भगवान् देवो नारायणो हरि ।
कथ्यते हि यथा विष्णुर्न तथान्येषु सुव्रता ॥१३१॥
ब्राह्मी पौराणिकी चेय सहिता पापनाशिनी।
अत्र तत् परम ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थत ॥१३२॥
तीर्थाना परम तीर्थं तपसा च पर तप ।
ज्ञानाना परम ज्ञान व्रताना परम व्रतम्॥१३३॥
नाध्येतव्यमिद शास्त्र वृषलस्य च सनिधौ।
योऽधीते स तु मोहात्मा स याति नरकान् बहून्॥१३४॥
श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीय द्विजातिभि ।
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम्॥१३५॥

सुव्रतो! इस पुराणमे जिस प्रकारसे भगवान् हरि नारायण देव विष्णुका कीर्तन हुआ है, वैसा अन्यत्र नहीं है। यह पौराणिकी ब्राह्मी सहिता पापाका नाश करनवाली है। इसमे परम ब्रह्मका यथार्थरूपमे कीर्तन किया गया है। यह तीर्थोमे परम तीर्थ, तपामे परम तप ज्ञानोम परम ज्ञान और व्रतोम परम व्रत है। इस शास्त्रका अध्ययन वृषल (अधार्मिक व्यक्ति)-के समीप नहीं करना चाहिये। जो अध्ययन करता है, वह अज्ञानी है, वह बहुतसे नरकोको प्राप्त करता है। द्विजातियोके श्राद्ध अथवा देवकार्यमे इस ब्राह्मीसहिता (कूर्मपुराण)-को सुनाना चाहिये। यज्ञकी पूर्णतापर विशेषरूपसे (इसका पाठ करनेसे एव) श्रवण करनेसे सभी दोषासे शुद्धि हो जाती है॥१३१—१३५॥

मुमुक्षूणामिद शास्त्रमध्येतव्य विशेषत ।
श्रोतव्य चाथ मन्तव्य वेदार्थपरिबृहणम्॥१३६॥
ज्ञात्वा यथावद् विप्रेन्द्रान् श्रावयेद् भक्तिसयुतान्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥१३७॥
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा।
स प्रेत्य गत्वा निरयान् शुना योनि व्रजत्यध ॥१३८॥
नमस्कृत्वा हरिं विष्णु जगद्योनि सनातनम्।
अध्येतव्यमिद शास्त्र कृष्णद्वैपायन तथा॥१३९॥
इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजस ।
पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मन ॥१४०॥

मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालोंको विशेषरूपसे वेदके अर्थका विस्तार करनेवाले इस शास्त्रका श्रवण अध्ययन तथा मनन करना चाहिये। इसका ठीक-ठाक ज्ञान प्राप्तकर भक्तियुक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको इसे (सबको) सुनाना चाहिये। इससे वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है। जो (व्यक्ति) श्रद्धारहित तथा अधार्मिक पुरुषको इसका उपदेश देता है वह परलोकमें जाकर नरकोंका भोग भोगकर पुनः मृत्युलोकमें कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है। 'संसारके मूल कारण सनातन हरि विष्णु तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजीको नमस्कार करके इस शास्त्र (पुराण)-का अध्ययन करना चाहिये'—अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु और पराशरके पुत्र महात्मा विप्रर्षि व्यासकी ऐसी आज्ञा है॥ १३७—१४०॥

श्रुत्वा नारायणाद् दिव्यां नारदो भगवानृषिः।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥ १४१॥
पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः।
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ १४२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते।
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्॥ १४३॥
सनकाद् भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः।
अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्॥ १४४॥
सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवतीसुतः।
लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम्॥ १४५॥
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्।
ऊचिवान् वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने॥ १४६॥

नारायणसे इस दिव्य संहिताको सुनकर भगवान् नारद ऋषिने पूर्वकालमें गौतमको इसका उपदेश दिया था और उनसे पराशरको यह (शास्त्र) प्राप्त हुआ। मुनीश्वरो! भगवान् पराशरने भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-रूप चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाले इस पुराणको मुनियोंसे कहा। पूर्वकालमें धीमान् सनक और सनत्कुमारको सभी पापोंका नाश करनेवाले इस शास्त्रका उपदेश ब्रह्माने दिया था। सनकसे योगज्ञानियोंमें श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् देवलने और देवलसे पञ्चशिखने इस उत्तम शास्त्रको प्राप्त किया। सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यास मुनिने सभी अर्थोंका संचय करनेवाले इस श्रेष्ठ पुराणको सनत्कुमारसे प्राप्त किया। उन व्याससे सुनकर मैंने आप लोगोंसे पापोंका नाश करनेवाले इस पुराणको कहा है। आप लोगोंको भी धार्मिक व्यक्तिको (इसका उपदेश) प्रदान करना चाहिये॥ १४१—१४६॥

तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये।
पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने॥ १४७॥
यस्मात् संजायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते।
नमस्तस्मै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥ १४८॥

पराशरके पुत्र सर्वज्ञ गुरु, शान्त तथा नारायणस्वरूप महर्षि व्यासको नमस्कार है। जिनसे सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब लीन हो जाता है, उन देवताओंके स्वामी कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है॥ १४७-१४८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

(उपरिविभाग समाप्त)

॥ इति श्रीकूर्मपुराणं समाप्तम्॥

॥ इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४४॥

(उपरिविभाग समाप्त)

॥ श्रीकूर्मपुराण समाप्त॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' का विशेषाङ्क 'कूर्मपुराणाङ्क' पाठकोकी सेवाम प्रस्तुत किया जा रहा है। 'कल्याण' की परम्पराम पिछले वर्षोंमे यदा-कदा कुछ पुराणाका सक्षिप्त अनुवाद अथवा किसी पुराणका मूलसहित सानुवाद प्रकाशन 'विशेषाङ्क' के रूपमें होता रहा है। इस वर्ष भी पाठक महानुभावाका यह आग्रह था कि 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमे पुराणका प्रकाशन किया जाय।

अष्टादश महापुराणोमे 'कूर्मपुराण' १५वाँ महापुराण माना गया है। जिसका प्रकाशन अबतक 'गीताप्रेस' द्वारा नहीं हो सका था। अत यह निश्चय हुआ कि कूर्मपुराणका सानुवाद मूलसहित प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें किया जाय, जिससे वेदव्यासकी आर्षवाणी अपने पाठक महानुभावोतक पहुँचायी जा सके।

कूर्मपुराणका कथन नारदादि महर्षियो तथा इन्द्रसहित देवताओंका उनकी प्रार्थनापर उस समय किया गया जब क्षीर-समुद्र-मन्थनके समय विष्णु कूर्मरूपमें मन्थन-दण्डके रूपमें प्रयुक्त मन्दराचल पर्वतके आधार बने हुए थे। इस पुराणका कथन सर्वप्रथम भगवान् कूर्मद्वारा इन्द्रद्युम्नको तदनन्तर उसी पूर्वकथाका कथन भगवान् नारदादि महर्षियो एव इन्द्रादि देवोसे किये जानके कारण इसका नाम 'कूर्मपुराण' हुआ। यद्यपि कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा यह पुराण कहा गया है परतु इस पुराणके मुख्य देवता भूतभावन भगवान् शकर हैं। इस पुराणकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमे शिव और विष्णुका परमैक्य विवक्षित है। 'शिवस्य हृदय विष्णु विष्णोश्च हृदय शिव '—यह भावना पूर्णरूपसे यहाँ प्रतिपादित हुई है। इसके अतिरिक्त त्रिदेवा (ब्रह्मा विष्णु, महेश)-की एकताका प्रतिपादन होनेके साथ-ही-साथ शक्ति और शक्तिमान्की अभिन्नताका दिग्दर्शन भी हुआ है।

इस महापुराणमें भक्ति ज्ञान वैराग्य सदाचार एव निष्कामकर्मकी महिमा एव यज्ञ दान तप तीर्थ-सेवन देव-पूजन श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोम जन-साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लोकिक एव पारलौकिक पुण्यप्रद फलादिकाका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त इस पुराणमें अन्यान्य विविध उपयोगी विषयाका यथाक्रम समावेश हुआ है।

वास्तवमे कूर्मपुराणकी समस्त कथाओ और उपदेशोका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सासारिक बन्धनोस मुक्त होनेके लिय एकमात्र परमात्माकी शरणम जाना चाहिय। यह लक्ष्य-प्राप्ति कर्मयाग ज्ञान अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है—इसकी विशद व्याख्या इस महापुराणमें हुई है। यह पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए साधकाके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोंके विघ्नोका तथा विघ्नोसे छूटनेके उपायोंका बडा ही सुन्दर निरूपण करता है। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख, समृद्धि एव शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनसे जीवमात्रके कल्याणमे सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्यय भगवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे बढ सकता है—इसके विविध साधनोको उपदेशपूर्ण इतिवृत्त—कथानकोंके साथ इस पुराणमें प्रस्तुत किया गया है।

कूर्मपुराणके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य लाभ तथा अन्त करणकी परिशुद्धि, भगवान्मे रति और विषयोमे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य-निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही जो जिज्ञासु शास्त्रमर्यादाके अनुसार अपना जीवन-यापन करना चाहते हैं उन्हे इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान साधन तथा सुन्दर एव पवित्र जीवन-यापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुराण जिज्ञासुजनोके लिये अत्यधिक उपादेय ज्ञानवर्धक सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमे पूर्णतया सहायक है।

आज भारतवासियोका जीवन त्यागमय न रहकर भोगपरायण हो चला है। पाश्चात्योंकी-सी विलासिता, उन्हींका-सा रहन-सहन तथा जीवन-यापनका ढग, वैसा ही खान-पान, वैसी ही वेष-भूषा एव रीति-नीति आदि भारतीय समाजमे घर कर रही है। इससे उनका जीवन बाह्याडम्बरपूर्ण बहुत खर्चीला दम्भपूर्ण तथा केवल अधिकारलिप्सा और अर्थलिप्सामे ही सलग्न रहनेवाला बन रहा है। भारतीय धर्म एव सस्कृतिम भौतिकता या भोगोका सर्वथा निषेध नहीं है वरन् उनकी मानव-जीवनके एक क्षेत्रम आवश्यकता बतायी गयी है पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एव भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल भोग तो आसुरी सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अध पतन करनेवाला है। आधिभौतिक उन्नति हो पर वह हो अध्यात्मकी भूमिकापर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर कवल कामोपभोग-परायणता मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियाक लिये घोर सताप अशान्ति चिन्ता पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी भोगपरायण मानव-जगत्म यही हो रहा है और इसी कारण

नित्य नये उपद्रव अशान्ति पाप तथा दु ख बढ रहे हैं। कीट-पतंगकी तरह सहस्रों मानवोंका जीवन एक क्षणमे अनायास एक साथ समाप्त हो जाता है। अपने देशमें इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोग-परायणताका विस्तार बडे जोरोंसे हो रहा है। अत इस समय इसकी बडी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर—पाप-पथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ-अग्रसर हो। इस दिशामे यदि उचितरूपसे इस पुराणका अध्ययन तथा तदनुसार आचरण किया जाय तो यह विशेषाङ्क मानवके भौतिक एव आध्यात्मिक उत्कर्षमे बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकेगा।

इस पुराणमे विविध विषयोंका समावेश हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये कूर्मपुराणके भावोंका सार-सक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमे परिचयरूपमे प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे कूर्मपुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमे आ सकेंगे। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

इस पुराणकी पृष्ठ-सख्या बढ जानेके कारण फरवरी मासका साधारण अङ्क परिशिष्टाङ्कके रूपमे विशेषाङ्कके साथ सलग्न कर दिया गया है जिससे सम्पूर्ण कूर्मपुराण एक जिल्दमे पाठकोंको प्राप्त हो जाय।

विशेषाङ्कके प्रकाशनमे कुछ कठिनाइयोंका आना तो स्वाभाविक ही है पर परम कृपालु आशुतोष प्रभुके अनुग्रहसे सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। यद्यपि कूर्मपुराणके कुछ सस्करण उपलब्ध थे, परंतु उनके मूल पाठ-भेद आदिका निर्णय करना कठिन था। जो सस्करण उपलब्ध हुए उनके मूल श्लोकोंमे अशुद्धियाँ मिलनेसे अनुवादादि-कार्यमे विशेष कठिनाईका अनुभव हुआ। ग्रन्थका अनुवाद-कार्य मित्रजनोंकी सहायतासे ही सम्पन्न हो सका। कूर्मपुराणके मूल श्लोकोंके पाठ-भेद आदिके निर्धारणमे तथा इसके अनुवादमे 'सर्वभारतीय काशिराजन्यास' द्वारा प्रकाशित कूर्मपुराणकी प्रतिसे हमे अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई है। इस न्यासके अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीने कृपापूर्वक यह प्रति उपलब्ध करायी और इस पुराणके प्रकाशनके लिये हमे प्रेरित भी किया। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

इस पुराणके अनुवाद करनेमे मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष ध्यान रखा गया है। भावोंके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। अपने पुराणमे कुछ ऐसे भी स्थल हैं जो सर्वसाधारणके लिये उपयोगी और कल्याणप्रद प्रतीत नहीं होते तथा उनकी समझकी क्षमतासे बाहर भी हैं। जिनके समावलोकनसे सामान्यजनोंके मस्तिष्कमे सशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है ऐसे स्थलोंके मूलको सुरक्षित रखते हुए अनुवादको सक्षेप करना ही हितकर समझा गया।

अनुवादके सशोधनादि कार्योंमे वाराणसीके प० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा प० श्रीसुधाकरजी दीक्षितने विशेष सहयोग प्रदान किया है। इनके प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागके प० श्रीजानकीनाथजी शर्माके सहयोगके प्रति भी हम आभारी हैं। इस विशेषाङ्कके सम्पादन, प्रूफ-सशोधन, चित्र-निर्माण तथा मुद्रण आदि कार्योंमे जिन-जिन लोगोंसे हमे सहृदयता मिली है वे सभी हमारे अपने हैं उन्हे धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमे 'कल्याण' का कार्य भगवान्‌का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वय करते हैं। हम तो केवल निमित्त मात्र हैं। 'कल्याण'-सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत भगवद्भक्ति एव भगवन्नामका पवित्र सयोग सौभाग्यवश हम सभीको हुआ है पाठकोंको भी यह प्राप्त होगा। यह हम सबके लिये कम लाभकी बात नहीं।

इस बार कूर्मपुराणके सम्पादन-कार्यके क्रममे परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका चिन्तन मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात है। हम आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

पाठक-पाठिकागण इस पुण्य पुराणको पढकर लाभ उठावे और लोक-परलोकमे सुख शान्ति और मानव-जीवनके परम एव चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त करें—यही प्रार्थना है। हमारे धर्मका लक्ष्य है 'अभ्युदय और नि श्रेयसकी सिद्धि'—ये दोनो ही सिद्धियाँ इस पुराणमे वर्णित आचारोंके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती हैं।

अन्तमे अपनी त्रुटियोंके लिये हम सबसे क्षमा माँगते हुए अपने इस लघु प्रयासको श्रीभगवान्‌के पावन चरण-कमलोंमें अर्पित करते हैं—'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'। और साथ ही भूतभावन भगवान् श्रीविश्वेश्वरके श्रीचरणोंमे यह प्रार्थना निवेदित करते हैं—

करचरणकृत वा कायज कर्मज वा
श्रवणनयनज वा मानस वापराधम्।
विहितमविहित वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

॥ श्रीहरि ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरके प्रकाशनोंका सूचीपत्र

ध्यान देने योग्य कुछ आवश्यक बाते

(१) पुस्तकोंके आर्डरमे पुस्तकका कोड न० नाम, मूल्य तथा मँगानवालेका पूरा पता, डाकघर जिला पिन—कोड आदि हिन्दी या अँग्रेजीमें सुस्पष्ट लिख। पुस्तक यदि रेलसे मँगवानी हो तो निकटतम रलवे-स्टेशनका नाम अवश्य लिखना चाहिये।

(२) कम-से-कम रु० ५०० ०० की मूल्यकी एक साथ पुस्तक लेनेपर ▲ चिह्नवाली पुस्तकोपर ३०% एवं ■ चिह्नवाली पुस्तकोपर १५% डिस्काउन्ट है। अन्य खर्च—पैकिंग, रेलभाडा आदि अतिरिक्त देय होगा। रु० १५०० से अधिककी पुस्तके एक साथ चलान करनेपरपैकिंग—खर्च नहीं लिया जाता तथा रेलभाडा बाद दिया जाता है।

(३) डाकसे भेजी जानेवाली पुस्तकोपर कम-से-कम ५% (न्यूनतम रु० १) पैकिंग-खर्च अङ्कित डाकखर्च तथा रजिस्ट्री/वी० पी० खर्च पुस्तकोंके मूल्यके अतिरिक्त देय है। डाकस शीघ्र एव सुरक्षित पानेके लिय वी० पी०/रजिस्ट्रीसे पुस्तके मँगवाये। रु० १००/- स अधिक मूल्यकी पुस्तकोके आदेशके साथ अग्रिम राशि भेजनेकी कृपा करे।

(४) सूचीमे पुस्तकोके मूल्य के सामने वर्तमानम लगनेवाला साधारण डाकखर्च (बिना रजिस्ट्री-खर्चके) हा अकित है। बडी पुस्तकोंको रजिस्ट्री/वी० पी० से मँगाना उचित है। वर्तमानमें अकित डाकखर्चके अतिरिक्त रजिस्ट्री-खर्च रु० ८ ०० प्रति पैकट (५ किलो वजनतक)की दरसे लगता है।

(५) 'कल्याण' मासिक या उसके विशेषाङ्कके साथ पुस्तके नहीं भेजी जा सकतीं। अतएव पुस्तकोके लिये गाताप्रेसपुस्तक-विक्रय-विभागके पतेपर 'कल्याण'के लिये 'कल्याण'-कार्यालय पा० गीताप्रेसक पतपर अलग-अलग आर्डर भेजना चाहिये। सम्बन्धित राशि भी अलग-अलग भजना ही उचित है।

(६) आजकल डाकखर्च बहुत अधिक लगता है। अत पुस्तकोका आर्डर दनेसे पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे सम्पर्क करे। इससे समय तथा धनकी बचत हो सकती है।

(७) विदेशामें नियातके मूल्य तथा नियमादिकी जानकारी हतु पत्राचार कर।

विशेष—कागजके मूल्यमे भीषण वृद्धिके कारण कुछ पुस्तकोंके मूल्यम वृद्धि अगले सस्करण स हा सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५ फोन न० (०५५१) ३३४७२१ फैक्स ०५५१-३३६९९७

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	श्रीमद्भगवद्गीता		
1	गीता तत्त्व विवेचनी—(टीकाकार श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गीता विषयक २५१५ प्रश्न और उनके उत्तर रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी टीका बृहदाकार सचित्र सजिल्द	८०	■ १९
2	ग्रन्थाकार	४	■ ९
3	नवीन सस्करण	३	■ ८
457	अग्रेजी अनुवाद	३५	■ ८
5	गीता साधक सजीवनी— (टीकाकार स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझने हेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल सुबोध भाषामें हिन्दी टीका बृहदाकार, सचित्र सजिल्द	१	■ २२ ०
6	गीता साधक संजीवनी—ग्रन्थाकार	६	■ १२
7	मराठी अनुवाद	७	■ १३
467	गुजराती अनुवाद	७५	■ १
458	अग्रेजी अनुवाद	८५	■ ८
763	बगला सम्पूर्ण एकसाथ	७	■ १५
	गीता दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश लेख गीता व्याकरण और छन्द		
8	सम्बन्धी गूढ विवेचन सचित्र सजिल्द	३५	■ ५

कोड		मूल्य	डाकखर्च
504	गीता दर्पण (मराठी अनुवाद) सजिल्द	४५ ०	■ ५
556	गीता दर्पण(बगला अनुवाद)सजिल्द	३५ ०	■ ५
468	(गुजराती अनुवाद)	४५	■ ५
493	(अग्रेजी पाकेट साइज)		■ २
10	गीता शाकर भाष्य—	८	■ ६
581	गीता रामानुज भाष्य—	३५	■ ५
11	गीता चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता विषयक लेखो विचारा पत्रा आदिका सग्रह)	२ ०	■ ३ ०
	गीता—मूल पदच्छेद अन्वय भाषा टीका टिप्पणी प्रधान और सूक्ष्म विषय एव त्यागसे भगवत्प्राप्ति		
17	लेखसहित सचित्र सजिल्द	१५ ०	■ ३ ०
12	(गुजराती)	१५ ०	■ ४
13	(बगला)	१५ ०	■ ४
14	(मराठी)	२	■ ४
	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित सजिल्द		
16	मोटे अक्षरोंमे	१५ ०	■ ३
15	(मराठी अनुवाद)	२	■ ३
18	भाषा टीका टिप्पणी प्रधान विषय मोटा टाइप		■ २
502	गीता—मोटे अक्षर सजिल्द	१३	■ ३
19	गीता—केवल भाषा	५	■ १
663	(तेलगु)	५	■ १ ०
748	ज्ञानेश्वरी मूल (मराठी)	२	■ ४

कोड		मूल्य	डाकखर्च
20	गीता—भाषा टीका		
633	गीता पाकेट साइज सजिल्द	४	■ १
455	(अँग्रेजी)	७	■ २
496	( ) सजि	४	■ १०
714	(बँगला)	७	■ १
	(असमिया)	४	■ १
21	श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता विष्णुसहस्रनाम भीष्मस्तवराज अनुस्मृति गजेन्द्रमोक्ष मूल (मोटे अक्षरोंमें)	५	■ २
22	गीता—मूल मोटे अक्षरोंवाली	१	■ २
538	गीता मूल मोटा (सजिल्द)	५	■ २
23	मूल विष्णुसहस्रनाम सहित		
661	गीता मूल विष्णु०—कन्नड पाकेट	२	■ १
662	तेलगू पाकेट	४	■ १
739	मलयालम	३	■ १
488	नित्यस्तुति—गीता मूल विष्णुसहस्रनाम सहित	३	■ १
24	गीता—ताबीजी (माचिस आकार)	४	■ १
566	गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (कम से कम ५० प्रति)	२	■ १
288	गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन—	१५	■
289	गीता निबन्धावली—	२	▲ १
297	गीतोक्त सन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप—	२५	▲ १
	गीता माधुर्य—स्वामी रामसुखदासजीद्वारा	७५	▲ १
386	सरल प्रश्नोत्तर शैलीमें (हिन्दी)		
679	(संस्कृत)	८	▲ १
389	(तमिल)	६	▲ २
390	(कन्नड)	१०	■ २
391	(मराठी)	४५	▲ १
392	(गुजराती)	८	▲ १
393	(उर्दू)	८	▲ १
394	(नेपाली)	८	▲ २
395	(बंगला)	५	▲ २
624	(असमिया)	६	▲ १
754	(उड़िया)	६	▲ १
487	(अँग्रेजी)	६	▲ १
470	गीता—रोमन गीता मूल श्लोक एवं अंग्रेजी अनुवाद	८	▲ १
503	गीता दैनन्दिनी (1996)—पुस्तकाकार प्लास्टिक कवर	१	■ २
615	पाकेट साइज	२५	■ ४
506	(साधारण)	१२	■
464	गीता ज्ञान प्रवेशिका	१	■ ३
578	गीता सुधा तरंगिनी गीताका पद्यानुवाद	१	■ २

रामायण

कोड		मूल्य	डाकखर्च
80	श्रीरामचरितमानस बृहदाकार मोटा टाइप सजिल्द आकर्षक आवरण राजसंस्करण	४	■ १
81	सटीक मोटा टाइप आकर्षक आवरण	१८	■ १
697	साधारण	९५	■ १
82	मझला साइज सजिल्द	७५	■ १
456	अंग्रेजी अनुवाद सहित	८५	■ ५
83	मूलपाठ मोटे अक्षरोंमें सजिल्द	७	■ ९
84	मूल मझला साइज	५	■ ६
85	मूल गुटका	२५	■ ४
94	बालकाण्ड सटीक	१७	■ २
95	अयोध्याकाण्ड	१२	■ २
0141	अरण्य किष्किन्धा सुन्दरकाण्ड सटीक	११	■ १
		६	■ १

कोड		मूल्य	डाकखर्च
98	श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड सटीक	३	■ १
101	श्रीरामचरितमानस लङ्काकाण्ड	६	■ १
102	उत्तरकाण्ड	६	■ १
99	सुन्दरकाण्ड मूल गुटका	१५	■ १
100	सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप	३	■ १००
86	मानसपीयूष (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक)		■
75	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक सजिल्द (प्रथम खण्ड)	७५	■ ८०
76	(द्वितीय खण्ड)	७	■ ८
77	केवल भाषा	१० ०	■ १
583	(मूलमात्रम्)	६५	■ ११
452	(अँग्रेजी अनुवादसहित भाग १)	८	■ ८
453	(भाग २)	८	■ ८
454	(भाग ३)	०	■ ९
74	अध्यात्मरामायण—सटीक सजिल्द	४	■ ५

अन्य तुलसीकृत साहित्य

कोड		मूल्य	डाकखर्च
105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	१७	■ २
106	गीतावली—	१७	■ २
107	दोहावली—सानुवाद	८	■ १
108	कवितावली—	०	■ १
109	रामाज्ञाप्रश्न—सरल भावार्थसहित	२	■ १
110	श्रीकृष्णगीतावली—	३	■ १
111	जानकीमंगल—	२	■ १
112	हनुमानबाहुक—सानुवाद	१५	■ १
113	पार्वतीमंगल—सरल भावार्थसहित	२	■ १
114	वैराग्यसंदीपनी—	५	■ १
115	बरवै रामायण—	१	■ १

पुराण उपनिषद् आदि

कोड		मूल्य	डाकखर्च
28	श्रीमद्भागवत सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद सचित्र सजिल्द		
25	बृहदाकार, बड़े टाइपमें	९	■ ९
26	श्रीमद्भागवत महापुराण—सटीक—सचित्र सजिल्द (प्रथम खण्ड)	२	■ २५
27	(द्वितीय खण्ड)	८	■ १
564	अँग्रेजी (प्रथम खण्ड)	८	■ १
565	(द्वितीय खण्ड)	८	■ १
29	मूल मोटा टाइप	७	■ ८
124	मझला	५	■ ६
30	श्रीप्रेम सुधासागर—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका भाषानुवाद सचित्र सजिल्द	३५	■ ५
31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र सजिल्द	३	■ ५
32	महाभारत—हिन्दी टीका सहित सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट	१६	■ ३
38	महाभारत खिलभाग हरिवंशपुराण—हिन्दी टीका	७१	■ ६५
637	जैमिनीय अश्वमेधपर्व	१	■ ११
39	संक्षिप्त महाभारत—(प्रथम खण्ड) केवल भाषा सचित्र सजिल्द	५	■ ९
511	(द्वितीय खण्ड)	७	■ ९
44	संक्षिप्त पद्मपुराण सचित्र सजिल्द	७५	■ ८
613	संक्षिप्त शिवपुराण बड़ा टाइप	८१	■ ८
539	संक्षिप्त मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क	७	■ ८
46	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत केवल भाषा	७	■ ९
48	श्रीविष्णुपुराण सानुवाद सचित्र सजिल्द	७	■ ७
47	पातञ्जलयोग प्रदीप पातञ्जलयोग सूत्रोंका वर्णन	५७	■ ६
517	गर्गसंहिता भगवान् कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन सचित्र सजिल्द	६	■ ७
		५	■ ७

[रजिस्ट्री से मंगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है।]

कोड		मूल्य		डाकखर्च
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण सचित्र सजिल्द	१० ००	■	११ ०
66	ईशादि नौ उपनिषद् अन्वय हिन्दी व्याख्या	३० ००	■	५ ०
67	ईशावास्योपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य	२ ५	■	१ ००
68	केनोपनिषद् ,,	७	■	१ ००
578	कठोपनिषद्	८ ०	■	१ ००
69	माण्डूक्योपनिषद्	१५.००	■	१
513	मुण्डकोपनिषद् ,,	६ ००	■	१ ००
70	प्रश्नोपनिषद्	६ ००	■	१ ००
71	तैत्तिरीयोपनिषद्	१५ ००	■	१ ००
582	छान्दोग्योपनिषद् ,,	५० ०	■	७ ००
577	बृहदारण्यकोपनिषद्	७० ००	■	१० ००
72	ऐतरेयोपनिषद् ,,	५ ०	■	१ ००
73	श्वेताश्वतरोपनिषद् ,,	१३ ०	■	२ ०
65	वेदान्त-दर्शन हिन्दी व्याख्या सहित सजिल्द	२५ ०	■	४ ०
135	पातञ्जलयोगदर्शन	७ ००	■	१ ०
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	७५ ०	■	८ ०
	भक्त चरित्र			
40	भक्त चरिताङ्क-सचित्र सजिल्द	८० ०	■	९ ०
53	भागवतरत्न प्रह्लाद	७ ५०	■	२
123	चैतन्य चरितावली सम्पूर्ण एक साथ	७ ००	■	१० ०
168	भक्त नरसिंह मेहता	७ ०	■	१ ०
169	भक्त बालक गोविन्द मोहन आदि	३ ५०	■	१ ००
170	भक्त नारी मीरा, शबरी आदि	३ ०	■	१ ०
171	भक्त पञ्चरत्न रघुनाथ दामोदर आदि	३ ५	■	१ ०
172	आदर्श भक्त शिबि रन्तिदेव आदि	३ ५	■	१ ००
173	भक्त सप्तरत्न दामा रघु आदि	३ ००	■	१ ०
174	भक्त चन्द्रिका सखु, विट्ठल आदि	३	■	१
175	भक्त कुसुम जगन्नाथ आदि छ भक्तगाथा	४	■	१
176	प्रेमी भक्त बिल्वमंगल, जयदेव आदि	३	■	१
177	प्राचीन भक्त मार्कण्डेय, उतङ्क आदि	५.	■	१
178	भक्त सरोज गङ्गाधरदास श्रीधर आदि	३ ५	■	१
179	भक्त सुमन नामदेव राँका बाँका आदि भक्तगाथा	५	■	१
180	भक्त सौरभ-व्यासदास, प्रयागदास आदि	५	■	१
181	भक्त सुधाकर रामचन्द्र, लाखा आदि	५ ०	■	१ ००
182	भक्त महिलारत्न रानी रत्नावती, हरदेवी आदि	३ ५	■	१
183	भक्त दिवाकर सुव्रत वैश्वानर आदि	३ ५०	■	१ ०
184	भक्त रत्नाकर माधवदास, विमलतीर्थ आदि	३ ५	■	१ ००
185	भक्तराज हनुमान् हनुमान्जीका जीवनचरित्र	३	■	१
608	(तमिल)	५.	■	२
186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	२ ५०	■	१
187	प्रेमी भक्त उद्धव	२ ५	■	१ ००
188	महात्मा विदुर	२ ५०	■	१
189	भक्तराज ध्रुव	२ ५	■	१ ०
537	बालचित्रमय बुद्धलीला चित्रोंमें कथा सहित	३	■	१ ०
194	चैतन्यलीला	३	■	१ ०
292	नवधा भक्ति भरतजीमें नवधा भक्ति सहित	३ ०	■	१
385	नारदभक्तिसूत्र सानुवाद	१ २५	■	१ ०
330	नारदभक्तिसूत्र सानुवाद (बँगला)	१ २५	■	१
499	(तमिल)	१ ०	■	१ ०
121	एकनाथ चरित्र	१	■	२
516	आदर्श चरितावली पृष्ठ सं ६४	३	■	१
396	आदर्श ऋषिमुनि ( )	३	■	१
397	आदर्श देशभक्त ( )	२ ५	■	१
398	आदर्श सम्राट ( )	३	■	१
399	आदर्श संत ( )	२ ५	■	१
402	आदर्श सुधारक ( )	२ ५०	■	१
136	विदुरनीति पृष्ठ सं १४४	६ ०	■	२ ०
138	भीष्मपितामह पृष्ठ सं १३६	८ ०	■	१ ०

[रजिस्ट्री से मंगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है ।]

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन			
683	तत्त्वचिन्तामणि (सभी भाग एक साथ) ग्रन्थाकार	६ ००	■	१० ०
527	प्रेमयोगका तत्त्व (हिन्दी)	९ ००	■	२ ००
521	प्रेमयोगका तत्त्व (अँग्रेजी अनुवाद)	६ ०	▲	२ ००
528	ज्ञानयोगका तत्त्व (हिन्दी)	८	▲	२ ०
520	(अँग्रेजी अनुवाद)	८ ०	▲	२ ००
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग १)	६ ००	▲	१ ००
267	(भाग-२)	६ ००	▲	१ ०
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय (भ०यो०त०भाग १)	६	▲	१ ००
298	भगवान्के स्वभावका रहस्य (भ यो०त भाग २)	५ ००	▲	१ ००
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा पृष्ठ ३५८	९ ००	■	२ ०
243	परम साधन भाग १ पृष्ठ १९२	६ ०	▲	२ ०
244	भाग २ पृष्ठ १६	५	▲	२ ०
245	आत्मोद्धारके साधन भाग १	७	▲	२ ००
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति (आ० सा भाग २)	६ ००	▲	२ ०
579	अमूल्य समयका सदुपयोग	४ ००	▲	१ ०
666	(तेलगू)	५ ०	▲	२ ००
246	मनुष्यका परम कर्तव्य भाग १	६ ०	▲	२ ०
247	भाग २	६ ००	▲	२ ०
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति	५.००	▲	१ ०
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	६ ००	▲	१ ००
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय तत्त्वचिन्तामणि भाग १	८ ००	▲	२ ००
275	(बँगला)	८	▲	२
249	शीघ्र कल्याणके सोपान भाग २ खण्ड १	७	▲	२
250	ईश्वर और संसार भाग २ खण्ड २	७ ०	▲	२ ००
519	अमूल्य शिक्षा भाग ३ खण्ड १	५ ०	▲	१ ०
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि त चि भाग ३ खण्ड २	५	▲	२ ००
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि भाग ४ खण्ड १	६ ०	▲	२ ०
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा खण्ड २	५ ५	▲	२ ०
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला त चि भाग ५ खण्ड-१	६ ०	▲	२ ०
255	श्रद्धा विश्वास और प्रेम भाग ५ खण्ड २	७	▲	२ ०
258	तत्त्वचिन्तामणि भाग ६ खण्ड १	५ ००	▲	२ ०
257	परमानन्दकी खेती भाग ६ खण्ड २	५ ०	▲	२ ०
260	समता अमृत और विषमता विष भाग ७ खण्ड १	६	▲	२ ०
259	भक्ति भक्त भगवान् त चि भाग ७ खण्ड २	६ ०	▲	२ ०
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय पृष्ठ २१४	४	▲	२ ०
261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान पृष्ठ ५४	२ ५	▲	१ ००
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र पृष्ठ २१४	५	▲	१
264	मनुष्य जीवनकी सफलता (भाग १)	५.	▲	२ ०
265	भाग २ पृष्ठ १४४	५ ०	▲	२ ००
268	परमशान्तिका मार्ग भाग १	६	▲	२ ०
269	भाग २ पृष्ठ १९२	६ ०	▲	२
599	हमारा आश्चर्य	५ ००	▲	१
543	परमार्थ सूत्र संग्रह	५ ०	▲	१ ००
681	रहस्यमय प्रवचन	५ ०	▲	२ ०
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा पृष्ठ १६	५ ००	▲	१
273	नल दमयन्ती पृष्ठ ७२	२ ०	▲	१
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र पृष्ठ १९२	४	▲	१ ००
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी पृष्ठ ११२	३ ००	▲	१ ०
276	परमार्थ पत्रावली बँगला प्रथम भाग	३ ५	▲	१
277	उद्धार कैसे हो? ५१ पत्रोंका सग्रह	४	▲	१
278	सच्ची सलाह ८ पत्रोंका सग्रह	५	▲	१ ०
280	साधनोपयोगी पत्र ७२ पत्रोंका संग्रह	४ ०	▲	१
281	शिक्षाप्रद पत्र ७ पत्रोंका सग्रह	६ ०	▲	२
282	पारमार्थिक पत्र ९१ पत्राका संग्रह ४	४ ००	▲	१ ०
284	अध्यात्म विषयक पत्र ५४ पत्रोंका सग्रह	३ ०	▲	१
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ ११ कहानियोंका सग्रह	३ ५०	▲	१
480	(अँग्रेजी)	४ ०	▲	२

कोड		मूल्य	डाकखर्च
680	उपदेशप्रद कहानियाँ	५	▲ २०
320	वास्तविक त्याग पृष्ठ ११२	४	▲ १०
285	आदर्श भ्रातृप्रेम पृष्ठ ९६	३	▲ १
286	बालशिक्षा पृष्ठ ६४	२०	▲ १००
287	बालकोंके कर्तव्य पृष्ठ ८८	३०	▲ १ ०
290	आदर्श नारी सुशीला पृष्ठ ४८	२०	▲ १
312	(बँगला)	२०	▲ १
665	(तेलगू)	३ ००	▲ १०
291	आदर्श देवियाँ पृष्ठ १२८	१ २५	▲ १
293	सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	७५	▲ १
294	संत महिमा पृष्ठ ६४	१०	▲ १००
295	सत्सगकी कुछ सार बातें (हिन्दी)	१	▲ १ ०
296	(बँगला)	५०	▲ १
466	(तमिल)	१ ००	▲ १ ०
299	ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	२	▲ १
300	नारीधर्म पृष्ठ ४०	१ ५०	▲ १
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	१ ००	▲ १ ०
310	सावित्री और सत्यवान पृष्ठ २८	१ ५	▲ १ ०
607	(तमिल)	१ ५	▲ १
664	(तेलगू)	१ ५	▲ १०
302	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश पृष्ठ १६	१ ००	▲ १
304	गीता पढ़नेके लाभ	५०	▲ १००
703	(असमिया)	५	▲ १
536	सत्यकी शरणसे मुक्ति (तमिल)	१ ५	▲ १
305	गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव	१ २५	▲ १ ०
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय पृष्ठ ९६ (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	१ ५	▲ १
311	वैराग्य परलोक और पुनर्जन्म	१ ०	▲ १
317	अवतारका सिद्धान्त पृष्ठ ६४	१	▲ १
306	भगवान् क्या हैं? पृष्ठ ४८	१ ०	▲ १०
307	भगवान्‌की दया पृष्ठ ४८	७५	▲ १
308	सामयिक चेतावनी	५०	▲ १
313	सत्यकी शरणसे मुक्ति	५	▲ १
672	(तेलगू)	१	▲ १
314	व्यापार सुधारकी आवश्यकता मुक्ति	५	▲ १
613	धर्मके नामपर पाप	२५	▲ १
315	चेतावनी	५	▲ १
316	ईश्वर साक्षात्कार नाम जप सर्वोपरि साधन है		
318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है-	५	▲ १
270	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	५	▲ १
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	७५	▲ १
319	हमारा कर्तव्य पृष्ठ ३२	५	▲ १
321	त्यागसे भगवत्प्राप्ति (गजलगीतासहित)	०५	▲ १ ०
326	प्रेमका सच्चा स्वरूप	५	▲ १
329	शोक नाशके उपाय	५	▲ १
324	श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव	४	▲ १०
328	चतु श्लोकी भागवत	५	▲ १
	परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन		
050	पदरत्नाकर पृष्ठ सं ९७६	३५	■ ५
049	श्रीराधा माधव चिन्तन	३५	■ ६
058	अमृत कण	१४	■ ३
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	१२	■ ३
333	सुख शान्तिका मार्ग पृष्ठ ३०४	११	■ २
343	मधुर	९ ०	■ २
056	मानव जीवनका लक्ष्य पृष्ठ २४	९	■ २
331	सुखी बननेके उपाय पृष्ठ २५६	९०	■ २
334	व्यवहार और परमार्थ पृष्ठ २९६	८ ०	▲ २
336	नारीशिक्षा पृष्ठ १५२	७०	▲ १००
514	दु खमें भगवत्कृपा	९.०	■ २ ०
386	सत्संग सुधा पृष्ठ २२४	९०	■ २ ०
342	संतवाणी ढाई हजार अनमोल बोल	१ ०	■ २ ०
347	तुलसीदल पृष्ठ २९४	८ ०	▲ २ ०
337	दाम्पत्य जीवनका आदर्श	७०	▲ १ ०
339	सत्सगके बिखरे मोती	९	■ २
340	श्रीरामचिन्तन पृष्ठ १८४	८	▲ २
338	श्रीभगवन्नाम चिन्तन पृष्ठ २३२	८ ०	▲ २
345	भवरोगकी रामबाण दवा	७	▲ १
346	सुखी बनो पृष्ठ १२८	६	▲ १
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू संस्कृति	१२	■ ३
350	साधकोंका सहारा पृष्ठ ४४	११ ००	■ ३ ००
351	भगवच्चर्चा—भाग ५	१५ ००	■ १
352	पूर्ण समर्पण	१५ ०	■ २
341	प्रेमदर्शन पृष्ठ स १७६	८	▲ २
353	लोक परलोकका सुधार (कामके पत्र भाग १)	८	▲ १
354	आनन्दका स्वरूप पृष्ठ २०	८५	■ १ ०
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर २९२	१ ०	■ ३
356	शान्ति कैसे मिले ? (लो प सुधार भाग ४)	१ ००	■ २
357	दु ख क्यों होते हैं ?	१ ००	■ २ ०
358	कल्याण कुञ्ज (क० कु भाग १)	६	▲ १ ०
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प (भाग २)	६	▲ १
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (भाग-३)	७	▲ २ ०
361	मानव कल्याणके साधन (भाग ४)	१	■ २
362	दिव्य सुखकी सरिता (भाग ५)	५ ००	▲ १
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (भाग ६)	५०	▲ १
364	परमार्थकी मन्दाकिनी (भाग ७)	४०	▲ १
387	प्रेम सत्सग सुधा माला पृष्ठ २ ८	९०	■ १
651	गोसेवाके चमत्कार (हिन्दी)	६ ००	■ २
365	गोसेवाके चमत्कार (तमिल)	३ ५	▲ १
366	मानव धर्म पृष्ठ ९५	५	▲ १
367	दैनिक कल्याण सूत्र पृष्ठ ८२	३	▲ २
368	प्रार्थना इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह	२ ५	▲ १
370	श्रीभगवन्नाम	१०	▲ १
371	राधा माधव रस सुधा सटीक ब्रजभाषामें		
372	गुटका	२०	▲ १
373	कल्याणकारी आचरण (जीवनमें पालन करनेयोग्य)	२०	▲ १
374	साधन पथ सचित्र	२ ५	▲ १ ०
376	स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी पृष्ठ सं ४८	२ ५	▲ १
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	१	▲ १
378	आनन्दकी लहरें	१ ५	▲ १
379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका महात्म्य	१०	▲ १
381	दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य	१	▲ १
382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	१ ५	▲ १
348	नैवेद्य	९	■ २ ०
344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	४	▲ १
	परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन		
465	साधन सुधा सिन्धु	७	■ १२
400	कल्याण पथ पृष्ठ १६	७	▲ २
605	जित देखूँ तित तू—	७	▲ २
406	भगवत्प्राप्ति सहज है	४०	▲ २
535	सुन्दर समाजका निर्माण	८	▲ २
401	मानसमें नाम वन्दना पृष्ठ १६	७	▲ १
403	जीवनका कर्तव्य पृष्ठ १७	८	▲ १
436	कल्याणकारी प्रवचन (हिन्दी)	६	▲ १
404	(गुजराती)	४	▲ १

[रजिस्ट्री से मंगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है।]

कोड		मूल्य	डाकखर्च
405	नित्ययोगकी प्राप्ति पृष्ठ १२८	६ ०	▲ १
407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता पृष्ठ १३६	४५०	▲ १
408	भगवान्‌से अपनापन पृष्ठ ९६	४	▲ १
409	वास्तविक सुख पृष्ठ ११२	५ ०	▲ १०
411	साधन और साध्य पृष्ठ ९०	४५	▲ १ ०
412	तात्त्विक प्रवचन (हिन्दी)	४५	▲ १००
413	(गुजराती)	५	▲ १००
414	तत्त्वज्ञान कैसे हो ? पृष्ठ १२	६	▲ १ ०
415	किसानोंके लिये शिक्षा	१२५	▲ १०
416	जीवनका सत्य पृष्ठ ९६	४५०	▲ १
417	भगवन्नाम पृष्ठ ७२	३ ०	▲ १
418	साधकोंके प्रति पृष्ठ ९६	४५०	▲ १
419	सत्संगकी विलक्षणता पृष्ठ ६८	३ ०	▲ १००
420	मातृशक्तिका घोर अपमान	२	▲ १०
421	जिन खोजा तिन पाइयाँ	४५	▲ १
422	कर्मरहस्य (हिन्दी)	३ ०	▲ १
423	(तमिल)	३	▲ १००
424	वासुदेवः सर्वम् पृष्ठ ६८	३	▲ १ ०
425	अच्छे बनो पृष्ठ ८८	४५	▲ १०
426	सत्संगका प्रसाद पृष्ठ ८८	४०	▲ १
431	स्वाधीन कैसे बनें पृष्ठ ४८	१५०	▲ १
427	गृहस्थमें कैसे रहें ? (हिन्दी)	५	▲ १०
589	भगवान् और उनकी भक्ति	४ ०	▲ १००
603	गृहस्थोंके लिये (कल्याणवर्ष ६८ ३ ४ से)	१००	▲ १ ०
617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३ ०	▲ १ ०
625	(बँगला)	२५०	▲ १ ०
428	गृहस्थमें कैसे रहें ? (बँगला)	४ ०	▲ १ ०
429	(मराठी)	८००	▲ १
128	(कन्नड)	२७५	▲ १००
430	(उड़िया)	४ ०	▲ १०
472	(अँग्रेजी)	३	▲ १
553	(तमिल)	८००	▲ १
432	एकै साधे सब सधै पृष्ठ ८	४	▲ १
632	सबजग ईश्वर रुप है	४०	▲ १००
607	सबका कल्याण कैसे हो ? (तमिल)	२	▲ १ ०
433	सहज साधना पृष्ठ ६४	३	▲ १०
545	जीवनोपयोगी कल्याणमार्ग	३	▲ १००
729	सार संग्रह	१	▲ १
730	सकल्प पत्र	२०	▲ १
702	यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	१५	▲ १
652	हम कहाँ जा रहे हैं? विचार करें	१००	▲ १००
580	गायकी महत्ता और उसकी आवश्कता	१०	▲ १०
434	शरणागति (हिन्दी)	३०	▲ १००
568	(तमिल)	३००	▲ १
757	(उड़िया)	३	▲ १०
435	आवश्यक शिक्षा	२००	▲ १
515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन	१२५	▲ १ ०
606	(तमिल)	१५	▲ १
438	दुर्गतिसे बचो (हिन्दी)	१५	▲ १०
449	(बँगला) (गुरुतत्त्व सहित)	२	▲ १ ०
439	महापापसे बचो (हिन्दी)	१	▲ १
451	(बँगला)	१	▲ १
549	(उर्दू)	१२५	▲ १
591	संतानका कर्तव्य—(तमिल)	२	▲ १
440	सच्चा गुरु कौन ?	१५	▲ १
441	सच्चा आश्रय	१	▲ १
442	संतानका कर्तव्य (हिन्दी)	१	▲ १
443	(बँगला)	१	▲ १

[रजिस्ट्री से मंगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है ।]

कोड		मूल्य	डाकखर्च
444	नित्य स्तुति	१ ०	▲ १०
445	हम ईश्वरको क्यों मानें ?(हिन्दी)	१	▲ १
450	(बँगला)	१५०	▲ १
554	(नेपाली)	२५	▲ १०
446	आहार शुद्धि (हिन्दी)	१ ०	▲ १ ०
551	आहार शुद्धि (तमिल)	१५०	▲ १ ०
447	मूर्तिपूजा (हिन्दी)	१	▲ १
469	(बँगला)	१	▲ १
569	(तमिल)	१५	▲ १०
448	नाम जपकी महिमा (हिन्दी)	१	▲ १०
550	(तमिल)	१५	▲ १ ०
671	(तेलगू)	१	▲ १
	नित्यपाठ साधन भजन हेतु		
610	व्रत परिचय	१८	■ ३
052	स्तोत्ररत्नावली सानुवाद	१५ ०	■ २
117	दुर्गासप्तशती मूल मोटा टाइप	१० ०	■ २
118	दुर्गासप्तशती सानुवाद	११	■ २
489	दुर्गासप्तशती सजिल्द	१५ ०	■ २
045	एकादशीव्रतका माहात्म्य	३५	■ १
206	विष्णुसहस्रनाम सटीक	२	■ १
226	मूलपाठ	१ ०	■ २ ०
740	मलयालम	१०	■ १
211	आदित्य हृदयस्तोत्रम् हिन्दी अँग्रेजी अनुवादसहित	१	■ १०
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र भक्त बिल्वमगलरचित सानुवाद	२	■ १
524	ब्रह्मचर्य और संध्या गायत्री	२ ०	■ १००
231	रामरक्षास्तोत्रम्	१	■ १
675	(तेलगू)	१५	■ १
202	गंगासहस्रनाम	२ ०	■ १०
713	श्रीराधिका सहस्रनाम	२	■ १
704	श्रीशिवसहस्रनाम	२०	■ १०
705	श्रीहनुमतसहस्रनाम	२	■ १
706	श्रीगायत्रीसहस्रनाम	२ ०	■ १०
705	श्रीरामसहस्रनाम	२	■ १००
708	श्रीसीतासहस्रनाम	२	■ १
709	श्रीसूर्यसहस्रनाम	२ ०	■ १
711	श्रीलक्ष्मीसहस्रनाम	२	■ १
712	श्रीगणेशसहस्रनाम	२ ०	■ १ ०
495	दत्तात्रेय वज्रकवच सानुवाद	२०	■ १००
229	नारायणकवच सानुवाद	१	■ १
230	अमोघशिवकवच सानुवाद	१००	■ १
563	शिवमहिम्नस्तोत्र	१०	■ १
054	भजन संग्रह पाँचों भाग एक साथ	२	■ ४
140	श्रीरामकृष्णलीला भजनावली ३२८ भजनसग्रह	१ ०	■ २
142	चेतावनी पद संग्रह (दोनों भाग)	१	■ २
144	भजनामृत ६७ भजनोंका सग्रह	५ ०	■ १
153	आरती सग्रह १ २ आरतियोंका सग्रह	३	■ १
208	सीतारामभजन	१५	■ १ ०
221	हरेरामभजन दो माला (गुटका)	१५	■ १
222	१४ माला	७	■ २ ०
225	गजेन्द्रमोक्ष सानुवाद हिन्दी पद्य भाषानुवाद	१	■ १ ९
227	हनुमानचालीसा	१	■ १
695	(छोटी साइज)	१	■ १
600	(तमिल)	१५	■ १
667	(तेलगू)	१ ०	■ १
555	श्रीकृष्णमाधुरी	१२ ०	■ ३ ०
693	श्रीकृष्णरेखाचित्रावली	६	■ २
626	हनुमानचालीसा (बँगला)	१	■ १
228	शिवचालीसा	१०	■ १

कोड		मूल्य		डाकखर्च
203	अपरोक्षानुभूति	१ ००	■	१ ०
204	गीताप्रेस लीला चित्रमन्दिर दोहावली	१ ००	■	१
205	गीताभवन दोहा संग्रह	१ ०	■	१ ००
139	नित्यकर्म प्रयोग-	६ ००	■	२ ००
592	पूजाप्रकाश	२४ ००	■	३
210	सन्ध्योपासनविधि मन्त्रानुवादसहित	१ ५०	■	१ ०
220	तर्पण एव बलिवैश्वदेवविधि मन्त्रानुवादसहित	१ ५	■	१ ००
234	बलिवैश्वदेवविधि	० १०	■	१ ००
236	साधकदैनन्दिनी	२ ०	■	१ ०
614	सन्ध्या	१	■	१ ००
	बालकोपयोगी स्त्रियोपयोगी एव सर्वोपयोगी प्रकाशन			
209	रामायण मध्यमा परीक्षा पाठ्यपुस्तक	१ ५०	■	१ ०
116	लघुसिद्धान्तकौमुदी	२ ०	■	२ ०
154	ज्ञानमणिमाला	२ ५	■	१ ०
196	मननमाला	१ २५	■	१ ००
461	हिन्दी बालपोथी शिशुपाठ (भाग १)	२ ००	■	१ ००
125	" (रगीन)	२ ५	■	१ ०
212	हिन्दी बालपोथी शिशुपाठ (भाग २)	२	■	१ ०
684	(भाग ३)	२	■	१ ०
197	संस्कृतिमाला भाग १	२ ०	■	१ ०
198	भाग २	१ ५	■	१ ०
651	गीतामाहात्म्यकी कहानियाँ	५	■	२ ०
656	गोसेवा के चमत्कार	६ ०	■	२ ०
59	जीवनमे नया प्रकाश (ले रामचरण महेन्द्र)	१०	■	२ ०
60	आशाकी नयी किरणें ( )	११ ००	■	२ ०
119	अमृतके घूँट ( )	९ ०	■	२ ०
132	स्वर्णपथ ( )	८ ०	■	२ ०
55	महकते जीवनफूल ( )	१५ ००	■	३ ००
57	मानसिक दक्षता पृष्ठ स २६४	१५ ०	■	३ ००
62	श्रीकृष्ण बाल माधुरी	१३	■	२
64	प्रेमयोग	४ ००	■	१ ००
103	मानस रहस्य	८ ००	■	२ ००
104	मानस शका समाधान	८ ०	■	२ ००
501	उद्धव सन्देश पृष्ठ स २ ८	७ ५०	■	२ ००
460	रामाश्वमेध	१० ०	■	२ ००
191	भगवान् कृष्ण पृष्ठ स ७२	३ ५	■	१ ००
601	(तमिल)	५	■	१ ०
193	भगवान् राम (६४)	३ ००	■	१ ०
195	भगवान्पर विश्वास	३	■	१ ००
120	आनन्दमय जीवन	८	■	२ ००
133	विवेक चूडामणि	८ ०	■	२
131	सुखी जीवन	३ ५०	■	१ ०
190	बाल चित्रमय श्रीकृष्णलीला	६ ००	■	२ ०
192	बालचित्रमय रामायण (दोनो भाग)	४ ०	■	१
238	कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	६	■	२ ०
239	गोपाल ( )	६ ०	■	२ ००
240	मोहन ( )	६ ०	■	२
241	श्रीकृष्ण ( )	६	■	२ ००
079	रामलला	६	■	१
529	श्रीराम	६	■	१ ०
756	गणेश	५	■	१
202	मनोबोध	४	■	१ ०
746	श्रवणकुमार	२	■	१
122	एक लोटा पानी पृष्ठ स १६०	८	■	२
134	सती द्रौपदी पृष्ठ स १३२	६ ०	■	२ ०
137	उपयोगी कहानियाँ पृष्ठ स ९६	५	■	१
157	सती सुकला	२ ५	■	१
158	महासती सावित्री	१ ५	■	१

कोड		मूल्य		डाकखर्च
145	बालकोकी बातें पृष्ठ सं ९८	५ ००	■	१ ००
146	बड़ोके जीवनसे शिक्षा	५	■	२ ०
147	चोखी कहानियाँ पृष्ठ सं० ८	४ ०	■	१ ०
148	वीर बालक पृष्ठ सं ८०	४ ०	■	१ ००
149	गुरु और माता पिताके भक्त बालक	४ ०	■	१ ००
150	पिताकी सीख पृष्ठ सं १२४	६ ०	■	२
152	सच्चे ईमानदार बालक पृष्ठ-सं० ७२	३ ५	■	१ ०
155	दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ	३ ०	■	१ ०
156	वीर बालिकाएँ	३ ०	■	१ ०
213	बालकोकी बोलचाल	२ ००	■	१ ०
214	बालकके गुण—	२ ५	■	१ ००
215	आओ बच्चो तुम्हें बतायें	२	■	१ ०
216	बालकको दिनचर्या	२ ०	■	१
217	बालकोकी सीख	२ ०	■	१ ०
218	बाल अमृत वचन	२ ००	■	१ ०
219	बालकके आचरण	२ ०	■	१ ००
696	बालप्रश्नोत्तरी	२	■	१ ००
159	आदर्श उपकार (पढ़ो समझो और करो)	६ ०	■	२ ०
160	कलेजेके अक्षर ( )	६ ००	■	२ ०
161	हृदयकी आदर्श विशालता (")	६ ०	■	२ ०
162	उपकारका बदला ( )	६ ०	■	२ ०
163	आदर्श मानव हृदय ( )	६ ००	■	२ ०
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा ( )	६ ०	■	२ ०
165	मानवताका पुजारी ( )	६ ०	■	२ ००
166	परोपकार और सच्चाईका फल ( )	५	■	२ ००
510	असीम नीचता और असीम साधुता ( )	६ ०	■	२
129	एक महात्माका प्रसाद	१२ ०	■	२ ०
151	सत्सगमाला पृष्ठ सं० ७२	३	■	१ ०
701	गर्भपात उचित अनुचित फैसला आपका	२	■	१
	कल्याण के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क			
040	भक्त चरिताङ्क (कल्याणवर्ष २६)	८	■	९
041	शक्ति अङ्क- (९)	८ ०	■	१
572	परलोक एव पुनर्जन्माङ्क (४३)	७० ००	■	१०
587	सत्कथा-अङ्क (३०)	६५ ०	■	१०
635	शिवाङ्क (८)	८० ००	■	१३ ००
627	सतअङ्क (१२)	९ ०	■	१२ ०
631	स. ब्रह्मवैवर्त पुराणाङ्क (३७)	७५ ००	■	१ ०
637	तीर्थाङ्क (३१)	८५ ०	■	१४ ०
640	स नारद पुराणाङ्क (२८)	८ ००	■	१३
042	हनुमान अङ्क (४९)	५ ००	■	१ ०
043	नारी अङ्क (२२)	७ ०	■	१२ ०
044	सक्षिप्त पद्मपुराण (" १९)	८५ ००	■	१ ००
613	शिवपुराण (बडा टाइप)(३९)	७ ०	■	१ ०
279	स्कन्दपुराण (२५)	१ ००	■	१२ ०
539	मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क (२१)	७५	■	१
518	हिन्दू संस्कृति अङ्क-(कल्याणवर्ष २४)	७५ ०	■	१ ०
517	गर्ग संहिता (४४ एव ४५) [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	५५ ०	■	१ ०
573	बालक अङ्क (कल्याणवर्ष २७)	८ ००	■	११ ००
046	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (३४)	७ ०	■	१०
028	श्रीभागवत सुधासागर (१६)	९ ०	■	१
604	साधनाङ्क- (कल्याणवर्ष १५)	७५	■	११ ०
659	उपनिषद् अङ्क (" २३)	९ ०	■	११ ००
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (३५)	७५	■	११
616	योगाङ्क - (१०)	६	■	११
657	श्रीगणेश अङ्क (४८)	६ ०	■	१२
660	भक्ति अङ्क (३२)	८०	■	१३ ०
667	संतवाणी अङ्क (" २९)	८५	■	११ ०

[रजिस्ट्री से मँगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है।]

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	कल्याण एव कल्याण कल्पतरुके पुराने मासिक अङ्क			
525	कल्याण मासिक अङ्क	३०	■	१
602	Kalya a-Kalpataru (Monthly I sues)	२०	■	१
	गीताप्रेस गोरखपुरके अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन			
	संस्कृत			
679	गीता माधुर्य	६०	▲	२
	बंगला			
763	साधक सजीवनी (पूरा सेट)	७ ०	■	१३०
5-6	गीता दर्पण	३५०	■	५
013	गीता पदच्छेद	१५ ०	■	४
275	कल्याण प्राप्तिके उपाय (तत्व चिन्ता भाग १)	८००	▲	२०
395	गीतामाधुर्य	६००	▲	२
428	गृहस्थमे कैसे रहे ?	४	▲	१
276	परमार्थ पत्रावली भाग १	३	▲	१ ०
449	दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व	२	▲	१
450	हम ईश्वरको क्यो माने	१५	▲	१ ०
312	आदर्श नारी सुशीला	२	▲	१ ०
3 0	नारद एव शाडिल्य भक्ति सूत्र	१२	▲	१
625	देशकी वर्तमानदशा तथा उसका परिणाम	३	▲	१ ०
626	हनुमानचालीसा	१ ०	■	१ ०
496	गीता छोटी पाकेट साइज	४	■	१
451	महापापसे बचो		▲	१
469	मूर्तिपूजा	१ ०	▲	१
296	सत्सगकी सार बाते	५	▲	१
443	सतानका कर्तव्य	१०	▲	१
	तमिल			
389	गीतामाधुर्य	१	■	२
553	गृहस्थमें कैसे रहे ?	८	▲	२
536	गीता पढ़नेके लाभ सत्यकी शरणसे मुक्ति	१५	▲	१
591	महापापसे बचो सतानका कर्तव्य	२	▲	१
466	सत्सगकी सार बातें	१	▲	१०
365	गोसेवाके चमत्कार			
423	कर्मरहस्य	३	▲	१
568	शरणागति	४	▲	१०
127	उपयोगी कहानियाँ	५	▲	२०
569	मूर्तिपूजा	१५	▲	१०
551	आहारशुद्धि	१	▲	१
646	चोखी कहानिया	५	■	२
645	नल दमयन्ती	५	▲	२
644	आदर्श नारी सुशीला	४	▲	१
643	भगवान्के रहनेके पाच स्थान	३	▲	१
550	नाम जपकी महिमा	१५	▲	१ ०
499	नारद भक्ति सूत्र	१	▲	१
600	हनुमानचालीसा	१५	■	१
601	भगवान् श्रीकृष्ण	५	■	२
606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	१५	▲	१
609	सावित्री और सत्यवान	१५	▲	१
607	सबका कल्याण कैसे हो ?	२	▲	१
608	भक्तराज हनुमान्	५	■	१
64	प्रेमी भक्त उद्धव	४५	■	१
647	कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	७	■	२
648	श्रीकृष्ण ( )	७	■	२
649	गोपाल ( )	७	■	२
650	मोहन ( )	७	■	२
655	एकै साधे सब सधै	५	▲	२
	असमिया			
6 4	गीतामाधुर्य	F	▲	४
714	गीता पाकेट साइज	५	■	४ ०
703	गीता पढ़नेके लाभ	५	▲	१
	कन्नड़			
370	गीतामाधुर्य	८	▲	४
129	गृहस्थमे कैसे रहे ?	२७५	▲	२
661	गीता मूल विष्णु सहस्रनाम	३	▲	४

कोड		मूल्य		डाकखर्च
725	भगवान्की दया एव भगवान्का हेतु रहित सौहार्द?	२ ०	▲	२ ०
720	महाभारतके आदर्शपात्र	५	▲	१
717	सावित्री सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	३	▲	१
723	नामजी जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३	▲	१
736	नित्यस्तुति आदित्य हृदयस्तोत्रम	१ ०	■	१०
738	हनुमतस्तोत्रावली	१ ६	■	१
737	विष्णुसहस्रनाम	१५	■	१
722	सत्यकी शरणसे मुक्ति गीतापढ़नेके लाभ	२०	▲	१
	मराठी			
07	साधक सजीवनी टीका	७५	■	१
504	गीता दर्पण	२५	■	५
014	गीता पदच्छेद	२ ०	■	४ ०
015	गीता माहात्म्यसहित	२	■	४
748	ज्ञानेश्वरी	२	■	४
391	गीतामाधुर्य	८	▲	२
429	गृहस्थमे कैसे रहें ?	८	▲	२
	गुजराती			
467	साधक सजीवनी	७५	■	१०
468	गीता दर्पण	२५	■	५
012	गीता पदच्छेद	१५	■	४००
392	गीतामाधुर्य	८	▲	२०
404	कल्याणकारी प्रवचन	४	▲	२००
413	तात्त्विक प्रवचन	५	▲	२
	ओड़िया			
430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	४	▲	१ ००
754	गीता माधुर्य	६	▲	२
	नेपाली			
394	गीतामाधुर्य	५	▲	२००
	उर्दू			
393	गीतामाधुर्य	८	▲	२
549	महापापसे बचो	१२५	▲	१
590	मनकी खटपट कैसे मिटे	८	▲	१०
	तेलगू			
641	भगवान् श्रीकृष्ण	४०	■	१००
733	गृहस्थमे कैसे रहे	६	▲	१
663	गीता वचनम्	५	■	१
664	सावित्री सत्यवान	१	▲	१
676	हनुमान चालीसा	१	■	१
665	आदर्श नारी सुशीला	३	▲	१
666	अमूल्य समय का सदुपयोग	५	▲	१
670	गीता मूल विष्णु सहस्रनामसहित		■	१
672	सत्यकी शरण से मुक्ति	१	▲	१०
674	गोविन्द दामोदर स्तोत्र	१५	■	१
732	नित्यस्तुति आदित्य हृदयस्तोत्रम्	१	■	१०
670	श्रीविष्णुसहस्रनाम् मूलम	१	■	१
677	गजेन्द्र मोक्ष	१	■	१
693	चोखी कहानिया	४	■	१
671	नाम जपकी महिमा	१	▲	१
678	सत्सगकी सार बातें	१	▲	१
682	भक्त पचरत्न	५	■	१
696	प्रेमी भक्त उद्धव		■	१
675	स रामायणम् एव राम रक्षा स्तोत्रम्	१	■	१
731	महापापसे बचो	१५	▲	१
	चित्र			
546	जयश्रीकृष्ण भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण	१३	■	
237	जयश्रीराम भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१ ०	■	
491	हनुमान्‌जी (भक्तराज हनुमान्)	५	■	
492	भगवान् विष्णु	५०	■	
560	लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	५ ०	■	
548	मुरलीमनोहर (भगवान् मुरलीमनोहर)	५	■	
437	कल्याणचित्रावली (कल्याणमें मुद्रित १५ चित्रोंका सग्रह)	८०	■	
630	गोसखा	५	■	

[रजिस्ट्री से मंगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है।]

Our English Publications

कोड		मूल्य		डाकखर्च
457	Shrimad Bhagavadgita-Tattva-Vivechani (By Jayadayal G yandka) Detailed Commentary Pages736	35 00	■	8 00
458	Shrimad Bhagavadgita Sadhak-Sanjivani (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary)Pages 896	45 00	■	6 00
493	Shrimad Bhagavadgita— The Gita—A Mirror (Pocket s e)	20 00	■	3 00
455	Bhagavadgita (With Sanskrit Text and Engl sh T a slation) Pocket size	4 00	■	1 00
470	Bhagavadgita-Roman Gita (With Sanskrit Text and E gl sh Translation)	10 00	■	3 00
487	Gita Madhurya—English (By Swami Ramsukhdas) Pages 155	8 00	▲	1 00
452	Shrimad Valmiki Ramayana (With Sansk t Text and English Translation) Part I	80 00	■	8 00
453	Part II	80 00	■	8 00
454	P rt III	90 00	■	8 50
456	Shri Ramacharitamanas (W th Hindi Text and Engl sh Tra slation)	70 00	■	8 50
564	Shrimad Bhagvat (With Sa sk t Text and English T anslation) Part I	80 00	■	8 00
565	Part II	70 00	■	8 00
	by Jayadayal Goyandka			
477	Gems of Truth [Vol I] Pages 204	7 00	▲	1 00
478	[Vol II]	5 00	▲	1 00
479	Sure Steps to God-Realization	8.00	▲	1 00
482	What is Dharma? What is God?	1 00	▲	1 00
480	Instructive Eleven Stories	4 00	▲	1 00
520	Secret of Jnana Yoga	8 00	▲	1 00
521	Prem Yoga	6 00	▲	1 00
522	Karma Yoga	7 00	▲	2 00
5 3	Bhakti Yoga	7 50	▲	2 00
658	Secrets of Gita	4 00	▲	1 00
	by Hanuman Prasad Poddar			
484	Look Beyond the Veil	6 00	▲	1 00
485	Path to Di inity Pages 166	6 00	▲	1 00
622	How to Attain Eternal Happiness	6 00	▲	2 00
	by Swami Ramsukhdas			
498	In Sea ch of Supreme Abode	4 00	▲	1 00
619	Ease in God-Real zation	4 00	▲	1 00
471	Benedictory Discours s	3 50	▲	1 00
473	Art of Living Pages 124	3 00	▲	1 00
472	How to Lead A Ho sehold Life	3 50	▲	1 00
620	The Di ine Name and its Practice	2 50	▲	1 00
488	Wa elets of Bliss & the Divine Message	1 50	▲	1 00
638	Sahaj Sadhana	2 50	▲	1 00
476	How to be Self Reliant	1 00	▲	1 00
552	Way to Attain the Supreme Bliss	1 00	▲	1 00
494	The Immanence of God (By Madanmohan Malaviya)	2 00	■	1 00
562	Ancient Idealism for Modernday Living	1 00	▲	1 00
634	God is Everything	3 00	▲	1 00

[रजिस्ट्री से मँगानेमें ८०० प्रति पैकेट अतिरिक्त लगता है ।]

नये प्रकाशन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
748	गीता ज्ञानेश्वरी पाकेट साइज	२०००	■	३००
546	जयश्री कृष्ण हिन्दी	१३००	■	३००
544	, गुजराती	१३००	■	३००
463	बंगला	१३००	■	३००
701	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२००	▲	१००
79	राम लीला धारावाहिक चित्रकथा	६००	■	२००
529	आरम्भ	५००	■	२००
756	जय गणेश	१००	■	१००
586	गायकी महत्ता और उसकी आवश्यकता	१००	■	१००
45	एकादशीव्रतका माहात्म्य	३५०	■	१००
	परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदास			
465	साधन सुधा सिन्धु	७०००	■	१२००
763	साधक संजीवनी (बंगला)	७०००	■	१२००
770	अमरताकी ओर	५००	▲	२००
730	संकल्प पत्र	२००	▲	१००
702	आवश्यक चेतावनी	१५०	▲	१००
729	सार संग्रह	१००	▲	१००
652	मनुष्यका कर्तव्य	१००	▲	१००
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका			
683	तत्त्व चिन्तामणि (ग्रन्थाकार) आकर्षक आवरण सहित	६०००	■	१०००
543	परमार्थ सूत्र संग्रह	५००	▲	२००
769	साधन नवनीत	५००	▲	२००

नये संस्करण

कोड		मूल्य		डाकखर्च
007	श्रीमद्भगवद्गीता साधक संजीवनी (मराठी)	७०००	■	१४००
698	मार्क्सवाद और रामराज्य	५०००	■	१०००
639	श्रीनारायणीयम्	२५००	■	५००
051	तुकाराम चरित	२२००	■	४००
610	व्रत परिचय	१८००	■	४००
134	सती द्रौपदी	६००	■	२००
344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	४००	■	२००
746	श्रमण नारद	२००	■	१००
223	मूल रामायण	१००	■	१००
699	गंगा लहरी	१००	■	१००
068	प्र[illegible]ाती	१००	■	१००

'कल्याण' के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८ सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एव उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसम परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एव सुप्रसिद्ध शाक-भक्तो और साधकोके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री सगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठो तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १० सन् १९३६ ई०]—इसमे योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एव प्रकार और योग-प्रणालियो तथा अङ्ग-उपाङ्गोपर विस्तारस प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओ और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोपर रोचक ज्ञानप्रद वर्णन है। यह विशेषाङ्क योगके कल्याणकारी और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोकी ओर आकृष्ट कर 'योग' के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

सत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०]—इसमे उच्चकोटिके अनेक सतो—प्राचीन, अर्वाचीन मध्ययुगीन एव कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषो तथा त्यागी-वैरागी महात्माओके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तो त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श जीवन-मूल्योका रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारको, वीतराग महात्माओ एकनिष्ठ साधको एव विद्वान् मनीषियोके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनो और उनके अङ्ग-उपाङ्गोका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

सक्षिप्त महाभारत (सचित्र, सजिल्द दो खण्डोमे) [वर्ष १७ सन् १९४३ ई०]—धर्म अर्थ काम मोक्षके महान् उपदेशो एव प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओके उल्लेखसहित इसम ज्ञान वैराग्य भक्ति योग नीति सदाचार अध्यात्म राजनीति कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोका विशद वर्णन और विवेचन है। इसम अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा गया है।

सक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १९ सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एव उनके परात्परस्वरूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसम श्रीअयोध्या श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा तुलसीवृक्षकी महिमा भगवन्नाम-कीर्तन एव भगवती गङ्गाकी महिमासहित यमुना-स्नान, तीर्थ व्रत देवपूजन श्राद्ध दानादिके विषयमे भी इसम विस्तृत चर्चा है।

सक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २१ सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणकारी महान् साधना, उपदेशो और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती) तीर्थ-माहात्म्य भगवद्भक्ति ज्ञान, योग सदाचार आदि अनेक गम्भीर रोचक विषयोका वर्णन (इन दो सयुक्त पुराणोंमें) है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२ सन् १९४८ ई०]—इसम भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ

ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक सामग्री इसके उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनो और देवियोसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई०]—इसमे नौ प्रमुख उपनिषदो (ईश, केन कठ, प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एव श्वेताश्वतर) का मूल पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है तथा अन्य ४५ उपनिषदाका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोपर टिप्पणीसहित प्राय सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-सस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय सस्कृति—विशेषत हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, सस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव कला-सस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय सस्कृतिके उपासको, अनुसधानकर्ताओं और जिज्ञासुओके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

सक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एव बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसग और आदर्श चरित्र भी इसमे वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २६ सन् १९५२ ई०]—इसमे भगवद्विश्वासको बढानेवाले भगवद्भक्तो, ईश्वरोपासको और महात्माओके जीवन-चरित्र एव विभिन्न-विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकोसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयाका बृहद् सग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषत बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान् बालको एव विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोके भी इसके प्रेरक शिक्षाप्रद, रोचक ज्ञानवर्धक तथा अनुकरणीय जीवन-वृत्त एव आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

सक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २८, सन् १९५४ ई०]—'नारदपुराण' तथा 'विष्णुपुराण' के इस सयुक्त सक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरमे पुराणोचित महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोके वर्णनसहित वेदोके छहो अङ्गो—(शिक्षा कल्प, व्याकरण निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-शास्त्र) का विशद वर्णन तथा भगवान्की सकाम उपासनाका विस्तृत विवेचन है। 'विष्णुपुराण' के उल्लेखनीय विषयोंमें भगवान् विष्णुकी महिमा, जगत्की उत्पत्ति भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार, ध्रुव-प्रह्लाद-चरित एव भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्रोसहित इसमें गृहस्थोके सदाचार, श्राद्ध-विधि जातकर्म, उपनयन आदि विशिष्ट सस्कारोका भी ज्ञानवर्धक वर्णन है। दो महत्त्वपूर्ण पुराण एकहीमे सुलभ होनेसे इसकी उपयोगिता बढ गयी है।

सतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २९, सन् १९५५ ई०] सत-महात्माओ और अध्यात्मचेता महापुरुषाके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनो (वचन और सूक्तियो) का यह बृहद् सग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा सग्रहणीय है।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई०]—जीवनमें भगवत्प्रेम सेवा, त्याग वैराग्य सत्य, अहिसा विनय प्रेम उदारता, दानशीलता, दया धर्म नीति सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओका यह बृहत् सग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और, इसकी कल्याणकारी बाते हृदयङ्गम करनेयोग्य और सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१ सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कमे तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप स्थिति एव तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमे देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमे पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बाताका भी उल्लेख है। अत भारतके समस्त तीर्थोंका अनुसधानात्मक ज्ञान

करानेवाला यह एक ऐसा सकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोके लिये विशेप महत्त्वपूर्ण और सग्रहणीय है। (सन् १९५७ के बाद तीर्थोके मार्गों और यातायातके साधनोमे हुए परिवर्तन (सशोधित रूप) इसम सम्मिलित नहीं हैं।)

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई०]—इसम ईश्वरापासना भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिक प्रकारा और विभिन्न पक्षोपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही इसमे अनेक भगवद्भक्तोके शिक्षाप्रद-अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बडे ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

सक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३४, मन् १९६० ई०]—इसमे पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाआका सरस एव कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसगाक राचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ दवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एव उपासनापर इसमे महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अत साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयाग्य है।

सक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, मन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस सक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्‌की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एव तत्त्व-ज्ञानक निरूपणके साथ-साथ इसमे शास्त्रोक्त सदाचार त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकाके लिय इसका अनुशीलन उपादेय है।

सक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३६, सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह सक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन तत्त्व-रहस्य, महिमा लीला-विहार अवतार आदि रोचक किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसम भगव शिवकी पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोका भी उपयोगी सकलन है।

सक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७ मन् १९६३ ई०]—इसमे भगवान् श्रीकृष्ण आर उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसक अतिरिक्त इसमें कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताआकी एकरूपता महिमा तथा उनकी माधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है। उपयागी अनुष्ठेय मामग्रीके रूपमे इसम अनेक स्तोत्र मन्त्र कवच आदि भी दिये गये हैं।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रका मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करत रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यो और सिद्धान्तापर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषो तथा साधकमात्रके लिय इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयागी है।

गर्ग-सहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५ सन् १९७०-७१ ई०]—श्रीराधाकृष्णकी दिव्य मधुर लीलाआका इसमे बडा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस-मधुर कथाएँ ज्ञानप्रद भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमे अनुराग बढानेवाली हैं।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०]—भगवान् गणश अनादि सर्वपूज्य आनन्दमय ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। 'आदौ पूज्यो विनायक '—इस उक्तिके अनुसार भी गणपतिकी अग्रपूजा सुप्रसिद्ध और मर्वत्र प्रचलित ही है। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताआ और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वणन 'कल्याण' के इस (पुनर्मुद्रित) विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसम श्रीगणेशकी लीला-कथाआका भी बडा ही रोचक वणन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९ सन् १९७५ ई०]—इसम श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किय गय क्रिया-कलापाका तात्त्विक और प्रामाणिक एव सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र ध्यान एव पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी इसमें उपयोगी सकलन है। अत साधकोंके लिये यह उपादेय है।

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोद्वारा जन-जनका कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका एकम उद्देश्य है।

नियम

१-भगवद्भक्ति भक्तचरित ज्ञान-वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमे सहायक अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखे अतिरिक्त अन्य विषयोके लेख 'कल्याण' मे प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखाका घटाने-बढाने और छापने-न-छापनेका अधिक सम्पादकको है। अमुद्रित लख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोम प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण' का वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतवर्षमे ८० रु० (सजिल्द विशेषाङ्कका ९० रु०) और विदेश (Foreig के लिये (नेपाल-भूटानको छोडकर) US $ 11 डालर (Sea mail) तथा US $ 22 डालर (Air mail) नियत है।

३-'कल्याण का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अत ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते है। यद्यपि वर किसी भी महीनेमे ग्राहक बनाये जा सकते हैं, तथापि जनवरीसे उस समयतकके प्रकाशित (पिछले) उपलब्ध अङ्क उन्हे दिये ज हैं। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते, छ या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-ग्राहकाको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये। वी०पी०पी० से 'कल्याण' मँगानेमे ग्राहको वी०पी०पी० डाकशुल्क अधिक देना पडता है एव 'कल्याण' भेजनेमे विलम्ब भी हो जाता है।

५-'कल्याण' के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोंको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क दो-तीन र जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमे सूचित करें।

६-पता बदलनकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोके पहले कार्यालयमे पहुँच जानी चाहिये। पत्रोमे 'ग्राहक-सख्या' पुराना अ नया—पूरा पता स्पष्ट एव सुवाच्य अक्षरोमे लिखना चाहिये। यदि कुछ महीनोके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टर ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति भेजनेमे कठिनाई हो सकती है। य आपके पतेमे कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण' के प्रेषण-सम्बन्धी कोई अनियमितता/सुझाव हो तो अपनी स्पष्ट 'ग्राहक सख्या' लिखकर हमे सूचित कर।

७-रग-बिरगे चित्रोवाला बडा अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुन प्रतिमास साधारण अङ्क ग्राहको उसी शुल्क-राशिमें वर्षपर्यन्त भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बद हो जाय तो जितने अङ्क मि हो उतनेमे ही सतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकाको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन कोड नम्बर एव अपनी ग्राहक-सख्या अवश्य लिख चाहिये। पत्रमे अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयक लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका सदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-सख्या अवश्य लिखनी चाहि

३-'कल्याण मे व्यवसायियोके विज्ञापन किसी भी दरमे प्रकाशित नहीं किये जाते।

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्ककी कम-से-कम ५० प्रतियाँ हमारे कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार-प्रसारमे सहयोगी र सकते हैं। ऐसा करनेपर ६ ०० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हे कमीशन दिया जायगा। जनवरी मासका विशेषाङ्क एव फरवरी-म मासका साधारण अङ्क रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एव आगेके मासिक अङ्क (अप्रैलसे दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था

५-जनवरी १९९७ के इस विशेषाङ्क 'कूर्मपुराणाङ्क' के अन्तमे ही फरवरी मासका अङ्क भी सलग्न है। अत ग्राहक महोदय फरवरी मास अङ्क मँगानेके लिये पत्र-व्यवहार न कर।

'कल्याण' की दशवर्षीय ग्राहक-योजना

दशवर्षीय सदस्यता-शुल्क ५०० रुपय (सजिल्द विशेषाङ्कके लिय ६०० रुपये) हैं। विदेश (Foreign) के लिये US $ 90 डार (Sea mail) तथा US $ 180 डालर (Air mail) का है। इस योजनाके अन्तर्गत व्यक्तिके अलावा फर्म प्रतिष्ठान आदि सस्थागत ग्राह भी बन सकते हैं। यदि 'कल्याण' का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोतक ग्राहकोको अङ्क नियमितरूपसे जाते रहेगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३
प्र० ति० १-१-९७
LICENCE NO -3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE PAYMENT

॥ श्रीहरि ॥

कूर्मपुराणमें विश्वरूप भगवान् महेश्वर

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर। नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥
नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे। प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः॥
नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने। नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः॥
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते। ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने॥
नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः। वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः। प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः। त्रियम्बकाय देवाय नमस्ते परमेष्ठिने॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने। अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥
नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे। नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः॥
नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः। ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने॥

(कूर्मपु० पू० वि० १०। ४३—५२)

ब्रह्माने कहा—महादेव! आपको नमस्कार है। परमेश्वर! आपको नमस्कार है। शिवको नमस्कार है। ब्रह्मरूपी देवको नमस्कार है। महेश! आपको नमस्कार है। शान्तिके मूल-हेतु! आपको नमस्कार है। प्रधान पुरुषेश! आपको नमस्कार है तथा योगाधिपति आपको नमस्कार है। काल, रुद्र, महाग्रास तथा शूलीको नमस्कार है। हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। तीन नेत्रवालेको बार-बार नमस्कार है। त्रिमूर्तिस्वरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्माके उत्पत्तिकर्ता आपके लिये नमस्कार है। ब्रह्मविद्याके अधिपति और ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। वेदोंके रहस्यरूपको नमस्कार है। कालके भी काल आपको नमस्कार है। वेदान्तसारके भी सारको नमस्कार है। वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्ध-स्वरूपको नमस्कार है। योगियोंके गुरुको नमस्कार है। शोकोंसे रहित विविध भूतोंसे घिरे हुए आपको नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेवको नमस्कार है। ब्रह्माधिपतिके लिये नमस्कार है। त्रिलोचन परमेष्ठी देवको नमस्कार है। दिगम्बर! आपको नमस्कार है। मुण्ड (की माला) एवं दण्ड धारण करनेवालेको नमस्कार है। अनादि तथा मलरहित (शुद्धरूप), ज्ञानगम्य आपको नमस्कार है। तारक एवं तीर्थरूप तथा योगविभूतियोंके मूल कारणको नमस्कार है। धर्म (धर्माचरण)-के द्वारा प्राप्य योगगम्य आपको नमस्कार है। निष्प्रपञ्चको नमस्कार है। निराभास! आपको नमस्कार है। विश्वरूप ब्रह्म परमात्माको नमस्कार है॥ ४३—५२॥